भगवान् महावीर की २५ वीं निर्वाण-शताब्दी के उपलक्ष्य में प्रकाशित

आचार्य श्री हेमचन्द्र द्वारा प्रणीत

प्राकृत-व्याकरण

संस्कृत-हिन्दी-टीका-द्वय से युक्त

(द्वितीय खण्ड)

टीकाकार—

जैनधर्म-दिवाकर, साहित्य-रत्न, जैनागम-रत्नाकर

आचार्य-सम्राट् परमश्रद्धेय

पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज

के सुशिष्य

जैन-भूषण, पंजाब-केसरी, व्याख्यान-दिवाकर

पण्डित-रत्न श्री ज्ञानमुनि जी महाराज

प्रकाशक

आचार्य श्री आत्माराम जैन मॉडल स्कूल

२९—डी, कमला नगर,

देहली—७

पूज्य मुनिराजों तथा विद्वानों की दृष्टि में :—

प्राकृत-व्याकरण [प्रथम खण्ड]

१. प्रस्तुत पुस्तक प्राकृतव्याकरण की एक महत्वपूर्ण टीका है, मुनि श्री ने व्याकरण जैसे शुष्क, गंभीर एवं दुरूह विषय को इतना सरल, सुबोध बनाया है, इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

आचार्य श्री हेमचन्द्र द्वारा विरचित "**सिद्ध-हैमशब्दानुशासनम्**" का आठवां अध्याय प्राकृत-व्याकरण है। इस व्याकरण पर संस्कृत और हिन्दी भाषा में अनेक टीकाएं लिखी जा चुकी हैं। यह टीका उन सभी टीकाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है, क्योंकि इस में शब्द-साधनिका सरल ढंग से विस्तार के साथ प्रस्तुत हुई है, जो कि प्राकृतभाषा के विद्यार्थियों के लिए सहायक एवं पथप्रदर्शक के रूप में सिद्ध होगी।

प्रसिद्धवक्ता पण्डितरत्न श्री ज्ञानमुनि जी महाराज ने परिश्रम करके प्राकृत भाषा के भण्डार को समृद्ध किया है, जिस से प्राकृत-साहित्य-जगत की बहुत बड़ी कमी की पूर्ति हुई है। इसी तरह मुनि श्री जी साहित्य जगत में अपनी प्रतिभा एवं साधना को साकार करते रहेंगे। इसी सद्भावना एवं आशीर्वाद के साथ।

आचार्यसम्राट् परमश्रद्धेय,
पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज,
घोड़नदी (महाराष्ट्र)

२. प्रस्तुत व्याकरण के आरम्भ में—'**सागर है यह ज्ञान का**' शीर्षक वाली कविता बहुत ही सुन्दर, उपयुक्त एवं प्राकृतभाषा के गौरव को प्रकट करने वाली है। आपने प्राकृतव्याकरण पर संस्कृत तथा हिन्दी में टीका रचकर जन-साधारण पर जो उपकार किया है, वह चिरस्मरणीय एवं स्थायी सिद्ध होगा, यह निर्विवाद है। इस महान् परिश्रम के लिए आपको कोटिशः धन्यवाद।

संस्कृत-प्राकृत-विशारद पण्डित,
श्री हेमचन्द्र जी महाराज, लुधियाना।

३. प्राकृत हो, संस्कृत हो, अपभ्रंश हो, कोई भी भाषा हो जब तक वह जन बोली के रूप में रहती है, तब तक नदी की धारा की तरह बन्धन-मुक्त रहती है, जिधर धारा वह निकलती है व्याकरण के नियमों में आबद्ध नहीं होती, इसी भाव को सन्त कबीर ने अपने शब्दों में अभिव्यक्ति दी थी कि—"**संस्किरत है कूप जल, भाखा बहता नीर**" परन्तु ज्योंही कोई बोली साहित्यिक भाषा का रूप लेती है तो वह धीरे-धीरे व्याकरण के नियमों में आबद्ध होती जाती है। फलतः उन्मुक्त गति से बहता नीर कूप-जल हो जाता है। प्राकृत भाषा मूलतः मानव की सहज प्राकृत बोली रही है*।

*"व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कारः सहजो वचनव्यापारः प्रकृतिः। तत्र भवं सैव वा प्राकृतम्"—रुद्रटकृत-काव्यालंकार-टीकायां श्री नमिसाधुः।

अतः वह शतद्रु की तरह शत-शत धाराओं में प्रवहमान होती रही है। इसलिये उसमें शब्द-रूपों की इतनी विशृंखलता है कि पाठक का कभी-कभी सिर चकरा जाता है। यह स्थिति उसकी साहित्यिक धरातल पर आने के पूर्व की स्थिति है। परन्तु ज्योंही उसने साहित्यिक रूप लेना शुरू किया, तो वह व्याकरण की सीमा में प्रतिबद्ध होने लगी। कोई भी साहित्यिक भाषा अपनी शुद्धता के लिये व्याकरण से अनपेक्षित नहीं रह सकती। अतः प्राकृत के व्याकरणों की भी अनेक रचनाएं यथा-समय होने लगीं।

प्राकृत भाषा के अनेक व्याकरण आज उपलब्ध हैं, जिसमें चण्ड, वररुचि, त्रिविक्रम देव, लक्ष्मीधर, शुभचन्द्र, मार्कण्डेय एवं आचार्यहेमचन्द्र आदि के व्याकरण काफी ख्याति-प्राप्त हैं। पक्षपात का प्रश्न नहीं है। यह एक यथार्थ सत्य है कि सभी प्राकृत व्याकरणों में हेमचन्द्राचार्य का प्राकृत व्याकरण गुणवत्ता की दृष्टि से अपनी एक विशिष्ट महत्ता रखता है। तुलनात्मक समालोचना का यह प्रसंग नहीं है। फिर भी संक्षेप में इतना कथ्य अवश्य है कि प्रस्तुत व्याकरण में आर्ष प्राकृत से लेकर शौरसेनी, मागधी, पैशाची एवं अपभ्रंश तक की विभिन्न प्राकृत धाराओं के लक्षणों का यथोचित सन्निवेश है। यह एक ही व्याकरण प्राकृत की अनेक शाखाओं के व्यापक अध्ययन के लिये पर्याप्त है। यही कारण है कि प्रस्तुत व्याकरण प्राकृत के अनेक पाठ्य क्रमों में स्थान प्राप्त कर चुका है और भविष्य में प्राप्त करता जा रहा है।

आचार्य हेमचन्द्र विश्वतोमुखी पाण्डित्य की दृष्टि से वस्तुतः अपने "**कलिकाल सर्वज्ञ**" विरुद के अनुरूप हैं। काव्य, चरित्र, कोष, छन्द, अलंकार एवं व्याकरण आदि अनेक साहित्यिक विधाओं में उनके अप्रतिम पाण्डित्य का दर्शन होता है। विशेषतः व्याकरण-शास्त्र के तो वे दूसरे पाणिनि हैं। '**सिद्धहैमशब्दानुशासन**' नामक व्याकरणग्रन्थ उनका सर्वांगीण सार्थ व्याकरण है। पूर्व के सात अध्याय संस्कृत से सम्बन्धित हैं, और अंतिम आठवां अध्याय प्राकृत से। यह आठवां अध्याय प्राकृत-व्याकरण के नाम से विद्वज्जगत में एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का रूप ले चुका है।

प्रस्तुत प्राकृत व्याकरण के लिये चिरकाल से एक विशद सुबोध एवं प्रामाणिक व्याख्या की अपेक्षा थी। इस दिशा में कुछ प्रयत्न हो भी चुके हैं। परन्तु महामहिम श्रद्धेय श्रुतदेवतावतार आचार्यदेव **पूज्य श्री आत्मा राम जी महाराज** के प्रिय शिष्य पण्डित श्री ज्ञानमुनि जी ने जो प्रयत्न किया है, वह वस्तुतः एक विलक्षण प्रयत्न है। मुनि श्री ने संस्कृत में 'बालमनोरमा" टीका की रचना की है। जिसमें विस्तार के साथ मूल सूत्रों एवं उनकी स्वयं आचार्यकृत वृत्ति का मर्मोद्घाटन किया है। साथ ही उदाहरण स्वरूप दिये गये शब्द-रूपों एवं धातु-रूपों की साधनिका भी प्रस्तुत की गई है। जो व्याकरण के अध्येताओं के लिये अतीव उपयोगी प्रमाणित होगी। संस्कृत टीका की भाषा सरल है, स्पष्ट है, सुबोध है। साथ ही हिन्दी टीका लिखकर तो "**स्वर्णे सुगन्धः**" की सदुक्ति को चरितार्थ कर दिखाया है। अन्त में परिशिष्ट के रूप में विस्तृत शब्दसूची है, संस्कृत पर्यायान्तर के साथ। यह शब्दसूची विद्वान तथा छात्र दोनों के लिये अतीव लाभप्रद है। सब मिलाकर प्रस्तुत संस्करण अपना अलग ही एक आकर्षक रूप उपस्थित करता है।

श्री ज्ञानमुनि जी शतशः धन्यवादार्ह हैं। कितना श्रम, समय, शक्ति एवं सरस्वती का उपयोग किया है उन्होंने प्रस्तुत सम्पादन में। प्राकृत भाषा के अध्यापक और अध्येता एतदर्थ

चिरऋणी रहेंगे मुनि श्री जी के। मैं हृदय से चाहूंगा यह सटीका-संस्करण अधिकाधिक प्रसार एवं प्रचार पाये ताकि प्राकृत के अध्ययन का मार्ग प्रशस्त हो।

श्रावणपूर्णिमा १९७५

राष्ट्रसन्त उपाध्याय,
श्री अमरमुनि जी महाराज,
वीरायतन राजगृह (बिहार)

४. श्रुतज्ञान शब्द और अर्थ दोनों पर निर्भर है। लिखने पढ़ने और बोलने में शब्द की प्रधानता होती है, अर्थ की नहीं। वर्णात्मक शब्द को ही भाषा कहते हैं। शुद्ध भाषा से अर्थ का निर्णय होता है, अर्थ-निर्णय से सम्यग्-ज्ञान, सम्यग्-ज्ञान से दर्शन और चारित्र की शुद्धि होती है। तीनों की शुद्धि से परमपद की प्राप्ति निश्चित है। भाषाशुद्धि व्याकरण से होती है। व्याकरण का अर्थ है—जिन नियमों एवं उपनियमों के विधि-विधान से भाषा की शुद्धि हो, निर्दोषता हो। आचार्य हेमचन्द्र ने सिद्ध-हैम व्याकरण की रचना की है। उस व्याकरण की पूर्ति आठ अध्यायों में की है। प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद हैं। बत्तीस भागों में से अट्ठाईस पादों में संस्कृत व्याकरण के सभी नियम बतलाए गए हैं। पाणिनि व्याकरण को वार्तिक इष्टि आदि से पूर्ण किया गया, जब कि आचार्य हेमचन्द्र ने व्याकरण के किसी भी नियम को अधूरा नहीं रहने दिया। आठवें अध्याय में प्राकृतभाषा के नियम बतलाए हैं। संस्कृत व्याकरण के जो नियम हैं, उनमें से बहुत से नियम प्राकृत-भाषा में भी लागू होते हैं और कुछ एक नियम भिन्न भी हैं। लिङ्गानुशासन में जो शब्द पुंलिंग में हैं या स्त्रीलिङ्ग में हैं उन्हें प्राकृतभाषा में भी उसी प्रकार समझ लेना होता है। किन्तु जो शब्द नपुंसकलिङ्गी हैं उनमें कुछ ऐसे शब्द भी हैं जो पुंलिंग में भी प्रयुक्त किए जा सकते हैं।

प्राकृतभाषा—

इस आर्यावर्त्त में जो भाषा आर्य लोगों की बोलचाल में आने वाली थी, जिस भाषा में भगवान महावीर ने अपने पवित्र सिद्धान्तों का उपदेश दिया था, जिस भाषा में श्रेष्ठकाव्य निर्माण द्वारा प्रवरसेन आदि महाकवियों ने अपनी अनुपम एवं दिव्य प्रतिभा का परिचय दिया है, जिस भाषा से भारतवर्ष की विद्यमान समस्त आर्य भाषाओं की उत्पत्ति हुई उन सब भाषाओं का साधारण नाम है—प्राकृत। सब भाषाओं का मूलस्रोत प्राकृतभाषा है। जो कि समय और स्थान की भिन्नता के कारण प्राकृत के ही विभिन्न रूप हैं। जैसे कि अर्धमागधी, शौरसेनी, पैशाची, महाराष्ट्री-प्राकृत, अपभ्रंशप्राकृत, पाली, आर्षप्राकृत, प्राथमिकप्राकृत, हिन्दीप्राकृत आदि। इन में जो प्राथमिक-प्राकृत है वह येनकेन प्रकारेण सब भाषाओं में व्यापक है। प्राकृतभाषा संस्कृत सापेक्ष तो है ही, देश्य भी है। आचार्य हेम चन्द्र ने प्राकृतभाषा को तीन भागों में विभक्त किया है। जैसे—तत्सम, तद्भव और देश्य-देशी। जो शब्द संस्कृत और प्राकृत दोनों में बिल्कुल एक समान होते हैं वे तत्सम कहलाते हैं। जैसे कि खल, हल, बल, फल, धवल, आगम, अंजलि-गण आदि शब्द संस्कृत सम माने जाते हैं। जो शब्द संस्कृत से वर्ण-परिवर्तन, वर्णागम, वर्णलोप आदि द्वारा उत्पन्न हुए हैं वे तद्भव कहलाते हैं। जैसे कि धर्म-धम्म, ध्यान-झाण, भार्या-भारिआ, नाथ-नाह, हृदय-हिअअ, मेघ-मेह, भवति-हवइ, भविष्यति-होहिइ इत्यादि। जिन शब्दों की समानता संस्कृत के साथ बिल्कुल भी नहीं है, उन प्राकृत शब्दों को देश्य-देशी कहते हैं। जैसे कि चुक्कइ (पश्यति), देक्खइ (पश्यति), डाल (शाखा), झडप्प (शीघ्र),

जढ (त्यक्त), बोंदी (शरीर), अमिअ (विस्मृत) इत्यादि। आचार्य हेमचन्द्र ने स्वप्रणीत प्राकृत व्याकरण में तत्सम और तद्भव शब्दों का ही प्रयोग किया है। यद्यपि देश्य शब्दों के रूप भी दिए हैं तथापि उन का विवरण एवं रूपसिद्धि का उल्लेख नहीं जैसा ही है। देशीनाम-माला कोष में बने बनाए शब्द मिलते हैं। यद्यपि प्राकृतव्याकरण अनेकों ही उपलब्ध हैं। जैसे कि वररुचि का प्राकृत-प्रकाश, त्रिविक्रमदेव की स्वोपज्ञ प्राकृतव्याकरणवृत्ति, मार्कण्डेय का प्राकृत सर्वस्व, चण्ड का प्राकृत-लक्षण, क्रमदीश्वर का संक्षिप्तसार, सिद्धराज का प्राकृतरूपावतार, लक्ष्मीधर की षड्भाषा-चन्द्रिका, रामतर्कवागीश का प्राकृत कल्पतरु है। तथापि आजतक के प्रकाशित सभी प्राकृत व्याकरणों से सर्वोत्तम और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हेमचन्द्र का प्राकृतव्याकरण है। सुबोध व्याकरण यदि कोई है तो वह सिद्ध-हैमशब्दानुशासन ही है। इस पर स्वोपज्ञ लघुवृत्ति और बृहद् वृत्ति भी उपलब्ध है।

आठवें अध्याय के पहले पाद में क्रमश: 'अ' से लेकर 'ह' तक संस्कृत से प्राकृत शब्द बनाने की सभी विधियां बतलाई गई हैं। संधि, लिङ्ग-परिवर्तन आदि का विवरण है। द्वितीय पाद में आगम, आदेश एवं शेष विधि का ज्ञान कराया गया है। तृतीयपाद में प्राकृत भाषा के अन्तर्गत सुबन्त-विभक्ति, तिङन्तविभक्ति और कारक आदि विषयों को स्पष्ट किया गया है। चतुर्थपाद में शौरसेनी, अर्ध-मागधी, पैशाची और अपभ्रंश इन चार भाषाओं के विशेष नियमों के संदर्भ में निर्देश किया गया है। प्राकृत भाषा में समराइच्चकहा, सुरसुंदरीचरियं आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। शौरसेनी भाषा में षट्खण्डागम, समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। दिगम्बर जैन साहित्य प्रायः शौरसेनी भाषा में प्राप्त होते हैं। महाराष्ट्री प्राकृत भाषा में लीलावई पद्यात्मक ग्रन्थ भी उपलब्ध है। अर्धमागधी भाषा में पैंतालीस आगमशास्त्र निबद्ध हैं। गणधरों ने अर्धमागधी भाषा को ही सर्वोत्तम समझकर आगमशास्त्रों का प्रणयन किया है। शतावधानी श्री रत्नचन्द्र जी ने भी अर्ध-मागधीभाषा के सर्वाङ्गपूर्ण व्याकरण की रचना की है। इस भाषा को ऋषिभाषिता भी कहते हैं और आर्ष भी। ऋषियों के वचन-प्रवचन जिस भाषा में संकलित किये गये हैं वह आर्ष मानी जाती है। आचार्य स्वयंभू ने राम-चरित्र अपभ्रंश भाषा में लिखा है, उसका नाम "पउमचरिउ" है।

पैशाची भाषा में व्यंजन अधिकांश वैसे ही बने रहते हैं। 'ण' बदलकर 'न' हो जाता है। प्रायः वर्ग के मध्यम वर्ण प्रथम वर्ण के रूप में बदल जाते हैं। जैसे—राजा का राचा, नगर का नकर, प्रदेश का पतेश, देव का तेव। पिशाचों की भाषा को पैशाची भाषा बोलते हैं। अफगानिस्तान में यह भाषा बहुतायत से मिलती-जुलती है। किन्नौर प्रदेश में भी इस भाषा से मिलती-जुलती भाषा बोली जाती है।

यह बड़े हर्ष की बात है कि प्राकृतभाषा के छात्र जिस सुबोध व्याकरण की चिरकाल से प्रतीक्षा में थे, आज वह उनके कर कमलों को अलंकृत कर रहा है। आचार्य हेमचन्द्रकृत प्राकृत व्याकरण पर संस्कृत भाषा में सरल एवं सुबोध बृहद् वृत्ति है और साथ ही जिस-जिस सूत्र से जो-जो कार्य होता है उस-उस सूत्र का संकेत करके रूपसिद्धि भी की हुई है। इतना ही नहीं, सूत्र और मूलवृत्ति का हिन्दी अनुवाद भी किया हुआ है, तथा साथ ही जिस रूप की सिद्धि की गई है उस का अर्थ भी हिन्दी भाषा में निर्दिष्ट है। इस के दो भाग हैं। पहला और दूसरा। पहले भाग में तीन पाद और दूसरे भाग में केवल चौथा पाद है। दोनों भागों में प्राकृत व्याकरण की इति श्री हो जाती है। यह व्याकरण

विद्यार्थियों के लिए तथा भाषा-शास्त्रियों के लिए अत्युपयोगी है। इस के रचयिता जैन-भूषण साहित्यकार पण्डित-रत्न श्री ज्ञान मुनि जी हैं। पुस्तक का प्रकाशन, कागज, छपाई सब तरह सुन्दर है। युगानुकूल मूल्य भी कोई अधिक नहीं है। पुस्तक पठनीय, रमणीय एवं संग्रहणीय है। इसमें एक उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि शब्द-शास्त्र में जिन शब्दों की रूप-सिद्धि की गई है, उन प्राकृत-शब्दों की प्रकार आदि अनुक्रमणिका भी अंत में पृष्ठाङ्क सहित जोड़ दी है। इस प्रक्रिया ने विषय को और भी सुबोध बना दिया है।

पंजाब-प्रान्तीय उपाध्याय
प्रवर्तक **पण्डित-रत्न श्री फूलचन्द्र जी महाराज** "श्रमण"

५. **"प्राकृत-व्याकरणम्"**

[१]

"प्राकृत-व्याकरणम्" यह अद्‌भुत, सभी तरह से पाई,
व्याख्या है पांडित्य-पूर्ण तो, सुन्दर बड़ी छपाई।

[२]

अखिल विश्व में प्राकृत भी है, जानी-मानी भाषा,
पढ़े इसे प्राकृत पढ़ने को, जिसको हो अभिलाषा।

[३]

जिनको है **"पंजाब-केसरी"**, कहता यह संसार,
पण्डित **ज्ञान मुनीश्वर** इसके, सुलभे व्याख्याकार।

[४]

कर सकता है कोई ही श्रम, **"चन्दन"** इतना भारी।
लेखक मुनि हैं सभी तरह से, साधुवाद अधिकारी।

कविरत्न, प्रख्यातसन्त,
श्रद्धेय **श्री चन्दनमुनि जी महाराज।**

६. **"प्राकृत-व्याकरण"** नामक पुस्तक देखने को मिली, यह ग्रंथ मौलिक ग्रंथ है। जैन-भूषण पंजाब-केसरी **श्री ज्ञान मुनि जी** द्वारा सम्पादित एवं अनुवादित है। प्राकृतभाषा का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिए यह एक बहुत उपयोगी ग्रंथ है। इस ग्रंथ को भाषा बड़ी सरल तथा साहित्यिक भी है। मान्य **श्री ज्ञान मुनि जी** का श्रम इसमें पूर्ण-रूपेण निखरा हुआ है। मान्य **श्री ज्ञान मुनि जी** सुलझे हुए विचारों के धनी एवं जैन-शास्त्रों के ज्ञाता भी हैं। वास्तव में जैसा नाम है—वैसा ही गुण है। इस ग्रन्थ में आपके ज्ञान की गंगा का प्रवाह पूर्ण-रूपेण प्रवाहित हुआ है। आप उदीयमान

संत हैं। आपने जैन समाज को बहुत बड़ा साहित्य प्रदान किया है। आप अपने साहित्यिक क्षेत्र में निरंतर बढ़ते रहें, यही शुभ कामना है।

लघुतपस्वी प्रखरवक्ता,
श्री स्वामी लाभ चन्द्र जी महाराज।

७. जैन-साहित्य का अधिकतर निर्माण प्राकृत भाषा में हुआ है, परन्तु हिन्दी भाषा में व्याख्या-सहित अभी तक कोई अच्छा प्राकृत व्याकरण प्रकाशित नहीं हुआ था। आचार्य हेमचन्द्र जी ने अपने सिद्ध-हैमशब्दानुशासन के आठवें अध्याय के रूप में प्राकृत भाषा का व्याकरण प्रस्तुत किया था, वह भी सर्वसाधारण के लिये बोधगम्य न था, अतः प्राकृत व्याकरण का जैन साहित्य के क्षेत्र में नितान्त अभाव सा प्रतीत हो रहा था, इस अभाव को पूर्ण किया है—प्रातः-स्मरणीय श्रद्धेय **आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज के शिष्य-रत्न पण्डित-प्रवर श्री ज्ञान मुनि जी महाराज** ने संस्कृत एवं हिन्दी-टीका-सहित इस ग्रन्थ को प्रस्तुत करके। लगभग ४२० पृष्ठ के इस महान् ग्रन्थ के द्वारा सामान्य-बुद्धि व्यक्ति भी प्राकृत-भाषा का पूर्णज्ञान प्राप्त कर सकता है। ग्रन्थ के अन्त में दी गई शब्दसूची द्रष्टव्य शब्द को देखने में अत्यन्त सुविधा प्रदान करती है। "**प्राकृत-व्याकरणम्**" पठनीय एवं संग्रहणीय महान् ग्रन्थ है।

श्री तिलक धर जी शास्त्री,
सम्पादक—
आत्मरश्मि, जुलाई १९७५, लुधियाना।

८. ग्रियर्सन जेकोबी आदि पाश्चात्य विद्वानों की तथा अनेक भारतीय विद्वानों की यह धारणा है कि संस्कृत भाषा से भी प्राकृत भाषा अधिक सरल, अधिक लचीली, श्रुति-मधुर और सीखने में सुविधाजनक है। संस्कृत का विद्यार्थी तो बहुत ही आसानी से सीख ही सकता है, किन्तु जो संस्कृत का अभ्यासी नहीं है, वह भी प्राकृत भाषा को संस्कृत की अपेक्षा शीघ्र ग्रहण कर सकता है। प्रश्न होता है कि फिर क्या कारण है कि संस्कृत का जितना प्रचार-प्रसार है, उसे देखते हुए प्राकृत का प्रचार बहुत ही कम है। जबकि प्राकृत, अपभ्रंश और पालि भाषाओं का साहित्य कम नहीं है। इसके अनेक कारणों में एक मुख्य कारण यह भी है कि प्राकृत भाषा के व्याकरण बहुत कम सुलभ हैं। चण्डकृत **प्राकृत लक्षण**, वररुचि कृत **प्राकृत-प्रकाश** दो प्राचीन प्राकृत व्याकरण काफी महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु आचार्य हेमचन्द्र कृत **सिद्ध-हैम-शब्दानुशासन** व्याकरण का आठवां अध्याय जो प्राकृत व्याकरण के नाम से प्रसिद्ध है, वह सर्वाधिक समृद्ध, सरल और बोधगम्य व्याकरण है। प्राकृत के अधिकांश अभ्यासी इसी का अध्ययन करते हैं। यह व्याकरण संस्कृत माध्यम से प्राकृत का ज्ञान कराता है। यद्यपि इसमें उदाहरण आदि बड़े ही बोधगम्य हैं, सूत्र भी छोटे और उच्चारण सुखद हैं।

प्राकृत-व्याकरण का अध्ययन अब तक संस्कृत के माध्यम से ही किया जाता था। इसलिए बिना संस्कृत के प्राकृत का ज्ञान दुर्लभ था। इधर में कुछ प्राकृत-भाषा-विद्वानों ने ऐसा प्रयत्न किया है कि विद्यार्थी अपनी मातृ-भाषा के माध्यम से या हिन्दी के माध्यम से सीधा प्राकृत का ज्ञान प्राप्त कर सकें—प्राकृत प्रचार के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात भी है। इस दिशा में **पं० रत्न श्री ज्ञान**

मुनि जी का यह प्रयत्न अत्यन्त उपकारक सिद्ध होगा। मुनि श्री ने हेमचन्द्राचार्य के अष्टम अध्याय के सूत्र एवं वृत्ति पर प्रथम संस्कृत में बाल-मनोरमा टीका लिखी है। इस संस्कृत टीका की भाषा भी बड़ी सरल और व्याख्या-शैली बोध-गम्य है। संस्कृत विद्यार्थी अध्यापक की सहायता के बिना भी काफी कुछ समझ सकता है। फिर आत्म-गुण-प्रकाशिका हिन्दी-व्याख्या ने तो प्राकृत भाषा का ज्ञान-द्वार ही उन्मुक्त कर दिया है। हिन्दी-विवेचन पढ़ कर और मूल सूत्र कंठस्थ करके विद्यार्थी प्राकृत-ज्ञान प्राप्त कर सकता है। एक प्रकार से प्राकृत को संस्कृत-बंधन से मुक्त कर स्वावलम्बी बना दिया है। प्राकृत भाषा के अध्ययन एवं प्रचार की दृष्टि से यह एक ऐतिहासिक प्रयत्न हुआ है। निश्चित ही व्याख्याकार श्री ज्ञान मुनि जी ने अथक श्रम किया है। उनका दीर्घ-कालीन अध्यवसाय और श्रम प्राकृत प्रचार को प्रोत्साहित करेगा, ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

पुस्तक की छपाई, साफ शुद्ध है। जिल्द एवं प्लास्टिक कवरयुक्त पुस्तक का मूल्य भी उपयुक्त है। संस्कृत एवं प्राकृत विद्यार्थियों तथा पुस्तकालयों के लिए पुस्तक तुरन्त संग्रह करने योग्य है। भारत सरकार के शिक्षा-विभाग को भी इस प्राकृत व्याकरण को राष्ट्र-भाषा-व्याख्या प्रस्तुत करने के कारण प्रोत्साहित और पुरस्कृत करना चाहिए।

श्री चन्द्र जी सुराणा,
'अमर भारती' आगरा
अगस्त १९७५।

१. कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के **'सिद्ध-हैमशब्दानुशासन'** नामक व्याकरण ग्रंथ का यह एक अध्याय है जिसमें प्राकृत-भाषा के व्याकरण-सम्मत नियमोपनियमों का उल्लेख किया गया है। साहित्य-संसार में आज यही एक अध्याय प्राकृत व्याकरण के नाम से प्रसिद्ध है। प्रस्तुत व्याकरण में कुल मिलाकर ६७१ सूत्र हैं, जिनकी संस्कृत तथा हिन्दी व्याख्या श्री ज्ञानमुनि जी ने लिखी है।

आरम्भ में डा० ऐल० ऐम० जोशी तथा प्रोफैसर ए० एन० सिन्हा की संयुक्त प्रस्तावना है, जिसमें उन्होंने विस्तार-पूर्वक विभिन्न प्राकृत-भाषाओं की उत्पत्ति, विकास, महत्ता एवं उत्तर-कालीन देशी भाषाओं पर पारम्परिक प्रभाव का इतिहास दिया है।

आचार्य हेमचन्द्र ने तथा मार्कण्डेय, धनिक आदि ने भी **"प्रकृतिः संस्कृतम्"** के द्वारा यह प्रतिपादित किया है कि संस्कृत ही प्राकृत भाषाओं की प्रकृति है। अर्थात् संस्कृत ही प्राकृत भाषाओं का उद्गम स्रोत है। प्राकृत भाषाओं के विषय में इन दिनों जो वैज्ञानिक अनुसन्धान कार्य हुए हैं, उनको देखते हुए यह प्रस्थापना पुरानी पड़ गई है। संस्कृत के अनुसरण पर व्याकरण बन जाने से और व्याकरण के नियमों में कस जाने से प्राकृत को संस्कृत की प्रकृति मान लिया गया और उसे एक साहित्यिक रूप भी मिल गया। लेकिन वस्तुतः प्राकृत लोक-व्यवहार की प्रवाह-शील भाषा रही है और जनपद की बोलियों में तथा वर्तमान भाषाओं में इसके रूपों का दर्शन किया जा सकता है, इस दृष्टि से विद्वानद्वय की प्रस्तावना बड़ी उपयोगी है।

अन्त में **पाथ-अयासाम्** शीर्षक के अन्तर्गत शब्द-सूची दी गई है, जिनके संस्कृत रूप भी कोष्ठक में सामने दे दिए गए हैं।

इस प्राकृत-व्याकरण के आधार पर प्राकृत भाषा सीखने में विद्यार्थियों को पर्याप्त सुविधा प्राप्त होगी, इसमें सन्देह नहीं।

सम्पादक :—
श्रमण, वाराणसी, अगस्त १९७५।

१०. **श्री ज्ञान मुनि जी म०** स्थानकवासी संतों में अग्रणी हैं। ज्ञान, तप, चारित्र और त्याग की साक्षात् प्रतिमा हैं। मुनि जी ने लगभग २५ ग्रन्थों की रचना की है। इनकी सभी रचनायें इनके ज्ञान तथा पाण्डित्य और त्यागमयी मनोभावनाओं की प्रतीक हैं। हाल ही में आचार्य हेम चन्द्र की रचना **"सिद्ध-हैमशब्दानुशासन"** के आठवें अध्याय के तीन पादों की संस्कृत हिन्दी व्याख्या—'प्राकृत व्याकरणम्' भाग पहला प्रकाशित कर महाराज श्री ने हिन्दी जगत तथा प्राकृत भाषा-प्रेमियों पर महान् उपकार किया है। सरल, सुबोध तथा पठनीय यह टीका हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। आचार्य हेमचन्द्र जी की मूल रचना—हैमशब्दानुशासन (जिसे सिद्ध-हैमशब्दानुशासन भी कहते हैं) आठ अध्यायों में विभक्त है। आरम्भ के सात अध्यायों में संस्कृत भाषा के व्याकरण की विवेचना है और आठवें में प्राकृत व्याकरण की 'तद्भव शब्दों' का अनुशासन तथा प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के विशेषतः ध्वनिग्रामों सम्बन्धी परिवर्तनों का सुव्यवस्थित नियमांकन ही इस अध्याय का लक्ष्य जान पड़ता है।

आचार्य हेमचन्द्र के पूर्व तथा पश्चात् प्राकृत भाषा के व्याकरणचार्यों की लम्बी परम्परा मिलती है। वैसे तो प्रथम व्याकरणों में चण्ड का नाम सबसे पहले लिया जाता है, फिर भी इनसे पहले भी प्राकृत व्याकरण का उल्लेख मिलता है। अपने **'नाट्यशास्त्र'** में भरतमुनि ने—प्राकृत शब्द रचना के कुछ नियमों की चर्चा की है। चण्डकृत **'प्राकृत लक्षण'** में करीब सौ सूत्र हैं, जिन्हें चार पादों में विभक्त किया गया है। पश्चात् वररुचि ने **'प्राकृत प्रकाश'** व्याकरण की रचना की है। बारह परिच्छेदों के इस ग्रन्थ में नौ अध्याय महाराष्ट्र, प्राकृत के शब्दों के रूप-विधानों में व्याख्या के लिए दिए गए हैं। शेष तीन में क्रमशः पैशाची (दसवें), मागधी (ग्यारहवें) और शौरसेनी (बारहवें) प्राकृतों के शब्दों के लक्षणों को निरूपित किया गया है। **'प्राकृत प्रकाश'** पर भामह, कात्यायन, वसन्तराज तथा सदानन्द की उपलब्ध टीकाएं ग्रन्थ की लोकप्रियता प्रकट करती है।

वररुचि के बाद आचार्य हेमचन्द्र ने **'सिद्ध-हैमशब्दानुशासन'** व्याकरण की रचना की। इस रचना के समकक्ष की कोई व्याकरण पुस्तक प्राकृत व्याकरण पर अब तक नहीं लिखी गई। इस से ही इस ग्रन्थ की उपयोगिता तथा महत्ता का प्रभाव मिलता है। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है। मूल ग्रन्थ के आठवें अध्याय में ही प्राकृत व्याकरण की विवेचना है। इस अध्याय के चार पाद हैं। प्राकृत-व्याकरणम् (भाग पहला) में इस अध्याय के प्रथम तीन पादों की अविकल संस्कृत तथा हिन्दी में टीका है, दूसरे भाग में चौथे पाद की टीका मुनि जी ने प्रस्तुत की है, जो मुद्रणाधीन है।

प्रथम भाग के प्रथम पाद में—टीकाकार ने क्रमशः संधि, व्यञ्जनान्त शब्द, लिङ्ग, विसर्ग, अनुस्वार तथा स्वर और व्यंजन-व्यत्यय आदि की टीका संस्कृत—पश्चात् हिन्दी में प्रस्तुत की है। दूसरे पाद में—ध्वनि ग्राम-सम्बन्धी परिवर्तनों की विवेचना-सहित, निपात तथा अव्ययों की विवेचना-स्वरूप टीकायें प्रस्तुत हैं। यह पाद भाषा-विज्ञान के छात्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। तीसरे पाद में कारक, विभक्ति, क्रिया आदि के नियमों-उपनियमों के निर्देशों की टीकाएं हैं। प्रतीत होता है

कि आचार्य हेम चन्द्र ने इस अध्याय की रचना तीन उद्देश्यों—प्राकृत भाषा के स्वरूप, विकास और व्याकरण सम्बन्धी नियमों की व्याख्या के लिए की थी। प्रस्तुत टीका युगानुकूल होने के कारण मूलग्रन्थ से भी अधिक उपयोगी जान पड़ती है।

४६९ पृष्ठों की इस टीका में व्यवहृत शब्दों की तालिका अन्त में देकर इसे अधिक मूल्यवान बना दिया गया है। उत्तम कागज, सुन्दर मुद्रण, आकर्षक मुख पृष्ठ आदि से इस ग्रन्थ की महत्ता में चार चान्द लग गए हैं। **आचार्य श्री आत्माराम जैन मॉडल स्कूल, २६-डी, कमला नगर, दिल्ली-७** ने इसे प्रकाशित किया है।

प्राकृत भाषा की उच्च कक्षा के छात्रों तथा शोधकर्ताओं के लिए प्रस्तुत टीका अत्यन्त उपयोगी है। तुलनात्मक अध्ययनार्थी, भाषाविद्, इतिहासकार आदि सभी इससे लाभ उठायेंगे। प्राकृत भाषा के छात्रों के लिए ग्रन्थ वरदान सिद्ध होगा। **"२५ वीं महावीर निर्वाण शताब्दी"** के उपलक्ष्य में ऐसी महान कृतियों का प्रकाशन हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित होगा तथा सदा स्मरण किया जाएगा।

डा० बृजबिहारी तिवारी,
जागृति (लोक सम्पर्क विभाग, पंजाब सरकार द्वारा प्रकाशित)
चंडीगढ़, नवंबर १९७५।

Our country has the distinguished honour of producing men of great intelligence whose valuable writings have illumined the thousands of persons, in course of time. In academic circles the name of Acharya Shri Hem Chanderji Maharaj is remembered with great respect for his unique composition 'Prakrit Vyakarn' in Prakrit language some 800-years back.

It is a matter of great pride and satisfaction that Shri Shri 1008 Shri Gian Muniji Maharaj after arduous labour for over 20 years has translated this book in Sanskrit and Hindi for the benefit of a large number of students. I am glade to know that the work is being given the shape of a book shortly. I hope, this book will gain popularity in the academic field and more and more scholars will derive benefit of it.

Hans Raj Sharma,
Ex-Minister for Finance, Planning,
Local Govt. & Labour, Punjab,
Chandigarh.

अपनी बात

प्राकृत शब्द का अर्थ—

प्राकृत-व्याकरण इस शब्द में **प्राकृत** और **व्याकरण** ये दो पद हैं। **प्राकृत** शब्द का अर्थ है—एक प्राचीन स्वतंत्र भाषा,जिस का प्रयोग जैन साहित्य में तथा संस्कृत के नाटकों एवं अन्यान्य ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। व्याकरण उस शास्त्र का नाम है जिस के द्वारा भाषा के शब्दों, उनके रूपों और प्रयोगों आदि का ज्ञान उपलब्ध किया जाता है। प्राकृतभाषा का व्याकरण **प्राकृत-व्याकरण** कहलाता है।

प्राकृत शब्द को लेकर अनेकों अर्थ-विचारणाएं उपलब्ध होती हैं। उन में से कुछ एक निवेदन करता हूं :—

१—प्रकृतिः संस्कृतं, तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम् (हेमचन्द्र-कृत प्राकृत-व्याकरण ८।१।१), **२—प्रकृतिः संस्कृतम्, तत्र भवं प्राकृतमुच्यते** (प्राकृतसर्वस्व १।१), **३—प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवत्वात् प्राकृतं स्मृतम्** (प्राकृत-चन्द्रिका), **४—प्राकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृती मता** (षड्भाषा-चन्द्रिका पृष्ठ ४), **५—प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनिः** (वासुदेवकृत कर्पूरमंजरीसंजीवनी-टीका ९।२)।

प्राकृत शब्द की इन सब व्युत्पत्तियों का जब गंभीरता से परिशीलन करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राकृत शब्द प्रकृति शब्द से निष्पन्न हुआ है और प्रकृति का अर्थ है—संस्कृत भाषा। इस अर्थ-विचारणा से यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत भाषा प्राकृत भाषा की जननी है। अर्थात् संस्कृत भाषा से उत्पन्न होने वाली भाषा प्राकृत-भाषा कहलाती है।

प्राकृत शब्द का जो अर्थ ऊपर की पंक्तियों में संसूचित किया गया है। यह अर्थ कोषकारों के मत में प्रामाणिक नहीं माना जाता। क्योंकि प्राकृति शब्द का किसी भी कोषकार ने 'संस्कृत भाषा' यह अर्थ नहीं लिखा है। कोषकार तो प्रकृति शब्द को मुख्यतया स्वभाव अथवा जनसाधारण इस अर्थ का अभिव्यञ्जक स्वीकार करते हैं। इसीलिए प्राकृत शब्द का उनके मत में अर्थ होता है—**प्रकृत्या स्वभावेन सिद्धं प्राकृतम्**। अथवा **प्रकृतीनां साधारण-जनानामिदं प्राकृतम्**। अर्थात्—जो भाषा प्रकृति (स्वभाव) से सिद्ध-निष्पन्न हो वह प्राकृत भाषा कहलाती है। प्राचीन युग में प्राकृत भाषा जन-जीवन की मातृभाषा थी, अतः स्वाभाविक या अकृत्रिम मानी जाती थी। संस्कृतभाषा व्याकरण की संस्कार-रूप कृत्रिमता (बनावटीपन) से परिपूर्ण होने के कारण कृत्रिम या अस्वाभाविक स्वीकार की गई है, किन्तु प्राकृतभाषा की ऐसी स्थिति नहीं थी, जन-जीवन को यह स्वभाव से सम्प्राप्त होती है इसलिए इसे स्वाभाविक कहा गया है। अथवा प्रकृति-जनसाधारण (साधारण-अपठित जन-जीवन) की भाषा प्राकृत भाषा कहलाती है। क्या बालक क्या बालिका, क्या युवक क्या युवती, क्या स्त्री और क्या पुरुष सभी प्राकृतभाषा का उपयोग करते हैं। किसी पाठशाला में शिक्षण प्राप्त किए बिना ही इसे बोलते हैं, अतः इसे जन-साधारण की भाषा कहा गया है। इस प्राकृत भाषा से ही संस्कृत आदि अन्य भाषाओं की उत्पत्ति होती है, इस सत्य को भाषा-तत्त्व के सिद्धान्त भी सहर्ष स्वीकार

करते हैं। कारण स्पष्ट है। अपठित वर्ग या जनसाधारण किसी साहित्यिक भाषा का न तो स्वयं प्रयोग करता है, और नाँहीं उसे समझ सकता है। अतः जनसाधारण के व्यवहार को सम्पन्न करने वाली जो कथ्य भाषा (बोलचाल की भाषा) होती है, वह साहित्य की परिमार्जित भाषा से सर्वथा स्वतंत्र और अलग भाषा होती है। शिक्षित या पठित लोग भी व्यवहार जगत में जनसाधारण से वार्तालाप करते हैं तो वे उसी कथ्य भाषा का ही प्रयोग करते हैं। वेदों के समय में भी ऐसी कथ्य भाषा प्रचलित थी। जिस समय लौकिक संस्कृतभाषा चल रही थी, उस समय भी जनसाधारण में कथ्य भाषा पाई जाती थी। नाटक-जगत इस सत्य का पूर्णतया पोषण करता है। नाटक-शास्त्रों के परिज्ञाता विद्वान जानते ही हैं कि वहां पर संस्कृत भाषा के साथ-साथ कथ्य भाषा बोलने वाले पात्र भी दृष्टिगोचर होते हैं। यह कथ्य भाषा प्राकृत भाषा ही थी। अतः यही माना शास्त्रीय और तर्क-संगत है कि सर्व भाषाओं की जननी प्राकृतभाषा है। प्राकृत-भाषा ने संस्कृत भाषा को जन्म दिया है। आज कल के भाषा-तत्त्वज्ञों ने इसी मान्यता का समर्थन किया है। भारत के प्राचीन भाषा-तत्त्वज्ञों में भी इसी सिद्धान्त को अधिक आदर दिया जाता है। रुद्रटकृत काव्यालंकार में एक श्लोक की व्याख्या में ख्रिस्त की ग्यारहवीं शताब्दी के एक जैन विद्वान मुनिवर श्री नमि लिखते हैं—

"सकल-जगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कारः सहजो वचनव्यापारः प्रकृतिः, तत्र भवं सैव वा प्राकृतम्। 'आरिस-वयणे सिद्धं देवाणं अद्धमागही वाणी' इत्यादिवचनाद् वा प्राक् पूर्वं कृतं प्राक्कृतं बाल-महिलादि-सुबोधं सकलभाषानिबन्धनभूतं वचनमुच्यते, मेघनिर्मुक्त-जलमिवैकस्वरूपं तदेव च देशविशेषात् संस्कार-करणाच्च समासादितविशेषं सत् संस्कृताद्युत्तरविभेदानाप्नोति। अतएव शास्त्र-कृता प्राकृतमादौ निर्दिष्टं तदनु संस्कृतादीनि। पाणिन्यादिव्याकरणोदितशब्दलक्षणेन संस्करणात् संस्कृतमुच्यते। अर्थात्—प्रकृति शब्द का अर्थ है—लोगों का व्याकरण आदि के संस्कारों से रहित स्वाभाविक वचनव्यापार, उस से उत्पन्न अथवा वही वचनव्यापार प्राकृत कहलाता है। अथवा **'प्राक्-कृत'** पद से प्राकृत शब्द बना है। **'प्राक्कृत'** का अर्थ है—पहले किया गया। बारह अङ्गग्रन्थों में ग्यारह अङ्ग ग्रन्थ पहले कथन किए गए हैं और इन अङ्गग्रन्थों की भाषा आर्ष वचन में (सूत्र में) अर्ध-मागधी कही गई है*। यह अर्ध मागधी भाषा बालक तथा महिला आदि को सुबोध (सहजगम्य) है और यह भाषा सकल भाषाओं का मूलस्रोत मानी जाती है। यही अर्ध-मागधी भाषा प्राकृत कही जाती है। यही प्राकृत मेघ से विनिर्मुक्त जल की तरह, पहले एक रूप में होने पर भी, देश-भेद से और संस्कार करने से भिन्नता को प्राप्त करता हुआ संस्कृत आदि अवान्तर विभेदों में परिणत हो गया है। अर्थात्—अर्ध-मागधी प्राकृत भाषा से संस्कृत भाषा तथा अन्यान्य भाषाओं की उत्पत्ति हो पाई है। इसीलिए मूलग्रन्थकार (रुद्रट) ने प्राकृत भाषा का पहले और संस्कृत आदि भाषाओं का बाद में निर्देश किया है। पाणिनि आदि व्याकरणों में बताए हुए नियमों के अनुसार संस्कार पाने के कारण प्राकृतभाषा संस्कृतभाषा कही जाने लगी है।

एक प्रश्न का समाधान—

ऊपर की पंक्तियों में जो बताया गया है, उसका सारांश यही है कि संस्कृतभाषा प्राकृत भाषा

---

*बारहवाँ अङ्ग-ग्रन्थ दृष्टिवाद है, इस में चौदह पूर्व (प्रकरण) थे। यह अङ्ग-ग्रन्थ संस्कृतभाषा में था। यह आजकल उपलब्ध नहीं है।

का मूल (प्रकृति) नहीं है। संस्कृतभाषा को प्राकृतभाषा का उद्गम स्थान कहना व समझना सर्वथा भ्रान्त है, असत्य है। ऐसी स्थिति में एक प्रश्न पैदा होता है कि यदि संस्कृतभाषा प्राकृतभाषा का मूलस्रोत नहीं है तो फिर आचार्य श्री हेमचन्द्र आदि विद्वानों ने **"प्रकृतिः संस्कृतम्"** यह कह कर प्राकृतभाषा की उत्पत्ति संस्कृतभाषा से क्यों स्वीकार की है ? उत्तर में निवेदन है कि **"प्रकृतिः संस्कृतम्"** इन पदों द्वारा संस्कृतभाषा को प्राकृतभाषा की जो उत्पादिका कहा गया है, इस का कारण संस्कृतभाषा को आधार मान कर प्राकृतभाषा के शब्दों की रचना करना ही समझना चाहिये। वस्तु-स्थिति यह है कि प्राकृत-व्याकरण के सभी निर्माताओं ने अपने व्याकरण ग्रन्थों की भाषा संस्कृत रखी है, इसीलिए उन्होंने संस्कृत-शब्दों को आधार मानकर अथवा प्रकृति मानकर प्राकृतभाषा के विधिविधान का निरूपण किया है। ऐसा करने से संस्कृतभाषा की अपेक्षा प्राकृतभाषा में जो-जो विभिन्नताएं उपलब्ध होती हैं वे सुविधापूर्वक समझी जा सकती हैं तथा प्राकृत भाषा का संस्कृत शब्दों के साथ जो-जो साम्य या वैषम्य सम्प्राप्त होता है, वह भी स्पष्टरूपेण अवगत किया जा सकता है। इसी आशय को लेकर आचार्य श्री हेमचन्द्र आदि विद्वानों ने **"प्रकृतिः संस्कृतम्"** इन शब्दों का प्रयोग किया है, न कि इस आशय को लेकर कि प्राकृतभाषा की उत्पत्ति संस्कृतभाषा से होती है।

हेमशब्दानुशासन व्याकरण आठ अध्यायों में विभक्त है। आदि के सात अध्यायों में आचार्य श्री हेमचन्द्र ने संस्कृभाषा के विधि-विधान का निरूपण किया है तथा अन्तिम अष्टमाध्याय में प्राकृत-भाषा की रूपरेखा उपन्यस्त की है। संस्कृत और प्राकृत इन दोनों भाषाओं के विद्यार्थी यह भली भाँति जानते हैं कि इन दोनों भाषाओं के विधिविधानों में अनेकों समानताएं पाई जाती हैं। अतः आचार्य श्री हेमचन्द्र ने सर्वप्रथम सात अध्यायों में संस्कृत-भाषा का वर्णन कर दिया है, तदनन्तर प्राकृत-भाषा-सम्बन्धी जो अन्तर था उसका अष्टमाध्याय में उल्लेख कर दिया है। यदि स्वतंत्र रूप से प्राकृत भाषा के समस्त विधि-विधान का निरूपण किया जाता तो उनको बहुत बड़ा विशाल-काय ग्रन्थ तैयार करना पड़ता। अतः लाघव को ध्यान में रखकर आचार्य श्री हेमचन्द्र ने संस्कृत और प्राकृत इन दोनों भाषाओं में जो पार्थक्य है उस को अपने ढंग से संसूचित कर दिया है। क्योंकि सर्वप्रथम संस्कृत-भाषा का निरूपण किया गया था, तत्पश्चात् प्राकृत भाषा का, परिणाम-स्वरूप आचार्य श्री हेमचन्द्र ने संस्कृतभाषा को प्राकृतभाषा की प्रकृति (मूलस्रोत) स्वीकार कर लिया है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं लेना चाहिये कि संस्कृतभाषा प्राकृतभाषा की जननी है। संभव है, यदि आचार्य श्री हेमचन्द्र पहले सात अध्यायों में प्राकृत-भाषा के विधि-विधान का निर्देश कर देते और तदनन्तर वे संस्कृतभाषा का निर्देश करते तो उस समय वे **"प्रकृतिः संस्कृतम्"** इन पदों का उल्लेख न करके **"प्रकृतिः प्राकृतम्"** ऐसा ही उल्लेख करते।

साम्प्रदायिकता का विष—

इस के अतिरिक्त, कुछ लोग साम्प्रदायिकता-जन्य द्वेष से इतने अधिक द्वेषी बने हुए दृष्टि-गोचर होते हैं कि कुछ कहते नहीं बनता। वे यह कहते भी सकुचाते नहीं हैं कि प्राकृतभाषा तो मूर्खों की भाषा है और संस्कृतभाषा विद्वानों की। वस्तुतः ऐसी ऊलजलूल बातें करने वाले स्वयं मूढ और गंभीरता से शून्य प्रतीत होते हैं। वस्तुतः भाषा कोई भी हो, जब तक वह जन-साधारण

की भाषा रहती है, तब तक उसका व्याकरण के नियमों से आबद्ध या संस्कृत होना आवश्यक नहीं होता। उस समय तो वह कथ्यभाषा अर्थात् बोलचाल की भाषा के रूप में ही प्रचलित रहती है। इसके विपरीत जब वही भाषा व्याकरण के नियमों से परिष्कृत कर दी जाती है। तब उस का रूप कुछ और ही हो जाता है। यह नियम सभी भाषाओं पर लागू होता है। संस्कृतभाषा जब जनसाधारण की कथ्य भाषा रही है तो उस समय उसका रूप भी व्याकरण के नियमों से परिमार्जित संस्कृतभाषा से सर्वथा पृथक् था। संस्कृतभाषा का लौकिक और अलौकिक (वैदिक संस्कृत) यह द्विविध रूप भी इसी तथ्य को परिपुष्ट कर रहा है। अतः किसी भाषा को मूर्खों की भाषा कहना और किसी भाषा को विद्वानों की भाषा बतलाना सर्वथा असंगत है, और अपनी बुद्धिहीनता को अभिव्यक्त करना है। सभी भाषाएं अपने-अपने युग में सम्मानित रही हैं, और सभी भाषाओं ने जनजीवन के निर्माण, उत्थान एवं अभ्युत्थान के लिए कुछ-न-कुछ सामग्री मानव समाज को अवश्य प्रदान की है। अतः अपेक्षाकृत सभी भाषाएं आदरास्पद हैं।

प्राकृतव्याकरण का द्वितीय खण्ड—

आचार्य श्री हेमचन्द्र द्वारा विनिर्मित हैमशब्दानुशासन नामक व्याकरण आठ अध्यायों में विभक्त है। पहले सात अध्यायों में संस्कृतभाषा के विधिविधान का निरूपण कर रखा है और आठवें अध्याय में प्राकृतभाषा का। हैमशब्दानुशासन के आठवें अध्याय को ही प्राकृत-व्याकरण के नाम से पुकारा जाता है। प्राकृत-व्याकरण में चार अध्याय हैं। इन चार अध्यायों को हमने दो खण्डों में विभक्त किया है। प्रथम खण्ड में आदि के तीन पादों का व्याख्यान किया गया है। द्वितीय खण्ड में केवल चतुर्थ पाद का विवेचन है। प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राकृत-व्याकरण का द्वितीय खण्ड ही उपन्यस्त किया गया है। इस खण्ड में दो टीकाएं प्रस्तुत की गई हैं। एक संस्कृतभाषा में है, दूसरी हिन्दीभाषा में। संस्कृत-टीका का नाम बालमनोरमा रखा गया है जबकि हिन्दी-टीका नाम आत्म-गुण-प्रकाशिका है। संस्कृत-टीका में प्राकृतभाषा के शब्दों की साधनिका प्रस्तुत की गई है। जैसे—**धर्मः** यह शब्द संस्कृत-भाषा का है, इस शब्द का प्राकृत-भाषा में **धम्मो** यह रूप बनता है। प्राकृत-व्याकरण के किस-किस सूत्र द्वारा **धम्मो** इस रूप की निष्पत्ति होती है? इसे किस तरह बनाया जाता है? यह सब कुछ संस्कृत-टीका में प्रदर्शित किया गया है। मूलसूत्र तथा मूलसूत्र के कठिन स्थलों का एवं सूत्रोक्त शब्दों का भावार्थ हिन्दी-टीका में लिखा गया है।

प्राकृत-व्याकरण सटीक श्रमण भगवान महावीर की २५ वीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य में प्रकाशित किया गया है। इसका प्रथम खण्ड दो वर्ष हुए पाठकों की सेवा में समर्पित किया जा चुका है। प्राकृत भाषा के प्रचारक, प्रसारक एवं मनीषी विद्वानों ने इस प्रकाशन को कितना आदर एवं सम्मान प्रदान किया है, तथा मासिक पत्रिकाओं में समालोचक महानुभावों ने इस के सम्बन्ध में क्या-क्या अभिप्राय प्रदर्शित किया है? उसका प्रस्तुत ग्रन्थ में ही अन्यत्र "**पूज्य मुनिराजों तथा विद्वानों की दृष्टि में, प्राकृत-व्याकरण** (प्रथम खण्ड)" इस शीर्षक द्वारा उल्लेख किया जा रहा है।

प्राकृत-व्याकरण की टीका लिखने का क्या कारण रहा है? इस सम्बन्ध में प्रथम खण्ड में निवेदन किया जा चुका है। प्राकृत-व्याकरण का द्वितीय खण्ड शीघ्रातिशीघ्र पाठकों के करकमलों में पहुंचा दिया जाए? यह प्रबल भावना थी, किन्तु इस भावना को शीघ्र जो साकार रूप नहीं दिया जा सका, इसका सर्वाधिक कारण प्रैस वालों की व्यस्तता की अधिकता ही मानता हूं। जिस प्रैस में

प्राकृत-व्याकरण का मुद्रण हो रहा है, बहुत बड़ा प्रेस होने पर भी उस में इतनी अधिक व्यस्तता दृष्टिगोचर होती है कि इस समय भी द्वितीय खण्ड का प्रकाशित होना कठिन प्रतीत हो रहा था। तथापि यह सब कुछ जो हो गया है, यह भी प्रेस के मालिक श्री ऐस० ऐल० भाटिया जी का ही औदार्य्य समझता हूं।

कृतज्ञता-प्रदर्शन—

प्राकृत-व्याकरण की संस्कृत-टीका तथा हिन्दी-टीका लिखने में मूलरूप में सर्वाधिक श्रेय तो मेरे जीवन के निर्माता, हृदय-सम्राट्, जैनधर्मदिवाकर पूज्यपाद, वन्दनीय आचार्यसम्राट् **गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज** को ही दिया जा सकता है। क्योंकि उन्हीं के आदेश तथा मङ्गलमय आशीर्वाद से ही प्राकृत-व्याकरण का यह विशाल विवेचन लिखा जा सका है। मैं यह पूज्य गुरुदेव का ही पुण्य प्रताप मानता हूं कि **"श्रेयांसि बहुविघ्नानि"** के सिद्धान्त के प्रभाव से मैं सर्वथा अछूता रहा। अतः सर्वप्रथम मैं जैनागमों के अद्वितीय विद्वान, चारित्रचूडामणि पूज्य गुरुदेव का हृदय से आभारी हूं। तदनन्तर अपने बड़े गुरुभाई श्रद्धेय **पण्डित श्री हेमचन्द्र जी महाराज** का भी आभारी हूं, जिनके समय-समय पर दिए गए सहयोग के कारण मैं बालमनोरमा संस्कृत-टीका को परिमार्जित एवं परिवर्धित करने में सफल हो पाया हूं।

प्राकृत-व्याकरण के चारों पादों के आरम्भ में तथा अन्त में जितने भी श्लोक दिए गए हैं, उन में से कुछ एक श्लोकों को छोड़कर शेष समस्त श्लोक मेरे स्नेही मुनि **आदरणीय पण्डित श्री राम प्रसाद जी** के लिखे हुए हैं। मुनि श्री व्याख्यानवाचस्पति **श्रद्धेय श्री स्वामी मदन लाल जी महाराज** के शिष्य-रत्न हैं। मैं इनको अपने छोटे भाई की भांति मानता हूं। संस्कृत-भाषा तथा आगमग्रन्थों की इनको इतनी अधिक जानकारी है कि कुछ कहते नहीं बनता। ये एक सुलझे हुए विद्वान एवं विचारक सन्त हैं। मैं अपने छोटे भाई के इस सहयोग का भी धन्यवादी हूं।

प्राकृत-व्याकरण के प्रथम खण्ड पर आचार्य-प्रवर **पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज**, पण्डित-प्रवर **श्री हेमचन्द्र जी महाराज**, उपाध्याय कविरत्न **श्री अमर मुनि जी महाराज**, उपाध्याय **पण्डित श्री फूलचन्द्र जी महाराज** श्रमण आदि पूज्य मुनिराजों तथा अन्य विद्वानों ने अपने अभिमत प्रेषित करके मुझे जो प्रोत्साहित किया है, उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं, आभारी हूं। प्राकृत-व्याकरण के प्रकाशन की सब व्यवस्था हमारे प्रिय श्रावक **श्री सुखदेवराज जी जैन** मोहरों वाले, अम्बाला शहर वाले कर रहे हैं। इन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अपनी सभी शक्तियों का प्रयोग किया है, वह भी निष्काम भावना से। यदि संक्षेप में अपनी बात कह दूं तो—श्री सुखदेवराज जी का भक्तिपूर्ण मधुर सहयोग ही प्राकृत-व्याकरण की रचना को साकार रूप प्रदान कर सका है। प्राकृत-व्याकरण के प्रकाशन के निमित्त जिन दानी सज्जनों एवं उदार बहिनों ने सहयोग दिया है, उनका भी धन्यवादी हूं। मेरी लिखी पंक्तियों को प्रेस के माध्यम से पाठकों तक पहुंचाने का मूल आधार तो दानी सज्जनों का सहयोग ही मानता हूं। मैं इन उदार महानुभावों का भी धन्यवादी हूं। प्रकाशक संस्था की ओर से भी इन दानी सज्जनों का नाम-निर्देश-पूर्वक धन्यवाद इसी ग्रन्थ में अन्यत्र किया जा रहा है।

प्राकृत-व्याकरण के द्वितीय खण्ड के अन्त में परिशिष्ट के रूप में प्राकृत-भाषा का जो धातु-पाठ दिया गया है, यह भावनगर से प्रकाशित प्राकृत-व्याकरण (अष्टमाध्याय-सूत्रपाठ) से साभार

उद्धृत किया गया है। मैं इस ग्रन्थ की प्रकाशिका संस्था का भी धन्यवादी हूं। धातुपाठ के अनन्तर प्राकृत-व्याकरण की सूत्रसूची भी दी गई है। इस सूत्रसूची को तैयार करने में **आचार्य श्री आत्माराम जैन मिडिल स्कूल, खन्ना** (लुधियाना) की मुख्य अध्यापिका बहिन **रमादेवी शर्मा** तथा अध्यापिका **कुमारी दर्शना देवी** का सर्वाधिक परिश्रम रहा है। कुमारी दर्शना ने तो इस सूत्रसूची के तैयार करने में अपने अन्य आवश्यक कार्यों की ओर भी कोई ध्यान नहीं दिया। मेरी "प्राकृत-व्याकरण की अकारादिक्रम से सूत्रसूची अवश्य तैयार होनी चाहिए" इस कामना को मूर्तरूप देने में इस देवी-युगल ने सहयोग देकर जो स्नेहातिरेक दिखलाया है, उसके लिए हृदय से धन्यवादी हूं।

विनीत प्रार्थना—

इस सत्य से मुझे इनकार नहीं है कि मैं कोई विद्वान या लेखक नहीं हूं। तथापि जो कुछ लिखा गया है, वह प्राकृत-भाषा के विद्यार्थी का एक साधारण अभ्यास या प्रयास ही समझना चाहिए। अत: **"गच्छतः स्खलनं क्वाऽपि"** के अनुसार स्खलना का हो जाना स्वाभाविक ही है। इसलिए पाठकों से सप्रेम एवं साग्रह प्रार्थना करूंगा कि जहां पर भी उन्हें कोई स्खलना दृष्टिगोचर हो, उसका सुधार करलें और उसकी सूचना इस सेवक को देने की उदारता अवश्य करें ताकि अग्रिम संस्करण में उस स्खलना का परिहार किया जा सके। धन्यवाद।

जैनस्थानक, पटियाला
19-2-1977

प्रार्थी—
ज्ञानमुनि

कहां क्या है ?

अथ धात्वादेशविधिः (क)	१
अथ धात्वादेशविधिः (ख)	२४
अथ धात्वादेशविधिः (ग)	५१
अथ कर्मभाव (भावकर्म) प्रकरणम्	७४
अथ निपात-प्रकरणम्	८२
अथ धातूनामनेकार्थता	८४
अथ शौरसेनी-भाषाप्रकरणम्	८८
अथ मागधी-भाषाप्रकरणम्	१०५
अथ पैशाची-भाषाप्रकरणम्	१२७
अथ चूलिका-पैशाची-भाषाप्रकरणम्	१४०
अथ अपभ्रंशभाषा-प्रकरणम् (अथ स्वरविधिः)	१४७
अथ पुल्लिङ्गीय-स्यादिविधिः	१५५
अथ स्त्रीलिङ्गीय-स्यादिविधिः	१७६
अथ नपुंसकलिङ्गीय-स्यादिविधिः	१८६
अथ सर्वादिशब्दानां विधिः	१९२
अथ स्यादि-विधिः	२३१
अथ धात्वादेशविधिः	२४५
अथ कतिपयशब्दानां गाद्यादेशविधिः	२५८
अथ कथमादि-शब्दसम्बन्धी आदेशविधिः	२६९
अथ निपातशब्दविधिः	३३५
अथ प्रत्ययविधिः	३३८
अथ इवार्थादेशविधिः	३६९
अथ लिङ्गप्रकरणम्	३७४
अथ शौरसेनी-भाषा-समानविधिः	३७८
अथ [illegible]	३८०
अथ संस्कृत-भाषा-समानविधिः	३८२
अथ ग्रन्थकृत्-प्रशस्तिः	३८७
गुर्वावली-विषये किञ्चिदैतिह्यम्	३९२
प्राकृत-धातूनामनुक्रमणिका	३९४
अकारादिक्रमेण प्राकृत-व्याकरणस्य सूत्रसूची	४००
प्राकृतव्याकरणस्य चतुर्थपादस्य शब्दसूची	४११

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठ ७४ पर "**अथ कर्मभावप्रकरणम्**" के स्थान पर "**अथ भावकर्मप्रकरणम्**" ऐसा होना चाहिए।

पृष्ठ १८३ पर **तुच्छकम्** (तुच्छउं) इस शब्द की प्रक्रिया में १०२५ सूत्र से अकार को उं यह आदेश होता है, १०८२ सूत्र से उच्चारण लाघव करके १०१५ सूत्र से सिप्रत्यय का लोप होता है। ऐसा समझना चाहिए।

❋ चतुर्थः पादः ❋

❋ अर्हम् ❋

★ धात्वादेश-विधिः [क] ★

६७२—इदितो वा । ८ । ४ । १ । सूत्रे ये इदितो धातवो वक्ष्यन्ते तेषां ये आदेशास्ते विकल्पेन भवन्तीति वेदितव्यम् । तत्रैव चोदाहरिष्यते ।

६७३—कथेर्वज्जर-पज्जरोप्पाल-पिसुण-संघ-बोल्ल-चव-जम्प-सीस-साहाः । ८ । ४ । २ । कथेर्धातोर्वज्जरादयो दशादेशा वा भवन्ति । वज्जरइ, पज्जरइ, उप्पालइ, पिसुणइ, संघइ, बोल्लइ, चवइ, जम्पइ, सीसइ, साहइ । उब्बुक्कइ इति तूत्पूर्वस्य बुक्क भाषणे इत्यस्य । पक्षे । कहइ । एते चान्यैर्देशीषु पठिता अपि अस्माभिर्धात्वादेशीकृता विविधेषु प्रत्ययेषु प्रतिष्ठन्तामिति । तथा च वज्जरिओ, कथितः । वज्जरिऊण, कथयित्वा । वज्जरणं, कथनम् । वज्जरन्तो, कथयन् । वज्जरिअव्वं, कथयितव्यमिति रूपसहस्राणि सिध्यन्ति । संस्कृतधातुवच्च प्रत्यय-लोपागमादिविधिः ।

६७४—दुःखे णिव्वरः । ८ । ४ । ३ । दुःखविषयस्य कथेर्णिव्वर इत्यादेशो वा भवति । णिव्वरइ । दुःखं कथयतीत्यर्थः ।

६७५—जुगुप्सेर्झुण-दुगुच्छ-दुगुञ्छाः । ८ । ४ । ४ । जुगुप्सेरेते त्रय आदेशा वा भवन्ति । झुणइ, दुगुच्छइ, दुगुञ्छइ । पक्षे । जुगुच्छइ । गलोपे । दुउच्छइ, दुउञ्छइ, जुउच्छइ ।

६७६—बुभुक्षि-वीज्योर्णीरव-वोज्जौ । ८ । ४ । ५ । बुभुक्षेराचारक्विबन्तस्य च वीजेर्यथासंख्यमेतावादेशौ वा भवतः । णीरवइ, बुहुक्खइ । वोज्जइ, वीजइ ।

६७७—ध्या-गोर्झा-गौ । ८ । ४ । ६ । अनयोर्यथासंख्यं झा, गा इत्यादेशौ भवतः । झाइ, झाअइ । णिज्झाअइ । निपूर्वो दर्शनार्थः । गाइ, गायइ । झाणं । गाणं ।

६७८—ज्ञो जाण-मुणौ । ८ । ४ । ७ । जानातेर्जाण, मुण इत्यादेशौ भवतः । जाणइ, मुणइ । बहुलाधिकारात् क्वचिद् विकल्पः । जाणिअं, णायं । जाणिऊण, णाऊण । जाणणं, णाणं । मणइ इति तु मन्यतेः ।

६७९—उदो ध्मो धुमा । ८ । ४ । ८ । उदः परस्य ध्मो धातोर्धुमा इत्यादेशो भवति । उद्धुमाइ ।

६८०—श्रदो धो दहः । ८ । ३ । ९ । श्रदः परस्य दधातेर्दह इत्यादेशो भवति । सद्दहइ । सद्दहमाणो जीवो ।

६८१—पिबे: पिज्ज-डल्ल-पट्ट-घोट्टाः । ८ । ४ । १० । पिबतेरेते चत्वार आदेशा वा भवन्ति । पिज्जइ, डल्लइ, पट्टइ, घोट्टइ, पिअइ ।

६८२—उद्वातेरोरुम्मा वसुआ । ८ । ४ । ११ । उत्पूर्वस्य वातेः ओरुम्मा, वसुआ इत्येतावादेशौ वा भवतः । ओरुम्माइ, वसुआइ, उव्वाइ ।

६८३—निद्रातेरोहीरोङ्घौ । ८ । ४ । १२ । निपूर्वस्य द्रातेः ओहीर, उङ्घ इत्यादेशौ वा भवतः । ओहीरइ, उङ्घइ, निद्दाइ ।

६८४—आघ्रेराइग्घः । ८ । ४ । १३ । आजिघ्रतेराइग्घ इत्यादेशो वा भवति । आइग्घइ, अग्घाइ ।

६८५—स्नातेरब्भुत्तः । ८ । ४ । १४ । स्नातेरब्भुत्त इत्यादेशो वा भवति । अब्भुत्तइ, ण्हाइ ।

६८६—समः स्त्यः खाः । ८ । ४ । १५ । संपूर्वस्य स्त्यायतेः खा इत्यादेशो भवति । संखाइ, संखायं ।

६८७—स्थष्ठा-थक्क-चिट्ठ-निरप्पाः । ८ । ४ । १६ । तिष्ठतेरेते चत्वार आदेशा भवन्ति । ठाइ, ठाअइ । ठाणं । पट्ठिओ । उट्ठिओ । पट्ठाविओ । उट्ठाविओ । थक्कइ । चिट्ठइ, चिट्ठिऊण । निरप्पइ । बहुलाधिकारात् क्वचिन्न भवति । थिअं । थाणं । पत्थिओ । उत्थिओ । थाऊण ।

६८८—उदष्ठ-कुक्कुरौ । ८ । ४ । १७ । उदः परस्य तिष्ठतेः ठ, कुक्कुर इत्यादेशौ भवतः । उट्ठइ, उक्कुक्कुरइ ।

६८९—म्लेर्वा-पव्वायौ । ८ । ४ । १८ । म्लायतेर्वा, पव्वाय इत्यादेशौ वा भवतः । वाइ, पव्वायइ, मिलाइ ।

६९०—निर्मो निम्माण-निम्मवौ । ८ । ४ । १९ । निपूर्वस्य मिमीतेरेतावादेशौ भवतः । निम्माणइ, निम्मवइ ।

६९१—क्षेर्णिज्झरो वा । ८ । ४ । २० । क्षयतेर्णिज्झर इत्यादेशो वा भवति । णिज्झरइ । पक्षे झिज्जइ ।

६९२—छदेर्णेर्णुम-नूम-सन्नुम-ढक्कौम्वाल-पव्वालाः । ८ । ४ । २१ । छदेर्ण्यन्तस्य एते षडादेशा वा भवन्ति । णुमइ, नूमइ, णत्वे णूमइ, सन्नुमइ, ढक्कइ, ओम्बालइ, पव्वालइ, छायइ ।

६९३—निवृग्पत्योर्णिहोडः । ८ । ४ । २२ । निवृगः पतेश्च ण्यन्तस्य णिहोड इत्यादेशो वा भवति । णिहोडइ । पक्षे । निवारेइ । पाडेइ ।

६९४—दूङो दूमः । ८ । ४ । २३ । दूङो ण्यन्तस्य दूम इत्यादेशो भवति । दूमेइ मज्झ हिअयं ।

६९५—धवलेर्दुमः । ८ । ४ । २४ । धवलयतेर्ण्यन्तस्य दुमादेशो वा भवति । दुमइ, धवलइ । स्वराणां स्वराः (बहुलम्)[४.२३८]इति दीर्घत्वमपि । दूमिअं । धवलितमित्यर्थः ।

६९६—तुलेरोहामः । ८ । ४ । २५ । तुलेर्ण्यन्तस्य ओहाम इत्यादेशो वा भवति । ओहामइ, तुलइ ।

६९७—विरिचेरोलुण्डोल्लुण्ड-पल्हत्थाः । ८ । ४ । २६ । विरेचयतेर्ण्यन्तस्य ओलुण्डादयस्त्रय आदेशा वा भवन्ति । ओलुण्डइ, उल्लुण्डइ, पल्हत्थइ, विरेअइ ।

६९८—तडेराहोड-विहोडौ । ८ । ४ । २७ । तडेर्ण्यन्तस्य एतावादेशौ वा भवतः । आहोडइ, विहोडइ । पक्षे । ताडेइ ।

६९९—मिश्रेर्वीसाल-मेलवौ । ८ । ४ । २८ । मिश्रयतेर्ण्यन्तस्य वीसाल,मेलव इत्यादेशौ वा भवतः । वीसालइ, मेलवइ, मिस्सइ ।

७००—उद्धूलेर्गुण्ठः । ८ । ४ । २९ । उद्धूलेर्ण्यन्तस्य गुण्ठ इत्यादेशो वा भवति । गुण्ठइ । पक्षे । उद्धूलेइ ।

७०१—भ्रमेस्तालिअण्ट-तमाडौ । ८ । ४ । ३० । भ्रमयतेर्ण्यन्तस्य तालिअण्ट, तमाड इत्यादेशौ वा भवतः । तालिअण्टइ, तमाडइ, भामेइ, भमाडेइ, भमावेइ ।

७०२—नशेर्विउड-नासव-हारव-विप्पगाल-पलावाः । ८ । ४ । ३१ । नशेर्ण्यन्तस्य एते पञ्चादेशा वा भवन्ति । विउडइ, नासवइ, हारवइ, विप्पगालइ, पलावइ । पक्षे, नासइ ।

७०३—दृशेर्दाव-दंस-दक्खवाः । ८ । ४ । ३२ । दृशेर्ण्यन्तस्य एते त्रय आदेशा वा भवन्ति । दावइ, दंसइ, दक्खवइ, दरिसइ ।

७०४—उद्घटेरुग्गः । ८ । ४ । ३३ । उत्पूर्वस्य घटेर्ण्यन्तस्य उग्ग इत्यादेशो वा भवति । उग्गइ, उग्घाडइ ।

७०५—स्पृहः सिहः । ८ । ४ । ३४ । स्पृहो ण्यन्तस्य सिह इत्यादेशो भवति । सिहइ ।

७०६—संभावेरासङ्घः ८ । ४ । ३५ । संभावयतेरासङ्घ इत्यादेशो वा भवति । आसङ्घइ, संभावइ ।

७०७—उन्नमेरुत्थंघोल्लाल-गुलुगुञ्छोप्पेलाः । ८ । ४ । ३६ । उत्पूर्वस्य नमेर्ण्यन्तस्य

एते चत्वार आदेशा वा भवन्ति । उत्थङ्घइ, उल्लालइ, गुलुगुञ्छइ, उप्पेलइ, उन्नामइ ।

७०८—**प्रस्थापेः पट्ठव-पेण्डवौ** । ८ । ४ । ३७ । प्रपूर्वस्य तिष्ठतेर्ण्यन्तस्य पट्ठव पेण्डव इत्यादेशौ वा भवतः । पट्ठवइ, पेण्डवइ, पट्ठावइ ।

७०९—**विज्ञपेर्वोक्कावुक्कौ** । ८ । ४ । ३८ । विपूर्वस्य जानातेर्ण्यन्तस्य वोक्क,अवुक्क इत्यादेशौ वा भवतः । वोक्कइ, अवुक्कइ, विण्णवइ ।

७१०—**अर्पेरल्लिव-चच्चुप्प-पणामाः** । ८ । ४ । ३९ । अर्पेर्ण्यन्तस्य एते त्रय आदेशा वा भवन्ति । अल्लिवइ चच्चुप्पइ पणामइ । पक्षे अप्पेइ ।

७११—**यापेर्जवः** । ८ । ४ । ४० । यातेर्ण्यन्तस्य जव इत्यादेशो वा भवति । जवइ, जावेइ ।

७१२—**प्लावेरोम्वाल-पव्वालौ** । ८ । ४ । ४१ । प्लवतेर्ण्यन्तस्य एतावादेशौ वा भवतः । ओम्वालइ, पव्वालइ, पावेइ ।

७१३—**विकोशेः पक्खोडः** । ८ । ४ । ४२ । विकोशयतेर्नामधातोर्ण्यन्तस्य पक्खोड इत्यादेशो वा भवति । पक्खोडइ, विकोसइ ।

७१४—**रोमन्थेरोग्गाल-वग्गोलौ** । ८ । ४ । ४३ । रोमन्थेर्नामधातोर्ण्यन्तस्य एतावादेशौ वा भवतः । ओग्गालइ, वग्गोलइ, रोमन्थइ ।

७१५—**कमेर्णिहुवः** । ८ । ४ । ४४ । कमेः स्वार्थण्यन्तस्य णिहुव इत्यादेशो वा भवति । णिहुवइ, कामेइ ।

७१६—**प्रकाशेर्णुव्वः** । ८ । ४ । ४५ । प्रकाशेर्ण्यन्तस्य णुव्व इत्यादेशो वा भवति । णुव्वइ, पयासेइ ।

७१७—**कम्पेर्विच्छोलः** । ८ । ४ । ४६ । कम्पेर्ण्यन्तस्य विच्छोल इत्यादेशो वा भवति । विच्छोलइ, कम्पेइ ।

७१८—**आरोपेर्वलः** । ८ । ४ । ४७ । आरुहेर्ण्यन्तस्य वल इत्यादेशो वा भवति । वलइ, आरोवेइ ।

७१९—**दोले रङ्खोलः** । ८ । ४ । ४८ । दुलेः स्वार्थे ण्यन्तस्य रङ्खोल इत्यादेशो वा भवति । रङ्खोलइ, दोलइ ।

७२०—**रञ्जे रावः** । ८ । ४ । ४९ । रञ्जेर्ण्यन्तस्य राव इत्यदेशो वा भवति । रावेइ, रञ्जेइ ।

७२१—**घटेः परिवाडः** । ८ । ४ । ५० । घटेर्ण्यन्तस्य परिवाड इत्यादेशो वा भवति ।

परिवाडेइ, घडेइ ।

७२२—वेष्टेः परिआलः । ८ । ४ । ५१ । वेष्टेर्ण्यन्तस्य परिआल इत्यादेशो वा भवति । परिआलेइ, वेढेइ ।

७२३—क्रियः किणो वेस्तु क्के च । ८ । ४ । ५२ । णेरिति निवृत्तम् । क्रीणातेः किण इत्यादेशो भवति । वेः परस्य तु द्विरुक्तः केः, चकारात् किणश्च भवति । किणइ, विक्केइ, विकिणइ ।

७२४—भियो भा-बीहौ । ८ । ४ । ५३ । बिभेतेरेतावादेशौ भवतः । भाइ । भाइअं । बीहइ । बीहिअं । बहुलाधिकारात्, भीओ ।

७२५—आलीङोऽल्ली । ८ । ४ । ५४ । आलीयतेः अल्ली इत्यादेशो भवति । अल्लीअइ, अल्लीणो ।

७२६—निलीङे र्णिलीअ-णिलुक्क-णिरिग्घ-लुक्क-लिक्क-ल्हिक्काः । ८ । ४ । ५५ । निलीङः एते षडादेशा वा भवन्ति । णिलीअइ, णिलुक्कइ, णिरिग्घइ, लुक्कइ, लिक्कइ, ल्हिक्कइ, निलिज्जइ ।

७२७—विलीङेर्विरा । ८ । ४ । ५६ । विलीङेर्विरा इत्यादेशो वा भवति । विराइ, विलिज्जइ ।

७२८—रुते रुञ्ज-रुण्टौ । ८ । ४ । ५७ । रौतेरेतावादेशौ वा भवतः । रुञ्जइ, रुण्टइ, रवइ ।

७२९—श्रुटेर्हणः । ८ । ४ । ५८ । शृणोतेर्हण इत्यादेशो वा भवति । हणइ, सुणइ ।

७३०—धूगेर्धुवः । ८ । ४ । ५९ । धुनातेर्धुव इत्यादेशो वा भवति । धुवइ, धुणइ ।

७३१—भुवेर्हो-हुव-हवाः । ८ । ४ । ६० । भुवो धातोर्हो, हुव, हव इत्येते आदेशा वा भवन्ति । होइ । होन्ति । हवइ । हुवन्ति । पक्षे, भवइ । परिहीण-विहवो । भविउं । पभवइ । परिभवइ । संभवइ । क्वचिदन्यदपि, उब्भुअइ । भत्तं ।

७३२—अविति हुः । ८ । ४ । ६१ । विद्वर्जे प्रत्यये भुवो हु इत्यादेशो वा भवति । हुन्ति । भवन् । हुन्तो । अवितीति किम् ? होइ ।

७३३—पृथक्-स्पष्टे णिव्वडः । ८ । ४ । ६२ । पृथग्भूते स्पष्टे च कर्तरि भुवो णिव्वड इत्यादेशो भवति । णिव्वडइ । पृथक् स्पष्टो वा भवतीत्यर्थः ।

७३४—प्रभौ हुप्पो वा । ८ । ४ । ६३ । प्रभुकर्तृकस्य भुवो हुप्प इत्यादेशो वा भवति । प्रभुत्वं च प्रपूर्वस्यैवार्थः । अङ्गे च्चिअ न पहुप्पइ । पक्षे, पभवेइ ।

७३५—**क्ते हूः** ।८।४।६४। भुवः क्तप्रत्यये हू इत्यादेशो भवति । हूअं । अणुहूअं । पहूअं ।

७३६—**कृगेः कुणः** । ८ । ४ । ६५ । कृगः कुण इत्यादेशो वा भवति । कुणइ, करइ ।

७३७—**काणेक्षिते णिआरः** । ८ । ४ । ६६ । काणेक्षित-विषयस्य कृगो णिआर इत्यादेशो वा भवति । णिआरइ, काणेक्षितं करोति ।

७३८—**निष्टम्भावष्टम्भे णिट्ठुह-संदाणं** । ८ । ४ । ६७ । निष्टम्भविषयस्यावष्टम्भविषयस्य च कृगो यथासंख्यं णिट्ठुह, संदाण इत्यादेशौ वा भवतः । णिट्ठुहइ, निष्टम्भं करोति । संदाणइ, अवष्टम्भं करोति ।

७३९—**श्रमे वावम्फः** । ८ । ४ । ६८ । श्रमविषयस्य कृगो वावम्फ इत्यादेशो वा भवति । वावम्फइ, श्रमं करोति ।

७४०—**मन्युनौष्ठमालिन्ये णिव्वोलः** । ८ । ४ । ६९ । मन्युना करणेन यदोष्ठमालिन्यं तद्विषयस्य कृगो णिव्वोल इत्यादेशो वा भवति । णिव्वोलइ, मन्युना ओष्ठं मलिनं करोति ।

७४१—**शैथिल्य-लम्बने पयल्लः** । ८ । ४ । ७० । शैथिल्यविषयस्य लम्बनविषयस्य च कृगः पयल्ल इत्यादेशो वा भवति । पयल्लइ शिथिली भवति लम्बते वा ।

७४२—**निष्पाताच्छोटे णीलुञ्छः** । ८ । ४ । ७१ । निष्पतनविषयस्य आच्छोटनविषयस्य च कृगो णीलुञ्छ इत्यादेशो वा भवति । णीलुञ्छइ, निष्पतति, आच्छोटयति वा ।

७४३—**क्षुरे कम्मः** ।८।४।७२। क्षुरविषयस्य कृगः कम्म इत्यादेशो वा भवति । कम्मइ । क्षुरं करोतीत्यर्थः ।

७४४—**चाटौ गुललः** । ८ । ४ । ७३ । चाटुविषयस्य कृगो गुलल इत्यादेशो वा भवति । गुललइ, चाटु करोतीत्यर्थः ।

७४५—**स्मरेर्झर-झूर-भर-भल-लढ-विम्हर-सुमर-पयर-पम्हुहाः** । ८ । ४ । ७४ । स्मरेरेते नवादेशा वा भवन्ति । झरइ, झूरइ, भरइ, भलइ, लढइ, विम्हरइ, सुमरइ, पयरइ, पम्हुहइ, सरइ ।

❋ अथ चतुर्थः पादः ❋

*अज्ञान-हन्ता भवतारकश्च, यः कृत्स्न-कर्म-क्षय-कारकश्च ।

---

*अज्ञान-नाशकः, भवात्-चतुर्गतिरूप-संसारात् समुत्तारकः, तथा च यः कृत्स्नकर्मणामशेषकर्मणां क्षयकर्ता च, निर्वाण-प्राप्तोऽपि समस्तः परस्तात् ननु दीपवत् निर्वाणं गतस्तमसा परिवारयितुं अक्षमः; स वर्धमानः, मम आपदामापन्नस्य विघ्नोपघाताय शरणमस्तु रक्षिता भवतु । अशेषान्-निखिलान् धात्वादेशान् संदर्श्य कस्य धातोः प्राकृते क आदेशः? इति दर्शयित्वा षड्भाषाः प्राकृत-भेदाः अथास्मिन् पादे विवेचनप्राप्ताः सन्ति, तदर्थमस्य-पूर्वोक्त-प्रयोजनस्य चतुर्थ-चरणस्येयं बालमनोरमा टीका सूच्यते । अत्र उपजातिछन्दः ।

निर्वाणमाप्तोऽपि समः परस्तात्, स वर्धमानः शरणं ममास्तु ॥१॥

संदर्श्य धात्वादेशानशेषान्, भाषाः षडप्यत्र विवेचनीयाः ।

चतुर्थपादस्य तदर्थकस्य, प्रारभ्यते बालमनोरमेयम् ॥२॥

अर्हमिति । "निर्विघ्न-समाप्तिकामो मङ्गलमाचरेत्" इति सिद्धान्तमाश्रित्य वृत्तिकारेण **अर्हम्** इति पदेन मङ्गलमाचरितम् । अर्हमितिपदं परमेष्ठिनः (परमपदे स्थितस्य) परमेश्वरस्य वाचकम्, मङ्गलार्थं शास्त्रस्य, तदध्यायस्य तत्पादस्य वादौ प्रयुज्यते ।

★ अथ धात्वादेशविधिः [क] ★

कथ्यादिधातूनां स्थाने वज्जरादय ये आदेशा भवन्ति, तान्निरूपयत्याचार्यः—

६७२—इदितो वा । येषां धातूनामिकार इत्संज्ञको भवति, तेषां धातूनां स्थाने ये आदेशा भवन्ति ते सर्वे वैकल्पिका एव बोध्याः । तेषामुदाहरणानि तत्रैव तत्तत्सूत्रेषु दास्यन्ते ।

६७३—**कथयति** । कथि(कथ्)कथने । कथ्+तिव् । इत्यत्र ६७३ सू० कथिधातोः वज्जर,पज्जर इत्यादय आदेशा विकल्पेन भवन्ति, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **वज्जरइ पज्जरइ उप्पालइ पिसुणइ संघइ बोल्लइ चवइ जम्पइ सीसइ साहइ** इति भवति । **उब्बुक्कइ इति ।** उब्बुक्कइ इति तु उदुपसर्गपूर्वस्य बुक्क् भाषणे इतिधातोः रूपं विद्यते । यथा—उद्बुक्क्+तिव् । इत्यत्र ३४८ सू० दकारलोपे,३६० सू०बकार-द्वित्वे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, पूर्ववदेव **उब्बुक्कइ** इति सिद्धम् । **पक्षे** । वज्जराद्यादेशाभाव-पक्षे कथ्+तिव्, इत्यत्र १८७ सू० थकारस्य हकारे, अकारस्य आगमे, पूर्ववदेव **कहइ** इति भवति । **एते चान्यैर्देशीषु** । केचिदाचार्याः देशीषु-मागधीपैशाचीमहाराष्ट्रीप्रभृतिभाषासु वज्जरादय आदेशा देश्य-त्वेन पठन्ति । विभिन्नभाषासु वज्जरादीनां प्रयोगः सुतरां दृश्यते, अतस्तेषां मते वज्जराद्यादेशवि-धानं व्यर्थं भवति । उत्तरयति वृत्तिकारो यद् वज्जरादय आदेशास्तत्तद्देश्यासु भाषासु तु पठिताः सन्ति परन्तु न तु केवलं कथिधातोः स्थाने विहिताः सन्ति, अस्माभिस्तु केवलं कथिधातोरेव स्थाने एते आदेशरूपेण भणिताः । इयमेव पूर्वाचार्याणां मतेऽस्माकं मते च भिन्नता ज्ञेया । अपि च, ते आचार्यास्तु तत्तद्देश्यासु भाषास्वेव वज्जरादीनामादेशानां ग्रहणं कुर्वन्ति, तेन तत्तद्देश्यासु भाषासु वज्जरादीनां प्रयोगसंकोचः, तेषामव्यापकता च भवति, परं वयं विविधेषु प्रत्ययेषु परेष्वपि कथिधातोः स्थाने वज्ज-राद्यादेशविधानमिच्छामः, तेनास्माकं मते वज्जराद्यादेशानां प्रयोगव्यापकता संजायते । यथा—**कथितः** । कथ्+क्त-त । कथेः वज्जरादेशे,६४५ सू० अकारस्य स्थाने इकारे,१७७ सू० तकारलोपे, सि-प्रत्यये, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **वज्जरिओ** इति भवति । **कथयित्वा** । कथ्+क्त्वा =वज्जर+क्त्वा । ६४६ सू० अकारस्य इकारे, ४१७ सू० क्त्वः तूण इत्यादेशे, तकारलोपे **वज्जरि-ऊण** इति भवति । **कथनम्** । कथ्+ल्युट्-अन=वज्जर+अन । १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सिप्रत्यये, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **वज्जरणं** इति भवति । **कथयन्** । कथ्+शतृ=वज्जर+शतृ । ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **वज्जरन्तो** इति भवति । **कथयितव्यम्** । कथ्+तव्यत्=वज्जर+तव्य । ६४६ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **वज्ज-रिअव्वं** इति भवति । अनया रीत्या सहस्राणि रूपाणि सिध्यन्ति । **संस्कृतधातुवच्च** । प्रत्ययागमलो-पादेः विधिः-कार्यं संस्कृतधातुतुल्यं बोध्यम् ।

६७४—कथयति । कथ्+तिव् । ६७४ सू० कथेः स्थाने विकल्पेन णिव्वर इत्यादेशे, ६२८ सू० स्थाने तिवः स्थाने इचादेशे **णिव्वरइ** इति भवति । दुःखं भणतीत्यर्थः ।

६७५—जुगुप्सति । गुपू रक्षणे । गोप्तुमिच्छतीति । सन्नन्तत्वाद् जुगुप्स्+तिव् इति जाते, ६७५ सू० जुगुप्सः स्थाने विकल्पेन झुण, दुगुच्छ,दुगुञ्छ इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे—**झुणइ, दुगुच्छइ दुगुञ्छइ** १७७ सू० गकारलोपे—**दुउच्छइ दुउञ्छइ** आदेशाभावपक्षे—२९२ सू० प्सस्य छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे **जुगुच्छइ** इति भवति ।

६७६—बुभुक्षति । भोक्तुमिच्छतीति । भुज् भोजे । सन्नन्तत्वात् संस्कृतवदेव बुभुक्ष+तिव् इति जाते, ६७६ सू० बुभुक्षेः स्थाने वैकल्पिके णीरव इत्यादेशे,६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **णीरवइ** आदेशाभावे बुभुक्ष्+इ इति स्थिते, १८७ सू० भकारस्य हकारे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **बुहुक्खइ** इति भवति । **वीजयति** । वायुं करोतीति वीजयति । अथवा वीजः पवनकारकः पदार्थः तदिवाचरतीति वीजयति । वीज्+तिव् । इत्यत्र ६७६ सू० वीज्धातोः स्थाने वैकल्पिके वोज्ज इत्यादेशे, पूर्ववदेव तिवः इचादेशे **वोज्जइ** आदेशाभावे पूर्ववदेव **वीजइ** इति भवति ।

६७७—ध्यायति । ध्यै चिन्तने । ध्यै+तिव् । इत्यत्र ६७७ सू० ध्यैधातोः झा इत्यादेशे,६२८ सू० तिवः इचादेशे, ९११ सू० विकल्पेन अकारागमे **झाअइ झाइ** निपूर्वकस्य ध्यैधातोः २२९ सू० नकारस्य णकारे, ३६० सू० झकारद्वित्वे, ३६१ पूर्वझकारस्य जकारे **णिज्झाअइ णिज्झाइ** इति भवति । निपूर्वक-ध्यैधातुः दर्शनार्थको विद्यते । **गायति** । गै गाने । गै+तिव् । प्रस्तुतसूत्रेण गैधातोः स्थाने गा इत्यादेशे, वैकल्पिकेऽकारागमे, १८० सू० यकारश्रुतौ, पूर्ववदेव **गायइ गाइ** इति भवति । **ध्यानम्** । ध्यै+अन= झा+अन, सन्धौ झान इति जाते, २२८ सू० नकारस्य णकारे, सिप्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **झाणं** इति भवति । **गानम्** । गै शब्दे । गै+अन । सिप्रत्यये=गान+सि, इति जाते २२८ सू० नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव **गाणं** इति भवति ।

६७८—जानाति । ज्ञा अवबोधने । ज्ञा+तिव् । ६७८ सू० ज्ञाधातोः स्थाने जाण,मुण इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **जाणइ मुणइ** इति भवति । **बहुलाधिकाराद्** । बहुलस्य अधिकारात् क्वचित्-कस्मिंश्चित्स्थले प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिः वैकल्पिका जायते । यथा—**ज्ञातम्** । ज्ञा+क्त-त । प्रस्तुतसूत्रेण विकल्पेन ज्ञाधातोः जाण इत्यादेशे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, सिप्रत्यये, १७७ सू० तकारलोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **जाणिअं** आदेशाभावे ज्ञा+अं इति स्थिते, ३१३ सू० ज्ञस्य णकारे, १८० सू० यकारश्रुतौ **णायं** इति भवति । **ज्ञात्वा** । ज्ञा+क्त्वा । पूर्ववदेव जाण+क्त्वा इति जाते, ६४६ सू० अकारस्य इकारे, ४१७ सू० क्त्वः स्थाने तूण इत्यादेशे, १७७ सू० तकारलोपे **जाणि-ऊण** आदेशाभावे ३१३ सू० ज्ञस्य णकारे **णाऊण** इति भवति । **ज्ञानम्** । ज्ञा+अनट्=जाण+अन । १० सू० स्वरस्य लोपे, सिप्रत्यये, सेर्मकारे, मकारानुस्वारे **जाणणं** आदेशाभावे ज्ञा+अणं इत्यत्र ज्ञस्य णकारे, दीर्घ-सन्धौ **णाणं** इति भवति । **मणइ इति तु** । **मणइ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण न किमपि कार्यं जातम् । साधना त्वित्थम्—**मनुते** । मन् अवबोधने । मन्+तिव् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **मणइ** इति भवति ।

६७९—उद्धमति । उद्ध्मा उच्चैः शंखादि-वादने । उद्ध्मा+तिव् । ३४८ सू० दकारलोपे, ६७९ सू० ध्मा इत्यस्य धुमा इत्यादेशे, ३६० सू० धकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारे, ६२८

सू० तिव इचादेशे **सद्दहुमाइ** इति भवति।

६८०—श्रद्दधाति। श्रद्धा-धातुः श्रद्धाने। श्रद्धा+तिव्। २६० सू० शकारस्य सकारे, ३५० सू० रेफ-लोपे, ११ सू० दकारलोपप्राप्तिः, किन्तु १२ सूत्रेण तन्निषेधे, ६८० सू० धा-धातोः दह इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **सद्दहइ** इति भवति। **श्रद्दधानः**। श्रद्धा+आनश्=सद्दह+आनश्। ६७० सू० आनशः माण इत्यादेशे, सिप्रत्यये, सद्दहमाण+सि इति जाते, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सद्दहमाणो** इति भवति। **जीवः**। जीव+सि, पूर्ववदेव **जीवो** इति भवति।

६८१—पिबति। पा धातुः पाने। पा+तिव्। ६८१ सू० पाधातोः स्थाने पिज्ज, डल्ल, पट्ट, घोट्ट इत्यादेशाः वैकल्पिकाः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **पिज्जइ डल्लइ पट्टइ घोट्टइ** आदेशाभावे संस्कृत-नियमेन पिब्+तिव् इति जाते,९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, १७७ सू० बकारस्य लोपे,पूर्ववदेव तिव इचादेशे **पिबइ** इति भवति।

६८२—उद्वाति। उद्वाधातुः गतिगन्धनयोः। उद्वा+तिव्। इत्यत्र ६८२ सू० उद्वा इत्यस्य विकल्पेन ओरुम्मा, वसुआ इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **ओरुम्माइ वसुआइ** आदेशाभावे उद्वा+इ, इत्यत्र ३४८ सू० दकारस्य लोपे, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वे **उव्वाइ** इति भवति।

६८३—निद्राति। निद्रा जागरणक्षये। निद्रा+तिव्। ६८३ सू० निपूर्वस्य द्राधातोः विकल्पेन ओहीर, उङ्घ इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **ओहीरइ उङ्घइ** आदेशयोरभावे निद्रा+इ इति जाते, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० दकारद्वित्वे **निद्दाइ** इति सिद्धम्।

६८४—आजिघ्रति। आघ्राधातुः गन्धादाने। आघ्रा+तिव्। ६८४ सू० आघ्रा इत्यस्य स्थाने विकल्पेन आइग्घ इत्यादेशे,६२८ सू० तिव इचादेशे **आइग्घइ** आदेशाभावे आघ्रा+इ इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० घकारस्य द्वित्वे,३६१ सू० पूर्वघकारस्य गकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **अग्घाइ** इति भवति।

६८५—स्नाति। स्नै स्नाने। स्ना+तिव्। ६८५ सू० स्नाधातोः वैकल्पिके अब्भुत्त इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **अब्भुत्तइ** आदेशाभावे स्ना+इ इत्यत्र ३४६ सू० स्नस्य स्थाने ण्ह इत्यादेशे **ण्हाइ** इति भवति।

६८६—संस्त्यायते। संस्त्यै-धातुः संघाते। संस्कृतनियमेन संस्त्या+तिव् इति जाते, ६८६ सू० संस्त्याधातोः स्थाने खा इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **संखाइ** इति भवति। **संस्त्यानम्**। संस्त्या+क्त-त=संखा+त। १७७ सू० तकारस्य लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, सिप्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **संखायं** इति भवति।

६८७—तिष्ठति। ष्ठा-स्था गतिनिवृत्तौ। स्था+तिव्। इत्यत्र ६८७ सू० स्थाधातोः स्थाने ठा, थक्क,चिट्ठ, निरप्प इत्यादेशाः,६२८ सू० तिव इचादेशे **ठाइ** ९११ सू० विकल्पेन अकारागमे **ठाअइ** इति भवति। **स्थानम्**। स्था+अनट्=अन। प्रस्तुतेन सूत्रेण स्थाधातोः स्थाने ठा इत्यादेशे,सन्धौ,२२८ सू० नकारस्य णकारे, सिप्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **ठाणं** इति भवति। **प्रस्थितः**। प्रस्था+क्त-त। ३५० सू० रेफलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण स्थाधातोः स्थाने ठा इत्यादेशे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, ९०९ सू० आकारस्य अकारे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, सिप्रत्यये, १७७ सू० तकारलोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पट्ठिओ** इति भवति। **उत्थितः**। उत्स्था+क्त-त। इत्यत्र ३४८ सू०तकारस्य लोपे, प्रस्तुतसूत्रेण स्थाधातोः ठा इत्यादेशे, पूर्व-

वदेव **उट्ठिओ** इति भवति । **प्रस्थापितः** । प्रस्था+णिग्+क्त । पूर्ववदेव पट्ठा+णिग्+त इति जाते, ६३९ सू० णिगः स्थाने अवि इत्यादेशे, सन्धौ, १७७ सू० तकारलोपे, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **पट्ठाविओ** इति भवति । **उत्थापितः** । उत्स्था उत्थापने । उत्स्था+णिग्+क्त-त । ३४८ सू० तकारलोपे, पूर्ववदेव **उट्ठाविओ** इति भवति । **तिष्ठति** । स्था+तिव् । प्रस्तुतसूत्रेण स्थाधातोः स्थाने थक्क, चिट्ठ इत्यादेशौ, पूर्ववदेव **थक्कइ चिट्ठइ** इति भवति । **स्थित्वा** । स्था+क्त्वा । प्रस्तुतसूत्रेण स्थाधातोः चिट्ठ इत्यादेशे, ४१७ सू० क्त्वः तूण इत्यादेशे, १७७ सू० तकारलोपे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे **चिट्ठिऊण** इति भवति । **तिष्ठति** । स्था+तिव् । प्रस्तुतसूत्रेण स्थाधातोः निरप्प इत्यादेशे, पूर्ववदेव **निरप्पइ** इति भवति । **बहुलाधिकारात्** । बहुलस्य अधिकारात् कस्मिंश्चित्स्थले प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न भवति । यथा—**स्थितम्** । स्था+क्त=त । ३४८ सू० सकारस्य लोपे, ९०२ सू० आकारस्य अकारे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, सिप्रत्यये, १७७ सू० तकारलोपे, सेर्मकारे, मकारानुस्वारे **ठिअं** इति भवति । **स्थानम्** । स्था+अन=थान+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव **थाणं** इति भवति । **प्रस्थितः** । प्रस्था+त । इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, सकारलोपे, ३६० सू० थकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, सिप्रत्यये, सेर्डोः, डित्ति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पत्थिओ** इति भवति । **उत्थितः** । उत्स्था+त । ३४८ सू० तकार-सकारयोर्लोपे, पूर्ववदेव **उत्थिओ** इति भवति । **स्थित्वा** । स्था+क्त्वा । सकारस्य लोपे, ४१७ सू० क्त्वः स्थाने तूण इत्यादेशे, १७७ सू० तकारलोपे **थाऊण** इति भवति । एषु प्रयोगेषु बाहुल्येन प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः ।

६८८—उत्तिष्ठति । उत्स्था-धातुः उत्थाने । उत्स्था+तिव् । इत्यत्र ३४८ सू० तकारलोपे, ६८८ सू० स्थाधातोः ठ, कुक्कुर इत्यादेशौ, ३६० सू० ठकारस्य ककारस्य च द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **उट्ठइ, उक्कुक्कुरइ** इति भवति ।

६८९—ग्लायति । ग्लै ग्लाने । संस्कृतनियमेन ग्ला+तिव् इति जाते, ६८९ सू० ग्लाधातोः वा, पव्वाय इत्यादेशौ वैकल्पिकौ, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **वाइ पव्वायइ** आदेशाभावे ग्ला+इ इत्यत्र ३७७ सू० लकारात्पूर्वं इकारागमे **गिलाइ** इति भवति ।

६९०—निर्मिमीते । निर्मा निर्माणे । निर्मा+ते । ६९० सू० निर्मास्थाने निम्माण, निम्मव इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **निम्माणइ निम्मवइ** इति भवति ।

६९१—क्षीयते । क्षि क्षये । क्षि+ते । ६९१ सू० क्षिधातोः वैकल्पिके णिज्झर इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **णिज्झरइ**, आदेशाभावे २७४ सू० क्षस्य स्थाने झकारे, ६९७ सू० प्रकृति-प्रत्यययोर्मध्ये ज्ज इत्यस्य प्रयोगे **झिज्जइ** इति भवति ।

६९२—छादयति । छदि-धातुः आच्छादने । छद्+णिग्+तिव् । इत्यत्र ६९२ सू० ण्यन्तस्य छदेः स्थाने विकल्पेन णुम, नूम, सन्नुम, ढक्क, ओम्बाल, पव्वाल इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **णुमइ, नूमइ** २२९ सू० वैकल्पिके णकारे **णूमइ, सन्नुमइ, ढक्कइ, ओम्बालइ, पव्वालइ** आदेशा-भावपक्षे—छद्+णिग्+इ, इत्यत्र ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारादेशे, ६४२ सू० आद्यस्य अकारस्य आकारे, १७७ सू० दकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ **छायइ** इति भवति ।

६९३—निवारयति, पातयति । निपूर्वको वृग्-धातुः निवारणार्थकः । पत् पतने । निवृ+णिग्+तिव्, पत्+णिग्+तिव् । ६९३ सू० निपूर्वस्य वृगः, ण्यन्तस्य पतेश्च विकल्पेन णिहोड इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **णिहोडइ निवारयति पातयति** वेत्यर्थः । आदेशाभावपक्षे तु—निवृ+णिग्+इ इत्यत्र

९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६३८ सू० णिगः स्थाने ए इत्यादेशे, ६४२ सू० आदेरस्य अकारस्य आकारे निवार+ए+इ इति जाते, १० सू० स्वरे परे स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **निवारेइ** इति भवति। **पालयति**। पल्+णिग्+इ इत्यत्र ६३८ सू० णिगः स्थाने ए इत्यादेशे, आदेरकारस्य आकारे, २०६ सू० तकारस्य डकारे **पालेइ** इति भवति।

६९४—दूमयति। दूङ्धातुः दुःखानुभवे। दू+णिग्+तिव्। ६९४ सू० ण्यन्तस्य दूधातोः दूम इत्यादेशे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **दूमेइ** इति भवति। **मम**=मज्झ, इत्यस्य प्रक्रिया ६०२ सूत्रे ज्ञेया। **हृदयम्**—हिअयं इत्यस्य प्रक्रिया २६९ सूत्रे ज्ञेया।

६९५—धवलयति। धवल् धवलीकरणे। धवल्+णिग्+तिव्। ६९५ सू० ण्यन्तस्य धवल्-धातोः विकल्पेन दुम इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **दुमइ** आदेशाभावे—धवल्+णिग्+इ, इत्यत्र ६३८ सू० णिग अद् (अ) इत्यादेशे **धवलइ** इति भवति। **स्वराणां स्वराः**। २०९ सू० बाहुल्येन दुम-गलस्य उकारस्य ऊकारोऽपि भवति। यथा—**धवलितम्**। धवल्+क्त (त)। प्रस्तुतसूत्रेण धवल्धातोः दुम इत्यादेशे, बाहुल्येन २०९ सू० उकारस्य ऊकारे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, सि-प्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **दूमिअं** इति भवति।

६९६—तोलयति। तुल् तोलने। तुल्+णिग्+तिव्। ६९६ सू० ण्यन्त-तुल्-धातोः विकल्पेन ओहाम इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **ओहामइ** आदेशाभावे तुल्+णिग्+इ, इत्यत्र ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे **तुलइ** इति भवति।

६९७—विरेचयति। विपूर्वकः रिच्-धातुः विरेचनार्थकः। विरिच्+णिग्+तिव्। इत्यत्र ६९७ सू० ण्यन्तस्य विरिच्धातोः स्थाने विकल्पेन ओलुण्ड, उल्लुण्ड, पल्हत्थ इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **ओलुण्डइ, उल्लुण्डइ, पल्हत्थइ** आदेशाभावे—विरिच्+णिग्+इ, इत्यत्र ९०९ सू० इलीयस्येकारस्य एकारे, ६३८ सू० णिग अद् (अ) इत्यादेशे, १७७ सू० चकारलोपे **विरेअइ** इति भवति।

६९८—ताडयति। तड् ताडने। तड्+णिग्+तिव्। ६९८ सू० ण्यन्तस्य तड्धातोः विकल्पेन आहोड, विहोड इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **आहोडइ विहोडइ** आदेशाभावपक्षे ६३८ सू० णिग एकारादेशे, ६४२ सू० आदेरकारस्य आकारे **ताडेइ** इति भवति।

६९९—मिश्रयति। मिश्रि मिश्रीकरणे। मिश्र्+णिग्+तिव्। ६९९ सू० ण्यन्तस्य मिश्र्धातोः विकल्पेन विसाल, मेलव इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **वीसालइ मेलवइ** आदेशाभावपक्षे—३५० सू० रेफस्य लोपे, ४३ सू० इकारस्य दीर्घे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ३६० सू० सकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे **मिस्सइ** इति भवति।

७००—उद्धूलयति। उद्धूलि ऊर्ध्वं धूलिप्रक्षेपणे। उद्धूल्+णिग्+तिव्। ७०० सू० ण्यन्त-स्य उद्धूलिधातोः स्थाने विकल्पेन गुण्ठ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **गुण्ठइ** आदेशाभावे—३४८ सू० दकारलोपे, ३६० सू० धकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारे, ६३८ सू० णिगः स्थाने एकारे **उद्धूलेइ** इति भवति।

७०१—भ्रमयति। भ्रम्धातुः भ्रमणे। भ्रम्+णिग्+तिव्। ७०१ सू० ण्यन्तस्य भ्रम्धातोः स्थाने विकल्पेन तालिअण्ट, तमाड इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **तालिअण्टइ, तमाडइ** आदेशाभावे—३५० सू० रेफलोपे, ६३८ सू० णिगः एकारे, ६४२ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **भामेइ** ६४० सू० विकल्पेन णिग आड इत्यादेशे तु **भमाडेइ** तथा ६३८ सू० णिग आवे इत्यादेशे तु **भमावेइ** इति भवति।

७०२—नाशयति । नश् धातुः नाशने । नश्+णिग्+तिव् । ७०२ सू० ण्यन्तस्य नश्धातोः विकल्पेन विउड, नासव, हारव, विप्पगाल, पलाव इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **विउडइ, नासवइ, हारवइ, विप्पगालइ, पलावइ** आदेशाभावपक्षे २६० सू० शकारस्य सकारे, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य आकारे **नासइ** इति भवति ।

७०३—दर्शयति । दृश् दर्शने । दृश्+णिग्+तिव् । ७०३ सू० ण्यन्तस्य दृश्धातोः विकल्पेन दाव, दंस, दक्खव इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **दावइ, दंसइ, दक्खवइ** आदेशाभावपक्षे ९०६ सू० ऋकारस्य अरि इत्यादेशे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, अज्झीने परेण संयोज्ये **दरिसइ** इति भवति ।

७०४—उद्घाटयति । उद्घट्धातुः उद्घाटने । उद्घट्+णिग्+तिव् । ७०४ सू० ण्यन्तस्य उद्घट्धातोः उग्ग इत्यादेशो विकल्पेन भवति, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **उग्गइ** आदेशाभावपक्षे ३४८ सू० दकारलोपे, ३६० सू० घकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वघकारस्य गकारे, १९५ सू० टकारस्य डकारे, ६३८ सू० णिगः अकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य आकारे **उग्घाडइ** इति भवति ।

७०५—स्पृहयति । स्पृह् स्पृहायाम् । स्पृह्+णिग्+तिव् । ७०५ सू० ण्यन्तस्य स्पृहः स्थाने सिह इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **सिहइ** इति भवति ।

७०६—संभावयति । सम्पूर्वकः भूधातुः संभावनायाम् । संभू+णिग्+तिव् । इत्यत्र ७०६ सू० ण्यन्तस्य संभूधातोः आसङ्घ इत्यादेशे वैकल्पिके,६२८ सू० तिव इचादेशे **आसङ्घइ** आदेशाभावे—९०४ सू० ऊकारस्य अव इत्यादेशे, ६३८ सू० णिग अकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य दीर्घे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **संभावइ** इति भवति ।

७०७—उन्नामयति । उत्पूर्वको नम्-धातुः उन्नामने । उद्+नम्+णिग्+तिव् । ७०७ सू० ण्यन्तस्य उद्नम्धातोः विकल्पेन उत्थङ्घ,उल्लाल, गुलुगुञ्छ,उप्पेल इत्यादेशाः,६२८ सू० तिव इचादेशे, **उत्थङ्घइ, उल्लालइ, गुलुगुञ्छइ, उप्पेलइ** आदेशाभावे—३४८ सू० दकारलोपे, ३६० सू० नकारद्वित्वे, ६३८ सू० णिग अकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य आकारे **उन्नामइ** इति भवति ।

७०८—प्रस्थापयति । प्रपूर्वकः ण्यन्तस्थाधातुः प्रस्थापने । प्रस्था+णिग्+तिव् । इत्यत्र ७०८ सू० ण्यन्तस्य प्रस्थाधातोः विकल्पेन पट्ठव, पेण्डव इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **पट्ठवइ, पेण्डवइ** आदेशाभावपक्षे, ३५० सू० रेफलोपे, ६८७ सू० स्थाधातोः ठा इत्यादेशे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, ६३९ सू० णिग आव इत्यादेशे, सन्धौ **पट्ठावइ** इति भवति ।

७०९—विज्ञापयति । विपूर्वकः ण्यन्तज्ञा-धातुः विज्ञापने । विज्ञा+णिग्+तिव् । ७०९ सू० ण्यन्तस्य विज्ञाधातोः विकल्पेन वोक्क, अवुक्क इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **वोक्कइ अवुक्कइ** आदेशाभावपक्षे संस्कृतनियमेन विज्ञपि+इ इति जाते, ३१३ सू० ज्ञस्य स्थाने णकारे, ३६० सू० णकारद्वित्वे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९११ सू० अकारागमे,१० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीणे परेण संयोज्ये **विण्णवइ** इति भवति ।

७१०—अर्पयति । अर्पि-धातुः अर्पणे । अर्प्+णिग्+तिव् । ७१० सू० ण्यन्त-अर्प् धातोः विकल्पेन अल्लिव,चच्चुप,पणाम इत्यादेशाः,६२८ सू० तिव इचादेशे **अल्लिवइ,चच्चुपइ, पणामइ** आदेशाभावे—३५० सू० रेफलोपे,३६० सू० पकारद्वित्वे,६३८ सू० णिगः एकारे,६४२ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे, ८४ सू०,संयोगे परे ह्रस्वे **अप्पेइ** इति भवति ।

७११—यावयति । याधातुः गतौ प्रापणे च । या + णिग् + तिव् । इत्यत्र ७११ सू० ण्यन्त-या-धातोः विकल्पेन जव इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **जवइ** आदेशाभावे—२४५ सू० यकारस्य जकारे, ६३८ सू० णिग आवे इत्यादेशे, दीर्घ-सन्धौ **जावेइ** इति भवति ।

७१२—प्लावयति । प्लावि (प्लव्) प्लवने । प्लव् + णिग + तिव् । ७१२ सू० ण्यन्त-प्लव्-धातोः विकल्पेन ओम्वाल, पव्वाल इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **ओम्वालइ, पव्वालइ** आदेशाभावे ३५० सू० लकारलोपे, ६३८ सू० णिगः एकारे, ६४२ सू० पूर्वाकार-दीर्घे **पावेइ** इति भवति ।

७१३—विकोशयति । विकोशि-धातुः प्रसारणे । विकोश् + णिग् + तिव् । ७१३ सू० ण्यन्त-विकोश्-धातोः विकल्पेन पक्खोड इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **पक्खोडइ** आदेशाभावे २६० सू० शकारस्य सकारे, ६३८ सू० णिग अकारे, अज्झोने परेण संयोज्ये **विकोसइ** इति भवति ।

७१४—रोमन्थयति । रोमन्थं करोतीति । रोमन्थि (रोमन्थ्) + णिग् + तिव् । ७१४ सू० ण्यन्त-रोमन्थ्-धातोः स्थाने ओग्गाल, वग्गोल इत्यादेशौ वैकल्पिकौ, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **ओग्गालइ वग्गोलइ** आदेशाभावे ६३८ सू० णिग अकारे **रोमन्थइ** इति भवति ।

७१५—कामयति । कमि (कमु) कामनायाम् । कम् + णिग् + तिव् । ७१५ सू० ण्यन्त-कम्-धातोः विकल्पेन णिहुव इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **णिहुवइ** आदेशाभावे ६३८ सू० णिगः स्थाने एकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य दीर्घे **कामेइ** इति भवति ।

७१६—प्रकाशयति । प्रकाशि प्रकाशने । प्रकाश् + णिग् + तिव् । ७१६ सू० ण्यन्त-प्रकाश्-धातोः विकल्पेन णुव्व इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **णुव्वइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे, १७७ सू० ककारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, २६० सू० शकारस्य सकारे, ६३८ सू० णिग एकारे **पयासेइ** इति भवति ।

७१७—कम्पयति । कम्पि-कम्प् कम्पने । कम्प् + णिग् + तिव् । इत्यत्र ७१७ सू० ण्यन्त-कम्प्-धातोः विकल्पेन विच्छोल इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **विच्छोलइ** आदेशाभावे, ६३८ सू० णिगः स्थाने एकारे **कम्पेइ** इति भवति ।

७१८—आरोहयति । आरुहि आरोहणे । आरुह् + णिग् + तिव् । ७१८ सू० ण्यन्त-आरुह्-धातोः विकल्पेन वल इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **वलइ** आदेशाभावे संस्कृतनियमेन आरोप्* + णिग् + इ इति जाते, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ६३८ सू० णिग एकारे **आरोवेइ** इति भवति ।

७१९—दोलयति । दुलिधातुः उत्क्षेपे । दुल् + णिग् + तिव । ७१९ सू० ण्यन्त-दुल्-धातोः स्थाने विकल्पेन रङ्खोल इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **रङ्खोलइ** आदेशाभावे १०९ सू० उकारस्य ओकारे, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे **दोलइ** इति भवति ।

७२०—रञ्जयति । रञ्जि-धातुः रागे । रञ्ज् + णिग् + तिव् । इत्यत्र ७२० सू० ण्यन्त-रञ्ज्-धातोः विकल्पेन राव इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **रावइ** आदेशाभावे ६३८ सू० णिगः स्थाने एकारे, ६४२ सू० पूर्वाकार-दीर्घे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **रञ्जेइ** इति भवति ।

७२१—घटयति । घटि निर्माणे । घट् + णिग् + तिव् । ७२१ सू० ण्यन्त-घट्-धातोः विकल्पेन परिवाड इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **परिवाडइ** आदेशाभावे, १९५ सू० टकारस्य डकारे, ६३८ सू० णिग एकारे **घडेइ** इति भवति । प्रयोगदर्शनादत्र ६४२ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घो न जातः ।

*४ । २ । १४ । सूत्रेण हकारस्य पकारो जातः ।

७२२—वेष्टयति । वेष्टिधातुः परिवेष्टने । वेष्ट्+णिग्+तिव् । ७२२ सू० पयस-वेष्ट्-धातोः विकल्पेन परिआल इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **परिआलइ** आदेशाभावे ३४८ सू० षकारलोपे, ८९२ सू० टकारस्य ढकारे, ६३८ सू० णिगः एकारे **वेढेइ** इति भवति ।

७२३—क्रियेति निवृत्तम् । ६९२ सूत्रादारभ्य ७२२ सूत्रपर्यन्तं णिगरनुवृत्तिः गृह्यते, इतः परं तस्यानुवृत्तेरभावो बोध्यः । **क्रीणाति** । कुञ् द्रव्यविनिमये । कृ+तिव् । ४२३ सू० कृधातोः स्थाने किण इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **किणइ** इति भवति । **वेः परस्य तु** । वि इत्युपसर्गात् परस्य कृधातोः स्थाने एकारयुक्तो द्विरुक्तः ककारः (क्के) भवतीत्यर्थः । सूत्र-पठितात्त्वकारात् किणादेशोऽपि जायते । यथा—**विक्रीणाति** । विक्+तिव् । ७२३ सू० वि इत्युपसर्गात् परस्य कृधातोः द्विरुक्त एकारयुक्ते ककारे, किणे च जाते, ६२८ सू० तिव इचादेशे **विक्केइ**, **विकिणइ** ३६० सू० ककारस्य द्वित्वे **विक्किणइ** इति भवति ।

७२४—बिभेति । ञिभी भये । भी+तिव् । ७२४ सू० भीधातोः भा, बीह इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **भाइ** ९११ सू० अकारागमे जाते **भाअइ बीहइ** इति भवति । **भीतम्** । भी+क्त—त । प्रस्तुतसूत्रेण भीधातोः भा इत्यादेशे, अकारागमे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, सिप्रत्यये, १७७ सू० तकारलोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **भाइअं** बीह इत्यादेशे तु **बीहिअं** इति भवति । **बहुलाधिकारात्** कस्मिंश्चित्स्थले प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न भवति । यथा—**भीतः** । भीत+सि । तकारस्य लोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **भीओ** भवति । अत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः ।

७२५—आलीयते । आङ्पूर्वकः लीङ्-धातुः सम्मिलने । आली+तिव् । ७२५ सू० आलीधातोः अल्ली इत्यादेशे, ९११ सू० अकारागमे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **अल्लीअइ** इति भवति । **आलीनः** । आलीन+सि, प्रस्तुत-सूत्रेण आली इत्यस्य अल्ली इत्यादेशे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **अल्लीणो** इति भवति ।

७२६—निलीयते । निपूर्वकः लीधातुः प्रच्छन्ने । निली+तिव् । इत्यत्र ७२६ सू० निलीधातोः स्थाने विकल्पेन णिलीअ, णिलुक्क, णिरिग्घ, लुक्क, लिक्क, ल्हिक्क इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **णिलीअइ णिलुक्कइ णिरिग्घइ लुक्कइ लिक्कइ ल्हिक्कइ** आदेशाभावे निली+इ इत्यत्र ६६७ सू० प्रकृतिप्रत्यययोर्मध्ये ज्ज इत्यस्य प्रयोगे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **णिलिज्जइ** इति भवति ।

७२७—विलीयते । विपूर्वकः लीङ्-धातुः विनाशे । विली+तिव् । इत्यत्र ७२७ सू० विलीधातोः विकल्पेन विरा इत्यादेशे,६२८ सू० तिव इचादेशे **विराइ** आदेशाभावे ६६७ सू० प्रकृतिप्रत्यययोर्मध्ये ज्ज इत्यस्य विकरणे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **विलिज्जइ** इति भवति ।

७२८—रौति । रुधातुः शब्दे । रु+तिव् । इत्यत्र ७२८ सू० रुधातोः स्थाने विकल्पेन रुञ्ज, रुण्ट इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **रुञ्जइ, रुण्टइ** आदेशाभावे, ९०४ सू० उकारस्य अव इत्यादेशे **रवइ** इति भवति ।

७२९—शृणोति । श्रुटि-(श्रु)-धातुः श्रवणे । श्रु+तिव् । ७२९, सू० श्रुधातोः स्थाने विकल्पेन हण इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **हणइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९१२ सू० णकारस्य आगमे **सुणइ** इति भवति ।

७३०—धुनोति । धूगि (धूञ्) धातुः कम्पने । धू+तिव् । ७३० सू० धूधातोः स्थाने विकल्पेन धुव इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **धुवइ** आदेशाभावे ९१२ सू० णकारस्य आगमे, ऊकारस्य च उकारे **धुणइ** इति भवति ।

७३१—भवति । भूधातुः सत्तायाम् । भू+तिव् । ७३१ सू० भूधातोः विकल्पेन हो, हुव, हव इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **होइ, हुवइ, हवइ** आदेशाभावे ९०४ सू० ऊकारस्य अव इत्यादेशे **भवइ** इति भवति । **भवन्ति** । भू+अन्ति =हो+अन्ति,हुव+अन्ति,हव+अन्ति । ६३१ सू० अन्तेः न्ति इत्यादेशे **होन्ति, हुवन्ति, हवन्ति** इति भवति । **परिहीन-विभवः** । परिहीनः-नष्टः विभवः-ऐश्वर्यं यस्य सः । परिहीनविभव+सि । इत्यत्र २२८ सू० नकारस्य णकारे, १८७ सू० भकारस्य हकारे,४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **परिहीण-विहवो** इति भवति । **भवितुम्** । भू सत्तायाम् । भू+तुम् । ९०४ सू० ऊकारस्य अव इत्यादेशे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे,१७७ सू० तकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **भविउं** इति भवति । **प्रभवति** । प्रभू+तिव् । ३५०सू० रेफस्य लोपे, ९०४ सू० ऊकारस्य अव इत्यादेशे,६२८ सू० तिव इचादेशे **पभवइ** इति भवति । **परिभवति** । परिभू तिरस्कारे। परिभू+तिव् । पूर्ववदेव **परिभवइ** इति भवति । एवमेव **संभवति** । संभू संभावनायाम् । संभू+तिव् =**संभवइ** इति साध्यम् । **क्वचिदन्यदपि** । बहुलाधिकारात् क्वचिदन्यदपि कार्यं भवति। यथा – **उद्भवति** । उद्भू उत्पत्तौ । उद्भू+तिव । ३४८ सू० दकारस्य लोपे,३६० सू० भकारस्य द्वित्वे,३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारे, बहुलाधिकारात् ऊकारस्य उकारे, ९११ सू० अकारागमे, पूर्ववदेव **उब्भुअइ** इति भवति । **भूतम्** ।भू+क्त—त+सि । बाहुल्येन ऊकारस्य अकारे,३७० सू० तकारस्य द्वित्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **भत्तं** इति भवति ।

७३२—भवन्ति । भू+अन्ति । इत्यत्र ७३२ सू० भूधातोः हु इत्यादेशे, ६३१ सू० अन्तेः न्ति, इत्यादेशे **हुन्ति** इति भवति । **भवन्** । भू+शतृ । भूधातोः स्थाने हु इत्यादेशे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, सिप्रत्यये, ४९१ सू० सेर्डोः,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **हुन्तो** इति भवति । **अविलीति किम् ?** । विद्वर्जे प्रत्यये परे सत्येव प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति, नान्यथा । **यथा —भवति** । **भू+तिव्** । ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, ११ सू० तिव्प्रत्ययस्य वकारस्य लोपे, ६२८ सू० ति इत्यस्य स्थाने इचादेशे **होइ** इति भवति । अत्र तिव्-प्रत्ययस्य वकारस्य लोपेन वित्वात् प्रस्तुत-सूत्रस्य अप्रवृत्तिभावः ।

७३३—पृथग्भूते स्पष्टे च कर्तरि । पृथग् भवति,स्पष्टो भवति,इत्येतयोः प्रयोगयोः कर्ता पृथक्, स्पष्टश्च वर्ततेऽत्राऽत्र भूधातोः णिव्वड इत्यादेशो जायते । **"रामः भवति"** वाक्येऽस्मिन् रामे कर्तरि सति ७३३ सूत्रेण भूधातोः णिव्वड इत्यादेशो न भवति । किन्तु, भूधातोः कर्ता यदा पृथग्भूतः स्यात्, स्पष्टः इति वा भवेत्तदा प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जायते । यथा—**भवति** । भू+तिव् । ७३३ सू० भूधातोः णिव्वड इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **णिव्वडइ**, पृथक्, स्पष्टो वा भवतीत्यर्थः ।

७३४—प्रभुत्वे च । प्र इत्युपसर्गे यदि भूधातुः पूर्ववर्ती भवेत्तदा तस्य **प्रभुत्वम्** इत्यर्थो भवति । **अङ्गे** । अङ्ग+ङि । ५०० सू० ङेः स्थाने डित्-एकारे जाते, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **अङ्गे** इति भवति । **एव**=च्चिय, प्रक्रिया ३७० सूत्रे ज्ञेया । **न** । अव्ययपदमिदम् । संस्कृतवदेव प्राकृते प्रयुज्यते । **प्रभवति** । प्रभू+तिव् । ३५० सू० रेफलोपे, ७३४ सू० भूधातोः स्थाने विकल्पेन हुप्प इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **पहुप्पइ** आदेशाभावे ९०४ सू० ऊकारस्य स्थाने अव इत्यादेशे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे **पभवेइ** इति भवति ।

७३५—भूतम् । भू+क्त-त । ७३५ सू० भूधातोः स्थाने हू इत्यादेशे, १७७ सू० तकारलोपे, सिप्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **हूअं** इति भवति । **अनुभूतम्** । अनुभूत+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे,भूधातोः हू इत्यादेशे, पूर्ववदेव **अणुहूअं** इति भवति । **प्रभूतम्** । प्रभूत+सि । ३५० सू० रेफलोपे, भूधातोः हू इत्यादेशे, पूर्ववदेव **पहूअं** इति भवति ।

७३६—करोति । कृगि-कृग् (डुकृञ् करणे) कृ+तिव् । ७३६ सू० कृग्धातोः स्थाने विकल्पेन कुण इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे, **कुणइ** आदेशाभावे ~९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे **करइ** इति भवति ।

७३७—काणेक्षितं (काणस्य ईक्षितम्) **करोति** । ७३७ सूत्रेण काणेक्षितं करोतीत्यर्थे कृग्-धातोः विकल्पेन णिआर इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **णिआरइ** इति भवति ।

७३८—निष्टम्भं करोतीत्यर्थे ७३८ सू० कृग्-धातोः विकल्पेन णिट्ठुह इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **णिट्ठुहइ** इति भवति । प्रस्तुतसूत्रेण **अवष्टम्भं करोतीत्यर्थे** कृग्-धातोः विकल्पेन संदाण इत्यादेशे **संदाणइ** इति भवति ।

७३९—"श्रमं करोति" इत्यर्थे ७३९ सू० कृग्-धातोः विकल्पेन वावम्फ इत्यादेशे वावम्फ+तिव् इति जाते, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **वावम्फइ** इति भवति ।

७४०—"मन्युना ओष्ठं मलिनं करोति" इत्यर्थे ७४० सू० कृग्-धातोः विकल्पेन णिव्वोल इत्यादेशे णिव्वोल+तिव् इति जाते, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **णिव्वोलइ** इति भवति ।

७४१—शिथिलो भवति लम्बते वा इत्यर्थे ७४१ सू० कृग्-धातोः विकल्पेन पयल्ल इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **पयल्लइ** इति भवति ।

७४२—निःशेषेण निरन्तरं वा पततीति निष्पतति तथा **आच्छोटयति** इत्यर्थे ७४२ सू० कृग्-धातोः विकल्पेन णीलुञ्छ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **णीलुञ्छइ** इति भवति ।

७४३—क्षुरं करोतीत्यर्थे ७४३ सू० कृग्-धातोः विकल्पेन कम्म इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **कम्मइ** इति भवति ।

७४४—चाटु करोतीत्यर्थे ७४४ सू० कृग्-धातोः स्थाने विकल्पेन गुलल इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे **गुललइ** इति भवति ।

७४५—स्मरति । स्मृधातुः स्मरणे । स्मृ+तिव् । ७४५ सू० स्मृधातोः स्थाने विकल्पेन झर झूर भर भल लढ विम्हर सुमर पयर पम्हुह इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **झरइ झूरइ भरइ भलइ लढइ विम्हरइ सुमरइ पयरइ पम्हुहइ** आदेशाभावे ३४८ सू० मकारस्य लोपे, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, पूर्ववदेव **सरइ** इति भवति ।

★ अथ चतुर्थपाद ★

❀ आत्म-गुण-प्रकाशिका हिन्दी-टीका ❀

मुक्त परम आनन्द से, निर्विकार, प्रभु रूप ।
संगविवर्जित[1], निरामय[2], निर्मल शुद्ध अनूप[3] ॥
रमण करें निज भाव में, जगती के आधार ।
महावीर भगवान को, नमन करे संसार ॥

ज्ञान-नेत्र जिस ने दिए, दिया धर्म सुखकार ।
पढ़ना, लिखना, बोलना, किया बहुत उपकार ॥

---

१. आसक्ति-रहित । २. रोग-रहित । ३. उपमा-रहित, बेजोड़ ।

अमिषा आत्मा राम है, अनुपम आगम ज्ञान।
मुनि-गण-नायक संयमी, गुरु मेरे भगवान॥

वन्दन कर गुरुदेव को, चरणों का धर ध्यान।
टीका पाद चतुर्थ की, लिखता है मुनि ज्ञान॥

★ अथ धातुओं को होने वाली आदेश-विधि (क) ★

कथि (कथ्) आदि धातुओं के स्थान में वज्जर आदि जो आदेश होते हैं, अब सूत्रकार उन का निर्देश कर रहे हैं—

६७२—अगले सूत्रों में जो इदित् (जिन में इकार इत् हो) धातु बतलाए जाएंगे, उनके स्थान में जो आदेश होते हैं, वे वैकल्पिक समझने चाहिएं। उनके उदाहरण वहीं दिए जाएंगे।

६७३—कथि धातु के स्थान में—१—**वज्जर**, २—**पज्जर**, ३—**उप्पाल**, ४—**पिसुण**, ५—**संघ**, ६—**बोल्ल**, ७—**चव**, ८—**जम्प**, ९—**सीस** और १०—**साह** ये दस आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—१—**कथयति**=वज्जरइ, पज्जरइ, उप्पालइ, पिसुणइ, संघइ, बोल्लइ, चवइ, जम्पइ, सीसइ, साहइ (वह कहता है)। यहां पर कथि धातु के स्थान में वज्जर आदि दस आदेश किए गए हैं। जहां ये आदेश नहीं हुए वहां **कहइ** यह रूप बनता है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि '**उक्कुक्कइ**' यह रूप तो उत् उपसर्गपूर्वक बुक्क (बोलने अर्थ में) धातु (उद्बुक्कति=बोलता है) से बनता है। इसके अतिरिक्त, वृत्तिकार फरमाते हैं कि अन्य आचार्यों ने सूत्रोक्त वज्जर आदि आदेश देशी-भाषाओं में पढ़े हैं, तत्तद्देशों की भाषाओं के धातु माने हैं, किन्तु हमने इन्हें कथि-धात्वादेश स्वीकार किया है। कथि-धात्वादेश मानने का यह लाभ है कि अनेकविध प्रत्ययों के परे होने पर भी ये आदेश किए जा सकते हैं। जैसे—१—**कथितः**=वज्जरिओ (कहा हुआ), २—**कथयित्वा**=वज्जरिऊण (कह कर), ३—**कथनम्**=वज्जरणं (कहना), ४—**कथयन्**=वज्जरन्तो (कहता हुआ), ५—**कथयितव्यम्**=वज्जरियव्वं (कहना चाहिए) यहां पर '**वज्जर**' इस आदेश में क्त, क्त्वा आदि प्रत्यय किए गए हैं। वृत्तिकार फरमाते हैं कि जैसे वज्जर आदेश से क्त आदि प्रत्यय करके उक्त रूप बनाए गए हैं, इसी भांति सभी कथि-धात्वादेशों से क्त, क्त्वा आदि प्रत्ययों को लाकर हज़ारों रूप बनाए जा सकते हैं। दूसरी बात, जैसे संस्कृत-भाषा में धातुओं से प्रत्यय, लोप तथा आगम आदि विविध-कार्य किए जाते हैं, वैसे ही अर्थात् संस्कृत भाषा के समान ही प्राकृत-भाषा में भी प्रत्यय, लोप तथा आगम आदि कार्य कर लेने चाहिएं।

६७४—दुःखविषयक कथिधातु के स्थान में **णिव्वर** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**दुःखं कथयति**=णिव्वरइ (वह दुःख कहता है) यहां कथि-धातु को णिव्वर, यह वैकल्पिक आदेश किया गया है।

६७५—जुगुप्सि धातु के स्थान में १—**झुण**, २—**दुगुच्छ** और ३—**दुगुञ्छ** ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**जुगुप्सति**=झुणइ, दुगुच्छइ, दुगुञ्छइ जहां पर प्रस्तुत सूत्र ने अपना कार्य नहीं किया, वहां पर **जुगुच्छइ** यह रूप होता है। पहले रूपों में १७७ सूत्र से गकार का लोप होने पर **दुउच्छइ**, **दुउञ्छइ**, **जुउच्छइ** (वह रक्षा करना चाहता है) ये रूप भी बनते हैं।

६७६—बुभुक्षि धातु और आचार-विषयक क्विप्-प्रत्ययान्त वीजि धातु के स्थान में यथासंख्य (संख्या के अनुसार) **णीरव** और **वोज्ज** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—१—**बुभुक्षति**=णीरवइ,

जहां यह आदेश नहीं हुआ वहां बुहुक्खइ (खाना चाहता है), २—वीजयति=वीज्जइ, आदेश के अभाव में वीजइ (वायु करता है) यह रूप बनता है।

६७७—ध्यै और गै इन धातुओं के स्थान में यथासंख्य-क्रमशः झा और गा ये दो आदेश होते हैं। जैसे—१—ध्यायति=झाअइ, झाइ, (वह चिन्तन करता है), २—निध्यायति—णिज्झाअइ, णिज्झाइ (वह ध्यानपूर्वक देखता है) नि उपसर्ग पूर्वक ध्यैधातु दर्शन=देखने अर्थ में प्रयुक्त होता है। ३—गायति=गाअइ, गाइ (वह गाता है), ४—ध्यानम्=झाणं (ध्यान, मन की एकाग्रता), ५—गानम्=गाणं (गायन) यहां पर ध्यै धातु के स्थान में झा तथा गै धातु के स्थान में गा यह आदेश क्रमशः किया गया है।

६७८—ज्ञाधातु के स्थान में जाण और मुण ये दो आदेश होते हैं। जैसे—जानाति=जाणइ, मुणइ (वह जानता है) यहां पर ज्ञाधातु को जाण और मुण ये दो आदेश किए गए हैं। ६७२ सूत्र के आधार पर तो इदित् धातु को ही वैकल्पिक आदेश हो सकते हैं, अन्य किसी धातु को नहीं, इसी लिए प्रस्तुत सूत्र में बहुलाधिकार का आश्रयण किया गया है। इस कारण यहां पर ज्ञाधातु के स्थान में बहुलता से जाण यह आदेश होता है। जैसे—१—ज्ञातम्=जाणिअं, आदेश के अभाव में णायं (जाना हुआ), २—ज्ञात्वा=जाणिऊण, णाऊण (जानकर), ३—ज्ञानम्=जाणणं, णाणं (ज्ञान, जानना), यहां पर ज्ञाधातु को बहुलता से 'जाण' यह आदेश किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि 'मणइ' यह रूप तो मन्यते (मानता है, समझता है) इस शब्द से बनता है। मन्यते यह रूप दिवादिगणीय मन धातु का है और तनादिगण के मनु (अवबोधने) धातु के प्रथमपुरुष के एक वचन का रूप मनुते बनता है।

६७९—उद् उपसर्ग से परे ध्मा-धातु के स्थान में 'धुमा' यह आदेश होता है। जैसे—उद्धमति=उद्धुमाइ (उच्च स्वर से शंख बजाता है)। यहां 'ध्मा' धातु को धुमा यह आदेश किया गया है।

६८०—श्रद् इस अव्ययपद से परे यदि 'धा' धातु हो तो उसके स्थान में 'दह' यह आदेश होता है। जैसे—१—श्रद्दधाति=सद्दहइ (वह श्रद्धा करता है), २—श्रद्दधानो जीवः=सद्दहमाणो जीवो (श्रद्धा करता हुआ यह जीव) यहां पर 'धा' धातु को 'दह' यह आदेश किया गया है।

६८१—पिबि (पा) धातु के स्थान में १—पिज्ज, २—डल्ल, ३—पट्ट और ४—घोट्ट ये चार आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—पिबति=पिज्जइ, डल्लइ, पट्टइ, घोट्टइ आदेश के अभाव में—पिअइ (वह पान करता है, पीता है) यह रूप बनता है। यहां पिबि-धातु के स्थान में पिज्जादि आदेश किए गए हैं।

६८२—उद् उपसर्गपूर्वक वाति (वा) धातु के स्थान में ओरुम्मा और वसुआ ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—उद्वाति=ओरुम्माइ, वसुआइ आदेश के अभाव में उव्वाइ (वह सूखा करता है) यह रूप बनता है।

६८३—निपूर्वक द्रा धातु के स्थान में ओहीर और उङ्घ ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—निद्राति=ओहीरइ, उङ्घइ आदेश के अभाव में निद्दाइ (वह निद्रा लेता है) यह रूप बनता है।

६८४—आ उपसर्ग-पूर्वक घ्रा धातु के स्थान में 'आइग्घ' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—आजिघ्रति=आइग्घइ आदेश के अभाव में अग्घाइ (वह सूंघता है) ऐसा रूप बनता है।

६८५—स्ना धातु के स्थान में 'अब्भुत्त' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—स्नाति=

अब्भुत्तइ आदेश के अभाव में—**ण्हाइ** (वह स्नान करता है) यह रूप बनता है।

६८६—**सम्** उपसर्ग पूर्वक स्त्यै धातु के स्थान में '**खा**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**संस्त्यायते**=संखाइ (वह संघात करता है,वह फैलाता है),२—**संस्तीनम्**=संखायं (स्त्यान करना) यहाँ स्त्यै धातु को खा यह आदेश किया गया है।

६८७—स्था-धातु के स्थान में १—ठा, २—**थक्क**, ३—**चिट्ठ** और ४—**निरप्प** ये चार आदेश होते हैं। जैसे—१—तिष्ठति=ठाइ, ठाअइ (वह ठहरता है), २—**स्थानम्**=ठाणं (स्थान-ठहरना,जगह), ३—**प्रस्थित:**=पट्ठिओ (जाता हुआ), ४—**उत्थित:**=उट्ठिओ (उठा हुआ),५—**प्रस्थापित:**=पट्ठाविओ (रक्खा हुआ), ६—**उत्थापित:**=उट्ठाविओ (उठाया हुआ), ७—**तिष्ठति**=थक्कइ, चिट्ठइ, निरप्पइ, ८—**स्थित्वा**=चिट्ठिऊण (ठहर कर) यहां पर स्था धातु के स्थान में ठा आदि आदेश किए गए हैं। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं-कहीं पर स्थाधातु को ये आदेश नहीं भी होते। जैसे—१—**स्थितम्**=थिअं (ठहरा हुआ), २—**स्थानम्**=थाणं, ३—**प्रस्थित:**=पत्थिओ, ४—**उत्थित:**=उत्थिओ, ५—**स्थित्वा**=थाऊण, यहां पर स्थाधातु के स्थान में '**ठा**' आदि आदेश नहीं किये जा सके।

६८८—उद् उपसर्ग से परे यदि स्था धातु हो तो उसके स्थान में ठ और कुक्कुर ये दो आदेश होते हैं। जैसे—१ **उत्तिष्ठति**=उट्ठइ, उक्कुक्कुरइ (वह उठता है) यहां पर स्था धातु को 'ठ' आदि दो आदेश किए गए हैं।

६८९—**म्लै** धातु के स्थान में **वा** और **पव्वाय** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**म्लायति**=वाइ, पव्वायइ आदेश के अभाव-पक्ष में—**मिलाइ** (वह मुरझाता है) ऐसा रूप बनता है।

६९०—निर्-पूर्वक मा धातु के स्थान में **निम्माण** और **निम्मव** ये दो आदेश होते हैं। जैसे—**निर्मिमीते**=निम्माणइ, निम्मवइ (वह निर्माण करता है) यहां पर निर्-पूर्वक मा धातु को **निम्माण** आदि दो आदेश किए गए हैं।

६९१—क्षिधातु के स्थान में विकल्प से 'णिज्झर' यह आदेश होता है। जैसे—**क्षीयते**=णिज्झरइ आदेश के अभावपक्ष में—**झिज्जइ** (वह नष्ट होता है) यह रूप बनता है।

६९२—ण्यन्त (जिसके अन्त में णि हो) छदि धातु के स्थान में—१—**णुम**, २ **नूम**, ३—**सन्नुम**, ४—**ढक्क**, ५—**ओम्बाल** और ६—**पव्वाल** ये छह आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे - **छादयति**=णुमइ, नूमइ, सन्नुमइ, ढक्कइ, ओम्बालइ, पव्वालइ आदेश के अभाव-पक्ष में—**छायइ** (वह ढांकता है) यह रूप बनता है। जहां पर २२९ सूत्र से आदिम नकार को विकल्प से णकार कर दिया गया वहां पर **णूमइ** यह रूप भी हो जाता है।

६९३ - निपूर्वक वृग् धातु और पति(पत्)धातु इन दोनों ण्यन्त धातुओं के स्थान में विकल्प से '**णिहोड**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**निवारयति**=णिहोडइ, आदेश के अभाव पक्ष में—**निवारेइ** (वह रुकवाता है), २—**पातयति**=णिहोडइ आदेश के अभाव-पक्ष में—**पाडेइ** (वह गिरवाता है) यह रूप बनता है।

६९४—ण्यन्त दूङ् धातु के स्थान में '**दूम**' यह आदेश होता है। जैसे—**दूनयति मम हृदयम्**=दूमेइ मज्झ हिअयं (वह मेरे हृदय को दुःखी करता है) यहां ण्यन्त दूङ् धातु को दूम यह आदेश किया गया है।

६९५—ण्यन्त धवल् धातु के स्थान में '**दुम**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**धवल-**

यति=दुमइ, आदेश के अभावपक्ष में—धवलइ (वह सफेद करवाता है) यह रूप बनता है। इस के अतिरिक्त, ९०९ सूत्र से दुम के ह्रस्व उकार को दीर्घ ऊकार भी हो जाता है। जैसे—धवलितम्=दूमिअं (सफेद कराया हुआ) यहां उकार को ऊकार किया गया है।

६९६—ण्यन्त तुलि धातु के स्थान में विकल्प से 'ओहाम' यह आदेश होता है। जैसे—तोलयति=ओहामइ आदेश के अभाव-पक्ष में—तुलइ (वह तोल कराता है) यह रूप बनता है।

६९७—ण्यन्त विरिचि धातु के स्थान में—१—ओलुण्ड, २—उल्लुण्ड और ३—पल्हत्थ ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—१—विरेचयति=ओलुण्डइ, उल्लुण्डइ, पल्हत्थइ आदेश के अभावपक्ष में—विरेअइ (वह बाहिर निकलता है) यह रूप बनता है।

६९८—ण्यन्त तडिधातु के स्थान में १—आहोड और २—विहोड ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—ताडयति=आहोडइ, विहोडइ आदेश के अभावपक्ष में ताडेइ (वह ताड़ना कराता है) यह रूप बनता है।

६९९—ण्यन्त मिश्रि धातु के स्थान में १—वीसाल और २—मेलव ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—मिश्रयति=वीसालइ, मेलवइ आदेश के अभावपक्ष में—मिस्सइ (वह मिलाता है) यह रूप बनता है।

७००—ण्यन्त उद्धूलि धातु के स्थान में 'गुण्ठ' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—उद्धूलयति=गुण्ठइ आदेश के अभाव-पक्ष में—उद्धूलेइ (वह ऊपर को धूलि फेंकता है) यह रूप बनता है।

७०१—ण्यन्त भ्रमि धातु के स्थान में तालिअण्ट और तमाड ये दो आदेश विकल्प से हो जाते हैं। जैसे—भ्रमयति=तालिअण्टइ, तमाडइ आदेश के अभावपक्ष में—भामेइ, भमाडेइ, भमावेइ (वह भ्रमण करता है) ये रूप हो जाते हैं।

७०२—ण्यन्त नशि (नश्) धातु के स्थान में १—विउड, २—नासव, ३—हारव, ४—विप्पगाल और ५—पलाव ये पांच आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—नाशयति=विउडइ, नासवइ, हारवइ, विप्पगालइ, पलावइ आदेश के अभावपक्ष में—नासइ (वह नाश कराता है) यह रूप बन जाता है।

७०३—ण्यन्त दृशि धातु के स्थान में—१—दाव, २—दंस और ३—दक्खव ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—दर्शयति=दावइ, दंसइ, दक्खवइ आदेश के अभावपक्ष में—दरिसइ (वह दिखलाता है) यह रूप बन जाता है।

७०४—उद्-उपसर्गपूर्वक ण्यन्त घटिधातु के स्थान में 'उग्ग' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—उद्घाटयति=उग्गइ आदेश के अभावपक्ष में—उग्घाडइ (वह उद्घाटन करता है, प्रारंभ कराता है) यह रूप बन जाता है।

७०५—ण्यन्त स्पृह् धातु के स्थान में 'सिह' यह आदेश होता है। जैसे—स्पृहयति=सिहइ (वह इच्छा कराता है) यहां स्पृह् धातु के स्थान में 'सिह' यह आदेश किया गया है।

७०६—संभावि धातु के स्थान में आसङ्घ यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—संभावयति=आसङ्घइ आदेश के अभावपक्ष में—संभावइ (वह संभावना कराता है) यह रूप बनता है।

७०७—उद्-उपसर्ग-पूर्वक ण्यन्त नमि धातु के स्थान में—१—उत्थंघ, २—उल्लाल, ३—गुलुगुञ्छ और ४—उप्पेल ये चार आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—उन्नामयति=उत्थङ्घइ, उल्लालइ, गुलुगुञ्छइ, उप्पेलइ आदेशों के अभाव-पक्ष में—उन्नामइ (वह ऊपर उठाता है) यह रूप होता है।

७०८—प्र-उपसर्ग-पूर्वक ण्यन्त स्था-धातु के स्थान में १—**पट्ठव** और २—**पेण्डव** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**प्रस्थापयति**=पट्ठवइ, पेण्डवइ आदेशों के अभावपक्ष में—**पट्ठावइ** (वह स्थापित कराता है) यह रूप बन जाता है।

७०९—वि उपसर्गपूर्वक ण्यन्त ज्ञा-धातु के स्थान में **वोक्क** और **अवुक्क** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**विज्ञापयति**=वोक्कइ, अवुक्कइ आदेशों के अभाव-पक्ष में **विण्णवइ** (वह विशेष ज्ञान कराता है) यह रूप बन जाता है।

७१०—ण्यन्त अर्पिधातु के स्थान में—१—**अल्लिव**, २—**चच्चुप्प** और ३—**पणाम** ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**अर्पयति**=अल्लिवइ, चच्चुप्पइ, पणामइ आदेशों के अभाव-पक्ष में **अप्पेइ** (वह अर्पण कराता है) यह रूप बनता है।

७११—ण्यन्त **या** धातु के स्थान में '**जव**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**यापयति**=जवइ आदेश के अभाव-पक्ष में **जावेइ** (वह गमन कराता है) यह रूप बन जाता है।

७१२—ण्यन्त प्लावि-धातु के स्थान में—१—**ओम्बाल** और २—**पव्वाल** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**प्लावयति**=ओम्बालइ, पव्वालइ आदेशों के अभावपक्ष में—**पावेइ** (वह तर-ब-तर कराता है) यह रूप बन जाता है।

७१३—ण्यन्त विकोशि नाम-धातु के स्थान में **पक्खोड** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**विकोशयति**=पक्खोडइ आदेश के अभाव-पक्ष में **विकोसइ** (वह विकसित कराता है) यह रूप बन जाता है।

७१४—ण्यन्त रोमन्थि-धातु के स्थान में **ओग्गाल** और **वग्गोल** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**रोमन्थयति**=ओग्गालइ, वग्गोलइ आदेशों के अभाव-पक्ष में **रोमन्थइ** (वह चबाई वस्तु को पुन: चबाता है) यह रूप बनता है।

७१५—स्वार्थण्यन्त (स्वार्थ में विहित णि प्रत्यय जिसके अन्त में हो) कमि धातु के स्थान में '**णिहुव**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**कामयति**=णिहुवइ, आदेश के अभाव-पक्ष में **कामेइ** (वह इच्छा कराता है) यह रूप होता है।

७१६—ण्यन्त प्रकाशिधातु के स्थान में '**णुव्व**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**प्रकाशयति**=णुव्वइ, आदेश के अभाव-पक्ष में **पयासेइ** (वह प्रकाश कराता है) यह रूप होता है।

७१७—ण्यन्त कम्पि धातु के स्थान में **विच्छोल** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**कम्पयति**=विच्छोलइ आदेश के अभाव-पक्ष में **कम्पेइ** (वह कम्पाता है) यह रूप बनता है।

७१८—ण्यन्त आरुहि-धातु के स्थान में '**वल**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**आरोहयति**=वलइ, आदेश के अभावपक्ष में **आरोवेइ** (वह चढ़वाता है) यह रूप बन जाता है।

७१९—स्वार्थण्यन्त (जिस के अन्त में स्वार्थ में णि किया गया हो) दुलि धातु के स्थान में '**रङ्खोल**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**दोलयति**=रङ्खोलइ आदेश के अभावपक्ष में **दोलइ** (वह झुलाता है) ऐसा रूप बनता है।

७२०—ण्यन्त रञ्जि धातु के स्थान में '**राव**' यह आदेश विकल्प से होता। जैसे—**रञ्जयति**—रावेइ आदेश के अभावपक्ष में—**रञ्जेइ** (वह रंग लगाता है) यह रूप होता है।

७२१—ण्यन्त 'घटि' धातु के स्थान में '**परिवाड**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—

घटयति—परिवाडेइ, आदेश के अभाव-पक्ष में **घडेइ** (वह निर्माण कराता है) यह रूप बनता है।

७२२—ण्यन्त वेष्टि धातु के स्थान में **'परिआल'** यह आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**वेष्टयति**—परिआलेइ आदेश के अभावपक्ष में **वेढेइ** (वह लपेटता या लपेटाता है) यह रूप बन जाता है।

७२३—वृत्तिकार फरमाते हैं कि इस सूत्र से पहले के सूत्रों में 'णि' की अनुवृत्ति ग्रहण की जाती थी, किन्तु यहां से इस की निवृत्ति हो जाती है। क्रुञ् धातु के स्थान में **'किण'** यह आदेश होता है। यदि क्रुञ् धातु के पूर्व वि उपसर्ग हो तो इसके स्थान में **'क्के'** तथा सूत्रोक्त चकार के कारण **'किण'** यह आदेश भी हो जाता है। जैसे—**१—क्रीणाति**=किणइ (वह खरीदता है), **२—विक्रीणाति**=विक्केइ, विकिणइ (वह बेचता है) यहां क्रुञ् को किण तथा वि उपसर्गपूर्वक क्रुञ् धातु को क्के और किण ये दो आदेश किए गए हैं।

७२४—भी धातु के स्थान में **भा** और **बीह** ये दो आदेश होते हैं। जैसे—**१—बिभेति**=भाइ, बीहइ (वह डरता है), **२—भीतम्**=भाइअं, बीहिअं (डरा हुआ) यहां पर भी धातु को भा आदि ये दो आदेश किए गए हैं। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर ये आदेश नहीं भी होते। जैसे—**भीतः**=भीओ (डरा हुआ) यहां पर भी को **'भा'** आदि आदेश नहीं हो सके।

७२५—आङ् (आ) उपसर्ग-पूर्वक लीङ् धातु के स्थान में **अल्ली** यह आदेश होता है। जैसे—**१—आलीयते**=अल्लीअइ (वह आलिङ्गन करता है, अथवा वह आता है), **२—आलीनः**=अल्लीणो (आया हुआ) यहां लीङ् धातु को 'अल्ली' यह आदेश किया गया है।

७२६—'नि' उपसर्ग-पूर्वक लीङ्-धातु के स्थान में **१—णिलीअ**, **२—णिलुक्क**, **३—णिरिग्घ**, **४—लुक्क**, **५—लिक्क** और **६—ल्हिक्क**—ये आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**निलीयते**=णिलीअइ, णिलुक्कइ, णिरिग्घइ, लुक्कइ, लिक्कइ ल्हिक्कइ आदेशों के अभावपक्ष में **निलिज्जइ** (वह छिपता है) यह रूप बनता है।

७२७—वि उपसर्गपूर्वक लीङ् धातु के स्थान में विरा यह आदेश विकल्प से हता है। जैसे—**विलीयते**—विराइ आदेश के अभावपक्ष में—**विलिज्जइ** (वह विनष्ट होता है) यह रूप बन जाता है।

७२८—रुधातु के स्थान में **रुञ्ज** और **रुण्ट** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**रौति**=रुञ्जइ, रुण्टइ आदेशों के अभावपक्ष में **रवइ** (वह आवाज करता है) ऐसा रूप बन जाता है।

७२९—श्रुटि (श्रु) धातु के स्थान में **'हण'** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**शृणोति**=हणइ, आदेश के अभावपक्ष में **सुणइ** (वह सुनता है) ऐसा रूप होता है। पाणिनीय व्याकरण में श्रु श्रवणे धातु पढ़ा गया है जबकि आचार्य हेमचन्द्र श्रुटि यह कहकर इसे टित् स्वीकार करते हैं।

७३०—धूगि (धू) धातु के स्थान में **'धुव'** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**धुनोति**=धुवइ, आदेश के अभावपक्ष में **धुणइ** (वह काम्पता है) ऐसा रूप बन जाता है।

७३१—भू धातु के स्थान में **१—हो**, **२—हुव** और **३—हव** ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**१—भवति**=होइ, हुवइ, हवइ (वह होता है), **२—भवन्ति**=होन्ति, हुवन्ति, हवन्ति (वे होते हैं) यहां भूधातु को हो आदि आदेश विकल्प से किए गए हैं। आदेशों के अभावपक्ष में **३—भवति**=भवइ, यह रूप होता है। **४—परिहीनविभवः**=परिहीणविहवो (जिसकी सम्पत्ति नष्ट हो गई), **५—भवितुम्**=भविउं (होने के लिए), **६—प्रभवति**=पभवइ (वह समर्थ होता है), **७—परिभवति**=परिभवइ (वह पराजय करता है, तिरस्कार करता है)। **८—सम्भवति**=संभवइ (वह उत्पन्न होता है) यहां पर

प्रस्तुत सूत्र से कोई कार्य नहीं किया गया, किन्तु ९०४ सूत्र से ऊकार के स्थान में 'प्रव' यह आदेश किया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर प्रस्तुत सूत्रोक्त आदेशों के अतिरिक्त अन्य आदेश भी होते हैं। जैसे—१—**उद्भवति**=उब्भुअइ (वह उत्पन्न होता है), २—**भूतम्**=भत्तं (हुआ) यहां पर भूधातु के ऊकार के स्थान में उकार तथा अकार ये आदेश क्रमशः किए गए हैं।

७३२—वित् (जिस में वकार इत् हो) प्रत्ययों को छोड़कर भूधातु के स्थान में हु यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—१—**भवन्ति**=हुन्ति (वे होते हैं), २—**भवन्**=हुन्तो (होता हुआ) यहां पर भू धातु को हु यह आदेश किया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि सूत्रकार ने '**अविति**' इस पद का क्यों ग्रहण किया है? उत्तर में निवेदन है कि **भवति**=होइ, आदि स्थलों में वित् (तिव्) प्रत्यय होने पर भू धातु को कहीं 'हु' यह आदेश न हो जाए, इस दृष्टि से सूत्रकार ने 'वित्' प्रत्यय परे रहने पर 'हु' इस आदेश का निषेध कर दिया है।

७३३—भूधातु का कर्ता यदि पृथक् और स्पष्ट हो तो इस धातु के स्थान में '**णिव्वड**' यह आदेश होता है। जैसे—**भवति**=णिव्वडइ (वह अलग होता है, या स्पष्ट होता है) यहां पर जो पृथक् और स्पष्ट कर्ता का उल्लेख किया है, इसका अभिप्राय इतना ही है कि भूधातु का जब '**वह पृथक् होता है**' अथवा '**वह स्पष्ट होता है**' ऐसा अर्थ होता है तभी इसके स्थान में **णिव्वड** यह आदेश होता है, अन्यथा नहीं। जैसे—**बालको भवति**=बालयो होइ (बालक होता है) यहां भू धातु का उक्त अर्थ न होने से प्रस्तुत सूत्र का कार्य नहीं हो सका।

७३४—प्रभुकर्तृक (जिस में प्रभु कर्ता हो) भूधातु के स्थान में '**हुप्प**' यह आदेश विकल्प से होता है। **वृत्तिकार** फरमाते हैं कि यदि भू धातु प्र-उपसर्ग पूर्वक हो तो उसका '**प्रभुत्व**' यह अर्थ होता है। जैसे—**अङ्गे एव न प्रभवति**=अङ्गे च्चिअ न पहुप्पइ (अङ्ग में ही वह प्रभु नहीं है, शारीरिक दृष्टि से शक्तिशाली नहीं है), आदेश के अभावपक्ष में—**पभवेइ** यह रूप बनता है।

७३५—यदि क्त प्रत्यय परे हो तो भूधातु के स्थान में 'हू' यह आदेश होता है। जैसे—१—**भूतम्**=हूअं (हुआ), २—**अनुभूतम्**=अणुहूअं (अनुभव किया हुआ), ३—**प्रभूतम्**=पहूअं (बहुत) यहां पर क्त-प्रत्ययान्त भूधातु को 'हू' यह आदेश किया गया है।

७३६—कृगि-कृग् (डुकृञ्) धातु के स्थान में '**कुण**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**करोति**=कुणइ, आदेश के अभावपक्ष में—**करइ** यह रूप होता है।

७३७—काण (जिसकी एक आंख न हो) के ईक्षित (देखने) का विषय हो अर्थात् कानी दृष्टि से देखना, यह अर्थ अभीष्ट हो तो कृग् (डुकृञ्) धातु के स्थान में '**णिआर**' यह आदेश विकल्प से किया जाता है। जैसे—**काणेक्षितं करोति**=णिआरइ (वह कानी दृष्टि से देखता है) यहां पर कृग् धातु को णिआर यह वैकल्पिक आदेश किया गया है।

७३८—निष्टम्भविषयक (जिसका अर्थ निष्टम्भ-निश्चेष्ट (चेष्टा रहित) करना हो) तथा अवष्टम्भविषयक (जिसका अर्थ-अवष्टम्भ=झुकने की क्रिया, सहारा लेने की क्रिया या क्रोध आदि हो) कृग् धातु हो तो उसके स्थान में यथासंख्य-संख्या के अनुसार **णिट्ठुह** और **संदाण** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। अर्थात् निष्टम्भविषयक कृगि धातु को **णिट्ठुह** और अवष्टम्भविषयक कृगि धातु को **संदाण** यह आदेश होता है। जैसे—१—**निष्टम्भं करोति**=णिट्ठुहइ (वह चेष्टा-रहित करता है), २—**अवष्टम्भं करोति**=संदाणइ (वह झुकने या सहारा लेने की क्रिया करता है, क्रोध करता है) यहां

पर कृगि धातु को णिट्ठुह आदि दो आदेश किए गए हैं।

७३९—श्रम-विषयक (जिस का अर्थ श्रम-मेहनत करना हो) कृगि धातु के स्थान में '**वावम्फ**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**श्रमं करोति**=वावम्फइ (वह श्रम करता है) यहां पर कृगि धातु को '**वावम्फ**' यह आदेश किया गया है।

७४०—"मन्यु (क्रोध) करने से जब होठों में मालिन्य (कालापन, मैलापन) हो" इस अर्थ को अपना विषय (अर्थ) बनाने वाले कृगि धातु के स्थान में '**णिव्वोल**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**मन्युना ओष्ठं मलिनं करोति**=णिव्वोलइ (वह क्रोध से होठों को मलिन-खराब कर रहा है) आदेशों के अभाव-पक्ष में—'**मन्नुणा ओट्ठं मलिणं करेइ**' यह रूप बन जाता है।

७४१ - शैथिल्य (शिथिलता-ढीलापन) विषयक (विषय-अर्थ हो जिस का) तथा लम्बन (लटकना, झूलना) विषयक कृगि धातु के स्थान में—'**पयल्ल**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**शिथिलो भवति, लम्बते वा**=पयल्लइ (वह शिथिल होता है, अथवा लटकता है, झूलता है) यहां पर कृगि धातु को '**पयल्ल**' यह आदेश किया गया है।

७४२—निष्पतन-विषयक (जिस का अर्थ झपट कर निकलना, शीघ्र बाहिर आना हो) अथवा आस्फोटन-विषयक (जिस का अर्थ आस्फोटन=उँगलियां चटकाना हो) कृगि-धातु के स्थान में '**णीलुञ्छ**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**निष्पतति, आस्फोटयति वा**=णीलुञ्छइ (वह झपट कर निकलता है, अथवा उँगलियां चटकाता है) यहां पर कृगि धातु को **णीलुञ्छ** यह आदेश किया गया है।

७४३—क्षुरविषयक (जिस का अर्थ क्षुर=उस्तुरे से सम्बन्धित हो) कृगि धातु के स्थान में '**कम्म**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**क्षुरं करोति**=कम्मइ (क्षुर-सम्बन्धी कार्य करता है, हजामत बनवाता है) यहां पर कृगि धातु को **कम्म** यह आदेश किया गया है।

७४४—चाटुविषयक (जिसका अर्थ चाटु-खुशामद करना हो) कृगि-धातु के स्थान में '**गुलल**' यह आदेश विकल्प से किया जाता है। जैसे—**चाटु करोति**=गुललइ (वह खुशामद करता है) यहां पर कृगि धातु को '**गुलल**' यह आदेश किया गया है।

७४५—स्मृ धातु के स्थान में—**१—झर, २—झूर, ३—भर, ४—भल, ५—लढ, ६—विम्हर, ७—सुमर, ८—पयर** और **९—पम्हुह** ये ९ आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**स्मरति**=झरइ, झूरइ, भरइ, भलइ, लढइ, विम्हरइ, सुमरइ, पयरइ, पम्हुहइ आदेशों के अभावपक्ष में—**सरइ** (वह याद करता है) यह रूप बन जाता है।

★ अथ धात्वादेश-विधिः (ख) ★

७४६—**विस्मुः पम्हुस-विम्हर-वीसराः । ८ । ४ । ७५ ।** विस्मरतेरेते आदेशा भवन्ति। पम्हुसइ, विम्हरइ, वीसरइ।

७४७—**व्याहृगेः कोक्क-पोक्कौ । ८ । ४ । ७६ ।** व्याहरतेरेतावादेशौ वा भवतः। कोक्कइ। ह्रस्वत्वे तु कुक्कइ। पोक्कइ। पक्षे, वाहरइ।

७४८—**प्रसरेः पयल्लोवेल्लौ । ८ । ४ । ७७ ।** प्रसरतेः पयल्ल, उवेल्ल इत्यावादेशौ वा भवतः। पयल्लइ, उवेल्लइ, पसरइ।

७४९—महमहो गन्धे । ८ । ४ । ७८ । प्रसरतेर्गन्धविषये महमह इत्यादेशो वा भवति । महमहइ मालई । मालइ-गन्धो पसरइ । गन्ध इति किम् ? पसरइ ।

७५०—निस्सरेर्णीहर-नील-धाड-वरहाडाः । ८ । ४ । ७९ । निस्सरतेरेते चत्वार आदेशा वा भवन्ति । णीहरइ, नीलइ, धाडइ, वरहाडइ, नीसरइ ।

७५१—जाग्रेर्जग्गः । ८ । ४ । ८० । जागर्तेर्जग्ग इत्यादेशो वा भवति । जग्गइ । पक्षे जागरइ ।

७५२—व्याप्रेराअड्डः । ८ । ४ । ८१ । व्याप्रियतेराअड्ड इत्यादेशो वा भवति । आअड्डेइ, वावरेइ ।

७५३—संवृगे: साहर-साहट्टौ । ८ । ४ । ८२ । संवृणोतेः साहर, साहट्ट इत्यादेशौ वा भवतः । साहरइ, साहट्टइ, संवरइ ।

७५४—आदृङः सन्नामः । ८ । ४ । ८३ । आद्रियतेः सन्नाम इत्यादेशो वा भवति । सन्नामइ, आदरइ ।

७५५—प्रहृगः सारः । ८ । ४ । ८४ । प्रहरतेः सार इत्यादेशो वा भवति । सारइ, पहरइ ।

७५६—अवतरेरोह-ओरसौ । ८ । ४ । ८५ । अवतरतेः ओह, ओरस इत्यादेशौ वा भवतः । ओहइ, ओरसइ, ओअरइ ।

७५७—शकेश्चय-तर-तीर-पाराः । ८ । ४ । ८६ । शक्नोतेरेते चत्वार आदेशा वा भवन्ति । चयइ, तरइ, तीरइ, पारइ, सक्कइ । त्यजतेरपि चयइ । हानिं करोति । तरतेरपि तरइ । तीरयतेरपि तीरइ । पारयतेरपि पारेइ । कर्म समाप्नोति ।

७५८—फक्कस्थक्कः । ८ । ४ । ८७ । फक्कतेस्थक्क इत्यादेशो भवति । थक्कइ ।

७५९—श्लाघः सलहः । ८ । ४ । ८८ । श्लाघतेः सलह इत्यादेशो भवति । सलहइ ।

७६०—खचेर्वेअडः । ८ । ४ । ८९ । खचतेर्वेअड इत्यादेशो वा भवति । वेअडइ, खचइ ।

७६१—पचेः सोल्ल-पउलौ । ८ । ४ । ९० । पचतेः सोल्ल, पउल इत्यादेशौ वा भवतः । सोल्लइ, पउलइ, पयइ ।

७६२—मुचेश्छड्डावहेड-मेल्लोस्सिक्क-रेअव-णिल्लुञ्छ-धंसाडाः । ८ । ४ । ९१ । मुञ्चतेरेते सप्तादेशा वा भवन्ति । छड्डइ, अवहेडइ, मेल्लइ, उस्सिक्कइ, रेअवइ, णिल्लुञ्छइ, धंसाडइ । पक्षे मुअइ ।

७६३—दुःखे णिव्वलः ।८।४।९२। दुःखविषयस्य मुचेः णिव्वल इत्यादेशो वा भवति । णिव्वलेइ दुःखं मुञ्चतीत्यर्थः ।

७६४—वञ्चेर्वेहव-वेलव-जूरवोमच्छाः । ८ । ४ । ९३ । वंचतेरेते चत्वार आदेशा वा भवन्ति । वेहवइ, वेलवइ, जूरवइ, उमच्छइ, वञ्चइ ।

७६५—रचेरुग्गहावह-विडविड्डाः । ८ । ४ । ९४ । रचेर्धातोरेते त्रय आदेशा वा भवन्ति । उग्गहइ, अवहइ, विडविड्डइ, रयइ ।

७६६—समारचेरुवहत्थ-सारव-समार-केलायाः । ८ । ४ । ९५ । समारचेरेते चत्वार आदेशा वा भवन्ति । उवहत्थइ, सारवइ, समारइ, केलायइ, समारयइ ।

७६७—सिचेः सिञ्च-सिम्पौ । ८ । ४ । ९६ । सिञ्चतेरेतावादेशौ वा भवतः । सिञ्चइ सिम्पइ, सेअइ ।

७६८—प्रच्छः पुच्छः । ८ । ४ । ९७ । पृच्छेः पुच्छादेशो भवति । पुच्छइ ।

७६९—गर्जेर्बुक्कः । ८ । ४ । ९८ । गर्जतेर्बुक्क इत्यादेशो वा भवति । बुक्कइ, गज्जइ ।

७७०—वृषे ढिक्कः । ८ । ४ । ९९ । वृषकर्तृकस्य गर्जेर्ढिक्क इत्यादेशो वा भवति । ढिक्कइ । वृषभो गर्जति ।

७७१—राजेरग्घ-छज्ज-सह-रीर-रेहाः ।८।४।१००। राजेरेते पञ्चादेशा वा भवन्ति । अग्घइ, छज्जइ, सहइ, रीरइ, रेहइ, रायइ ।

७७२—मस्जेराउड्ड-णिउड्ड-बुड्ड-खुप्पाः । ८ । ४ । १०१ । मज्जतेरेते चत्वार आदेशा वा भवन्ति । आउड्डइ, णिउड्डइ, बुड्डइ, खुप्पइ, मज्जइ ।

७७३—पुञ्जेरारोल-वमालौ । ८ । ४ । १०२ । पुञ्जेरेतावादेशौ वा भवतः । आरोलइ, वमालइ, पुञ्जइ ।

७७४—लस्जेर्जीहः ।८।४।१०३। लज्जतेर्जीह इत्यादेशो वा भवति । जीहइ, लज्जइ ।

७७५—लिजेरोसुक्कः । ८ । ४ । १०४ । तिजेरोसुक्क इत्यादेशो वा भवति । ओसुक्कइ, तेअणं ।

७७६—मृजेरुग्घुस-लुञ्छ-पुञ्छ-पुंस-फुस-पुस-लुह-हुल-रोसाणाः । ८ । ४ । १०५ । मृजेरेते नवादेशा वा भवन्ति । उग्घुसइ, लुञ्छइ, पुञ्छइ, पुंसइ, फुसइ, पुसइ, लुहइ, हुलइ, रोसाणइ । पक्षे मज्जइ ।

७७७—भञ्जेर्वेमय-मुसुमूर-मूर-सूर-सूड-विर-पविरञ्ज-करञ्ज-नीरञ्जाः । ८ । ४ । १०६ । भञ्जेरेते नवादेशा वा भवन्ति । वेमयइ, मुसुमूरइ, मूरइ, सूरइ, सूडइ, विरइ, पविरञ्जइ, करञ्जइ, नीरञ्जइ, भञ्जइ ।

७७८—अनुव्रजेः पडिअग्गः । ८ । ४ । १०७ । अनुव्रजेः पडिअग्ग इत्यादेशो वा भवति ।

पडिअग्गइ, अणुवच्चइ।

७७९—मर्जेर्विढवः।८।४।१०८। मर्जेर्विढव इत्यादेशो वा भवति। विढवइ, मज्जइ।

७८०—युजो जुञ्ज-जुज्ज-जुप्पाः।८।४।१०९। युजो जुञ्ज, जुज्ज, जुप्प इत्यादेशा भवन्ति। जुञ्जइ, जुज्जइ, जुप्पइ।

७८१—भुजो भुञ्ज-जिम-जेम-कम्माण्ह-चमढ-समाण-चड्डाः।८।४।११०। भुज एतेऽष्टादेशा भवन्ति। भुञ्जइ, जिमइ, जेमइ, कम्मेइ, अण्हइ, चमढइ, समाणइ, चड्डइ।

७८२—वोपेन कम्मवः।८।४।१११। उपेन युक्तस्य भुजेः कम्मव इत्यादेशो वा भवति। कम्मवइ, उवहुञ्जइ।

७८३—घटेर्गढः।८।४।११२। घटतेर्गढ इत्यादेशो वा भवति। गढइ, घडइ।

७८४—समो गलः।८।४।११३। संपूर्वस्य घटतेर्गल इत्यादेशो वा भवति। संगलइ, संघडइ।

७८५—हासेन स्फुटेर्मुरः।८।४।११४। हासेन करणेन यः स्फुटिस्तस्य मुरादेशो वा भवति। मुरइ। हासेन स्फुटति।

७८६—मण्डेश्चिञ्च-चिञ्चअ-चिञ्चिल्ल-रीड-टिविडिक्काः।८।४।११५। मण्डेरेते पञ्चादेशा वा भवन्ति। चिञ्चइ, चिञ्चअइ, चिञ्चिल्लइ, रीडइ, टिविडिक्कइ, मण्डइ।

७८७—तुडेस्तोड-तुट्ट-खुट्ट-खुडोक्खुडोल्लुक्क-णिलुक्क-लुक्कोल्लूराः।८।४।११६। तुडेरेते नवादेशा वा भवन्ति। तोडइ, तुट्टइ, खुट्टइ, खुडइ, उक्खुडइ, उल्लुक्कइ, णिलुक्कइ, लुक्कइ, उल्लूरइ, तुडइ।

७८८—घूर्णो घुल-घोल-घुम्म-पहल्लाः।८।४।११७। घूर्णेरेते चत्वार आदेशा भवन्ति। घुलइ, घोलइ, घुम्मइ, पहल्लइ।

७८९—विवृतेर्ढंसः।८।४।११८। विवृतेर्ढंस इत्यादेशो वा भवति। ढंसइ, विवट्टइ।

७९०—क्वथेरट्टः।८।४।११९। क्वथेरट्ट इत्यादेशो वा भवति। अट्टइ, कढइ।

७९१—ग्रन्थो गण्ठः।८।४।१२०। ग्रन्थेर्गण्ठ इत्यादेशो भवति। गण्ठइ, गण्ठी।

७९२—मन्थेर्घुसल-विरोलौ।८।४।१२१। मन्थेर्घुसल, विरोल इत्यादेशौ वा भवतः। घुसलइ, विरोलइ, मन्थइ।

७९३—ह्लादेरवअच्छः।८।४।१२२। ह्लादतेर्ण्यन्तस्याण्यन्तस्य च अवअच्छ इत्यादेशो भवति। अवअच्छइ, ह्लादते ह्लादयति वा। इकारो ण्यन्तस्यापि परिग्रहार्थः।

७९४—नेः सदो मज्जः।८।४।१२३। निपूर्वस्य सदो मज्ज इत्यादेशो भवति। अत्ता एत्थ णुमज्जइ।

७९५—छिदेर्दुहाव-णिच्छल्ल-णिज्झोड-णिव्वर-णिल्लूर-लूराः । ८ । ४ । १२४ । छिदेरेते षडादेशा वा भवन्ति । दुहावइ, णिच्छल्लइ, णिज्झोडइ, णिव्वरइ, णिल्लूरइ, लूरइ, पक्षे, छिन्दइ ।

७९६—आङा ओअन्दोद्दालौ । ८ । ४ । १२५ । आङा युक्तस्य छिदेरोअन्द, उद्दाल इत्यादेशौ वा भवतः । ओअन्दइ, उद्दालइ, अच्छिन्दइ ।

७९७—मृदो मल-मढ-परिहट्ट-खड्ड-चड्ड-मड्ड-पन्नाडाः । ८ । ४ । १२६ । मृद्नातेरेते सप्तादेशा भवन्ति । मलइ, मढइ, परिहट्टइ, खड्डइ, चड्डइ, मड्डइ, पन्नाडइ ।

७९८—स्पन्देश्चुलुचुलः । ८ । ४ । १२७ । स्पन्देश्चुलुचुल इत्यादेशो वा भवति । चुलुचुलइ, फन्दइ ।

७९९—निरः पदेर्वलः । ८ । ४ । १२८ । निर्पूर्वस्य पदेर्वल इत्यादेशो वा भवति । निव्वलइ, निप्पज्जइ ।

८००—विसंवदेर्विअट्ट-विलोट्ट-फंसाः । ८ । ४ । १२९ । विसंपूर्वस्य वदेरेते त्रय आदेशा वा भवन्ति । विअट्टइ, विलोट्टइ, फंसइ, विसंवयइ ।

८०१—शदो झड-पक्खोडौ । ८ । ४ । १३० । शीयतेरेतावादेशौ भवतः । झडइ, पक्खोडइ ।

८०२—आक्रन्देर्णीहरः । ८ । ४ । १३१ । आक्रन्देर्णीहर इत्यादेशो वा भवति । णीहरइ, अक्कन्दइ ।

८०३—खिदेर्जूर-विसूरौ । ८ । ४ । १३२ । खिदेरेतावादेशौ वा भवतः । जूरइ, विसूरइ, खिज्जइ ।

८०४—रुधेरुत्थङ्घः । ८ । ४ । १३३ । रुधेरुत्थङ्घ इत्यादेशो वा भवति । उत्थङ्घइ, रुन्धइ ।

८०५—निषेधेर्हक्कः । ८ । ४ । १३४ । निषेधतेर्हक्क इत्यादेशो वा भवति । हक्कइ, निसेहइ ।

८०६—क्रुधेर्जूरः । ८ । ४ । १३५ । क्रुधेर्जूर इत्यादेशो वा भवति । जूरइ, कुज्झइ ।

८०७—जनो जा-जम्मौ । ८ । ४ । १३६ । जायतेर्जा, जम्म इत्यादेशौ भवतः । जाअइ, जम्मइ ।

८०८—तनेस्तड-तड्ड-तड्डव-विरल्लाः । ८ । ४ । १३७ । तनेरेते चत्वार आदेशा वा भवन्ति । तडइ, तड्डइ, तड्डवइ, विरल्लइ, तणइ ।

८०९—तृपः थिप्पः । ८ । ४ । १३८ । तृप्यतेः थिप्प इत्यादेशो भवति । थिप्पइ ।

८१०—उपसर्पेरल्लिअः । ८ । ४ । १३९ । उपपूर्वस्य सृपेः कृतगुणस्य अल्लिअ इत्यादेशो वा भवति । अल्लिअइ, उवसप्पइ ।

८११—संतपेर्झङ्खः । ८ । ४ । १४० । संतपेर्झङ्ख इत्यादेशो वा भवति । झङ्खइ । पक्षे, संतप्पइ ।

८१२—व्यापेरोअग्गः । ८ । ४ । १४१ । व्याप्नोतेरोअग्ग इत्यादेशो वा भवति । ओअग्गइ, वावेइ ।

८१३—समापेः समाणः । ८ । ४ । १४२ । समाप्नोतेः समाण इत्यादेशो वा भवति । समाणइ, समावेइ ।

८१४—क्षिपेर्गलत्थाड्डुक्ख-सोल्ल-पेल्ल-णोल्ल-छुह-हुल-परी-घत्ताः । ८ । ४ । १४३ । क्षिपेरेते नवादेशा वा भवन्ति । गलत्थइ, अड्डुक्खइ, सोल्लइ, पेल्लइ, णोल्लइ, ह्रस्वत्वे तु णुल्लइ, छुहइ, हुलइ, परीइ, घत्तइ, खिवइ ।

८१५—उत्क्षिपेर्गुलगुञ्छोत्थंघाल्लत्थोब्भुत्तोस्सिक्क-हक्खुवाः । ८ । ४ । १४४ । उत्पूर्वस्य क्षिपेरेते षडादेशा वा भवन्ति । गुलगुञ्छइ, उत्थङ्घइ, अल्लत्थइ, उब्भुत्तइ, उस्सिक्कइ, हक्खुवइ, उक्खिवइ ।

८१६—आक्षिपेर्णीरवः । ८ । ४ । १४५ । आङ्पूर्वस्य क्षिपेर्णीरव इत्यादेशो वा भवति । णीरवइ, अक्खिवइ ।

८१७—स्वपेः कमवस-लिस-लोट्टाः । ८ । ४ । १४६ । स्वपेरेते त्रय आदेशा वा भवन्ति । कमवसइ, लिसइ, लोट्टइ, सुअइ ।

८१८—वेपेरायम्ब यज्झौ । ८ । ४ । १४७ । वेपेः आयम्ब, आयज्झ इत्यादेशौ वा भवतः । आयम्बइ, आयज्झइ, वेवइ ।

८१९—विलपेर्झङ्ख-वडवडौ । ८ । ४ । १४८ । विलपेर्झङ्ख, वडवड इत्यादेशौ वा भवतः । झङ्खइ, वडवडइ, विलवइ ।

८२०—लिपो लिम्पः । ८ । ४ । १४९ । लिम्पतेः लिम्प इत्यादेशो भवति । लिम्पइ ।

८२१—गुप्येर्विर-णडौ । ८ । ४ । १५० । गुप्यतेरेतावादेशौ वा भवतः । विरइ, णडइ । पक्षे गुप्पइ ।

८२२—क्रपोऽवहो णिः । ८ । ४ । १५१ । क्रपेः अवह इत्यादेशो ण्यन्तो भवति । अवहावेइ, कृपां करोतीत्यर्थः ।

८२३—प्रदीपेस्तेअव-सन्दुम-सन्धुक्काब्भुत्ताः । ८ । ४ । १५२ । प्रदीप्यतेरेते चत्वार आदेशा वा भवन्ति । तेअवइ, सन्दुमइ, सन्धुक्कइ, अब्भुत्तइ, पलीवइ ।

८२४—लुभेः संभावः । ८ । ४ । १५३ । लुभ्यतेः संभाव इत्यादेशो वा भवति । संभावइ, लुब्भइ ।

८२५—क्षुभेः खउर-पड्डुहौ । ८ । ४ । १५४ । क्षुभेः खउर, पड्डुह इत्यादेशौ वा भवतः । खउरइ, पड्डुहइ, खुब्भइ ।

८२६—आङो रभे रम्भ-ढवौ । ८ । ४ । १५५ । आङः परस्य रभेः रम्भ,ढव इत्यादेशौ वा भवतः । आरम्भइ, आढवइ, आरभइ ।

८२७—उपालम्भेर्झङ्ख-पच्चार-वेलवाः । ८ । ४ । १५६ । उपालम्भेरेते त्रय आदेशा वा भवन्ति । झङ्खइ, पच्चारइ, वेलवइ, उवालम्भइ ।

८२८—अवेर्जृम्भो जम्भा । ८ । ४ । १५७ । जृम्भेर्जम्भा इत्यादेशो भवति, वेस्तु न भवति । जम्भाइ, जम्भाअइ । अवेरिति किम् ? केलिपसरो विअम्भइ ।

८२९—भाराक्रान्ते नमेर्णिसुढः । ८ । ४ । १५८ । भाराक्रान्ते कर्तरि नमेर्णिसुढ इत्यादेशो भवति । णिसुढइ, पक्षे णवइ । भाराक्रान्तो नमतीत्यर्थः ।

८३०—विश्रमेर्णिव्वा । ८ । ४ । १५९ । विश्राम्यतेर्णिव्वा इत्यादेशो वा भवति । णिव्वाइ, वीसमइ ।

८३१—आक्रमेरोहावोत्थारच्छुन्दाः । ८ । ४ । १६० । आक्रमतेरेते त्रय आदेशा वा भवन्ति । ओहावइ, उत्थारइ, छुन्दइ, अक्कमइ ।

८३२—भ्रमेष्टिरिटिल्ल-ढुण्ढुल्ल-ढण्ढल्ल-चक्कम्म-भम्मड-भमड-भमाड-तलअण्ट-झण्ट-झम्प-भुम-गुम-फुम-फुस-ढुम-ढुस-परी-पराः । ८ । ४ । १६१ । भ्रमेरेतेऽष्टादशादेशा वा भवन्ति । टिरिटिल्लइ, ढुण्ढुल्लइ, ढण्ढल्लइ, चक्कमइ, भम्मडइ, भमडइ, भमाडइ, तलअण्टइ, झण्टइ, झम्पइ, भुमइ, गुमइ, फुमइ, फुसइ, ढुमइ, ढुसइ, परीइ, परइ, भमइ ।

८३३—गमेरई-अइच्छाणुवज्जावज्जसोक्कुसाक्कुस-पच्चड्ड-पच्छन्द-णिम्मह-णी-णीण-णीलुक्क-पदअ-रम्भ-परिअल्ल-वोल-परिअल-णिरिणास-णिवहावसेहावहराः ।८।४।१६२। गमेरेते एकविंशतिरादेशा वा भवन्ति । अईइ, अइच्छइ, अणुवज्जइ, अवज्जसइ, उक्कुसइ, अक्कुसइ, पच्चड्डइ, पच्छन्दइ, णिम्महइ, णीइ, णीणइ, णीलुक्कइ, पदअइ, रम्भइ, परिअल्लइ, वोलइ, परिअलइ, णिरिणासइ, णिवहइ, अवसेहइ, अवहरइ, पक्षे-गच्छइ । हम्मइ, णिहम्मइ, णीहम्मइ, आहम्मइ, पहम्मइ, इत्येते तु हम्म गतावित्यस्यैव भविष्यन्ति ।

८३४—आङा अहिपच्चुअः ।८।४।१६३। आङा सहितस्य गमेः अहिपच्चुअ इत्यादेशो वा भवति । अहिपच्चुअइ । पक्षे आगच्छइ ।

८३५—समा अब्भिडः । ८ । ४ । १६४ । समा युक्तस्य गमेः अब्भिड इत्यादेशो वा भवति । अब्भिडइ, संगच्छइ ।

८३६—अभ्याङोम्मत्थः । ८ । ४ । १६५ । अभ्याङ्भ्यां युक्तस्य गमेः उम्मत्थ इत्यादेशो वा भवति । उम्मत्थइ, अब्भागच्छइ, अभिमुखमागच्छतीत्यर्थः ।

८३७—प्रत्याङा पलोट्टः । ८ । ४ । १६६ । प्रत्याङ्भ्यां युक्तस्य गमेः पलोट्ट इत्यादेशो वा भवति । पलोट्टइ, पच्चागच्छइ ।

८३८—शमेः पडिसा-परिसामौ । ८ । ४ । १६७ । शमेरेतावादेशौ वा भवतः । पडिसाइ, परिसामइ, समइ ।

८३९—रमेः संखुड्ड-खेड्डोब्भाव-किलिकिञ्च-कोट्टुम-मोट्टाय-णीसर-वेल्लाः । ८ । ४ । १६८ । रमतेरेतेऽष्टादेशा वा भवन्ति । संखुड्डइ, खेड्डइ, उब्भावइ, किलिकिञ्चइ, कोट्टुमइ, मोट्टायइ, णीसरइ, वेल्लइ, रमइ ।

८४०—पूरेरग्घाडाग्घवोद्धुमाङ्गुमाहिरेमाः । ८ । ४ । १६९ । पूरेरेते पञ्चादेशा वा भवन्ति । अग्घाडइ, अग्घवइ, उद्धुमाइ, अङ्गुमइ, अहिरेमइ, पूरइ ।

८४१—त्वरस्तुवर-जअडौ । ८ । ४ । १७० । त्वरतेरेतावादेशौ भवतः । तुवरइ, जअडइ, तुवरन्तो, जअडन्तो ।

८४२—त्यादिशत्रोस्तूरः । ८ । ४ । १७१ । त्वरतेस्त्यादौ* शतरि च तूर इत्यादेशो भवति । तूरइ, तूरन्तो ।

८४३—तुरोऽत्यादौ ।८।४।१७२। त्वरोऽत्यादौ तुर आदेशो भवति । तुरिओ, तुरन्तो ।

८४४—क्षर-खिर-झर-पज्झर-पच्चड-णिच्चल-णिट्टुआः । ८ । ४ । १७३ । क्षरेरेते षडादेशा भवन्ति । खिरइ, झरइ, पज्झरइ, पच्चडइ, णिच्चलइ, णिट्टुअइ ।

८४५—उच्छल उत्थल्लः ।८।४।१७४। उच्छलतेरुत्थल्ल इत्यादेशो भवति । उत्थल्लइ ।

८४६—विगलेस्थिप्प-णिट्टुहौ । ८ । ४ । १७५ । विगलतेरेतावादेशौ वा भवतः । थिप्पइ, णिट्टुहइ, विगलइ ।

८४७—दलि-वल्योर्विसट्ट-वम्फौ । ८ । ४ । १७६ । दलेर्वलेश्च यथासंख्यं विसट्ट, वम्फ इत्यादेशौ वा भवतः । विसट्टइ, वम्फइ, पक्षे दलइ, वलइ ।

---

*ति आदिर्यस्य स त्यादिः, तस्मिन् त्यादावित्यर्थः ।

८४८—भ्रशेः फिड-फिट्ट-फुड-फुट्ट-चुक्क-भुल्ला । ८ । ४ । १७७ । भ्रशेरेते षडादेशा वा भवन्ति । फिडइ, फिट्टइ, फुडइ, फुट्टइ, चुक्कइ, भुल्लइ । पक्षे भसइ ।

८४९—नशेर्णिरणास-णिवहावसेह-पडिसा-सेहावहराः । ८ । ४ । १७८ । नशेरेते षडादेशा वा भवन्ति । णिरणासइ, णिवहइ, अवसेहइ, पडिसाइ, सेहइ, अवहरइ । पक्षे नस्सइ ।

८५०—अवात्काशो वासः । ८ । ४ । १७९ । अवात्परस्य काशो वास इत्यादेशो भवति । ओवासइ ।

★ अथ धात्वादेश-विधिः (ख) ★

अस्मिन् प्रकरणेऽपि पूर्वप्रकरणातुल्यमेव धात्वादेशविधिः निरूप्यते—

७४६—**विस्मरति** । विपूर्वकः स्मृधातुः विस्मरणे । विस्मृ+तिव् । ७४६ सू० विस्मृधातोः पम्हुस, विम्हर, वीसर इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **पम्हुसइ, विम्हरइ, वीसरइ** इति भवति ।

७४७— **व्याहरति** । व्याहृ आख्याने । व्याहृ+तिव् । ७४७ सू० व्याहृधातोः विकल्पेन कोक्क, पोक्क इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **कोक्कइ, पोक्कइ** इति भवति । **कोक्कइ, पोक्कइ** इत्यत्र ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे कृते **कुक्कइ, पुक्कइ** आदेशाभावे—व्याहृ+इ, इत्यत्र ३४९ सू० यकारलोपे, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे **वाहरइ** इति भवति ।

७४८—**प्रसरति** । प्रपूर्वकः सृधातुः प्रसरणे । प्रसृ+तिव् । ७४८ सू० प्रसृधातोः विकल्पेन पयल्ल, उवेल्ल इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **पयल्लइ, उवेल्लइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे **पसरइ** इति भवति ।

७४९—**प्रसरति मालती** । गन्धः प्रसरतीत्यर्थे ७४९ सू० प्रसृधातोः विकल्पेन महमह इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवं इचादेशे **महमहइ** इति भवति । **मालती** । मालती+सि । १७७ सू० तकारलोपे, १।१। ३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **मालई** इति भवति । **मालतीगन्धः** । मालत्याः-पुष्पविशेषस्य गन्धः । मालतीगन्ध+सि । १७७ सू० तकारलोपे, ४९१ सू० सेर्डो, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **मालई-गन्धो** इति भवति । **प्रसरति** । प्रसृ प्रसरणे । प्रसृ+तिव् । ३५० सू० रेफलोपे, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, तिव इचादेशे **पसरइ** इति भवति । वैकल्पिकत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः । **गन्ध इति किम् ?** प्रसृधातुः यदि गन्धविषयको भवेत्तदैव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति, नान्यथा । यथा—**प्रसरति**—पसरइ । गन्धविषयकत्वाभावादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता ।

७५०—**निस्सरति** । निस्पूर्वकः सृधातुः निर्गमने । निस्सृ+तिव् । ७५० सू० निस्सृधातोः विकल्पेन णीहर, नील, धाड, वरहाड इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **णीहरइ, नीलइ, धाडइ, वरहाडइ** आदेशाभावे ३४८ सू० सकारलोपे, ४३ सू० इकारस्य दीर्घे, दीर्घत्वात् ३६३ सू० सकारस्य द्वित्वाभावे, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे **नीसरइ** इति सिद्धम् ।

७५१—**जागर्ति** । जागृ निद्राक्षये । जागृ+तिव्, ७५१ सू० जागृधातोः विकल्पेन जग्ग इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **जग्गइ** आदेशाभावे ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे **जागरइ** इति भवति ।

७५२—**व्याप्रियते व्यापारं करोतीत्यर्थः** । व्यापृ-धातुः व्यापारे । वि-आ-पृ+तिव् । ७५२ सू० व्यापृधातोः विकल्पेन आअड्ड इत्यादेशे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे आ-

अङ्कुइ आदेशाभावे, व्याप्+इ, इत्यत्र ३४९ सू० यकारलोपे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, अकारस्य एकारे **वावरेइ** [व्यापारं करोतीत्यर्थः] इति भवति।

७५३—**संवृणोति**। संवृ संवरणे। संवृ+तिव्। ७५३ सू० संवृधातोः विकल्पेन साहर, साहट्ट इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **साहरइ, साहट्टइ** आदेशाभावे ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे **संवरइ** इति सिद्धम्।

७५४—**आद्रियते**। आदृङ् आदरे। आदृ+तिव्। ७५४ सू० आदृधातोः विकल्पेन सन्नाम इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **सन्नामइ** आदेशाभावे ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे **आदरइ** इति भवति।

७५५—**प्रहरति**। प्रहृधातुः प्रहारे। प्रहृ+तिव्। ७५५ सू० प्रहृधातोः विकल्पेन सार इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **सारइ** आदेशाभावे २५० सू० रेफलोपे, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे **पहरइ** इति भवति।

७५६—**अवतरति**। अवतृ अवतरणे। अवतृ+तिव्। ७५६ सू० अवतृधातोः विकल्पेन ओह, ओरस इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **ओहइ, ओरसइ** आदेशाभावे, १७२ सू० **अवोपसर्गस्य** स्थाने ओकारे, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, १७७ सू० तकारलोपे **ओअरइ इति** भवति।

७५७—**शक्नोति**। शक्लृ सामर्थ्ये। शक्+तिव्। ७५७ सू० शक्धातोः विकल्पेन चय, तर, तीर पार इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **चयइ, तरइ, तीरइ, पारइ** आदेशाभावे २६० सू० शकारस्य सकारे, ९०१ सू० ककारस्य द्वित्वे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **सक्कइ** इति भवति। **त्यजतेरपीति**। **चयइ** इति रूपं केवलशक्धातोरेव नाहि भवति, अपितु त्यज्धातोरपि भवति। यथा—**त्यजति**। त्यज त्यागे। त्यज्+तिव्। २८४ सू० त्यस्य चकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, १७७ सू० जकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, तिव इचादेशे **चयइ** इति सिद्धम्। एवमेव **तरइ** इति तरतेरपि भवति। यथा—**तरति**। तृ तरणे। तृ+तिव्। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, तिव इचादेशे **तरइ** इति भवति। **तीरइ** इति रूपं तीरयतेरपि भवति। यथा—**तीरयति**। तीर कर्मसमाप्तौ। तीर्+णिग्+तिव्। ६३८ सू० णिगः अकारे **तीरइ** इति भवति। **पारेइ** इति पारयतेरपि-पारधातोरपि भवति। यथा—**पारयति**। पार पारणे, समाप्तौ च। पार्+णिग्+तिव्। ६३८ सू० णिगः एकारे **पारेइ** इति भवति। इदमत्र हार्दम्—**चयइ, तरइ, तीरइ, पारइ** इत्येतानि रूपाणि केवलं **शक्धातोरेव** न बोध्यानि, **परमेतानि** रूपाणि क्रमशः त्यज-तृ-तीर-पार-धातूनामपि भवन्ति।

७५८—**फक्कति**। फक्कधातुः नीचैर्गतौ-मन्दगमने, असद्व्यवहारे च। फक्क्+तिव्। ७५८ सू० फक्कधातोः स्थाने थक्क इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **थक्कइ** इति भवति।

७५९—**श्लाघते**। श्लाघृ श्लाघायाम्। श्लाघ्+तिव्। ७५९ सू० श्लाघ्धातोः स्थाने सलह इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **सलहइ** इति भवति।

७६०—**खचति**। खच् पावनकरणे, बन्धने, सम्मुखाभिगमने च। खच्+तिव्। ७६० सू० खच्धातोः विकल्पेन वेअड इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **वेअडइ** आदेशाभावे ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **खचइ** इति भवति।

७६१—**पचति**। पच् पाके। पच्+तिव्। ७६१ सू० पच्धातोः विकल्पेन सोल्ल, पउल इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **सोल्लइ**, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **सुल्लइ, पउलइ** आदेशाभावे

९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, १७७ सू० चकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ पयइ इति भवति।

७६२—**मुञ्चति**। मुच्लृ मोचने। मुच्+तिव्। ७६२ सू० मुचधातो: स्थाने विकल्पेन छड्ड, अवहेड, मेल्ल, उस्सिक्क, रेअव, णिल्लुञ्छ, धंसाड इत्यादेशा:, ६२८ सू० तिव: स्थाने इचादेशे **छड्डइ, अवहेडइ, मेल्लइ, उस्सिक्कइ**, रेअवइ, णिल्लुञ्छइ, **धंसाडइ** आदेशाभावे ९१० धातोरन्तेऽकारागमे, १७७ सू० चकारलोपे **मुअइ** इति भवति।

७६३—"**दुःखं मुञ्चति**" इत्यर्थे ७६३ सू० मुच्धातो: स्थाने णिव्वल इत्यादेशे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे, ६२८ सू० तिव: स्थाने इचादेशे **णिव्वलेइ** इति भवति।

७६४—**वञ्चति**। वञ्च्धातु: वञ्चने। वञ्च्+तिव्। ७६४ सू० वञ्च्-धातो: विकल्पेन वेहव, वेलव, जूरव, उमच्छ इत्यादेशा:, ६२८ सू० तिव इचादेशे **वेहवइ, वेलवइ, जूरवइ, उमच्छइ** आदेशाभावे वञ्च्+इ इत्यत्र ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **वञ्चइ** इति भवति।

७६५—**रचयति**। रच्धातु: रचनायाम्। रच्+तिव्। ७६५ सू० रच्धातो: विकल्पेन उग्गह, अवह, विडविड्ड इत्यादेशा:, ६२८ सू० तिव इचादेशे **उग्गहइ, अवहइ, विडविड्डइ** आदेशाभावे ९१० सू० अकारागमे, १७७ सू० चकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ **रयइ** इति भवति।

७६६—**समारचयति**। समारच्-धातु: सम्यग्-मर्यादया रचनायाम्। समारच्+तिव्। ७६६ सू० समारचे: विकल्पेन उवहत्थ, सारव, समार, केलाय इत्यादेशा:, ६२८ सू० तिव इचादेशे **उवहत्थइ, सारवइ, समारइ, केलायइ**, आदेशाभावे ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, १७७ सू० चकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ **समारयइ** इति भवति।

७६७—**सिञ्चति**। सिच्लृ सेचने। सिच्+तिव्। ७६७ सू० सिच्धातो: स्थाने विकल्पेन सिञ्च, सिम्प इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **सिञ्चइ, सिम्पइ** आदेशाभावे ९०९ सू० इकारस्य एकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, १७७ सू० चकारलोपे **सेअइ** इति भवति।

७६८—**पृच्छति**। प्रच्छ्धातु: पृच्छायाम्। प्रच्छ्+तिव्। ७६८ सू० प्रच्छ्-धातो: स्थाने पुच्छ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **पुच्छइ** इति भवति।

७६९—**गर्जति**। गर्ज् गर्जने। गर्ज्+तिव्। ७६९ सू० गर्ज् धातो: विकल्पेन बुक्क इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव: स्थाने इचादेशे **बुक्कइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **गज्जइ** इति भवति।

७७०—**वृषभो गर्जति** इत्यर्थे ७७० सू० गर्ज्-धातो: स्थाने विकल्पेन ढिक्क इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव: स्थाने इचादेशे **ढिक्कइ** इति भवति।

७७१—**राजते**। राजृ दीप्तौ। राज्+तिव्। ७७१ सू० राज्धातो: स्थाने विकल्पेन अग्घ, छज्ज, सह, रीर, रेह इत्यादेशा:, ६२८ सू० तिव इचादेशे **अग्घइ, छज्जइ, सहइ, रीरइ, रेहइ** आदेशाभावे ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, १७७ सू० जकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ **रायइ** इति भवति।

७७२—**मज्जति**। टुमस्जो-मस्ज् शुद्धौ। मस्ज्+तिव्। ७७२ सू० मस्ज्धातो: विकल्पेन आउड्ड, णिउड्ड, बुड्ड, खुप्प इत्यादेशा:, ६२८ सू० तिव इचादेशे **आउड्डइ, णिउड्डइ, बुड्डइ, खुप्पइ** आदेशाभावे ३४८ सू० सकारलोपे, ३६० सू० जकारद्वित्वे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **मज्जइ** इति भवति।

७७३—**पुञ्जयति**। पुञ्ज् राशीकरणे। पुञ्ज्+तिव्। ७७३ सू० पुञ्ज्धातो: विकल्पेन आरोल, वमाल इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव: स्थाने इचादेशे **आरोलइ, वमालइ** आदेशाभावे ९१० सू० धातो-

रन्तेऽकारागमे **पुम्जइ** इति भवति।

७७४—**लज्जते**। लस्ज् लज्जायाम्। लस्ज्+ते। ७७४ सू० लस्ज्धातोः विकल्पेन जीह् इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **जीहइ** आदेशाभावे ३४८ सू० सकारलोपे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **लज्जइ** इति भवति।

७७५—**तेजति**। तिज् तेजने। तिज्+तिव्। ७७५ सू० तिज्धातोः विकल्पेन ओसुक्क इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **ओसुक्कइ** इति भवति। **तेजनम्**। तेजन+सि। वैकल्पिकत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ १७७ सू० जकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **तेअणं** इति भवति।

७७६—**मार्ष्टि**। मृज्धातुः शुद्धौ। मृज्+तिव्। ७७६ सू० मृज्धातोः विकल्पेन उग्घुस,लुञ्छ, पुञ्छ, पुंस,फुस, पुस, लुह, हुल, रोसाण इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **उग्घुसइ, लुञ्छइ, पुञ्छइ, पुंसइ, फुसइ, पुसइ, लुहइ, हुलइ, रोसाणइ** आदेशाभावपक्षे—१२६ सू० ऋकारस्य अकारे, ९०१ सू० जकारद्वित्वे, ९१० सू० अकारागमे **मज्जइ** इति भवति।

७७७—**भनक्ति**। भञ्ज् भंगे। भञ्ज्+तिव्। ७७७ सू० भञ्ज्धातोः स्थाने वेमय,मुसुमूर,मूर, सूर, सूड, विर, पविरञ्ज, करञ्ज, नीरञ्ज इत्यादेशाः वैकल्पिकाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **वेमयइ, मुसुमूरइ, मूरइ, सूरइ, सूडइ, विरइ, पविरञ्जइ, करञ्जइ, नीरञ्जइ** आदेशाभावे ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **भञ्जइ** ति भवति।

७७८—**अनुव्रजति**। अनुपूर्वकः व्रजधातुः पश्चाद्गमने। अनुव्रज्+तिव्। ७७८ सू० अनुव्रजः विकल्पेन पडिअग्ग इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **पडिअग्गइ** आदेशाभावे २२८ सू० नकारस्य णकारे, ३५० सू० रेफलोपे, ८९६ सू० जकारस्य च्च इत्यादेशे **अणुवच्चइ** इति भवति।

७७९—**अर्जति**। अर्ज् धातुः अर्जने। अर्ज्+तिव्। ७७९ सू० अर्ज् धातोः विकल्पेन विढव इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **विढवइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० जकारद्वित्वे, ९१० सू० अकारागमे **अज्जइ** इति भवति।

७८०—**युनक्ति**। युंजर् (युज्) योगे। युज+तिव्। ७८० सू० युज्धातोः जुञ्ज, जुज्ज, जुप्प इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **जुञ्जइ, जुज्जइ, जुप्पइ** इति भवति।

७८१—**भुङ्क्ते**। भुजधातुः भोजने। भुज्+तिव्। ७८१ सू० भुज्धातोः भुञ्ज, जिम, जेम, कम्म, अण्ह, चमढ,समाण,चड्ड इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **भुञ्जइ, जिमइ, जेमइ, कम्मइ**, ६४७ सू० अकारस्य एकारे **कम्मेइ, अण्हइ, चमढइ, समाणइ, चड्डइ** इति भवति।

७८२—**उपभुंक्ते**। उपभुज् उपभोगे। संस्कृतनियमेन उपभुञ्ज्+तिव् इति जाते, ७८२ सू० उपभुज्धातोः विकल्पेन कम्मव इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **कम्मवइ** आदेशाभावे २३१ सू० पकारस्य वकारे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **उवहुञ्जइ** इति भवति।

७८३—**घटते**। घट्धातुः चेष्टायाम्। घट्+तिव्। ७८३ सू० घट्धातोः स्थाने विकल्पेन गढ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **गढइ** आदेशाभावे १९५ सू० टकारस्य डकारे,९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **घडइ** इति भवति।

७८४—**संघटते**। संघट् सम्यक्-चेष्टायाम्। संघट्+तिव्। ७८४ सू० घट्धातोः स्थाने विकल्पेन गल इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **संगलइ** आदेशाभावे १९५ सू० टकारस्य डकारे,

९१० सू० अकारागमे **संघडइ** इति भवति ।

७८५–हासेन स्फुटति-विकसतीत्यर्थे ७८५ सू० स्फुट्धातोः स्थाने विकल्पेन मुर इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **मुरइ** इति भवति ।

७८६—मण्डति । मडिधातुः भूषणे । मडि+तिव् । ७८६ सू० मडिधातोः विकल्पेन चिञ्चादयः पञ्च आदेशाः भवन्ति, ६२८ सू० तिव इचादेशे **चिञ्चइ, चिञ्चअइ, चिञ्चिल्लइ, रीडइ, टिविडिक्कइ,** आदेशाभावे संस्कृतनियमेन मण्ड्+इ इति जाते, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **मण्डइ** इति भवति ।

७८७—तुडति । तुडिधातुः त्रोटने । तुड्+तिव् । ७८७ सू० तुड्धातोः स्थाने विकल्पेन तोड, तुट्ट, खुट्ट, खुड, उक्खुड, उल्लुक्क, णिलुक्क, लुक्क, उल्लूर इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **तोडइ, तुट्टइ, खुट्टइ, खुडइ, उक्खुडइ, उल्लुक्कइ, णिलुक्कइ, लुक्कइ, उल्लूरइ** आदेशाभावे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **तुडइ** इति भवति ।

७८८—घूर्णते । घूर्ण् भ्रमणे । घूर्ण्+तिव् । ७८८ सू० घूर्ण-धातोः घुल, घोल, घुम्म, पहल्ल इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **घुलइ, घोलइ, घुम्मइ, पहल्लइ** इति भवति ।

७८९—विवर्तते । विवृत् विशेषवर्तने । वि-वृत्+तिव् । ७८९ सू० विवृत्-धातोः विकल्पेन ढंस इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **ढंसइ** आदेशाभावे संस्कृत-नियमेन विवर्त्+इ इति जाते, २०१ सू० तस्य टकारे, ३६० सू० टकार-द्वित्वे, ९१० सू० अकारागमे **विवट्टइ** इति भवति ।

७९०—क्वथति । क्वथधातुः क्वथने । क्वथ+तिव् । ७९० सू० क्वथ्धातोः विकल्पेन अट्ट इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **अट्टइ** आदेशाभावे ३५० सू० वकारलोपे, ८९१ सू० थकारस्य ढकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **कढइ** इति भवति ।

७९१—ग्रन्थते । ग्रन्थ् ग्रन्थने । ग्रन्थ्+तिव् । ७९१ सू० ग्रन्थ्धातोः गण्ठ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **गण्ठइ** इति भवति । **ग्रन्थिः** । ग्रन्थि+सि । प्रस्तुतसूत्रेण ग्रन्थ् इत्यस्य गण्ठ इत्यादेशे, ५०८ सू० इकारदीर्घे, ११।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **गण्ठी** इति भवति ।

७९२—मथ्नाति । मथिधातुः मन्थने । संस्कृतनियमेन मन्थ्+तिव् इति स्थिते, ७९२ सू० मन्थ्-धातोः विकल्पेन घुसल, विरोल इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **घुसलइ, विरोलइ** आदेशाभावे ९१० सू० अकारस्यागमे **मन्थइ** इति भवति ।

७९३—ह्लादयति । ह्लाद् ह्लादने । ह्लाद्+णिग्+तिव् । इत्यत्र ७९३ सू० ण्यन्तह्लाद्धातोः अवअच्छ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **अवअच्छइ** इति भवति । **इकारो ण्यन्तस्य** । "ह्लादि" इत्यत्र इकारग्रहणं ण्यन्तस्य परिग्रहणार्थं बोध्यम् । ण्यन्तस्य अण्यन्तस्य च ह्लाद्धातोः **अवअच्छइ** इति रूपं भवतीति भावः ।

७९४—आत्मा । आत्मन्+सि=अत्ता, प्रक्रिया ३२२ सूत्रे ज्ञेया । **अत्र**=एत्थ, प्रक्रिया ५७२ सूत्रे ज्ञेया । **निषीदति** । निपूर्वकः षद्लृ (सद्) धातुः निषीदने । निसद्+तिव् । ७९४ सू० सद्धातोः स्थाने मज्ज इत्यादेशे, २२९ सू० नकारस्य णकारे, ९०९ सू० इकारस्य उकारे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **णुमज्जइ** इति भवति ।

७९५—छिनत्ति । छिदिधातुः द्वैधीकरणे । संस्कृतनियमेन छिन्द्+तिव् इति जाते, ७९५ सू० छिन्द्धातोः विकल्पेन दुहाव, णिच्छल्ल, णिज्झोड, णिव्वर, णिल्लूर, लूर इत्यादेशाः भवन्ति, ६२८ सू० तिव इचादेशे **दुहावइ, णिच्छल्लइ, णिज्झोडइ, णिव्वरइ, णिल्लूरइ, लूरइ** आदेशाभावे ९१० सू० अ-

कारस्यागमे **छिन्दइ** इति भवति ।

७९६—**अच्छिन्नत्ति** । आच्छिद्धातुः आच्छादने । आच्छिद्+तिव् । ७९६ सू० आच्छिद्धातोः विकल्पेन ओअन्द, उद्दाल इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **ओअन्दइ, उद्दालइ** आदेशाभावे संस्कृत-नियमेन आच्छिन्द्+इ इति जाते, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, पूर्ववदेव **अच्छिन्दइ** इति भवति ।

७९७—**मृद्नाति** । मृद् मर्दने । मृद्+तिव् । ७९७ सू० मृद्धातोः स्थाने मल, मढ, परिहट्ट, खड्ड, चड्ड, मड्ड, पन्नाड इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **मलइ, मढइ, परिहट्टइ, खड्डइ, चड्डइ, मड्डइ, पन्नाडइ** इति भवति ।

७९८—**स्पन्दते** । स्पदि स्पन्दने । संस्कृतनियमेन स्पन्द्+तिव् इति जाते, ७९८ सू० स्पन्द्धातोः विकल्पेन चुलुचुल इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **चुलुचुलइ**, आदेशाभावे ३२४ सू० स्पस्य स्थाने फकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **फन्दइ** इति भवति ।

७९९—**निष्पद्यते** । निपूर्वकः पद्धातु निष्पत्ती-क्रियासिद्धौ । निष्पद्+तिव् । इत्यत्र ७९९ सू० पद्धातोः विकल्पेन वल इत्यादेशे, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **निव्वलइ** आदेशाभावे ३४८ सू० षकारलोपे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वे, ८९५ सू० दकारस्य ज्ज इत्यादेशे **निप्प-ज्जइ** इति भवति ।

८००—**विसंवदति** । विसम्पूर्वकः वद्धातुः प्रतिकूले । विसंवद्+तिव् । इत्यत्र ८०० सू० विसं-वद्धातोः विकल्पेन विअट्ट, विलोट्ट, फंस इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **विअट्टइ, विलोट्टइ, फंसइ** आदेशाभावे ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, १७७ सू० दकारस्य लोपे, १८० सू० यकारस्य श्रुतौ **विसंवयइ** इति भवति ।

८०१—**शीयते** । षद्लृ शातने-विशीर्णतायाम् । सद्+तिव् । इत्यत्र ८०१ सू० सद्धातोः झड, पक्खोड इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **झडइ, पक्खोडइ** इति भवति ।

८०२—**आक्रन्दते** । आक्रन्द् क्रन्दने-रोदने । आक्रन्द्+तिव् । ८०२ सू० आक्रन्द्धातोः विकल्पेन णीहर इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **णीहरइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० ककारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ९१० सू० अकारागमे **अक्कन्दइ** इति भवति ।

८०३—**खिद्यते** । खिद् दैन्ये । खिद्+तिव् । ८०३ सू० खिद्धातोः विकल्पेन जूर, विसूर इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **जूरइ, विसूरइ** आदेशाभावे ८९५ सू० दकारस्य द्वित्वे जकारे **खि-ज्जइ** इति भवति ।

८०४—**रुणद्धि** । रुधिर् रोधने । रुध्+तिव् । ८०४ सू० रुध्-धातोः विकल्पेन उत्थङ्घ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **उत्थङ्घइ** आदेशाभावे ८८९ सू० धकारस्य न्ध इत्यादेशे **रुन्धइ** इति भवति ।

८०५—**निषेधति** । निपूर्वकः षिध्धातुः निषेधे । निषेध्+तिव् । ८०५ सू० निषेध्-धातोः वि-कल्पेन हक्क इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **हक्कइ** आदेशाभावे २६० सू० षकारस्य सकारे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, ९१० सू० अकारागमे **निसेहइ** इति भवति ।

८०६—**क्रुध्यति** । क्रुध् कोपे । क्रुध्+तिव् । ८०६ सू० क्रुध्धातोः जूर इत्यादेशे वैकल्पिके, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **जूरइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफस्य लोपे, ८८८ सू० धकारस्य ज्झ इत्यादेशे **कुज्झइ** इति भवति ।

८०७—**जायते** । जन् उत्पत्तौ । जन्+तिव् । ८०७ सू० जन्धातोः स्थाने जा, जम्म इत्यादेशौ, ९११ सू० अकारागमे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **जाअइ, जम्मइ** इति भवति ।

८०८—**तनोति** । तनु विस्तारे । तन्+तिव् । ८०८ सू० तन्धातोः स्थाने विकल्पेन तड, तड्ड, तड्डव, विरल्ल इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **तडइ, तड्डइ, तड्डवइ, विरल्लइ** आदेशाभावे २२८ सू० नकारस्य णकारे, ९१० सू० अकारागमे **तणइ** इति भवति ।

८०९—**तृप्यति** । तृप् तृप्तौ । तृप्+तिव् । ८०९ सू० तृप्धातोः स्थाने थिप्प इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **थिप्पइ** इति भवति ।

८१०—**कृतगुणस्य** । कृतः-विहितः, गुणः-ऋकारस्य अर् इत्यादेशो यस्य स कृतगुणस्तस्य । **उपसर्पति** । उपपूर्वकः सृप्धातु मन्दगतौ । उपसृप्+तिव् । संस्कृतनियमेन उपसर्प+तिव् इति जाते, ८१० उपसर्प्धातोः विकल्पेन अल्लिअ इत्यादेशे,६२८ सू० तिव इचादेशे **अल्लिअइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **उवसप्पइ** इति भवति ।

८११—**संतपति** । सम्पूर्वकः तप्धातुः सन्तापे । संतप्+तिव् । ८११ सू० संतप्धातोः स्थाने विकल्पेन झङ्ख इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **झङ्खइ** आदेशाभावे ९०१ सू० पकारस्य द्वित्वे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **संतप्पइ** इति भवति ।

८१२—**व्याप्नोति** । विपूर्वकः आप्लृ-धातुः व्याप्तौ-प्राप्तौ । व्याप्+तिव् । ८११ सू० व्याप्-धातोः स्थाने विकल्पेन ओअग्ग इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **ओअग्गइ**, आदेशाभावे ३४९ सू० यकारलोपे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६४७ अकारस्य एकारे **वावेइ** इति भवति ।

८१३—**समाप्नोति** । सम्-पूर्वकः आप्लृ (आप्) धातुः समाप्तौ । समाप्+तिव् । ८१३ सू० समाप्धातोः विकल्पेन समाण इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **समाणइ** आदेशाभावे २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे **समावेइ** इति भवति ।

८१४—क्षिपति । क्षिप क्षेपे । क्षिप्+तिव् । ८१४ सू० क्षिप्धातोः विकल्पेन गलत्थ, अड्डक्ख, सोल्ल, पेल्ल, णोल्ल, छुह, हुल, परी, घत्त इत्यादेशा , ६२८ सू० तिव इचादेशे **गलत्थइ, अड्डक्खइ, सोल्लइ, पेल्लइ, णोल्लइ**, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **सुल्लइ, पिल्लइ, णुल्लइ, छुहइ, हुलइ, परीइ, घत्तइ** आदेशाभावे २७४ सू० क्षस्य स्थाने खकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **खिवइ** इति भवति ।

८१५—**उत्क्षिपति** । उत्पूर्वकः क्षिप्धातुः ऊर्ध्वक्षेपे । उत्क्षिप्+तिव् । ८१५ सू० उत्क्षिप्धातोः विकल्पेन गुलगुञ्छ, उत्थङ्घ, अल्लत्थ, उब्भुत्त, उस्सिक्क, हक्खुव इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **गुलगुञ्छइ, उत्थङ्घइ, अल्लत्थइ, उब्भुत्तइ, उस्सिक्कइ, हक्खुवइ** आदेशाभावे ११ सू० तकारस्य, लोपे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९१० सू० अकारागमे **उक्खिवइ** इति भवति ।

८१६—**आक्षिपति** । आङ्पूर्वकः क्षिप्धातुः आक्षेपे । आक्षिप्+तिव् । ८१६सू० आक्षिप्धातोः विकल्पेन णीरव इत्यादेशे,६२८ सू० तिव इचादेशे **णीरवइ** आदेशाभावे २७४ सू० क्षस्य खकारे,३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, ८४ सू० आकारस्य अकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **अक्खिवइ** इति भवति ।

८१७—स्वपिति । स्वप् स्वप्ने । स्वप् + तिप् । ८१७ सू० विकल्पेन स्वप्धातोः कमवस, लिस, लोट्ट इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिप इचादेशे **कमवसइ, लिसइ, लोट्टइ** आदेशाभावे ६४ सू० आदेरकारस्य उकारे, ३५० सू० वकारलोपे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे १७७ सू० पकारस्य लोपे **सुवइ** इति भवति ।

८१८—वेपते । वेपृ-वेप् कम्पने । वेप् + ते । ८१८ सू० वेप्धातोः विकल्पेन आयम्ब, आयज्झ इत्यादेशौ, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **आयम्बइ, आयज्झइ** आदेशाभावे २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९१० सू० अकारागमे **वेवइ** इति भवति ।

८१९—विलपति । विलप् विलापे । विलप् + तिप् । ८१९ सू० विकल्पेन विलप्-धातोः झङ्ख, वडवड इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिप इचादेशे **झङ्खइ, वडवडइ** आदेशाभावे २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **विलवइ** इति भवति ।

८२०—लिम्पति । लिप् उपदेहे । लिप् + तिप् । ८२० सू० लिप्धातोः स्थाने लिम्प इत्यादेशे, ६२८ सू० तिपः स्थाने इचादेशे **लिम्पइ** इति भवति ।

८२१—गुप्यति । गुप् व्याकुलत्वे । गुप् + तिप् । ८२१ सू० गुप्धातोः विकल्पेन विर, णड इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिप इचादेशे **विरइ, णडइ** आदेशाभावे संस्कृतव्याकरणेन गुप्य + तिप् इति जाते, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० पकारद्वित्वे **गुप्पइ** इति भवति ।

८२२—क्रपते । क्रप् कृपापूर्वकगतौ । क्रप् + ते । ८२२ सू० क्रप्धातोः ण्यन्तः [णि अन्ते यस्य सः] अवह इत्यादेशे, अवह् + णि + ते इति जाते, ६३८ सू० णेः आवे इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० तिप इचादेशे **अवहावेइ** इति भवति । अत्र सूत्रे "कृपोऽवहो णिः" इति पाठस्तत्र **कृपयति कृपयते** । कृप् दौर्बल्ये । कृप् + तिप् । प्रस्तुतसूत्रेण कृप्-धातोः ण्यन्त अवह इत्यादेशे, पूर्ववदेव **अवहावेइ** इति बोध्यम् । इदमत्रान्तरम्—कृप्धातुः चुरादिगणीयः, क्रप्धातुस्तु भ्वादिगणीयः ।

८२३—प्रदीप्यते । प्रपूर्वकः दीप्धातुः प्रदीप्तौ । प्रदीप् + ते । ८२३ प्रदीप्धातोः तेअव, सन्दुम, सन्धुक्क, अब्भुत्त इत्यादेशाः वैकल्पिकाः, ६२८ सू० तिप इचादेशे **तेअवइ, सन्दुमइ, सन्धुक्कइ, अब्भुत्तइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे, २२१ सू० दकारस्य लकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **पलीवइ** इति भवति ।

८२४—लुभ्यति । लुभ् गार्ध्ये । लुभ् + तिप् । ८२४ सू० लुभ्धातोः विकल्पेन संभाव इत्यादेशे, ६२८ सू० तिप इचादेशे **संभावइ** आदेशाभावे ९०१ सू० भकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **लुब्भइ** इति भवति ।

८२५—क्षुभ्यति । क्षुभ क्षोभे । क्षुभ् + तिप् । ८२५ सू० क्षुभ्धातोः विकल्पेन खउर, पड्डुह इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिप इचादेशे **खउरइ, पड्डुहइ** आदेशाभावे २७४ सू० क्षस्य खकारे, पूर्वसूत्र [८२४] वर्णित-लुब्भइ-वदेव **खुब्भइ** इति भवति ।

८२६—आरभते । आरभ्धातुः आरंभे । आरभ् + ते । ८२६ सू० रभ्धातोः रम्भ, ढव इत्यादेशौ वैकल्पिकौ भवतः, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **आरम्भइ, आढवइ** आदेशाभावे ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **आरभइ** इति भवति ।

८२७—उपालभते । उप-आङ्पूर्वकः लभ्धातुः उपालम्भे । उपालभ् + ते । ८२७ सू० उपालभ्धातोः विकल्पेन झङ्ख, पच्चार, वेलव इत्यादेशाः, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **झङ्खइ, पच्चारइ, वेलवइ** आदेशाभावे संस्कृतनियमेन उपालम्भ + इ, इति जाते, ९१० सू० अकारागमे **उवालम्भइ** इति भवति ।

८२८—जृम्भते। जृम्भ जृम्भायाम्। जृम्भ्+ते। ८२८ सू० जृम्भ्धातोः स्थाने जम्भा इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **जम्भाइ**, ९११ सू० अकारागमे **जम्भाअइ** इति भवति। **अवेरिति किम्?** व्युपसर्गरहितस्य जृम्भधातोरेव जम्भादेशो भवति, नान्यथा। यत्र वि-उपसर्गसहितो जृम्भ्धातुस्तत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न भवति। यथा—केलिपसरो विजृम्भते। केलेः—कदलीफलस्य प्रसरः—विस्तारः। केलिप्रसर+सि। ३५० सू० संयुक्तरेफस्य लोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **केलिपसरो** इति भवति। **विजृम्भते।** विपूर्वकः जृम्भ्धातुः वर्धने। विजृम्भ्+ते। प्रस्तुतसूत्रस्याप्रावृत्तौ १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, १७७ सू० जकारलोपे, ९१० सू० अकारागमे, पूर्ववदेव **विअम्भइ** इति भवति।

८२९—भाराक्रान्तो नमति इत्यर्थे ८२९ सू० नम्धातोः णिसुढ इत्यादेशे, नम्+तिव्=णिसुढ+तिव् इति जाते, ६२८ सू० तिव इचादेशे **णिसुढइ** भाराक्रान्तो नमतीत्यर्थः। यत्र नायमर्थस्तत्र २२९ सू० नकारस्य णकारे, ८९७ सू० मकारस्य वकारे **णवइ** [नमस्कारं करोतीत्यर्थः] इति भवति।

८३०—विश्राम्यति। विपूर्वकः श्रम्धातुः विश्रामे। विश्रम्+तिव्। ८३० सू० विश्रम्धातोः विकल्पेन णिव्वा इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **णिव्वाइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे, ४३ सू० इकारदीर्घे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९१० सू० अकारागमे **वीसमइ** इति भवति।

८३१—आक्रमते। आङ्पूर्वकः क्रम्धातुः आक्रमणे। आक्रम्+ते। ८३१ सू० आक्रम्धातोः विकल्पेन ओहाव, उत्थार, छुन्द इत्यादेशाः, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **ओहावइ, उत्थारइ, छुन्दइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० ककारस्य द्वित्वे, ८४ सू० आकारस्य अकारे, ९१० सू० अकारागमे **अक्कमइ** इति भवति।

८३२—भ्रमति भ्रम्यति वा। भ्रमु भ्रमणे। भ्रम्+तिव्। ८३२ सू० भ्रम्धातोः स्थाने विकल्पेन टिरिटिल्ल, ढुण्ढुल्ल, ढण्ढल्ल, चक्कम्म, भम्मड, भमड, भमाड, तलअण्ट, झण्ट, झम्प, भुम, गुम, फुम, फुस, ढुम, ढुस, परी, पर इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **टिरिटिल्लइ, ढुण्ढुल्लइ, ढण्ढल्लइ, चक्कम्मइ, भम्मडइ, भमडइ, भमाडइ, तलअण्टइ, झण्टइ, झम्पइ, भुमइ, गुमइ, फुमइ, फुसइ, ढुमइ, ढुसइ, परीइ, परइ,** आदेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे, ९१० सू० अकारागमे **भमइ** इति भवति।

८३३—गच्छति। गम्लृधातुः गतौ। गम्+तिव्। ८३३ सू० गम्धातोः स्थाने विकल्पेन अई, अइच्छ इत्यादय एकविंशतिरादेशाः भवन्ति, ६२८ सू० तिव इचादेशे **अईइ, अइच्छइ, अणुवज्जइ, अवज्जसइ, उक्कुसइ, अक्कुसइ, पच्चड्डइ, पच्छन्दइ, णिम्महइ, णीइ, णीणइ, णीलुक्कइ, पदअइ, रम्भइ, परिअल्लइ, वोलइ, परिअलइ, णिरिणासइ, णिवहइ, अवसेहइ, अवहरइ** आदेशाभावे ८८६ सू० मकारस्य छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे **गच्छइ** इति भवति। **हम्मति।** हम्म् गतौ। हम्म्+तिव्। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, तिवः स्थाने इचादेशे **हम्मइ** इति भवति। एवमेव-**निहम्मति।** निपूर्वकः हम्म्धातु निर्गमने। निहम्म्+तिव्। २२९ सू० नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव **णिहम्मइ, निर्हम्मति।** निर्पूर्वकः हम्मधातुः बहिर्गमने। निर्हम्म्+तिव्। नकारस्य णकारे, १३ सू० रेफलोपे, ९३ सू० इकारदीर्घे **णीहम्मइ, आहम्मति।** आङ्पूर्वकः हम्म्धातु आगमने। आहम्म्+तिव्। **आहम्मइ। प्रहम्मति।** प्रपूर्वकः हम्म्धातुः प्रकर्षेण गतौ। प्रहम्म्+तिव्। ३५० सू० रेफलोपे **पहम्मइ** इति भवति। **इत्येते तु हम्म।** **हम्मइ** इत्यादयः प्रयोगास्तु प्रस्तुतसूत्रेण विहितस्य हम्मादेशस्य न बोध्याः, किन्तु हम्मगतौ इत्यस्य धातोरेवैते प्रयोगाः सज्ञेयाः।

८३४—आगच्छति। आङ्पूर्वकः गम्लृधातुः आगमने। आगम्+तिव्। ८३४ सू० आगम्धातोः

विकल्पेन अहिपच्चुअ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **अहिपच्चुअइ** आदेशाभावे ८८६ सू० मकारस्य छ इत्यादेशे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-छकारस्य चकारे **आगच्छइ** इति भवति।

८३५—संगच्छति। सम्पूर्वकः गम्लृधातुः समागमने। संगम्+तिव्। ८३५ सू० संगम्धातोः विकल्पेन अब्भिड इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **अब्भिडइ** आदेशाभावे पूर्वसूत्र [८३४] वर्णितस्य आगच्छइपदस्येव **संगच्छइ** इति साध्यम्।

८३६—अभ्यागच्छति। अभि-आङ्-पूर्वकः गम्लृधातुः अभिमुखागमने। अभ्यागम्+तिव्। ८३६ सू० अभ्यागम्-धातोः विकल्पेन उम्मत्थ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **उम्मत्थइ** आदेशाभावे ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० भकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य स्थाने बकारे, ८८६ सू० मकारस्य छ इत्यादेशे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे **अब्भागच्छइ** इति भवति।

८३७—प्रत्यागच्छति। प्रति-आङ्पूर्वकः गम्लृधातुः प्रत्यागमने। प्रत्यागम्+तिव्। ८३७ सू० प्रत्यागम्धातोः विकल्पेन **पलोट्ट** इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **पलोट्टइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे, २८४ सू० त्यस्य चकारे, ३६० सू० चकारद्वित्वे **पच्चागच्छइ** अब्भागच्छइ-समानमेव बोध्यम्।

८३८—शाम्यति। शमु शान्तौ। शम्+तिव्। ८३८ सू० शमुधातोः विकल्पेन पडिसा, पडिसाम इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **पडिसाइ, पडिसामइ** आदेशाभावे २६० सू० शकारस्य सकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **समइ** इति भवति।

८३९—रमते। रमु क्रीडायाम्। रम्+ते। ८३९ सू० रम्धातोः स्थाने विकल्पेन संखुड्ड इत्यादयः अष्टादेशाः, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **संखुड्डइ, खेड्डइ, उब्भावइ, किलिकिञ्चइ, कोट्टुमइ, मोट्टायइ, णीसरइ, वेल्लइ** आदेशाभावे ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **रमइ** इति भवति।

८४०—पूरयति। पूरी (पूर्) पूरणे। पूर्+तिव्। ८४० सू० पूर्-धातोः विकल्पेन अग्घाड इत्यादयः पञ्चादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **अग्घाडइ, अग्घवइ, उद्धुमाइ, अङ्गुमइ, अहिरेमइ,** आदेशाभावे ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **पूरइ** इति भवति। कुत्रचित् "**उद्धूम**" इत्यपि पाठः, तदा **उद्धूमइ** इत्यपि भवति।

८४१—त्वरते। त्वरा शीघ्रगतौ। त्वर्+ते। ८४१ सू० त्वर्धातोः स्थाने तुवर, जअड इत्यादेशौ, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **तुवरइ, जअडइ,** इति भवति। **त्वरमाणः**। त्वर्+आनश्। प्रस्तुतसूत्रेण त्वर्धातोः तुवर, जअड इत्यादेशौ, ६७० सू० आनशः स्थाने न्त इत्यादेशे, सिप्रत्यये, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **तुवरन्तो, जअडन्तो** इति भवति।

८४२—शतरि च तूरः। अत्र शतरि-पदं शत्रर्थकप्रत्ययस्य आनश्-प्रत्ययस्यापि बोधकं ज्ञेयम्। **त्वरते**। त्वरा शीघ्रगतौ। त्वरा (त्वर्)+ते। ८४२ सू० त्वर्धातोः तूर इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **तूरइ** इति भवति। **त्वरमाणः**। त्वर्+आनश्। प्रस्तुतसूत्रेण शतरि (शत्रर्थकबोधके आनश्-प्रत्यये) परे त्वर्धातोः तूर इत्यादेशे, सिप्रत्यये, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **तूरन्तो** इति भवति।

८४३—तुरोऽत्यादौ। ति आदिर्यस्य स त्यादिः, न त्यादिः, अत्यादिः, तस्मिन्, तिङ्भिन्नप्रत्यये परे सतीत्यर्थः। **त्वरितः**। त्वरा शीघ्रगतौ। त्वर्+क्त-त। ८४३ सू० त्वर्धातोः स्थाने तुर इत्यादेशे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, सिप्रत्यये, १७७ सू० तकारलोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **तुरिओ** इति भवति। **त्वरमाणः**। त्वर्+आनश्। प्रस्तुतसूत्रेणैव त्वरः स्थाने तुर इत्यादेशे, ६७० सू०

आनशः न्त इत्यादेशे, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **तुरन्तो** इति भवति ।

८४४—क्षरति । क्षर् क्षरणे । क्षर्+तिव् । ८४४ सू० क्षर्-धातोः खिर इत्यादयः षडादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **खिरइ, भरइ, पज्भरइ, पच्चडइ, णिच्चलइ, णिट्टुअइ** इति भवति ।

८४५—उच्छलति । उत्पूर्वकः छल्धातुः उच्छलने । उच्छल्+तिव् । ८४५ सू० उच्छल्धातोः उत्थल्ल इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **उत्थल्लइ** इति भवति ।

८४६—विगलति । विपूर्वकः गल्धातुः विशेषेण गलने । विगल्+तिव् । ८४६ सू० विगल्-धातोः स्थाने विकल्पेन थिप्प, णिट्टुह इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **थिप्पइ, णिट्टुहइ** आदेशा-भावे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **विगलइ** इति भवति ।

८४७—दलति । दल् विदारणे । दल्+तिव् । ८४७ सू० दल्धातोः विकल्पेन विसट्ट इत्यादेशे, आदेशाभावे ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **विसट्टइ, दलइ** इति भवति । **वलते** । वल् संवलने संवरणे च । वल्+ते । प्रस्तुतसूत्रेण वल्धातोः विकल्पेन वम्फ इत्यादेशे, आदेशाभावे अकारा-गमे, पूर्ववदेव **वम्फइ, वलइ** इति भवति ।

८४८—भ्रंश्यति । भ्रंशु [भ्रंश्] धातुः नाशे । भ्रंश्+तिव् । इत्यत्र ८४८ सू० भ्रंश्धातोः वि-कल्पेन फिड, फिट्ट, फुड, फुट्ट, चुक्क, भुल्ल इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे, **फिडइ, फिट्टइ, फुडइ, फुट्टइ, चुक्कइ, भुल्लइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे,२६० सू० शकारस्य सकारे,९१० सू० अकारागमे **भंसइ** इति भवति ।

८४९—नश्यति । णश् (नश्) नाशे । नश्+तिव् । ८४९ सू० नश्धातोः स्थाने विकल्पेन णिरणास इत्यादयः षडादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **णिरणासइ, णिवहइ, अवसेहइ, पडिसाइ, सेहइ, अवहरइ** आदेशाभाव-पक्षे २६० सू० शकारस्य सकारे, ९०१ सू० सकारस्य द्वित्वे, ९१० सू० धातो-रन्तेऽकारागमे **नस्सइ** इति भवति । वैकल्पिकत्वादत्र २२९ सू० नकारस्य णकारो न जातः ।

८५०—अवकाशते । अवपूर्वकः काशृ (दीप्तौ) धातुः अवकाशे । अवकाश्+ते । १७२ सू० अव इत्युपसर्गस्य स्थाने ओकारे,८५० सू० काशृ-धातोः स्थाने वास इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **ओवासइ** इति भवति ।

★ अथ धातुओं को होने वाली आदेशविधि (ख) ★

वि उपसर्ग पूर्वक स्मृ आदि धातुओं के स्थान में पम्हुस आदि जो आदेश होते हैं अब सूत्रकार उन का निर्देश कर रहे हैं—

७४६—विपूर्वक स्मृधातु के स्थान में—**१—पम्हुस, २—विम्हर** और **३—वीसर** ये तीन आदेश होते हैं । जैसे—**विस्मरति**=पम्हुसइ, विम्हरइ, वीसरइ (वह विस्मरण करता है, भूलता है) यहां पर वि-उपसर्ग पूर्वक स्मृ धातु को पम्हुस आदि तीन आदेश किये गए हैं ।

७४७—वि उपसर्ग तथा आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक हृ धातु के स्थान में **कोक्क** और **पोक्क** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं । जैसे—**व्याहरति**=कोक्कइ,पोक्कइ ८४ सूत्र से संयोग परे होने के कारण ह्रस्व हो जाने से **कुक्कइ,पुक्कइ** आदेशों के अभाव-पक्ष में **वाहरइ** (वह बुलाता है) यह रूप बन जाता है ।

७४८—प्र-उपसर्ग पूर्वक सृ धातु के स्थान में **पयल्ल** और **उवेल्ल** में दो आदेश विकल्प से होते हैं । जैसे—**प्रसरति**=पयल्लइ,उवेल्लइ,आदेशों के अभाव-पक्ष में **पसरइ** (वह पसरता है, वह फैलता है) यह रूप बनता है ।

७४९—गन्धविषयक (जिस का अर्थ गन्ध हो) प्र-सृ धातु के स्थान में "**महमह**" यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—१—**प्रसरति मालती**=महमहइ मालई [मालती (लताविशेष, जिसके फूल बड़े खुशबूदार होते हैं) के फूलों के गन्ध का प्रसार होता है] आदेश के अभाव-पक्ष में—२—**मालती-गन्धः प्रसरति**=मालई-गन्धो पसरइ (मालती लता की गन्ध फैल रही है) यह रूप बनता है। प्रश्न हो सकता है कि सूत्रकार ने **गन्धे** (गन्ध) इस अर्थ में ही महमह यह आदेश होता है, यह बात क्यों कही? उत्तर में निवेदन है कि **प्रसरति**=पसरइ (प्रसार—फैलाव होता है) यहां सामान्य प्रसार अर्थ में भी 'प्रसृ' धातु को 'महमह' यह आदेश न हो इस दृष्टि से "**गन्धे**" यह पद दिया गया है।

७५०—निस् उपसर्ग पूर्वक सृ धातु के स्थान में १—**णीहर**, २—**नील**, ३—**धाड**, ४—**वरहाड**, ये चार आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**निस्सरति**=णीहरइ, नीलइ, धाडइ, वरहाडइ आदेशों के अभाव-पक्ष में—**नीसरइ** (वह बाहर निकलता है) यह रूप बन जाता है।

७५१—जागृ धातु के स्थान में '**जग्ग**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**जागर्ति**=जग्गइ, आदेश के अभाव-पक्ष में **जागरइ** (वह जागता है) यह रूप होता है।

७५२—वि और आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक पृङ् (पृ) धातु के स्थान में "**आअड्ड**" यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**व्याप्रियते**=आअड्डइ आदेश के अभाव-पक्ष में—**वावरेइ** (वह व्यापार करता है) यह रूप बन जाता है।

७५३—सम् उपसर्ग पूर्वक वृञ् (वृ) धातु के स्थान में **साहर** और **साहट्ट** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**संवृणोति**=साहरइ, साहट्टइ आदेशों के अभाव-पक्ष में—**संवरइ** (वह संवरण करता है, वह समेटता है) यह रूप होता है।

७५४—आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक दृङ् धातु के स्थान में '**सन्नाम**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**आद्रियते**=सन्नामइ, आदेश के अभाव-पक्ष में—**आदरइ** (वह आदर करता है) यह रूप होता है।

७५५—प्र उपसर्ग पूर्वक हृ धातु के स्थान में **सार** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**प्रहरति**=सारइ आदेश के अभाव-पक्ष में—**पहरइ** (वह प्रहार करता है) यह रूप बनता है।

७५६—अव उपसर्ग पूर्वक तॄ धातु के स्थान में **ओह** और **ओरस** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**अवतरति**=ओहइ, ओरसइ, आदेशों के अभाव-पक्ष में—**ओअरइ** (वह नीचे उतरता है) ऐसा रूप बनता है।

७५७—शक्लृ धातु के स्थान में—१—**चय**, २—**तर**, ३—**तीर** और ४—**पार** ये चार आदेश होते हैं। जैसे—**शक्नोति**=चयइ, तरइ, तीरइ, पारइ आदेशों के अभाव-पक्ष में **सक्कइ** (वह [कर] सकता है) यह रूप होता है। त्यज् धातु का भी **चयइ** यह रूप बनता है। जैसे—**त्यजति**=चयइ (वह परित्याग करता है, वह छोड़ता है) इसके अलावा, **तृ** धातु का **तरइ**, **तीर** धातु का **तीरइ** तथा **पार्** धातु का भी **पारइ** ऐसा रूप होता है। जैसे—१—**तरति**=तरइ (वह तैरता है), २—**तीरयति**=तीरइ (वह समाप्त करता है), ३—**पारयति**=पारेइ (वह कार्य समाप्त करता है) भाव यह है कि **चयइ** आदि रूप केवल शक्लृ धातु के ही नहीं समझने चाहिएं, किन्तु अन्य धातुओं से भी ये रूप निष्पन्न होते हैं।

७५८—फक्क् धातु के स्थान में **थक्क** यह आदेश होता है। जैसे—**फक्कति**=थक्कइ (वह धीरे-धीरे चलता है) यहां पर फक्क् धातु को **थक्क** यह आदेश किया गया है।

७५९—श्लाघ् धातु के स्थान में '**सलह**' यह आदेश होता है। जैसे—**श्लाघते**=सलहइ (वह प्रशंसा करता है) यहां पर श्लाघ् धातु को सलह यह आदेश किया गया है।

७६०—खच् धातु के स्थान में '**वेअड**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**खचति**=वेअडइ आदेश के अभाव-पक्ष में—**खचइ** (वह जमाता है) यह रूप होता है।

७६१—पच् धातु के स्थान में **सोल्ल** और **पउल** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**पचति**=सोल्लइ, पउलइ आदेशों के अभाव-पक्ष में **पयइ** (वह पकाता है) ऐसा रूप बनता है।

७६२—मुच् धातु के स्थान में—१—**छड्ड**, २—**अवहेड**, ३—**मेल्ल**, ४—**उस्सिक्क**, ५—**रेअव**, ६—**णिल्लुञ्छ** और ७—**धंसाड** ये सात आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**मुञ्चति**=छड्डइ, अवहेडइ, मेल्लइ, उस्सिक्कइ, रेअवइ, णिल्लुञ्छइ, धंसाडइ आदेशों के अभाव-पक्ष में—**मुअइ** (वह छोड़ता है) ऐसा रूप बन जाता है।

७६३—दुःख-विषयक (जिस का विषय-अर्थ दुःख हो) मुच् धातु के स्थान में '**णिव्वल**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**दुःखं मुञ्चति**=णिव्वलेइ (वह दुःख को छोड़ता है) यहां पर दुःख-विषयक मुच् धातु के स्थान में '**णिव्वल**' यह आदेश किया गया है।

७६४—वञ्च् धातु के स्थान में—१—**वेहव**, २—**वेलव**, ३—**जूरव** और ४—**उमच्छ** ये चार आदेश विकल्प से किये जाते हैं। जैसे—**वञ्चति**=वेहवइ, वेलवइ, जूरवइ, उमच्छइ, आदेशों के अभाव-पक्ष में—**वञ्चइ** (वह ठगता है) यह रूप बन जाता है।

७६५—रच् धातु के स्थान में—१—**उग्ग**, २—**अवह** और ३—**विडविड्ड** ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**रचयति**=उग्गहइ, अवहइ, विडविड्डइ आदेशों के अभाव-पक्ष में—**रयइ** (वह रचना करता है) यह रूप बनता है।

७६६—सम् और आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक रच् धातु के स्थान में—१—**उवहत्थ**, २—**सारव**, ३—**समार** और ४—**केलाय** ये चार आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**समारचयति**=उवहत्थइ,सारवइ, समारइ, केलायइ आदेशों के अभाव-पक्ष में—**समारयइ** (वह अच्छी तरह से तथा मर्यादा-पूर्वक रचना करता है) यह रूप होता है।

७६७—सिच् धातु के स्थान में **सिञ्च** और **सिम्प** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**सिञ्चति**=सिञ्चइ, सिम्पइ, आदेशों के अभाव-पक्ष में—**सेअइ** (वह सिञ्चन करता है) यह रूप होता है।

७६८—प्रच्छ् धातु के स्थान में '**पुच्छ**' यह आदेश होता है। जैसे—**पृच्छति**=पुच्छइ (वह पूछता है) यहां पर 'प्रच्छ्' धातु को पुच्छ यह आदेश किया गया है।

७६९—गर्ज् धातु के स्थान में **बुक्क** यह आदेश विकल्प से किया जाता है। जैसे—**गर्जति**=बुक्कइ, आदेश के अभाव-पक्ष में—**गज्जइ** (वह गरजता है) यह रूप होता है।

७७०—वृषकर्तृक [जिस का कर्ता वृष-बैल हो] गर्ज् धातु के स्थान में '**ढिक्क**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**वृषभो गर्जति**=ढिक्कइ (बैल गर्जना करता है) यहां पर **वृषकर्तृक गर्ज्** धातु के स्थान में ढिक्क यह आदेश किया गया है।

७७१—राजि धातु के स्थान में १—**अग्घ**, २—**छज्ज**, ३—**सह**, ४—**रीर**, ५—**रेह** ये पांच आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**राजते**=अग्घइ, छज्जइ, सहइ, रीरइ, रेहइ आदेशों के अभावपक्ष में '**रायइ**' (वह शोभा दे रहा है) यह रूप बन जाता है।

७७२—मस्जि धातु के स्थान में—१—आउड्ड, २—णिउड्ड, ३—बुड्ड और ४—खुप्प ये चार आदेश विकल्प से किए जाते हैं। जैसे—मज्जति=आउड्डइ, णिउड्डइ, बुड्डइ, खुप्पइ, आदेशों के अभाव-पक्ष में—मज्जइ (वहां स्नान करता है) यह रूप बनता है।

७७३—पुञ्जि धातु के स्थान में आरोल और वमाल ये दो आदेश विकल्प से किये जाते हैं। जैसे—पुञ्जति=आरोलइ, वमालइ आदेशों के अभाव-पक्ष में—पुञ्जइ (वह इकट्ठा करता है) यह रूप बनता है।

७७४—लस्जि धातु के स्थान में 'जीह' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—लज्जते=जीहइ आदेश के अभाव-पक्ष में—लज्जइ (वह लज्जा करता है) यह रूप होता है।

७७५—तिजि धातु के स्थान में ओसुक्क यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—तेजति=ओसुक्कइ (वह तेज करता है) आदेश के अभाव-पक्ष में—तेजनम्=तेअणं (तेज करना) यह रूप बनता है। यहां पर वैकल्पिक होने से तिजि धातु को ओसुक्क यह आदेश नहीं हो सका।

७७६—मृजि धातु के स्थान में—१—उग्घुस, २—लुञ्छ, ३—पुञ्छ, ४—पुंस, ५—फुस, ६—पुस, ७—लुह, ८—हुल और ९—रोसाण ये नव आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—मार्ष्टि=उग्घुसइ, लुञ्छइ, पुञ्छइ, पुंसइ, फुसइ, पुसइ, लुहइ, हुलइ, रोसाणइ आदेशों के अभाव-पक्ष में—मज्जइ (वह शुद्ध करता है) यह रूप होता है।

७७७—भञ्जि धातु के स्थान में—१—वेमय, २—मुसुमूर, ३—मूर, ४—सूर, ५—सूड, ६—विर, ७—पविरञ्ज, ८—करञ्ज और ९—नीरञ्ज ये नव आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—भनक्ति=वेमयइ, मुसुमूरइ, मूरइ, सूरइ, सूडइ, विरइ, पविरञ्जइ, करञ्जइ, नीरञ्जइ आदेशों के अभाव-पक्ष में—भञ्जइ, (वह तोडता है), यह रूप बन जाता है।

७७८—अनु उपसर्ग पूर्वक व्रजि (व्रज्) धातु के स्थान में—पडिअग्ग यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—अनुव्रजति=पडिअग्गइ, आदेश के अभावपक्ष में—अणुवच्चइ (वह पीछे जाता है) यह रूप होता है।

७७९—अर्जि धातु के स्थान में विढव यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—अर्जति=विढवइ, आदेश के अभाव-पक्ष में—अज्जइ (वह पैदा करता है, वह कमाता है) यह रूप होता है।

७८०—युज् धातु के स्थान में—१—जुञ्ज, २—जुज्ज और ३—जुप्प ये तीन आदेश होते हैं। जैसे—युनक्ति=जुञ्जइ, जुज्जइ, जुप्पइ, (वह जोड़ता है) यहां पर युज् धातु के स्थान में जुञ्ज आदि तीन आदेश किए गए हैं।

७८१—भुज् धातु के स्थान में—१—भुञ्ज, २—जिम, ३—जेम, ४—कम्म, ५—अण्ह, ६—चमढ, ७—समाण और ८—चड्ड ये आठ आदेश होते हैं। जैसे—भुंक्ते=भुञ्जइ, जिमइ, जेमइ, [कम्मइ] कम्मेइ, अण्हइ, चमढइ, समाणइ, चड्डइ, (वह भोजन करता है) यहां पर भुज् धातु को भुञ्ज आदि आठ आदेश किए गए हैं।

७८२—उप उपसर्ग पूर्वक भुज् धातु के स्थान में 'कम्मव' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—उपभुंक्ते—कम्मवइ, आदेश के अभावपक्ष में—उवहुञ्जइ (वह उपभोग करता है) यह रूप बनता है।

७८३—घटि (घट्) धातु के स्थान में—'गढ' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—घटते=

गढइ, आदेश के अभाव-पक्ष में—**घडइ** (वह बनाता है) यह रूप बनता है।

७८४—सम् उपसर्ग पूर्वक घटि धातु के स्थान में '**गल**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**संघटते**=संगलइ आदेश के अभाव में—**संघडइ** (वह मिलाता है) यह रूप बनता है।

७८५—हासकरणक (मुस्कराना, हंसना इस अर्थ के बोधक या हास्यहेतुक) स्फुटिधातु के स्थान में—'**मुर**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**हासेन स्फुटति**=मुरइ (वह हंसी के कारण प्रसन्न होता है) यहाँ हास्य-बोधक स्फुटिधातु के स्थान में '**मुर**' यह आदेश किया गया है।

७८६—मण्डिधातु के स्थान में—१—**चिञ्च**, २—**चिञ्चअ**, ३—**चिञ्चिल्ल**, ४—**रीड** और ५—**टिविडिक्क** ये पांच आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**मण्डति**=चिञ्चइ, चिञ्चअइ,चिञ्चिल्लइ, रीडइ, टिविडिक्कइ आदेशों के अभावपक्ष में—**मण्डइ** (वह मण्डित करता है), ऐसा रूप बनता है।

७८७—तुडिधातु के स्थान में—१—**तोड**, २—**तुट्ट**, ३—**खुट्ट**, ४—**खुड**, ५—**उक्खुड**, ६—**उल्लुक्क**, ७—**णिलुक्क**, ८—**लुक्क** और ९—**उल्लूर** ये सब आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**तुडति**=तोडइ, तुट्टइ, खुट्टइ, खुडइ, उक्खुडइ, उल्लुक्कइ, णिल्लुक्कइ, लुक्कइ, उल्लूरइ आदेशों के अभावपक्ष में—**तुडइ** (वह तोड़ता है), ऐसा रूप बनता है।

७८८—घूर्ण् धातु के स्थान में—१—**घुल**, २—**घोल**, ३—**घुम्म** और ४—**पहल्ल** ये चार आदेश होते हैं। जैसे—**घूर्णते**—घुलइ, घोलइ, घुम्मइ, पहल्लइ (वह भ्रमण करता है) यहां पर घूर्ण् धातु के स्थान में घुल आदि चार आदेश किए गए हैं।

७८९—वि उपसर्ग पूर्वक वृत् धातु के स्थान में '**ढंस**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**विवर्तते**=ढंसइ आदेश के अभाव-पक्ष में **विवट्टइ** (वह धसता है, गिरता है) यह रूप होता है।

७९०—क्वथि धातु के स्थान में '**अट्ट**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**क्वथति**=अट्टइ आदेश के अभावपक्ष में—**कढइ** (वह पकाता है) यह रूप बन जाता है।

७९१—ग्रन्थि धातु के स्थान में '**गण्ठ**' यह आदेश होता है। जैसे—१ **ग्रथ्नाति**=गण्ठइ (वह पुस्तक बनाता है), २—**ग्रन्थिः**=गण्ठी (गाँठ) यहाँ 'ग्रन्थि' धातु को 'गण्ठ' यह आदेश किया गया है।

७९२—मन्थिधातु के स्थान में **घुसल और विरोल** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**मथ्नाति**=घुसलइ, विरोलइ आदेश के अभावपक्ष में—**मन्थइ** (वह मथता है) यह रूप बनता है।

७९३—ण्यन्त और अण्यन्त (जिस धातु के अन्त में णि नहीं है) ह्लादि धातु के स्थान में '**अवअच्छ**' यह आदेश होता है। जैसे—**ह्लादते**, **ह्लादयति**=अवअच्छइ (वह आनन्दित होता है) यहाँ पर 'ह्लादि' धातु को 'अवअच्छ' यह आदेश किया गया है। **वृत्तिकार** फरमाते हैं कि '**ह्लादेः**' इस पद में पठित **इकार** के ग्रहण से ण्यन्त (णि है अन्त में जिसके) धातु का ग्रहण भी किया जाता है।

७९४—नि उपसर्ग पूर्वक सद् धातु के स्थान में '**मज्ज**' यह आदेश होता है। जैसे—**आत्माऽत्र निषीदति**=अत्ता एत्थ णुमज्जइ (आत्मा यहां पर बैठती है) यहां पर नि उपसर्ग पूर्वक सद् धातु के स्थान में '**मज्ज**' यह आदेश किया गया है।

७९५—छिदि धातु के स्थान में—१—**दुहाव**, २—**णिच्छल्ल**, ३—**णिज्झोड**, ४—**णिव्वर**, ५—**णिल्लूर** और ६—**लूर** ये ६ आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**छिनत्ति**=दुहावइ, णिच्छल्लइ, णिज्झोडइ, णिव्वरइ, णिल्लूरइ, लूरइ, आदेशों के अभावपक्ष में—**छिन्दइ** (वह खण्डित करता है) यह रूप होता है।

७९६—आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक छिदि धातु के स्थान में—१—ओअन्द और २—उद्दाल ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—१—आच्छिनत्ति=ओअन्दइ, उद्दालइ आदेशों के अभावपक्ष में—**अच्छिन्दइ** (वह चारों ओर से खण्डित करता है) यह रूप होता है।

७९७—मृद्धातु के स्थान में—१—**मल**, २—**मढ**, ३—**परिहट्ट**, ४—**खड्ड**, ५—**चड्ड**, ६—**मड्ड** और ७—**पन्नाड** ये सात आदेश होते हैं। जैसे—**मृद्नाति**=मलइ, मढइ, परिहट्टइ, खड्डइ, चड्डइ, मड्डइ, पन्नाडइ (वह मर्दन करता है) यहां पर मृद् धातु को मल आदि सात आदेश किए गए हैं।

७९८—स्पन्दि धातु के स्थान में **चुलुचुल** यह आदेश विकल्प से होता है। **स्पन्दते**=चुलुचुलइ आदेश के अभावपक्ष में फन्दइ (वह स्पन्दन करता है) यह रूप बनता है।

७९९—निर् उपसर्ग पूर्वक पदि धातु के स्थान में '**वल**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**निष्पद्यते**=निव्वलइ आदेश के अभावपक्ष में—**निप्पज्जइ** (वह निष्पन्न होता है) यह रूप बनता है।

८००—वि और सम् उपसर्गपूर्वक वदि धातु के स्थान में—१—**विअट्ट**, २—**विलोट्ट** और ३—**फंस** ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**विसंवदति**—विअट्टइ, विलोट्टइ, फंसइ आदेशों के अभावपक्ष में **विसंवयइ** (वह अप्रमाणित करता है) यह रूप बनता है।

८०१—शद् धातु के स्थान में **झड** और **पक्खोड** ये दो आदेश होते हैं। जैसे—**शीयते**—झडइ, पक्खोडइ (वह झडता है) यहां पर शद् धातु को झड आदि दो आदेश किए गए हैं।

८०२—आक्रन्दि धातु के स्थान में '**णीहर**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**आक्रन्दते**=णीहरइ आदेश के अभावपक्ष में **अक्कन्दइ** (वह आक्रन्दन करता है) यह रूप होता है।

८०३—खिदि धातु के स्थान में **जूर** और **विसूर** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**खिद्यते**=जूरइ, विसूरइ, आदेशों के अभावपक्ष में—**खिज्जइ** (वह खेद करता है) यह रूप बनता है।

८०४—रुधि धातु के स्थान में—'**उत्थङ्घ**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**रुणद्धि**=उत्थङ्घइ आदेश के अभावपक्ष में—**रुन्धइ** (व रोकता है) ऐसा रूप बनता है।

८०५—नि उपसर्ग पूर्वक षेधि (षेध्) धातु के स्थान में '**हक्क**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**निषेधति**=हक्कइ आदेश के अभाव में—**निसेहइ** (वह निषेध करता है) ऐसा रूप बनता है।

८०६—क्रुधि धातु के स्थान में '**जूर**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**क्रुध्यति**=जूरइ आदेश के अभावपक्ष में—**कुज्झइ** (वह क्रोध करता है) यह रूप बनता है।

८०७—जन् धातु के स्थान में **जा** और **जम्म** ये दो आदेश होते हैं। जैसे—**जायते**=जाअइ, जम्मइ (वह उत्पन्न होता है) यहां जन् धातु को जा आदि दो आदेश किए गए हैं।

८०८—तनि धातु के स्थान में—१—**तड**, २—**तड्ड**, ३—**तड्डव** और ४—**विरल्ल** ये चार आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**तनोति**=तडइ, तड्डइ, तड्डवइ, विरल्लइ आदेशों के अभावपक्ष में—**तणइ** (वह विस्तार करता है) यह रूप बनता है।

८०९—तृप् धातु के स्थान में—'**थिप्प**' यह आदेश होता है। जैसे—**तृप्यति**=थिप्पइ (वह तृप्त होता है) यहां पर तृप् धातु को 'थिप्प' यह आदेश किया गया है।

८१०—यदि सृप् धातु उप उपसर्ग पूर्वक हो तथा इसे गुण कर के रखा गया हो तो इसके स्थान में '**अल्लिअ**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**उपसर्पति**=अल्लिअइ आदेश के अभाव-

पक्ष में—**उवसप्पइ** (वह धीरे-धीरे जाता है) यह रूप बनता है।

८११—सम् उपसर्ग पूर्वक तपि धातु के स्थान में '**झङ्ख**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**संतपति**=झङ्खइ आदेश के अभावपक्ष में—**संतप्पइ** (वह सन्ताप करता है) ऐसा रूप बनता है।

८१२—वि और आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक आप्लृ (आप्) धातु के स्थान में '**ओअग्ग**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**व्याप्नोति**=ओअग्गइ आदेश के अभावपक्ष में—**वावेइ** (वह व्याप्त करता है) ऐसा रूप होता है।

८१३—सम् और आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक आप्लृ (आप्) धातु को '**समाण**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**समाप्नोति**=समाणइ, आदेश के अभावपक्ष में—**समावेइ** (वह समाप्त करता है) ऐसा रूप हो जाता है।

८१४—क्षिपि धातु के स्थान में—१—**गलत्थ**, २—**अड्डक्ख**, ३—**सोल्ल**, ४—**पेल्ल**, ५—**णोल्ल**, ६—**छुह**, ७—**हुल**, ८—**परी** और ९—**घत्त** ये ९ आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**क्षिपति**=गलत्थइ, अड्डक्खइ, सोल्लइ, पेल्लइ, णोल्लइ, छुहइ, हुलइ, परीइ, घत्तइ आदेशों के अभावपक्ष में—**खिवइ** (वह फेंकता है) ऐसा रूप बन जाता है। '**णोल्लइ**' यहां पर ८४ सूत्र से ह्रस्व हो जाने पर '**णु-ल्लइ**' यह रूप भी होता है।

८१५—उत् उपसर्गपूर्वक क्षिपि धातु के स्थान में—१—**गुलगुञ्छ**, २—**उत्थङ्घ**, ३—**उल्लत्थ***, ४—**उब्भुत्त** ५—**उस्सिक्क** और ६—**हक्खुव** ये ६ आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**उत्क्षिपति**=गुल-गुञ्छइ, उत्थङ्घइ, उल्लत्थइ, उब्भुत्तइ, उस्सिक्कइ, हक्खुवइ आदेशों के अभावपक्ष में—**उक्खिवइ** (वह ऊंचा फेंकता है) यह रूप बनता है।

८१६—**आङ्** (आ) उपसर्ग पूर्वक क्षिपिधातु के स्थान में '**णीरव**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**आक्षिपति**=णीरवइ आदेश के अभाव-पक्ष में—**अक्खिवइ** (वह आक्षेप करता है) यह रूप होता है।

८१७—स्वपि धातु के स्थान में—१—**कमवस**, २—**लिस** और ३—**लोट्ट** ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**स्वपिति**=कमवसइ, लिसइ, लोट्टइ आदेशों के अभावपक्ष में—**सुअइ** (वह शयन करता है) यह रूप होता है।

८१८—वेपि धातु के स्थान में—१—**आयम्ब** और २—**आयज्झ** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**वेपते**=आयम्बइ, आयज्झइ आदेशों के अभावपक्ष में—**वेवइ** (वह कांपता है) यह रूप होता है।

८१९—वि पूर्वक लपि धातु के स्थान में—१—**झङ्ख** और २—**वडवड** ये दो आदेश विकलप से होते हैं। जैसे—**विलपति**=झङ्खइ, वडवडइ आदेशों के अभावपक्ष में—**विलवइ** (वह विलाप करता है) यह रूप होता है।

८२०—लिप् धातु के स्थान में '**लिम्प**' यह आदेश होता है। जैसे—**लिम्पति**=लिम्पइ (वह लेप करता है) यहां पर लिप् धातु के स्थान में 'लिम्प' यह आदेश किया गया है।

८२१—गुप धातु के स्थान में **विर** और '**णड**' ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**गुप्यति**=विरइ, णडइ आदेशों के अभावपक्ष में—**गुप्पइ** (वह व्याकुल होता है) ऐसा रूप बनता है।

*कहीं पर अल्लत्थ ऐसा पाठ भी है।

८२२—कृपि धातु के स्थान में 'अवह' यह ण्यन्त (जिसके अन्त में णि-प्रत्यय किया गया हो) आदेश होता है। जैसे—कृपते=अवहावेइ (वह कृपा करता है) यहां पर कृपि धातु को ण्यन्त 'अवह' यह आदेश किया गया है।

८२३—प्रदीपि धातु के स्थान में—१—तेअव, २—सन्दुम, ३—सन्धुक्क और ४—अब्भुत्त ये चार आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—प्रदीप्यते=तेअवइ, सन्दुमइ, सन्धुक्कइ, अब्भुत्तइ आदेशों के अभाव-पक्ष में—पलीवइ (वह जलाता है) ऐसा रूप बनता है।

८२४—लुभि धातु के स्थान में संभाव यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—लुभ्यति=संभावइ आदेश के अभावपक्ष में—लुब्भइ (वह लोभ करता है) यह रूप होता है।

८२५—क्षुभि धातु के स्थान में खउर और पड्डुह ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—क्षुभ्यति=खउरइ, पड्डुहइ आदेशों के अभावपक्ष में—खुब्भइ (वह क्षुब्ध होता है) यह रूप होता है।

८२६—आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक रभि धातु के स्थान रम्भ और ढव ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—आरभते=आरम्भइ, आढवइ आदेशों के अभाव-पक्ष में—आरभइ (वह आरम्भ करता है) यह रूप बन जाता है।

८२७—उप तथा आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक लभि धातु के स्थान में—१—झङ्ख, २—पच्चार और ३—वेलव ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—उपालभते=झङ्खइ, पच्चारइ, वेलवइ आदेशों के अभाव में—उवालम्भइ (वह उपालम्भ देता है) यह रूप हो जाता है।

८२८—जृम्भि धातु के पूर्व में यदि 'वि' यह उपसर्ग न हो तो इस को 'जम्भा' यह आदेश होता है। जैसे—जृम्भते=जम्भाइ (वह जम्भाई लेता है) यहां जृम्भि धातु को जम्भा यह आदेश किया गया है। प्रश्न हो सकता है कि सूत्रकार के 'अवे:' (वि उपसर्ग से रहित) ऐसा कहने का क्या प्रयोजन है? उत्तर में निवेदन है कि—केलि-प्रसरः विजृम्भते=केलिपसरो विअम्भइ (केले का प्रसार सम्वधित होता है) आदि वाक्यों में विपूर्वक जृम्भि धातु को कहीं 'जम्भा' यह आदेश न हो जाए, इसलिए सूत्रकार ने 'अवे:' इस पद का उल्लेख किया है। भाव यह है कि सम्वर्धन अर्थ में विजृम्भ् धातु को जम्भा' यह आदेश अनिष्ट माना गया है।

८२९—यदि नमि धातु का कर्ता भाराक्रान्त हो तो (भार से दब कर झुकने अर्थ में) नमि धातु को 'णिसुढ' यह आदेश होता है। जैसे—भाराक्रान्तो नमति=णिसुढइ (वह भाराक्रान्त हो कर झुकता है) जहां यह अर्थ न हो वहां पर नमति=णवइ (वह नमस्कार करता है) यह रूप बनता है।

८३०—वि उपसर्ग पूर्वक श्रमि धातु के स्थान में 'णिव्वा' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—विश्राम्यति=णिव्वाइ आदेश के अभाव-पक्ष में वीसमइ (वह विश्राम करता है) यह रूप होता है।

८३१—आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक क्रमि धातु के स्थान में—१—ओहाव, २—उत्थार, ३—छुन्द ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—आक्रमते=ओहावइ, उत्थारइ, छुन्दइ आदेशों के अभाव-पक्ष में—अक्कमइ (वह आक्रमण करता है) ऐसा रूप बनता है।

८३२—भ्रमि धातु के स्थान में—१—टिरिटिल्ल, २—ढुण्ढुल्ल, ३—ढण्ढल्ल, ४—चक्कम्म, ५—भम्मड, ६—भमड, ७—भमाड, ८—तलअण्ट, ९—झण्ट, १०—झम्प, ११—भुम, १२—गुम, १३—फुम, १४—फुस, १५—ढुम, १६—ढुस, १७—परी और १८—पर ये १८ आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—भ्रमति अथवा भ्राम्यति=टिरिटिल्लइ, ढुण्ढुल्लइ, ढण्ढल्लइ, चक्कम्मइ, भम्मडइ, भमडइ,

भमाडइ, तलअण्टइ, झण्टइ, झम्पइ, भुमइ, गुमइ, फुमइ, फुसइ, ढुमइ, ढुसइ, परीइ, परइ आदेशों के अभाव-पक्ष में **भमइ** (वह भ्रमण करता है) ऐसा रूप बनता है।

८३३—गमि धातु के स्थान में १—**अई**, २—**अइच्छ**, ३—**अणुवज्ज**, ४—**अवज्जस**, ५—**उक्कुस**, ६—**अक्कुस**, ७—**पच्चड्ड**, ८—**पच्छन्द**, ९—**णिम्मह**, १०—**णी**, ११—**णीण**, १२—**णीलुक्क**, १३—**पदअ**, १४—**रम्भ**, १५—**परिअल्ल**, १६—**वोल**, १७—**परिअल**, १८—**णिरिणास**, १९—**णिवह**, २०—**अवसेह** और २१—**अवहर** ये २१ आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**गच्छति**=अईइ, अइच्छइ, अणुवज्जइ, अवज्जसइ, उक्कुसइ, अक्कुसइ, पच्चड्डइ, पच्छन्दइ, णिम्महइ, णीइ, णीणइ, णीलुक्कइ, पदअइ, रम्भइ, परिअल्लइ, वोलइ, परिअलइ, णिरिणासइ, णिवहइ, अवसेहइ, अवहरइ, आदेशों के अभाव-पक्ष में—**गच्छइ** (वह जाता है) यह रूप होता है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि—१—**हम्मइ**, २—**णिहम्मइ**, ३—**णीहम्मइ**, ४—**आहम्मइ** और ५—**पहम्मइ** ये रूप तो हम्म (जाना) इस धातु से ही बन जाते हैं। जैसे—१—**हम्मति**=हम्मइ (वह जाता है), २—**निहम्मति**=णिहम्मइ (वह निकलता है), ३—**निर्हम्मति**=णीहम्मइ (वह बाहिर जाता है), ४—**आहम्मति**=आहम्मइ (वह आता है), ५—**प्रहम्मति**=पहम्मइ (वह तेजी से जाता है) ये सब प्रयोग स्वतन्त्र तथा नि आदि उपसर्गों के साथ जुड़ने पर हम्म धातु के ही होते हैं। अतः प्रस्तुत सूत्र का यहां पर कोई कार्य नहीं समझना चाहिये।

८३४—आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक गमि धातु के स्थान में—'**अहिपच्चुअ**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**आगच्छति**=अहिपच्चुअइ आदेश के अभाव-पक्ष में—**आगच्छइ** (वह आता है) यह रूप बनता है।

८३५—सम् उपसर्ग पूर्वक गमि धातु के स्थान में **अब्भिड** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**संगच्छति**=अब्भिडइ आदेश के अभाव-पक्ष में **संगच्छइ** (वह संगति करता है, वह सम्यक् प्रकार से जाता है) यह रूप होता है।

८३६—अभि तथा आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक गमि धातु के स्थान में '**उम्मत्थ**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**अभ्यागच्छति**=उम्मत्थइ, आदेश के अभाव में—**अब्भागच्छइ** (वह अभिमुख—सामने आता है) यह रूप होता है।

८३७—प्रति और आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक गमि धातु के स्थान में **पलोट्ट** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**प्रत्यागच्छति**=पलोट्टइ आदेश के अभाव-पक्ष में **पच्चागच्छइ** (वह वापिस आता है) ऐसा रूप होता है।

८३८—शमि धातु के स्थान में **पडिसा** और **परिसाम** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**शाम्यति**=पडिसाइ, परिसामइ आदेशों के अभाव में—**समइ** (वह शान्त होता है) यह रूप बनता है।

८३९—रमि धातु के स्थान में—१—**संखुड्ड**, २—**खेड्ड**, ३—**उब्भाव**, ४—**किलिकिञ्च**, ५—**कोट्टुम**, ६—**मोट्टाय**, ७—**णीसर** और ८—**वेल्ल** ये आठ आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**रमते**=संखुड्डइ, खेड्डइ, उब्भावइ, किलिकिञ्चइ, कोट्टुमइ, मोट्टायइ, णीसरइ, वेल्लइ आदेशों के अभाव-पक्ष में—**रमइ** (वह खेलता है) यह रूप बन जाता है।

८४०—पूरि (पूर्) धातु के स्थान में—१—**अग्घाड**, २—**अग्घव**, ३—**उद्धुमा** (उद्धुम), ४—**अङ्गुम** और ५—**अहिरेम** ये पांच आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**पूरयति**=अग्घाडइ, अग्घवइ, उद्धुमाइ (उद्धुमइ), अङ्गुमइ, अहिरेमइ आदेशों के अभाव-पक्ष में **पूरइ** (वह पूरा करता है) यह रूप बनता है।

८४१—त्वर् धातु के स्थान में **तुवर** और **जअड** ये दो आदेश होते हैं। जैसे—१—**त्वरते**=तुवरइ, जअडइ (वह शीघ्रता करता है), २—**त्वरमाणः**=तुवरन्तो, जअडन्तो (शीघ्रता करता हुआ), यहां पर त्वर् धातु को तुवर आदि दो आदेश किये गए हैं।

८४२—त्वर् धातु के स्थान में ति आदि तथा शतृ (शअर्थक) प्रत्यय परे रहने '**तूर**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**त्वरते**=तूरइ (वह जल्दी करता है), २—**त्वरमाणः**=तूरन्तो (शीघ्रता करता हुआ) यहां त्वर् धातु को तूर यह आदेश किया गया है। "**त्वरमाणः**" यहां आनश-प्रत्यय है, यह शअर्थक माना जाता है। अत एव यहां पर प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति की गई है।

८४३—यदि तिव् आदि से भिन्न प्रत्यय परे हों तो त्वर् धातु के स्थान में '**तुर**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**त्वरितः**=तुरिओ, (जिसे जल्दी हो), २—**त्वरमाणः**=तुरन्तो (जल्दी करता हुआ) यहां पर क्त आदि प्रत्ययों के परे रहने पर त्वर् धातु को 'तुर' यह आदेश किया गया है।

८४४—क्षर् धातु के स्थान में—१—**खिर**, २—**झर**, ३—**पज्झर** ४—**पच्चड**, ५—**णिच्चल**, और ६—**णिट्टुअ** ये छह आदेश होते हैं। जैसे—**क्षरति**=खिरइ, झरइ, पज्झरइ, पच्चडइ, णिच्चलइ, णिट्टुअइ (वह झरता है) यहां पर क्षर् धातु को खिर आदि छह आदेश किये गए हैं।

८४५—उत् उपसर्ग पूर्वक छल् धातु के स्थान में **उत्थल्ल** यह आदेश होता है। जैसे—**उच्छलति**=उत्थल्लइ (वह उछलता है) यहां उच्छल् धातु को उत्थल्ल आदेश किया गया है।

८४६—वि उपसर्ग पूर्वक गलि (गल्) धातु के स्थान में **थिप्प** और **णिट्टुह** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**विगलति**=थिप्पइ, णिट्टुहइ आदेशों के अभाव-पक्ष में **विगलइ** (वह जीर्ण-शीर्ण होता है) यह रूप बनता है।

८४७—दलि धातु और वलि धातु के स्थान में यथासंख्य (संख्या के अनुसार) **विसट्ट** और **वम्फ** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—१—**दलति**=विसट्टइ आदेश के अभाव-पक्ष में **दलइ** (वह फटता है, टुकड़े-टुकड़े होता है), २—**वलते**=वम्फइ आदेश के अभाव-पक्ष में—**वलइ** (वह ढांकता है, चलता है) यह रूप बनता है। यहां पर दलि धातु को **विसट्ट** और वलि धातु को **वम्फ** यह आदेश किया गया है।

८४८—भ्रंशु धातु के स्थान में—१—**फिड**, २—**फिट्ट**, ३—**फुड**, ४—**फुट्ट**, ५—**चुक्क** और ६—**भुल्ल** ये ६ आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**भ्रश्यति**=फिडइ, फिट्टइ, फुडइ, फुट्टइ, चुक्कइ, भुल्लइ आदेशों के अभाव-पक्ष में **भंसइ** (वह भ्रष्ट होता है) यह रूप होता है।

८४९—नशि धातु के स्थान में—१—**णिरणास**, २—**णिवह**, ३—**अवसेह**, ४—**पडिसा**, ५—**सेह** और ६—**अवहर** ये छह आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**नश्यति**=णिरणासइ, णिवहइ, अवसेहइ पडिसाइ, सेहइ, अवहरइ आदेशों के अभाव-पक्ष में **नस्सइ** (वह नष्ट होता है) यह रूप होता है।

८५०—अव उपसर्ग से परे काश् (काश्) धातु के स्थान में '**वास**' यह आदेश होता है। जैसे—**अवकाशते**=ओवासइ (वह चमकता है) यहां काश् धातु को 'वास' आदेश किया गया है।

★ अथ धात्वादेशविधिः (ग) ★

८५१—संदिशेरप्पाहः । ८ । ४ । १८० । संदिशतेरप्पाह इत्यादेशो वा भवति । अप्पाहइ, संदिसइ ।

८५२—दृशो निअच्छ-पेच्छावयच्छावयज्झ-वज्ज-सव्वव-देक्खौअक्खावक्खावअक्ख-पुलोअ-पुलअ-निआवआस-पासाः । ८ । ४ । १८१ । दृशेरेते पञ्चदशादेशा भवन्ति । निअच्छइ, पेच्छइ, अवयच्छइ, अवयज्झइ, वज्जइ, सव्ववइ, देक्खइ, ओअक्खइ, अवक्खइ, अवअक्खइ, पुलोएइ, पुलएइ, निअइ, अवआसइ, पासइ । निज्झाअइ इति तु निध्यायतेः स्वरादत्यन्ते भविष्यति ।

८५३—स्पृशः फास-फंस-फरिस-छिव-छिहालुङ्खालिहाः । ८ । ४ । १८२ । स्पृशतेरेते सप्त आदेशा भवन्ति । फासइ, फंसइ, फरिसइ, छिवइ, छिहइ, आलुङ्खइ, आलिहइ ।

८५४—प्रविशे रिअः । ८ । ४ । १८३ । प्रविशेः रिअ इत्यादेशो वा भवति । रिअइ, पविसइ ।

८५५—प्रान्मृश-मुषोर्म्हुसः । ८ । ४ । १८४ । प्रात्परयोर्मृशति-मुष्णात्योर्म्हुस इत्यादेशो भवति । पम्हुसइ । प्रमृशति प्रमुष्णाति वा ।

८५६—पिषेर्णिवह-णिरिणास-णिरिणज्ज-रोञ्च-चड्डाः । ८ । ४ । १८५ । पिषेरेते पञ्चादेशा वा भवन्ति । णिवहइ, णिरिणासइ, णिरिणज्जइ, रोञ्चइ, चड्डइ । पक्षे पीसइ ।

८५७—भषेर्भुक्कः । ८ । ४ । १८६ । भषेर्भुक्क इत्यादेशो वा भवति । भुक्कइ, भसइ ।

८५८—कृषेः कड्ढ-साअड्ढाञ्चाणच्छायञ्छाइञ्छाः । ८ । ४ । १८७ । कृषेरेते षडादेशा वा भवन्ति । कड्ढइ, साअड्ढइ, अञ्चइ, अणच्छइ, अयञ्छइ, आइञ्छइ । पक्षे करिसइ ।

८५९—असावक्खोडः । ८ । ४ । १८८ । असिविषयस्य कृषेरक्खोड इत्यादेशो भवति । अक्खोडेइ, असिं कोषात्कर्षतीत्यर्थः ।

८६०—गवेषेर्ढुण्ढुल्ल-ढण्ढोल-गमेस-घत्ताः । ८ । ४ । १८९ । गवेषेरेते चत्वार आदेशा वा भवन्ति । ढुण्ढुल्लइ, ढण्ढोलइ, गमेसइ, घत्तइ, गवेसइ ।

८६१—श्लिषः सामग्गावयास-परिअन्ताः । ८ । ४ । १९० । श्लिष्यतेरेते त्रय आदेशा वा भवन्ति । सामग्गइ, अवयासइ, परिअन्तइ, सिलेसइ ।

८६२—म्रक्षेश्चोप्पडः । ८ । ४ । १९१ । म्रक्षेश्चोप्पड इत्यादेशो वा भवति । चोप्पडइ, मक्खइ ।

८६३—कांक्षेराहाहिलङ्घाहिलङ्ख-वच्च-वम्फ-मह-सिह-विलुम्पाः । ८ । ४ । १९२ । कांक्षतेरेतेऽष्टादेशा वा भवन्ति । आहइ, अहिलङ्घइ, अहिलङ्खइ, वच्चइ, वम्फइ, महइ, सिहइ, विलुम्पइ, कङ्खइ ।

८६४—प्रतीक्षेः सामय-विहीर-विरमालाः । ८ । ४ । १९३ । प्रतीक्षेरेते त्रय आदेशा

वा भवन्ति । सामयइ, विहीरइ, विरमालइ, पडिक्खइ ।

८६५—तक्षेस्तच्छ-चच्छ-रम्प-रम्फाः । ८ । ४ । १९४ । तक्षेरेते चत्वार आदेशा वा भवन्ति । तच्छइ, चच्छइ, रम्पइ, रम्फइ, तक्खइ ।

८६६—विकसेः कोआस-वोसट्टौ । ८ । ४ । १९५ । विकसेरेतावादेशौ वा भवतः । कोआसइ, वोसट्टइ, विअसइ ।

८६७—हसेर्गुञ्जः । ८ । ४ । १९६ । हसेर्गुञ्ज इत्यादेशो वा भवति । गुञ्जइ, हसइ ।

८६८—स्रंसेर्ल्हस-डिम्भौ । ८ । ४ । १९७ । स्रंसेरेतावादेशौ वा भवतः । ल्हसइ । परिल्हसइ सलिलव-सणं । डिम्भइ, संसइ ।

८६९—त्रसेर्डर-बोज्ज-वज्जाः । ८ । ४ । १९८ । त्रसेरेते त्रय आदेशा वा भवन्ति । डरइ, बोज्जइ, वज्जइ, तसइ ।

८७०—न्यसो णिम-णुमौ । ८ । ४ । १९९ । न्यस्यतेरेतावादेशौ भवतः । णिमइ, णुमइ ।

८७१—पर्यसः पलोट्ट-पल्लट्ट-पल्हत्थाः । ४ । ४ । २०० । पर्यस्यतेरेते त्रय आदेशा भवन्ति । पलोट्टइ, पल्लट्टइ, पल्हत्थइ ।

८७२—निःश्वसेर्झङ्खः । ८ । ४ । २०१ । निःश्वसेर्झङ्ख इत्यादेशो वा भवति । झङ्खइ, नीससइ ।

८७३—उल्लसेरूसलोसुम्भ-णिल्लस-पुलआअ-गुञ्जोल्लारोआः । ८ । ४ । २०२ । उल्लसेरेते षडादेशा वा भवन्ति । ऊसलइ, ऊसुम्भइ, णिल्लसइ, पुलआअइ, गुञ्जोल्लइ, ह्रस्वत्वे तु गुञ्जुल्लइ, आरोअइ, उल्लसइ ।

८७४—भासेर्भिसः । ८ । ४ । २०३ । भासेर्भिस इत्यादेशो वा भवति । भिसइ,भासइ ।

८७५—ग्रसेर्घिसः । ८ । ४ । २०४ । ग्रसेर्घिस इत्यादेशो वा भवति । घिसइ, गसइ ।

८७६—अवाद् गाहेर्वाहः । ८ । ४ । २०५ । अवात्परस्य गाहेर्वाह इत्यादेशो वा भवति । ओवाहइ, ओगाहइ ।

८७७—आरुहेश्चड-वलग्गौ । ८ । ४ । २०६ । आरुहेरेतावादेशौ वा भवतः । चडइ, वलग्गइ, आरुहइ ।

८७८—मुहेर्गुम्म-गुम्मडौ । ८ । ४ । २०७ । मुहेरेतावादेशौ वा भवतः । गुम्मइ, गुम्मडइ, मुज्झइ ।

८७९—दहेरहिऊलालुङ्खौ । ८ । ४ । २०८ । दहेरेतावादेशौ वा भवतः । अहिऊलइ,

आलुङ्खइ, डहइ ।

८८०—ग्रहो वल-गेण्ह-हर-पङ्ग-निरुवाराहिपच्चुआः । ८ । ४ । २०९ । ग्रहेरेते षडादेशा भवन्ति । वलइ, गेण्हइ, हरइ, पङ्गइ, निरुवारइ, अहिपच्चुअइ ।

८८१—क्त्वा-तुम्-तव्येषु घेत् । ८ । ४ । २१० । ग्रहः क्त्वा-तुम्-तव्येषु घेत् इत्यादेशो भवति । क्त्वा । घेत्तूण, घेत्तुआण । क्वचिन्न भवति । गेण्हिअ । तुम् । घेत्तुं । तव्य । घेत्तव्वं ।

८८२—वचो वोत् । ८ । ४ । २११ । वक्तेर्वोत् इत्यादेशो भवति क्त्वा-तुम्-तव्येषु । वोत्तूण, वोत्तुं, वोत्तव्वं ।

८८३—रुद-भुज-मुचां तोऽन्त्यस्य । ८ । ४ । २१२ । एषामन्त्यस्य क्त्वातुमतव्येषु तो भवति । रोत्तूण, रोत्तुं, रोत्तव्वं । भोत्तूण, भोत्तुं, भोत्तव्वं । मोत्तूण, मोत्तुं, मोत्तव्वं ।

८८४—दृशस्तेन ट्ठः । ८ । ४ । २१३ । दृशोऽन्त्यस्य तकारेण सह द्विरुक्तठकारो भवति । दट्ठूण, दट्ठुं, दट्ठव्वं ।

८८५—आ कृगो भूत-भविष्यतोश्च । ८ । ४ । २१४ । कृगोऽन्त्यस्य आ इत्यादेशो भवति, भूत-भविष्य-कालयोश्चकारात् क्त्वा-तुम्-तव्येषु च । काहीअ । अकार्षीत्, अकरोत् चकार वा । काहिइ । करिष्यति, कर्ता वा । क्त्वा, काऊण । तुम्, काउं । तव्य, कायव्वं ।

८८६—गमिष्यमासां छः । ८ । ४ । २१५ । एषामन्त्यस्य छो भवति । गच्छइ । इच्छइ । जच्छइ । अच्छइ ।

८८७—छिदि-भिदो न्दः । ८ । ४ । २१६ । अनयोरन्त्यस्य नकाराक्रान्तो दकारो भवति । छिन्दइ, भिन्दइ ।

८८८—युध-बुध-गृध-क्रुध-सिध-मुहां ज्झः । ८ । ४ । २१७ । एषामन्त्यस्य द्विरुक्तो झो भवति । जुज्झइ । बुज्झइ । गिज्झइ । कुज्झइ । सिज्झइ । मुज्झइ ।

८८९—रुधो न्ध-म्भौ च । ८ । ४ । २१८ । रुधोऽन्त्यस्य न्ध, म्भ इत्येतौ चकारात् ज्झश्च भवति । रुन्धइ, रुम्भइ, रुज्झइ ।

८९०—सद-पतोर्डः । ८ । ४ । २१९ । अनयोरन्त्यस्य डो भवति । सडइ पडइ ।

८९१—क्वथ-वर्धां ढः । ८ । ४ । २२० । अनयोरन्त्यस्य ढो भवति । कढइ, वड्ढइ पवयकलयलो । परिअड्ढइ लायण्णं । बहुवचनाद् वृधेः कृतगुणस्य वर्धेश्चाविशेषेण ग्रहणम् ।

८९२—वेष्टः । ८ । ४ । २२१ । वेष्ट वेष्टने इत्यस्य धातोः क-ग-ट-ड [८ । २ । ७७] इत्यादिना षलोपेऽन्त्यस्य ढो भवति । वेढइ, वेढिज्जइ ।

८९३—समो ल्लः । ८ । ४ । २२२ । संपूर्वस्य वेष्टतेरन्त्यस्य द्विरुक्तो लो भवति ।

संवेल्लइ ।

८९४—वोदः । ८ । ४ । २२३ । उदः परस्य वेष्टतेरन्त्यस्य ल्लो वा भवति । उव्वेल्लइ, उव्वेढइ ।

८९५—स्विदां ज्जः । ८ । ४ । २२४ । स्विदि-प्रकाराणामन्त्यस्य द्विरुक्तो जो भवति । सव्वङ्ग-सिज्जिरीए । संपज्जइ । खिज्जइ । बहुवचनं प्रयोगानुसरणार्थम् ।

८९६—व्रज-नृत-मदां च्चः । ८ । ४ । २२५ । एषामन्त्यस्य द्विरुक्तश्चो भवति । वच्चइ । नच्चइ । मच्चइ ।

८९७—रुद-नमोर्वः । ८ । ४ । २२६ । अनयोरन्त्यस्य वो भवति । रुवइ,रोवइ । नवइ ।

८९८—उद्विजः । ८ । ४ । २२७ । उद्विजतेरन्त्यस्य वो भवति । उव्विवइ । उव्वेवो ।

८९९—खाद्-धावोर्लुक् । ८ । ४ । २२८ । अनयोरन्त्यस्य लुग् भवति । खाइ, खाअइ, खाहिइ । खाउ । धाइ, धाहिइ, धाउ । बहुलाधिकाराद्वर्तमाना-भविष्यद्विध्याद्येकवचन एव भवति । तेनेह न भवति । खादन्ति । धावन्ति । क्वचिन्न भवति, धावइ पुरओ ।

९००—सृजो रः । ८ । ४ । २२९ । सृजो धातोरन्त्यस्य रो भवति । निसिरइ । वोसिरइ । वोसिरामि ।

९०१—शकादीनां द्वित्वम् । ८ । ४ । २३० । शकादीनामन्त्यस्य द्वित्वं भवति । शक्, सक्कइ । जिम, जिम्मइ । लग्, लग्गइ । मग्, मग्गइ । कुप्, कुप्पइ । नश्, नस्सइ । अट्, परिअट्टइ । लुट्, पलोट्टइ । तुट्, तुट्टइ । नट्, नट्टइ । सिव्, सिव्वइ इत्यादि ।

९०२—स्फुटि-चलेः । ८ । ४ । २३१ । अनयोरन्त्यस्य द्वित्वं वा भवति । फुट्टइ, फुडइ । चल्लइ, चलइ ।

९०३—प्रादेर्मीलेः । ८ । ४ । २३२ । प्रादेः परस्य मीलेरन्त्यस्य द्वित्वं वा भवति । पमिल्लइ, पमीलइ । निमिल्लइ, निमीलइ । संमिल्लइ, संमीलइ । उम्मिल्लइ, उम्मीलइ । प्रादेरिति किम् ? मीलइ ।

९०४—उवर्णस्यावः । ८ । ४ । २३३ । धातोरन्त्यस्योवर्णस्य अवादेशो भवति । ह्नुङ् । निण्हवइ । ह्नु । निह्नवइ । च्युङ् । चवइ । रु । रवइ । कु । कवइ । षू । सवइ, पसवइ ।

९०५—ऋवर्णस्यारः । ८ । ४ । २३४ । धातोरन्त्यस्य ऋवर्णस्य अरादेशो भवति । करइ । धरइ । मरइ । वरइ । सरइ । हरइ । तरइ । जरइ ।

९०६—वृषादीनामरिः । ८ । ४ । २३५ । वृष इत्येवंप्रकाराणां धातूनाम् ऋवर्णस्य अरिः इत्यादेशो भवति । वृष्, वरिसइ । कृष्, करिसइ । मृष्, मरिसइ । हृष्, हरिसइ । येषा-

मरिरादेशो दृश्यते से कृपादयः ।

९०७—रुषादीनां दीर्घः । ८ । ४ । २३६ । रुष इत्येवंप्रकाराणां धातूनां स्वरस्य दीर्घो भवति । रूसइ । तूसइ । सूसइ । दूसइ । पूसइ । सीसइ इत्यादि ।

९०८—युवर्णस्य गुणः । ८ । ४ । २३७ । धातोरिवर्णस्योवर्णस्य च क्ङित्यपि गुणो भवति । जेऊण । नेऊण । नेइ । नेन्ति । उड्डेइ । उड्डेन्ति । मोत्तूण । सोऊण । क्वचिन्न भवति । नीओ । उड्डीणो ।

९०९—स्वराणां स्वराः । ८ । ४ । २३८ । धातुषु स्वराणां स्थाने स्वरा बहुलं भवन्ति । हवइ, हिवइ । चिणइ, चुणइ । सद्दहणं, सद्दहाणं । धावइ, धुवइ । रुवइ, रोवइ । क्वचिन्नित्यम् । देइ । लेइ । विहेइ । नासइ । आर्षे बेमि ।

९१०—व्यञ्जनाददन्ते । ८ । ४ । २३९ । व्यञ्जनान्ताद्धातोरन्ते अकारो भवति । भमइ । हसइ । कुणइ । चुम्बइ । भणइ । उवसमइ । पावइ । सिञ्चइ । रुन्धइ । मुसइ । हरइ । करइ । शबादीनां च प्रायः प्रयोगो नास्ति ।

९११—स्वरादनतो वा । ८ । ४ । २४० । अकारान्तवर्जितात् स्वरान्ताद्धातोरन्ते अकारागमो वा भवति । पाइ, पाअइ । धाइ, धाअइ । जाइ, जाअइ । झाइ, झाअइ । जम्भाइ, जम्भाअइ । उव्वाइ, उव्वाअइ । मिलाइ, मिलाअइ । विक्केइ, विक्केअइ । होऊण, होअऊण । अनत इति किम् ? चिइच्छइ । दुगुच्छइ ।

९१२—चि-जि-श्रु-हु-स्तु-लू-पू-धूगां णो ह्रस्वश्च । ८ । ४ । २४१ । च्यादीनां धातूनामन्ते णकारागमो भवति एषां स्वरस्य च ह्रस्वो भवति । चि, चिणइ । जि, जिणइ । श्रु, सुणइ । हु, हुणइ । स्तु, थुणइ । लू, लुणइ । पू, पुणइ । धूग्, धुणइ । बहुलाधिकारात् क्वचिद् विकल्पः । उच्चिणइ, उच्चेइ । जेऊण, जिणिऊण । जयइ, जिणइ । सोऊण, सुणिऊण ।

★ अथ धात्वादेशविधिः (ग) ★

पूर्व-प्रकरण-तुल्यमेवाऽत्रापि धातूनामादेशविधिः निरूप्यते—

८५१—संदिशति । सम्पूर्वकः दिश्धातुः सन्देशे । सन्दिश्+तिव् । ८५१ सू० सन्दिश्धातोः विकल्पेन अप्पाह इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **अप्पाहइ** आदेशाभावे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **संदिसइ** इति भवति ।

८५२—पश्यति । दृशिर्-दृश् दर्शने । दृश्+तिव् । ८५२ सू० दृश्धातोः स्थाने निअच्छ इत्यादयः पञ्चदशादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **निअच्छइ, पेच्छइ, अवयच्छइ, अवयज्झइ, वज्जइ, सव्ववइ, देक्खइ, ओअक्खइ, अवक्खइ, अवअक्खइ, पुलोअइ, पुलअइ, निअइ, अवआसइ, पासइ** इति भवति । **पुलोअ, पुलअ** इत्यत्र ६४७ सू० अकारस्य स्थाने एकारे **पुलोएइ, पुलएइ** एते रूपे भवतः । **निज्झाअइ इति तु** । निज्झाअइ प्रयोगोऽयं नि-उपसर्गपूर्वकस्य ध्यै-धातोः ९११ सूत्रेण अकारागमे कृते

सति सम्पद्यते, प्रस्तुतसूत्रेणात्र न किमपि कार्यं कृतम्। साधनिका त्वित्थम्—**निध्यायति**। निपूर्वकः ध्यै-धातुः विशिष्टचिन्तने। निध्यै+तिव्। संस्कृतनियमेन निध्या+तिव् इति जाते, ६७७ सू० ध्याधातोः स्थाने झा इत्यादेशे, ३६० सू० झकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वझकारस्य जकारे, ९११ सू० अकारागमे, तिव इचादेशे **निज्झाअइ** इति भवति।

८५३—**स्पृशति**। स्पृश्धातुः स्पर्शे। स्पृश्+तिव्। ८५३ सू० स्पृशेः स्थाने फास, फंस, फरिस, छिव, छिह, आलुङ्ख, आलिह इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे, **फासइ, फंसइ, फरिसइ, छिवइ, छिहइ, आलुङ्खइ, आलिहइ** इति सिद्धम्।

८५४—**प्रविशति**। प्रपूर्वकः विश्-धातुः प्रवेशे। प्रविश्+तिव्। ८५४ सू० प्रविश्धातोः विकल्पेन रिअ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **रिअइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९१० सू० अकारागमे **पविसइ** इति भवति।

८५५—**प्रमृशति**। प्रपूर्वकः मृश्धातुः स्पर्शने। प्रमृश्+तिव्। ८५५ सू० मृश्धातोः स्थाने म्हुस इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **पम्हुसइ** इति भवति। **प्रमुष्णाति**। प्रपूर्वकः मुष्धातुः चौर्ये। प्रमुष्+तिव्। प्रस्तुतसूत्रेण मुष्धातोः म्हुस इत्यादेशे, पूर्ववदेव **पम्हुसइ** इति भवति।

८५६—**पिनष्टि**। पिष् पेषणे। पिष्+तिव्। ८५६ सू० पिष्धातोः विकल्पेन णिवह इत्यादयः पञ्चादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **णिवहइ, णिरिणासइ, णिरिणज्जइ रोञ्चइ, चड्डइ** आदेशाभावे ९०९ सू० इकारस्य ईकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ९१० सू० अकारागमे **पीसइ** इति भवति।

८५७—**भषते**। भष् भर्त्सने। भष्+ते। ८५७ सू० भष्धातोः विकल्पेन भुक्क इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **भुक्कइ** आदेशाभावे २६० सू० षकारस्य सकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **भसइ** इति भवति।

८५८—**कर्षति**। कृष् कर्षणे। कृष्+तिव्। ८५८ सू० कृष्धातोः विकल्पेन कड्ढ इत्यादयः षडादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **कड्ढइ**, कड्ड इति पाठे तु **कड्डइ, साअड्ढइ**, साअड्ड इति पाठे तु **साअड्डइ अञ्चइ, अणच्छइ, अयञ्छइ, आइञ्छइ** आदेशाभावे ९०६ सू० ऋकारस्य अरि इत्यादेशे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **करिसइ** इति भवति।

८५९—**असि कोशात् कर्षति** इत्यर्थे ८५९ सू० कृष्धातोः स्थाने अक्खोड इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **अक्खोडइ** ६४७ सू० अकारस्य एकारे **अक्खोडेइ** इति सिद्धम्।

८६०—**गवेषयति**। गवेष् गवेषणायाम्। गवेष्+तिव्। ८६० सू० गवेष्धातोः विकल्पेन ढुण्ढुल्ल इत्यादयः चत्वार आदेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **ढुण्ढुल्लइ, ढण्ढोलइ, गमेसइ, घत्तइ** आदेशाभावे २६० सू० षकारस्य सकारे, ९१० सू० अकारागमे **गवेसइ** इति भवति।

८६१—**श्लिष्यति**। श्लिष् श्लेषे। श्लिष्+तिव्। ८६१ सू० श्लिष्धातोः विकल्पेन सामग्ग इत्यादयस्त्रय आदेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **सामग्गइ, अवयासइ, परिअन्तइ**, परिअत्त इति पाठे तु **परिअत्तइ**, आदेशाभावे ३७७ सू० लकारात् पूर्वं इकारस्य विकरणे, २६० सू० शकारस्य षकारस्य च सकारे, ९०८ सू० द्वितीयस्य इकारस्य एकारे, ९१० सू० अकारागमे **सिलेसइ** इति भवति।

८६२—**म्रक्षते**। म्रक्ष् म्रक्षणे। म्रक्ष्+ते। ८६२ सू० म्रक्ष्धातोः विकल्पेन चोप्पड इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **चोप्पडइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफस्य लोपे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे **मक्खइ** इति भवति।

८६३—कांक्षते । कांक्ष् कांक्षायाम् । कांक्ष् + ते । ८६३ सू० कांक्षधातोः विकल्पेन आह इत्यादय अष्टादेशाः, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **आहइ, अहिलङ्घइ, अहिलङ्खइ, वच्चइ, वम्फइ, महइ, सिहइ, विलुम्पइ** आदेशाभावे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६३ सू० खकारस्य द्वित्वनिषेधे, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्ये, ८४ सू० आकारस्य अकारे **कङ्खइ** इति भवति ।

८६४—प्रतीक्षते । प्रति-पूर्वकः ईक्षधातुः प्रतीक्षायाम् । प्रतीक्ष् + ते । ८६४ सू० प्रतीक्षधातोः विकल्पेन सामय इत्याद्यादेशास्त्रयः, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **सामयइ, विहीरइ, विरमालइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे, ८४ सू० ईकारस्य इकारे, २०६ सू० तकारस्य डकारे, २७४ सू० क्षस्य खकारे **पडिक्खइ** उपर्युक्त—कङ्खइ-वत् साध्यं रूपमिदम ।

८६५—तक्षते । तक्ष् तक्षणे । तक्ष् + ते । ८६५ सू० तक्षधातोः स्थाने तच्छ, चच्छ, रम्प, रम्फ इत्यादेशाः, ६२८ सू० ते इत्यस्य स्थाने इचादेशे **तच्छइ, चच्छइ, रम्पइ, रम्फइ** आदेशाभावे **तक्खइ** उपर्युक्तपडिक्खइ-वत्साध्यम् ।

८६६—विकसति । विपूर्वकः कस्धातुः विकासे । विकस् + तिव् । ८६६ सू० विकसेः विकल्पेन कोआस, वोसट्ट इत्यादेशौ,६२८ सू० तिव इचादेशे **कोआसइ,वोसट्टइ** आदेशाभावे १७७ सू० ककारस्य लोपे, ९१० सू० अकारागमे **विअसइ** इति भवति ।

८६७—हसति । हस् हासे । हस् + तिव् । ८६७ सू० हस्धातोः विकल्पेन गुञ्ज इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **गुञ्जइ** आदेशाभावे ९१० सू० अकारागमे **हसइ** इति भवति ।

८६८—स्रंसते । स्रंस् अवस्रंसे । स्रंस् + ते । ८६८ सू० स्रंस्धातोः विकल्पेन ल्हस, डिम्भ इत्यादेशौ,६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **ल्हसइ,डिम्भइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफस्य लोपे,९१० सू० अकारागमे **संसइ** इति भवति । **परिस्रंसते** । परिपूर्वकः स्रंस्धातुः परिस्रंसने । परिस्रंस् + ते । पूर्ववदेव **परिल्हसइ** इति साध्यम् । **सलिलवसनम्** । सलिलयुक्तं वसनं-वस्त्रम् । सलिलवसन + सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **सलिल-वसणं** इति भवति ।

८६९—त्रस्यति । त्रस् त्रासे । त्रस् + तिव् । ८६९ सू० त्रस्धातोः विकल्पेन डर इत्यादयस्त्रय आदेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **डरइ, बोज्जइ, वज्जइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफस्य लोपे, ९१० सू० अकारागमे **तसइ** इति भवति ।

८७०—न्यस्यति । निपूर्वकः असधातुः न्यासे । न्यस् + तिव् । ८७० सू० न्यस्धातोः स्थाने णिम, णुम इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **णिमइ, णुमइ** इति भवति ।

८७१—पर्यस्यति । परिपूर्वकः असधातुः परितः क्षेपे । पर्यस् + तिव् । ८७१ सू० पर्यस्धातोः पलोट्ट, पल्लट्ट, पल्हत्थ इत्यादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **पलोट्टइ, पल्लट्टइ, पल्हत्थइ** इति भवति । **पलोट्टइ** इत्यत्र प्रयोगादर्शनात् ८४ सू० ह्रस्वो न जातः ।

८७२—निःश्वसिति । निर्पूर्वकः श्वस्धातुः निःश्वासे-श्वासमोचने । निर्-श्वस् + तिव् । ८७२ सू० निर्श्वस्धातोः विकल्पेन झङ्ख इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **झङ्खइ** आदेशाभावे ११ सू० रेफलोपे, ९३ सू० इकारस्य ईकारे, ३५० सू० वकारलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे **नीससइ** इति भवति ।

८७३—उल्लसति । उत्पूर्वकः लस्धातुः उल्लासे-हर्षे । उल्लस् + तिव् । ८७३ सू० उल्लस्धातोः स्थाने विकल्पेन ऊसल इत्यादयः षडादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे, **ऊसलइ, ऊसुम्भइ, णि-**

ल्लसइ, पुलआअइ, गुञ्जोल्लइ, ८४ सू० ओकारस्य उकारे **गुञ्जुल्लइ, आरोअइ** आदेशाभावे ९१० सू० अकारागमे **उल्लसइ** इति भवति।

८७४—भासते। भास्धातुः दीप्तौ। भास्+ते। ८७४ सू० भास्धातोः विकल्पेन भिस इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **भिसइ** आदेशाभावे ९१० सू० अकारागमे **भासइ** इति भवति।

८७५—ग्रसति। ग्रस् ग्रासे। ग्रस्+तिव्। ८७५ सू० ग्रस्धातोः विकल्पेन घिस इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **घिसइ** आदेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे, ९१० सू० अकारागमे **गसइ** इति भवति।

८७६—अवगाहते। अवपूर्वकः गाह् धातुः अवगाहे, अधिकाभ्यासे, जलप्रवेशे वा। अवगाह्+ते। १७२ सू० अव इत्युपसर्गस्य ओकारे, ८७६ सू० गाह् धातोः विकल्पेन वाह इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **ओवाहइ** आदेशाभावे ९१० सू० अकारागमे **ओगाहइ** इति पूर्ववदेव साध्यम्।

८७७—आरोहयति। आङ्-पूर्वकः रुह् धातुः आरोहणे। आरुह्+तिव्। ८७७ सू० आरुह्-धातोः विकल्पेन चड, वलग्ग इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **चडइ, वलग्गइ** आदेशाभावे ९१० सू० अकारागमे **आरुहइ** इति भवति।

८७८—मुह्यति। मुह् धातुः मूर्च्छायाम्। मुह्+तिव्। ८७८ सू० मुह् धातोः स्थाने विकल्पेन गुम्म, गुम्मड इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **गुम्मइ, गुम्मडइ** आदेशाभावे ८८८ सू० हकारस्य ज्झ इत्यादेशे, ३६१ सू० पूर्वझकारस्य जकारे **मुज्झइ** इति भवति।

८७९—दहति। दह् दाहे। दह्+तिव्। ८७९ सू० दह् धातोः विकल्पेन अहिऊल, आलुङ्ख इत्यादेशौ, ६२८ सू० तिव इचादेशे **अहिऊलइ, आलुङ्खइ** आदेशाभावे २१८ सू० दकारस्य डकारे, ९१० सू० अकारागमे **डहइ** इति भवति।

८८०—गृह्णाति। ग्रह् उपादाने। ग्रह्+तिव्। ८८० सू० ग्रह् धातोः वल इत्यादयः षडादेशाः, ६२८ सू० तिव इचादेशे **वलइ, गेण्हइ, हरइ, पङ्गइ, निरुवारइ, अहिपच्चुअइ** इति भवति।

८८१—गृहीत्वा। ग्रह् धातुः उपादाने-ग्रहणे। ग्रह्+क्त्वा। ८८१ सू० ग्रह् धातोः घेत् इत्यादेशे, ४१७ सू० क्त्वः स्थाने तूण इत्यादेशे **घेत्तूण** तुआण इत्यादेशे तु **घेत्तुआण** इति भवति। **क्वचिन्न भवति।** बाहुल्येन कस्मिंश्चित् स्थले प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न भवति। यथा—**गृहीत्वा।** ग्रह्+क्त्वा। बहुलाधिकारादत्र प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ ८८० सू० ग्रह् धातोः गेण्ह इत्यादेशे, ४१७ सू० क्त्वः स्थाने अकारे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे **गेण्हिअ** इति भवति। **ग्रहीतुम्।** ग्रह्+तुम्। प्रस्तुतसूत्रेण ग्रह्-धातोः घेत् इत्यादेशे, २३ सू० मकारानुस्वारे **घेत्तुं** इति भवति। **ग्रहीतव्यम्।** ग्रह्+तव्य। प्रस्तुतसूत्रेण ग्रह् धातोः घेत् इत्यादेशे, सिप्रत्यये, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **घेत्तव्वं** इति भवति।

८८२—उक्त्वा। वच् व्यक्तायां वाचि। वच्+क्त्वा। ८८२ सू० वच्धातोः स्थाने वोत् इत्यादेशे, ४१७ सू० क्त्वः तूण इत्यादेशे **वोत्तूण** इति भवति। **वक्तुम्।** वच्+तुम्=वोत्+तुम्=वोत्तुम्, इत्यत्र २३ सू० मकारानुस्वारे **वोत्तुं** इति भवति। **वक्तव्यम्।** वच्+तव्य। प्रस्तुतसूत्रेण वच्धातोः वोत् इत्यादेशे, सिप्रत्यये, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **वोत्तव्वं** इति भवति।

८८३—रुदित्वा। रुद् रोदने। रुद्+क्त्वा। ९०८ सू० उकारस्य ओकारे, ८८३ सू० दकारस्य तकारे, ४१७ सू० क्त्वः स्थाने तूण इत्यादेशे **रोत्तूण** इति भवति। प्रयोगदर्शनादत्र ८४ सू० ह्रस्वो न जातः।

रोवितुम् । रुद्+तुम् । उकारस्य ओकारे, दकारस्य तकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **रोत्तुं** इति भवति । **रोवितव्यम्** । रुद्+तव्य=रोत्तव्य । सिप्रत्यये, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, मकारानुस्वारे **रोत्तव्वं** इति भवति । **भुक्त्वा** । भुज् भोजने । भुज्+क्त्वा । उकारस्य ओकारे, प्रस्तुतसूत्रेण जकारस्य तकारे, ४१७ सू० क्त्वः तूण इत्यादेशे **भोत्तूण** इति भवति । **भोक्तुम्** । भुज्+तुम्=भोत्तुम्, मकारानुस्वारे **भोत्तुं**, **भोक्तव्यम्** । भुज्+तव्य=**भोत्तव्वं** रोत्तव्वं-वत् साध्यम् । एवमेव **मुक्त्वा**—मुच्+क्त्वा । १०८ सू० उकारस्य ओकारे, प्रस्तुतसूत्रेण चकारस्य तकारे, क्त्वः तूण इत्यादेशे **मोत्तूण**, **मोक्तुम्** । मुच्+तुम्=मोत्तुं, **मोक्तव्यम्** । मुच्+तव्य=**मोत्तव्वं** इति साध्यम् ।

८८४—**दृष्ट्वा** । दृश् दर्शने । दृश्+क्त्वा । १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, ४१७ सू० क्त्वः तूण इत्यादेशे, ८८४ सू० तकारेण सह शकारस्य ठ्ठ इत्यादेशे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये—**दट्ठूण** इति भवति । **द्रष्टुम्** । दृश्+तुम् । पूर्ववदेव दट्ठुम् इति जाते, २३ सू० मकारानुस्वारे **दट्ठुं** इति भवति । **द्रष्टव्यम्** । दृश्+तव्य=दट्ठव्य । सिप्रत्यये, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, मकारानुस्वारे **दट्ठव्वं** इति भवति ।

८८५—**अकार्षीत्, अकरोत्, चकार** । डुकृञ् (कृ) करणे । कृ+दि, कृ+दिप्, कृ+णव् । ८८५ सू० ऋकारस्य आकारे, ६५१ सू० भूतार्थक-प्रत्ययानां हीअ इत्यादेशे **काहीअ** इति भवति । रूपमिदम्—**अकार्षीत्,अकरोत्,चकार** इत्येतेषां त्रयाणां रूपाणामेव बोधकं ज्ञेयम् । **करिष्यति,कर्ता** । कृ+स्यति,कृ+ता=**काहिइ** प्रक्रिया ६५५ सूत्रे ज्ञेया । **कृत्वा**—काऊण प्रक्रिया ६४६ सूत्रे ज्ञेया । **कर्तुम्** । कृ+तुम् । प्रस्तुतसूत्रेण ऋकारस्य आकारे, १७७ सू० तकारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **काउं** इति भवति । **कर्तव्यम्** । कृ+तव्य=का+तव्य+सि । १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुती, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **कायव्वं** इति सिद्धम् ।

८८६—**गच्छति** । गम्लृ गतौ । गम्+तिप् । ८८६ सू० मकारस्य छ इत्यादेशे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ पूर्वछकारस्य चकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **गच्छइ** इति भवति । **इच्छति** । इषु इच्छायाम् । इष+तिप् । प्रस्तुतसूत्रेण षकारस्य छकारे, पूर्ववदेव **इच्छइ** इति सिद्धम् । **यच्छति** । यम् उपरमे । २४५ सू० यकारस्य जकारे, मकारस्य छकारे, पूर्ववदेव **जच्छइ** इति सिद्धम् । **आस्ते** । आस् उपवेशने । सकारस्य छ इत्यादेशे,छकारद्वित्वे,पूर्वछकारस्य चकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, पूर्ववदेव **अच्छइ** इति भवति ।

८८७—**छिनत्ति** । छिद् छेदने । छिद्+तिप् । ८८७ सू० दकारस्य न्द इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **छिन्दइ** इति भवति । **भिनत्ति** । भिद् भेदने । भिद्+तिप् । पूर्ववदेव **भिन्दइ** इति भवति ।

८८८—**युध्यते** । युध्धातुः योधने । युध्+ते । २४५ सू० यकारस्य जकारे,८८८ सू० धकारस्य झ्झ इत्यादेशे, ३६१ सू० पूर्वझकारस्य जकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **जुज्झइ** इति भवति । **बोधते बुध्यते वा** । बुध् बोधे । बुध्+ते । पूर्ववदेव **बुज्झइ** इति भवति । **गृध्यति** । गृध् गार्द्ध्ये । गृध्+तिप् । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे,पूर्ववदेव **गिज्झइ** इति साध्यम् । **क्रुध्यति** । क्रुध्धातुः कोपे । क्रुध्+तिप् । ३५० सू० रेफलोपे, पूर्ववदेव **कुज्झइ** । **सेधति** । सिध् गतौ । सिध्+तिप्=**सिज्झइ** । **मुह्यति** । मुह् मूर्च्छायाम् । मुह्+तिप्=**मुज्झइ** इति पूर्ववदेव साध्यम् । अत्र हकारस्य झ्झ इत्यादेशो जातोऽन्यत्र तु धकारस्य ।

८८९—**रुणद्धि** । रुधिर् (रुध्) निवारणे । रुध्+तिप् । ८८९ सू० धकारस्य न्ध, म्भ, झ्झ इ-

त्यादेशाः, ३६१ सू० प्रथमझकारस्य जकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **रुन्धइ, रुम्भइ, रुज्झइ** इति भवति।

८९०—सीदति। षद्लृ(सद्)धातुः विशरण-गत्यवसादनेषु। सद्+तिव्। ८९० सू० दकारस्य डकारे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **सडइ** इति भवति। **पतति।** पत् पतने। पत्+तिव्। प्रस्तुत-सूत्रेण तकारस्य डकारे, पूर्ववदेव **पडइ** इति साध्यम्।

८९१—क्वथति। क्वथ् क्वथने। क्वथ्+तिव्। ३५० सू० वकारलोपे, ८९१ सू० थकारस्य ढकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे ***कढइ** इति भवति। **वर्धते।** वृधु वर्धने। वृध्+ते। १२६ सू० ऋकारस्य अ-कारे, प्रस्तुतसूत्रेण धकारस्य ढकारे, ३६० सू० ढकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वढकारस्य डकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **वड्ढइ** इति भवति। **प्लवग-कलकलः।** प्लवगाः-वानराः, तेषां कलकलः - कोलाहलः। प्लवगकलकल+सि। ३५० सू० लकारलोपे, १७७ सू० गकारस्य द्वितीय-ककारस्य च लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पवय-कलयलो** इति भवति। **परिवर्धते**—परि-वड्ढइ, इति **वड्ढइ**-वत् साध्यम्। **लावण्यम्**—लायण्णं, प्रक्रिया १७७ सूत्रे ज्ञेया। **बहुवचनात्।** ८९१ सूत्रे "**क्वथवर्धाम्**" इति बहुवचनग्रहणं वर्ध छेदन-पूरणयोः इति कृतगुणस्य चुरादि-गणीयस्य, वृधु वर्धने इति भ्वादिगणीयस्य च धातोः अविशेषेण - सामान्यरूपेण ग्रहणं सूचयतीति भावः।

८९२—वेष्टते। वेष्ट् वेष्टने। वेष्ट्+ते। ३४८ सू० षकारस्य लोपे, ८९२ सू० टकारस्य ढकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **वेढइ** इति भवति। **वेष्ट्यते।** वेष्ट्+क्य+ते=वेढ+क्य+ते। ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, पूर्ववदेव **वेढिज्जइ** इति भवति।

८९३—संवेष्टते। सम्पूर्वकः वेष्ट्-धातुः सम्यग्वेष्टने। संवेष्ट्+ते। ३४८ सू० षकारलोपे, ८९३ सू० टकारस्य ल्ल इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **संवेल्लइ** इति भवति।

८९४—उद्वेष्टते। उत्पूर्वकः वेष्ट्धातुः उद्वेष्टने। उद्वेष्ट्+ते। ३४८ सू० दकारलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ३४८ सू० षकारलोपे, ८९४ सू० टकारस्य विकल्पेन ल्ल इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इ-त्यस्य इचादेशे **उव्वेल्लइ** आदेशाभावे ८९२ सू० टकारस्य ढकारे **उव्वेढइ** इति भवति।

८९५—सर्वाङ्गस्वेदिन्याः। सर्वाणि अङ्गानि सर्वाङ्गानि, तेषु स्वेदिनी-स्वेदनशीला, तस्याः। सर्वाङ्ग-स्वेदिनी+ङस्। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ८४ सू० आकारस्य अकारे, (ञिष्विदा (ष्विद्) स्नेहमोचने, स्वेदनशीला इत्यर्थे तृन्प्रत्यये, ष्विद्+तृ इति जाते, २६० सू० शकारस्य सकारे, ३५० सू० वकारलोपे) ८९५ सू० दकारस्य ज्ज इत्यादेशे, ४१६ सू० तृन्प्रत्ययस्य इर इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, ५२१ सू० ङी (ई) प्रत्यये [सव्वङ्गसिज्जिर+ई], स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ङस्प्रत्यये, ५१८ सू० ङसः एकारे **सव्वङ्गसिज्जिरीए** इति भवति। **सम्पद्यते।** सम्पूर्वकः पद्धातुः सम्पादने। संपद्+ते। प्रस्तुतसूत्रेण दकारस्य ज्जादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **सम्पज्जइ** इति भ-वति। एवमेव **खिद्यते।** खिद्-धातुः खेदे। खिद्+ते=**खिज्जइ,** इति साध्यम्। **बहुवचनम्।** प्रस्तुतसूत्रे "**स्विदाम्**" इति बहुवचनस्य ग्रहणं प्रयोगानुसारार्थम्, यत्र प्रयोगे 'ज्ज' इत्यादेशस्य आवश्यकता भवेत्त-त्रैव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्विधेयेति भावः।

८९६—व्रजति। व्रज् गतौ। व्रज्+तिव्। ३५० सू० रेफलोपे, ८९६ सू० जकारस्य ञ्च इत्या-देशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **वञ्चइ** इति भवति। **नृत्यति।** नृत् नर्तने। नृत्+तिव्। १२६ सू० ऋ-कारस्य अकारे, ८९६ सू० तकारस्य ञ्च इत्यादेशे, पूर्ववदेव **नञ्चइ** इति भवति। **मन्यते।** मदि(मद्)धातुः

*प्रयोगदर्शनाभावात् ३६० सूत्रेण ढकारस्य द्वित्वं नाऽभूद्।

ग्लुलि-मोद-मद-स्वप्न-गलिषु। मद्+ते। पूर्ववदेव **मज्जइ** इत्यत्र ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशो जातः।

८९७—रोदिति। रुद् रोदने। रुद्+तिव्। ८९७ सू० दकारस्य वकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **रुवइ** ९०९ सू० उकारस्य ओकारे **रोवइ** इति भवति। **नमति**। नम् नमने। नम्+तिव्। प्रस्तुतसूत्रेण मकारस्य वकारे **नवइ** २२९ सू० नकारस्य णकारे **णवइ** इति साध्यम्।

८९८—उद्विजति। उत्पूर्वकः विजधातुः उद्वेगे। उद्विज्+तिव्। ३४८ दकारलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, प्रस्तुतसूत्रेण जकारस्य व इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **उव्विवइ** इति सिद्धम्। **उद्वेगः**। उद्विज्+घञ (अ)=उव्विव्+अ। ९०९ सू० इकारस्य एकारे, सिप्रत्यये, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **उव्वेवो** इति भवति।

८९९—खादति। खाद् खादने। खाद्+तिव्। ८९९ सू० दकारलोपे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **खाइ** ९११ सू० अकारागमे **खाअइ** इति भवति। **खादिष्यति**। खाद्+स्यति=खा+स्यति। ६५५ सू० भविष्यत्यादौ हि-प्रयोगे, ६२८ सू० स्यतेः स्थाने इचादेशे **खाहिइ** इति भवति। **खादतु**। खाद्+तुव्=खा+तुव्। ६६२ सू० तुवः दु इत्यादेशे, १७७ सू० दकारलोपे **खाउ** इति भवति। **धावति**। धाव्+धावने। धाव्+तिव्=प्रस्तुतसूत्रेण वकारस्य लोपे **धाइ** इति पूर्ववदेव साध्यम्। **धाविष्यति**। धाव्+स्यति। पूर्ववदेव—**धाहिइ** इति भवति। **धावतु**। धाव्+तुव्। पूर्ववदेव **धाउ** इति भवति। **बहुलाधिकारात्**। ८९९ सूत्रे बहुलम् (८।१।२। इत्यस्य सूत्रस्यानुवृत्तिरायाति तेन वर्तमाना (लट्), भविष्यद् (लृट्, लुट्) विधिः (लोट्, विधिलिङ्) एतेषामेकवचने एव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जायते न तु बहुवचनेऽपि। यथा—**खादन्ति**। खाद्+अन्ति। ९१० सू० अकारागमे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **खाअन्ति** इति भवति। एवमेव **धावन्ति**। धाव्+अन्ति=**धावन्ति** इति साध्यम्। अत्र बाहुल्यात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता। **क्वचिन्न भवति**। बहुलाधिकारात् कस्मिंश्चित् स्थले एकवचनेऽपि प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न भवति। यथा—**धावति**। धाव्+तिव्। बाहुल्येन प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ ९१० सू० अकारागमे, पूर्ववदेव **धावइ** इति भवति। **पुरतः**। अव्ययपदमिदम्। १७७ सू० तकारलोपे, ३७ सू० विसर्गस्य डो (ओ) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पुरओ** इति भवति।

९००—निसृजति। निपूर्वकः सृज्धातुः निसर्गे। निसृज्+तिव्। १२८ ऋकारस्य इकारे, ९०० सू० जकारस्य रेफादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **निसिरइ** इति भवति। **व्युत्सृजति**। वि-उत्-पूर्वकः सृज्धातुः व्युत्सर्गे। व्युत्सृज्+तिव्। ३४९ सू० यकारलोपे, ९०९ सू० उकारस्य ओकारे, ११ सू० तकारलोपे, ऋकारस्य इकारे, जकारस्य रेफादेशे, पूर्ववदेव **वोसिरइ** इति भवति। **व्युत्सृजामि**। व्युत्सृज्+मिव्=वोसिर+मिव्। ६४३ सू० अकारस्य आकारे, ६३० सू० मिवः स्थाने मि इत्यादेशे **वोसिरामि** इति भवति।

९०१—शक्नोति। शक्धातुः सामर्थ्ये। शक्+तिव्। २६० सू० शकारस्य सकारे, ९०१ सू० ककारद्वित्वे, ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **सक्कइ** इति सिद्धम्। **जेमति**। जिम् भोजने। जिम्+तिव्। प्रस्तुतसूत्रेण मकारस्य द्वित्वे, **जिम्मइ**। **लगति**। लग् लगने। लग्+तिव्=**लग्गइ**। **मगति**। मग् गतौ। मग्+तिव्=**मग्गइ**। **कुप्यति**। कुप् कोपे। कुप्+तिव्=**कुप्पइ**। **नश्यति**। नश् नाशे। नश्+तिव्। २६० सू० शकारस्य सकारे **नस्सइ** इति भवति। **पर्यटति**। परिपूर्वकः अट्-धातुः पर्यटने। परिअट्+तिव्। ६ सू० यण्-सन्धिनिषेधे, प्रस्तुतसूत्रेण टकारस्य द्वित्वे, पूर्ववदेव **परिअट्टइ** इति भवति। **प्रलुटति**। प्रपूर्वकः लुट्-धातुः संश्लेषणे। प्रलुट्+तिव्। ३५० सू० रेफलोपे, ९०९

सू० उकारस्य ओकारे, पूर्ववदेव टकारद्वित्वे **पलोट्टइ** प्रयोगदर्शनात् ८४ सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता, **तुट्-यति** । तुट् त्रोटने । तुट्+तिव् = **तुट्टइ** । **नटति** । नट्+नर्तने । नट्+तिव् = **नट्टइ** । **सीव्यति** । सिव् तन्तु-सन्ताने । सिव्+तिव् = **सिव्वइ** इति भवति । अत्र प्रस्तुतसूत्रेण टकारस्य वकारस्य च द्वित्वं जातम् ।

६०२—**स्फुटति** । स्फुट् विकासे । स्फुट्+तिव् । ३४८ सू० सकारलोपे, ९०२ सू० टकारस्य विकल्पेन द्वित्वे, ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **फुट्टइ** द्वित्वाभावे—१९५ सू० टकारस्य डकारे, अकारागमे, पूर्ववदेव **फुडइ** इति भवति । **चलति** । चल् चलने । चल्+तिव् । प्रस्तुतसूत्रेण लकारस्य वैकल्पिके द्वित्वे **चल्लइ** द्वित्वाभावे **चलइ** इति भवति ।

६०३—**प्रादेरिति** । प्र, परा, अप, सम् इत्यादयः उपसर्गाः । प्र आदिर्यस्य सः प्रादिः, तस्येति भावः । **प्रमीलति** । प्रपूर्वकः मील्धातुः प्रकृष्टनिमेषणे-अतिसंकोचे । प्रमील्+तिव् । ३५० सू० रेफलोपे, ९०३ सू० लकारस्य वैकल्पिके द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **पमिल्लइ** द्वित्वाभावे **पमीलइ** इति भवति । **निमीलति** । निपूर्वकः मील्धातुः निमेषणे-नेत्रसंकोचे । निमील्+तिव् । पूर्ववदेव लकारस्य द्वित्वे—**निमिल्लइ** द्वित्वाभावे **निमीलइ** इति भवति । **संमीलति** । सम्पूर्वकः मील्धातुः सम्मेलने-संयोगे । संमील्+तिव् । पूर्ववदेव **संमिल्लइ, संमीलइ** इति भवति । **उन्मीलति** । उत्पूर्वकः मील्धातुः उन्मीलने । उद्मील्+तिव् । ३४८ सू० दकारलोपे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे, प्रस्तुतसूत्रेण लकारस्य वैकल्पिके द्वित्वे, पूर्ववदेव **उम्मिल्लइ, उम्मीलइ** इति भवति । **प्रादेरिति किम्** ? प्रस्तुतसूत्रेण प्रादेः परस्यैव मील्धातोः लकारस्य द्वित्वं जायते, नान्यथा । यथा—**मीलति** । मील् निमेषणे । मील्+तिव् । प्रादीनामुपसर्गाणामभावादत्र प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, पूर्ववदेव **मीलइ** इति भवति ।

६०४—**ह्नुङ्** । ह्नुङ्-धातोरुदाहरणं प्रदीयते । यथा—**निह्नुते** । निपूर्वकः ह्नुधातुः उत्का-स्वीकारे । निह्नु+ते । ३४६ सू० ह्नस्य ण्ह इत्यादेशे, ९०४ सू० उकारस्य स्थाने अव इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **निण्हवइ** इति भवति । **निजुहोति** । निपूर्वकः हुधातुः नितरां दानादा-नयोः । निहु+तिव् = **निहवइ** इति **निण्हवइ**-वत्-साध्यम् । **च्यवते** । च्युङ् (च्यु) गतौ । च्यु+ते । ३४९ सू० यकार-लोपे, पूर्ववदेव **चवइ** इति भवति । एवमेव **रौति** । रु शब्दे । रु+तिव् = **रवइ** । **कौति** । कु-धातुः शब्दे । कु+तिव् = **कवइ** । **सुवति** । षू प्रेरणे । षू+तिव् । २६० सू० षकारस्य सकारे **सवइ** । **प्रसुवति** । प्रपूर्वकः षूधातुः प्रसवने । प्रषू+तिव् । इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, षकारस्य सकारे पूर्ववदेव **पसवइ** इति भवति ।

६०५—**करोति** । डुकृञ् (कृ) करणे । कृ+तिव् । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **करइ** इति भवति । **धरति** । धृञ्-धृ धारणे । धृ+तिव् । पूर्ववदेव **धरइ** इति साध्यम् । एवमेव **म्रियते** । मृङ्-मृ प्राणत्यागे । मृ+ते = **मरइ** अत्र ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशो जातः । **वृणोति** । वृञ् वरणे । वृ+तिव् = **वरइ** । **सरति** । सृ सरणे । सृ+तिव् = **सरइ** । **हरति** । हृञ् हरणे । हृ+तिव् = **हरइ** । **तरति** । तृ तरणे । तृ+तिव् = **तरइ** । **जीर्यते** । जृ+तिव् = **जरइ** इति पूर्ववदेव साध्यम् ।

६०६—**वर्षति** । वृष् वर्षणे । वृष्+तिव् । इत्यत्र ९०६ सू० ऋकारस्य अरि इत्यादेशे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **वरिसइ** इति भवति । **कर्षति** । कृष् कर्षणे । कृष्+तिव् । पूर्ववदेव **करिसइ** इति भवति । एवमेव **मृषति** । मृष् मर्षणे । मृष्+तिव् = **मरिसइ** । **हृष्यति** । हृष् हर्षणे । हृष्+तिव् = **हरिसइ** इति पूर्ववदेव साध्यम् । **येषामरिरादेशो दृश्यते** ।

येषां धातूनामृकारस्य अरि इत्यादेशो दृश्यते ते सर्वे धातवः वृषादयोऽवगन्तव्याः ।

९०७—रुष्यति । रुष् रोषे । रुष्+तिव् । ९०७ सू० स्वरस्य (उकारस्य) दीर्घे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **रूसइ** इति भवति । **तुष्यति** । तुष् तोषे । तुष्+तिव् । पूर्ववदेव **तूसइ** इति साध्यम् । एवमेव—**शुष्यति** । शुष् शोषणे । शुष्+तिव् =**सूसइ** । **दुष्यति** । दुष् दोषे । दुष्+तिव्=**दूसइ** । **पुष्यति** । पुष् पोषे । पुष्+तिव्=**पूसइ** । **शिष्यति** । शिष् अवशेषे, हिंसायां वा । शिष्+तिव्=**सीसइ** इति साध्यम् ।

९०८—जित्वा । जिधातुः जये । जि+क्त्वा । ९०८ सू० इकारस्य एकारे, ४१७ सू० क्त्वः स्थाने तूण इत्यादेशे, १७७ सू० तकारलोपे **जेऊण** इति भवति । **नीत्वा** । णीञ् प्रापणे । नी+क्त्वा । प्रस्तुतसूत्रेण ईकारस्य एकारे, पूर्ववदेव **नेऊण** इति साध्यम् । एवमेव **नयति** । नी+तिव्=ने+तिव् । ६२८ सू० तिव इचादेशे **नेइ**, एवमेव **नयन्ति** । नी+अन्ति=ने+अन्ति । ६३१ सू० अन्तेः न्ति इत्यादेशे **नेन्ति** इति भवति । **उड्डीयते** । उत्पूर्वकः डीङ्धातुः विहायसा गतौ । उत्+डी+ते । २४८ सू० तकारलोपे, ३६० सू० डकारद्वित्वे, ईकारस्य एकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **उड्डेइ** एवमेव **उड्डीयन्ते** । उड्डी+अन्ते, ईकारस्य एकारे, ६३१ सू० अन्ते इत्यस्य न्ति इत्यादेशे **उड्डेन्ति** इति भवति । **मुक्त्वा** । मुच् मोचने । मुच्+क्त्वा । प्रस्तुतसूत्रेण उकारस्य ओकारे, ८८३ सू० चकारस्य तकारे, ४१७ सू० क्त्वः तूण इत्यादेशे **मोत्तूण** इति भवति । **श्रुत्वा** । श्रुधातुः श्रवणे । श्रु+क्त्वा । ३५० सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, उकारस्य ओकारे, क्त्वः स्थाने तूण इत्यादेशे, तकारलोपे **सोऊण** इति भवति । **क्वचिन्न भवति** । बहुलाधिकारात् कस्मिंश्चित् स्थले प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जायते । यथा—**नीतः** । नी+क्त-त । बाहुल्येन प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ सिप्रत्यये, १७७ सू० तकारलोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **नीओ** इति भवति । **उड्डीनः** । उड्डीन+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव **उड्डीणो** इति भवति । अत्रापि बाहुल्येन प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता ।

९०९—भवति । भू सत्तायाम् । भू+तिव् । ७२१ सू० भूधातोः हुव इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **हुवइ** ९०९ सू० बाहुल्येन अकारस्य इकारे **हिवइ** इति भवति । **चिनोति** । चिञ् चयणे । चि+तिव् । ९०९ सू० इकारस्य वैकल्पिके उकारे, ९१२ सू० णकारस्यागमे, पूर्ववदेव **चुणइ**, **चिणइ** इति भवति । **श्रद्दधानम्** । श्रत्पूर्वकः डुधाञ् (धा) धातुः श्रद्धाने । श्रत्+धा+आनश् । संस्कृतनियमेन श्रद्दधान+सि इति जाते, ३५० सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **सद्दहाणं** ९०९ सू० बाहुल्येन आकारस्य अकारे **सद्दहणं** इति भवति । **धावति** । धाव् शीघ्रगतौ । धाव्+तिव् । ९१० सू० अकारागमे **धावइ** प्रस्तुतसूत्रेण आकारस्य उकारे **धुवइ** इति भवति । **रोदिति** । रुद् अश्रुविमोचने । रुद्+तिव् । ८९७ सू० दकारस्य वकारे, ९१० सू० अकारागमे पूर्ववदेव **रुवइ** प्रस्तुतसूत्रेण उकारस्य ओकारे **रोवइ** इति भवति । **क्वचिन्नित्यम्** । बहुलाधिकारात् क्वचित् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्नित्या जायते । यथा—**ददाति** । डुदाञ्-दा दाने । दा+तिव् । प्रस्तुतसूत्रेण आकारस्य नित्ये एकारे, पूर्ववदेव तिव इचादेशे **देइ** इति भवति । **लाति** । ला आदाने । ला+तिव् । प्रस्तुतसूत्रेण आकारस्य नित्य एकारे, पूर्ववदेव **लेइ** इति भवति । एवमेव **विजहाति** । विपूर्वकः हाधातुः विशिष्टत्यागे । विहा+तिव् । आकारस्य नित्ये एकारे **विहेइ** इति भवति । **नश्यति** । नश्+तिव् । २६० सू० शकारस्य सकारे, ९१० सू० अकारागमे, आदिमस्य अकारस्य नित्ये आकारे **नासइ** इति भवति । **आर्षे बेमि** । आर्षप्राकृते **ब्रवीमि** इत्यस्य क्रिया-

पदस्य **बेमि** इति रूपं भवति । साधनिका त्वित्थम्-ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि । ब्रू+मिव् । ३५० सू० रेफलोपे, बाहुल्यात् ऊकारस्य एकारे, ६३० सू० मिवः स्थाने मि इत्यादेशे **बेमि** इति सिद्धम् ।

९१०—भमति । भ्रमु भ्रमणे । भ्रम्+तिव् । ३५० सू० रेफलोपे, ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० तिव इत्यादेशे **भमइ** इति भवति । **हसति** । हसु हासे । हस्+तिव् । प्रस्तुतसूत्रेण अकारागमे, पूर्ववदेव **हसइ** । **करोति** । डुकृञ् (कृ) करणे । कृ+तिव् । ७२६ सू० कृधातोः वैकल्पिके कुण इत्यादेशे, अकारागमे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **कुणइ** इति भवति । एवमेव **चुम्बति** । चुम्ब् चुम्बने । चुम्ब्+तिव्=**चुम्बइ**, **भणति** । भण् भणने । भण्+तिव्=**भणइ**, **उपशाम्यति** । उपपूर्वकः शम्-धातुः उपशान्तौ । उपशम्+तिव् । २३१ सू० पकारस्य वकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे **उवसमइ** इति भवति । **प्राप्नोति** । प्रपूर्वकः आप्लृ (आप्) धातुः प्राप्तौ । प्राप्+तिव् । ३५० सू० रेफलोपे, २३१ सू० द्वितीय—पकारस्य वकारे **पावइ** । **सिञ्चति** । सिञ्च् सिञ्चने । सिञ्च्+तिव्=**सिञ्चइ**, **रुणद्धि** । रुधिर्-रुध् आवरणे । रुध्+तिव् । ८८९ सू० धकारस्य न्ध इत्यादेशे, ९१० सू० अकारागमे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **रुन्धइ**, **मुष्णाति** । मुष् मोषणे-अपहरणे । मुष्+तिव् । २६० सू० षकारस्य सकारे **मुसइ**, **हरति** । हृञ् हरणे । हृ+तिव् । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, अकारागमे, स्वरस्य लोपे, **हरइ**, **करोति** । कृ+तिव् । ऋकारस्य अर इत्यादेशे, अकारागमे, स्वरस्य लोपे **करइ** इति भवति । **शबादीनां च प्रायः** । संस्कृतव्याकरणे यथा भ्वादिगणे शप्प्रत्ययः, अदादिगणे श्लुक्प्रत्ययः, एवमेवान्यगणेषु अन्ये प्रत्ययाः क्रियन्ते तथा प्राकृतभाषायां तत्तद्-गणेषु तेषां शबादीनां प्रयोगः प्रायो न भवतीति भावः ।

९११—पाति । पा रक्षणे । पा+तिव् । ९११ सू० वैकल्पिकेऽकारागमे, ६२८ सू० तिव इत्यादेशे **पाअइ**, **पाइ** इति भवति । **दधाति** । डुधाञ् (धा) धातुः धारणे । धा+तिव् । पूर्ववदेव—**धाअइ**, **धाइ** इति साध्यम् । एवमेव **याति** । या प्रापणे । या+तिव् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, **जाअइ**, **जाइ**, **ध्यायति** । ध्यै चिन्तायाम् । ध्यै+तिव् । ६७७ सू० ध्यैधातोः झा इत्यादेशे **झाअइ**, **झाइ**, **जृम्भते** । जृम्भ् जृम्भायाम् । जृम्भ्+ते । ८२८ सू० जृम्भ्धातोः जम्भा इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इत्यादेशे **जम्भाअइ**, **जम्भाइ**, **उद्वाति** । उत्पूर्वकः वा-धातुः ऊर्ध्वगतौ । उद्वा+तिव् । ३४८ सू० दकारलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे **उव्वाअइ**, **उव्वाइ** इति भवति । **म्लायति** । म्लै म्लाने । संस्कृतनियमेन म्ला+तिव् इति जाते ३७७ सू० लकारात् पूर्वं इकारागमे **मिलाअइ**, **मिलाइ** इति भवति । **विक्रीणाति** । विपूर्वकः क्रीधातुः द्रव्यविनिमये । विक्री+तिव् । ७२३ सू० विक्रीधातोः क्के इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण वैकल्पिके अकारागमे **विक्केअइ**, **विक्केइ** इति भवति । **भूत्वा** । भू+क्त्वा । ७३१ सू० भूधातोः हो इत्यादेशे, ४१७ सू० क्त्वः तूण इत्यादेशे, १७७ सू० तकारलोपे, पूर्ववदेव अकारागमे **होअऊण**, **होऊण** इति भवति । **अनतः इति किम् ?** अकारान्त-वर्जित-स्वरान्तादेव धातोरकारागमो जायते, नान्यत्र । यथा **चिकित्सति** । चिकित्स् व्याधिप्रतिकारे । चिकित्स्+तिव् । १७७ सू० ककारलोपे, २९२ सू० त्सस्य छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ९१० सू० अकारागमे, १० सू० स्वरलोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, अकारान्तत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ, पूर्ववदेव **चिइच्छइ** इति भवति । **जुगुप्सति** । जुगुप्स् निन्दायाम् । जुगुप्स्+तिव् । ६७५ सू० जुगुप्स्धातोः दुगुच्छ इत्यादेशे, पूर्ववदेव **दुगुच्छइ** इति भवति । अत्रापि अकारान्तत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः ।

९१२—चिनोति । चिञ् चयने । चि+तिव् । ९१२ सू० णकारागमे, ६२८ सू० तिव इत्यादेशे

चिणइ इति भवति । **जयति** । जि जये । जि+तिव् । पूर्ववदेव **जिणइ** इति साध्यम् । एवमेव **शृणोति** । श्रु श्रवणे । श्रु+तिव् । ३५० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे **सुणइ** इति भवति । **जुहोति** । हु दानाऽदनयोः । हु+तिव्=**हुणइ**, **स्तौति** । स्तु स्तवने । स्तु+तिव् । ३१६ सू० स्तस्य थकारे **थुणइ**, **लुनाति** । लूञ् छेदने । लू+तिव् । प्रस्तुतसूत्रेण णकारागमे, ऊकारस्य च उकारे **लुणइ** इति भवति । एवमेव **पुनाति** । पूञ् पवने । पू+तिव्=**पुणइ**, **धुनोति** । धूञ् कम्पने । धू+तिव्=**धुणइ** इति भवति । **बहुलाधिकारात्** । बहुलस्याधिकारात् कस्मिंश्चित् स्थले णकारागमो विकल्पेन भवति । यथा—**उच्चि-नोति** । उत्पूर्वकः चिञ्-धातुः उच्चयने । उच्चि+तिव् । ३४८ सू० तकारलोपे, ३६० सू० चकारद्वित्वे, बाहुल्येन वैकल्पिके णकारागमे **उच्चिणइ** आगमाभावे १०८ सू० इकारस्य एकारे **उच्चेइ** इति भवति । **जित्वा** । जि जये । जि+क्त्वा । ४१७ सू० क्त्वः तूण इत्यादेशे, वैकल्पिके णकारागमे, ६४६ सू० अ-कारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे **जिणिऊण** आगमाभावे १०८ सू० इकारस्य एकारे **जेऊण** इति भवति । **जयति** । जि+तिव् । वैकल्पिके णकारागमे **जिणइ** आगमाभावे १०८ सू० इकारस्य एकारे, ११० सू० अकारागमे, संस्कृतव्याकरणेन अय्-सन्धौ **जयइ** इति भवति । **श्रुत्वा** । श्रु श्रवणे । श्रु+क्त्वा । ३५० सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, वैकल्पिके णकारागमे, ६४६ सू० अकारस्य इ-कारे, क्त्वः स्थाने तूणादेशे, पूर्ववदेव तकारलोपे **सुणिऊण** आगमाभावे १०८ सू० उकारस्य ओकारे **सो-ऊण** इति भवति ।

★ अथ धातुओं को होने वाली आदेशविधि (क) ★

सम् उपसर्ग पूर्वक दिशि आदि धातुओं के स्थान में अप्पाह आदि जो आदेश होते हैं, अब सूत्रकार उनका निर्देश करने लगे हैं—

८५१—सम् उपसर्ग पूर्वक दिशि धातु के स्थान में 'अप्पाह' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**संदिशति**—अप्पाहइ आदेश के अभाव में संदिसइ (वह संदेश देता है) ऐसा रूप बनता है।

८५२—दृशि (दृश्) धातु के स्थान में—१—**निअच्छ**, २—**पेच्छ**, ३—**अवयच्छ**, ४—**अवयज्झ**, ५—**वज्ज**, ६—**सव्वव**, ७—**देक्ख**, ८—**ओअक्ख**, ९—**अवक्ख**, १०—**अवअक्ख**, ११—**पुलोअ**, १२—**पु-लअ**, १३—**निअ**, १४—**अवआस** और १५—**पास** ये १५ आदेश होते हैं। जैसे—**पश्यति**—निअच्छइ, पेच्छइ, अवयच्छइ, अवयज्झइ, वज्जइ, सव्ववइ, देक्खइ, ओअक्खइ, अवक्खइ, अवअक्खइ, पुलोएइ, पुलएइ, निअइ, अवआसइ, पासइ (वह देखता है) यहां दृशि धातु के स्थान में निअच्छ आदि १५ आदेश किये गए हैं। वृत्तिकार फरमाते हैं कि **निज्झाअइ** (वह देखता है या निरीक्षण करता है) यह रूप तो निउपसर्ग पूर्वक ध्यै धातु [**निध्यायति**] से ९११ सूत्र से अकारान्त-वर्जित स्वरान्त धातु से अकार का आगम होने पर बन जाता है। प्रस्तुत सूत्र ने यहां पर कोई कार्य नहीं किया।

८५३—स्पृश् धातु के स्थान में—१—**फास**, २—**फंस**, ३—**फरिस**, ४—**छिव**, ५—**छिह**, ६—**आलुङ्ख** और ७—**आलिह** ये सात आदेश होते हैं। जैसे—**स्पृशति**—फासइ, फंसइ, फरिसइ, छिवइ, छिहइ, आलुङ्खइ, आलिहइ (वह स्पर्श करता है) यहां पर स्पृश् धातु के स्थान में फास आदि सात आदेश किए गए हैं।

८५४—प्र उपसर्गपूर्वक विशि धातु के स्थान में '**रिअ**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**प्रविशति**—रिअइ आदेश के अभावपक्ष में—**पविसइ** (वह प्रवेश करता है) यह रूप बनता है।

८५५—प्र उपसर्ग से आगे यदि मृश् अथवा मुष् धातु हो तो उसके स्थान में '**म्हुस**' यह आ-

देश होता है। जैसे—**प्रमृशति** अथवा **प्रमुष्णाति**=पम्हुसइ (वह स्पर्श करता है अथवा वह चोरी करता है) यहां मृश् अथवा मुष् धातु को म्हुस यह आदेश किया गया है।

८५६—पिषि धातु के स्थान में—१—**णिवह**, २—**णिरिणास**, ३—**णिरिणज्ज**, ४—**रोञ्च** और ५—**चड्ड** ये पांच आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**पिनष्टि**=णिवहइ, णिरिणासइ,णिरिणज्जइ, रोञ्चइ, चड्डइ आदेशों के अभावपक्ष में—**पीसइ** (वह पीसता है) ऐसा रूप होता है।

८५७—भषि धातु के स्थान में **भुक्क** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**भषते**=भुक्कइ आदेश के अभावपक्ष में—**भसइ** (वह भौंकता है) ऐसा रूप बनता है।

८५८—कृषि धातु के स्थान में—१—**कड्ढ**, २—**साअड्ढ**, ३—**अञ्च**, ४—**अणच्छ**, ५—**अयञ्छ** और ६—**आइञ्छ** ये ६ आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**कर्षति**=कड्ढइ, साअड्ढइ, अञ्चइ, अणच्छइ, अयञ्छइ, आइञ्छइ आदेशों के अभावपक्ष में—**करिसइ** (वह कर्षण करता है, खींचता है) यह रूप बनता है।

८५९—असि-विषयक (तलवार को म्यान से खींचना, इस अर्थ के बोधक) कृषि धातु के स्थान में **अक्खोड** यह आदेश होता है। जैसे—**असिं कोशात् कर्षति**=अक्खोडेइ (वह तलवार को म्यान से बाहिर खींचता है) यहां पर कृषि धातु को **अक्खोड** यह आदेश किया गया है।

८६०—गवेषि धातु के स्थान में—१—**ढुण्ढुल्ल**, २—**ढण्ढोल**, ३—**गमेस** और ४—**घत्त** ये चार आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**गवेषयति**=ढुण्ढुलइ, ढण्ढोलइ, गमेसइ, घत्तइ आदेशों के अभावपक्ष में—**गवेसइ** (वह गवेषणा करता है) यह रूप बन जाता है।

८६१—श्लिषि धातु के स्थान में—१—**सामग्ग**,२—**अवयास** और ३—**परिअन्त** ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**श्लिष्यति**=सामग्गइ, अवयासइ, परिअन्तइ आदेशों के अभाव में—**सिलेसइ** (वह आलिङ्गन करता है) यह रूप बनता है।

८६२—म्रक्षि धातु के स्थान में **चोप्पड** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**म्रक्षते**=चोप्पडइ आदेश के अभाव में—**मक्खइ** (वह चोपडता है) ऐसा रूप होता है।

८६३—काङ्क्षि धातु के स्थान में—१—**आह**, २—**अहिलङ्घ**, ३—**अहिलङ्ख**, ४—**वच्च**, ५—**वम्फ**, ६—**मह**, ७—**सिह** और ८—**विलुम्प** ये आठ आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**काङ्क्षते**=आहइ, अहिलङ्घइ, अहिलङ्खइ, वच्चइ, वम्फइ, महइ, सिहइ, विलुम्पइ, आदेशों के अभावपक्ष में **कङ्खइ** (वह काङ्क्षा-इच्छा करता है) ऐसा रूप होता है।

८६४—प्रति उपसर्ग पूर्वक ईक्ष् धातु के स्थान में—१—**सामय**, २—**विहीर** और ३—**विरमाल** ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**प्रतीक्षते**=सामयइ, विहीरइ, विरमालइ आदेशों के अभावपक्ष में—**पडिक्खइ** (वह प्रतीक्षा करता है) ऐसा रूप होता है।

८६५—तक्षि धातु के स्थान में १—**तच्छ**, २—**चच्छ**, ३—**रम्प** और ४—**रम्फ** ये चार आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**तक्षते**=तच्छइ, चच्छइ, रम्पइ, रम्फइ, आदेशों के अभावपक्ष में—**तक्खइ** (वह छीलता है) ऐसा रूप होता है।

८६६—वि उपसर्ग पूर्वक कसि धातु के स्थान में **कोआस** और **वोसट्ट** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**विकसति**=कोआसइ,वोसट्टइ,आदेशों के अभावपक्ष में—**विअसइ** (वह विकसित होता है) ऐसा रूप बनता है।

८६७—हसि धातु के स्थान में **गुञ्ज** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**हसति**—गुञ्जइ आदेश के अभावपक्ष में—**हसइ** (वह हंसता है) ऐसा रूप होता है।

८६८—स्रंसि धातु के स्थान में **ल्हस** तथा **डिम्भ** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—१—**स्रंसते**—ल्हसइ, डिम्भइ (वह गिर पड़ता है), २—**परिस्रंसते सलिल-वसनम्**—परिल्हसइ सलिल-वसणं (सलिल-जल से युक्त (आर्द्र) वस्त्र सरकता है) आदेशों के अभावपक्ष में **संसइ** (वह खिसकता है) ऐसा रूप हो जाता है।

८६९—त्रसि धातु के स्थान में—१—**डर**, २—**बोज्ज** और ३—**वज्ज** ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**त्रस्यति**—डरइ, बोज्जइ, वज्जइ आदेशों के अभावपक्ष में—**तसइ** (वह डरता है) यह रूप बनता है।

८७०—नि उपसर्ग पूर्वक अस् धातु के स्थान में **णिम** और **णुम** ये दो आदेश होते हैं। जैसे—**न्यस्यति**—णिमइ, णुमइ, (वह रखता है) यहां पर न्यस् के स्थान में णिम आदि आदेश किए गए हैं।

८७१—परि उपसर्ग पूर्वक अस् धातु के स्थान में—१—**पलोट्ट**, २—**पल्लट्ट** और ३—**पल्हत्थ** ये तीन आदेश होते हैं। जैसे—**पर्यस्यति**—पलोट्टइ, पल्लट्टइ, पल्हत्थइ (वह विपरीत होता है) यहां पर्यस् के स्थान में पलोट्ट आदि आदेश किए गए हैं।

८७२—नि उपसर्ग श्वसि धातु के स्थान में 'झङ्ख' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**निःश्वसिति**—झङ्खइ, आदेश के अभावपक्ष में **नीससइ** [वह निःश्वास (सांस का छोड़ना) लेता है] यह रूप बनता है।

८७३—उत् उपसर्गपूर्वक लसि धातु के स्थान में—१—**ऊसल**, २—**ऊसुम्भ**, ३—**णिल्लस**, ४—**पुलआअ**, ५—**गुञ्जोल्ल** और ६—**आरोअ** ये छह आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**उल्लसति**—ऊसलइ, ऊसुम्भइ, णिल्लसइ, पुलआअइ, गुञ्जोल्लइ ८४ सूत्र से ह्रस्व (ओकार को उकार) हो जाने पर गुञ्जुल्लइ, आरोअइ आदेशों के अभावपक्ष में **उल्लसइ** (वह उल्लास, आनन्द को प्राप्त करता है) ऐसा रूप बनता है।

८७४—भासिधातु के स्थान में '**भिस**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**भासते**—भिसइ आदेश के अभावपक्ष में **भासइ** (वह चमकता है) ऐसा रूप बनता है।

८७५—ग्रसि धातु के स्थान में **घिस** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**ग्रसति**—घिसइ आदेश के अभावपक्ष में **गसइ** (वह भक्षण करता है) यह रूप होता है।

८७६—अव उपसर्ग से परे ग्रहि धातु को '**वाह**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**अवगाहते**—ओवाहइ आदेश के अभाव में **ओगाहइ** [वह अच्छी तरह ग्रहण (हृदयङ्गम) करता है] ऐसा रूप होता है।

८७७—आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक रुहि धातु के स्थान में **चड** और **वलग्ग** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**आरोहति**—चडइ, वलग्गइ आदेशों के अभावपक्ष में—**आरुहइ** (वह चढ़ता है) ऐसा रूप बनता है।

८७८—मुहि धातु के स्थान में **गुम्म** और **गुम्मड** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे **मुह्यति**—गुम्मइ, गुम्मडइ आदेशों के अभावपक्ष में—**मुज्झइ** (वह मोहित होता है) ऐसा रूप बनता है।

८७९—दहि धातु के स्थान में—**अहिऊल** और **आलुङ्ख** ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—

वहति=ग्रहिऊलइ, आलुङ्खइ आदेशों के अभावपक्ष में—डहइ (वह जलाता है) यह रूप होता है।

८८०—ग्रहि धातु के स्थान में—१—वल, २—गेण्ह, ३—हर, ४—पङ्ग, ५—निरुवार और ६—अहिपच्चुअ ये छह आदेश होते हैं। जैसे— **गृह्णाति**=वलइ, गेण्हइ, हरइ, पङ्गइ, निरुवारइ, अहिपच्चुअइ (वह ग्रहण करता है) यहां पर ग्रहि धातु को वल आदि आदेश किए गए हैं।

८८१—ग्रहि धातु से आगे यदि क्त्वा, तुम् और तव्य ये प्रत्यय पड़े हों तो उसे **घेत्** यह आदेश हो जाता है। जैसे—**क्त्वा का उदाहरण—गृहीत्वा**=घेत्तुण, घेत्तुआण (ग्रहण करके) **बहुलाधिकार के** कारण कहीं पर क्त्वा प्रत्यय के परे होने पर भी ग्रहि धातु को घेत् यह आदेश नहीं होता। जैसे—**गृहीत्वा**=गेण्हिअ, यहां पर घेत् आदेश नहीं हुआ किन्तु ८८० सू० से ग्रहि धातु को **'गेण्ह'** आदेश किया गया है। **तुम्-प्रत्यय का उदाहरण—ग्रहीतुम्**=घेत्तुं (ग्रहण करने को), **तव्य का उदाहरण—ग्रहीतव्यम्**—घेत्तव्वं (ग्रहण करना चाहिए) यहां पर क्त्वा आदि प्रत्ययों के परे रहने से ग्रहि धातु के स्थान में घेत् आदेश किया गया है।

८८२—यदि क्त्वा, तुम् और तव्य ये प्रत्यय परे हों तो वच् धातु के स्थान में **'वोत्'** यह आदेश होता है। जैसे—१—**उक्त्वा**=वोत्तूण (कह कर), २—**वक्तुम्**=वोत्तुं (कहने के लिए),३—**वक्तव्यम्**=वोत्तव्वं (कहना चाहिए) यहां पर वच् धातु को **'वोत्'** यह आदेश किया गया है।

८८३—क्त्वा, तुम् और तव्य इन प्रत्ययों के परे रहने पर रुद्, भुज् और मुच् इन धातुओं के **अन्तिम वर्ण** को तकार हो जाता है। जैसे—१—**रुदित्वा**=रोत्तूण (रो करके), २—**रोदितुम्**=रोत्तुं (रोने को), ३—**रोदितव्यम्**=रोतव्वं (रोना चाहिए), ४—**भुक्त्वा**=भोत्तूण (खा कर), ५—**भोक्तुम्**=भोत्तुं (खाने के लिए), ६—**भोक्तव्यम्**=भोत्तव्वं (खाना चाहिए), ७—**मुक्त्वा**=मोत्तूण (छोड़-करके), ८—**मोक्तुम्**=मोत्तुं (छोड़ने के लिए), ९—**मोक्तव्यम्**=मोत्तव्वं (छोड़ना चाहिए) यहां पर क्त्वा आदि प्रत्ययों के परे रहने पर रुद् आदि धातुओं के अन्त्यवर्ण को तकारादेश किया गया है।

८८४—दृश् धातु के अन्तिम वर्ण को आगे पड़े प्रत्यय के तकार के साथ द्विरुक्त (जिसे दो बार कहा गया हो, द्वित्व) ठकारादेश होता है। जैसे—१—**दृष्ट्वा**=दट्ठूण (देखकर), २—**द्रष्टुम्**=दट्ठुं (देखने को), ३—**द्रष्टव्यम्**=दट्ठव्वं (देखना चाहिए) यहां पर प्रत्यय-स्थ तकार के साथ दृश् धातु के 'श्' को ट्ठ यह आदेश किया गया है।

८८५—यदि भूतकालीन (भूतकाल का बोधक), भविष्यत्कालीन (भविष्यत् काल का संसूचक) प्रत्यय तथा सूत्रोक्त चकार के कारण क्त्वा, तुम् तथा तव्य ये प्रत्यय आगे पड़े हों तो कृञ् (कृ) धातु के अन्तिम वर्ण ऋकार को आकारादेश होता है। जैसे—१—**अकार्षीत्** (लुङ्),**अकरोत्** (लङ्) अथवा **चकार** (लिट्)=काहीअ (उसने किया था), २—**करिष्यति** (लृट्) अथवा **कर्ता** (लुट्)=काहिइ (वह करेगा), **क्त्वा प्रत्यय का उदाहरण—कृत्वा**=काऊण (करके), **तुम् का उदाहरण—कर्तुम्**=काउं (करने के लिए), **तव्य का उदाहरण—कर्तव्यम्**=कायव्वं (करना चाहिए) यहां पर कृ धातु के ऋकार को आकारादेश किया गया है।

८८६—गम्, इष्, यम् और आस् इन धातुओं के अन्त्य वर्ण के स्थान में **'छ'** यह आदेश होता है। जैसे—१—**गच्छति**=गच्छइ (वह जाता है),२—**इच्छति**=इच्छइ (वह चाहता है), ३—**यच्छति**=जच्छइ (वह उपराम होता है), ४—**आस्ते**=अच्छइ (वह बैठता है) यहां पर गम् आदि धातुओं के अन्तिम वर्ण को छ यह आदेश किया गया है।

८८७—छिदि और भिदि धातुओं अन्त्य के वर्ण को नकाराक्रान्त (नकार से युक्त) दकार होता है। जैसे—१—छिनत्ति=छिन्दइ (वह छेदन करता है), २—भिनत्ति=भिन्दइ (वह भेदन करता है) यहां पर छिदि आदि धातुओं के अन्तिम वर्ण को 'न्द' यह आदेश किया गया है।

८८८—युध्, बुध्, गृध्, क्रुध्, सिध् और मुह्, इन धातुओं के अन्तिम वर्ण को द्विरुक्त (जिसे दो बार कहा गया हो) झकार होता है। जैसे—१—युध्यते=जुज्झइ (वह युद्ध करता है), २—बोधयते=बुज्झइ (वह बोध प्राप्त करता है), ३—गृध्यति=गिज्झइ (वह आसक्त होता है), ४—क्रुध्यति=कुज्झइ (वह क्रोध करता है), ५—सेधति=सिज्झइ (वह गति करता है), ६—मुह्यति=मुज्झइ (वह मोहित होता है) यहां पर युध् आदि धातुओं के अन्तिम वर्ण के स्थान में 'ज्झ' यह आदेश किया गया है।

८८९—रुध् धातु के अन्त्य वर्ण के स्थान में न्ध, म्भ सूत्रोक्त चकार के कारण ज्झ ये तीन आदेश होते हैं। जैसे—रुणद्धि=रुन्धइ, रुम्भइ, रुज्झइ, (वह रोकता है) यहां रुध् धातु के धकार को न्ध आदि तीन आदेश किए गए हैं।

८९०—सद् और पत् धातु के अन्त्यव्यञ्जन को डकारादेश होता है। जैसे—१—सीदति=सडइ (वह शक्तिहीन होता है), २—पतति=पडइ (वह गिरता है) यहां पर सद और पत् इन धातुओं के अन्त्य व्यञ्जन को डकारादेश किया गया है।

८९१—क्वथ् और वर्ध् धातु के अन्त्य वर्ण को ढकारादेश होता है। जैसे—१—क्वथति=कढइ (वह कढता है), २—वर्धते प्लवक-कल-कलः=वड्ढइ पवय-कलयलो (प्लवकों-बन्दरों का कल-कल-कोलाहल बढता है), ३—परिवर्धते लावण्यम्=परिअड्ढइ लायण्णं (लावण्य-सौन्दर्य बढता है) यहां पर क्वथ् और वर्ध् धातु के अन्तिम वर्ण को ढकारादेश किया गया है। यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि सूत्र में क्वथ् और वर्ध् इन दो धातुओं का ग्रहण किया गया है, अतः यहां द्विवचनान्त पद होना चाहिए था, किन्तु सूत्रकार ने इस पद को बहुवचनान्त क्यों बना दिया है? इस का क्या कारण है? उत्तर मेंनिवेदन है कि दो धातु होने से द्विवचनान्त ही पद होना चाहिए था, किन्तु सूत्रकार ने यहां बहुवचनान्तपद देकर वृध् धातु तथा गुण हो जाने पर वर्ध्, इस तरह वृध् और वर्ध् इन दोनों धातुओं का ग्रहण करना संसूचित किया है। इसीलिए वृत्तिकार लिखते हैं कि बहुवचन के ग्रहण से वृध् धातु तथा कृतगुण (जिसको गुण कर दिया गया हो) वर्ध् धातु का अविशेष (सामान्य) रूप से ग्रहण होता है।

८९२—वेष्ट् धातु यदि वेष्टन (लपेटने) अर्थ में हो तो २४८ सूत्र से षकार का लोप होने पर उसके टकार को ढकारादेश होता है। जैसे—१—वेष्टते=वेढइ (वह लपेटता है), २—वेष्टयते=वेढिज्जइ (उस से लपेटा जाता है) यहां पर वेष्ट् धातु के टकार को ढकार किया गया है।

८९३—सम् उपसर्ग पूर्वक वेष्ट् धातु के अन्त्य वर्ण को द्विरुक्त (जिसे दो बार कहा गया हो) लकार होता है। जैसे—संवेष्टते=संवेल्लइ (वह अच्छी तरह लपेटता है) यहां वेष्ट् धातु के टकार को ल्ल यह आदेश किया गया है।

८९४—उद् उपसर्ग से परे वेष्ट् धातु के अन्त्यवर्ण को विकल्प से 'ल्ल' यह आदेश होता है। जैसे—उद्वेष्टते=उव्वेल्लइ जहां प्रस्तुत सूत्र ने कार्य नहीं किया, वहां पर—उव्वेढइ (वह बन्धन-मुक्त करता है) यह रूप बनता है।

८९५—स्विदि-प्रकार [स्विदि आदि] धातुओं के अन्त्य वर्ण को द्विरुक्त (द्वित्व) जकार होता है। जैसे—१—सर्वाङ्गस्वेदिन्याः=सव्वङ्गसिज्जिरीए (सभी अङ्गों से पसीना बहाने वाली का), २—सम्पद्यते=संपज्जइ (वह सम्पादन करता है), ३—खिद्यते=खिज्जइ (वह खिन्न होता है) यहां पर स्विदि आदि धातुओं के अन्तिम वर्ण को 'ज्ज' यह आदेश होता है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि प्रस्तुत सूत्र में "स्विदाम्" यह जो बहुवचनान्त पद दिया है, यह प्रयोगानुसरण के लिए है। भाव यह है कि जहां पर 'ज्ज' यह आदेश दिखाई देता हो उसकी सिद्धि इस सूत्र के द्वारा कर लेनी चाहिए।

८९६—व्रज्, नृत् और मद् इन धातुओं के अन्तिमवर्ण को द्विरुक्त (द्वित्व) चकार होता है। जैसे—१—व्रजति=वच्चइ (वह जाता है), २—नृत्यति=नच्चइ (वह नृत्य करता है), ३—माद्यते=मच्चइ (वह स्तुति करता है) यहां पर व्रज् आदि धातुओं के अन्त्य वर्ण के स्थान में 'च्च' यह आदेश किया गया है।

८९७—रुद् और नम् धातु के अन्त्य वर्ण के स्थान में वकारादेश होता है। जैसे—१—रोदिति=रुवइ, रोवइ (वह रोता है), २—नमति=नवइ (वह नमस्कार करता है) यहां पर रुद् के दकार को और नम् के मकार को वकार किया गया है।

८९८—उत् उपसर्ग पूर्वक विज् धातु के अन्त्य वर्ण के स्थान में वकार होता है। जैसे—१—उद्विजति=उव्विवइ (वह उद्विग्न होता है), २—उद्वेगः=उव्वेवो (क्लेश) यहां पर जकार के स्थान में वकारादेश किया गया है।

८९९—खाद् और धाव् धातु के अन्त्य व्यञ्जन का लोप होता है। जैसे—१—खादति=खाइ, खाअइ (वह खाता है), २—खादिष्यति=खाहिइ (वह खाएगा), ३—खादतु=खाउ (वह खाए), ४—धावति=धाइ (वह दौड़ता है), ५—धाविष्यति=धाहिइ (वह दौड़ेगा), ६—धावतु=धाउ (वह दौड़े) यहां पर दकार और वकार का लोप किया गया है। यहां पर बहुलाधिकार के कारण वर्तमाना (लट्), भविष्यत् (लृट्) और विधि (लोट्, विधिलिङ्) आदि के एकवचन में ही खाद् और धाव् धातु के अन्त्य व्यञ्जन का लोप होता है, अन्यत्र नहीं। इस लिए—१—खादन्ति=खादन्ति (वे खाते हैं), २—धावन्ति=धावन्ति (वे दौड़ते हैं) यहां पर दकार और वकार का लोप नहीं हो सका। वृत्तिकार फरमाते हैं कि बहुलाधिकार के कारण कहीं पर एकवचन में भी वकार का लोप नहीं होने पाता। जैसे—धावति पुरतः=धावइ पुरओ (वह आगे दौड़ता है) यहां पर एकवचन था तथापि बहुलता के कारण वकार का लोप नहीं हो सका।

९००—सृज्धातु के अन्तिम वर्ण को रेफादेश होता है। जैसे—१—निसृजति=निसिरइ (वह बाहर निकलता है), २—व्युत्सृजति=वोसिरइ (वह परित्याग करता है), ३—व्युत्सृजामि=वोसिरामि (मैं परित्याग करता हूं) यहां पर जकार को रेफादेश किया गया है।

९०१—शक् आदि धातुओं के अन्तिम वर्ण को द्वित्व वर्ण होता है। जैसे—१—शक् का उदाहरण—शक्नोति=सक्कइ (वह समर्थ होता है), २—जिम् का उदाहरण—जेमति=जिम्मइ (वह भोजन करता है), ३—लग् का उदाहरण—लगति=लग्गइ (वह लगता है, मिलाप होता है), ४—मग् का उदाहरण—मगति=मग्गइ (वह गति करता है), ५—कुप् का उदाहरण—कुप्यति=कुप्पइ (वह कोप करता है), ६—नश् का उदाहरण—नश्यति=नस्सइ (वह नष्ट होता है), ७—अट् का उदाहरण—पर्यटति=परिअट्टइ (वह पर्यटन करता है), ८—लुट् का उदाहरण—प्रलुटति=पलोट्टइ (वह लोटता है),

९—तुद् का उदाहरण—तुद्यति=तुट्टइ (वह तोड़ता है, वह दुःख देता है), १०—नट् का उदाहरण—नटति=नट्टइ (वह नाचता है), ११—सिव् का उदाहरण—सीव्यति=सिव्वइ (वह सीता है) यहां पर शक् आदि धातुओं के अन्त्य वर्ण को द्वित्व किया गया है।

२०२—स्फुटि और चलि धातुओं के अन्त्यवर्ण को द्वित्व विकल्प से होता है। जैसे—१—स्फुटति=फुट्टइ, फुडइ (वह विकसित होता है), २—चलति=चल्लइ,चलइ (वह चलता है) यहां पर टकार और लकार को विकल्प से द्वित्व किया गया है।

२०३—प्र आदि उपसर्गों से परे यदि मीलि धातु हो तो उसके अन्तिम वर्ण को विकल्प से द्वित्व होता है। जैसे—१—प्रमीलति=पमिल्लइ, पमीलइ (वह संकोच करता है), २—निमीलति=निमिल्लइ, निमीलइ (वह आंख मून्दता है), ३—संमीलति=सम्मिल्लइ, सम्मीलइ (वह अच्छी तरह से मिलता है), ४—उन्मीलति=उम्मिल्लइ, उम्मीलइ (वह विकसित होता है) यहां पर लकार को द्वित्व किया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि सूत्रकार के "प्रादेः (प्र आदि उपसर्गों से परे)" ऐसा कहने का क्या प्रयोजन है? उत्तर में निवेदन है कि—मीलति=मीलइ (वह मून्दता है) आदि शब्दों में प्र आदि उपसर्गों के अभाव में भी कहीं अन्तिम वर्ण द्वित्व न हो जाए, इस दृष्टि से सूत्रकार ने "प्रादेः" इस पद का उल्लेख किया है। प्र आदि उपसर्गों का यहां पर अभाव होने से प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी।

२०४—धातु के अन्तिम उवर्ण को 'अव' यह आदेश होता है। जैसे—ह्नुङ् धातु का उदाहरण—१—निह्नुते=निण्हवइ (वह अपलाप करता है), हु का उदाहरण—२—निजुहोति=निहवइ (वह हमेशा हवन करता है), च्युङ् का उदाहरण—३—च्यवते=चवइ (वह मरता है), रु का उदाहरण—४—रौति=रवइ (वह रोता है), कु का उदाहरण—५—कौति=कवइ (वह शब्द करता है), सू धातु का उदाहरण—६—सुवति=सवइ (वह प्रेरणा करता है), ७—प्रसुवति=पसवइ (वह ज्यादा प्रेरणा करता है) यहां पर ह्नुङ् आदि धातुओं के उकार को अव आदेश किया गया है।

२०५—धातु के अन्तिम ऋवर्ण को 'अर' यह आदेश होता है। जैसे—१—करोति=करइ (वह करता है), २—धरति=धरइ (वह धारण करता है), ३—म्रियते=मरइ (वह प्राण त्यागता है), ४—वृणोति=वरइ (वह पसंद करता है, वह सगाई करता है), ५—सरति=सरइ (वह सरकता है), ६—हरति=हरइ (वह हरण करता है), ७—तरति=तरइ (वह तरता है), ८—जीर्यते=जरइ (वह बूढ़ा होता है) यहां पर ऋकार तथा ॠकार को 'अर' यह आदेश किया गया है।

२०६—वृष् जैसी धातुओं के ऋवर्ण को 'अरि' यह आदेश होता है। जैसे—१—वर्षति=वरिसइ (वह बरसता है),२—कर्षति=करिसइ (खींचता है),३—मृषति=मरिसइ (वह सहन करता है), ४—हृष्यति=हरिसइ (वह प्रसन्न होता है) यहां पर ऋकार को 'अरि' यह आदेश किया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि "यह धातु वृष् जैसी है" इस बात का बोध कैसे हो सकेगा? उत्तर में निवेदन है कि जिन धातुओं की ऋ के स्थान में 'अरि' यह आदेश किया गया दिखाई देता हो उन को वृषादि धातु समझ लेना चाहिए।

२०७—रुष् जैसी धातुओं के स्वर को दीर्घ हो जाता है। जैसे—१—रुष्यति=रूसइ (वह रुष्ट होता है), २—तुष्यति=तूसइ (वह प्रसन्न होता है), ३—शुष्यति=सूसइ (वह सूखता है), ४—दुष्यति=दूसइ (वह दूषित होता है), ५—पुष्यति=पूसइ (वह पुष्ट होता है), ६—शेषति=सीसइ (वह

शेष रहता है, वह हिंसा करता है) इत्यादि धातुओं के स्वरों को दीर्घ किया गया है।

२०८—यदि कित् (जिस में ककार इत् हो) और ङित् (जिस में ङकार इत् हो) प्रत्यय परे हो तो धातु के इवर्ण और उवर्ण को गुण (इकार को एकार और उकार को ओकार) हो जाता है। जैसे—१—**जित्वा**=जेऊण (जीत करके), २—**नीत्वा**=नेऊण (ले जा करके), ३—**नयति**=नेइ (वह ले जाता है), ४—**नयन्ति**=नेन्ति (वे ले जाते हैं), ५—**उड्डीयते**=उड्डेइ (वह आकाश में गमन करता है, वह उड़ता है), ६—**उड्डीयन्ते**=उड्डेन्ति (वे उड़ते हैं), ७—**मुक्त्वा**=मोत्तूण (छूट कर), ८—**श्रुत्वा**=सोऊण (सुन कर के) यहां पर इवर्ण और उवर्ण को गुण किया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर इवर्ण को गुण नहीं भी होता, जैसे—१—**नीतः**=नीओ (ले जाया गया), २—**उड्डीनः**=उड्डीणो (उड़ा हुआ) यहां पर बहुलता के कारण इवर्ण को गुण नहीं हो सका।

२०९—धातुओं के स्वरों के स्थान में अन्य (दूसरे) स्वर बहुलता से हो जाते हैं। जैसे—१—**भवति**=हवइ, हिवइ (वह होता है), २—**चिनोति**=चिणइ,चुणइ (वह इकट्ठा करता है), ३—**श्रद्धानम्**=सद्दहणं, सद्दहाणं (श्रद्धा), ४—**धावति**=धावइ, धुवइ (वह दौड़ता है), ५—**रोदिति**=रुवइ, रोवइ (वह रोता है) यहां पर स्वरों के स्थान में अन्य (दूसरे) स्वर बहुलता से किए गए हैं। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर स्वरों के स्थान में अन्य स्वर नित्य होते हैं। जैसे—१—**ददाति**=देइ (वह देता है), २—**लाति**=लेइ (वह ग्रहण करता है), ३—**विजहाति**=विहेइ (वह विशिष्ट त्याग करता है), ४—**नश्यति**=नासइ (वह नष्ट होता है) यहां पर स्वरों के स्थान में दूसरे स्वर नित्यरूप से किए गए हैं। **आर्ष प्राकृत में—ब्रवीमि** इस क्रियापद का **बेमि** (मैं कहता हूं) ऐसा रूप बनता है। यहां पर ३ सूत्र से ब्रूधातु के ऊकार के स्थान में एकार किया गया है।

२१०—व्यञ्जनान्त धातु के अन्त में अकार का आगम होता है। जैसे—१—**भ्रमति**=भमइ (वह भ्रमण करता है), २—**हसति**=हसइ (वह हंसता है), ३—**करोति**=कुणइ (वह करता है), ४—**चुम्बति**=चुम्बइ (वह चुम्बन लेता है), ५—**भणति**=भणइ (वह कहता है), ६—**उपशाम्यति**=उवसमइ (वह शान्ति करता है), ७—**प्राप्नोति**=पावइ (वह प्राप्त करता है), ८—**सिञ्चति**=सिञ्चइ (वह सिञ्चन करता है), ९—**रुणद्धि**=रुन्धइ (वह रोकता है), १०—**मुष्णाति**=मुसइ (वह चोरी करता है), ११—**हरति**=हरइ (वह हरण करता है), १२—**करोति**=करइ (वह करता है) यहां पर भ्रम् आदि धातुओं के अन्त में अकार का आगम किया गया है। **वृत्तिकार** फरमाते हैं कि जैसे संस्कृत-भाषा में धातुओं से शप् आदि प्रत्ययों का विधान देखने में आता है, वैसे प्राकृत-भाषा में प्रायः शप् आदि प्रत्ययों का प्रयोग न ।ीं होता है।

२११—अकारान्त धातु को छोड़कर अवशिष्ट-स्वरान्त (जिसके अन्त में शेष स्वर हैं) धातुओं के अन्त में विकल्प से अकार का आगम होता है। जैसे—१—**पाति**=पाअइ, पाइ (वह रक्षा करता है), २—**धयति**=धाअइ, धाइ (वह धारण करता है), ३—**याति**=जाअइ, जाइ (वह जाता है), ४—**ध्यायति**=झाअइ, झाइ (वह चिन्तन करता है), ५—**जृम्भते**=जम्भाअइ, जम्भाइ (वह जंभाई लेता है), ६—**उद्वाति**=उव्वाअइ, उव्वाइ (वह ऊपर जाता है), ७—**म्लायति**=मिलाअइ, मिलाइ (वह उदास होता है), ८—**विक्रीणाति**=विक्केअइ, विक्केइ (वह बेचता है), ९—**भूत्वा**=होअऊण, होऊण (हो करके), यहां पर अकारान्त से भिन्न स्वरान्त धातुओं के अन्त में विकल्प से अकार का आगम किया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि सूत्रकार ने "**अतः** (अकारान्त को छोड़ कर)" यह

क्यों कहा ? उत्तर में निवेदन है कि—१—**चिकित्सति**=चिइच्छइ (वह चिकित्सा करता है), २—**जुगुप्सति**=दुगुच्छइ (वह निन्दा करता है), यहां **चिइच्छ** तथा **दुगुच्छ** इन अकारान्त धातुओं से अकारागम न हो जाए, इस विचार से सूत्रकार ने "**अनतः**" इस पद का उल्लेख किया है।

९१२—चि, जि, श्रु, हु, स्तु, लू, पू और धूग् इन धातुओं के अन्त में णकार का आगम होता है और इन धातुओं का स्वर ह्रस्व हो जाता है। **चि धातु का उदाहरण—चिनोति**=चिणइ (वह इकट्ठा करता है), **जि धातु का उदाहरण—जयति**=जिणइ (वह जय प्राप्त करता है), **श्रु धातु का उदाहरण—शृणोति**=सुणइ (वह सुनता है), **हु धातु का उदाहरण—जुहोति**=हुणइ (वह हवन करता है), **स्तु का उदाहरण—स्तौति**=थुणइ (वह तारीफ करता है), **लू का उदाहरण—लुनाति**=लुणइ (वह छेदन करता है), **पू का उदाहरण—पुनाति**=पुणइ (वह पवित्र करता है), **धूग् का उदाहरण—धुनोति**=धुणइ (वह धुनता है, कांपता है), यहां पर चि आदि धातुओं के अन्त में णकार का आगम किया गया है और स्वर को ह्रस्व बनाया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर णकार का आगम विकल्प से भी होता है। जैसे—१—**उच्चिनोति**=उच्चिणइ, उच्चेइ [वह (फूलों का) चोटल-तोड़ना करता है], २—**जित्वा**=जेऊण, जिणिऊण (जीत कर), ३—**जयति**=जयइ, जिणइ (वह जीतता है), ४—**श्रुत्वा**=सोऊण, सुणिऊण (सुन करके) यहां पर णकार का आगम विकल्प से किया गया है।

★ अथ कर्मभाव-प्रकरणम् ★

९१३—न वा कर्म-भावे व्वः क्यस्य च लुक् । ८ । ४ । २४२ । च्यादीनां कर्मणि भावे च वर्तमानानामन्ते द्विरुक्तो वकारागमो वा भवति, तत्संनियोगे च क्यस्य लुक् । चिव्वइ, चिणिज्जइ । जिव्वइ, जिणिज्जइ । सुव्वइ, सुणिज्जइ । हुव्वइ, हुणिज्जइ । थुव्वइ, थुणिज्जइ । लुव्वइ, लुणिज्जइ । पुव्वइ, पुणिज्जइ । धुव्वइ, धुणिज्जइ । एवं भविष्यति । चिव्विहिइ इत्यादि ।

९१४—म्मश्चेः । ८ । ४ । २४३ । चिगः कर्मणि भावे च अन्ते संयुक्तो मो वा भवति, तत्संनियोगे क्यस्य च लुक् । चिम्मइ, चिव्वइ, चिणिज्जइ । भविष्यति । चिम्मिहिइ, चिव्विहिइ, चिणिहिइ ।

९१५—हन्खनोऽन्त्यस्य । ८ । ४ । २४४ । अनयोः कर्मभावेऽन्त्यस्य द्विरुक्तो मो वा भवति, तत्संनियोगे क्यस्य च लुक् । हम्मइ, हणिज्जइ । खम्मइ, खणिज्जइ । भविष्यति । हम्मिहिइ, हणिहिइ । खम्मिहिइ, खणिहिइ । बहुलाधिकाराद्धन्तेः कर्तर्यपि । हम्मइ, हन्तीत्यर्थः । क्वचिन्न भवति । हन्तव्वं । हन्तूण । हओ ।

९१६—भ्भो दुह-लिह-वह-रुधामुच्चातः । ८ । ४ । २४५ । दुहादीनामन्त्यस्य कर्मभावे द्विरुक्तो भो वा भवति, तत्संनियोगे क्यस्य च लुक्, वहेरकारस्य च उकारः । दुब्भइ, दुहिज्जइ । लिब्भइ, लिहिज्जइ । वुब्भइ, वहिज्जइ । रुब्भइ, रुन्धिज्जइ । भविष्यति । दुब्भिहिइ, दुहिहिइ इत्यादि ।

९१७—दहो ज्झः । ८ । ४ । २४६ । दहोऽन्त्यस्य कर्मभावे द्विरुक्तो झो वा भवति, तत्संनियोगे क्यस्य च लुक् । डज्झइ, डहिज्जइ । भविष्यति । डज्झिहिइ, डहिहिइ ।

९१८—बन्धो न्धः । ८ । ४ । २४७ । बन्धेर्धातोरन्त्यस्य न्ध इत्यवयवस्य कर्मभावे ज्झो वा भवति, तत्संनियोगे क्यस्य च लुक् । बज्झइ, बन्धिज्जइ । भविष्यति । बज्झिहिइ, बन्धिहिइ ।

९१९—समनूपाद्रुधेः । ८ । ४ । २४८ । समनूपेभ्यः परस्य रुन्धेरन्त्यस्य कर्मभावे ज्झो वा भवति, तत्संनियोगे क्यस्य च लुक् । संरुज्झइ, अणुरुज्झइ, उवरुज्झइ । पक्षे । संरुन्धिज्जइ, अणुरुन्धिज्जइ, उवरुन्धिज्जइ । भविष्यति । संरुज्झिहिइ, संरुन्धिहिइ इत्यादि ।

९२०—गमादीनां द्वित्वम् । ८ । ४ । २४९ । गमादीनामन्त्यस्य कर्मभावे द्वित्वं वा भवति, तत्संनियोगे क्यस्य च लुक् । गम् । गम्मइ, गमिज्जइ । हस् । हस्सइ, हसिज्जइ । भण् । भण्णइ, भणिज्जइ । छुप् । छुप्पइ, छुविज्जइ । रुद-नमोर्वः [४.२२६] इति कृतवकारादेशो रुदिरत्र पठ्यते । रुव् । रुव्वइ, रुविज्जइ । लभ् । लब्भइ, लहिज्जइ । कथ् । कत्थइ, कहिज्जइ । भुज् । भुज्जइ, भुञ्जिज्जइ । भविष्यति । गम्मिहिइ, गमिहिइ, इत्यादि ।

९२१—हृ-कृ-तृ-ज्रामीरः । ८ । ४ । २५० । एषामन्त्यस्य ईर इत्यादेशो वा भवति, तत्संनियोगे च क्यस्य लुक् । हीरइ, हरिज्जइ । कीरइ, करिज्जइ । तीरइ, तरिज्जइ । जीरइ, जरिज्जइ ।

९२२—अर्जेर्विढप्पः । ८ । ४ । २५१ । अन्त्यस्येति निवृत्तम् । अर्जेर्विढप्प इत्यादेशो वा भवति, तत्संनियोगे क्यस्य च लुक् । विढप्पइ । पक्षे । विढविज्जइ, अज्जिज्जइ ।

९२३—ज्ञो णव्व-णज्जौ । ८ । ४ । २५२ । जानातेः कर्मभावे णव्व, णज्ज इत्यादेशौ वा भवतः, तत्संनियोगे क्यस्य च लुक् । णव्वइ, णज्जइ । पक्षे । जाणिज्जइ मुणिज्जइ । म्न-ज्ञोर्णः [२.४२] इति णादेशे तु णाइज्जइ । नञ्पूर्वकस्य—अणाइज्जइ ।

९२४—व्याहृगेर्वाहिप्पः । ८ । ४ । २५३ । व्याहरतेः कर्मभावे वाहिप्प इत्यादेशो वा भवति, तत्संनियोगे क्यस्य च लुक् । वाहिप्पइ, वाहरिज्जइ ।

९२५—आरभेराढप्पः । ८ । ४ । २५४ । आङ्-पूर्वस्य रभेः कर्मभावे आढप्प इत्यादेशो वा भवति, तत्संनियोगे क्यस्य च लुक् । आढप्पइ । पक्षे । आढवीअइ ।

९२६—स्निह-सिचोः सिप्पः । ८ । ४ । २५५ । अनयोः कर्मभावे सिप्प इत्यादेशो भवति, क्यस्य च लुक् । सिप्पइ । स्निह्यते, सिच्यते वा ।

९२७—ग्रहेर्घेप्पः । ८ । ४ । २५६ । ग्रहेः कर्मभावे घेप्प इत्यादेशो वा भवति, क्यस्य च लुक् । घेप्पइ, गिण्हिज्जइ ।

९२८—स्पृशेश्छिप्पः । ८ । ४ । २५७ । स्पृशतेः कर्मभावे छिप्पादेशो वा भवति, क्यस्य च लुक् । छिप्पइ, छिविज्जइ ।

★ अथ भावकर्म-प्रकरणम् ★

संस्कृत-भाषायां त्रयो वाच्या भवन्ति—कर्तृवाच्यः, कर्मवाच्यः, भाववाच्यश्च । सकर्मक-धातूनां रूपाणि कर्मवाच्ये, कर्तृवाच्ये च भवन्ति, अकर्मकधातवस्तु कर्तृवाच्ये भाववाच्ये चैव प्रयुज्यन्ते । कर्तृवाच्ये कर्ता मुख्यो भवति, क्रिया कर्त्रनुसारिणी ज्ञेया, कर्तरि प्रथमा, कर्मणि च द्वितीया विभक्तिर्बोध्या । यथा—रामः शास्त्रं पठति । कर्मवाच्ये कर्मणो मुख्यताऽवगन्तव्या । कर्तरि तृतीया, कर्मणि च प्रथमाविभक्तिर्जायते । तथा क्रिया कर्मानुसारिणी भवति । यथा—रामेण पुस्तकं पठ्यते । भाववाच्ये तु कर्तरि तृतीया-विभक्तिः प्रयोक्तव्या, कर्मणस्तत्राभाव एव भवति । क्रियायाञ्च प्रथमपुरुषस्यैकवचनमेव समुपलभ्यते । यथा—मनुष्यैः स्रियते । ६४१ सूत्रे भावकर्मणोर्विधिः निरूपितः । प्रस्तुत-प्रकरणेऽपि भावकर्मणोः विधिविधानं निरूपयत्याचार्यः—

९१३—चीयते । चिञ्धातुः चयने । चि+क्य+ते । ९१३ सू० वैकल्पिके व्व इत्यागमे, क्यस्य च लुकि, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **चिव्वइ** व्व इत्यागमाभावे, ९१२ सू० णकारागमे, ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **चिणिज्जइ** इति भवति । **जीयते** । जि जये । जि+क्य+ते । पूर्ववदेव **जिव्वइ** व्व इत्यागमाभावे **जिणिज्जइ** इति साध्यम् । **श्रूयते** । श्रु श्रवणे । श्रु+क्य+ते । ३५० सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे **सुव्वइ** व्व इत्यागमाभावे **सुणिज्जइ** इति भवति । एवमेव—**हूयते** । हुधातुः दानाऽदनयोः । हु+क्य+ते=**हुव्वइ, हुणिज्जइ, स्तूयते** । स्तु स्तवने । स्तु+क्य+ते । ३१६ सू० स्तस्य थकारे **थुव्वइ, थुणिज्जइ, लूयते** । लूञ् छेदने । लू+क्य+ते । प्रस्तुत-सूत्रेण विकल्पेन व्व इत्यागमे, क्यस्य च लुकि, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **लुव्वइ** व्वागमाभावे ९१२ सू० णकारागमे, ऊकारस्य च उकारे, ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **लुणिज्जइ** इति भवति । एवमेव—**पूयते** । पूञ् पवने । पू+क्य+ते । पूर्ववदेव **पुव्वइ** व्वागमाभावे **पुणिज्जइ, धूयते** । धूञ् कम्पने । धू+क्य+ते । पूर्ववदेव **धुव्वइ, धुणिज्जइ** इति भवति । **एवं भविष्यति** । प्रस्तुतसूत्रेण यथा वर्तमानकाले व्वागमः, क्यस्य च लुग् विहितः, एवमेव भविष्यत्कालेऽपि बोद्धव्यमिति भावः । यथा—**चेष्यते** । चिञ्धातुः चयने । चि+क्य+स्यते । प्रस्तुतसूत्रेण व्वागमे, क्यस्य च लुकि, ६५५ सू० प्रत्ययस्यादौ हिप्रयोगे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे, ६२८ सू० स्यते इत्यस्य स्थाने इचादेशे **चिव्विहिइ** इति भवति ।

९१४—चीयते । चिञ्धातुः चयने । चि+क्य+ते । ९१४ सू० वैकल्पिके म्म इत्यागमे, क्यस्य च लुकि, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **चिम्मइ** म्मागमाभावे ९१३ सूत्रतुल्यमेव **चिव्वइ**, व्वागमाभावे **चिणिज्जइ** इति भवति । प्रक्रिया ९१३ सूत्रे ज्ञेया । **चेष्यते** । चि+क्य+स्यते=चिम्म+स्यते । ६४६ सू० अकारस्य इकारे, ६५५ सू० प्रत्ययस्यादौ हिप्रयोगे, ६२८ सू० स्यते इत्यस्य इचादेशे **चिम्मिहिइ** म्मागमाभावे—९१३ सूत्रतुल्यमेव **चिव्विहिइ** व्वागमाभावे ९१२ सू० णकारागमे **चिणिहिइ** इति भवति । ६४९

सूत्रे बहुलाधिकारात् क्यस्य वैकल्पिकत्वात् चिणिहिइ इति भवति । इत्यत्र क्यस्याभावो ज्ञेयः ।

९१५—हन्यते । हन् हिंसागत्योः हन्+क्य+ते । ९१५ सू० नकारस्य वैकल्पिके म्म इत्यादेशे क्यस्य च लुकि, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे हम्मइ म्मादेशाभावे हन्+क्य+ते इति स्थिते, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे हणिज्जइ इति भवति । खन्यते । खन् खनने । खन्+क्य+ते । प्रस्तुतसूत्रेण नकारस्य वैकल्पिके म्मादेशे, क्यस्य च लुकि खम्मइ म्मादेशाभावे पूर्ववदेव खणिज्जइ इति भवति । हनिष्यते । हन्+क्य+स्यते=हम्म+क्य+स्यते—हम्मिहिइ, हणिहिइ प्रक्रिया ९१४ सूत्रोक्तस्य चिम्मिहिइ, चिणिहिइ इत्यस्य प्रयोगद्वयस्य तुल्यैव ज्ञेया । एवमेव—खनिष्यते । खन्+क्य+स्यते=खम्मिहिइ,खणिहिइ एते रूपेऽपि साध्ये । बहुलाधिकारात् । प्रस्तुतसूत्रेण हन्धातोः कर्मभावेऽन्त्यस्य वर्णस्य म्मादेशो विहितः, परन्तु बहुलाधिकारात् हन्धातोः कर्तर्यपि म्मादेशो भवतीति भावः । यथा—हन्ति । हन्+तिव् । बाहुल्येन नकारस्य म्म इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे हम्मइ इति भवति । क्वचिन्न भवति । बहुलाधिकारात् कर्मभावेऽपि प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न भवति । यथा—हन्तव्यम् । हन्तव्य+सि । बाहुल्येन प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे हन्तव्वं इति भवति । हत्वा । हन्+क्त्वा । बाहुल्येन प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ ४१७ सू० क्त्वः स्थाने तूण इत्यादेशे हन्तूण २७ सू० विकल्पेन अनुस्वारागमे हन्तूणं इत्यपि भवति । हतः । हन्+क्त-त । बहुलेन प्रस्तुतसूत्राप्रवृत्तौ संस्कृतनियमेन हत+सि इति जाते, १७७ सू० तकारलोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे हओ इति भवति ।

९१६—दुह्यते । दुह् धातुः दोहने । दुह्+क्य+ते । ९१६ सू० विकल्पेन हकारस्य भ्भ इत्यादेशे, क्यस्य च लुकि, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे दुब्भइ भ्-भ इत्यादेशाभावे—६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये दुहिज्जइ इति भवति । लिह्यते । लिह् आस्वादने । लिह्+क्य+ते । पूर्ववदेव लिब्भइ,लिहिज्जइ इति साध्यम् । एवमेव—उह्यते । वह् प्रापणे । वह्+क्य+ते । प्रस्तुतसूत्रेण हकारस्य भ्भ इत्यादेशे,क्यस्य लुकि,वह्धातोरकारस्य च उकारे वुब्भइ भ्-भ इत्यादेशाभावे पूर्ववदेव वहिज्जइ इति भवति । रुध्यते । रुधिर् (रुध्) आवरणे । रुध्+क्य+ते । पूर्ववदेव रुब्भइ भ्भ इत्यादेशाभावे ८८९ सू० धकारस्य न्ध इत्यादेशे, क्यस्य इज्जादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये रुन्धिज्जइ इति भवति । भविष्यति । भविष्यत्-कालेऽपि भ्भ इत्यादेशो भवतीति भावः । यथा—धोक्ष्यते । दुह्+क्य+स्यते=दुब्भ+स्यते । ६५५ सू० प्रत्ययस्यादौ हिप्रत्ययस्यप्रयोगे,६४६ सू० अकारस्य इकारे,६२८ सू० स्यते इत्यस्य इचादेशे दुब्भिहिइ भ्भ इत्यादेशाभावे ६४९ सूत्रविहितक्यस्य वैकल्पिकत्वात् दुह्+हि+इ,इति स्थिते, ९१० सू० अकारस्यागमे,६४६ सू० अकारस्य स्थाने इकारे इति दुहिहिइ भवति ।

९१७—दह्यते । दह् धातुः दाहे । दह्+क्य+ते । २१८ सू० दकारस्य डकारे, ९१७ सू० हकारस्य वैकल्पिके झ्झ इत्यादेशे, क्यस्य च लुकि, ३६१ सू० प्रथम-झकारस्य जकारे,६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे डज्झइ झ्झ इत्यादेशाभावे ६४९ सू० क्यस्य स्थाने इज्ज इत्यादेशे डहिज्जइ इति भवति । धक्ष्यते । दह्+क्य+स्यते=डज्झ+स्यते । ६४६ सू० अकारस्य इकारे, ६५५ सू० प्रत्ययस्यादौ हिप्रयोगे, ६२८ सू० स्यते इत्यस्य स्थाने इचादेशे डज्झिहिइ झ्झ इत्यादेशाभावे डह्+हिइ इति स्थिते, ९१० सू० अकारागमे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे डहिहिइ इति भवति । ६४९ सूत्रविहितक्यस्य वैकल्पिकत्वादत्राभावो बोध्यः ।

९१८—बध्यते । बन्धँ बन्धने । बन्ध्+क्य+ते । ९१८ सू० विकल्पेन न्धस्य ज्झ इत्यादेशे, क्य-स्य च लुकि, ३६१ सू० प्रथमझकारस्य जकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **बज्झइ** ज्झादेशाभावे ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे **बन्धिज्जइ** इति भवति । **बन्धिष्यते** । बन्ध्+स्यते=बज्झ+स्यते, ६५५ सू० हिप्रयोगे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे, ६२८ सू० स्यते इत्यस्य इचादेशे **बज्झिहिइ** ज्झादेशा-भावे ९१० सू० अकारस्यागमे, अकारस्य इकारे **बन्धिहिइ** इति भवति । ६४९ सूत्रविहितस्य क्यस्य वैकल्पिकत्वादत्र क्यप्रत्ययस्याभावो बोध्यः ।

९१९—संरुध्यते, अनुरुध्यते, उपरुध्यते । सम्पूर्वकः रुधिर् (रुध्) सम्यग् आवरणे, अनुपूर्वकः रुधिर्धातुः अनुरोधे, प्रार्थनायां वा, उपपूर्वकः रुधिर्धातुः उपरोधे-विरोधे । संरुध्+क्य+ते, अनुरुध्+क्य+ते, उपरुध्+क्य+ते । २२८ सू० नकारस्य णकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९१९ सू० धकार-स्य वैकल्पिके ज्झ इत्यादेशे क्यस्य च लुकि, ३६१ सू० प्रथमझकारस्य जकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **संरुज्झइ, अणुरुज्झइ, उवरुज्झइ** इति भवति । **पक्षे** । ज्झादेशाभावे ८८९ सू० धकारस्य न्ध इत्यादेशे, ६४९ सू० क्यस्य स्थाने इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे **संरुन्धिज्जइ, अणुरुन्धिज्जइ, उवरुन्धिज्जइ** इति भवति । **भविष्यति** । भविष्यत्कालिक-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदीयते । यथा—**संरो-त्स्यते** । संरुध्+स्यते=संरुज्झ+स्यते । ६५५ सू० प्रत्ययस्यादौ हिप्रयोगे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे, ६२८ सू० स्यते इत्यस्य इचादेशे **संरुज्झिहिइ** ज्झादेशाभावे ८८९ सू० धकारस्य न्ध इत्यादेशे, अकार-स्य इकारे **संरुन्धिहिइ** इति भवति । अत्रापि वैकल्पिकत्वात् ६४९ सूत्रेण क्य-प्रत्ययो माभूद् ।

९२०—गम्यते । गम्लृ (गम्) गतौ । गम्+क्य+ते । ९२० सू० मकारस्य द्वित्वे, क्यस्य च लोपे, ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **गम्मइ** द्वित्वाभावे ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्या-देशे **गमिज्जइ** इति भवति । **हस्यते** । हस् हासे । हस्+क्य+ते । प्रस्तुतसूत्रेण सकारस्य द्वित्वे क्यस्य च लोपे **हस्सइ** द्वित्वाभावे पूर्ववदेव **हसिज्जइ** इति भवति । **भण्यते** । भण् भणने । भण्+क्य+ते । पूर्व-वदेव **भण्णइ, भणिज्जइ** इति साध्यम् । **छुप्यते** । छुप् स्पर्शे । छुप्+क्य+ते । पूर्ववदेव **छुप्पइ** द्वित्वा-भावे २३१ सू० पकारस्य वकारे **छुविज्जइ** इति भवति । **रुदनमोर्वः** । ८९७ सूत्रेण रुद्धातोः दकारस्य वकारो भवति, ततः रुव् इति भवति, गमादिषु रुव्धातुरपि पठ्यते, अतोऽत्रापि प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जा-यते । यथा—**रुद्यते** । रुद् रोदने । रुद्+क्य+ते, ८९७ सू० दकारस्य वकारे, पूर्ववदेव **रुव्वइ** द्वित्वा-भावे **रुविज्जइ** इति भवति । **लभ्यते** । लभ् लाभे । लभ्+क्य+ते । प्रस्तुतसूत्रेण भकारस्य वैकल्पिके द्वित्वे, क्यस्य च लुकि, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारे **लब्भइ** द्वित्वाभावे १८७ सू० भकारस्य हकारे **लहिज्जइ** । **कथ्यते** । कथ् कथने । कथ्+क्य+ते । प्रस्तुतसूत्रेण थकारस्य द्वित्वे, क्यस्य च लुकि, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे **कत्थइ** द्वित्वाभावे १८७ सू० थकारस्य हकारे **कहिज्जइ** इति भवति । **भु-ज्यते** । भुज् भोजने । भुज्+क्य+ते=**भुज्जइ** द्वित्वाभावे ७८१ सू० भुज्-धातोः स्थाने भुञ्ज इत्यादेशे, क्यस्य इज्जादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, पूर्ववदेव **भुञ्जिज्जइ** इति भवति । **गम्स्यते** । गम्+क्य+स्यते =गम्म+स्यते, ६५५ सू० हिप्रयोगे, ६४६ अकारस्य इकारे, ६२८ सू० स्यते इत्यस्य इचादेशे **गम्मिहिइ** द्वित्वाभावे गम्+हि+इ इत्यत्र ९१० सू० अकारस्य आगमे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे **गमिहिइ** इति भवति । वैकल्पिकत्वादत्र ६४९ सूत्रेण क्यप्रत्ययाभावो बोध्यः ।

९२१—ह्रियते । हृञ् हरणे । हृ+क्य+ते । ९२१ सू० ऋवर्णस्य विकल्पेन ईर इत्यादेशे, क्य-स्य च लुकि, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **हीरइ** आदेशाभावे ९०५ सू० ऋवर्णस्य अर इत्यादेशे, ६४९

सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये हरिज्जइ इति भवति। एवमेव – क्रियते। डुकृञ् (कृ) करणे। कृ+क्य+ते=कीरइ, करिज्जइ, तीर्यते। तॄ तरणे। तॄ+क्य+ते=तीरइ, तरिज्जइ, जीर्यते। जृष् (जॄ) वयोहानौ। जॄ+क्य+ते=जीरइ, जरिज्जइ इति साध्यम्।

९२२—अन्त्यस्येति निवृत्तम्। ८८३ सूत्रतः 'अन्त्यस्य' इत्यस्य पदस्यानुवृत्तिरायाति परन्तु ९२२ सूत्रे तस्य निवृत्तिर्जातेति भावः। अर्ज्यते। अर्ज् उपार्जने। अर्ज्+क्य+ते। ९२२ सू० अर्ज्-धातोः स्थाने विकल्पेन विढप्प इत्यादेशे, क्यस्य च लुकि, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे विढप्पइ आदेशाभावपक्षे ७७९ सू० अर्ज् धातोः वैकल्पिके विढव इत्यादेशे, ६४९ सू० क्यस्य इज्जादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे विढविज्जइ विढवादेशाभावे ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० जकारद्वित्वे, क्यस्य इज्जादेशे अज्जिज्जइ इति भवति।

९२३—ज्ञायते। ज्ञा अवबोधने। ज्ञा+क्य+ते। ९२३ सू० ज्ञाधातोः स्थाने विकल्पेन णव्व, णज्ज इत्यादेशौ जातौ, क्यस्य च लुगभवद्, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे णव्वइ, णज्जइ आदेशाभावे ६७८ सू० ज्ञाधातोः जाण, मुण इत्यादेशौ, ६४९ सू० क्यस्य स्थाने इज्जादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे जाणिज्जइ, मुणिज्जइ बहुलाधिकारात् ६७८ सूत्रस्याप्रवृत्तौ ३१३ सू० ज्ञस्य स्थाने णकारादेशे णाइज्जइ, न ज्ञायते इति नञ्पूर्वकस्य तु अणाइज्जइ इति भवति। अत्र ५ सू० सन्धेरभावो बोध्यः।

९२४—व्याह्रियते। वि-आङ्-पूर्वकः हृधातुः व्याहरणे—कथने। व्याहृ+क्य+ते। ९२४ सू० व्याहृधातोः वैकल्पिके वाहिप्प इत्यादेशे, क्यस्य च लुकि, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे वाहिप्पइ आदेशाभावे ३४९ सू० यकारलोपे, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे वाहरिज्जइ इति भवति।

९२५—आरभ्यते। आङ्पूर्वकः रभ्-धातुः आरम्भे। आरभ्+क्य+ते। इत्यत्र ९२५ सू० आरभ्-धातोः स्थाने विकल्पेन आढप्प इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य स्थाने इचादेशे आढप्पइ आदेशाभावे ८२६ सू० रभ्धातोः स्थाने ढव इत्यादेशे, ६४९ सू० क्यस्य ईअ इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, पूर्ववदेव आढवीअइ इति भवति।

९२६—स्निह्यते, सिच्यते। ष्णिह् स्नेहे, षिच् सिचने। स्निह्+क्य+ते, सिच्+क्य+ते। ९२६ सू० स्नेह्-सिचोः स्थाने क्रमशः सिप्प इत्यादेशे, क्यस्य च लुकि, ६२८ सू० ते इत्यस्य स्थाने इचादेशे सिप्पइ इति भवति।

९२७—गृह्यते। ग्रह् उपादाने। ग्रह्+क्य+ते। ९२७ सू० ग्रह् धातोः विकल्पेन घेप्प इत्यादेशे, क्यस्य च लुकि, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे घेप्पइ आदेशाभावे ८८० सू० ग्रह् धातोः स्थाने गेण्ह इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये गिण्हिज्जइ इति भवति।

९२८—स्पृश्यते। स्पृश् स्पर्शे। स्पृश्+क्य+ते। ९२८ सू० स्पृश्धातोः विकल्पेन छिप्प इत्यादेशे, क्यस्य च लुकि, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे छिप्पइ आदेशाभावे ८५३ सू० स्पृश्धातोः स्थाने छिव इत्यादेशे, ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे छिविज्जइ इति भवति।

★ अथ कर्मवाच्य और भाववाच्य से सम्बन्धित प्रकरण ★

संस्कृतभाषा के समान प्राकृतभाषा में भी कर्तृ, कर्म और भाव ये तीन वाच्य उपलब्ध होते हैं, इनकी व्याख्या पीछे ६४१ वें सूत्र में की जा चुकी है। प्रस्तुत प्रकरण में भी

सूत्रकार कर्मवाच्य और भाववाच्य के विधिविधान का प्रसंगोपात्त कुछ निर्देश कर रहे हैं—

६१३—यदि **६१२** सूत्र में पठित चि आदि धातु **कर्मवाच्य** तथा **भाववाच्य** में विद्यमान हों तो उनके अन्त में द्विरुक्त (द्वित्व) वकार का आगम विकल्प से होता है और उस (व्व) का संनियोग (सामीप्य) होने पर क्य-प्रत्यय का लोप हो जाता है। जैसे—**१—चीयते**=चिव्वइ, चिणिज्जइ (उस से इकट्ठा किया जाता है), **२—जीयते**=जिव्वइ, जिणिज्जइ (उस से जीता जाता है), **३—श्रूयते**=सुव्वइ, सुणिज्जइ (उस से सुना जाता है), **४—हूयते**=हुव्वइ, हुणिज्जइ (उस से हवन किया जाता है), **५—स्तूयते**=थुव्वइ, थुणिज्जइ (उस से स्तुति की जाती है), **६—लूयते**=लुव्वइ, लुणिज्जइ (उस से काटा जाता है), **७—पूयते**=पुव्वइ, पुणिज्जइ (उस से पवित्र किया जाता है), **८—धूयते**=धुव्वइ, धुणिज्जइ (उस से धुना जाता है)। यहां पर **चि** आदि धातुओं के अन्त में '**व्व**' का वैकल्पिक आगम किया गया है। **वृत्तिकार फरमाते** हैं कि इसी प्रकार भविष्यत्काल-बोधक प्रत्यय परे होने पर भी '**व्व**' का आगम किया जाता है। भाव यह है कि प्रस्तुत सूत्र द्वारा—**चिव्वइ** आदि प्रयोगों में जैसे वर्तमान-काल-बोधक प्रत्यय परे होने पर '**व्व**' का आगम किया गया है, वैसे भविष्यत् कालिक प्रत्यय के आगे होने पर भी **व्व** का आगम किया जा सकता है। जैसे—**चेष्यते**=चिव्विहिइ (उस से इकट्ठा किया जायगा) यहां पर भविष्यत् कालिक प्रत्यय के परे होने पर भी व्व का आगम किया गया है।

६१४—**भावकर्म** (भाववाच्य तथा कर्मवाच्य) के चिम् (चि) धातु के अन्त में संयुक्त म (म्म) का आगम विकल्प से होता है, और उस म्म का संनियोग होने पर क्य-प्रत्यय का लोप हो जाता है। जैसे—**चीयते**=चिम्मइ, चिव्वइ, चिणिज्जइ (उससे इकट्ठा किया जाता है), **भविष्यत्-काल-बोधक प्रत्यय** परे होने पर—**चेष्यते**=चिम्मिहिइ, चिव्विहिइ, चिणिहिइ (उस से इकट्ठा किया जायगा) ऐसे रूप बनते हैं।

६१५—**भावकर्म में विद्यमान हन् और खन्** इन धातुओं के अन्त्य वर्ण को द्विरुक्त (द्वित्व) मकारादेश विकल्प से होता है, और इसका संनियोग होने पर क्य-प्रत्यय का लोप हो जाता है। जैसे—**१—हन्यते**=हम्मइ, हणिज्जइ (वह मारा जाता है), **२—खन्यते**=खम्मइ, खणिज्जइ (वह खोदा जाता है), **भविष्यत्कालीन प्रत्यय** आगे होने पर—**१—हनिष्यते**=हम्मिहिइ, हणिहिइ (वह मारा जायगा), **२—खनिष्यते**=खम्मिहिइ, खणिहिइ (वह खोदा जावेगा), ऐसे रूप बनते हैं। यहां पर भावकर्म में हन् और खन् धातु के अन्तिम वर्ण को '**म्म**' का विकल्प से आदेश किया गया है। **वृत्तिकार फरमाते** हैं कि **बहुलाधिकार** के कारण कर्ता में भी इन धातुओं के अन्तिम वर्ण को '**म्म**' का आदेश हो जाता है। जैसे—**हन्ति**=हम्मइ (वह मारता है), यहां पर कर्ता में भी '**म्म**' का आदेश कर दिया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण कहीं पर भावकर्म में भी '**म्म**' का आदेश नहीं होता है। जैसे—**१—हन्तव्यम्**=हन्तव्वं (मारना चाहिए), **२—हत्वा**=हन्तूण (मार करके), **३—हतः**=हओ (मारा हुआ), यहां पर भावकर्म में भी अन्त्यवर्ण को '**म्म**' का आदेश नहीं हो सका।

६१६—**कर्मभाव** (कर्मवाच्य तथा भाववाच्य) में **दुह्**, **लिह्**, **वह्** और **रुध्** इन धातुओं के अन्त्य वर्ण को विकल्प से द्विरुक्त (द्वित्व) भकारादेश होता है और उसका संनियोग (सामीप्य) होने पर क्यप्रत्यय का लोप तथा वह् धातु के अकार को उकारादेश हो जाता है। जैसे—**१—दुह्यते**=दुब्भइ, दुहिज्जइ (वह दूहा जाता है), **२—लिह्यते**=लिब्भइ, लिहिज्जइ (वह चाटा जाता है), **३—उह्यते**=वुब्भइ, वहिज्जइ (वह उठाया जाता है); **४—रुध्यते**=रुब्भइ, रुन्धिज्जइ (वह रोका जाता है), **भविष्यत्**-

कालिक प्रत्यय परे होने पर—दोक्ष्यते=दुब्भिहिइ, दुहिहिइ (वह दुहा जायगा) इत्यादि प्रयोगों में वर्त-मानकालिक और भविष्यत्कालीन प्रत्यय परे रहने पर 'ब्भ' यह आदेश विकल्प से किया गया है।

९१७—कर्मभाव में दह् धातु के अन्तिम वर्ण को द्विरुक्त(द्वित्व)झकारादेश विकल्प से होता है और उसके संनियोग में क्य का लोप होता है। जैसे—दह्यते=डज्झइ, डहिज्जइ (वह जलाया जाता है), भविष्यत्कालीन प्रत्यय परे होने पर—धक्ष्यते=डज्झिहिइ, डहिहिइ (वह जलाया जायगा) ऐसा रूप बनता है। यहां पर दह् धातु के हकार को 'ज्झ' यह आदेश करके क्य का लोप किया गया है।

९१८—कर्मभाव (कर्मवाच्य तथा भाववाच्य) में बन्ध् धातु के 'न्ध' इस अवयव के स्थान में विकल्प से 'ज्झ' यह आदेश होता है और उसका संनियोग होने पर क्य-प्रत्यय का लोप किया जाता है। जैसे—बध्यते=बज्झइ, बन्धिज्जइ (वह बांधा जाता है), भविष्यत्कालीन प्रत्यय के परे होने पर—भन्त्स्यते=बज्झिहिइ, बन्धिहिइ (वह बांधा जायगा) ऐसा रूप बनता है। यहां पर वर्तमानकालिक तथा भविष्यत्कालिक प्रत्यय परे होने बन्ध्धातु के 'न्ध' को 'ज्झ' यह आदेश किया गया है।

९१९—कर्मभाव में सम्,अनु और उप् इन उपसर्गों से आगे यदि रुधिर्धातु हो तो इसके अन्तिम वर्ण को 'ज्झ' यह आदेश विकल्प से होता है, और इस आदेश की अवस्थिति में क्य-प्रत्यय का लोप हो जाता है। जैसे—१—संरुध्यते=संरुज्झइ (वह रोका जाता है), २—अनुरुध्यते=अणुरुज्झइ (अनुरोध किया जाता है), ३—उपरुध्यते=उवरुज्झइ (वह रोका जाता है), जहां पर प्रस्तुत सूत्र का कार्य नहीं हुआ, वहां पर क्रमशः संरुन्धिज्जइ, अणुरुन्धिज्जइ, उवरुन्धिज्जइ ये रूप बनते हैं। भविष्यत्-कालीन प्रत्यय परे रहने पर—१—संरोत्स्यते=संरुज्झिहिइ आदेश के अभावपक्ष में—संरुन्धिहिइ (रोका जायगा) इत्यादि रूप बन जाते हैं। यहां पर वर्तमान तथा भविष्यत्-काल-बोधक प्रत्यय के परे होने पर रुधिर्धातु के अन्त्य वर्ण को 'ज्झ' यह आदेश करके क्य का लोप किया गया है।

९२०—कर्मभाव में गम् आदि धातुओं के अन्तिम वर्ण को विकल्प से द्वित्व होता है और उसका संनियोग होने पर क्य का लोप होता है। जैसे—गम् धातु का उदाहरण—१—गम्यते=गम्मइ, गमिज्जइ (उससे जाया जाता है),हस् का उदाहरण—२—हस्यते=हस्सइ,हसिज्जइ (उस से हंसा जाता है), भण् धातु का उदाहरण—३—भण्यते=भण्णइ, भणिज्जइ (उससे कहा जाता है), छुप् धातु का उदाहरण—४—छुप्यते=छुप्पइ,छुविज्जइ (उससे स्पर्श किया जाता है),वृत्तिकार फरमाते हैं कि गमादिगण में रुद् धातु का भी पाठ है, परन्तु ८९७ सूत्र से दकार के स्थान मे वकारादेश कर लेने के अनन्तर जब उसका रुव् यह रूप बनता है तब उस का यहां पर ग्रहण किया जाता है। जैसे—५—रुद्यते=रुव्वइ, रुविज्जइ (उस से रोया जाता है), लभ् का उदाहरण—६—लभ्यते=लब्भइ, लहिज्जइ (उससे प्राप्त किया जाता है),कथ् का उदाहरण—७—कथ्यते—कत्थइ, कहिज्जइ (उससे कहा जाता है),भुज् का उदाहरण—८—भुज्यते—भुज्जइ, भुञ्जिज्जइ (उस से खाया जाता है), भविष्यत्कालीन प्रत्यय के परे रहने पर—गमिष्यते=गम्मिहिइ, गमिहिइ (उस से जाया जायगा) इत्यादि रूप बन जाते हैं। यहां पर गम् आदि धातुओं के अन्तिम वर्ण को विकल्प से द्वित्व करके क्य का लोप किया गया है।

९२१—हृ, कृ, तृ और जृ इन धातुओं के अन्त्य वर्ण को विकल्प से 'ईर' यह आदेश होता है, और इस का संनियोग होने पर क्य प्रत्यय का लोप हो जाता है। जैसे—१—ह्रियते=हीरइ, हरिज्जइ (उस से चुराया जाता है), २—क्रियते=कीरइ,करिज्जइ (उससे किया जाता है), ३—तीर्यते=तीरइ, तरिज्जइ (उस से तैरा जाता है),४—जीर्यते=जीरइ, जरिज्जइ (उस से जीर्ण हुआ जाता है),

यहां पर भाव-कर्म में हृ आदि धातुओं के अन्तिम वर्ण को '**ईर**' यह आदेश करके क्य प्रत्यय का लोप किया गया है।

९२२—वृत्तिकार फरमाते हैं कि यहां "**अन्त्यवर्ण के स्थान में**" इस अनुवृत्ति की निवृत्ति हो जाती है। ८८३ सूत्र से **अन्त्यस्य** इस पद की अनुवृत्ति ग्रहण की जा रही थी, किन्तु अब आगे उसकी निवृत्ति समझनी चाहिए। अर्जि धातु के स्थान में '**विढप्प**' यह आदेश विकल्प से होता है, और उसकी अवस्थिति में क्य प्रत्यय का लोप हो जाता है। जैसे—**अर्ज्यते**=विढप्पइ, **आदेश के अभावपक्ष में**—विढविज्जइ, अज्जिज्जइ (उससे पैदा किया जाता है) ऐसे रूप बनते हैं।

९२३—**कर्मभाव** में ज्ञा धातु के स्थान में णव और णज्ज ये दो आदेश विकल्प से होते हैं, इन के संनियोग में क्य-प्रत्यय का लोप हो जाता है। जैसे—**ज्ञायते**=णव्वइ, णज्जइ आदेश के अभावपक्ष में—**जाणिज्जइ, मुणिज्जइ**, ३१३ सूत्र द्वारा ज्ञ के स्थान में 'ण' यह आदेश हो जाने पर—**णाइज्जइ** (उस से जाना जाता है) यह रूप बनता है। यदि ज्ञा धातु से पूर्व नञ् का प्रयोग हो तो **न ज्ञायते**=**अणाइज्जइ** (उस से जाना नहीं जाता है) यह रूप हो जाता है।

९२४—**कर्मभाव** में वि और आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक हृ धातु के स्थान में **वाहिप्प** यह आदेश विकल्प से होता है और इसका संनियोग होने पर क्य-प्रत्यय का लोप हो जाता है। जैसे—**व्याह्रियते**=वाहिप्पइ, आदेश के अभावपक्ष में—**वाहरिज्जइ** (उस से कहा जाता है) यह रूप बनता है।

९२५—**कर्मभाव** में आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक रभि धातु के स्थान में '**आढप्प**' यह आदेश विकल्प से होता है और उसका सामीप्य होने पर क्य-प्रत्यय का लोप होता है। जैसे—**आरभ्यते**=आढप्पइ, आदेश के अभावपक्ष में—**आढवीअइ** (उस से आरम्भ किया जाता है) ऐसा रूप रूप बनता है।

९२६—**कर्मभाव** में स्निह् और सिच् इन धातुओं के स्थान में **सिप्प** यह आदेश होता है और इसका संनियोग होने पर क्यप्रत्यय का लोप हो जाता है। जैसे -१ **स्निह्यते**=सिप्पइ(उस से स्नेह किया जाता है), २—**सिच्यते**=सिप्पइ (उस से सींचा जाता है), यहां पर कर्मभाव में स्निह् और सिच् इन धातुओं को **सिप्प** यह आदेश किया गया है।

९२७—**कर्मभाव** में ग्रह् धातु के स्थान में '**घेप्प**' यह आदेश विकल्प से होता है और क्य-प्रत्यय का लोप हो जाता है। जैसे—**गृह्यते**=घेप्पइ आदेश के अभावपक्ष में—**गिण्हिज्जइ** (उस से ग्रहण किया जाता है) यह रूप बनता है।

९२८—कर्मभाव में स्पृशि धातु के स्थान में **छिप्प** यह आदेश विकल्प से किया जाता है, और क्य-प्रत्यय का लोप होता है। जैसे—**स्पृश्यते**=छिप्पइ आदेश के अभावपक्ष में—**छिविज्जइ** (उस से स्पर्श किया जाता है) ऐसा रूप होता है।

★ अथ क्तप्रत्यय-प्रकरणम् ★

९२९—क्तेनाऽप्फुण्णादयः। ८। ४। २५८। अप्फुण्णादयः शब्दा आक्रमि-प्रभृतीनां धातूनां स्थाने क्तेन सह वा निपात्यन्ते। अप्फुण्णो, आक्रान्तः। उक्कोसं, उत्कृष्टम्। फुडं, स्पष्टम्। वोलीणो, अतिक्रान्तः। वोसट्टो, विकसितः। निसुट्टो, निपातितः। लुग्गो, रुग्णः। ल्हिक्को, नष्टः। पम्हुट्ठो, प्रमृष्टः प्रमुषितो वा। विढत्तं, अर्जितम्। छित्तं, स्पृष्टम्। निमिअं, स्थापितम्। चक्खिअं, आस्वादितम्। लुअं, लूनम्। जढं, त्यक्तम्। झोसिअं, क्षिप्तम्। निच्छूढं, उद्वृत्तम्।

पल्हत्थं पलोट्टं च पर्यस्तम्। ह्रीसमणं, हेषितम्। इत्यादि।

★ अथ निपातानां प्रकरणम् ★

प्रकृति-प्रत्यय-विभागमन्तरं विनैव सिद्धरूपस्य कथनं निपातः। निपाते प्रकृति-प्रत्ययोर्विभागो न प्रदर्श्यते, इति भावः। अथवा निपतन्ति उच्चावचेष्वर्थेष्विति निपाताः। ४४५ सूत्रे निपाताः निरूपिताः। प्रस्तुत-सूत्रेऽपि सूत्रकारेण निपाताः निरूप्यन्ते—

९२१—१—आक्रान्तः। आङ्पूर्वकः क्रमुधातुः कान्तौ। आक्रम्+क्त (त)। संस्कृतनियमेन आक्रान्त+सि इति जाते। ९२१ सू० आक्रान्तस्य अप्फुण्ण इति निपात्यते, सि-प्रत्यये, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे अप्फुण्णो* इति भवति। २—उत्कृष्टम्। उत्पूर्वकः कृषधातुः कर्षणे। उत्कृष+क्त, संस्कृतभाषा-नियमेन-उत्कृष्ट+सि इति जाते। प्रस्तुतसूत्रेण उत्कृष्टस्य उक्कोस इति निपातिते, सि-प्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे उक्कोसं इति भवति। एवमेव—३—स्पष्टम्। स्पर्श् बाधन-स्पर्शयोः। स्पर्श्+क्त। संस्कृतनियमेन स्पष्ट+सि, इति जाते, प्रस्तुतसूत्रेण स्पष्ट-शब्दस्य फुड इति निपात्यते, पूर्ववदेव फुडं इति भवति। ४—अतिक्रान्तः। अतिक्रमु कान्तौ। अतिक्रम्+क्त। संस्कृतभाषा-नियमेन अतिक्रान्त+सि इति जाते। अतिक्रान्तस्य वोलीण इति निपातिते, पूर्ववदेव वोलीणो। ५—विकसितः। विपूर्वक-कसधातुः विकासे। विकस्+क्त। संस्कृतभाषा-नियमेन विकसित+सि इति जाते। विकसितस्य वोसट्ट इति निपातिते, पूर्ववदेव वोसट्टो। ६—निपातितः। निपूर्वक-पत्धातुः निपतने। निपत्+क्त। संस्कृत-नियमेन निपातित+सि इति जाते। निपातितस्य निसुट्ट इति निपातिते, पूर्ववदेव निसुट्टो। ७—रुग्णः। रुज् रोगे। रुज्+क्त। संस्कृत-नियमेन रुग्ण+सि इति जाते। रुग्णस्य लुग्ग इति निपातिते, पूर्ववदेव लुग्गो, ८—नष्टः। नश् नाशे। नश्+क्त। संस्कृत-नियमेन नष्ट+सि इति जाते। नष्टस्य ल्हिक्क इति निपातिते, पूर्ववदेव ल्हिक्को इति भवति। ९—प्रमृष्टः। प्रपूर्वकः मृजू शुद्धौ। प्रमृज्+क्त। संस्कृत-नियमेन प्रमृष्ट+सि इति जाते, प्रमृष्टस्य पम्हुट्ठ इति निपातिते, पूर्ववदेव पम्हुट्ठो, १०—प्रमुषितः। प्रपूर्वको मुष्धातुः चौर्ये। प्रमुष्+क्त। संस्कृत-नियमेन प्रमुषित+सि इति जाते, प्रमुषितस्य पम्हुट्ठ इति निपात्यते, पूर्ववदेव पम्हुट्ठो, ११—अर्जितम्। अर्ज् उपार्जने। अर्ज्+क्त। संस्कृत-नियमेन अर्जित+सि इति जाते, अर्जितस्य विढत्त इति निपातिते, पूर्ववदेव सेर्मकारे, मकारस्यानुस्वारे विढत्तं, १२—स्पृष्टम्। स्पृश् स्पर्शे। स्पृश्+क्त। संस्कृत-नियमेन स्पृष्ट+सि इति जाते, स्पृष्टस्य छित्त इति निपातिते, पूर्ववदेव छित्तं, १३—स्थापितम्। ष्ठा-स्था गतिनिवृत्तौ। स्था+णिच्+क्त। संस्कृत-नियमेन स्थापित+सि इति जाते, स्थापितस्य निमिअ इति निपातिते, पूर्ववदेव निमिअं, १४—आस्वादितम्। आङ्पूर्वकः स्वद् आस्वादने। आस्वद्+क्त। संस्कृत-नियमेन आस्वादित+सि इति जाते, आस्वादितस्य चक्खिअ इति निपातिते, पूर्ववदेव चक्खिअं इति भवति। १५—लूनम्। लूञ् छेदने। लू+क्त, संस्कृत-नियमेन लून+सि इति जाते, लूनस्य लुअ इति निपातिते, पूर्ववदेव लुअं, १६—त्यक्तम्। त्यज् त्यागे। त्यज्+क्त। संस्कृत-नियमेन त्यक्त+सि इति जाते, त्यक्तस्य जढ इति निपातिते, पूर्ववदेव जढं, १७—क्षिप्तम्। क्षिप् क्षेपे। क्षिप्+क्त। संस्कृत-नियमेन क्षिप्त+सि इति जाते, क्षिप्तस्य झोसिअ इति निपातिते, पूर्ववदेव झोसिअं, १८—उद्वृत्तम्। उत्पूर्वकः वृतुधातुः उद्वर्तने। उद्वृत्+क्त। संस्कृत-नियमेन उद्वृत्त+सि इति जाते। उद्वृत्तस्य निच्छूढ इति निपातिते, पूर्ववदेव निच्छूढं, १९—

*प्राकृतव्याकरणे निपाता अव्ययेषु न संगृह्यन्तेऽतएवात्र सिप्रत्ययस्य लोपाभावो बोध्यः। एवमेवाग्रेऽप्यूह्यम्।

पर्यस्तम् । परिपूर्वकः असुधातुः क्षेपे । पर्यस+क्त । संस्कृत-नियमेन पर्यस्त+सि इति जाते, पर्यस्तस्य पल्हत्थ, पलोट्ट इति निपात द्वये जाते, पूर्ववदेव **पल्हत्थं, पलोट्टं** इति भवति । २०—**हेषितम्** । हेष्-धातुः अव्यक्ते । हेष्+क्त । संस्कृत-नियमेन हेषित+सि इति जाते, हेषितस्य हीसमण इति निपातिते, पूर्ववदेव **हीसमणं** इति भवति ।

★ अथ निपात-प्रकरण ★

निपात शब्द से उन शब्दों का परिग्रहण किया जाता है जिन की उत्पत्ति के किसी नियम का पता न हो तथा जो व्याकरण शास्त्र के नियमोपनियमों से सिद्ध नहीं होते। ऐसे शब्दों का निर्देश पहले ४४५ वें सूत्र में किया जा चुका है। प्रस्तुत सूत्र में भी कुछ एक निपातों का निर्देश किया जा रहा है—

९२९—आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक क्रमि आदि धातुओं को क्त प्रत्यय के साथ ही अप्फुण्ण आदि आदेश निपात से ही हो जाते हैं। भाव यह है कि 'अप्फुण्ण' आदि शब्दों की रचना में व्याकरण के किसी सूत्र को लगाने की आवश्यकता नहीं है अर्थात् ये स्वतः सिद्ध होते हैं। जैसे—१—**आक्रान्तः**=अप्फुण्णो (दबाया हुआ), २—**उत्कृष्टम्**=उक्कोसं (अधिक से अधिक, महान्), ३—**स्पष्टम्**=फुडं (व्यक्त, साफ), ४—**अतिक्रान्तः**=वोलीणो (व्यतीत हुआ), ५—**विकसितः**=वोसट्टो (खिला हुआ), ६—**निपातितः**=निसुट्टो (गिराया हुआ), ७—**रुग्णः**=लुग्गो (रोगी), ८—**नष्टः**=ल्हिक्को (नाश को प्राप्त हुआ), ९—**प्रमृष्टः** अथवा **प्रमुषितः**=पम्हुट्ठो (मांजा हुआ अथवा चोरी किया हुआ), **पम्हुट्ठो** शब्द **प्रमृष्ट** और **प्रमुषित** दोनों शब्दों से निष्पन्न हो जाता है। १०—**अर्जितम्**=विढत्तं (कमाया हुआ), ११—**स्पृष्टम्**=छित्तं (छुआ हुआ), १२—**स्थापितम्**=निमिअं (रखा हुआ), १३—**आस्वादितम्**=चक्खिअं (चखा हुआ), १४—**लूनम्**=लुअं (काटा हुआ), १५—**त्यक्तम्**=जढं (छोड़ा हुआ), १६—**क्षिप्तम्**=झोसिअं (फेंका हुआ), १७—**उद्वृत्तम्**=निच्छूढं (निकला हुआ), १८—**पर्यस्तम्**=पल्हत्थं और पलोट्टं (दूर रखा हुआ, फेंका हुआ), **पर्यस्त** शब्द के **पल्हत्थ** और **पलोट्ट** ये दो रूप बनते हैं। १९—**हेषितम्**=हीसमणं (खंखारा हुआ, घोड़े के शब्द जैसा किया हुआ), यहां पर '**अप्फुण्ण**' आदि निपातों का वर्णन किया गया है। संस्कृतव्याकरण में निपातों को अव्यय मान कर जैसे उनसे सि आदि विभक्तियों का लोप किया जाता है, वैसी स्थिति प्राकृत-व्याकरण की नहीं है। क्योंकि प्राकृत-व्याकरण ४४६ वें सूत्र से लेकर ४८९ वें सूत्र तक ही अव्ययों का विधान करता है। ४४६ वें सूत्र में स्पष्ट लिखा है कि "**इतः परं ये वक्ष्यन्ते आ पादसमाप्तेस्तेऽव्ययसंज्ञा ज्ञातव्याः ।**" इस से स्पष्ट है कि उक्त ४४ सूत्रों में वर्णित शब्द ही अव्ययसंज्ञक होते हैं, अन्य नहीं। इन शब्दों में ४४५ वें सूत्र में तथा ९२९ वें सूत्र में पठित किसी भी शब्द का उल्लेख नहीं है। अतः प्राकृत-व्याकरण निपातों को अव्यय स्वीकार नहीं करता। यही कारण है कि निपातों से सि आदि विभक्तियों का लोप नहीं होता। वैसे अव्ययपदों से तो स्यादि विभक्तियों का लोप प्राकृत-व्याकरण को भी इष्ट है। इसीलिए ४४६ वें सूत्र से लेकर ४८९ वें सूत्र तक जितने भी अव्ययपद पढ़े गए हैं, उन सब से स्यादि प्रत्ययों का लोप किया गया है।

★ अथ धातूनामनेकार्थकता ★

९३०—धातवोऽर्थान्तरेऽपि । ८ । ४ । २५९ । उक्तादर्थादर्थान्तरेऽपि धातवो वर्तन्ते ।

बलि: प्राणने पठितः, खादनेऽपि वर्तते। बलइ,खादति,प्राणनं करोति वा। एवं कलिः संख्याने, संज्ञानेऽपि, कलइ। जानाति, संख्यानं करोति वा। रिगिर्गतौ, प्रवेशेऽपि। रिगइ, प्रविशति, गच्छति वा। कांक्षतेर्वम्फ आदेशः आक्षुते। वम्फइ। अस्यार्थः— इच्छति, खादति वा। फक्कते-स्थक्क आदेशः। थक्कइ, नीचां गतिं करोति, विलम्बयति वा। विलप्युपालम्भ्योर्झङ्ख आदेशः। झङ्खइ। विलपति, उपालभते, भाषते वा। एवं पडिवालेइ, प्रतीक्षते, रक्षति वा। केचित् केचिदुपसर्गेर्नित्यम्। पहरइ, युध्यते। संहरइ, संवृणोति। अणुहरइ, सदृशो भवति। नीहरइ, पुरीषोत्सर्गं करोति। विहरइ, क्रीडति। आहरइ, खादति। पडिहरइ, पुनः पूरयति। परिहरइ, त्यजति। उवहरइ, पूजयति। वाहरइ,आह्वयति। पवसइ, देशान्तरं गच्छति। उच्चुपइ, चटति। उल्लुहइ, निःसरति।

※ इति प्राकृतभाषा-विवेचनम् ※

★ अथ धातूनामनेकार्थकता ★

संस्कृत-भाषायां यथा "धातवोऽनेकार्थकाः भवन्ति" एवमेव प्राकृत-भाषायामपि धातूनामनेकार्थकता समुपलभ्यते। सैवाऽत्र सूत्रकारेण निर्दिश्यते—

९३०—बह्वर्थाश्चेतरेऽपि। धातुपाठे ये धातवः येष्वर्थेषु पठिताः,तेष्वर्थेषु तु तेषां प्रयोगो भवत्येव, परन्तु ९३० सूत्रेण तेषां धातूनां प्रयोगोऽन्येष्वपि अर्थेषु क्रियते इति भावः। यथा—बलि-धातुः प्राणने-प्राणधारणेऽर्थे धातुपाठे पठितः,परन्तु प्रस्तुतसूत्रेण खादनार्थेऽप्यस्य प्रयोगो जायते, अत एवोच्यते अनेकार्था हि धातवः। १—बलति। बल् प्राणने-प्राण-धारणे। बल्+तिव्। ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे बलइ खादति, प्राणधारणं करोति, जीवति वेत्यर्थः। एवमेव—२—कलति। कलिधातुः संख्याने। कल्+तिव्। पूर्ववदेव कलइ इति भवति। कल्धातुः संख्यानार्थकः, परन्तु संज्ञानेऽपि अस्य प्रयोगो भवति। अतः कलइ जानाति, संख्यानं करोति वेत्यर्थः। ३—रिङ्गति। रिगिधातुः गत्यर्थकः, परन्तु प्रवेशार्थेऽप्यस्य प्रयोगो भवति। यथा—रिङ्गति। रिगि गतौ। रिग्+तिव्, पूर्ववदेव रिगइ प्रविशति, गच्छति वेत्यर्थः। ४—कांक्षते। कांक्ष्-धातुः इच्छार्थकः परन्तु खादनेऽप्यस्य प्रयोगो जायते। यथा—कांक्ष् इच्छायाम्। कांक्ष्+ते। ८६३ सू० कांक्ष्धातोः स्थाने वम्फ इत्यादेशे,६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे वम्फइ इच्छति, खादति वेत्यर्थः। ५—फक्कति। फक्क-धातु अघोगत्यर्थकः, परन्तु विलम्बेऽपि प्रयुज्यते। फक्क्+तिव्। ७५८ सू० फक्क्धातोः थक्क इत्यादेशे, पूर्ववदेव थक्कइ नीचैर्गच्छति, विलम्बयति वेत्यर्थः। ६—विलपति। ७—उपालम्भते। विलप्धातुः रोदने, उप-आङ्-पूर्वकः लम्भ्-धातुः उपालंभे। विलप्+तिव्, उपलम्भ्+ते। ८१९ सू० विलप्धातोः स्थाने झङ्ख इत्यादेशे, ८२७ सू० उपालम्भ्धातोरपि झङ्ख इत्यादेशे, पूर्ववदेव झंखइ इति भवति। झंखस्य प्रयोगः विलापे, उपालंभे वा भवति, परन्तु प्रस्तुत-सूत्रबलेन एतस्य भाषणेऽपि प्रयोगो जायते। झंखइ विलपति, उपालभते, भाषते वेत्यर्थः। ८—प्रतिपालयति। प्रतिपूर्वकः पाल्धातुः प्रतीक्षायां वर्तते किन्तु प्रस्तुतसूत्रबलेनैतस्य प्रयोगः रक्षणेऽपि जायते। प्रतिपाल्+तिव्। ३५० सू० रेफलोपे,२०६ सू० तकारस्य डकारे,२३१ सू० पकारस्य वकारे,९१० सू० अकारागमे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे पडि-

वालेइ प्रतीक्षते, रक्षति वेत्यर्थः । **केचित् कैश्चिदुपसर्गैर्नित्यम्** । केचिद् धातवः कैश्चिदुपसर्गैः सह सम्मीलत्यार्थान्तिरे नित्यं प्रयुज्यन्ते । यथा— हृञ्धातुः हरणार्थकः, परन्तु प्र-उपसर्गपूर्वकस्तु नित्यरूपेण युद्धार्थे प्रयुज्यते । एवमग्रेतनेष्वपि प्रयोगेषु बोध्यम् । १—**प्रहरति** । प्रहृ प्रहरणे । प्रहृ+तिव् । ३५० सू० रेफलोपे,१०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे,पूर्ववदेव तिव इचादेशे **पहरइ** इति भवति, युध्यत इत्यर्थः । २—**संहरति** । सम्पूर्वकः हृ-धातुः सम्वरणे । संहृ+तिव्=**संहरइ** सम्वरणं करोति, **संहरइ** इत्यस्य संहारं करोत्ययमर्थोऽपि भवति । ३—**अनुहरति** । अनुपूर्वकः हृधातुः अनुहरणे-अनुकरणे । अनुहृ+तिव् । २२८ सू० नकारस्य णकारे—**अणुहरइ** सदृशी भवति, अथवा अनुकरणं करोतीत्यर्थः । ४—**निर्हरति** । निर्-पूर्वकः हृधातुः पुरीषोत्सर्गकरणे । निर्हृ+तिव् । ११ सू० रेफलोपे, ९३ सू० इकारदीर्घे—**नीहरइ** पुरीषोत्सर्ग-मलोत्सर्गं करोतीत्यर्थः । ५—**विहरति** । विपूर्वकः हृधातुः क्रीडायाम् । विहृ+तिव् । पूर्ववदेव **विहरइ** क्रीडति, विहरणं करोति वेत्यर्थः । ६—**आहरति** । आङ्पूर्वकः हृधातुः आहारे । आहृ+तिव्=**आहरइ** आहारं करोतीत्यर्थः । ७—**प्रतिहरति** । प्रतिपूर्वकः हृधातु पुनः पूरणे, प्रतिहारे-निवारणे वा । प्रतिहृ+तिव् । रेफलोपे, तकारस्य डकारे, पूर्ववदेव **पडिहरइ** इति भवति । पुनः पूरयति, प्रतिहारं करोति वेत्यर्थः । ८—**परिहरति** । परिपूर्वकः हृधातुः परिहारे-त्यागे । परिहृ+तिव्=**परिहरइ** त्यजतीत्यर्थः । ९—**उपहरति** । उपपूर्वकः हृधातुः उपहारे,पूजायाम् । उपहृ+तिव् । २३१ सू० पकारस्य वकारे **उवहरइ** (पूजयति) इति भवति । १०—**व्याहरते** । वि-आङ्-पूर्वकः हृधातुः आह्वाने । व्याहृ+तिव् । ३४९ सू० यकारलोपे,७४७ सूत्र-वदेव **वाहरइ** इति भवति,आह्वयतीत्यर्थः । ११—**प्रवसति** । प्रपूर्वकः वस्धातु प्रवासे देशान्तरगमने । प्रवस्+तिव् । ३५० सू० रेफलोपे, पूर्ववदेव **पवसइ** देशान्तरं गच्छतीत्यर्थः । १२—**उच्चुपति** । उत्पूर्वकः चुपधातुः आरोहणे-चटने । उच्चुप्+तिव् । पूर्ववदेव **उच्चुपइ** चटतीत्यर्थः, १३—**उल्लुहति** । उत्पूर्वकः लुह् धातुः निःसरणे । उल्लुह्+तिव् । पूर्ववदेव **उल्लुहइ** निःसरतीत्यर्थः । **इति प्राकृतभाषा-विवेचनम्** । आचार्यश्रीहेमचन्द्रेण ९३० सूत्रैः प्राकृत-भाषा-विधिविधानस्य निरूपणं कृतमस्ति, ९३० सूत्रस्य समाप्तौ प्राकृत-भाषा-विवेचनमपि समाप्तिमेतीति भावः ।

※ प्राकृत-भाषायाः विवरणं समाप्तम् ※

★ धातुओं का अर्थान्तर प्रकरण ★

संस्कृत-भाषा में प्रायः कहा जाता है—"**अनेकार्थका हि धातवः**" अर्थात् धातु अनेकार्थक (अनेक अर्थ वाले) होते हैं । किन्तु संस्कृत-भाषा के समान प्राकृत-भाषा में भी धातु अनेकार्थक पाए जाते हैं । धातु अपने अर्थ का बोधक होता हुआ भी अर्थान्तर में कैसे परिवर्तित हो जाता है ? इसी तथ्य को प्रस्तुत प्रकरण में निर्दिष्ट किया जा रहा है—

९३० —धातुपाठ में धातुओं के जो अर्थ दिए गए हैं,उनके उनसे भिन्न अर्थ भी होते हैं । जैसे—१—**बलि** धातु धातुपाठ में प्राणन (प्राण धारण करना) इस अर्थ में पढ़ा गया है किन्तु इससे भिन्न इसका **खादन** (खाना), यह अर्थ भी होता है । जैसे—**बलति**=बलइ=खादति, प्राणनं करोति वा=वह खाता है अथवा वह प्राण धारण करता है । इसी प्रकार २—**कलि** धातु का अर्थ धातुपाठ में **संख्यान** (आवाज करना, गणना करना) है,किन्तु इससे भिन्न इस का **संज्ञान** (जानना) अर्थ भी होता है । जैसे—**कलति**=कलइ=जानाति,संख्यानं करोति वा=वह जानता है अथवा संख्यान (गणना) करता करता है । ३—**रिगि** धातु का धातुपाठ में गति (जाना) अर्थ है, किन्तु इस से भिन्न—**प्रवेश** (दाखिल

होना) अर्थ भी होता है। जैसे—रिङ्खति=रिंगइ=प्रविशति, गच्छति वा=वह प्रवेश करता है,अथवा वह गमन करता है। ४—कांक्षि धातु का अर्थ धातुपाठ में इच्छा करना होता है, किन्तु इसके अलावा इसका—खाना यह अर्थ भी होता है। जैसे—कांक्षते=वम्फइ=इच्छति, खादति वा=वह चाहता है, इच्छा करता है अथवा वह खाता है। यहां कांक्षि धातु को ८६३ सूत्र से 'वम्फ' यह आदेश किया गया है। ५—फक्क धातु का धातुपाठ में 'नीचे जाना' यह अर्थ होता है, किन्तु इससे भिन्न इसका—विलम्ब (देरी करना) यह अर्थ भी होता है। जैसे—फक्कति=थक्कइ=नीचां गति करोति, विलम्बयति वा=वह नीचे जाता है, अथवा वह विलम्ब करता है। यहां फक्क धातु के स्थान में ७५८ सूत्र से थक्क आदेश किया गया है। ६—वि-उपसर्ग-पूर्वक लप् धातु रोने अर्थ में तथा वि आङ् (आ) उपसर्ग पूर्वक लभ् धातु उपालम्भ इस अर्थ में प्रयुक्त होता है,किन्तु इन दोनों धातुओं का प्रयोग 'भाषण करना' इस अर्थ में भी हो जाता है। जैसे—विलपति, उपालम्भते=झङ्खइ=विलपति, उपालम्भते भाषते वा—वह रोता है, वह उपालंभ देता है, वह भाषण करता है। इस तरह झंखइ इस पद के तीन अर्थ हो जाते हैं। ८१९ सूत्र से विलप् के स्थान में तथा ८२७ सूत्र से उपालम्भ् के स्थान में झङ्ख यह आदेश किया गया है। इसी प्रकार ७—प्रतिपालयति=पडिवालेइ=प्रतीक्षते, रक्षति वा=वह प्रतीक्षा करता है अथवा वह रक्षा करता है। प्रति उपसर्ग पूर्वक पाल् धातु प्रतीक्षा अर्थ में व्यवहृत होता है, किन्तु प्रस्तुतसूत्र के निर्देश से इसका "रक्षा करना" यह अर्थ भी होता है। इस तरह यह सूत्र प्राकृत-भाषा में धातुओं को द्वयर्थक बना डालता है।

कई एक आचार्यों का मत है कि यदि धातुओं के साथ कई एक उपसर्गों का संयोजन हो तो उनका अर्थ वैकल्पिक (अनेक अर्थों का बोधक) नहीं रहता है, किन्तु उन का नित्य ही अर्थान्तर (दूसरा अर्थ) हो जाता है। जैसे—१—प्रहरति=पहरइ (वह युद्ध करता है), हृ धातु का अर्थ हरण (चोरी) करना होता है, किन्तु प्र उपसर्ग का योग होने से इस अर्थान्तर हो गया और यह अर्थान्तर वैकल्पिक नहीं रहता है किन्तु नित्य ही माना जाता है। इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए। २—संहरति=संहरइ (वह संवरण-कुभाव करता है), संहरति का—वह संहार करता है, ऐसा अर्थ भी होता है। ३—अनुहरति=अणुहरइ (वह समान होता है), ४—निहरति=नीहरइ (वह मल-त्याग करता है), ५—विहरति=विहरइ (वह क्रीडा करता है), ६—आहरति=आहरइ (वह आहार करता है, वह खाता है), ७—प्रतिहरति=पडिहरइ (फिर से परिपूर्ण करता है),८—परिहरति=परिहरइ (वह परिहार करता है,वह छोड़ता है), ९—उपहरति=उवहरइ (वह पूजा करता है, वह उपहार देता है), १०—व्याहरति=वाहरइ (वह बुलाता है), ११—प्रवसति=पवसइ (वह प्रवास करता है, वह देशान्तर (दूर अन्य देश को) जाता है), १२—उच्चुपति=उच्चुपइ (वह चढ़ता है), १३—उल्लुहति=उल्लुहइ (वह निकलता है) इस तरह उपसर्गों के संनियोग (सामीप्य) से धातुओं के अर्थ परिवर्तित हो जाते हैं।

पहले सूत्र से लेकर ९३० सूत्र तक ऊपर जो कुछ लिखा गया है, यह सब प्राकृत-भाषा का विधि-विधान था। ९३० सूत्रों द्वारा आचार्य श्री हेमचन्द्र जी ने प्राकृत-भाषा-सम्बन्धी नियमों तथा उपनियमों का निर्देश कर दिया है। इस सूत्र की समाप्ति के साथ ही प्राकृत-भाषा-सम्बन्धी विवेचन समाप्त होता है।

प्राकृत-भाषा का हुआ, परिपूरण व्याख्यान,

पढ़ो पढ़ाओ ध्यान से, विज्ञ बनो मुनि ज्ञान।

※ प्राकृतभाषा-विवेचन समाप्त ※

★ अथ शौरसेनी-भाषा-प्रकरणम् ★

६३१—तो दोऽनादौ शौरसेन्यामयुक्तस्य। ८। ४। २६०। शौरसेन्यां भाषायामनादावपदादौ वर्तमानस्य तकारस्य दकारो भवति, न चेदसौ वर्णान्तरेण संयुक्तो भवति। तदो पूरिद-पदिञ्ञेण मारुदिणा मन्तिदो। एतस्मात्। एदाहि, एदाओ। अनादाविति किम्? तथा करेध जधा तस्स राइणो अणुकम्पणीआ भोमि। अयुक्तस्येति किम्? मत्तो। अय्यउत्तो। असंभाविद-सक्कारं। हला सउन्तले!।

६३२—अधः क्वचित्। ८। ४। २६१। वर्णान्तरस्याधोवर्तमानस्य तस्य शौरसेन्यां दो भवति। क्वचिल्लक्ष्यानुसारेण। महन्दो। निच्चिन्दो। अन्देउरं।

६३३—वादेस्तावति। ८। ४। २६२। शौरसेन्यां तावच्छब्दे आदेस्तकारस्य दो वा भवति। दाव, ताव।

६३४—आ आमन्त्र्ये सौ वेनो नः। ८। ४। २६३। शौरसेन्यामिनो नकारस्य आमन्त्र्ये सौ परे आकारो वा भवति। भो कञ्चुइआ!। सुहिआ!। पक्षे भो तवस्सि!। भो मणस्सि!।

६३५—मो वा। ८। ४। २६४। शौरसेन्यामामन्त्र्ये सौ परे नकारस्य मो वा भवति। भो रायं!। भो विजयवम्मं!। सुकम्मं!। भयवं! कुसुमाउह!। भयवं!तित्थं पवत्तेह। पक्षे। सयल-लोअ-अन्तेआरि! भयव! हुदवह!।

६३६—भवद्भगवतोः। ८। ४। २६५। आमन्त्र्य इति निवृत्तम्। शौरसेन्यामनयोः सौ परे नस्य मो भवति। किं एत्थभवं हिदएण चिन्तेदि। एदु भवं। समणे भगवं महावीरे। पज्जलिदो भयवं हुदासणो। क्वचिदन्यत्रापि। मघवं पागसासणे। संपाइअवं सीसो। कयवं। करेमि, काहं च।

६३७—न वा र्यो य्यः। ८। ४। २६६। शौरसेन्यां र्यस्य स्थाने य्यो वा भवति। अय्यउत्त! पय्याकुलीकदम्हि। सुय्यो। पक्षे। अज्जो। पज्जाउलो। कज्ज-परवसो।

६३८—थो धः। ८। ४। २६७। शौरसेन्यां थस्य धो वा भवति। कधेदि, कहेदि। णाधो, णाहो। कधं, कहं। राज-पधो, राज-पहो। अपदादावित्येव। थामं। थेओ।

६३९—इह-हचोर्हस्य। ८। ४। २६८। इहशब्दसम्बन्धिनो मध्यमस्येत्थाहचौ [३. १४३] इति विहितस्य हचश्च हकारस्य शौरसेन्यां धो वा भवति। इध। होध। परित्तायध। पक्षे। इह। होह। परित्तायह।

९४०—भुवो भः । ८ । ४ । २६९ । भवतेर्हुकारस्य शौरसेन्यां भो वा भवति । भोदि, होदि, भुवदि, हुवदि, भवदि, हवदि ।

९४१—पूर्वस्य पुरवः । ८ । ४ । २७० । शौरसेन्यां पूर्वशब्दस्य पुरव इत्यादेशो वा भवति । अपुरवं नाडयं । अपुरवागदं । पक्षे । अपुव्वं पदं । अपुव्वागदं ।

९४२—क्त्व इय-दूणौ । ८ । ४ । २७१ । शौरसेन्यां क्त्वा-प्रत्ययस्य इय, दूण इत्यादेशौ वा भवतः । भविय, भोदूण, हुविय, होदूण । पढिय, पढिदूण । रमिय, रन्दूण । पक्षे । भोत्ता, होत्ता । पढित्ता । रन्ता ।

९४३—कृ-गमो डडुअः । ८ । ४ । २७२ । आभ्यां परस्य क्त्वा-प्रत्ययस्य डित् अडुअ इत्यादेशो वा भवति । कडुअ । गडुअ । पक्षे । करिय, करिदूण । गच्छिय, गच्छिदूण ।

९४४—दिरिचेचोः । ८ । ४ । २७३ । त्यादीनामाद्य-त्रयस्याद्यस्येचेचौ [३.१३९] इति विहितयोरिचेचोः स्थाने दिर्भवति । वेति निवृत्तम् । नेदि । देदि । भोदि, होदि ।

९४५—अतो देश्च । ८ । ४ । २७४ । अकारात्परयोरिचेचोः स्थाने देश्चकारात् दिश्च भवति । अच्छदे, अच्छदि । गच्छदे, गच्छदि । रमदे, रमदि । किज्जदे, किज्जदि । अत इति किम् ? वसुआदि । नेदि । भोदि ।

९४६—भविष्यति स्सिः । ८ । ४ । २७५ । शौरसेन्यां भविष्यदर्थे विहिते प्रत्यये परे स्सिर्भवति । हि-स्सा-हामपवादः । भविस्सिदि । करिस्सिदि । गच्छिस्सिदि ।

९४७—अतो ङसेर्डादो-डादू । ८ । ४ । २७६ । अतः परस्य ङसेः शौरसेन्यां आदो, आदु इत्यादेशौ डितौ भवतः । दूरादो य्येव दूरादु ।

९४८—इदानीमो दाणिं । ८ । ४ । २७७ । शौरसेन्यामिदानीमः स्थाने दाणिं इत्यादेशो भवति । अनन्तर-करणीयं दाणिं आणवेदु अय्यो ! । व्यत्ययत्वात् प्राकृतेऽपि । अन्नं दाणिं बोहिं ।

९४९—तस्मात्ताः । ८ । ४ । २७८ । शौरसेन्यां तस्माच्छब्दस्य ता इत्यादेशो भवति । ता जाव पविसामि । ता अलं एदिणा माणेण ।

९५०—मोऽन्त्याण्णो वेदेतोः । ८ । ४ । २७९ । शौरसेन्यामन्त्यान्मकारात् पर इदेतोः परयोर्णकारागमो वा भवति । इकारे । जुत्तं णिमं जुत्तमिणं । सरिसं णिमं, सरिसमिणं । एकारे । किं णेदं, किमेदं । एवं णेदं, एवमेदं ।

९५१—एवार्थे य्येव । ८ । ४ । २८० । एवार्थे य्येव इति निपातः शौरसेन्यां प्रयोक्तव्यः । मम य्येव बम्भणस्स । सो य्येव एसो ।

९५२—हञ्जे चेट्याह्वाने । ८ । ४ । २८१ । शौरसेन्यां चेट्याह्वाने हञ्जे इति निपातः प्रयोक्तव्यः । हञ्जे चदुरिके ! ।

९५३—हीमाणहे विस्मय-निर्वेदे । ८ । ४ । २८२ । शौरसेन्यां हीमाणहे इत्ययं णिपातो विस्मये निर्वेदे च प्रयोक्तव्यः । विस्मये । हीमाणहे जीवन्तवच्छा मे जणणी । निर्वेदे । हीमाणहे पलिस्सन्ता हगे एदेण निय-विधिणो दुव्ववसिदेण ।

९५४—णं नन्वर्थे । ८ । ४ । २८३ । शौरसेन्यां नन्वर्थे णमिति निपातः प्रयोक्तव्यः । णं अफलोदया । णं अय्य-मिस्सेहिं पुढमं य्येव आणत्तं । णं भवं मे अग्गदो चलदि । आर्षे वाक्यालङ्कारेऽपि दृश्यते । नमोऽत्थु णं । जया णं । तया णं ।

९५५—अम्महे हर्षे । ८ । ४ । २८४ । शौरसेन्यां अम्महे इति निपातो हर्षे प्रयोक्तव्यः । अम्महे एआए सुम्मिलाए सुपलिगढिदो भवं ।

९५६—हीही विदूषकस्य । ८ । ४ । २८५ । शौरसेन्यां हीही इति निपातो विदूषकाणां हर्षे द्योत्ये प्रयोक्तव्यः । हीही भो ! संपन्ना मणोरधा पिय-वयस्सस्स ।

९५७—शेषं प्राकृत-वत् । ८ । ४ । २८६ । शौरसेन्यामिह प्रकरणे यत्कार्यमुक्तं ततोऽन्यच्छौरसेन्यां प्राकृतवदेव भवति । दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ [१.४] इत्यारभ्य 'तो दोऽनादौ शौरसेन्यामयुक्तस्य [४.२६०], एतस्मात्सूत्रात्प्राग् यानि सूत्राणि एषु यान्युदाहरणानि तेषु मध्ये अमूनि तदवस्थान्येव शौरसेन्यां भवन्ति, अमूनि पुनरेवंविधानि भवन्तीति विभागः प्रतिसूत्रं स्वयमभ्यूह्य दर्शनीयः । यथा—अन्दावेदी । जुवदि-जणो । मणसिला । इत्यादि ।

※ समाप्तं शौरसेनी-भाषा-प्रकरणम् ※

★ अथ शौरसेनी-भाषा-प्रकरणम् ★

जगद्गुरुं महावीरमभिवन्द्य जिनेश्वरम् ।
प्राकृतानन्तरं भाषा, शौरसेनी विविच्यते ॥

सिद्धहेमशब्दानुशासनस्याष्टमाध्याये प्राकृत-शौरसेनी-मागधी-पैशाची-चूलिकापभ्रंशानां षड्विधानां भाषाणां विवरणं समुपलभ्यते, तत्र प्रथमपादादारभ्य इतः पर्यन्तं प्राकृतभाषायाः विवेचनं कृतम्, साम्प्रतं शौरसेनीभाषाविषये यद्विवेचनीयं तद्विवृणोति सूत्रकारः । वयमपि बालमनोरमाख्यायां टीकायां शौरसेनीभाषाशब्दानां प्रक्रियानुवादमुपक्रमामहे ।

९३१—ततः । अव्ययपदमिदम् । ९३१ सू० द्वितीयतकारस्य दकारे, ३७ सू० विसर्गस्य स्थाने डो (ओ) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे तदो इति भवति । पूरितप्रतिज्ञेन । पूरिता प्रतिज्ञा येन सः, तेन । पूरितप्रतिज्ञ+टा । प्रस्तुतसूत्रेण उभयत्र तकारस्य दकारे, ३५० सू० रेफलोपे, १११८ सू० भाषाश्रयत्वे कृते, ९६४ सू० ज्ञस्य ञ्ञ इत्यादेशे, ४९५ सू० टास्थाने ण इत्यादेशे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे

पूरिदपदिण्णेण १७७ सू० णकारस्य नकारे पूरिदपदिण्णेन इत्यपि भवति । मारुदिना । मरुतोऽपत्यं मारुतिः-हनुमान् । मारुति+टा । तकारस्य दकारे, ५१२ सू० टास्थाने णा इत्यादेशे मारुदिणा णकारस्य नकारे मारुदिना इत्यपि भवति । मन्तिदः । मन्त्रित+सि । रेफलोपे, तकारस्य दकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे मन्तिदो इति भवति । एतस्मात् । एतद्+ङसि । तकारस्य दकारे, ११ सू० दकारलोपे, ४९७ सू० ङसेः स्थाने हि,दो इत्यादेशौ, ५०१ सू० अकारस्य आकारे एदाहि एदादो १७७ सू० दकारलोपे एदाओ इति भवति । अनादाविति किम् ? । न आदौ, अनादौ । अनादौ वर्तमानस्यैव तकारस्य दकारो भवति, नत्वादिभूतस्य तकारस्यापि । यथा—तथा । अव्ययपदमिदम् । आदि-भूतत्वात्तकारस्य दकारो न जातः । १३८ सू० थकारस्य धकारे तधा इति भवति । कुरुत । डुकृञ्(कृ)करणे । कृ+त । इत्यत्र ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे, ६३२ सू० त इत्यस्य ह्‌ (ह) इत्यादेशे, १३९ सू० हकारस्य धकारे करेध इति भवति । यथा । अव्ययपदमिदम् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, थकारस्य धकारे जधा इति भवति । तस्य—तस्स, प्रक्रिया ५५२ सूत्रे ज्ञेया । राज्ञः । राजन्+ङस् । ५३९ सू० ङसः स्थाने णो इत्यादेशे, ५४१ सू० जकारस्य इकारे, ११ सू० नकारलोपे राइणो इति भवति । अनुकम्पनीया । अनुकम्पनीया+सि । २२८ सू० उभयत्र नकारस्य णकारे, १७७ सू० यकारस्य लोपे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे अणुकम्पणीआ इति भवति । भवामि । भू सत्तायाम् । भू+मिप् । ७३१ सू० भूधातोः हो इत्यादेशे, ९४० सू० हकारस्य भकारे, ६३० सू० मिपः स्थाने मि इत्यादेशे भोमि इति भवति । अयुक्तस्येति किम् ? प्रस्तुतसूत्रेण अयुक्तस्य-असंयुक्तस्यैव तकारस्य दकारो भवति, नान्यथा । यथा—मत्तः । तकारस्य संयुक्तत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे मत्तो इति भवति । आर्यपुत्रः । आर्यपुत्र+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १३७ सू० र्यस्य य्य इत्यादेशे, १७७ सू० यकारस्य लोपे, ३५० सू० रेफलोपे ३६० सू० तकारद्वित्वे, पूर्ववदेव अय्यउत्तो इति भवति । असंभावितसत्कारम् । असंभावितः-संभावनाशून्यः सत्कारो यस्य, तद् । असंभावितसत्कार+सि । तकारस्य दकारे, ३४८ सू० तकारलोपे, ३६० सू० ककारद्वित्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे असंभाविदसक्कारं इति भवति । हे शकुन्तले ! । ४६६ सू० सम्बोधने हला इत्यस्य प्रयोगो भवति । शकुन्तला+सि । २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० ककारलोपे, ५३० सू० आकारस्य एकारे, १ । १ । ३७ । सू० सेरिकार-लोपे, १० सू० सकारलोपे सउन्तले ! इति भवति । अत्रापि तकारस्य संयुक्तत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः ।

६३२—वर्णान्तरस्याधोवर्तमानस्य । अन्यो वर्णः वर्णान्तरं तस्य, अधोवर्तमानस्य, संयुक्तवर्णयोर्मध्ये अधःस्थितस्य-पश्चाद्वर्तिनः, न तु पूर्ववर्तिनः तकारस्येति भावः । क्वचिल्लक्ष्यानुसारेण । प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिः क्वचित्-कस्मिंश्चित् स्थले एव लक्ष्यानुसारेण-प्रयोगानुसारेण भवति, नतु सर्वत्रेति भावः । यथा—महान् । मह्+शतृ । ९१० सू० अकारस्य आगमे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, सि-प्रत्यये, ९३२ सू० अधोवर्तमानस्य-पश्चाद्वर्तिनः तकारस्य दकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे महन्दो इति भवति । निश्चिन्तः । निश्चिन्त+सि । ३४९ सू० शकारलोपे, ३६० सू० चकारद्वित्वे, प्रस्तुतसूत्रेण तकारस्य दकारे, पूर्ववदेव णिच्चिन्दो इति भवति । अन्तःपुरम्—अन्तेउरं, प्रक्रिया ६० सूत्रे ज्ञेया । प्रस्तुतसूत्रेण तकारस्य दकारे अन्देउरं इति भवति ।

६३३—तावत् । अव्ययपदमिदम् । ९२३ सू० तकारस्य स्थाने वैकल्पिके दकारे, ११ सू० तकारस्य लोपे दाव,ताव इति भवति ।

६३४—भो । अव्ययपदमिदं संस्कृततुल्यमेव शौरसेन्यां प्रयुज्यते । कञ्चुकिन् ! । कञ्चुकिन्+सि ।

१७७ सू० द्वितीय-ककारस्य लोपे, ९३४ सू० नकारस्य वैकल्पिके आकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **कञ्चुइआ** ! इति भवति । **सुखिन्** !। सुखिन्+सि। १८७ सू० खकारस्य हकारे, नकारस्य वैकल्पिके आकारे, सेर्लोपे-**सुहिआ** ! इति भवति । **पक्षे** । प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावपक्षे । **भो तपस्विन्** !। तपस्विन्+सि। २३१ सू० पकारस्य वकारे, ३५० सू० वकारलोपे, ३६० सू० सकारस्य द्वित्वे, ११ सू० नकारलोपे, सेर्लोपे, **तवस्सि** ! इति भवति । **भो मनस्विन्** !। मनस्विन्+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे **मणस्सि** ! इति तवस्सिवत्-साध्यम् । वैकल्पिकत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः।

९३५—भो ! अव्ययपदमिदं संस्कृत-तुल्यमेव शौरसेन्यां प्रयुज्यते । **राजन्** !। राजन्+सि। १७७ सू० जकारलोपे, १८० सू० यकारविशिष्टेऽकारे, ९३५ सू० नकारस्य वैकल्पिके मकारे; २३ सू० मकारस्य अनुस्वारे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **रायं** ! इति भवति । **भो विजयवर्मन्** !। विजयवर्मन्+सि। १७७ सू० जकारस्य लोपे,३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे,नकारस्य वैकल्पिके मकारे,२३ सू० मकारानुस्वारे,सेर्लोपे **विजयवम्मं** ! इति भवति । **सुकर्मन्** !। शोभनं कर्म यस्य सः, तत्सम्बोधनम् । सुकर्मन्+सि। विजय-वम्मं-वदेव **सुकम्मं** ! इति साध्यम् । एवमेव **भगवन्** !। भगवद्+सि। संस्कृतनियमेन भगवन्+सि इति जाते, १७७ सू० गकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ—**भयवं** ! इति भवति । **कुसुमायुध** !। कुसुमान्येव आयुधानि यस्य सः, तत्सम्बोधनम् । कुसुमायुध+सि। इत्यत्र १७७ सू० यकारलोपे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, सेर्लोपे **कुसुमाउह** ! इति भवति । **भगवन्**!। भगवद्+सि=**भयवं**! इति पूर्ववदेव साध्यम् । **तीर्थम्** । तीर्थ+अम् । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वे, ३६१सू० पूर्वथकारस्य तकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ४२४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **तित्थं** इति सिद्धम् । **प्रवर्तते** । प्रपूर्वकः वृत्धातुः प्रवर्तने । संस्कृतनियमेन प्रवर्त्+णिग्+ते इति जाते, ३५० सू० उभयत्रापि रेफलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, ६३८ सू० णिगः एकारे, ६६५ सू० 'ते' इत्यस्य हकारे **पवत्तेह** इति भवति । **पक्षे** । प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावपक्षे । **सकललोक-अन्तश्चारिन्** !। सकलश्चासौ लोकः, सकललोकः, अन्तश्चरितुं शीलमस्य सोऽन्तश्चारी, सकललोकस्य अन्तश्चारी सकल-लोकान्तश्चारी,तत्सम्बोधनम् । सकललोक-अन्तर्-चारिन्+सि। १७७ सू० ककार-द्वयस्य चकारस्य च लोपे, १८० सू० प्रथमाकारस्य यकारस्य श्रुतौ, ६० सू० तकारस्थाकारस्य एकारे, ११ सू० रेफस्य नकारस्य च लोपे, सेर्लोपे **सयल-लोअ-अन्तेआरि** ! इति भवति । **भगवन्** !। भगवद्+सि=भगवन्+सि। १७७ सू० गकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, विकल्पत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ ११ सू० नकारलोपे, सेर्लोपे **भयव** ! इति भवति । **हुतवह** !। हुतवह+सि। २३१ सू० तकारस्य दकारे, सेर्लोपे **हुदवह** ! इति भवति ।

९३६—आमन्त्र्य इति निवृत्तम् । ८३४ सूत्रतः '**आमन्त्र्ये**' इत्यस्य पदस्यानुवृत्तिरायाति स्म, परं साम्प्रतं तस्य निवृत्तिजतेति भावः। **किम्** । किम्+अम्=किं,प्रक्रिया ५६९ सूत्रे ज्ञेया । **अत्र** । अव्ययपदमिदम् । ५७ सू० प्रथमाकारस्य एकारे,४३२ सू० त्रस्य त्थ इत्यादेशे **एत्थ** इति भवति । **भवान्** । भवद्+सि। संस्कृतनियमेन भवान् इति जाते, ६७ सू० आकारस्य अकारे, ९३६ सू० नकारस्य मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **भवं** इति भवति । **हृदयेन** । हृदय+टा। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, २६९ सू० वैकल्पिकत्वात् सस्वर-यकार-लोपाभावे, १७७ सू० यकारलोपे, ४९५ सू० टास्थाने णकारे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **हिअएण** इति भवति । **चिन्तयति** । चिन्त् चिन्तने । चिन्त्+णिग्+तिव् । ६३८ सू० णिगः स्थाने एकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे, ९४४ सू० इचः दि इत्यादेशे **चिन्तेदि** इति भवति । **एतु** ।

इण् गतौ । इ+तु । इत्यत्र ९०८ सू० इकारस्य एकारे, ६६२ सू० तुवः दु इत्यादेशे **एदु** इति भवति । **भगवन्** !=भवं ! इति पूर्ववदेव साध्यम् । **श्रमणः** । श्रमण+सि । ३५० सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १११८ सूत्रेण भाषाव्यत्यये कृते, ९५८ सू० अकारस्य स्थाने एकारे, १ । १ । ३७ । सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **समणे** इति भवति । **भगवान्** ! भगवद्+सि=भगवं, प्रक्रिया ९३५ सूत्रे ज्ञेया । केवलमन्तरमिदं यत् १७७ सू० गकारस्य लोपो नाऽभवत्तथा १८० सू० यकारश्रुतिरपि न जाता । **महावीरः** । महावीर+सि=**महावीरे**, इति समणेवत् साध्यम् । **प्रज्वलितः** । प्रज्वलित+सि । ३५० सू० रेफस्य वकारस्य च लोपे, ३६० सू० जकारद्वित्वे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पज्जलिदो** इति भवति । **भगवान्**!=भयवं! इति ९३५ सूत्र-वदेव साध्यम् । **हुताशनः** । हुताशन+सि । तकारस्य दकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव **हुदासणे** इति भवति । **क्वचिदन्यत्रापि** । प्रस्तुतसूत्रेण भवद्-भगवत्-पद-द्वयस्यैव नकारस्य मकारो विधीयते, नान्यत्र । यथा—**मघवान्** । मघवत्+सि । संस्कृतनियमेन मघवान्+सि इति जाते, ६७ सू० अकारस्य अकारे, बाहुल्येन नकारस्य मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **मघवं** इति भवति । **पाकशासनः** । पाकशासन+सि । इत्यत्र १११८ सू० भाषाव्यत्यये कृते, १०६७ सू० ककारस्य गकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे **पागसासणे** इति भवति । **संपादितवान्** । संपादितवत्+सि । संस्कृतनियमेन संपादितवान्+सि इति जाते, १७७ सू० दकारस्य तकारस्य च लोपे, ६७ सू० द्वितीयाकारस्य स्थाने अकारे, बाहुल्येन नकारस्य मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे, सेर्लोपे **संपाइअवं** इति भवति । **शिष्यः** । शिष्य+सि । २६० सू० शकारस्य षकारस्य च सकारे, ३४९ सू० यकारलोपे, ४३ सू० इकारस्य दीर्घे पूर्ववदेव **सीसो** इति भवति । **कृतवान्** । कृतवत्+सि । संस्कृतनियमेन कृतवान्+सि इति जाते, १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारस्य श्रुतौ, ६७ सू० आकारस्य अकारे, बाहुल्येन नकारस्य मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे, सेर्लोपे **कयवं** इति भवति । **करोमि**=करेमि, प्रक्रिया ४६१ सूत्रे ज्ञेया । **करिष्यामि**=काहं, प्रक्रिया ६५९ सूत्रे ज्ञेया ।

६३७—**आर्यपुत्रः** !। आर्यपुत्र+सि । ९३१ सूत्रसमानमेव अय्यउत्त+सि इति जाते, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **अय्यउत्त** ! इति भवति । **पर्याकुली-कृता** । पर्याकुलीकृता+सि । ९३७ सू० र्यस्य य्य इत्यादेशे, १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, सेर्लोपे **पय्याकुली-कदा** इति भवति । **अस्मि**=म्हि, प्रक्रिया ६३६ सूत्रे ज्ञेया । पय्याकुलीकदा+म्हि, इत्यत्र ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **पय्याकुलीकद म्हि** इति भवति । **सूर्यः** । सूर्य+सि=सूय्य+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सुय्यो** इति भवति । **पक्षे** । यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता तत्रेति भावः । यथा—**आर्यः**=अज्जो, प्रक्रिया ५२७ सूत्रे ज्ञेया । **पर्याकुलः** । पर्याकुल+सि । २९५ सू० र्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारद्वित्वे, १७७ सू० ककारलोपे, पूर्ववदेव **पज्जाउलो** इति भवति । **कार्य-परवशः** । कार्येण परवशः । कार्यपरवश+सि । र्यस्य जकारे, जकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २६० सू० शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **कज्जपरवसो** इति भवति । एषु प्रयोगेषु प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता ।

६३८—**कथयति** । कथ् कथने । कथ्+णिग्+तिप् । इत्यत्र ९३८ सू० विकल्पेन थकारस्य धकारे, ६३८ सू० णिगः एकारे, ६२८ सू० तिप इचादेशे, ९४४ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **कधेदि**

थकाराभावे १८७ सू० थकारस्य हकारे **कहेदि** इति भवति । **नाथः** । नाथ+सि=नाथ+सि, नाह+सि, २२९ सू० नकारस्य णकारे, ४९१ सू० सेर्डो:, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **णाधो,णाहो** इति भवति । **कथम्** । अव्ययपदमिदम् । प्रस्तुतसूत्रेण वैकल्पिके धकारे, पूर्ववदेव कधम्, कहम् इति जाते, २३ सू० मकारानुस्वारे **कधं, कहं** इति भवति । **राजपथः** । राज्ञां पन्था । राजपथ+सि । पूर्ववदेव **राजपधो, राजपहो** इति भवति । **अपदादावित्येव** । यत्र थकारः पदस्यादिभूतो न भवेत्तत्रैव तस्य धकारो भवति, पदादि-भूतस्य थकारस्य न भवतीति भावः । यथा—**स्थाम** । स्थामन्+सि । ३४८ सू० सकारलोपे, ११ सू० नकारलोपे,५१४ सू० सेर्मकारे,२३ सू० मकारानुस्वारे **थामं** इति भवति । **स्तोकः** । स्तोक+सि । ३९६ सू० स्तोकस्य थेव इत्यादेशे, १७७ सू० वकारलोपे,पूर्ववदेव **थेओ** इति भवति । अत्र थकारस्य पदादित्वात् धकारो न जातः ।

९३९—इह । अव्ययपदमिदम् । ९३९ सू० विकल्पेन हकारस्य धकारे इध, **इह** इति भवति । **भवथ** ।भू सत्तायाम् । भू+थ । ७३१ सू० भूधातोः हो इत्यादेशे, ९३२ सू० थकारस्य हच् (ह) इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण विकल्पेन हकारस्य धकारे **होध, होह** इति भवति । **परित्रायध्वे** । परिपूर्वकः त्रैङ्-धातुः परिपालने । परित्रै+ध्वे । संस्कृतनियमेन परित्राय+ध्वे, इति जाते, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, ९३२ सू० ध्वे इत्यस्य हच् (ह) इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण हकारस्य वैकल्पिके धकारे **परित्तायध, परित्तायह** इति भवति ।

९४०—भवति । भूधातुः सत्तायाम् । भू+तिव् । ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो, हुव, हव, इ-त्यादेशाः, ९४० सू० हकारस्य वैकल्पिके भकारे,६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे, ९४४ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **भोदि, होदि, भुवदि, हुवदि, भवदि, हवदि** इति भवति ।

९४१—अपूर्वम् । न पूर्वमपूर्वम् । अपूर्व+सि । ९४१ सू० पूर्वस्य स्थाने वैकल्पिके पुरव इत्यादेशे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **अपुरवं** इति भवति । **नाटकम्** । नाटक+सि । १९५ सू० टकारस्य डकारे, १७७ सू० ककारलोपे, १८० सू० यकारस्य श्रुतौ, पूर्ववदेव **णाडयं** इति भवति । **अपूर्वागदम्** । अपूर्वमगदम् । अपूर्वागद+सि=अपुरवागद+सि । पूर्ववदेव **अपुरवागदं** इति भवति । **पक्षे** । आदेशाभावपक्षे । अपूर्व+सि इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,पूर्ववदेव **अपुव्वं** इति भवति । **पदम्** । पद+सि=**पदं** इति पूर्ववदेव साध्यम् । एवमेव अपूर्वागद+सि=**अपुरव्वागदं** इति साध्यम् ।

९४२—भूत्वा । भू सत्तायाम् । भू+क्त्वा । ७३१ सू० भूधातोः हुव, हो इत्यादेशौ, ९४० सू० हकारस्य वैकल्पिके भकारे,९४२ सू० क्त्वाप्रत्ययस्य विकल्पेन इय,दूण इत्यादेशौ,१० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **भविय भोदूण हविय होदूण** इति भवति । **पठित्वा** । पठ् पठने । पठ्+क्त्वा । १९९ सू० ठकारस्य ढकारे, ९१० सू० अकारागमे, प्रस्तुतसूत्रेण क्त्वः विकल्पेन इय दूण इत्यादेशौ, १० सू० स्वरस्य लोपे **पढिय** पढ+दूण,इत्यत्र ६४६ सू० अकारस्य इकारे **पढिदूण** इति भवति । **रन्त्वा** । रमु क्रीडायाम् । रम्+क्त्वा । क्त्वः इय दूण इत्यादेशौ,**रमिय** रम्+दूण इत्यत्र २३ सू० मकारानुस्वारे,३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्ये **रन्दूण** इति भवति । **पक्षे** । प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभाव-पक्षे । भू+क्त्वा=हो+क्त्वा, ९४० सू० हकारस्य विकल्पेन भकारे, ३४८ सू० ककारलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे **भोत्ता, होत्ता** इति भवति । पठ्+क्त्वा=पढ+त्ता । ६४६ सू० अकारस्य इकारे **पढित्ता** इति भवति । रम्+क्त्वा=रम्+त्ता, मकारानुस्वारे, ३६३ सू० तकारस्य द्वित्वाभावे, अनुस्वारस्य वर्गान्त्ये **रन्ता** इति भवति ।

९४३—**कृत्वा**। डुकृञ्(कृ)करणे। कृ+क्त्वा। ९४३ सू० क्त्वः विकल्पेन डित् अदुअ इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **कदुअ** आदेशाभावे—९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे,९४२ सू० क्त्वः स्थाने इय दूण इत्यादेशौ, १० सू० स्वरस्य लोपे **करिय** ६४६ सू० अकारस्य इकारे **करिदूण** इति भवति। **गत्वा**। गम्लृ-गम् गतौ। गम्+क्त्वा। प्रस्तुतसूत्रेण क्त्वः विकल्पेन डित् अदुअ इत्यादेशे, पूर्ववदेव **गदुअ** आदेशाभावे ८८६ सू० मकारस्य छकारे,३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ९१० सू० अकारागमे, १० सू० स्वरस्य लोपे,क्त्वः स्थाने इय दूण इत्यादेशौ,पूर्ववदेव **गच्छिय गच्छिदूण** इति भवति।

९४४—**वेति निवृत्तम्**। ९३५ सूत्रतः वा इति पदस्यानुवृत्तिरायाति स्म, परमस्मिन् सूत्रे तस्य निवृत्तिर्जातेति भावः। **नयति**। णीञ् (नी) प्रापणे। नी+तिप्। ९०९ सू० ईकारस्य एकारे, ६२८ सू० तिपः स्थाने इचादेशे,९४४ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **नेदि** इति भवति। वा इति पदस्यानुवृत्तेः निवृत्तौ नात्र वैकल्पिका प्रवृत्तिर्जाता। **ददाति**। डुदाञ् (दा) दाने। दा+तिप्। ९०९ सू० आकारस्य एकारे, पूर्ववदेव **देदि** इति भवति। **भवति**। भू सत्तायाम्। भू+तिप्। ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, ९४० सू० तकारस्य वैकल्पिके भकारे, पूर्ववदेव **भोदि, होदि** इति भवति।

९४५—**आस्ते**। आस् उपवेशे। आस्+ते। ८८६ सू० सकारस्य छकारे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ९१० सू० अकारागमे,१० सू० स्वरस्य लोपे ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे, ९४५ सू० इचः स्थाने दे, दे इत्यादेशौ,ततः **अच्छदे,अच्छदि** इति भवति। **गच्छति**। गम्लृ-गम् गतौ, गम्+तिप्। ९४३ सूत्रतुल्यमेव गच्छ+तिप् इति जाते, ६२८ सू० तिप इचादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण इचः स्थाने दे दि इत्यादेशौ, ततः **गच्छदे, गच्छदि** इति भवति। **रमते**। रमु क्रीडायाम्। रम्+ते। ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे, पूर्ववदेव **रमदे, रमदि** इति भवति। **क्रियते**। डुकृञ् (कृ) करणे। कृ+यक्+ते। ६४९ सू० यक्स्य इज्ज इत्यादेशे, १० सू० ऋकारस्य लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये,पूर्ववदेव **किज्जदे, किज्जदि** इति भवति। **अत इति किम्?** प्रस्तुतसूत्रेण अकारान्तादेव दे दि इत्यादेशौ भवतः, नान्यत्र। यथा—**उद्धाति**। उत्पूर्वकः वाधातुः ऊर्ध्वगतौ। उद्वा+तिप्। ६८२ सू० उद्वाधातोः वसुआ इत्यादेशे,तिप इचादेशे,आकारान्तत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ ९४४ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **वसुआदि** इति भवति। **नयति**। णीञ् (नी) प्रापणे। नी+तिप्। ९०८ सू० ईकारस्य एकारे,तिप इचादेशे,एकारान्तत्वात् प्रस्तुतसूत्राप्रवृत्तौ,पूर्ववदेव **नेदि** इति भवति। **भवति**—भोदि, प्रक्रिया ९४४ सूत्रे ज्ञेया। अत्रापि ओकारान्तत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता।

९४६—**हि-स्सा-हामपवादः**। ६५५ सूत्रेण विहितस्य हि इत्यागमस्य,तथा ६५६ सूत्रविहितयोः स्सा हा इत्यागमयोश्च ९४६ सूत्रमपवादसूत्रं बोध्यम्। **भविष्यति**। भूधातुः सत्तायाम्। भू+स्यति। ७३१ सू० भूधातोः हुव इत्यादेशे, ९४० सू० हकारस्य भकारे, ९४६ सू० प्रत्ययस्यादौ स्सि इत्यस्य प्रयोगे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे,६२८ सू० स्यति इत्यस्य इचादेशे,९४४ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **भविस्सदि** इति भवति। **करिष्यति**। डुकृञ् (कृ) करणे। कृ+स्यति। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, पूर्ववदेव **करिस्सिदि** इति भवति। **गमिष्यति**। गम्लृ(गम्)गतौ। गम्+स्यति। ८८६ सू० मकारस्य छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ पूर्वछकारस्य चकारे, ९१० सू० अकारागमे, १० सू० अकारस्य लोपे पूर्ववदेव अकारस्य इकारे **गच्छिस्सिदि** इति भवति।

९४७—**दूरात्**। दूर+ङसि। ९४७ सू० ङसिप्रत्ययस्य आदो, आदु इत्यादेशौ डितौ भवतः,

ङिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे दूरादो, दूरादु इति भवति । **एव** । अव्ययपदमिदम् । ९५१ सू० एवार्थे **य्येव** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते ।

९४८—अनन्तरकरणीयम् । अनन्तरकरणीय+सि । ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **अनन्तरकरणीयं** इति भवति । **इदानीम्** । अव्ययपदमिदम् । ९४८ सू० इदानीमः स्थाने दाणिं इत्यादेशे **दाणिं** इति भवति । **आज्ञापयतु** । आङ्पूर्वकः ज्ञप्-धातुः आज्ञापने । आज्ञप्+णिग्+तुव् । ३१३ सू० ज्ञस्य णकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ६३८ सू० णिगः स्थाने एकारे, ६६२ सू० तुवः स्थाने दु इत्यादेशे **आणवेदु** इति भवति । **आर्यः** !। आर्य+सि । ९३७ सू० र्यस्य य्य इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **अय्यो** ! इति भवति । **व्यत्ययात्प्राकृतेऽपि** । प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिः शौरसेनीभाषायामेव जायते, परन्तु १११८ सूत्रेण भाषाव्यत्यये कृते प्राकृतभाषायामपि '**इदानीम्**' इत्यव्ययस्य **दाणिं** इत्यादेशो भवति । यथा—**अन्याम्** । अन्या+अम् । ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० नकारद्वित्वे, ५२५ सू० आकारस्य अकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, २३ सू० मकारानुस्वारे **अन्नं** इति भवति । **इदानीम्** । प्रस्तुतसूत्रेण इदानीमः स्थाने दाणिं इत्यादेशे **दाणिं** इति भवति । **बोधिम्** । बोधि+अम् । १८७ सू० धकारस्य हकारे, ६१३ सूत्रेण अदन्तवत्त्वात् ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **बोहिं** इति भवति । अत्र प्राकृत-भाषायामपि प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

९४९—तस्मात् । तद्+ङसि । ९४९ सू० ङसिप्रत्ययेन सह तदः स्थाने ता इत्यादेशे **ता** इति भवति । **यावत्** । अव्ययपदमिदम् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे **जाव** इति भवति । **प्रविशामि** । प्रपूर्वकः विश्धातुः प्रवेशे । प्रविश्+मिव् । ३५० सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९१० सू० अकारागमे, ६३० सू० मिवः स्थाने मि इत्यादेशे, ६४३ सू० अकारस्य आकारे **पविसामि** इति भवति । **तस्मात्**=ता इति पूर्ववदेव साध्यम् । **अलम्** । अव्ययपदमिदम् । २३ सू० मकारानुस्वारे **अलं** इति भवति । **एतेन**=एदिणा, प्रक्रिया ५५८ सूत्रे ज्ञेया । **मानेन** । मान+टा । २२८ सू० नकारस्य णकारे, ४९५ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे **माणेण** इति भवति ।

९५०—इकारे । इकारे परे सति यत्र णकारागमो भवति तदुदाहरणानि प्रदर्शयति वृत्तिकारः । **युक्तम्** । युक्त+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ३४८ सू ककारलोपे, ३६० सू० तकार-द्वित्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **जुत्तं** इति भवति । **इदम्** । इदम्+सि । ५६१ सू० इदमः इम इत्यादेशे, जुत्तम्+इम+सि, इति स्थितौ, ९५० सू० इकारे परे सति, मकारात्पर वैकल्पिको णकारागमः, ततः जुत्तम्+ण+इम+सि इत्यत्र २३ सू० हलन्त-मकारस्यानुस्वारे, १० सू० णकारस्थस्य अकारस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सेर्मकारे, मकारानुस्वारे **जुत्तं णिमं** इति सिद्धम्, णकारागमाभावे ५६७ सू० सिना सह इदमः स्थाने इणं इत्यादेशे **इणं** इति भवति । जुत्तम्+इणं इत्यत्र अज्झीने परेण संयोज्ये **जुत्तमिणं** इति भवति । **सदृशम्** । सदृश+सि । १४२ सू० ऋकारस्य रि इत्यादेशे, ३४८ सू० दकारलोपे, ३६४ सू० रेफद्वित्वनिषेधे, २६० सू० शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **सरिसं** इति भवति । **इदम्**=इम+सि =इमं इति पूर्ववदेव जाते, सरिसम्+इमं इत्यत्रापि पूर्ववदेव प्रस्तुतसूत्रेण वैकल्पिके णकारागमे **णिमं** णकारागमाभावे पूर्ववदेव सरिसम्+इणं=**सरिसमिणं** इति भवति । **एकारे** । एकारे परे सति अन्त्यमकारात्परो यत्र णकारागमो भवति तदुदाहरणं प्रदीयते वृत्तिकारेण । **किम्** ? किम्+सि । ५६९ सू० सिना सह किम्शब्दस्य किं इत्यादेशे **किं** इति भवति । **एतद्** । एतद्+सि । ९३१ सू० तकारस्य दकारे

११ सू० हलन्त-दकारलोपे, पूर्ववदेव एवं इति भवति। किम्+एवं इति स्थितौ प्रस्तुतसूत्रेण वैकल्पिके णकारागमे किं णेवं णकारागमाभावे किम्+एवं इत्यत्र अज्भीने परेण संयोज्ये किमेवं इति भवति। एवम्। अव्ययपदमिदम्। २३ सू० मकारानुस्वारे एवं इति भवति। एतद्। एतद्+सि। पूर्ववदेव एवं ततः एवम्+एवं, इत्यस्य पूर्ववदेव एवं णेवं णकारागमाभावे एवमेवं इति रूपं भवति।

९५१—मम। अस्मद्+ङस्=मम, प्रक्रिया ६०० सूत्रे ज्ञेया। **एव**। अव्यय-पदमिदम्। ९५१ सू० एवार्थे य्येव इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **ब्राह्मणस्य**। ब्राह्मण+ङस्। ३५० सू० रेफलोपे, ३४५ सू० ह्मस्य म्ह इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १११८ सू० भाषा-व्यत्यये कृते १०८३ सू० म्हस्य म्भ इत्यादेशे, ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे बम्भणस्स इति भवति। **सः**। तद्+सि=**सो**, प्रक्रिया १७७ सूत्रे ज्ञेया। **एव**—य्येव, इति पूर्ववदेव साध्यम्। **एषः**। एतद्+सि=**एसो**, प्रक्रिया ३८७ सूत्रे ज्ञेया।

९५२—हे। अव्यय-पदमिदम्। ९५२ सू० चेट्याः आह्वाने (हे इत्यर्थे) हञ्जे इति निपातः प्रयुज्यते। शौरसेनीभाषायां निपाता अव्यया एव सन्त्यस्तेऽतएवाऽत्र अव्ययत्वात् [संस्कृत-भाषा-सममेव] सेर्लोपो जायते। एवमेवाऽग्रेऽपि बोध्यम्। **चतुरिके**!। चतुरिका+सि। ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ५३० सू० आकारस्य एकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे चदुरिके! इति भवति।

९५३—विस्मयः। विस्मयार्थे ९५३ सू० हीमाणहे इति निपातः प्रयुज्यते। **जीवद्वत्सा**। जीवद् वत्सो यस्याः, सा। जीवत्-वत्सा+सि। जीवद् इति शब्दः शतृ-प्रत्ययान्तः, अतः जीव्+शतृ, इत्यत्र ९१० सू० अकारागमे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, जीवन्तवत्सा+सि, इति जाते, २९२ सू० त्सस्य छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे जीवन्तवच्छा इति भवति। **मे**। अस्मद्+ङस्=मे, प्रक्रिया ६०२ सूत्रे ज्ञेया। **जननी**। जननी+सि। २२८ सू० उभयत्र नकारस्य णकारे, सेर्लोपे जणणी इति भवति। **निर्वेदः**। प्रस्तुतसूत्रेण निर्वेदार्थे-दुःखार्थे हीमाणहे इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **परिव्रजन्तः**। परिपूर्वकः व्रज्धातुः परिव्रज्नो। परिव्रज्+शतृ। १११८ सू० भाषा-व्यत्यये कृते, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ३५० सू० वकारलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ३६० सू० सकारद्वित्वे, ११ सू० जकारलोपे, ६७० सू० शतुः न्त इत्यादेशे, जस्-प्रत्यये, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे पलिस्सन्ता इति भवति। **वयम्**। १११८ सू० भाषा-व्यत्यये कृते, ९७२ सू० वयम् इत्यस्य हगे इत्यादेशे हगे इति भवति। **एतेन**। एतद्+टा। ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ११ सू० दकारलोपे, ४९५ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे, ५०३ सू० अकारस्य एकारे एदेण इति भवति। **निजविधेः**। निजस्य विधिः,तस्य। निजविधि+ङस्। १७७ सू० जकारलोपे,बहुलेन १८० सू० यकारश्रुतौ,५१२ सू० ङसः णो इत्यादेशे नियविधिणो इति भवति। १८७ सूत्रे प्रायोग्रहणादत्र धकारस्य हकारो न जातः। **दुर्व्यवसितेन**। दुर्व्यवसित+टा। ३५० सू० रेफलोपे, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे,पूर्ववदेव दुव्ववसिदेण इति भवति।

९५४—ननु।अव्ययपदमिदम्। ९५४ सू०नन्वर्थे णं इति निपातः प्रयुज्यते। **अफलोदया**। न फलमफलम्—निष्फल उदयो यस्याः,सा। अफलोदया+सि। १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे अफलोदया इति भवति। **आर्यमिश्रैः**। आर्यमिश्र+भिस्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ९३७ सू० र्यस्य य्य इत्यादेशे, ३५० सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ३६० सू० सकारद्वित्वे, ४९६ सू० भिसः हिं इत्यादेशे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे अय्यमिस्सेहिं इति भवति। **प्रथमम्**। प्रथम+सि। रेफस्य लोपे, ५५ सू० पकारस्थाकारस्य उकारे, २१५ सू० थकारस्य ढकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३

सू० मकारानुस्वारे **पुढमं** इति भवति । **एव**=य्येव, प्रक्रिया ९५१ सूत्रे ज्ञेया । **आज्ञप्तम्** । आज्ञप्त+सि । ३१३ सू० ज्ञस्य णकारे, ३४८ सू पकारलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे पूर्ववदेव **आणत्तं** इति भवति । **ननु**=णं, पूर्ववदेव साध्यम् । **भवान्**=भवं, प्रक्रिया ९३६ सूत्रे ज्ञेया । **मे** । अस्मद्+ङस्=मे, प्रक्रिया ६०२ सूत्रे ज्ञेया । **अग्रतः** । अव्ययपदमिदम् । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ३७ सू० विसर्गस्य डो (ओ) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **अग्गदो** इति भवति । **चलति** । चल् चलने । चल्+तिव् । ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे, ९४५ सू० इचः दि इत्यादेशे **चलदि** इति भवति । **आर्षे वाक्यालङ्कारेऽपि** । आर्षशौरसेन्यां **णं** इत्यव्ययपदं वाक्यालंकारे=वाक्यसौन्दर्येऽपि प्रयुज्यते । यथा—**नमः**=नमो, प्रक्रिया ५३५ सूत्रे ज्ञेया । **अस्तु** । क्रियापदमिदम् । ३१६ सू० स्तस्य थकारे, ३६० सू० थकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे **अत्थु** इति भवति । नमो+अत्थु इत्यत्र ओकारात् परो योऽकारस्तस्य संस्कृतनियमेन पूर्वरूपे जाते **नमोऽत्थु** इति भवति । **नमोऽत्थु णं**, इत्यत्र णं इत्यव्ययपदं वाक्यसौन्दर्यार्थं बोध्यम् । एवमेव **जया णं, तया णं** इत्यत्रापि **णं** इत्यव्ययपदं वाक्यालंकारार्थकं ज्ञेयम् । **यदा** इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य जकारे, १७७ सू० दकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ **जया** एवं **तदा**-तया इति भवति ।

९५५—अम्महे इति निपातः ९५५ सू० हर्षार्थे प्रयुज्यते । **एतया**=एआए, प्रक्रिया ५२१ सूत्रे ज्ञेया । **सूर्मिलया** । सूर्मिला+टा । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ५१८ सू० टाप्रत्ययस्य स्थाने एकारे **सुम्मिलाए** इति भवति । **सुपरिघटितः** । सुष्ठुरूपेण परिघटितः-परिगृहीतः । सुपरिघट्+क्त (त)+सि । १११८ सू० भाषाव्यत्यये कृते, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ७८३ सू० घट्धातोः गढ इत्यादेशे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सुपलिगढिदो** इति भवति । **भवान्**=भवं, प्रक्रिया ९३६ सूत्रे ज्ञेया ।

९५६—हीही इति निपात-पदं ९५६ सू० विदूषकस्य-राजप्रमोदकस्य हर्षे द्योत्ये प्रयुज्यते । **भो** । अव्ययपदमिदम् । संस्कृततुल्यमेव शौरसेन्यां प्रयुज्यते । **संपन्नाः** । सम्पन्न+जस् । ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वस्वरस्य दीर्घे **सम्पन्ना** इति भवति । **मनोरथाः** । मनोरथ+जस् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, ९३८ सू० थकारस्य धकारे, पूर्ववदेव **मणोरधा** इति साध्यम् । **प्रियवयस्यस्य** । प्रियश्चासौ वयस्यः, तस्य । प्रियवयस्य+ङस् । ३५० सू० रेफलोपे, ३४९ सू० संयुक्त-यकारलोपे, ३६० सू० सकारद्वित्वे, ४९९ सू० ङसः स्थाने स्स इत्यादेशे **पिय-वयस्सस्स** इति भवति ।

९५७—शौरसेन्यामिह । शौरसेनी-भाषाप्रकरणे यानि कार्याण्युक्तानि तदतिरिक्तानि कार्याणि प्राकृत-भाषातुल्यानि बोध्यानीति भावः । प्रस्तुताष्टमाध्याये चतुर्थ-सूत्रादारभ्य ९३० सूत्रपर्यन्तं यानि सूत्राणि पठितानि, तेषु सूत्रेषु यानि चोदाहरणानि प्रदत्तानि, तेषूदाहरणेषु मध्ये यान्युदाहरणानि शौरसेनीप्रकरणे गृहीतानि सन्ति तानि तदवस्थानीत्युच्यन्ते, यथा ९४९ सूत्रे पठितानि **जाव पविसामि**, ९५१ सूत्रोक्तानि **मम, सो, एसो** इत्यादीनि रूपाणि किञ्चिदपि परिवर्तनरहितानि प्राकृतभाषा-नियम-सिद्धानि शौरसेनीभाषायां गृहीतानि सन्त्यतएवैतानि पदानि **तदवस्थानीति** ज्ञेयानि । यानि च रूपाणि प्राधान्येन शौरसेनीभाषानियमैः निष्पादितानि सन्ति, तानि **एवंविधानि** बोध्यानि । तथा—९३१ सूत्रे **एदाहि**, ९५१ सूत्रे **य्येव**, ९५२सूत्रे **हञ्जे**, इत्यादयः प्रयोगाः प्राधान्येन शौरसेनी-भाषानियमैः साधिताः सन्ति, अतएवैते **एवंविधा** अवगन्तव्याः । कानि रूपाणि **तदवस्थानि** कानि च **एवंविधानि** ? इति विभागः पाठकैः स्वयमेव प्रतिसूत्रमभ्यूह्य-विचार्य दर्शनीयः=व्याख्यातव्यः । यथा—**अन्तर्वेदिः** । अन्तर्-वेदि+सि । ११

सू० रेफलोपे, ४ सू० तकारस्थाकारस्य आकारे, १७७ सू० दकारलोपे, ५०८ सू० इकारदीर्घे, ३।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **अत्तावेई** इति रूपं प्राकृतभाषायां निष्पद्यते, परन्तु शौरसेन्यान्तु ९३१ सू० तकारस्य दकारे **अन्दावेदी** इति भवति । एवमेव **युवतिजनः** । युवतिश्चासौ जनः । युवति-जन+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **जुवदिजणो** इति भवति । **मनःशिला** । मनस्-शिला+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, ११ सू० सकारलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, सेर्लोपे **मणसिला** इति भवति । एषु प्रयोगेषु शौरसेनीभाषानियामकैः सूत्रैरपि कार्यं विहितं परन्तु तद्व्यतिरिक्तं कार्यं प्राकृत-भाषानियामकैः सूत्रैः सम्पादितमतएव वृत्तिकारेणोक्तम्—**शौरसेन्यामिह प्रकरणे यत्कार्यमुक्तं ततोऽन्यच्छौरसेन्यां प्राकृत-भाषा-वदेव भवति** । इति **शौरसेनीभाषाविवेचनम्** । आचार्य-श्री-हेमचन्द्रेण ९३१ सूत्रादारभ्य ९५७ सूत्र-पर्यन्तं शौरसेनी-भाषा-विधिविधानं निरूपितम्, ९५७ सूत्रतः तस्य समाप्तिर्जातेऽतएवोच्यते यच्छौरसेनी-भाषा-विवेचनं समाप्तम् । यदा मूलग्रन्थे शौरसेनी-भाषा-प्रकरणं समाप्तिमगमत्तदा बालमनोरमाख्यायां टीकायामपि शौरसेनीभाषा-प्रकरणं समाप्तिमेति ।

शौरसेनी-गिरा-टीका, पूर्णा बालमनोरमा ।
आत्मारामं गुरुं ध्यात्वा, मुनिज्ञानेन निर्मिता ॥१॥

※ समाप्तं शौरसेनी-भाषाया विवेचनम् ※

★ अथ शौरसेनी भाषा-विधि ★

महावीर भगवान जिन, जगतारक अखिलेश,
मङ्गलकारी नाम है, सुखदायक परमेश ।
वन्दन कर श्री वीर को, मन में रख कर ध्यान,
गुरुवर आतमा राम का, करता है गुणगान ।
गुरुचरणों की शरण ले, नतमस्तक "मुनि ज्ञान",
भाषा शौर-सेनी का, लिखता है व्याख्यान ॥

हैमशब्दानुशासन के आठ अध्याय हैं, पहले सात-अध्यायों में संस्कृत-भाषा के विधि-विधानों का उल्लेख किया गया है। शेष आठवें अध्याय में, १—प्राकृत, २—शौरसेनी, ३—मागधी, ४—पैशाची, ५—चूलिका-पैशाचिक और ६—अपभ्रंश इन छः भाषाओं का निरूपण कर रखा है। आरम्भ के तीन पादों में तथा चतुर्थपाद के २५९ सूत्रों में प्राकृत-भाषा के स्वरूप का परिचय कराया गया है। इसके अनन्तर आचार्य श्री हेमचन्द्र शौरसेनी भाषा के सम्बन्ध में जानकारी देने लगे हैं। प्राचीनकाल में शौरसेन (*महाराज शूरसेन का राज्य, आधुनिक व्रजमण्डल, जिसकी राजधानी शूरसेन-मथुरा थी) प्रदेश में (मथुरा के आस-पास) यह भाषा बोली जाती थी। कोषकारों के कथनानुसार खड़ी बोली हिन्दी के निर्माण में शौरसेनी

---

*देखो बृहत्-हिन्दी-कोष।

तथा अपभ्रंश का बहुत बड़ा हाथ है, क्योंकि इन तीनों (शौरसेनी, अपभ्रंश तथा खड़ी बोली हिन्दी) का क्षेत्र (मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश) समान है। शौरसेनी भाषा का क्या विधिविधान है ? प्राकृतभाषा से इसका क्या मौलिक भेद है ? आदि बातों के सम्बन्ध में प्रस्तुत प्रकरण में प्रकाश डाला जा रहा है।

९३१—शौरसेनी भाषा में अनादि (जो आदि में विद्यमान न हो) तकार के स्थान में दकारादेश होता है। यदि वह तकार वर्णान्तर (अन्य वर्ण) से संयुक्त न हो। जैसे—१—**ततः पूरित-प्रतिज्ञेन मारुतिना मंत्रितः**=तदो पूरिद-पदिञ्ञेण मन्तिदो (इस के अनन्तर पूर्ण की हुई प्रतिज्ञा वाले हनुमान ने उसे सलाह दी), २—**एतस्मात्**=एदाहि, एदाओ (इस से), यहां पर असंयुक्त तथा अनादि तकार को दकार किया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र में "**अनादौ**" यह पद देने का क्या प्रयोजन है ? उत्तर में निवेदन है कि—**तथा कुरुत, यथा तस्य राज्ञः अनुकम्पनीया भवामि**=तधा करेध जधा तस्स राइणो अणुकम्पणीआ भोमि (तुम वैसा काम करो, जैसे मैं उस राजा की अनुकम्पनीया (अनुकम्पा का पात्र) हो जाऊँ) आदि स्थलों में पद के आदि में विद्यमान तकार के स्थान में दकारादेश न हो, इस विचार से सूत्रकार ने "**अनादौ** (आदि में अ-विद्यमान)" यह पद पढ़ा है। पुनः प्रश्न उपस्थित होता है कि सूत्रकार के "**अयुक्तस्य** (संयोग से रहित हो)" यह पद ग्रहण करने का क्या प्रयोजन है ? उत्तर में निवेदन है कि—१—**मत्तः**—मत्तो (मद वाला, अभिमानी), २—**आर्यपुत्रः**=अय्यउत्तो (पति, स्वामी का पुत्र), ३—**असंभावित-सत्कारम्**=असंभाविद-सक्कारं (जिस के सत्कार की कोई संभावना नहीं, उसको), ४—**हे शकुन्तले !**=हला सउन्तले ! (हे शकुन्तले !, शकुन्तला कुमारी को सम्बोधित किया जा रहा है), इन उदाहरणों में तकार संयुक्त है, दूसरे व्यञ्जन से सम्बन्धित है अतः यहां संयुक्त तकार को दकार न हो जाये, इस दृष्टि से सूत्रकार ने '**अयुक्तस्य**' इस पद का उल्लेख किया है। भाव यह है कि शौरसेनी भाषा में तकार को दकार हो जाता है, परन्तु वह अनादि और असंयुक्त होना चाहिए।

९३२—वर्णान्तर (अन्य वर्ण से) से संयुक्त तकार यदि अधःवर्तमान (संयुक्त वर्ण में दूसरा) हो तो उसे कहीं-कहीं पर लक्ष्य (प्रयोग) के अनुसार दकार का आदेश हो जाता है। जैसे—१—**महान्**=महन्दो (सब से बड़ा), २—**निश्चिन्तः**=निच्चिन्दो (चिन्ता से रहित), ३—**अन्तःपुरम्**=अन्देउरं (रानियों का निवास-स्थान), यहां पर तकार संयुक्त होने पर अधः-वर्तमान था, संयुक्त वर्ण में दूसरा था, अतः उसे प्रस्तुतसूत्र से दकारादेश कर दिया गया है।

९३३—शौरसेनी भाषा में तावत् इस अव्ययपद के आदिम तकार को विकल्प से दकार होता है। जैसे—**तावत्**=दाव, आदेश के अभाव-पक्ष में **ताव** (तब तक) यह रूप बनता है।

९३४—शौरसेनी भाषा में **इन्** के नकार को आमन्त्रण सम्बन्धी सिप्रत्यय परे रहने पर (अर्थात् सम्बोधन के एकवचन में) विकल्प से आकारादेश होता है। जैसे—१—**भो कञ्चुकिन् !**=भो कञ्चुइआ ! (हे कञ्चुकिन् !, अन्तःपुर के सेवक !), २—**सुखिन् !**=सुहिआ ! (हे सुखमय जीवन व्यतीत करने वाले !), आदेश के अभावपक्ष में—१—**भो तपस्विन् !**=भो तवस्सि ! (हे तपस्या करने वाले !), २—**भो मनस्विन् !**=भो मणस्सि ! (हे विचारक !) ऐसे रूप बनते हैं। यहां पर वैकल्पिक होने से इन् के नकार को आकार नहीं हो सका।

६३५—शौरसेनी भाषा में आमन्त्रण-सम्बन्धी सिप्रत्यय परे रहने पर नकार को विकल्प से मकारादेश होता है। जैसे—१—**भो राजन् !**=भो रायं ! (हे राजन् !), २—**भो विजयवर्मन् !**=भो विजयवम्मं ! (हे विजयवर्मन् !, विजय-वर्मा किसी व्यक्ति का नाम है, यह उस का सम्बोधन है), ३—**सुकर्मन् !**=सुकम्मं ! (हे अच्छे कर्म करने वाले !), ४—**भगवन् !**=भयवं ! (हे भगवन् !), ५—**कुसुमायुध!**=कुसुमाउह ! (हे कुसुमायुध!, अर्थात् जिस के कुसुम-पुष्प ही आयुध-शस्त्र हैं, कामदेव !), ६—**भगवन् ! तीर्थं प्रवर्तय**=भयवं ! तित्थं पवत्तेह (हे भगवन् ! आप तीर्थ की प्रवृत्ति करो, लोकान्तिक देव तीर्थंकर भगवान से निवेदन करते हैं कि आप तीर्थ (धर्म) की स्थापना करने की कृपा करें), आदेश के अभावपक्ष में—**सकललोक-अन्तश्चारिन् ! भगवन् ! हुतवह !**=सयल-लोअ-अन्तेआरि! भयवं ! हुदवह ! (सकललोक में विचरण करने वाले !, हे भगवन् !, हे अग्निदेव !) ऐसा रूप होता है। यहां पर नकार को मकारादेश नहीं किया गया।

६३६—प्रस्तुत सूत्र में "**आमन्त्र्ये**" (आमंत्रण सम्बन्धी) इस पद की निवृत्ति हो जाती है। अर्थात्—यहां 'आमन्त्रण—सम्बन्धी' यह पद जोड़ने की आवश्यकता नहीं है। शौरसेनी भाषा में भवद् और भगवद् इन शब्दों के नकार को सिप्रत्यय परे होने पर मकारादेश होता है। जैसे—१—**किमत्र भवान् हृदयेन चिन्तयति**=किं एत्थ भवं हिदएण चिन्तेदि ? (क्या आप इस सम्बन्ध में हृदय से विचार कर रहे हैं ?), २—**एतु भवान्**=एदु भवं (आप जाएं), ३—**श्रमणः भगवान् महावीरः**=समणे भगवं महावीरे (श्रमण=तपस्वी भगवान महावीर), ४—**प्रज्वलितो भगवान् हुताशनः**=पज्जलिदो भयवं हुदासणो (जाज्वल्यमान भगवान् अग्नि-देव अथवा भगवान् अग्निदेव प्रज्वलित हो रहे हैं), यहां पर भवद् और भगवद् शब्दों के नकार को मकारादेश किया गया है। **बहुलाधिकार** के कारण २ सूत्र से उक्त दोनों शब्दों से भिन्न पदों के नकार को भी मकारादेश हो जाता है। जैसे—१—**मघवान् पाकशासनः**=मघवं पागसासणो (मघवान् और पाकशासन ये दोनों इन्द्र के नाम हैं), २—**सम्पादितवान् शिष्यः**=संपाइअवं सीसो (काम को पूर्ण करने वाला शिष्य), ३—**कृतवान्**=कयवं (वह करने वाला है), ४—**करोमि**=करेमि (मैं करता हूं), और ५—**करिष्यामि**=काहं (मैं करूंगा) यहां मघवान् आदि पदों के नकार को प्रस्तुत सूत्र से मकारादेश नहीं हो सकता था किन्तु **बहुलाधिकार** से नकार को मकार बना दिया गया है। **करेमि और करिष्यामि** का सम्बन्ध **कृतवान्** पद से समझना चाहिए। जैसे **कृतवान् करेमि** (मैं कृतवान् (जिसने काम कर रखा है) करता हूं) और **कृतवान् करिष्यामि** (मैं कृतवान् करूंगा)। यहां पर बहुलता से प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति की गई है।

६३७—शौरसेनी भाषा में र्य के स्थान में '**य्य**' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—१—**आर्यपुत्र ! पर्याकुलीकृताऽस्मि**=अय्यउत्त ! पय्याकुलीकदम्हि (हे *आर्यपुत्र ! मैं बुरी तरह से दुःखी कर दी गई हूं), २—**सूर्यः**=सुय्यो (दिवाकर) आदेश के अभाव-पक्ष में—१—**आर्यः**=अज्जो (श्रेष्ठ), २—**पर्याकुलः**=पज्जाउलो (दुःखी), ३—**कार्य-परवशः**=कज्जपरवसो (कार्य के कारण पर-वश (पराधीन) बना हुआ), ये रूप बनते हैं। यहां पर प्रस्तुतसूत्र से 'र्य' को '**य्य**' यह आदेश नहीं किया गया।

६३८—शौरसेनी भाषा में थकार के स्थान में विकल्प से धकार का आदेश होता है। जैसे—

---

*संस्कृतशब्दार्थ-कौस्तुभ नामक कोष में आर्यपुत्र के अनेकों अर्थ लिखे हैं—१—प्रतिष्ठित जन का पुत्र, २—दीक्षागुरु का पुत्र, ३—सम्मानित, ४—सम्मानजनक संज्ञा, अपने पति के लिए पत्नी की अथवा अपने राजा के लिए उस के सेनापति की सम्मानजनक संज्ञा।

१—**कथयति**=कधेदि, आदेश के अभावपक्ष में—**कहेदि** (वह कहता है), २—**नाथः**=णाधो, णाहो (स्वामी, प्रीतम), ३—**कथम्**=कधं, कहं (कैसे), ४—**राजपथः**=राजपधो, राजपहो (मुख्य सड़क), यहां पर थकार के स्थान में वैकल्पिक धकार किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि **अपदादिभूत** (जो पद के आदि में विद्यमान न हो) थकार को ही धकारादेश हो सकता है, अन्य को नहीं। जैसे—१—**स्थाम**=थामं (ताकत, शक्ति-अचलता, स्तम्भन शक्ति), २—**स्तोकः**=थेओ (स्वल्प) यहां पर थकार आदि में विद्यमान था, अतः प्रस्तुत सूत्र से इसे धकारादेश नहीं हो सका।

९३९—'**इह**' इस अव्ययपद से सम्बन्धित **हकार** को तथा ६३२ सूत्र से मध्यमपुरुष के बहुवचन के स्थान में विहित '**ह्**' इस आदेश के हकार को शौरसेनी भाषा में विकल्प से धकारादेश होता है। जैसे—१—**इह**=इध (यहां पर), २—**भवथ**=होध (तुम सब होते हो), ३—**परित्रायध्वे**=परित्तायध (तुम संरक्षण करते हो), आदेश के अभावपक्ष में—**इह**=इह, **भवथ**=होह तथा—**परित्रायध्वे**=परित्तायह, ये रूप बनते हैं। यहां हकार को धकारादेश नहीं किया गया।

९४०—शौरसेनी भाषा में भूधातु के हकार को विकल्प से भकारादेश होता है। जैसे—१—**भवति**=भोदि, भुवदि, भवदि आदेश के अभावपक्ष में—**होदि, हुवदि, हवदि** (वह होता है) ऐसे रूप बन जाते हैं।

९४१—शौरसेनी भाषा में **पूर्व** इस शब्द के स्थान में विकल्प से '**पुरव**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**अपूर्वं नाटकम्**=अपुरवं नाडयं (नाटक-तमाशा अपूर्व-अनोखा है), २—**अपूर्वागदम्**=अपुरवागदं (अगद=औषधि अपूर्व-अद्भुत है), आदेश के अभावपक्ष में—१—**अपूर्वं पदम्**=अपुव्वं पदं (पद-शब्द अपूर्व-अनोखा है), २—**अपूर्वागदम्**=अपुव्वागदं, ऐसे रूप बनते हैं।

९४२—शौरसेनी भाषा में क्त्वाप्रत्यय के स्थान में '**इय**' और '**दूण**' ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—१—**भूत्वा**=भविय, भोदूण, हविय, होदूण (हो करके), २—**पठित्वा**=पढिय, पढिदूण (पढ़ करके), ३—**रन्त्वा**=रमिय, रन्दूण (खेल करके) आदेश के अभावपक्ष में—१—**भूत्वा**=भोत्ता, होत्ता, २—**पठित्वा**=पढित्ता, ३—**रन्त्वा**=रन्ता, ये रूप बनते हैं।

९४३—**कृ** और **गम्** इन धातुओं से क्त्वाप्रत्यय के स्थान में डित् (जिस का डकार इत्-संज्ञक हो) अडुअ, यह आदेश विकल्प से हो जाता है। जैसे—१—**कृत्वा**=**कडुअ** (कर के), २—**गत्वा**=गडुअ (जा करके), आदेश के अभावपक्ष में—क्रमशः—**करिय, करिदूण** और **गच्छिय, गच्छिदूण** ये रूप बन जाते हैं।

९४४—प्रथमपुरुष के एकवचन के स्थान में ६२८ वें गतसूत्र से विहित इच् और एच् इन दोनों आदेशों के स्थान में '**दि**' यह आदेश होता है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि यहां पर '**वा**' इस पद की अनुवृत्ति की निवृत्ति समझनी चाहिए। सूत्र के प्रयोग इस प्रकार हैं। १—**नयति**=नेदि (वह ले जाता है), २—**ददाति**=देदि (वह देता है), ३—**भवति**=भोदि, होदि (वह होता है), यहां पर प्रथम-पुरुषीय एकवचन के स्थान में होने वाले इच् आदेश को 'दि' यह आदेश किया गया है।

९४५—यदि इच् और एच् ये दोनों आदेश अकार से परे हों तो इनके स्थान में 'दे' तथा सूत्रोक्त चकार के कारण 'दि' यह आदेश होता है। जैसे—१—**आस्ते**=अच्छदे, अच्छदि (वह बैठता है), २—**गच्छति**=गच्छदे, गच्छदि (वह जाता है), ३—**रमते**=रमदे, रमदि (वह क्रीडा करता है), ४—**क्रियते**=किज्जदे, किज्जदि (उस से किया जाता है) यहां पर इचादि आदेशों को दे और दि ये दो आदेश किए

गए हैं। प्रश्न उपस्थित होता है कि सूत्र में **अतो** यह पद किस लिए ग्रहण किया गया है? उत्तर में निवेदन है कि—१—**उद्वाति**=वसुआदि (वह ऊर्ध्व गति करता है), २—**नयति**=नेदि (वह ले जाता है), ३—**भवति**=भोदि (वह होता है) आदि प्रयोगों में **दे** और **दि** ये आदेश न हो जाएं, इस उद्देश्य से सूत्रकार ने "**अतो**" इस पद का ग्रहण किया है। इन प्रयोगों में इच् आदेश अकार से आगे नहीं है। अतः यहां प्रस्तुत सूत्र का कोई कार्य नहीं हो सका।

९४६—शौरसेनी भाषा में भविष्यदर्थ में किए गए प्रत्यय के परे होने पर 'स्सि' इसका विकरण होता है। अर्थात् धातु और प्रत्यय के मध्य में '**स्सि**' यह आगम होता है। ६५५ सूत्र से भविष्यदर्थक प्रत्ययों के आदि में **हि** तथा ६५६ सूत्र से उत्तम पुरुष में भविष्यदर्थक प्रत्ययों के आरंभ में **स्सा** और **हा** इन दोनों का प्रयोग होता है। प्रस्तुत सूत्र से होने वाला **स्सि** का प्रयोग इन सब का अपवाद माना गया है। उदाहरण इस प्रकार हैं—१—**भविष्यति**=भविस्सिदि (वह होगा),२—**करिष्यति**=करिस्सिदि (वह करेगा), ३—**गमिष्यति**=गच्छिस्सिदि (वह जायगा), यहां पर भविष्यदर्थक प्रत्यय के आदि में **स्सि** का आगम किया गया है।

९४७—शौरसेनी भाषा में अकारान्त शब्द से परे ङसि-प्रत्यय के स्थान में आदो और आदु ये दो डित् (जिस में डकार इत् हो) आदेश होते हैं। जैसे—१—**दूराद् एव**=दूरादो य्येव (दूर से ही), २—**दूराद्**=दूरादु (दूर से) यहां पर ङसि प्रत्यय को आदो और आदु ये डित् आदेश किए गए हैं।

९४८—शौरसेनी भाषा में '**इदानीम्**' इस अव्ययपद के स्थान में **दाणिं** यह आदेश होता है। जैसे—**अनन्तरकरणीयम् इदानीमाज्ञापयतु आर्य !**=अनन्तर-करणीयं दाणिं आणवेदु अय्यो ! (हे आर्य ! इस के अनन्तर क्या करना चाहिए ? अब आप आज्ञा फरमाएं) यहां पर '**इदानीम्**' के स्थान में '**दाणिं**' यह आदेश किया गया है। ११११८ सूत्र द्वारा प्राकृत आदि भाषा-लक्षणों (भाषा-सम्बन्धी नियमों) का व्यत्यय होने से प्राकृतभाषा में भी इदानीम् के स्थान में 'दाणिं' यह आदेश हो जाता है। जैसे—**अन्यामिदानीं बोधिम्**=अन्नं दाणिं बोहिं (अब दूसरे बोधि=ज्ञान को) यहां प्राकृतभाषा में भी इदानीम् को 'दाणिं' आदेश कर दिया गया है।

९४९—शौरसेनी भाषा में '**तस्मात्**' इस शब्द को '**ता**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**तस्माद् यावत् प्रविशामि**=ता जाव पविसामि (इस लिए जब तक मैं प्रवेश करता हूं), २—**तस्माद् अलमेतेन मानेन**=ता अलं एदिणा माणेण (इसलिए इस अभिमान से बस करो) यहां पर '**तस्मात्**' इस शब्द के स्थान में '**ता**' यह आदेश किया गया है।

९५०—शौरसेनी भाषा में इकार और एकार के परे होने पर अन्त्यमकार से आगे विकल्प से णकार का आगम होता है। जैसे—इकार के उदाहरण—१—**युक्तम् इदम्**=जुत्तं णिमं, जुत्तमिणं (यह युक्त अर्थात् ठीक है),२—**सदृशम् इदम्**=सरिसं णिमं,सरिसमिणं (यह समान है),एकार के उदाहरण—१—**किम् एतद्**=किं णेदं,किमेदं (यह क्या है ?),२—**एवम् एतद्**=एवं णेदं, एवमेदं (यह ऐसे है),यहां पर इकार और एकार के परे रहने पर अन्त्य मकार को णकार का आगम विकल्प से किया गया है।

९५१—शौरसेनी भाषा में '**एव**' (निश्चय, ही) इस अर्थ में '**य्येव**' इस निपात का प्रयोग होता है। जैसे—१—**मम एव ब्राह्मणस्य**=मम य्येव बम्भणस्स (मुझ ब्राह्मण का ही), २—**स एव एषः**=सो य्येव एसो (वह यही है) यहां एवार्थ में '**य्येव**' इस निपात का प्रयोग किया गया है। शौरसेनी भाषा में निपातों को अव्यय माना जाता है, अतएव प्रस्तुत में य्येव से सिप्रत्यय का लोप हो गया है। ऐसे

ही स्थिति आगे भी समझनी चाहिए।

९५२—शौरसेनी भाषा में चेटि-दासी के सम्बोधन में 'हञ्जे' इस निपात को प्रयुक्त किया जाता है। जैसे—**हे चतुरिके !**=हञ्जे ! चदुरिके। (अयि चतुर-दासी !), यहां पर दासी के सम्बोधन में **हञ्जे** इस निपात का प्रयोग किया गया है।

९५३—शौरसेनी भाषा में विस्मय और निर्वेद (ग्लानि) इन अर्थों में **हीमाणहे** इस निपात का प्रयोग किया जाता है। विस्मय का उदाहरण—**अहो जीवद्-वत्सा मे जननी**=हीमाणहे जीवन्तवच्छा मे जणणी (आश्चर्य है कि मेरी माता जीवद्वत्सा (जिस का वत्स (बछड़ा, बेटा) जीवित हो) है) निर्वेद का उदाहरण—हा ! **परिश्रान्ता वयमेतेन निजविधेः दुर्व्यवसितेन**=हीमाणहे पलिस्सन्ता हगे एदेण नियविधिणो दुव्व-वसिदेण [खेद है कि हम परिष्वङ्ग (मेल, स्पर्श अथवा आलिङ्गन) करते हुए अपने भाग्य की प्रतिकूलता से (फंस गए)] यहां पर विस्मय और निर्वेद अर्थ में 'हीमाणहे' इस निपात का प्रयोग किया गया है।

९५४—शौरसेनी भाषा में *ननु इस अव्ययपद के अर्थ में णं इस निपात का प्रयोग किया जाता है। जैसे—१—**ननु अफलोदया !**=णं अफलोदया ! (मैं पूछता हूं कि क्या यह नारी अफलोदया (जिस का उदय-जन्म फलयुक्त न हो) है ?), २—**ननु आर्य-मिश्रैः प्रथममेव आज्ञप्तम् ?**=णं अय्यमिस्सेहिं पुढमं य्येव आणत्तं ? (क्या आर्य-मिश्रों-भद्रपुरुषों ने पहले ही यह आज्ञा प्रदान कर दी थी), ३—**ननु भवान् मे अग्रतः चलति**=णं भवं मे अग्गदो चलदि (मुझे सन्देह है कि आप मेरे आगे चल रहे हैं) यहां 'ननु' इस अर्थ में 'णं' इस निपात का प्रयोग किया गया है। आर्ष-शौरसेनी में णं यह निपात वाक्य के अलंकार (सौन्दर्य) में भी देखा जाता है। जैसे—१—**नमोऽस्तु**=नमोऽत्थु णं (नमस्कार हो), २—**यदा**=जया णं (जब), ३—**तदा**=तया णं (तब) यहां पर णं का प्रयोग वाक्य की सुन्दरता के लिए किया गया है।

९५५—शौरसेनी भाषा में 'हर्ष (प्रसन्नता)' इस अर्थ में 'अम्महे' इस निपात को प्रयुक्त किया जाता है। जैसे—**हर्षः, एतया सूर्मिलया सुपरिघटितो भवान्**=अम्महे एआए सुम्मिलाए सुपलिगढिदो भवं (यह प्रसन्नता की बात है कि सूर्मिला (कोई नारी) द्वारा आप खूब परिघटित (परिगृहीत) हैं) यहां पर हर्षार्थ में 'अम्महे' इस निपात का प्रयोग किया गया है।

९५६—शौरसेनी भाषा में विदूषकों (मसखरों, भांडों, हाजिर-जवाबों) के हर्ष को प्रकट करने के लिए 'हीही' इस निपात का प्रयोग किया जाता है। जैसे—**हीही भो सम्पन्नाः मनोरथाः प्रियवयस्यस्य**=हीही भो संपन्ना मणोरधा पियवयस्सस्स (आहा आहा, प्रिय मित्र के मनोरथ (इच्छाएं) पूर्ण हो गए) यहां पर विदूषकों के हर्ष का द्योतक **हीही** निपात प्रयुक्त किया गया है।

९५७—शौरसेनी-भाषा में जो-जो कार्य कहे जा चुके हैं, इनसे अन्य समस्त कार्य शौरसेनी भाषा में प्राकृत-भाषा के समान ही होते हैं। भाव यह है कि शौरसेनी भाषा में जिन विधिविधानों का उल्लेख किया गया है, उन से अतिरिक्त शौरसेनी-भाषा के जो विधिविधान हैं वे समस्त विधि-विधान प्राकृत-भाषा के विधिविधान के समान ही समझने चाहिएं। प्रश्न हो सकता है कि प्राकृत-भाषा के कौन-कौन से विधिविधान हैं जो शौरसेनी भाषा के अन्तर्गत जानने चाहिएं ? उत्तर में निवेदन है कि प्राकृत-भाषा के चतुर्थ सूत्र से लेकर ९३१ वें सू. से पहले-पहले जितने भी सूत्र हैं, और

---

*यह अव्यय जिसका व्यवहार कोई बात पूछने, सन्देह प्रकट करने या वाक्य के आरंभ में किया जाता है।

इन सूत्रों में जितने भी उदाहरण हैं,इनके मध्य में इतने विधिविधान तो तदवस्थ (प्राकृत-भाषा के समान) ही शौरसेनी भाषा में प्रयुक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त,ये उदाहरण शौरसेनी भाषा में इस तरह के होते हैं, अर्थात् शौरसेनी-भाषा-सम्बन्धी विधिविधान द्वारा अमुक उदाहरण शौरसेनी के बन जाते हैं ? इस प्रकार का विभाग प्रत्येक सूत्र की अपेक्षा स्वयं विचार करके समझ लेना चाहिए। जैसे—**'अन्तर्वेदिः'** यह शब्द है, प्राकृतभाषा में इसका **अन्तावेई**, यह रूप बनता है, किन्तु शौरसेनी भाषा के नियमानुसार ९३१ सूत्र से तकार को दकार हो जाता है, अतः यहां **अन्तावेदी** (मध्य की वेदिका) यह रूप होता है। इसी भांति—**१—युवति-जनः** = जुवदि-जणो (जवान स्त्रियां), **२—मनःशिला** = मणसिला (लाल वर्ण की एक उपधातु) ये उदाहरण समझने चाहिएं। **युवति-जनः** का प्राकृत-भाषा में **'जुवइ-जणो'** किन्तु शौरसेनी भाषा के नियमानुसार तकार को दकार होने से तथा जकार का लोप न होने से **जुवदि-जणो** ऐसा रूप बनता है, तथा **'मणसिला'** यह शब्द प्राकृतभाषा के समान ही शौरसेनी भाषा में प्रयुक्त होता है। इस शब्द पर शौरसेनी भाषा का कोई नियम लागू नहीं होता, अतः यह प्राकृत-भाषा की भांति शौरसेनीभाषा में व्यवहृत होता है। इसी भांति प्राकृतभाषा-प्रकरण में वर्णित अन्य शब्दों में कहां-कहां शौरसेनी भाषा का विधिविधान चरितार्थ होता है, और उनमें कहां-कहां परिवर्तन आता है ? यह सब पाठकों को स्वयं समझने का प्रयास करना चाहिए।

९५७ वें सूत्र का ऊहापोह करने के अनन्तर बिना किसी संकोच के यह कहा जा सकता है कि शौरसेनी भाषा का मूल आधार प्राकृत भाषा ही है। प्राकृत-भाषा को यदि शौरसेनी भाषा की जननी कहें तो यह उपयुक्त ही प्रतीत होता है। यही कारण है कि ये दोनों भाषाएं एक दूसरे के बहुत अधिक निकट हैं, इन में बहुत स्वल्प अन्तर है। पाठक जानते ही हैं कि प्राकृतभाषा के विधिविधान का वर्णन करने वाले ९३० सूत्र हैं, जबकि शौरसेनी भाषा के विधिविधान का वर्णन केवल २७ सूत्रों द्वारा किया गया है। इस से स्पष्ट है कि प्राकृत-भाषा और शौरसेनी भाषा में केवल २७ कार्यों की भिन्नता है, शेष सब कार्य एक जैसे हैं, इन में कोई अन्तर नहीं है।

शौरसेनी भाषा का आरंभ ९३१ वें सूत्र से होता है, और इसकी समाप्ति ९५७ वें सूत्र में हो जाती है। प्रस्तुत सूत्र शौरसेनी भाषा के विधिविधान का अन्तिम विधायक सूत्र है। इसकी व्याख्या के साथ शौरसेनी भाषा सम्बन्धी विवेचन भी समाप्त होता है।

शूरसेन के देश की, [1]भाषा का व्याख्यान।
पूर्ण हुआ, गुरुदेव की, [2]किरपा से मुनि ज्ञान ॥

❋ शौरसेनी-भाषा-विवेचन समाप्त ❋

★ अथ मागधी-भाषा-प्रकरणम् ★

९५८—अत एत्सौ पुंसि मागध्याम्। ८।४।२८७। मागध्यां भाषायां सौ परे अकारस्य एकारो भवति, पुंसि-पुल्लिङ्गे। एषः मेषः। एशे मेशे। एशे पुलिशे। करोमि भदन्त !, करेमि भन्ते !। अत इति किम् ? णिही। कली। गिली। पुंसीति किम् ? जलं। यदपि "पोराणमद्ध-मागह-भासा-निययं हवइ सुत्तं" इत्यादिनार्षस्य अर्ध-मागध-भाषा-नियतत्वमाम्नायि वृद्धैस्तदपि प्रायोऽस्यैव विधानान्न वक्ष्यमाण-लक्षणस्य। कयरे आगच्छइ। से

१—शौरसेनी भाषा। २—कृपा।

तारिसे दुक्खसहे जिइन्दिए । इत्यादि ।

९५९—र-सोर्ल-शौ । ८ । ४ । २८८ । मागध्यां रेफस्य दन्त्यसकारस्य च स्थाने यथा-संख्यं लकारस्तालव्य-शकारश्च भवति । र । नले । कले । स । हंशे । शुदं । शोभणं । उभयोः । शालशे । पुलिशे ।

लहश-वश-नमिल-शुल-शिल-विअलिब-मन्दाल-लायिदंहि-युगे ।
वील-यिणे पक्खालदु मम शयलमवय्य-यम्बालं ॥१॥

९६०—स-षोः संयोगे सोऽग्रीष्मे । ८ । ४ । २८९ । मागध्यां सकार-षकारयोः संयोगे वर्तमानयोः सो भवति, ग्रीष्मशब्दे तु न भवति । ऊर्ध्वलोपाद्यपवादः । स । पस्खलदि हस्ती । बुहस्पदी । मस्कली । विस्मये । ष । शुस्क-दालुं । कस्टं । विस्नु । शस्प-कवले । उस्मा । निस्फलं । धनुस्खण्डं । अग्रीष्म इति किम् ? गिम्ह-वाशले ।

९६१—ट्ट-ष्ठयोः स्टः । ८ । ४ । २९० । द्विरुक्तस्य टकारस्य,षकाराक्रान्तस्य च ठकारस्य मागध्यां सकाराक्रान्तः टकारो भवति । ट्ट । पस्टे । भस्टालिका । भस्टिणी । ष्ठ । शुस्टु कदं । कोस्टागालं ।

९६२—स्थ-र्थयोः स्तः । ८ । ४ । २९१ । स्थ, र्थ इत्येतयोः स्थाने मागध्यां सकाराक्रान्तः तो भवति । स्थ । उवस्तिदे । शुस्तिदे । र्थ । अस्त-वदी । शस्त-वाहे ।

९६३—ज-द्य-यां यः । ८ । ४ । २९२ । मागध्यां ज-द्य-यां स्थाने यो भवति । ज । याणदि । यणवदे । अय्युणे । दुय्यणे । गय्यदि । गुणवय्यिदे । द्य । मय्यं । अय्य किल विय्याहुले आगदे । य । यादि । यधा-शलूवं । याण-वत्तं । यदि । यस्य यत्वविधानम् "आदेर्यो जः [१.२४५]" इति बाधनार्थम् ।

९६४—न्य-ण्य-ज्ञ-ञ्जां ञ्ञः । ८ । ४ । २९३ । मागध्यां न्य, ण्य, ज्ञ, ञ्ज इत्येतेषां द्विरुक्तो ञो भवति । न्य । अहिमञ्ञु-कुमाले । अञ्ञ-दिशं । शामञ्ञ-गुणे । कञ्ञका-वलणं । ण्य । पुञ्ञवन्ते । अबम्हञ्ञं । पुञ्ञाहं । पुञ्ञं । ज्ञ । पञ्ञा-विशाले । शव्वञ्ञे । अवञ्ञा । ञ्ज । अञ्ञली । धणञ्ञए । पञ्ञले ।

९६५—व्रजो जः । ८ । ४ । २९४ । मागध्यां व्रजेर्जकारस्य ञ्ञो भवति । यापवादः । वञ्ञदि ।

९६६—छस्य श्चोऽनादौ । ८ । ४ । २९५ । मागध्यामनादौ वर्तमानस्य छस्य तालव्य-शकाराक्रान्तश्चो भवति । गश्च, गश्च । उश्चलदि । पिश्चिले । पुश्चदि । लाक्षणिकस्यापि । आपन्न-वत्सलः । आवन्न-वश्चले । तिर्यक् प्रेक्षते । तिरिश्चि पेच्छइ । तिरिश्चि पेस्कदि । अनादाविति किम् ? छाले ।

९६७—क्षस्य ≍कः । ८ । ४ । २९६ । मागध्यामनादौ वर्तमानस्य क्षस्य को जिह्वा-मूलीयो भवति । य≍के । ल≍कशे । अनादावित्येव । खय-यल-हला । क्षयजलधरा इत्यर्थः ।

९६८—स्कः प्रेक्षाचक्षोः । ८ । ४ । २९७ । मागध्यां प्रेक्षेराचक्षेश्च क्षस्य सकाराक्रान्तः को भवति । जिह्वामूलीयापवादः । पेस्कदि । आचस्कदि ।

९६९—तिष्ठस्य चिष्ठः । ८ । ४ । २९८ । मागध्यां स्थाधातोर्यस्तिष्ठ इत्यादेशस्तस्य चिष्ठ इत्यादेशो भवति । चिष्ठदि ।

९७०—अवर्णाद्वा ङसो डाहः । ८ । ४ । २९९ । मागध्यामवर्णात्परस्य ङसो डित् आह इत्यादेशो वा भवति । हगे न एलिशाह कम्माह काली । भगदत्त-शोणिदाह कुम्भे । पक्षे । भीमशेणस्स पश्चादो हिण्डीअदि । हिडिम्बाए घडुक्कय-शोके ण उवशमदि ।

९७१—आमो डाहँ वा । ८ । ४ । ३०० । मागध्यामवर्णात्परस्य आमोऽनुनासिकान्तो डित् आहादेशो वा भवति । शयणाहँ सुहं । पक्षे । नलिन्दाणं । व्यत्ययात्प्राकृतेऽपि । ताहँ । तुम्हाहँ । अम्हाहँ । सरिआहँ । कम्हाहँ ।

९७२—अहं-वयमोर्हगे । ८ । ४ । ३०१ । मागध्यामहं-वयमोः स्थाने हगे इत्यादेशो भवति । हगे शक्कावदाल-तिस्त-णिवाशी धीवले । हगे शंपत्ता ।

९७३—शेषं शौरसेनी-वत् । ८ । ४ । ३०२ । मागध्यां यदुक्तं ततोऽन्यच्छौरसेनी-वद् द्रष्टव्यम् । तत्र "तो दोऽनादौ शौरसेन्यामयुक्तस्य[४.२६०]" पविशदु आवुत्ते शामि-पशादाय । अधः क्वचित् [४.२६१] । अले ! किं एशे महन्दे कलयले ? । वादेस्तावति[४.२६२] । मालेध वा धलेध वा । अयं दाव शे आगमे । आ आमन्त्र्ये सौ वेनो नः [४.२६३] । भो कञ्चुइआ ! । मो वा [४.२६४] । भो राय ! । भवद्भगवतोः [४.२६५] । एदु भवं । शमणे भयवं महावीले । भयवं कदन्ते ये अप्पणो प≍कं उज्झिअ पलस्स प≍कं पमाणी-कलेशि । न वा र्यो य्यः [४.२६६] । अय्य ! एशे खु कुमाले मलयकेदू । थो धः [४.२६७] अले कुम्भिला ! कधेहि । इह-हचोर्हस्य [४.२६८] । ओशलध अय्या ओशलध । भुवो भः [४.२६९] भोदि । पूर्वस्य पुरवः [४.२७०] अपुरवे । क्त्व इय-दूणौ [४.२७१] किं खु शोभणे बम्हणे शि त्ति कलिय लञ्ञा पलिग्गहे दिण्णे । कृ-गमो डडुअः [४.२७२] । कडुअ । गडुअ । दिरिचेचोः । [४.२७३] । अमच्च-ल≍कशं पिक्खिदु इदो य्येव आगश्चदि । अतो देश्च[४.२७४] अले! किं एशे महन्दे कलयले शुणीअदे ?। भविष्यति स्सिः [४.२७५] । ता कहिं नु गदे लुहिलप्पिए भविस्सिदि । अतो ङसेर्डादो-डादू । [४.२७६] । अहं पि भागुलायणादो मुद्दं पावेमि । इदानीमो दाणिं । [४.२७७] । शुणध दाणिं हगे शक्कावयाल-तित्थ-णिवाशी धीवले । तस्मात्तः

[४.२७८] ता याव पविशामि । मोऽन्त्याण्णो वेदेतोः [४.२७९]। युत्तं णिमं । शलिशं णिमं । एवार्थे य्येव । [४.२८०]। मम य्येव । हञ्जे चेट्याह्वाने [४.२८१]। हञ्जे चदुलिके !। हीमाणहे विस्मय-निर्वेदे। [४.२८२] विस्मये। यथा उदात्तराघवे। राक्षसः। हीमाणहे जीवन्तवश्चा मे जणणी। निर्वेदे। यथा—विक्रान्तभीमे। राक्षसः। हीमाणहे पलिस्सन्ता हगे एदेण निय-विधिणो दुव्ववशिदेण। णं नन्वर्थे। [४.२८३]। णं अवशलोपशप्पणीया लायाणो। अम्महे हर्षे [४.२८४]। अम्महे एआए शुम्मिलाए शुपलिगढिदे भवं। हीही विदूषकस्य [४.२८५]। हीही सम्पन्ना मे मणोलधा पिय-वयस्सस्स। शेषं प्राकृतवत् [४.२८६]। मागध्यामपि "दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो वृत्तौ [१.४]" इत्यारभ्य "तो दोऽनादौ शौरसेन्यामयुक्तस्य [४.२६०]" इत्यस्मात्प्राग् यानि सूत्राणि तेषु यान्युदाहरणानि सन्ति तेषु मध्ये अमूनि तदवस्थान्येव मागध्याममूनि पुनरेवंविधानि भवन्तीति विभागः स्वयमभ्यूह्य दर्शनीयः।

※ समाप्तं मागधी-भाषा-प्रकरणम् ※

★ अथ मागधी-भाषा-विवेचनम् ★

विश्ववन्द्यं महावीरं, विश्व-कल्याण-कारकम्।
गुरुं च ज्ञानदं नत्वा, मागधीगीः प्रतन्यते॥

शौरसेनी-भाषा-व्याख्यानानन्तरं मागधीभाषायाः विधिविधानं प्रदर्शयत्याचार्यः।

९५८—एषः। एतद्+सि। इत्यत्र ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ९५९ सू० मागध्यां सकारस्य शकारे, ११ सू० दकारलोपे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, ११।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे एशे इति भवति। मेषः। मेष+सि। २६० सू० षकारस्य सकारे, मागध्यां सकारस्य शकारे, अकारस्य एकारे, पूर्ववदेव मेशे इति साध्यम्। एषः=एशे, इति पूर्ववदेव साध्यम्। पुरुषः। पुरुष+सि। १११ सू० रेफस्योकारस्य इकारे, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, पूर्ववदेव पुलिशे इति भवति। करोमि। डुकृञ् करणे। कृ+मिव्। २०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६४७ सू० द्वितीयाकारस्य एकारे, ६३० सू० मिवः मि इत्यादेशे करेमि इति भवति। भदन्त!। भदन्त+सि। १७७ सू० दकारलोपे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य एकारे, सेर्लोपे भन्ते! इति भवति। अत इति किम्? प्रस्तुत-सूत्रेण अकारस्यैव एकारो भवति, नान्यत्र। यथा—निधिः। निधि+सि। २२९ सू० नकारस्य णकारे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, ५०८ सू० इकारस्य दीर्घे, सेर्लोपे णिही इति भवति। करिः। करि+सि। ९५९ सू० रेफस्य लकारे, पूर्ववदेव सेर्लोपे कली इति सिद्धम्। गिरिः। गिरि+सि। पूर्ववदेव गिली इति भवति। पुंसीति किम्?। पुल्लिङ्गे एव अकारस्य एकारो भवति, नान्यत्र। यथा—जलम्। जल+सि। ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे जलं इति भवति। क्लीबत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य अप्रवृत्तिभावः। *पोराणमद्धमागह-भासेसि। पुराणार्ध-तीर्थंकरगण-

*पुव्वावरसंजुत्तं वेरग्गकरं, सतंतमविरुद्धं।
पोराणमद्धमागह-भासा-नियमं हवइ सुत्तं ॥५।१।८५॥
—बृहत्कल्पे लघुभाष्यकारः

चराणामिदं पौराणं सूत्रमित्यस्य विशेषणमिदम्। अर्धं मागधानामित्यर्धमागधाः, तेषामियम् अर्धमागधी, अर्द्धमागधी चासौ भाषा अर्द्धमागधी-भाषा, तस्यां नियतम्-निबद्धम् अर्धमागधीभाषानियतं भवति, सूत्रम्-जैनशास्त्रम्। "पौराणमर्धमागध-भाषानियतं भवति सूत्रम्" इत्यार्षवाक्यमाश्रित्यैव वृद्धाचार्यैः जैनागमानामर्धमागधीभाषानियतत्वमाम्नायि-स्वीकृतम्, तदपि प्रायोऽस्यैव ९५८ सूत्रस्यैव विधानमपेक्ष्य न तु वक्ष्यमाणलक्षणस्य-वक्ष्यमाणसूत्रसमुदायस्य विधानमाश्रित्येति भावः। मागधीभाषायां ९५८ सूत्रादारभ्य ९७३ सूत्रपर्यन्त सर्वाणि षोडशसूत्राणि सन्ति, एषु मध्ये जैनागमेषु ९५८ सूत्रस्यैव प्रायः उपयोगो दृश्यते, न तु सर्वेषां सूत्राणाम्। अतएव जैनागमभाषा अर्धमागधीभाषा भण्यते। यदि जैनागमेषु सर्वेषां मागधीसूत्राणामुपयोगोऽभविष्यत्तदैव जैनागमानां भाषा मागधीभाषा इति वक्तुमुचितमभविष्यत्। पौराणम्। पौराण+सि। १५९ सू० औकारस्य ओकारे, पूर्ववदेव पोराणं इति भवति। अर्ध-मागध-भाषानियतम्। अर्ध-मागध-भाषा-नियत+सि। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० धकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, पूर्ववदेव अद्धमागहभासानियमं इति भवति। भवति=हवइ, प्रक्रिया ७३१ सूत्रे ज्ञेया। सूत्रम्। सूत्र+सि। इत्यत्र ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, पूर्ववदेव सुत्तं इति भवति। कतरः। कतर+सि। १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे—कयरे इति भवति। आगच्छति। आङ्पूर्वकः गम्लृ (गम्)-धातुः आगतौ। आगम्+तिव्=आगच्छइ। प्रक्रिया ८३४ सूत्रे ज्ञेया। कयरे इत्यत्र आगमीय-प्रयोगत्वाद् ९५९ सूत्रेण रेफस्य लकारो नाभूद्। सः। तद्+सि। ५७५ तकारस्य एकारे, ११ सू० दकारलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य एकारे, पूर्ववदेव से इति भवति। तादृशः। तादृश+सि। १४२ सू० ऋकारस्य रि इत्यादेशे, ३४८ सू० दकारलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव तारिसे इति भवति। दुःखसहः। दुःखं सहते इति। दुःखसह+सि। ३४८ सू० जिह्वामूलीयस्य लोपे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, पूर्ववदेव दुक्खसहे इति भवति। जितेन्द्रियः। जितानि इन्द्रियाणि येन, सः। जितेन्द्रिय+सि। १७७ सू० तकारस्य यकारस्य च लोपे, ८४ सू० एकारस्य इकारे, ३५० सू० रेफलोपे, पूर्ववदेव जिइन्दिए इति भवति। आगमीयप्रयोगत्वात् से, तारिसे, दुक्खसहे एतेषु प्रयोगेषु ९५९ सूत्रेण सकारस्य शकारो न जातः। केवलमत्र ९५८ सूत्रस्यैव प्रवृत्तिर्दृश्यते। अर्द्धमागधी-भाषाया एक-सूत्रविधानाश्रयणेनैव जैनागमानां भाषा अर्द्धमागधीभाषा भण्यत इति भावः।

९५९—नरः। नर+सि। ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे नले इति भवति। करः। कर+सि। पूर्ववदेव—कले इति भवति। हंसः। हंस+सि। प्रस्तुतसूत्रेण सकारस्य शकारे, पूर्ववदेव हंशे इति भवति। श्रुतम्। श्रुत+सि। ३५० सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, प्रस्तुतसूत्रेण सकारस्य शकारे, १३१ सूत्रेण तकारस्य दकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे शुदं इति भवति। शोभनम्। शोभन+सि। शकारस्य सकारे, सकारस्य शकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव शोभणं इति भवति। सारसः। सारस+सि। प्रस्तुतसूत्रेण उभयत्रापि सकारस्य शकारे, रेफस्य लकारे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे शालशे इति भवति। पुरुषः। पुरुष+सि=पुलिशे प्रक्रिया ९५८ सूत्रे ज्ञेया।

रभस-वश-नम्र-सुरशिरो-विगलित-मन्दार-राजिताङ्घ्रियुगः।
वीर-जिनः प्रक्षालयतु मम सकलमद्य-कल्मालम्॥ १॥

भावार्थः—पापविमुक्त्यर्थं कश्चित्साधकः भगवन्तं महावीरं प्रार्थयते। रभसस्य-श्रद्धा-वेगस्य, वशेन नम्राः-विनताः; सुराः—देवाः, रभसवश-नम्रसुराः, तेषां शिरोभ्यः विगलितानि-पतितानि मन्दाराणि-मन्दारपुष्पाणि रभस-वश-नम्र-सुर-विगलित-मन्दाराणि, तैः राजितं-शोभितम्, अंघ्रियुगम्-चरणयुगलं यस्य सः, वीरजिनः, वीरश्चासौ जिनः वीरजिनः, महावीर-स्वामी, मम-मदीयं सकलम्-समस्तम्-अवद्यजम्बालम्-पापरूप-कर्दमं प्रक्षालयतु-शोधयतु, दूरीकरोत्वित्यर्थः।

रभस...मन्दार-राजितांघ्रियुगः। रभस-वश-नम्र-सुर-शिरोविगलित-मन्दार-राजितांघ्रियुग+सि। **रभस-वश** इत्यत्र ९५९ सू० रेफस्य लकारे, सकारस्य च शकारे, १८७ भकारस्य हकारे [लहश-वश], **नम्रः**। नमनशीलः नम्रः, अत्र शीलार्थे विहितस्य र-प्रत्ययस्य ४१६ सू० इर इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण रेफस्य लकारे (नमिल); **सुर** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण सकारस्य शकारे, रेफस्य च लकारे (शुल), **शिरस्** इत्यत्र २६० सू० शकारस्य सकारे, प्रस्तुतसूत्रेण सकारस्य शकारे, रेफस्य च लकारे, ११ सू० सकारलोपे (शिल), **विगलित** इत्यत्र १७७ सू० गकारलोपे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे (विअलिद), **मन्दार** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण रेफस्य लकारे (मन्दाल), **राजितांघ्रियुग** इत्यत्र रेफस्य लकारे, ९६३ सू० जकारस्य यकारे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, १८७ सू० घकारस्य हकारे, (लायिदंहि); युग+सि इत्यत्र ९५८ सू० अकारस्य एकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे युगे इति भवति। **वीरजिनः**। वीरजिन+सि। प्रस्तुतसूत्रेण रेफस्य लकारे, ९६३ सू० जकारस्य यकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव **वीलयिणे** इति भवति। **प्रक्षालयतु**। प्रपूर्वकः क्षल्-धातुः प्रक्षालने-शौचकर्मणि। प्रक्षल्+णिग्+तिव्। ३५० सू० रेफलोपे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, ६४२ सू० धातोरादेरकारस्य आकारे, ६६२ सू० तिवः दु इत्यादेशे **पक्खालदु** इति भवति। **मम**। अस्मद्+ङस्=मम, प्रक्रिया ६०२ सूत्रे ज्ञेया। **सकलम्**। सकल+अम्। प्रस्तुतसूत्रेण सकारस्य शकारे, १७७ सू० ककारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ४९४ सू० अमोऽकारलोपे **शयलम्** इति भवति। **अवद्यजम्बालम्**। अवद्यजम्बाल+अम्। ९६३ सू० द्यस्य यकारे, ३६० सू० यकारद्वित्वे, ९६३ सू० जकारस्य यकारे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **अवय्य-यम्बालं** इति सिद्धम्। शयलम्+अवय्ययम्बालं, इत्यत्र अज्झीने परेण संयोज्ये **शयलमवय्ययम्बालं** इति भवति।

९६०—ऊर्ध्व-लोपादीति। ३४८ सूत्रेण ऊर्ध्वस्थितयोः सकार-षकारयोः लोपो जायते, ४३ सूत्रेण च लुप्त-सकारादीनां शब्दानामादेः स्वरस्य दीर्घो भवति किन्तु प्रस्तुतसूत्रेण एतत्सर्वं बाधितमत एव अपवादसूत्रमिदमिति बोध्यम्। **प्रस्खलति**। प्रपूर्वकः स्खल्-धातुः प्रस्खलने। प्रस्खल+तिव्। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३४८ सू० सकारस्य लोपप्राप्तिरासीत् किन्तु ९६० सू० संयुक्तसकारस्य सकारे, ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० तिवः इचादेशे, ९४५ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **पस्खलदि** इति भवति। **हस्ती**। हस्तिन्+सि। ३१६ सू० स्तस्य थकारप्राप्तिरासीत् किन्तु प्रस्तुतसूत्रेण संयुक्तसकारस्य सकारे, ११ सू० नकारलोपे, ५०८ सू० इकारदीर्घे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **हस्ती** इति भवति। **बृहस्पतिः**। बृहस्पति+सि। १३८ सू० ऋकारस्य उकारे, ३२४ सू० स्पस्य फकारप्राप्तिरासीत्किन्तु प्रस्तुतसूत्रेण संयुक्तसकारस्य सकारे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ५०८ सू० इकारदीर्घे, पूर्ववदेव **बुहस्पदी** इति भवति। **मस्करी**। मस्करिन्+सि। ३४८ सू० सकारलोपप्राप्तिरासीत्किन्तु प्रस्तुतसूत्रेण संयुक्तसकारस्य सकारे, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ११ सू० नकारलोपे, पूर्ववदेव **मस्कली**

इति भवति। **विस्मये**। विस्मय+ङि। ३४९ सू० मकार-लोप-प्राप्तौ अथवा ३४८ सू० सकारलोप-प्राप्तौ प्रस्तुतसूत्रेण संयुक्तसकारस्य सकारे, ५०० सू० ङेः स्थाने डित्-एकारे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **विस्मये** इति भवति। **शुष्कदारु**। शुष्कं च तद्दारु। शुष्कदारु+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ३४८ सू० षकारस्य ककारस्य च लोपप्राप्तौ, प्रस्तुतसूत्रेण संयुक्तषकारस्य सकारे, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **शुस्कदालुं** इति भवति। **कष्टम्**। कष्ट+सि। ३०५ सू० ष्टस्य ठकार-प्राप्तौ प्रस्तुतसूत्रेण संयुक्तषकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **कस्टं** इति भवति। **विष्णुम्**। विष्णु+अम्। ३४८ सू० षकारलोपप्राप्तौ प्रस्तुतसूत्रेण संयुक्त-षकारस्य सकारे, ११११८ सू० भाषाव्यत्यये, ९७७ सू० णकारस्य नकारे, ६१३ सू० अदन्तवदतिदेशात्, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **विस्नुं** इति भवति। **शष्पकवलः**। शष्पस्य कवलः। शष्पकवल+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ३२४ सू० ष्पस्य फकारप्राप्तौ प्रस्तुतसूत्रेण संयुक्तषकारस्य सकारे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे **शस्पकवले** इति भवति। **ऊष्मा**। ऊष्मन्+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३४८ सू० षकारलोपप्राप्तौ प्रस्तुतसूत्रेण संयुक्तषकारस्य सकारे, ५४५ सू० राजवत्त्वात्, ११ सू० नकारलोपे, ५३८ सू० अकारस्य आकारे, सेर्लोपे **उस्मा** इति भवति। **निष्फलम्**। निर्गतं फलं यस्मात्, तत्। निष्फल+सि। ३४८ सू० षकारलोपप्राप्तौ प्रस्तुतसूत्रेण संयुक्त-षकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **निस्फलं** इति भवति। **धनुष्-खण्डम्**। धनुषः खण्डम्। धनुष्खण्ड+सि। ३४८ सू० षकार-लोप-प्राप्तौ प्रस्तुतसूत्रेण संयुक्तषकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **धनुस्खण्डं** इति भवति। **अग्रीष्म इति किम्?** ग्रीष्म-शब्दे प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न भवति। यथा—**ग्रीष्म-वासरः**। ग्रीष्मस्य वासरः। ग्रीष्मवासर+सि। ३५० सू० रेफलोपे, प्रस्तुतसूत्रे **"अग्रीष्मे"** इति पाठेन प्रस्तुतसूत्राप्रवृत्तौ ३४५ सू० ष्मस्य म्ह इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, रेफस्य च लकारे, पूर्ववदेव **गिम्ह-वाशले** इति भवति।

९६१—पट्टः। पट्ट+सि। ९६१ सू० ट्टस्य स्ट इत्यादेशे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, ११।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **पस्टे** इति भवति। **भट्टारिका**। भट्टारिका+सि। ट्टस्य स्ट इत्यादेशे, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, सेर्लोपे **भस्टालिका** इति भवति। **भट्टिनी**। भट्टिनी+सि=भट्टिनी+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, सेर्लोपे **भस्टिणी** इति भवति। **सुष्ठु**। अव्ययपदमिदम्। ९५९ सू० सकारस्य शकारे, प्रस्तुतसूत्रेण ष्ठस्य स्ट इत्यादेशे **शुस्टु** इति भवति। **कृतम्**। कृत+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **कदं** इति भवति। **कोष्ठागारम्**। कोष्ठागार+सि। प्रस्तुतसूत्रेण ष्ठस्य स्थाने स्ट इत्यादेशे, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, पूर्ववदेव **कोस्टागालं** इति भवति।

९६२—उपस्थितः। उपस्थित+सि। २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९६२ सू० स्थस्य स्थाने स्त इत्यादेशे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, ११।१।३७। सू० सेरिकारलोपे ११ सू० सकारलोपे **उवस्तिदे** इति भवति। **सुस्थितः**। सुस्थित+सि। ९५९ सू० सकारस्य शकारे, पूर्ववदेव **शुस्तिदे** इति भवति। **अर्थपतिः**। अर्थपति+सि। प्रस्तुतसूत्रेण र्थस्य स्त इत्यादेशे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ५०८ सू० इकारदीर्घे, सेर्लोपे **अस्तवदी** इति भवति। **सार्थवाहः**। सार्थवाह+सि। ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ९६२ सू० र्थस्य स्थाने स्त इत्यादेशे, ८४ सू० आकारस्य अकारे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे **शस्तवाहे** इति भवति।

९६३—जानाति । ज्ञा अवबोधने । ज्ञा+तिव् । ६७८ सू० ज्ञाधातोः जाण इत्यादेशे, ९६२ सू० जकारस्य यकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे, ९४५ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **याणदि** इति भवति । **जनपदः** । जनपद+सि । प्रस्तुत-सूत्रेण जकारस्य यकारे,२२८ सू० नकारस्य णकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, ३।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **यणवदे** इति भवति । **अर्जुनः** । अर्जुन+सि । ३५० सू० रेफलोपे, जकारस्य यकारे, ३६० सू० यकारद्वित्वे, नकारस्य णकारे,पूर्ववदेव **अय्युणे** इति भवति । **दुर्जनः** । दुर्जनः+सि । पूर्ववदेव **दुय्यणे** इति भवति । **गर्जति** । गर्ज् गर्जने । गर्ज्+तिव्=गय्य्+तिव् । ९१० सू० अकारागमे,६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे,९४५ सू० इचः दि इत्यादेशे **गय्यदि** इति भवति । **गुणवर्जितः** । गुणैः वर्जितः । गुणवर्जित+सि । पूर्ववदेव गुणवय्यित+सि इति जाते, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे **गुणवय्यिदे** इति भवति । **मद्यम्** । मद्य+सि । प्रस्तुतसूत्रेण द्यस्य यकारे, यकारद्वित्वे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **मय्यं** इति भवति । **अद्य** । अव्ययपदमिदम् । प्रस्तुतसूत्रेण द्यस्य स्थाने यकारे, यकारद्वित्वे **अय्य** इति भवति । **किल** । अव्ययपदमिदम् । संस्कृततुल्यमेव मागध्यां प्रयुज्यते । **विद्याधरः** । विद्यां धरतीति । विद्याधर+सि । द्यस्य यकारे, यकारद्वित्वे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे **विय्याहले** इति भवति । **आगतः** । आगत+सि । ९३१ सू० तकारस्य दकारे,पूर्ववदेव **आगदे** इति भवति । **याति** । या गति-प्रापणयोः । या+तिव् । २४५ सू० यकारस्य जकारप्राप्तौ, प्रस्तुतसूत्रेण यकारस्य यकारे, तिव इचादेशे, ९४४ सू० इचः दि इत्यादेशे **यादि** इति भवति । **यथास्वरूपम्** । स्वरूपमनतिक्रम्येति । यथास्वरूप+सि । यकारस्य जकारप्राप्तौ प्रस्तुतसूत्रेण यकारस्य यकारे, १११८ सू० भाषा-व्यत्यये, ९३८ सू० थकारस्य धकारे, ३५० सू० वकारलोपे,९५९ सू० सकारस्य शकारे, रेफस्य च लकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, पूर्ववदेव **यधाशलूवं** इति भवति । **यानपात्रम्** । यानस्य पात्रमिति । यानपात्र+सि । यकारस्य जकार-प्राप्तौ प्रस्तुतसूत्रेण यकारस्य यकारे,२२८ सू० नकारस्य णकारे,२३१ सू० पकारस्य वकारे, ३५० सू० रेफलोपे,३६० सू० तकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, पूर्ववदेव **याणवत्तं** इति भवति । **यदि** । अव्ययपदमिदम् । संस्कृततुल्यमेव मागध्यां प्रयुज्यते । **यतिः**, इतिच्छायायान्तु २४५ सू० यकारस्य जकार-प्राप्तौ प्रस्तुतसूत्रेण यकारस्य स्थाने यकारे एव जाते, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, सेर्लोपे **यदि** इति भवति । **यस्य यत्नविधानम्** । २४५ सूत्रेण यकारस्य जकारो भवति परन्तु तस्य बाधनार्थं प्रस्तुतसूत्रेण यकारस्य स्थाने यकारादेश एव निर्दिष्टः ।

९६४—अभिमन्युकुमारः । अभिमन्युकुमार+सि । १८७ सू० भकारस्य हकारे, ९६४ सू० न्यस्य ञ्ञ इत्यादेशे, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे,३।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **अहिमञ्ञुकुमाले** इति भवति । **अन्यदिशाम्** । अन्यदिशा+अम् । प्रस्तुतसूत्रेण न्यस्य ञ्ञ इत्यादेशे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ५२५ सू० आकारस्य अकारे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **अञ्ञदिशं** इति भवति । **सामान्यगुणः** । सामान्यगुण+सि । सकारस्य शकारे, न्यस्य ञ्ञ इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, अकारस्य एकारे, सेर्लोपे **शामञ्ञगुणे** इति भवति । **कन्यकावरणम्** । कन्यकावरण+सि । न्यस्य ञ्ञ इत्यादेशे, रेफस्य लकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **कञ्ञकावलणं** इति भवति । **पुण्यवान्** । पुण्यमत्+सि । प्रस्तुतसूत्रेण ण्यस्य ञ्ञ इत्यादेशे, ४३० सू० मतुपः स्थाने वन्त इत्यादेशे, अकारस्य एकारे,सेर्लोपे **पुञ्ञवन्ते** इति भवति । **अब्रह्मण्यम्** । अब्रह्मण्य+सि । ३५० सू० रेफलोपे,२४५ सू० ह्मस्य म्ह इत्यादेशे,

पूर्ववदेव अवम्हञ्ञं इति भवति । पुण्णाहम् । पुण्यं च तदहः—शुभदिवसमित्यर्थः । पुण्याह्+सि=पुञ्ञाह्+सि । पूर्ववदेव पुञ्ञाहं इति भवति । पुण्यम् । पुण्य+सि=पुञ्ञं इति पूर्ववदेव साध्यम् । प्रज्ञाविशालः । प्रज्ञया विशालः, प्रज्ञा विशाला यस्य वा,सः । प्रज्ञाविशाल+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपे, ज्ञस्य ञ्ञ इत्यादेशे,२६० सू० शकारस्य सकारे,९५९ सू० सकारस्य शकारे, पूर्ववदेव पञ्ञाविशाले इति भवति । सर्वज्ञः । सर्वज्ञ+सि । सकारस्य शकारे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ज्ञस्य ञ्ञ इत्यादेशे, पूर्ववदेव शव्वञ्ञे इति भवति । अवज्ञा । अवज्ञा+सि=अवञ्ञा+सि । सेर्लोपे अवञ्ञा इति भवति । अञ्जलिः । अञ्जलि+सि । प्रस्तुतसूत्रेण ञ्जस्य ञ्ञ इत्यादेशे,५०८ सू० इकारस्य दीर्घे,सेर्लोपे अञ्ञली इति भवति । धनञ्जयः । धनञ्जय+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, ञ्जस्य ञ्ञ इत्यादेशे, १७७ सू० यकारलोपे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे धणञ्ञए इति भवति । पञ्जरः । पञ्जर+सि । ञ्जस्य ञ्ञ इत्यादेशे, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, पूर्ववदेव पञ्ञले इति भवति ।

९६५—अपवादः । ९६३ सूत्रेण जकारस्य यकारो भवति, परन्तु प्रस्तुतसूत्रं तस्यापवादसूत्रं ज्ञेयम् । व्रजति । व्रज् गतौ । व्रज्+तिव् । ३५० सू० रेफलोपे, ९६३ सू० जकारस्य यकार-प्राप्तौ ९६५ सू० जकारस्य ञ्ञ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे,९४५ सू० इचः दि इत्यादेशे वञ्ञदि इति भवति ।

९६६—गच्छ । गम्लृ (गम्) गतौ । गम्+तिव् । ८८६ सू० मकारस्य छकारे, ९६६ सू० छकारस्य श्च इत्यादेशे,६६२ सू० सिवः सु इत्यादेशे, ६६४ सू० सोर्लुकि गश्च इति भवति । उच्छलति । उत्पूर्वकः छल्धातुः उच्छलने । उत्छल्+तिव् । ११ सू० तकारलोपे, छकारस्य श्च इत्यादेशे, ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे, ९४५ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे उश्चलदि इति भवति । पिच्छिलः । पिच्छिल+सि । प्रस्तुतसूत्रेण छकारस्य श्च इत्यादेशे, निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः, इति *न्यायेन चकारस्य अभावे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, १।१।३७। सू० सेरिकार-लोपे, ११ सू० सकारलोपे पिश्चिले इति भवति । पृच्छति । प्रच्छ पृच्छायाम् । प्रच्छ्+तिव् । ७६८ सू० प्रच्छधातोः पुच्छ इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण छकारस्य श्च इत्यादेशे, छकार-निमित्तापाये नैमित्तिकस्य चकारस्याप्यभावे, तिव इचादेशे, पूर्ववदेव पुश्चदि इति भवति । लाक्षणिकस्याऽपि । लक्षणेन-व्याकरण-सूत्रेण आगतः लाक्षणिकः । यदि लाक्षणिकः छकारो भवेत्तदापि तस्य श्च इत्यादेशो भवति । यथा—आपन्नवत्सलः । आपन्नवत्सल+सि । २३१ सू० पकारस्य वकारे, २९२ सू० त्सस्य छकारे, छकारस्य श्च इत्यादेशे,पूर्ववदेव आवन्नवश्चले इति भवति । अत्र छकारो लाक्षणिको बोध्यः । तिर्यक् । तिर्यच्+सि । ४१४ सू० तिर्यच्शब्दस्य तिरिच्छि इत्यादेशे,सेर्लोपे तिरिश्चि इति भवति । प्रेक्षते । प्रपूर्वकः ईक्ष-धातुः प्रेक्षणे । प्रेक्ष्+ते । ३५० सू० रेफलोपे, २७४ सू० क्षस्य छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे पेच्छइ इति भवति । प्रयोगदर्शनात् ८४ सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता । अत्रापि लाक्षणिकः छकारः, फलतः प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तौ तिरिश्चि पेश्चदि इति भवति । अत्र छकारापाये चकारस्याप्यभावो जातः । प्रेक्षते । प्रेक्ष्+ते । इत्यत्र २७४ सूत्रस्याप्रवृत्तौ ९६८ सू० क्षस्य स्क इत्यादेशे,६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे,९४५ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे पेस्कदि इति भवति । अनादाविति किम् ? न आदिः, अनादिः, प्रस्तुतसूत्रेण अनादौ वर्तमानस्यैव छकारस्य श्चादेशो भवति,नान्यथा । यथा—छागः । छाग+सि । १९१ सू० गकारस्य लकारे,पूर्ववदेव छाले इति भवति । छकारस्यादिभूतत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः ।

*अत्र चकारः छकारनैमित्तिकोऽस्ति, अतः निमित्ताभावेन नैमित्तिकस्याप्यभावो जायते ।

९६७—यक्षः । यक्ष+सि । ९६३ सू० यकारस्य यकारे, ९६७ सू० क्षस्य ≍क इत्यादेशे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **य≍के** इति भवति । **राक्षसः** । राक्षस+सि । ९५९ सू० रेफस्य लकारे, सकारस्य च शकारे, प्रस्तुतसूत्रेण क्षस्य ≍क इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, पूर्ववदेव **ल≍कशे** इति भवति । **अनादावित्येव** । अनादिभूतस्यैव क्षस्य ≍क इत्यादेशो भवति, नान्यत्र । यथा—**क्षयजलधराः** । क्षयस्य-प्रलयकालस्य जलधराः-मेघाः । **क्षयजलधर+जस्** । क्षस्य आदिभूतत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ९६३ सू० जकारस्य यकारे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ५०१ सू० अकारदीर्घे, ४९३ सू० जसो लोपे **खय-यलहला** इति भवति ।

९६८—जिह्वामूलीयापवादः । ९६७ सूत्रेण क्षस्य स्थाने जिह्वामूलीयः ≍को भवति, प्रस्तुतसूत्रं तस्यापवादसूत्रं ज्ञेयम् । **प्रेक्षते** । प्रपूर्वकः ईक्ष्धातुः प्रेक्षणे । प्रेक्ष्+ते=**पेस्कदि**, प्रक्रिया ९६६ सूत्रे ज्ञेया । **आचक्षते** । आङ्पूर्वकः चक्षिङ्धातुः व्यक्तायां वाचि । आचक्ष्+ते । ९६८ सू० क्षस्य स्थाने स्क इत्यादेशे, ६२८ सू० 'ते' इत्यस्य इचादेशे, ९४५ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **आचस्कदि** इति भवति । अत्र ९६७ सूत्रेण क्षस्य स्थाने जिह्वामूलीयः ≍क इत्यादेशो न जातः ।

९६९—तिष्ठति । ष्ठा-स्था गतिनिवृत्तौ । स्थाधातु+तिव् । संस्कृतनियमेन तिष्ठ+तिव् इति जाते, ९६९ सू० तिष्ठस्य स्थाने चिट्ठ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे, ९४५ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **चिष्ठदि** इति भवति ।

९७०—अहम् । ९७२ सू० अहम् इत्यस्य हगे इत्यादेशो **हगे** इति भवति । **न** । इत्यव्ययपदं संस्कृतसमानमेव मागध्यां प्रयुज्यते । **ईदृशस्य** । ईदृश+ङस् । १०५ सू० इकारस्य एकारे, १४२ सू० ऋकारस्य रि इत्यादेशे, ३४८ सू० दकारलोपे, ३६४ सू० रेफस्य द्वित्वाभावे, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ९७० सू० ङसः स्थाने विकल्पेन डाह (आह) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **एलिशाह** इति भवति । **कर्मणः** । कर्मन्+ङस् । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० मकारद्वित्वे, ११ सू० नकारलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण विकल्पेन ङसः डाह (आह) इत्यादेशे, पूर्ववदेव **कम्माह** इति भवति । **कारी** । कारिन्+सि । ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ११ सू० नकारलोपे, ५०८ सू० इकारदीर्घे १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **काली** इति भवति । **भगदत्तशोणितस्य** । भगदत्त-शोणित+ङस् । २६० सू० शकारस्य सकारे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ङसः विकल्पेन डाह इत्यादेशे, पूर्ववदेव **भगदत्तशोणिदाह** इति भवति । **कुम्भः** । कुम्भ+सि । ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे **कुम्भे** इति भवति । **पक्षे** । वैकल्पिकत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावपक्षे । **भीमसेनस्य** । भीमसेन+ङस् । सकारस्य शकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **भीमशेणस्स** इति भवति । **पश्चात्** । अव्ययपदमिदम् । ४४५ सू० पश्चात् इत्यस्य **पश्चादो** इति निपात्यते । **हिण्ड्यसे** । हिण्ड् भ्रमणे । हिण्ड्+क्य+ते । ६४९ सू० क्यस्य ईअ इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे, ९४५ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **हिण्डीअदि** इति भवति । **हिडिम्बायाः** । हिडिम्बा+ङस् । ५१८ सू० ङसः स्थाने एकारे **हिडिम्बाए** इति भवति । **घटोत्कच-शोकः** । घटोत्कच-शोक+सि । १९५ सू० टकारस्य डकारे, ३४८ सू० तकारस्य लोपे, ३६० सू० प्रथम-ककारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १७७ सू० चकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे **घडुक्कयशोके** इति भवति । प्रयोगदर्शनात् १७७ सू० द्वितीय-ककारस्य लोपो न जातः । **न** । अव्ययपदमिदम् । २२९ सू० नकारस्य स्थाने णकारे

ण इति भवति। **उपशाम्यति**। उपपूर्वकः शमुधातुः उपशमे। उपशम्+तिव्। २३१ सू० पकारस्य स्थाने वकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९५९ सू० सकारस्य स्थाने शकारे, ९१० सू० अकारस्यागमे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे, ९४५ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **उवशमदि** इति भवति।

९७१—स्वजनानाम्। स्वजन+आम्। ३५० सू० वकारस्य लोपे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ९६३ सू० जकारस्य स्थाने यकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ९७१ सू० आमः स्थाने विकल्पेन डाहँ (आहँ) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **शयणाहँ** इति भवति। **सुखम्**। सुख+सि। १८७ सू० खकारस्य हकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **सुहं** इति भवति। **मुखम्** इत्यपि पाठो दृश्यते, तत्र मुख+सि=**मुहं** इति भवति। **पक्षे**। आदेशाभावपक्षे। **नरेन्द्राणाम्**। नरेन्द्र+आम्। ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ३५० सू० रेफलोपे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ४९५ सू० आमः स्थाने णकारे, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे, २७ सू० णकारस्यान्ते अनुस्वारागमे **नलिन्दाणं** इति भवति। अत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। **व्यत्ययात्प्राकृतेऽपि**। १११८ सूत्रेण भाषाव्यत्यये कृते प्राकृतभाषायामपि आम्-प्रत्ययस्य डाहँ इत्यादेशो भवति। यथा—**तेषाम्**। तद्+आम्। प्रस्तुतसूत्रेण वैकल्पिके आमः डाहँ (आहँ) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **ताहँ** इति भवति। **युष्माकम्**। युष्मद्+आम्। २४६ सू० यकारस्य तकारे, ३४५ सू० ष्मस्य म्ह इत्यादेशे, पूर्ववदेव **तुम्हाहँ** इति साध्यम्। **अस्माकम्**। अस्मद्+आम्। ३४५ सू० स्मस्य म्ह इत्यादेशे, पूर्ववदेव **अम्हाहँ** इति भवति। **सरिताम्**। सरित्+आम्। ११ सू० तकारलोपे, पूर्ववदेव **सरिआहँ** इति भवति। इत्यत्र बाहुल्येन डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपाभावो बोध्यः। **कर्मणाम्**। कर्मन्+आम्। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे, पूर्ववदेव **कम्माहँ** इति साध्यम्।

९७२—अहम्। अस्मद्+सि। ९७२ सू० अहम् इत्यस्य हगे इत्यादेशे **हगे** इति भवति। **शक्रावतार-तीर्थनिवासी**। शक्रावतार-तीर्थनिवासिन्+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० ककारद्वित्वे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ९६२ सू० र्थस्य स्त इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ११ सू० नकारलोपे, ५०८ सू० इकारदीर्घे, ४।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **शक्कावदाल-तिस्त-णिवाशी** इति भवति। **धीवरः**। धीवर+सि। ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे **धीवले** इति भवति। **वयम्**। ९७२ सू० वयम् इत्यर्थे **हगे** इति प्रयुज्यते। **सम्प्राप्ताः**। सम्-प्राप्त+जस्। सकारस्य शकारे, २३ सू० सम्-उपसर्गस्य मकारस्य अनुस्वारे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३४८ सू० पकारलोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **शंपत्ता** इति भवति।

९७३—मागध्यामिति। मागधी-भाषा-प्रकरणे यदुक्तं तत्सर्वं ज्ञातमेवास्ति किन्तु मागधी-भाषा-प्रकरणे यन्नोक्तं तत्सर्वं शौरसेनीभाषातुल्यमेव ज्ञातव्यम्। अयं भावः— शौरसेनीभाषानियमाः मागधीभाषायामप्युपादेयाः। **९३१ सूत्रस्योदाहरणम्**। यथा—**प्रविशतु**। प्रपूर्वकः विश्धातुः प्रवेशे। प्रविश्+तुव् (तु)। ३५० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ९१० सू० अकारस्यागमे, ९३१ सू० तकारस्य 'द' इत्यादेशे **पविशदु** इति भवति। **आवुत्तः*। आवुत्त+सि। ९५८ सू० अकारस्य एकारे, ४।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **आवुत्ते** इति भवति।

*आवुत्तो:-भगिनीपतिः, पत्न्याः ज्येष्ठो भ्राता कनिष्ठो वा।

स्वामिप्रसादाय । ३५० सू० वकारस्य रेफस्य च लोपे, सकारस्य शकारे **शामिपशादाय** इति भवति । **पविशदु** इत्यत्र शौरसेनीप्रकरणस्य ९३१ सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । इत्यत्र ६६२ सूत्रेणापि कार्यसिद्धिर्भवितुं शक्नोति स्म, परन्तु सूत्राणां पर्यन्यवत्प्रवृत्तिर्जायतेऽतएवाऽत्र ९३१ सूत्रस्यैव प्रवृत्तिः करणीया । **९३२** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**अरे** !। अव्ययपदमिदम् । ९५९ सू० रेफस्य लकारे **अले** ! इति भवति । **किम्** । किम्+सि । ५६९ सू० सिना सह किमः स्थाने किं इत्यादेशे **किं** इति भवति । **एषः** । एतद्+सि । ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ११ सू० दकारलोपे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे **एशे** इति भवति । **महान्** । मह्+शतृ । ९१० सू० अकारागमे, ६७० सू० शतुः न्त इत्यादेशे, ९३२ सू० तकारस्य दकारे,पूर्ववदेव **महन्दे** इति भवति । **कलकलः** । कलकल+सि । १७७ सू० द्वितीय-ककारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, पूर्ववदेव **कलयले** इति भवति । **९३३** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**मारयथ** । मृङ् प्राणत्यागे । मृ+णिग्+थ । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे ६३८ सू० णिगः एकारे,६४२ सू० आदेरकारस्य दीर्घे,९५९ सू० रेफस्य लकारे,१० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ९३८ सू० थकारस्य धकारे **मालेध** इति भवति । **वा** । अव्ययपदमिदम् । संस्कृत-तुल्यमेव मागध्यां प्रयुज्यते । **धरथ** । धृञ् धारणे । धृ+थ । ऋकारस्य अर इत्यादेशे, रेफस्य लकारे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे, पूर्ववदेव **धलेध** इति भवति । **अयम्** । संस्कृततुल्यमेव अयम् [अयं] इति पदं मागध्यां प्रयुज्यते । **तावत्** = **ताव** इत्यस्य प्रक्रिया ९३३ सूत्रे ज्ञेया । **सः** । तद्+सि । ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ११ सू० दकारलोपे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे **शे** इति भवति । **आगमः** । आगम+सि । पूर्ववदेव **आगमे** इति भवति । **९३४** सूत्रस्योदाहरणं, यथा – **भो कञ्चुकिन्** !=भो कञ्चुइआ !, प्रक्रिया ९३४ सूत्रे ज्ञेया । **९३५** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**भो राजन्** !=भो रायं !, प्रक्रिया ९३५ सूत्रे ज्ञेया । **९३६** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**एतु भवान्**=एदु भवं, तथा **श्रमणः भगवान् महावीरः**=शमणे भयवं महावीले,प्रक्रिया ९३६ सूत्रे ज्ञेया । अत्र मागध्यां विशेषोऽयम्-**शमणे** इत्यत्र ९५९ सू० सकारस्य शकारो जातः, **भयवं** इत्यत्र १७७ सू० गकारलोपः,१८० सू० यकारश्रुतिर्जाता,**महावीले** इत्यत्र ९५९ सू० रेफस्य लकारोऽभवत् । **भगवान्**=भयवं, प्रक्रिया ९३६ सूत्रे ज्ञेया । **कृतान्तः** । कृतान्त+सि । १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, ९३१ सू० प्रथम-तकारस्य दकारे,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे,सेर्लोपे **कदन्ते** इति भवति । **यः** । यत्+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारे,९६३ सू० जकारस्य यकारे,११ सू० तकारलोपे, पूर्ववदेव **ये** इति भवति । **आत्मनः** । आत्मन्+जस्=**अप्पाणो**, प्रक्रिया ४६८ सूत्रे ज्ञेया । **पक्षम्** । पक्ष+अम् । ९६७ सू० क्षस्य ≍क इत्यादेशे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **प≍कं** इति भवति । **उज्झित्वा** । उज्झ् त्यागे । उज्झ्+क्त्वा । ९४२ सू० क्त्वः स्थाने इय इत्यादेशे **उज्झिय** इति भवति । **परस्य** । पर+ङस् । ९५९ सू० रेफस्य लकारे,४९९ सू० ङसः स्स इत्यादेशे **पलस्स** इति भवति । **प्रमाणीकरोषि** । प्रमाणीकृ+सिव् । ३५० सू० रेफलोपे, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, रेफस्य लकारे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे, ६२९ सू० सिवः सि इत्यादेशे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे **पमाणीकलेशि** इति भवति । **९३७** सूत्रस्योदाहरणं,यथा—**आर्य** !। आर्य+सि । ९३७ सू० र्यस्य य्य इत्यादेशे,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, सेर्लोपे,**अय्य** ! इति भवति । यत्र **अय्ये** ! इति पाठस्तत्र ९५८ सू० अकारस्य एकारो जातः । **एषः** । एतद्+सि=**एशे** उपरि साधितमेवेदं रूपम् । **खलु**=खु, प्रक्रिया ४६९ सूत्रे ज्ञेया । **कुमारः** । कुमार+सि=कुमाले, प्रक्रिया ९६४ सूत्रे ज्ञेया । **मलयकेतुः** । मलयकेतु+सि । ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ५०८ सू० उकारस्य ऊकारे, सेर्लोपे **मलयकेदू** इति भवति ।

९३८ सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**अरे** । अव्ययपदमिदम् । ९५९ सू० रेफस्य लकारे **अले** इति भवति । **कुम्भिला !** । कुम्भिला+सि । सेर्लोपे कुम्भिला ! इति भवति । कथय । कथ् कथने । कथ्+सिव् । ९३८ सू० थकारस्य धकारे, ९१० सू० अकारागमे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे, ६६२ सू० सिव: स्थाने सु इत्यादेशे, ६६३ सू० सु इत्यस्य हि इत्यादेशे **कधेहि** इति भवति । **९३९** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**अपसरथ** । अपपूर्वकः सृधातुः गतौ । अपसृ+थ । १७२ सू० अप-उपसर्गस्य ओकारे, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, रेफस्य च लकारे, ६३२ सू० थस्य ह्च् (ह्) इत्यादेशे, ९३९ सू० हकारस्य धकारे **ओशलध** इति भवति । **आर्याः** । आर्य+जस् । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ९३७ सू० र्यस्य य्य इत्यादेशे, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घे **अय्या** इति भवति । **९४०** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**भवति**=भोदि, प्रक्रिया ९४० सूत्रे ज्ञेया । **९४१** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**अपूर्वम्** । अपूर्व+सि । ९४१ सू० पूर्वस्य पुरव इत्यादेशे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे **अपुरवे** इति भवति । **९४२** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**किम्** । किम्+सि=**किं**, प्रक्रिया ५६९ सूत्रे ज्ञेया । **खलु**=खु, प्रक्रिया ४६९ सू० ज्ञेया । **शोभनः** । शोभन+सि । २६० सू० शकारस्य सकारे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव **शोभणे** इति भवति । **ब्राह्मणः** । ब्राह्मण+सि । ३५० सू० रेफलोपे, ३४५ सू० ह्मस्य म्ह इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, पूर्ववदेव **बम्हणे** इति भवति । **अस्ति** । अस भुवि । अस्+सिव् । ६३५ सू० सिना सह अस्धातोः सि इत्यादेशे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे **शि** इति भवति । **इति**=त्ति, प्रक्रिया ४२ सूत्रे ज्ञेया । **कलित्वा** (कलयित्वा) । कल-कल् संख्याने । कल्+णिग्+क्त्वा । ९१० सू० अकारागमे, ९४२ सू० क्त्वः इय इत्यादेशे, १० सू० अकारलोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये **कलिय** इति भवति । **राज्ञा** । राजन्+टा । संस्कृतनियमेन राज्ञा इति जाते, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ९६४ सू० ज्ञस्य ञ्ञ इत्यादेशे **लञ्ञा** इति भवति । **परिग्रहः** । परिग्रहः । परिग्रह+सि । ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे **पलिग्गहे** इति भवति । **दत्तः** । दत्त+सि । ४६ सू० अकारस्य इकारे, ३१४ सू० त्त इत्यस्य णकारे, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वे, पूर्ववदेव **दिण्णे** इति भवति । **९४३** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**कृत्वा**=कडुअ, गत्वा=गडुअ, प्रक्रिया ९४३ सूत्रे ज्ञेया । **९४४** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**अमात्यराक्षसम्** । अमात्यराक्षस+अम् । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २८४ सू० त्यस्य चकारे, ३६० सू० चकारद्वित्वे, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, संयोगे परे ह्रस्वे, ९६७ सू० क्षस्य ऽक इत्यादेशे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **अमच्च-लऽकशं** इति भवति । **प्रेक्षितुम्** । प्रपूर्वक ईक्षधातुः प्रेक्षणे । प्रेक्ष्+तुम् । संस्कृतनियमेन प्रेक्षितुम् इति जाते, ३५० सू० रेफलोपे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **पेक्खिदुं** इति भवति । **इतः** । तकारस्य दकारे, ३७ सू० विसर्गस्य डो (ओ) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **इदो** इति भवति । **एव**=य्येव, प्रक्रिया ९५१ सूत्रे ज्ञेया । **आगच्छति** । आङ्पूर्वकः गम्लृ (गम्) धातुः आगमने । आगम्+तिव् । ८८६ सू० मकारस्य छकारे, ९६६ सू० छकारस्य श्च इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे, ९४४ सू० इचः दि इत्यादेशे **आगश्चदि** इति भवति । **९४५** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**अरे ! किमेषः महान् कलकलः ?**=अले ! किं एशे महन्ते कलयले ? प्रक्रियाऽस्मिन्नेव सूत्रे पूर्वं द्रष्टव्या । **श्रूयते** । श्रु-श्रु श्रवणे । श्रु+क्य+ते । ३५० सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे,

९१२ सू० णकारागमे, ६४९ सू० क्यस्य ईश्र इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० ति इत्यस्य इचादेशे, ९४५ सू० इचः स्थाने दे इत्यादेशे **सुणोश्रदे** इति भवति । **६४६** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**तस्मात्**—ता, प्रक्रिया ९४९ सूत्रे ज्ञेया । **कस्मिन्**—कहिं, प्रक्रिया ५४९ सूत्रे ज्ञेया । **नु** । अव्ययपदमिदम् । संस्कृतवदेव मागध्यां प्रयुज्यते । **गदः** । गद+सि । ९५८ सू० अकारस्य एकारे, सेर्लोपे **गदे** इति भवति । **रुधिरप्रियः** । रुधिरप्रिय+सि । ९५९ सू० उभयत्रापि रेफस्य लकारे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० पकारद्वित्वे, १७७ सू० यकारलोपे, पूर्ववदेव **लुहिलप्पिए** इति भवति । **भविष्यति**=भविस्सिदि, प्रक्रिया ९४६ सूत्रे ज्ञेया । **६४७** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**अहम्** । अस्मद्+सि=अहं, प्रक्रिया ५९४ सूत्रे ज्ञेया । **अपि**=पि, प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया । **भागुरायणात्** । भागुरायण ङसि । ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ९४७ सू० ङसेः डादो (आदो) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **भागुलायणादो** इति भवति । **मुद्राम्** । मुद्रा+अम् । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० दकारद्वित्वे, ५२५ सू० आकारस्य अकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, २३ सू० मकारानुस्वारे **मुद्दं** इति भवति । **प्राप्नोमि** । प्रपूर्वक आप्लृ (आप्)-धातुः प्राप्तौ । प्राप्+मिव् । ३५० सू० रेफलोपे, २३१ सू० द्वितीय-पकारस्य स्थाने वकारे, ९१० सू० अकारागमे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे, ६३० सू० मिवः मि इत्यादेशे **पावेमि** इति भवति । **६४८** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**शृणुथ** । श्रु-धातुः श्रवणे । श्रु+थ । ३५० सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ९१२ सू० णकारागमे, ६३२ सू० थस्य हच् (ह) इत्यादेशे, ९३९ सू० हकारस्य धकारे **शुणध** इति भवति । **इदानीम्**=दाणिं, प्रक्रिया ९४८ सूत्रे ज्ञेया । **अहम्**=हगे, **शक्रावतार-तीर्थनिवासी धीवरः**=शक्कावयाल-तित्त-णिवाशी धीवले, प्रक्रिया ९७२ सूत्रे ज्ञेया । **शक्कावयाल** इत्यत्र १७७ सू० दकारलोपे जाते सति १८० सू० यकारश्रुतिरभूद् । **६४६** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**तस्मात् यावत् प्रविशामि**=ता याव पविशामि, प्रक्रिया ९४९ सूत्रे ज्ञेया । अयं विशेषः, मागध्यां **याव** इत्यत्र ९६३ सूत्रेण जकारस्य यकारो जातः, **पविशामि** इत्यत्र ९५९ सू० सकारस्य शकारोऽभूद् । **६५०** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**युक्तमिदम्**=युत्तं णिमं, **सदृशमिदम्**=शालिशं णिमं, प्रक्रिया ९५० सूत्रे ज्ञेया । अयं विशेषः, **युत्तं** इत्यत्र मागध्यां ९६३ सूत्रेण जकारस्य यकारः, **शलिशं** इत्यत्र ९५९ सूत्रेण उभयत्रापि सकारस्य शकारः, रेफस्य च लकारो जातः । **६५१** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**मम एव**=मम य्येव, प्रक्रिया ९५१ सूत्रे ज्ञेया । **६५२** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**हे चतुरिके !**=हञ्जे चदुलिके !, प्रक्रिया ९५२ सूत्रे ज्ञेया । मागध्यान्तु **चदुलिके !**, इत्यत्र ९५९ सू० रेफस्य लकारो जातः । **६५३**—सूत्रस्योदाहरण, यथा—**यथा उदात्तेति** । **उदात्तराघव** इति नामधेयो हि काव्यविशेषः, तत्र राक्षसाभिधानः कश्चिद् व्यक्तिरेवमवादीत्—**हीमाणहे जीवद्वत्सा मे जननी**=हीमाणहे जीवन्तवच्छा मे जणणी । प्रक्रिया ९५३ सूत्रे ज्ञेया । मागधीभाषायान्तु ९६६ सू० छकारस्य श्च इत्यादेशे **जीवन्त-वश्चा** इति भवति । छकारापायेऽत्र चकारोऽपि गतः । **हीमाणहे परिश्रान्ताः वयमेतेन निजविधिना दुर्व्यवसितेन**=हीमाणहे पलिस्सन्ता हगे एदेण नियविधिणा दुव्ववसिदेण, प्रक्रिया ९५३ सूत्रे ज्ञेया । मागध्यान्तु ९५९ सूत्रेण सकारस्य शकारे कृते **दुव्वशिदेण** इति भवति । **विक्रान्तभीम**—नामधेये काव्ये कस्यचिद् राक्षसस्योक्तिरियम् । **६५४** सूत्रस्योदाहरणं यथा—**नम्**=णं, प्रक्रिया ९५४ सूत्रे ज्ञेया । **अवसरोपसर्पणीयाः** । अवसरेण अवसरे वा उपसर्पणीयाः । अवसरोपसर्पणीय+जस् । ९५९ सू० उभयत्रापि सकारस्य शकारे, ९५९ सू० रेफस्य लकारे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० पकारद्वित्वे, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे, ४९३ सू० जसो लुकि **अवशलोपश-**

लवणीया इति भवति । [1]**राजानः** । राजन्+जस् । रेफस्य लकारे, ९६३ सू० जकारस्य यकारे, ११ सू० नकारलोपे, ५३९ सू० जसः णो इत्यादेशे, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे **लायाणो** इति भवति । **९५५** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**अस्महे एतया सुमिलया सुपरिघटितो भवान्**—अम्महे एआए सुम्मिलाए सुपलिगढिदो भवं, प्रक्रिया ९५५ सूत्रे ज्ञेया । मागध्यान्तु ९५९ सू० सकारस्य शकारे **शुम्मिलाए, शुपलिगढिदे** इति भवति । **शुपलिगढिदे** इत्यत्र ९५८ सू० अकारस्य एकारः, सेतोंपरस्य जातः । **९५६** सूत्रस्योदाहरणं, यथा—**हीही सम्पन्ना: मे मनोरथाः प्रियवयस्यस्य**—हीही संपन्ना मे मणोरधा पियवयस्सस्स, प्रक्रिया ९५६ सूत्रे ज्ञेया । मागध्यान्तु ९५९ सूत्रेण रेफस्य लकारे जाते **मणोलधा** इति भवति । **शेषं प्राकृतवदिति** । मागधीभाषाप्रयोगेषु मागधी-भाषानियमास्तु व्यवह्रियन्ते एव किन्तु शौरसेनीभाषानियमा अपि व्यवह्रियन्ते, यत्र शौरसेनीभाषानियमा अपि प्रवृत्तिं न भजन्ते तत्र प्राकृतभाषा-नियमानामपि व्यवहारो जायते । एतमेवाभिप्रायं संसूचयितुं **शेषं शौरसेनीवत्, शेषं प्राकृतवत्**, इत्येतेषां पदानामुल्लेखो विहितः । **विभागः स्वयमभ्यूह्य दर्शनीयः** । प्रस्तुताष्टमाध्याये ४ सूत्रादारभ्य ९३० सूत्रपर्यन्तं यान्युदाहरणानि प्रदत्तानि, तन्मध्येऽमूनि उदाहरणानि **तदवस्थानि**—प्राकृतभाषानियमैः शौरसेनीभाषा-नियमैश्च सिद्धानि, मागध्यां गृह्यन्ते तथा अमून्युदाहरणानि **एवंविधानि**—मागधीभाषानियमैः साधितानि, इति विभागः-विभेदः स्वयमेव अभ्यूह्य-सम्यग्विचार्य पाठकैः दर्शनीयः, ज्ञानविषयीकरणीयः । **समाप्तं मागधीभाषा-प्रकरणम्** । मागधीभाषायाः प्रकरणम्-अध्यायः समाप्तम्-सम्पूर्णतां गतम् । मूलग्रन्थे मागधीभाषा-प्रकरणस्य समाप्तौ बालमनोरमा-टीकायामपि मागधी-भाषा-व्याख्यानं समाप्तिमेति ।

सम्पूर्णा मागधीटीका, रम्या बालमनोरमा ।
आत्म-गुरोः प्रसादेन, मुनिज्ञानेन्दु-निर्मिता ॥

※ समाप्तं मागधीभाषा-विवेचनम् ※

★ अथ मागधी-भाषा-विधि ★

महावीर भगवान का, पावन सुखमय नाम,
शुद्ध हृदय से जो जपे, जीवन हो सुखधाम ।

गुरुवर आत्माराम जी, श्रमण-संघ-शृङ्गार,
चरण-शरण जगतारिका, महिमा का ना पार ।

गुरुचरणों की शरण ले, हर्ष-चित्त मुनि ज्ञान,
[2]गिरा मागधी का करे, हिन्दी में व्याख्यान ।

हैमशब्दानुशासन के इस अष्टम अध्याय में प्राकृत आदि ६ भाषाओं का वर्णन किया गया है । इन में तीसरी **मागधी भाषा** है । मगधदेश की प्राचीन भाषा का नाम **मागधी** है । बिहार के दक्षिणी प्रान्त को पहले मगध के नाम से पुकारते थे । इस प्रान्त के निवासी प्रा-

१—**अवसरोपसर्पणीयाः**-अवसरेषु गन्तव्याः राजानो भवन्त्यतोऽवसरं समीक्ष्य तेषां समीपे गन्तव्यमिति भावः ।
२—भाषा ।

चीनयुग में जिस भाषा द्वारा अपना व्यवहार सम्पन्न किया करते थे, वही भाषा मागधी कहलाती है। मागधी भाषा का प्राकृत और शौरसेनी भाषा के साथ कितना सम्बन्ध है? ये भाषाएं आपस में एक दूसरे के कितनी निकट हैं? आदि समस्त बातों को लेकर इस प्रकरण में चिन्तन प्रस्तुत किया जा रहा है।

९५८—यदि अकारान्त शब्द पुल्लिङ्ग हो तो मागधी भाषा में अकार को एकारादेश हो जाता है। जैसे—**१—एषः मेषः**=एशे मेशे (यह भेड़ है), **२—एषः पुरुषः**=एशे पुलिशे (यह पुरुष है), **३—करोमि भदन्त!**=करेमि भन्ते! (हे भगवन्! मैं करता हूं), यहां पर अकार को एकार किया गया है। प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने "अतः" (अकार को) इस पद का ग्रहण क्यों किया है? उत्तर में निवेदन है कि—**१—निधिः**=णिही (खजाना), **२—करिः**=कली (हाथी), **३—गिरिः**=गिली (पहाड़) इन अकारान्त-भिन्न शब्दों के इकार को एकारादेश न हो जाए इस उद्देश्य से सूत्रकार ने "अतः" इस पद का उल्लेख किया है। पुनः प्रश्न उपस्थित होता है कि सूत्रपठित **पुंसि** (पुल्लिग में) इस पद के ग्रहण करने का क्या प्रयोजन है? उत्तर में निवेदन है कि **जलम्**=जलं (पानी) आदि पुल्लिङ्ग-भिन्न (स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग) शब्दों के अकार के एकारादेश का निषेध करने के लिए सूत्रकार ने '**पुंसि**' इस पद का आश्रयण किया है। जल नपुंसकलिङ्ग का शब्द है, अतः प्रस्तुत सूत्र से यहां पर अकार को एकारादेश नहीं हो सका।

बृहत्कल्पसूत्र के लघुभाष्यकार एक स्थान पर लिखते हैं—

पुव्वावर-संजुत्तं वेरग्गकरं सतंतमविरुद्धं।
पोराणमद्धमागह-भासा-निययं हवइ सुत्तं॥

अर्थात्—सूत्र पांच प्रकार का माना गया है। जैसे—**१—पूर्वापरसंयुक्त**=जिस में पहले और पीछे का अविरोध हो, जिसके पहले और पिछले कथन में कोई विरोध न आता हो, **२—वैराग्यकर**=वैराग्य (विषय-सुख के प्रति उदासीन भाव) को पैदा करने वाला हो, **३—स्वतंत्राविरुद्ध**=अपने सिद्धान्त से विरोध न आता हो, **४—पौराण**=तीर्थंकर तथा गणधर आदि पूर्व पुरुषों से प्रणीत (निर्मित) हो, **५—अर्द्धमगध-भाषा-नियत**=अर्द्धमागधी भाषा (प्राकृत का वह रूप जो पटना और मथुरा के बीच बोला जाता था अथवा आधे मगध देश की भाषा) से नियत (नियम द्वारा स्थिर, बन्धा हुआ) हो, अर्थात् अर्द्धमागधी भाषा में लिखा हुआ हो।

बृहत्कल्पसूत्र के भाष्य की उक्त गाथा के अन्तिम "**पौराणमर्द्धमागध-भाषा-नियतं भवति सूत्रम्**" इन दो चरणों का प्रस्तुत सूत्र में वृत्तिकार ने उल्लेख किया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि जो "सूत्र **पौराण** और **अर्द्धमागध-भाषा-नियत** होता है" यह कहकर वृद्ध (पूर्व) पुरुषों ने आर्षप्राकृत को अर्द्ध-मागध की भाषा के नियमों से बंधा हुआ स्वीकार किया है, वह प्रायः प्रस्तुत सूत्र (९५८) के विधान की अपेक्षा से ही स्वीकार किया गया है। आगे कहे जाने वाले (९५९ आदि) सूत्रों के विधिविधान को आगे रख कर उन्होंने उक्त मान्यता का निर्देश नहीं किया। भाव यह है कि आर्ष-प्राकृत (जैनागमों) में प्रायः इसी सूत्र का कार्य दिखाई देता है, मागधी-भाषा में वर्णित अन्य सूत्रों द्वारा विहित नियमों का आर्ष-प्राकृत में उपयोग नहीं किया गया। आर्षप्राकृत के उदाहरण इस प्रकार हैं—**१—कतरः आगच्छति**=कयरे आगच्छइ? (दो में से कौन आता है?); **२—स तादृशः दुःखसहः जितेन्द्रियः**=से तारिसे दुक्ख-

जहे जिइन्दिए (यह जैसा जितेन्द्रिय (इन्द्रियों का दमन करने वाला) है, वैसा दुःखों को भी सहन करने वाला है) इत्यादि उदाहरणों में अकार को एकार किया गया है। और ये सब आर्षप्राकृत के उदाहरण हैं। अतएव वृत्तिकार फरमाते हैं कि आर्षप्राकृत में प्रस्तुत सूत्र का ही विशेष रूप से उपयोग होने से जैनागमों की भाषा अर्धमागधी कही जाती है।

९५९—मागधीभाषा में रेफ तथा दन्त्य (जिस का दन्त स्थान हो) सकार के स्थान में यथासंख्य (संख्या के अनुसार) लकार तथा तालव्य (जिस का तालु स्थान हो) शकार होता है। अर्थात् रेफ को लकार और सकार को शकार हो जाता है। जैसे—**रेफ के उदाहरण**—१—**नरः**=नले (मनुष्य), २—**करः**=कले (हाथ), **सकार के उदाहरण**—१—**हंसः**=हंशे (मान-सरोवर में मोती चुगने वाला पक्षी), २—**श्रुतम्**=शुदं (शास्त्र,सुना हुआ), ३—**शोभनम्**=शोभणं (सुन्दर), **दोनों** (रेफ और सकार) **के उदाहरण**—१—**सारसः**=शालशे (सारस नामक पक्षी), २—**पुरुषः**=पुलिशे (मनुष्य) इन प्रयोगों में प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति की गई है।

रभस-वश-नम्र-सुर-शिरो-विगलित-मन्दार-राजितांघ्रियुगः ।
वीरजिनः प्रक्षालयतु मम सकलमवद्य-जम्बालम् ॥१॥

अर्थात्—पापों से मुक्ति अधिगत करने की लालसा रखने वाला कोई साधक भगवान महावीर की स्तुति करता हुआ कहता है कि श्रद्धातिरेक के वेग के कारण नम्र(झुके)हुए देवों के सिरों से गिरे मन्दार नामक पुष्पों से जिनका चरण-युगल (दोनों चरण) सुशोभित हो रहा है, वे जिनेन्द्र भगवान महावीर मेरे सकल अवद्य (पाप) रूप जम्बाल (काई) को प्रक्षालित करें, उसे दूर कर दें।

इस श्लोक में पठित—१—**रभस**=लहश, २—**नम्र**=नमिल, ३—**सुर**=शुल, ४—**शिरस्**=शिल, ५—**मन्दार**=मन्दाल, ६—**राजित**=लायिद, ७—**वीर**=वील, ८—**सकल**=शयल इन शब्दों में प्रस्तुत सूत्र से रेफ को लकार और सकार को शकार किया गया है।

९६०—मागधीभाषा में संयोग में वर्तमान (विद्यमान) सकार और षकार को सकारादेश होता है, किन्तु ग्रीष्म शब्द के षकार को स का आदेश नहीं होता। ३४८ वें सूत्र से ऊर्ध्वस्थित (संयुक्त वर्ण में पहले रहे हुए) षकार और सकार का लोप हो जाता है और जिन शकार, षकार और सकार के आदि में स्थित यकार आदि वर्णों का लोप होता है, उनके आदिम स्वर को ४३ वें सूत्र से दीर्घ होता है, किन्तु प्रस्तुत सूत्र ने इन सब कार्यों को बाध कर संयुक्त सकार और षकार को सकारादेश का विधान कर दिया है। इसी लिए इस को ऊर्ध्वलोप आदि विधियों का अपवादसूत्र माना जाता है। **सकार के उदाहरण** इस प्रकार हैं—१—**प्रस्खलति हस्ती**=पस्खलदि हस्ती (हाथी गिरता है), २—**बृहस्पतिः**=बुहस्पदी (बृहस्पति, देवों का गुरु), ३—**मस्करी**=मस्कली (साधु, चन्द्रमा), ४—**विस्मये**=विस्मये (आश्चर्य में), **षकार के उदाहरण**—१—**शुष्कदारु**=शुस्क-दालुं (सूखा लक्कड़), २—**कष्टम्**=कस्टं (दुःख), ३—**विष्णुम्**=विस्नुं (विष्णु को), ४—**शष्पकवलः**=शस्प-कवले (घास का ग्रास), ५—**उष्मा**=उस्मा (गरमी), ६—**निष्फलम्**=निस्फलं (फल से रहित), ७—**धनुष्-खण्डम्**=धनुस्खण्डं (धनुष् का टुकड़ा), यहां पर संयुक्त सकार और षकार को सकारादेश किया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र में—**अग्रीष्मे** (ग्रीष्म शब्द को छोड़कर), यह पद किस लिए पढ़ा गया है? उत्तर में निवेदन है कि—**ग्रीष्मवासरः**=गिम्ह-वाशले (ग्रीष्म ऋतु का दिन) आदि पदों में संयुक्त षकार को सकारादेश का निषेध करने के लिए '**अग्रीष्मे**' इस पद का ग्रहण किया गया है।

९६१—मागधीभाषा में द्विरुक्त (जिसे दो बार कहा गया हो) टकार को तथा षकाराक्रान्त (षकार से युक्त) ठकार को सकाराक्रान्त (सकार से युक्त) टकार होता है। अर्थात् ट्ट और ष्ठ को 'स्ट' यह आदेश हो जाता है। 'ट्ट' के उदाहरण—१—पट्टः=पस्टे (तख्ती, लिखने की पटिया, तांबे आदि धातुओं की चिपटी पट्टी,जिस के ऊपर राजाज्ञा या दान आदि देने की सनद (प्रमाणपत्र) खोदी जाती थी, आदि), २—भट्टारिका=भस्टालिका (पूज्य नारी), ३—भट्टिनी=भस्टिणी (महारानी, ब्राह्मण की स्त्री); ष्ठ के उदाहरण— १—सुष्ठु कृतम्=शुस्टु कदं (अच्छा किया), २—कोष्ठागारं=कोस्टागालं (धान्य आदि रखने का स्थान), यहां पर ट्ट और ष्ठ के स्थान में क्रमशः 'स्ट' यह आदेश किया गया है।

९६२—मागधीभाषा में स्थ और र्थ इन संयुक्त वर्णों के स्थान में सकारान्त (सकार से युक्त) तकार होता है। जैसे—स्थ के उदाहरण—१—उपस्थितः=उवस्तिदे (हाजिर),२—सुस्थितः=शुस्तिदे (अच्छी तरह से रहा हुआ), र्थ के उदाहरण—१— अर्थपतिः=अस्त-वदी (धन का स्वामी), २—सार्थवाहः=शस्तवाहे (सार्थ (व्यापारियों) का समूह) का मुखिया, संघनायक) यहां पर स्थ और र्थ इन के स्थान में 'स्त' यह आदेश किया गया है।

९६३—मागधीभाषा में ज, द्य और य इन के स्थान में यकारादेश होता है। जकार के उदाहरण—१—जानाति=याणदि (वह जानता है), २—जनपदः=यणवदे (देश), ३—अर्जुनः=अय्युणे (पाण्डु-पुत्र अर्जुन), ४—दुर्जनः=दुय्यणे (दुष्ट आदमी), ५—गर्जति=गय्यदि (वह गरजता है), ६—गुण-वर्जितः=गुण-वय्यिदे (गुणों से रहित), द्य के उदाहरण—१—मद्यम्=मय्यं (मदिरा), २—अद्य किल विद्याधरः आगतः=अय्य किल विय्याहले आगदे (निश्चय ही आज विद्याधर आ गया है), यकार के उदाहरण—१—याति=यादि (वह जाता है), २—यथास्वरूपम्=यधाशलूवं (स्वरूप के अनुसार), ३—यानपात्रम्=याण-वत्तं (नाव, जहाज), ४—यदि (यतिः)=यदि (अगर अथवा साधु), यहां पर जकार आदि के स्थान में यकारादेश किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि यकार का यह विधान २४५ वें सूत्र से यकार के स्थान में होने वाले जकारादेश को बाधित करने के लिए किया गया है।

९६४—मागधीभाषा में न्य, ण्य, ज्ञ और ञ्ज इन संयुक्त वर्णों के स्थान में द्विरुक्त (जिसे दो बार कहा गया हो) ञकार होता है। जैसे—न्य के उदाहरण—१—अभिमन्युकुमारः=अहिमञ्ञु-कुमाले (अर्जुन का योद्धा पुत्र),२—अन्य-दिशाम्=अञ्ञदिशं (दूसरी दिशा को), ३—सामान्यगुणः=शामञ्ञ-गुणे (साधारण गुण), ४—कन्यकावरणम्=कञ्ञका-वलणं (कन्या का वरण-चुनाव याचना, या पत्नी), ण्य के उदाहरण—१—पुण्यवान्=पुञ्ञवन्ते (पुण्य वाला), २—अब्रह्मण्यम्=अवम्हञ्ञं (ब्राह्मण के अयोग्य), ३—पुण्याहः=पुञ्ञाहं (पुण्य रूप दिन),४—पुण्यम्=पुञ्ञं (पवित्र कार्य), ज्ञ के उदाहरण—१—प्रज्ञाविशालः=पञ्ञाविशाले [जिसकी प्रज्ञा-बुद्धि विशाल (बड़ी) हो], २—सर्वज्ञः=शव्वञ्ञे (सब कुछ जानने वाला), ३—अवज्ञा=अवञ्ञा(अनादर), ञ्ज के उदाहरण—१—अञ्जलिः=अञ्ञली (कर-सम्पुट, अभिवादन का संकेत), २—धनञ्जयः=धणञ्ञए (अर्जुन), ३—पञ्जरः=पञ्ञले (पसली, शरीर, गौ का एक संस्कार-विशेष), यहां पर न्य आदि संयुक्त वर्णों के स्थान में 'ञ्ञ' यह आदेश किया गया है।

९६५—मागधीभाषा में व्रज्धातु के जकार को 'ञ्ञ' यह आदेश होता है। ९६३ वें सूत्र से जकार को यकारादेश होता है, किन्तु यह उसका अपवादसूत्र है। जैसे—व्रजति=वञ्ञदि (वह जाता है) यहां पर जकार को 'ञ्ञ' यह आदेश किया गया है।

९६६—मागधी भाषा में अनादि (जो आदि में विद्यमान न हो) छकार के स्थान में तालव्य (जिस का तालु स्थान हो) शकार से आक्रान्त (युक्त) चकार होता है। जैसे—१—**गच्छ,गच्छ**=गश्च, गश्च (तू जा, तू जा), २—**उच्छलति**=उश्चलदि (वह उछलता है), ३—**पिच्छिलः**=पिश्चिले (चिकना, रपटन वाला, पूंछ वाला), ४—**पृच्छति**=पुश्चदि (वह पूछता है) यहां पर '**छ**' के स्थान में **श्च** यह आदेश किया गया है। **वृत्तिकार** फरमाते हैं कि लाक्षणिक (लक्षण-व्याकरण सूत्र से निष्पन्न) **छ** के स्थान में भी '**श्च**' यह आदेश हो जाता है। जैसे—१—**आपन्नवत्सलः**=आवन्न-वश्चले (जिसे वत्सल आपन्न-प्राप्त है), २—**तिर्यक् प्रेक्षते**=तिरिच्छि पेच्छइ मागधी भाषा में—तिरिश्चि पेस्कदि (वह टेढा देखता है), ये रूप बनते हैं। यहां पर त्स को **छ**, **तिर्यक्** को **तिरिच्छि** तथा क्ष को **छ** किया गया है। यह **छ** लाक्षणिक है,अतः इसे '**श्च**' यह आदेश कर दिया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र में "**अनादौ** (आदि में अविद्यमान)" इस पद का ग्रहण क्यों किया गया है? उत्तर में निवेदन है कि **छागः**=छाले (बकरा) इस पद में आदिभूत छकार को '**श्च**' यह आदेश न हो जाए, इस विचार से '**अनादौ**' इस पद का ग्रहण किया गया है।

९६७—मागधीभाषा में अनादि में वर्तमान (विद्यमान) क्ष के स्थान में जिह्वामूलीय ≍क यह आदेश होता है। जिह्वा के मूल (जड) से उच्चारित वर्ण जिह्वामूलीय कहलाता है। जैसे—१—**यक्षः**=य≍के (यक्ष जाति का देवविशेष), २—**राक्षसः**=ल≍कशे (राक्षस, वान-व्यन्तर जाति का देवविशेष), यहां पर क्ष के स्थान में जिह्वामूलीय ≍क यह आदेश किया गया है। ध्यान रहे कि यह आदेश अनादिभूत क्ष के स्थान में ही होता है, आदिभूत क्ष को यह आदेश नहीं हो पाता। जैसे—**क्षय-जलधराः**=खय-यलहला (क्षय-प्रलयकाल के जलधर-मेघ) यहां पर 'क्ष' आदिभूत वर्ण है,फलतः इस को जिह्वामूलीय ≍क यह आदेश नहीं हो सका।

९६८—मागधीभाषा में **प्रेक्ष्** और **आचक्ष्** इन धातुओं के 'क्ष' को सकार से आक्रान्त (युक्त) ककारादेश होता है। यह ९६७ वें सूत्र से क्ष के स्थान में होने वाले 'जिह्वामूलीय ≍क' का अपवाद सूत्र है। जैसे—१—**प्रेक्षते**=पेस्कदि (वह देखता है), २—**आचक्षते**=आचस्कदि (वह कहता है), यहां पर ९६७ वें सूत्र से क्ष के स्थान में जिह्वामूलीय ≍क न हो कर प्रस्तुत सूत्र से '**स्क**' यह आदेश किया गया है।

९६९—संस्कृत-व्याकरण के अनुसार **स्थाधातु** का जो '**तिष्ठ**' यह रूप होता है, मागधीभाषा में इसे '**चिष्ठ**' यह आदेश हो जाता है। जैसे—**तिष्ठति**=चिष्ठदि (वह ठहरता है), यहां पर '**तिष्ठ**' को '**चिष्ठ**' यह आदेश किया गया है।

९७०—मागधीभाषा में **अवर्ण** से परे **ङस्**-प्रत्यय के स्थान में डित् (जिसमें डकार इत् हो) आह यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—१—**अहं न ईदृशस्य कर्मणः कारी**=हगे न एलिशाह कम्माह काली (ऐसे कर्म का करने वाला मैं नहीं हूं),२—**भगदत्त-शोणितस्य कुम्भः**=भगदत्त-शोणिदाह कुम्भे (भगदत्त नामक मनुष्य के शोणित-रक्त का घड़ा), यहां पर ङस्-प्रत्यय के स्थान में डाह (आह) यह आदेश विकल्प से किया गया है। आदेश के अभावपक्ष में—१—**भीमसेनस्य पश्चात् हिण्ड्यते**=भीमशेणस्स पश्चादो हिण्डीअदि (वह भीमसेन के पीछे घूमता है), २—**हिडिम्बायाः घटोत्कच-शोकः न उपशाम्यति**=हिडिम्बाए घडुक्कय-शोके ण उवशमदि (हिडिम्बा (एक राक्षसी, जो पाण्डुपुत्र अर्जुन की पत्नी थी) का घटोत्कच(हिडिम्बा का पुत्र)-जन्य शोक उपशान्त नहीं हो रहा है), यहां पर ङस् प्रत्यय के स्थान में प्रस्तुत सूत्र से डाह (आह) यह आदेश नहीं हो सका। वैसे एक ही प्रयोग में सूत्र की वैक-

-लिपक प्रवृत्ति का निर्देशन होना चाहिए था, किन्तु वृत्तिकार ने भिन्न-भिन्न प्रयोगों में जो उस का निर्देश किया है, इसका कारण वृत्तिकार की अपनी स्वतंत्रता ही कहा जा सकता है।

९७१—मागधीभाषा में अवर्ण से परे यदि आम् प्रत्यय हो तो उसके स्थान में अनुनासिकान्त (जिसके अन्त में अनुनासिक हो) और ङित् (जिसमें डकार इत् हो) **आह** यह **आदेश** विकल्प से होता है। जैसे—**स्वजनानां सुखम्**=शयणाहँ सुहं (अपने मनुष्यों का सुख) यहां पर आम्-प्रत्यय के स्थान में डाहँ (आहँ) यह वैकल्पिक आदेश किया गया है। **आदेश के अभावपक्ष में—नरेन्द्राणाम्**=नलिन्दाणं (राजाओं का) यह रूप बनता है। यहां पर आम् को '**डाहँ**' यह **आदेश** नहीं हो सका। **वृत्तिकार फरमाते हैं** कि ११६८ वें सूत्र से प्रस्तुत में मागधीभाषा-सम्बन्धी नियमों का व्यत्यय (परिवर्तन) हो जाने पर प्राकृतभाषा में भी आम्-प्रत्यय के स्थान में '**डाहँ**' यह आदेश हो जाता है। जैसे—१—**तेषाम्**=ताहँ (उनका), २—**युष्माकम्**=तुम्हाहँ (तुम्हारा), ३—**अस्माकम्**=अम्हाहँ (हमारा), ४—**सरिताम्**=सरिआहँ (नदियों का), ५—**कर्मणाम्**=कम्माहँ (कर्मों का) व्यत्यय के कारण यहां पर प्राकृत-भाषा के उक्त शब्दों के आम्-प्रत्यय को भी **डाहँ** (आहँ) यह आदेश कर दिया गया है।

९७२—मागधीभाषा में **अहम्** तथा **वयम्** इन सर्वनाम शब्दों के स्थान में '**हगे**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**अहं शक्रावतार-तीर्थ-निवासी धीवरः**=हगे शक्कावदाल-तित्थ-णिवाशी धीवले (मैं शक्रावतार नामक तीर्थ-स्थान का निवासी धीवर-मच्छीमार या मल्लाह हूं), २—**वयं सम्प्राप्ताः**=हगे शंपत्ता (हम सम्प्राप्त हैं, प्राप्त कर चुके हैं), यहां पर **अहम्** और **वयम्** इन दोनों पदों के स्थान में क्रमशः '**हगे**' यह आदेश किया गया है।

९७३—मागधीभाषा में जो कुछ कहा गया है अर्थात् मागधी-भाषा-सम्बन्धी जितने नियम बताए जा चुके हैं, उन से भिन्न मागधीभाषा के जो नियम हैं, वे सब नियम शौरसेनी भाषा के समान ही समझने चाहिएं। भाव यह है कि मागधी-भाषा के विधिविधान का ९५८ वें सूत्र से लेकर ९७२ वें सूत्र तक वर्णन कर दिया गया है। इसके अलावा शेष सब नियम शौरसेनी के तुल्य ही जानने चाहिएं। शौरसेनी-भाषा के जिन-जिन विधानों का मागधीभाषा में आश्रयण किया जाता है, उन्हें वृत्तिकार उदाहरणों द्वारा स्वयं संसूचित करते हैं। जैसे—१—**प्रविशतु आवुत्तः स्वामि-प्रसादाय**=पविशदु आवुत्ते शामि-पशादाय (स्वामी के प्रसाद (अनुग्रह, या हर्ष) के लिए आवुत्त-भगिनीपति (बहनोई) प्रवेश करें), **पविशदु** यहां पर शौरसेनीभाषा के ९३१ वें सूत्र से तकार को **दकार** किया गया है। २—**अरे! किमेषः महान् कलकलः?**=अले किं एशे महन्दे कलयले? (अरे यह महान कलकल (शोर) क्या है?, क्यों हो रहा है?) यहां पर शौरसेनीभाषा के ९३२ वें सूत्र से '**महन्दे**' इस शब्द के अधोवर्तमान (संयुक्त वर्ण में दूसरे) तकार को दकारादेश किया गया है। ३—**मारयत वा धरत वा। अयं तावत् स आगमः**=मालेध वा धलेध वा। अयं दाव शे आगमे (वह यह आगम (धन आदि का आगमन) इतना है, मारो अथवा धारण करो-रखो), यहां पर शौरसेनीभाषा के ९३३ वें सूत्र से '**तावत्**' इस अव्ययपद के आदिम तकार को दकार किया गया है। ४—**भो कञ्चुकिन्!**=भो कञ्चुइआ! (हे रनिवास के रखवाले!, अथवा हे लम्पट!), यहां पर शौरसेनीभाषा के ९३४ वें सूत्र से **इन्** के नकार को आकार किया गया है। ५—**भो राजन्!**=भो रायं! (हे नृप!), यहां पर शौरसेनीभाषा के ९३५ वें सूत्र से नकार को मकार किया गया है। ६—**एतु भवान्। श्रमणो भगवान् महावीरः**=एदु भवं। शमणे भयवं महावीले (आप जाएं। श्रमण भगवान महावीर), **भगवन्! कृतान्तः, यः आत्मनः पक्षमुज्झित्वा परस्य पक्षं प्रमाणी-करोषि?**=भयवं! कदन्ते ये अप्पणो पक्खं उज्झिय पलस्स पक्खं पमाणी-कलेशि? (हे भगवन्! आप यमराज

हैं, जो अपने पक्ष को छोड़कर दूसरे के पक्ष को प्रमाणित कर रहे हैं?), यहां पर शौरसेनीभाषा के ९३६ वें सूत्र से **भवद्** और **भगवद्** इन दोनों शब्दों के नकार को मकारादेश किया गया है। ७—**आर्य ! एष खलु कुमारः मलयकेतुः**=अय्य ! एशे खु कुमाले मलयकेदू (हे आर्य ! निश्चय ही यह कुमार मलयकेतु है), यहां पर शौरसेनीभाषा के ९३७ वें सूत्र से 'र्य' के स्थान में '**य्य**' यह आदेश किया गया है। ८—**अरे कुम्भिले ! कथय**=अले कुम्भिला! कधेहि (अरे कुम्भिला! कहो) यहां पर शौरसेनीभाषा के ९३८ वें सूत्र से थकार को धकार किया गया है। ९—**अपसरथ आर्याः ! अपसरथ**=ओशलध अय्या ! ओशलध (हे आर्यो ! हटो, हटो), यहां पर शौरसेनीभाषा के ९३९ वें सूत्र से '**इथ्**' के हकार को धकार किया गया है। १०—**भवति**=भोदि (वह होता है), यहां पर शौरसेनी भाषा के ९४० वें सूत्र से भूधातु के हकार को भकार किया गया है। ११—**अपूर्वः**=अपुरवे (अद्भुत), यहां पर शौरसेनीभाषा के ९४१ वें सूत्र से **पूर्व** शब्द के स्थान में '**पुरव**' यह आदेश किया गया है। १२—**किं खलु शोभनो ब्राह्मणोऽसि इति कलित्वा राज्ञा परिग्रहः दत्तः ?**=किं खु शोभणे बम्हणे शि त्ति कलिय लञ्ञा पलिग्गहे दिण्णे ? (क्या "निश्चय ही तुम अच्छे ब्राह्मण हो" यह जानकर राजा ने तुम्हें परिग्रह (सम्पत्ति) दिया है ?), यहां पर शौरसेनीभाषा के ९४२ वें सूत्र से **क्त्वा** प्रत्यय के स्थान में '**इय**' यह आदेश करके '**कलिय**' यह शब्द बनाया गया है। १३—**कृत्वा**=कडुअ (करके), **गत्वा**=गडुअ (जा करके), यहां पर शौरसेनी-भाषा के ९४३ वें सूत्र से कृ और गम् धातु से परे आए **क्त्वा** प्रत्यय के स्थान में डित् अडुअ यह आदेश करके **कडुअ** और **गडुअ** ये रूप बनाए गए हैं। १४—**अमात्यराक्षसं प्रेक्षितुं इत एव आगच्छति**=अमच्च-लक्खशं पिक्खिदुं इदो य्येव आगश्चदि [वह अमात्य (मंत्री) रूप राक्षस को अर्थात् वह राक्षस नामक मंत्री को देखने के लिए इधर ही आ रहा है], यहां पर शौरसेनी भाषा के ९४४ वें सूत्र द्वारा '**इच्**' इस तिबादेश को '**दि**' यह आदेश किया गया है। १५—**अरे ! किमेषः महान् कलकलः श्रूयते**=अले ! किं एशे महन्दे कलयले शुणीअदे ? (अरे ! यह क्या महान कोलाहल सुना जा रहा है ?), यहां पर शौरसेनी-भाषा के ९४५ वें सूत्र द्वारा '**एच्**' के स्थान में '**दे**' यह आदेश किया गया है। १६—**तस्मात् कस्मिन् गदः रुधिर-प्रियो भविष्यति?**=ता कहिं नु गदे लुहिलप्पिए भविस्सदि ? (उस से किस में रुधिर-प्रिय (रक्त को समाप्त करने वाला) रोग होगा?, यह अनिश्चित है), यहां पर पड़ा **नु** यह अव्यय-पद है। इसके अर्थ हैं—**सन्देह, अनिश्चय**। यह **संभावना** और **अवश्य** इस अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। यहां पर शौरसेनी भाषा के ९४६ वें सूत्र से भविष्यदर्थक प्रत्यय से पूर्व '**स्स**' का प्रयोग किया गया है। १७—**अहमपि भागुरायणात् मुद्रां प्राप्नोमि**=अहं पि भागुलायणादो मुद्दं पावेमि (मैं भी भागुरायण से मुद्रा (अंगूठी, लगाम, गुप्तभेद, रुपया) प्राप्त करता हूं), यहां पर शौरसेनी भाषा के ९४७ वें सूत्र से **ङसि**-प्रत्यय के स्थान में **डादो** (आदो) यह आदेश किया गया है। १८—**शृणुत इदानीम् अहं शक्रावतार-तीर्थ-निवासी धीवरः**=शुणध दाणिं हगे शक्कावयाल-तित्थ-णिवाशी धीवले (अब सुनो, मैं शक्रावतार नामक तीर्थ का रहने वाला धीवर हूं), यहां पर शौरसेनी भाषा के ९४८ वें सूत्र से **इदानीम्** इस अव्यय के स्थान में '**दाणिं**' यह आदेश किया गया है। १९—**तस्मात् यावत् प्रविशामि**=ता याव पविशामि (इसलिए जब तक मैं प्रवेश करता हूं), यहां पर शौरसेनीभाषा के ९४९ वें सूत्र से '**तस्मात्**' इस शब्द के स्थान में '**ता**' यह आदेश किया गया है। २०—**युक्तम् इदम्**=युत्तं णिमं (यह युक्त-ठीक है), **सदृशम् इदम्**=शलिशं णिमं यह समान है), यहां पर शौरसेनीभाषा के ९५० वें सूत्र से मकार से आगे, इकार के पूर्व, णकार का आगम किया है। २१—**मम एव**=मम य्येव (मेरा ही), यहां पर शौरसेनीभाषा के ९५१ वें सूत्र से '**एव**' इस अर्थ में '**य्येव**' इस निपात का प्रयोग किया गया है। २२—**हे चतुरिके !**=हञ्जे

चतुलिके! (हे चतुर दासी !),यहां पर शौरसेनी के ९५२ वें सूत्र से चेटि के आमन्त्रण में **'हञ्जे'** इस निपात को प्रयुक्त किया गया है। २३—**विस्मयः,जीवद्वत्सा मे जननी**—हीमाणहे, जीवन्तवच्छा मे जणणी [आश्चर्य है कि मेरी माता जीवद्वत्सा (जिस का बछड़ा जीवित है) है], **उदात्तराघव** नामक काव्य में एक राक्षस का यह कथन है, उसी का उद्धरण यहां दिया गया है। यहां **विस्मय** अर्थ में शौरसेनी-भाषा के ९५३ वें सूत्र से **'हीमाणहे'** इस निपात का प्रयोग किया गया है। तथा—**खेदः, परिश्रान्तो वयमेतेन निजविधेः दुर्व्यवसितेन**—हीमाणहे, पलिस्सन्ता हगे एदेण नियविधिणो दुव्ववशिदेण [खेद है कि हम परिष्वङ्ग (आलिङ्गन) करते हुए अपने भाग्य की प्रतिकूलता से फंस गए], यहां पर निर्वेद-ग्लानि अर्थ में शौरसेनीभाषा के ९५३ वें सूत्र से **'हीमाणहे'** इस निपात का विधान कर रखा है। यह वाक्य **'विक्रान्त भीम'** नामक काव्य में एक राक्षस की ओर से कहा गया है,उसी का उल्लेख यहां किया गया है। २४—**ननु अवसरौपसर्पणीयाः राजानः ?**—णं अवशलोपशप्पणीया लायाणो ? [क्या राजा-लोग अवसर (मौके) के अनुसार चलने वाले होते हैं ?], यहां पर शौरसेनीभाषा के ९५४ वें सूत्र से **'ननु'** इस अर्थ में **'णं'** इस निपात का प्रयोग किया गया है। २५—**हर्षः, एतया सूर्मिलया सुपरिघटितो भवान्**—अम्महे एआए शुम्मिलाए शुपलिगढिदे भवं [यह हर्ष की बात है कि आप सूर्मिला (नारी) से सुपरिघटित हैं,उस ने आप को खूब ग्रहण कर रखा है]यहां पर शौरसेनीभाषा के ९५५ वें सूत्र से हर्षार्थ में **'अम्महे'** इस निपात का प्रयोग किया गया है। २६—**हीही, सम्पन्नाः मे मनोरथाः प्रियवयस्यस्य**—ही-ही संपन्ना मे मणोलधा पियवयस्सस्स (आहा, आहा !, मेरे प्रिय मित्र के मनोरथ पूर्ण हो गए), यहां पर शौरसेनीभाषा के ९५६ वें सूत्र से विदूषकों के हर्ष की अभिव्यक्ति में **'हीही'** इस निपात का प्रयोग किया गया है।

९५७ वें सूत्र के अनुसार मागधीभाषा में भी प्राकृतभाषा के विधिविधान का आश्रयण किया जाता है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि प्राकृतभाषा के प्रकरण में पठित चतुर्थ सूत्र से लेकर ९३१ वें सूत्र तक जितने भी सूत्र हैं और उन में जो-जो उदाहरण हैं, इन के मध्य में अमुक उदाहरण (जो मागधी-भाषा के साथ मिलते जुलते हैं) तदवस्थ (प्राकृत के समान) ही मागधी में संगृहीत होते हैं, और अमुक उदाहरण उन से (प्राकृत-भाषा-प्रकरण में पठित उदाहरणों से) भिन्न अमुक प्रकार के (मागधी-भाषा-सम्मत नियमों से नियमित) होते हैं,यह विभाग-पर्यालोचन (सम्यक् विवेचन)करके स्वयं ही जान लेना चाहिए। भाव यह है मागधी भाषा के विधिविधान में प्राकृत-भाषा तथा शौरसेनी भाषा के विधि-विधान का भी आश्रयण होता है। लोप, आगम, आदेश आदि जिन कार्यों का निर्देश प्राकृत तथा शौरसेनी भाषा में कर रखा है,उनका मागधी भाषा में भी संग्रहण कर लेना चाहिए किन्तु ध्यान रहे कि जिनका मागधीभाषा के नियमों के साथ विरोध नहीं है, उन्हीं नियमों का इस भाषा में संग्रहण होता है,अन्यों का नहीं। जैसे—प्राकृत भाषा में संयुक्त षकार का ३४८ वें सूत्र से लोप होता है, किन्तु मागधी-भाषा ९६० वें सूत्र से संयुक्त षकार को सकारादेश का विधान करती है। ऐसी दशा में (षकारलोप प्रसंग में) मागधीभाषा में प्राकृत-भाषा का नियम लागू नहीं होगा। इसी भान्ति अन्यत्र भी समझ लेना चाहिए।

गिरा मागधी का हुआ, परिपूरण व्याख्यान।
पढ़ो छात्रगण ! ध्यान से, विज्ञ बनो "मुनि ज्ञान"॥

❋ मागधी-भाषा-विवेचन समाप्त ❋

★ अथ पैशाचीभाषा-प्रकरणम् ★

९७४—ज्ञो ञ्ञः पैशाच्याम् । ८ । ४ । ३०३ । पैशाच्यां भाषायां ज्ञस्य स्थाने ञ्ञो भवति । पञ्ञा । सञ्ञा । सव्वञ्ञो । ञ्ञानं । विञ्ञानं ।

९७५—राज्ञो वा चिञ् ।८।४।३०४। पैशाच्यां राज्ञ इति शब्दे यो ज्ञकारः तस्य चिञ् आदेशो वा भवति । राचिञा लपितं, रञ्ञा लपितं । राचिञो धनं, रञ्ञो धनं । ज्ञ इत्येव । राजा ।

९७६—न्य-ण्योर्ञ्ञः । ८ । ४ । ३०५ । पैशाच्यां न्य-ण्योः स्थाने ञ्ञो भवति । कञ्ञका । अभिमञ्ञू । पुञ्ञ-कम्मो । पुञ्ञाहं ।

९७७—णो नः ।८।४।३०६। पैशाच्यां णकारस्य नो भवति । गुन-गन-युत्तो । गुनेन ।

९७८—तदोस्तः । ८ । ४ । ३०७ । पैशाच्यां तकार-दकारयोस्तो भवति । तस्य । भगवती । पव्वती । सतं । दस्य । मतन-परवसो । सतनं । तामोतरो । पतेसो । वतनकं । होतु । रमतु । तकारस्याऽपि तकारविधानमादेशान्तर-बाधनार्थम् । तेन पताका, वेतिसो इत्याद्यपि सिद्धं भवति ।

९७९—लो ळः । ८ । ४ । ३०८ । पैशाच्यां लकारस्य ळकारो भवति । सीळं । कुळं । जळं । सळिळं । कमळं ।

९८०—श-षोः सः ।८।४।३०९। पैशाच्यां श-षोः सो भवति । श । सोभति । सोभनं । ससी । सक्को । सङ्खो । ष । विसमो । किसानो ! । न क-ग-च-जादि-षट्-शम्यन्त-सूत्रोक्तम् [४.३२४] इत्यस्य बाधकस्य बाधनार्थोऽयं योगः ।

९८१—हृदये यस्य पः । ८।४।३१०। पैशाच्यां हृदयशब्दे यस्य पो भवति । हितपकं । किं पि, किं पि हितपके अत्थं चिन्तयमानी ।

९८२—टोस्तुर्वा ।८।४।३११। पैशाच्यां टोः स्थाने तुर्वा भवति । कुतुम्बकं,कुटुम्बकं ।

९८३—क्त्वस्तूनः । ८ । ४ । ३१२ । पैशाच्यां क्त्वा-प्रत्ययस्य स्थाने तून इत्यादेशो भवति । गन्तून । रन्तून । हसितून । पठितून । कथितून ।

९८४—द्धून-त्थूनौ ष्ट्वः । ८ । ४ । ३१३ । पैशाच्यां ष्ट्वा इत्यस्य स्थाने द्धून, त्थून इत्यादेशौ भवतः । पूर्वस्यापवादः । नद्धून, नत्थून । तद्धून, तत्थून ।

९८५—र्य-स्न-ष्टां रिय-सिन-सटाः क्वचित् । ८ । ४ । ३१४ । पैशाच्यां र्य-स्न-ष्टां स्थाने यथासंख्यं रिय-सिन-सट इत्यादेशाः क्वचिद् भवन्ति । भार्या,भारिया । स्नातं,सिनातं । कष्टं, कसटं । क्वचिदिति किम् ? सुज्जो । सुनुसा । तिट्ठो ।

९८६—**क्यस्येय्यः** । ८ । ४ । ३१५ । पैशाच्यां क्य-प्रत्ययस्य इय्य इत्यादेशो भवति । गिय्यते । दिय्यते । रमिय्यते । पठिय्यते ।

९८७—**कृगो डीरः** । ८ । ४ । ३१६ । पैशाच्यां कृगः परस्य क्यस्य स्थाने डीर इत्यादेशो भवति । पुधुम-तंसने सव्वस्स य्येव संमानं कीरते ।

९८८—**यादृशादेर्दुस्तिः** । ८ । ४ । ३१७ । पैशाच्यां यादृश इत्येवमादीनां दृ इत्यस्य स्थाने ति इत्यादेशो भवति । यातिसो । तातिसो । केतिसो । एतिसो । भवातिसो । अञ्ञातिसो । युम्हातिसो । अम्हातिसो ।

९८९—**इचेचः** । ८ । ४ । ३१८ । पैशाच्यामिचेचोः स्थाने तिरादेशो भवति । वसुआति । भोति । नेति । तेति ।

९९०—**आत्तेश्च** । ८ । ४ । ३१९ । पैशाच्यामकारात्परयोः इचेचोः स्थाने तेः, चकारात् तिश्चादेशो भवति । लपते, लपति । अच्छते, अच्छति । गच्छते, गच्छति । रमते, रमति । आदिति किम् ? होति । नेति ।

९९१—**भविष्यत्येय्य एव** । ८ । ४ । ३२० । पैशाच्यामिचेचोः स्थाने भविष्यति एय्य एव भवति, न तु स्सिः । तं तद्धून चिन्तितं रञ्ञा का एसा हुवेय्य ।

९९२—**अतो ङसेर्डातो-डातू** । ८ । ४ । ३२१ । पैशाच्यामकारात्परस्य ङसेर्डितौ आतो आतु इत्यादेशौ भवतः । ताव च तीए तूरातो य्येव तिट्ठो । तूरातु । तुमातो, तुमातु । ममातो, ममातु ।

९९३—**तदिदमोष्टा नेन स्त्रियां तु नाए** ।८।४।३२२। पैशाच्यां तदिदमोः स्थाने टाप्रत्ययेन सह नेन इत्यादेशो भवति, स्त्रीलिङ्गे तु नाए इत्यादेशो भवति । तत्थ च नेन कतसिनानेन । स्त्रियाम् । पूजितो च नाए पातग्ग-कुसुम-प्पतानेन । टेति किम् ? एवं चिन्तयन्तो गतो सो ताए समीपं ।

९९४—**शेषं शौरसेनी-वत्** । ८ । ४ । ३२३ । पैशाच्यां यदुक्तं ततोऽन्यच्छेषं पैशाच्यां शौरसेनीवद् भवति । अध ससरीरो भगवं मकर-धजो । एत्थ परिब्भमन्तो हुवेय्य । एवंविधाए भगवतीए कधं तापस-वेस-गहनं कतं । एतिसं अतिट्ठ-पुरवं महाधनं तद्धून । भगवं ! यति मं वरं पयच्छसि । राजं ! च दाव लोकं । ताव च तीए तूरातो य्येव तिट्ठो सो आगच्छमानो राजा ।

९९५—**न क-ग-च-जादि-षट्-शम्यन्त-सूत्रोक्तम्** । ८ । ४ । ३२४ । पैशाच्यां क-ग-च-ज-त-द-प-य-वां प्रायो लुक् [१-१७७] इत्यारभ्य षट्-शमी-शाव-सुधा-सप्तपर्णेष्वादेश्छः [१. २६५] इति यावद्यानि सूत्राणि तैर्यदुक्तं कार्यं तन्न भवति । मकरकेतू । सगर-पुत्त-वचनं । वि-

जयसेनेन लपितं। मतनं। पापं। आयुधं। तेवरो। एवमन्यसूत्राणामप्युदाहरणानि द्रष्टव्यानि।

※ समाप्तं पैशाची-भाषा-प्रकरणम् ※

★ अथ पैशाची-भाषा-विवेचनम् ★

वीरं तीर्थपतिं नत्वा, ज्ञानालोक-प्रसारकम्।
वन्द्यवन्द्यं गुरुं नत्वा, पैशाची अभिधीयते॥

मागधी-भाषा-विवेचनानन्तरं पैशाची-भाषाया विधिविधानं प्रतिपादयत्याचार्यः।

९७४—प्रज्ञा। प्रज्ञा+सि। ३५० सू० रेफलोपे, ९७४ सू० ज्ञस्य ञ्ञ इत्यादेशे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **पञ्ञा** इति भवति। **संज्ञा**। संज्ञा+सि। २८ सू० अनुस्वारस्य लोपे, पूर्ववदेव **सञ्ञा** इति भवति। **सर्वज्ञः**। सर्वज्ञ+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ज्ञस्य ञ्ञ इत्यादेशे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सव्वञ्ञो** इति भवति। **ज्ञानम्**। ज्ञान+सि=ञ्ञान+सि। ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **ञ्ञानं** इति भवति। **विज्ञानम्**। विज्ञान+सि। पूर्ववदेव **विञ्ञानं** इति साध्यम्।

९७५—राज्ञा। ९७५ सू० ज्ञस्य विकल्पेन चिञ् इत्यादेशे **राचिञा** आदेशाभावे ९७४ सू० ज्ञस्य ञ्ञ इत्यादेशे राञ्ञा, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे रञ्ञा इति भवति। **लपितम्**। २३ सू० मकारानुस्वारे **लपितं** इति भवति। **राज्ञो धनम्**=राचिञो (२३ सू० मकारानुस्वारे) **धनं** आदेशाभावे पूर्ववदेव **रञ्ञो धनं** इति भवति। **ज्ञ इत्येव**। यत्र ज्ञो भवति तत्रैव ९७५ सूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति, नान्यत्र। अतएव **राजा** इत्यत्र ज्ञस्याभावात् चिञादेशो न जातः। संस्कृततुल्यमेव पैशाच्यां प्रयुज्यते।

९७६—कन्यका। कन्यका+सि। ९७६ सूत्रेण न्यस्य ञ्ञ इत्यादेशे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **कञ्ञका** इति भवति। **अभिमन्युः**। अभिमन्यु+सि=अभिमञ्ञु+सि। ५०८ सू० उकारदीर्घे, सेर्लोपे **अभिमञ्ञू** इति भवति। **पुण्यकर्मा**। पुण्यकर्मन्+सि। ण्यस्य ञ्ञ इत्यादेशे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० मकारद्वित्वे, ११ सू० नकारस्य लोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पुञ्ञकम्मो** इति भवति। **पुण्याहम्**। ण्यस्य ञ्ञ इत्यादेशे, २३ सू० मकारानुस्वारे **पुञ्ञाहं** इति भवति।

९७७—गुण-गण-युक्तः। गुण-गणेन युक्तः। **गुण-गणयुक्त+सि**। ९७७ सू० उभयत्रापि णकारस्य नकारे, ३४८ सू० ककारलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **गुन-गन-युत्तो** इति भवति। अत्र २४५ सू० यकारस्य जकारप्राप्तिरासीत् किन्तु ९९५ सूत्रेण सा निषिद्धा। **गुणेन**। ९७७ सू० णकारस्य नकारे **गुनेन** इति भवति।

९७८—भगवती। १७७ सू० तकारलोपप्राप्तौ ९७८ सू० तकारस्य तकारे एव विहिते **भगवती** इति भवति। **पार्वती**। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १७७ सू० तकार-लोप-प्राप्तौ प्रस्तुतसूत्रेण तकारस्य तकार एव स्थिते **पव्वती** इति भवति। **शतम्**। ९८० सू० शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव तकारस्य तकारे एव स्थिते, २३ सू० मकारानुस्वारे **सतं** इति भवति। **मदन-परवशः**। मदनेन-कामदेवेन परवशः-पराधीनः। मदन-परवश+सि। १७७ सू० दकार-लोप-प्राप्तौ प्रस्तुतसूत्रेण दकारस्य तकारे, ९८० सू० शकारस्य सकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परे-ऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **मतनपरवसो** इति भवति। **सदनम्**। सदन+अम्। १७७ सू० दकारलोप-प्राप्तौ प्रस्तुत-सूत्रेण दकारस्य तकारे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **सतनं** इति भवति।

दामोदरः । दामोदर+सि । दकारलोप-प्राप्तौ उभयत्रापि दकारस्य तकारे, पूर्ववदेव **तामोतरो** इति भवति । **प्रदेशः** । प्रदेश+सि । ३५० सू० रेफलोपे, दकारलोपप्राप्तौ दकारस्य तकारे, ९८० सू० शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **पतेसो** इति भवति । **वदनकम्** । दकारलोपप्राप्तौ दकारस्य तकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **वतनकं** इति भवति । **भवतु** । भूधातुः सत्तायाम् । भू+तुव् । ७३१ सू० भूधातोः हो इत्यादेशे, ६६२ सू० तुवः दु इत्यादेशे, दकारलोपप्राप्तौ प्रस्तुतसूत्रेण दकारस्य तकारे **होतु** इति भवति । **रमताम्** । रमु क्रीडायाम् । रम्+ताम् । ९१८ सू० अकारागमे, ६६२ सू० ताम् इत्यस्य दु इत्यादेशे, दकारलोपप्राप्तौ प्रस्तुतसूत्रेण दकारस्य तकारे **रमतु** इति भवति । **तकारस्याऽपीति** । प्रस्तुतसूत्रेण तकारदकारयोः स्थाने तकारादेशो विहितः, किन्तु तकारस्य स्थाने पुनः तकारविधानं किमर्थमिति प्रश्नः । उत्तरयति वृत्तिकारो यत्तकारस्यापि तकारविधानं तत्तकार-स्थाने आदेशान्तरबाधनार्थम् । अन्यः आदेशः, आदेशान्तरम्, तस्य बाधनार्थमिति भावः । तेन **पताका, वेतिसो** इत्यादयः प्रयोगाः सिध्यन्ति । यथा – **पताका** इत्यत्र २०६ सू० तकारस्य डकारप्राप्तिरासीत्किन्तु प्रस्तुतसूत्रेण तस्य परिहारो विहितः । **वेतसः** । वेतस+सि । ४६ सू० आदेरेकारस्य इकारे, २०७ सू० तकारस्य डकार-प्राप्तिरासीत् परन्तु प्रस्तुतसूत्रेण सा निषिद्धा, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **वेतिसो** इति भवति ।

९७९—शीलम् । शील+सि । ९८० सू० शकारस्य सकारे, ९७९ सू० लकारस्य लकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **सीलं** इति भवति । एवमेव—**कुलम्** । कुल+सि=कुलं, **जलम्** । जल+सि=जलं, **सलिलम्** । सलिल+सि=सलिलं, **कमलम्** । कमल+सि=कमलं इति साध्यम् । **लकारस्य स्थाने लकार-विधानम्** । २५५, २५६ तथा २५७ सूत्रेण लकारस्य रेफः, णकारश्च जायते, पैशाची-भाषायां तन्निवृत्त्यर्थकं सूत्रमिदं बोध्यम् । अत्र तु सूत्राणां पर्यन्यस्वृत्तित्वात् प्रवृत्तिर्जाता ।

९८०—शोभते । ९८० सू० शकारस्य सकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे, ९८९ सू० इचः स्थाने ति इत्यादेशे **सोभति** इति भवति । **शोभनम्** । प्रस्तुतसूत्रेण शकारस्य सकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ९७७ सू० णकारस्य नकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **सोभनं** इति भवति । **शशी** । प्रस्तुतसूत्रेण उभयत्रापि शकारस्य सकारे **ससी** इति भवति । **शक्रः** । शक्र+सि । प्रस्तुतसूत्रेण शकारस्य सकारे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० ककारद्वित्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सक्को** इति भवति । **शङ्खः** । शङ्ख+सि । पूर्ववदेव **सङ्खो** इति भवति । **विषमः** । विषम+सि । प्रस्तुतसूत्रेण षकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **विसमो** इति भवति । ***कृशानो** ! । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, प्रस्तुतसूत्रेण शकारस्य सकारे **किसानो** ! इति भवति । **वृषाणः** इति पाठे तु ऋकारस्य इकारे, प्रस्तुतसूत्रेण षकारस्य सकारे, ९७७ सू० णकारस्य नकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, पूर्ववदेव **विसाणो** इति भवति । **न क-ग-च-जादि** । २६० सूत्रेण शकारस्य षकारस्य च सकारो भवत्येव तर्हि प्रस्तुतसूत्रस्य काऽऽसीदावश्यकता ? इति प्रश्नः । प्रश्नस्यैतस्य समाधानं कुर्वन् वृत्तिकारोऽभणद् यद् १७७ सूत्रादारभ्य २६५ सूत्र-पर्यन्तं यानि सूत्राणि सन्ति, तैः सूत्रैः यद्यत् कार्यमुक्तं तत्सर्वं पैशाच्यां ९९५ सूत्रेण निषिद्धमतएव प्रस्तुतसूत्रस्याऽऽसीदावश्यकता । अयं भावः—९९५ सूत्रस्य बाधनार्थमेव प्रस्तुतसूत्रस्य योगः-रचना विहितोऽस्ति ।

९८१—हृदयकम् । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, ९७८ सू० दकारस्य तकारे, ९८१ सू० यकारस्य पकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **हितपकं** इति भवति । **किम्**=किं, प्रक्रिया ५६९ सूत्रे ज्ञेया । **अपि**—पि, प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया । **हृदयके** । हृदयक+ङि । पूर्ववदेव हितपक+ङि इति जाते, ५०० सू० ङि-

*अग्न्यर्थकस्य कृशानुशब्दस्य सम्बोधनमिदम् ।

प्रत्ययस्य स्थाने ङित्-एकारे, ङिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **हिलपके** इति भवति । **अर्थम्** । अर्थ+अम् । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० थकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, ४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **अत्थं** इति भवति । **चिन्तयन्ती** । चिती चिन्तायाम् । संस्कृत-नियमेन णिजन्तत्वेन चिन्तय्+शतृ+सि इति जाते, ९१० सू० अकारागमे, ६७० सू० शतुः स्थाने माण इत्यादेशे, ५२१ सू० ङी(ई)प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ११।२७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **चिन्तयमाणी** इति भवति ।

९८२—कुदुम्बकम् । कुदुम्बक+सि । ९८२ सू० दु इत्यस्य स्थाने वैकल्पिके लु इत्यादेशे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **कुलुम्बकं, कुदुम्बकं** इति भवति ।

९८३—गन्त्वा । गम्लृ (गम्) गतौ । गम्+क्त्वा । २३ सू० मकारानुस्वारे, ९८३ सू० क्त्वः स्थाने तून इत्यादेशे, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्ये **गन्तून** इति भवति । **रन्त्वा** । रमु-रम् क्रीडायाम् । रम्+क्त्वा । पूर्ववदेव **रन्तून** इति भवति । एवमेव **हसित्वा** । हस् हासे । हस्+क्त्वा । ९१० सू० अकारागमे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे, पूर्ववदेव **हसितून** इति भवति । **पठित्वा** । पठ् पठने । पठ्+क्त्वा । पूर्ववदेव **पठितून** इति भवति । इत्यत्र ९९९ सू० ठकारस्य ढकारप्राप्तिरासीत्किन्तु ९९५ सू० सा निषिद्धा । **कथयित्वा** । कथ् कथने । कथ्+क्त्वा । ९३८ सू० थकारस्य धकारे, हसितून-वदेव **कधितून** इति भवति ।

९८४—पूर्वस्यापवादः । पूर्वगतस्य ९८३ सूत्रस्य अपवादसूत्रमिदं बोध्यम् । **नष्ट्वा** । ९८४ सू० ष्ट्वा इत्यस्य स्थाने द्धून, त्थून इत्यादेशौ, ततः **नद्धून, नत्थून** इति भवति । **दृष्ट्वा** । १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, ९७८ सू० दकारस्य तकारे, नद्धून-वदेव **तद्धून, तत्थून** इति भवति ।

९८५—भार्या । ९८५ सू० र्यस्य रिय इत्यादेशे **भारिया** इति भवति । **स्नातम्** । प्रस्तुतसूत्रेण स्नस्य सिन इत्यादेशे, २३ सू० मकारानुस्वारे **सिनातं** इति भवति । **कष्टम्** । कष्ट+सि । प्रस्तुतसूत्रेण ष्टस्य सट इत्यादेशे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **कसटं** इति भवति । **क्वचिदिति** । बहुलाधिकारात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिः कुत्रचिदेव भवति, नतु सर्वत्र । यथा—**सूर्यः** । सूर्य+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २९५ सू० र्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारद्वित्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सुज्जो** इति भवति । **स्नुषा** । बाहुल्येन ३८४ सूत्रेण उकारस्य विकरणे जाते, ९८० सू० षकारस्य सकारे **सुनुसा** इति भवति । **दृष्टः** । दृष्ट+सि । ९७८ सू० दकारस्य तकारे, १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **तिट्ठो** इति भवति । उक्तेषु प्रयोगेषु बाहुल्येन प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः ।

९८६—गीयते । गै शब्दे । गै+क्य+ते । इत्यत्र ९८६ सू० क्यस्य इय्य इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० ते इत्यस्य इच इत्यादेशे, ९९० सू० इचः स्थाने ते इत्यादेशे **गिय्यते** इति भवति । **दीयते** । डुदाञ् (दा) दाने । दा+क्य+ते । पूर्ववदेव **तिय्यते** इति भवति । **रम्यते** । रमु-रम् क्रीडायाम् । रम्+क्य+ते । पूर्ववदेव **रमिय्यते** एवमेव **पठ्यते** । पठ् पठने । पठ्+क्य+ते— **पठिय्यते** इति भवति ।

९८७—प्रथमदर्शने । ३५० सू० उभयत्रापि रेफलोपे, ५५ सू० पकारस्य थकारस्य चाकारस्य उकारे, ९३८ सू० थकारस्य धकारे, ३४९ सू० शकारस्य लोपे **पुधुमदंसने** इति भवति । **सर्वस्य** । सर्व+ङस् । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ४९९ सू० ङसः स्थाने स्स इत्यादेशे **सव्वस्स**

इति भवति। **एव=एवेव**, इत्यस्य प्रक्रिया ९५१ सूत्रे ज्ञेया। **सन्मानम्**। सन्मान+सि। २५ सू० नकारस्यानुस्वारे,५१४ सू० सेर्मकारे,२३ सू० मकारानुस्वारे **संमानं** इति भवति। **क्रियते**। डुकृञ् (कृ) करणे। कृ+क्य+ते। ९८७ सू० क्यस्य स्थाने डीर (ईर) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे, ९९० सू० इचः स्थाने ते इत्यादेशे **कीरते** इति भवति।

९८८—यादृशः। यादृश+सि। इत्यत्र ९८८ सू० दृ इत्यस्य ति इत्यादेशे, ९८० सू० शकारस्य सकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **यातिसो** इति भवति। अत्र ९९३ सूत्रेण पैशाचीवत्त्वात् ९९५ सूत्रबलेन २४५ सूत्रेण प्राप्तः यकारस्य जकारो न जातः। एवमेवाऽग्रेऽपि बोध्यम्। **तादृशः**। तादृश+सि। पूर्ववदेव **तातिसो** इति भवति। **कीदृशः**। कीदृश+सि। १०५ सू० ईकारस्य एकारे, पूर्ववदेव **केतिसो** इति भवति। **ईदृशः**। ईदृश+सि। ईकारस्य एकारे, पूर्ववदेव **एतिसो** इति भवति। **भवादृशः**। भवादृशः+सि। पूर्ववदेव **भवातिसो** इति भवति। **अन्यादृशः**। अन्यादृश+सि। ९७६ सू० न्यस्य स्थाने ञ्ञ इत्यादेशे,पूर्ववदेव **अञ्ञातिसो** इति भवति। **युष्मादृशः**। युष्मादृश+सि। ३४५ सू० ष्मस्य स्थाने म्ह इत्यादेशे, पूर्ववदेव युम्हातिसो २४६ सू० यकारस्य जकारे **जुम्हातिसो** इति भवति। **अस्मादृशः**। अस्मादृश+सि। ३४५ सू० स्मस्य म्ह इत्यादेशे, पूर्ववदेव **अम्हातिसो** इति भवति।

९८९—वसुआति। उत्पूर्वकः वा-धातुः ऊर्ध्वगतौ। उद्वा+तिव्। इत्यत्र ६८२ सू० उद्वाधातोः स्थाने वसुआ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे, ९८९ सू० इचः स्थाने ति इत्यादेशे **वसुआति** इति भवति। **भवति**। भू सत्तायाम्। भू+तिव्। ७३१ सू० भूधातोः हो इत्यादेशे, १११८ सू० भाषाप्रत्यये, ९४० सू० हकारस्य भकारे,पूर्ववदेव **भोति** इति भवति। **नयति**। णीञ्-(नी)-धातुः नयने। नी+तिव्। ९०८ सू० ईकारस्य एकारे, पूर्ववदेव **नेति** इति भवति। **ददाति**। डुदाञ् (दा) दाने। दा+ति। ९७८ सू० दकार-तकारे, ९०९ सू० आकारस्य एकारे, पूर्ववदेव **तेति** इति भवति।

९९०—लपति। लप् व्यक्तायां वाचि। लप्+तिव्। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे, ९९० सू० इचः स्थाने ते, ति इत्यादेशौ, ततः **लपते, लपति** इति भवति। **आस्ते**। आस् उपवेशने। आस्+ते। ८८६ सू० सकारस्य छकारे,३६० सू० छकारद्वित्वे,३६१ सू० पूर्व-छकारस्य चकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, पूर्ववदेव **अच्छते, अच्छति** इति भवति। **गच्छति**। गम्लृ (गम्) धातुः गतौ। गम्+तिव्। ८८६ सू० मकारस्य छकारे, पूर्ववदेव **गच्छते, गच्छति** इति भवति। **रमते**। रमु क्रीडायाम्। रम्+ते। पूर्ववदेव—**रमते,रमति** इति भवति। **आदिति किम्**। अकारान्त-धातुष्वेव प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जायते,नान्यत्र। यथा—**भवति**। भू सत्तायाम्। भू+तिव्। ७३१ सू० भूधातोः हो इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे, ९८९ सू० इचः स्थाने ति इत्यादेशे **भोति** इति भवति। **नयति**। णीञ्-(नी)-नयने। नी+तिव्=नेति,प्रक्रिया ९८९ सूत्रे ज्ञेया। अत्र अकारान्तत्वाभावात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावो बोध्यः।

९९१—ताम्। तद्+अम्। ११ सू० दकारलोपे, स्त्रीत्वादाप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, ५२५ सू० अमि परे ह्रस्वे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **तं** इति भवति। **तद्धूण**=तद्धून, प्रक्रिया ९८४ सूत्रे ज्ञेया। **चिन्तितम्**। चिती-धातुः चिन्तायाम्। संस्कृतनियमेन चिन्त्+क्त इति जाते, ९१० सू० अकारागमे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, सिप्रत्यये, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे, **चिन्तितं** इति भवति। **रञ्ञा**। रज्ञा, प्रक्रिया ९७५ सूत्रे ज्ञेया। **का**। किम्+सि। ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, स्त्रीत्वादाप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, १।१।३७। सू०

सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **का** इति भवति । **एषा** एतद्+सि=एसा, प्रक्रिया ५७४ सूत्रे ज्ञेया । **भविष्यति** । भू सत्तायाम् । भू+स्यति । ७२१ सू० भू-धातोः स्थाने हुव इत्यादेशे, ६२८ सू० स्यतेः स्थाने इ चादेशे, ९९१ सू० इचः स्थाने एय्य इत्यादेशे, १११८ सू० भाषाव्यत्यये, ९४६ सूत्रेण प्राप्तस्य 'स्सि' इत्यस्य विकरणस्य च निषेधे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **हुवेय्य** इति भवति ।

९९२—तावत् । अव्ययपदमिदम् । ११ सू० तकारलोपे **ताव** इति भवति । **च** । अव्ययपदमिदम् । संस्कृततुल्यमेव पैशाची-भाषायां प्रयुज्यते । **तया** । तद्+टा=तीए, प्रक्रिया ४६४ सूत्रे ज्ञेया । अत्र १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवं न जातम् । **दूरात्** । दूर+ङसि । ९७८ सू० दकारस्य तकारे, ९९२ सू० ङसेः स्थाने डातो (आतो) तथा डातु (आतु) इत्यादेशौ, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **तूरातो, तूरातु** इति भवति । **एव**=य्येव, प्रक्रिया ९५१ सूत्रे ज्ञेया । **दृष्टः**=तिट्ठो, प्रक्रिया ९८५ सूत्रे ज्ञेया । **त्वत्** । युष्मद्+ङसि । ५८५ सू० युष्मदः स्थाने तुम इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण ङसेः स्थाने डातो, डातु इत्यादेशौ, पूर्ववदेव **तुमातो, तुमातु** इति भवति । **मत्** । अस्मद्+ङसि । ६०० सू० ङसः स्थाने मम इत्यादेशे, तुमातो-तुमातु-वदेव **ममातो, ममातु** इति भवति ।

९९३—तत्र । अव्ययपदमिदम् ४३२ सूत्रेण त्र इत्यस्य स्थाने त्थ इत्यादेशे **तत्थ** इति भवति । **च** । अव्ययपदमिदम् । संस्कृत-समानमेव पैशाच्यां प्रयुज्यते । **तेन** । तद्+टा । ९९३ सू० टाप्रत्ययेन सह तदः स्थाने नेन इत्यादेशे **नेन** इति भवति । **कृत-स्नानेन** । कृतः स्नानो येन, तेन कृतस्नानेन । इत्यत्र १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, ९८५ सू० स्नस्य स्थाने सिन इत्यादेशे **कतसिनानेन** इति भवति । **स्त्रियाम्** । स्त्रीलिङ्गे तु टाप्रत्ययेन सह तद्-शब्दस्य स्थाने नाए इत्यादेशो भवतीति भावः । यथा—**पूजितः** । पूजित+सि । ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पूजितो** इति भवति । **च** । अव्ययपदमिदम् । संस्कृतसममेव पैशाच्यां प्रयुज्यते । **तया** । तद्+टा । प्रस्तुतसूत्रेण स्त्रीलिङ्गे तद्+टा इत्यस्य नाए इत्यादेशे **नाए** इति भवति । **पादाग्रकुसुमप्रदानेन** । ९७८ सू० उभयत्रापि दकारस्य तकारे, ३५० सू० उभयत्रापि रेफलोपे, ३६० सू० गकारस्य पकारस्य च द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **पातग्ग-कुसुमप्पतानेन** इति भवति । **टेति किम्** ? । टाप्रत्ययेन सहैव प्रस्तुतस्य सूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति, नान्यथा । यथा—**एवम्** । अव्ययपदमिदम् । २३ सू० मकारानुस्वारे **एवं** इति भवति । **चिन्तयन्** । चिती धातुः चिन्तायाम् । णिजन्तत्वेन संस्कृतसममेव चिन्तय्+शतृ इति जाते, ९१० सू० अकारागमे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, सिप्रत्यये, सेर्डोः, पूर्ववदेव **चिन्तयन्तो** इति भवति । **गतः** । गत+सि । पूर्ववदेव **गतो** इति भवति । **सः** । तद्+सि=सो, प्रक्रिया ५७५ सूत्रे ज्ञेया । **तस्याः** । तद्+ङस् । ११ सू० दकारलोपे, स्त्रीत्वादाप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घसन्धौ, ५१८ सू० ङसः स्थाने एकारे **ताए** इति भवति । अत्र ङस्-प्रत्ययत्वेन प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः । **समीपम्** । २३ सू० मकारानुस्वारे **समीपं** इति भवति ।

९९४—पैशाच्याम् । पैशाचीभाषायां यदुक्तं ततोऽन्यत्सर्वं शौरसेनी-भाषा-तुल्यमेव बोध्यम् । यथा—**अथ** । अव्ययपदमिदम् । ९३८ सू० थकारस्य धकारे **अध** इति भवति । **सशरीरः** । सशरीर+सि । ९८० सू० शकारस्य सकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **ससरीरो** इति भवति । **भगवान्**=भगवं, प्रक्रिया ९३६ सूत्रे ज्ञेया । **मकरध्वजः** । मकरध्वज+सि । ३५० सू० वकारलोपे, वैकल्पिकत्वात् २६८ सू० धकारस्य द्वित्वाभावे, पूर्ववदेव **मकरधओ** इति भवति । **अत्र**=एत्थ, प्रक्रिया ५७ सूत्रे ज्ञेया । **परिभ्रमन्** । परिपूर्वकः भ्रमुधातुः परिभ्रमणे । परिभ्रम्+शतृ । ३५० सू० रेफलोपे ३६० सू० भकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारे, ९१० सू० अकारागमे, ६७० सू० शतुः न्त इत्यादेशे, सिप्रत्यये, पूर्ववदेव **परिब्भमन्तो** इति भवति । **भविष्यति**=हुवेय्य, प्रक्रिया ९९१ सूत्रे ज्ञेया ।

एवंविधया । एवंविधा+टा । ५१८सू० टास्थाने एकारे **एवंविधाए** इति भवति । **भगवत्या** । भगवती+टा । ५१८ सू० टास्थाने एकारे **भगवतीए** इति भवति । **कथम्**=कधं,प्रक्रिया ९३८ सूत्रे ज्ञेया । **तापस-वेष-ग्रहणम्** । तापस-वेष-ग्रहण+सि । ९८० सू० षकारस्य सकारे, ३५० सू० रेफलोपे, वैकल्पिकत्वात् ३६८ सू० गकारस्य द्वित्वाभावे, ९७७ सू० णकारस्य नकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे, **तापसवेसगहनं** इति भवति । **कुलम्** । १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **कतं** इति भवति । **ईदृशम्** । १०५ सू० ईकारस्य एकारे, ९८८ सू० दृ इत्यस्य ति इत्यादेशे, ९८० सू० शकारस्य सकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **एतिसं** इति भवति । **अदृष्टपूर्वम्** । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, ९७८ सू० दकारस्य तकारे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, ९४१ सू० पूर्वशब्दस्य पुरव इत्यादेशे, २३ सू० मकारानुस्वारे **अतिट्ठुपुरवं** इति भवति । **महाधनम्** । २३ सू० मकारानुस्वारे **महाधनं** इति भवति । **दृष्ट्वा**=तद्धून, प्रक्रिया ९८४ सूत्रे ज्ञेया । **भगवन्** ! । भगवद्+सि । संस्कृतनियमेन भगवन्+सि इति जाते, ९३५ सू० नकारस्य मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे, १।१।३७ सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **भगवं** ! इति भवति । **यदि** । अव्यय-पदमिदम् । ९७८ सू० दकारस्य तकारे **यति** इति भवति । **माम्** । अस्मद्+अम्=मं,प्रक्रिया ५९६ सूत्रे ज्ञेया । **वरम्** । २३ सू० मकारानुस्वारे **वरं** इति भवति । **प्रयच्छसि** । ३५० सू० रेफलोपे **पयच्छसि** इति भवति । **राजन्** ! । राजन्+सि । ९३५ सू० नकारस्य मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **राजं** ! इति भवति । **च** । अव्ययपदमिदम् । संस्कृतसममेव पैशाच्यां प्रयुज्यते । **तावत्**=ताव, प्रक्रिया ९३३ सूत्रे ज्ञेया । **लोकस्व** । लोकृ दर्शने । लोक्+सिप् । ९१० सू० अकारागमे, ६६२ सू० सिपः स्थाने सु इत्यादेशे,६६४ सू० सोर्लुकि **लोक** इति भवति । **तावच्च तथा दूरादेव दृष्टः**=ताव च तोए दूरातो य्येव तिट्ठो, प्रक्रिया ९९२ सूत्रे ज्ञेया । **सः** । तद्+सि । ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकार-लोपे, सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **सो** इति भवति । **आगच्छन्** । आङ्पूर्वकः गम्लृ-(गम्)-धातुः आगमने । आ-गम्+शतृ । ८८६ सू० मकारस्य छकारे,३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ६७० सू० शतुः स्थाने माण इत्यादेशे,९७७ सू० णकारस्य नकारे, ४११ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **आगच्छमानो** इति भवति । **राजा** । संस्कृतसममेव पैशाच्यां प्रयुज्यते । उपर्युक्तेषु प्रयोगेषु प्रस्तुतसूत्र-बलेन शौरसेनीभाषा-विधानस्य प्रवृत्तिर्जातेति भावः ।

९९५—**पैशाच्यामिति** । प्राकृतभाषागतानि १७७ सूत्रादारभ्य २६५ सूत्रपर्यन्तं यानि सूत्राणि भणितानि, तदुक्तानि निखिलानि कार्याणि पैशाचीभाषायां न भवन्तीति भावः । यथा—**मकर-केतुः** । अत्र १७७ सूत्रेण ककारयोः, नकारस्य च लोपप्राप्तिः,किन्तु ९९५ सूत्रेण सा निषिद्धा । ततः ५०८ सू० उकारस्य ऊकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **मकरकेतू** इति भवति । **सगरपुत्र-वचनम्** । अत्रापि १७७ सू० गकारस्य चकारस्य च लोपप्राप्तौ,प्रस्तुतसूत्रेण तन्निषेधे ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे,२३ सू० मकारानुस्वारे **सगर-पुत्त-वचनं** इति भवति । **विजयसेनेन लपितम्** । अत्र १७७ सू० ज, य, प, त इत्येतेषां वर्णानां लोपप्राप्तिरासीत्, प्रस्तुतसूत्रेण तन्निषेधे,२२८ सूत्रेण नकारस्य णकार-प्राप्तौ तन्निषेधे च, २३ सू० मकारानुस्वारे **विजयसेनेन लपितं** इति भवति । **मदनम्** इत्यत्र १७७ सूत्रेण दकारस्य लोपप्राप्तिः, प्रस्तुतसूत्रेण तन्निषेधे, ९७८ सू० दकारस्य तकारे, पूर्ववदेव **मतनं** इति भवति । **पापम्** । अत्र १७७ सूत्रेण पकार-लोप-प्राप्तौ, प्रस्तुतसूत्रेण तन्निषेधे, पूर्ववदेव **पापं** इति भवति । **आयुषम्** । इत्यत्र १७७ सूत्रेण यकारलोप-प्राप्तिः,तथा १८७ सू० धकारस्य हकारप्राप्तिरासीत्

परन्तु प्रस्तुतसूत्रेण तन्निषेधे, पूर्ववदेव मायुदं इति भवति। वेवरः। अत्र १७७ सूत्रेण दकार-वकार-लोप-प्राप्तौ प्रस्तुतसूत्रेण तन्निषेधे,पूर्ववदेव ९७८ सू० दकारस्य तकारे,४११ सू० सेर्डो, डिति परेऽन्त्य-स्वरादेर्लोपे तेवरो इति भवति। एवमन्यसूत्राणामपि। यथा – १७७ सूत्रादीनामुदाहरणानि प्रदत्तानि, एवमेव अन्यसूत्राणामप्युदाहरणानि स्वबुद्ध्या समवगन्तव्यानीति भावः। समाप्तं पैशाचीभाषेति। पै-शाचीभाषायाः प्रकरणम्-अध्यायः समाप्तम्-सम्पूर्णतां गतम्। मूलग्रन्थे यथा पैशाचीभाषा-प्रकरणं स-माप्तिमगमत्तथैव बालमनोरमाटीकायामपि तद्विवेचनं समाप्तिमेति।

पैशाच्याः ललिता व्याख्या, मुनिज्ञानेन निर्मिता,
आत्मगुरोः प्रसादेन, गता पूर्णतां खलु।

*** समाप्तं पैशाचीभाषा-विवेचनम् ***

★ अथ पैशाची-भाषा-विधि ★

त्रिशलानन्दन वीरवर, महावीर भगवान,
मनसा वाचा, कर्मणा, पलपल करूँ प्रणाम।

जपी, तपी विद्वान थे, गुरुवर आत्माराम,
धर्मदिवाकर योगि-वर, मङ्गलमय शुभ नाम।

गुरुचरणों का ध्यान कर,लिखता है "मुनि ज्ञान",
अब पैशाची गिरा का, हिन्दी में व्याख्यान।

हैमशब्दानुशासन के आठवें अध्याय में प्राकृत और शौरसेनी आदि छः भाषाओं का विवेचन किया गया है। पैशाची भाषा का उन में चतुर्थ स्थान है। क्रमानुसार अब इस का विवेचन करने लगे हैं। पैशाची शब्द के कोषकारों ने अनेकों अर्थ लिखे हैं। जैसे—१—धार्मिक कृत्य के अवसर पर दी जाने वाली भेंट,२—रात्रि,३—किसी धार्मिक विधान के समय बनाया हुआ नैवेद्य-भोज्य पदार्थ जो किसी देवता को अर्पण किया जाता है, ४—प्राकृतिक (प्रकृति से उत्पन्न) भाषा का एक भेद। प्रस्तुत में पैशाची शब्द एक प्राचीन भाषा का बोधक है। यह भाषा कभी प्राचीन युग में बोली जाती रही है। इस के क्या विधिविधान हैं ? प्राकृत, शौरसेनी तथा मागधी भाषा से इसका कितना अन्तर है ? प्रस्तुत प्रकरण में इन सब बातों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

९७४—पैशाचीभाषा में 'ज्ञ' के स्थान में 'ञ्ञ' यह आदेश होता है। जैसे—१—**प्रज्ञा**=पञ्ञा (बुद्धि), २—**संज्ञा**=सञ्ञा (चेतना, होश, ज्ञान, व्याकरण में वह विकारी शब्द जिससे किसी यथार्थ या कल्पित पदार्थ का बोध हो), ३—**सर्वज्ञः**=सव्वञ्ञो (सब कुछ जानने वाला), ४—**ज्ञानम्**=ञ्ञानं (बोध), ५—**विज्ञानम्**=विञ्ञानं (विशिष्ट ज्ञान), यहां पर **ज्ञ** के स्थान में 'ञ्ञ' यह आदेश किया गया है।

९७५—पैशाची भाषा में '**राज्ञ**' इस शब्द में जो '**ज्ञ**' है, इसके स्थान में '**चिञ्**' यह आदेश

विकल्प से होता है। जैसे—१—**राज्ञा लपितम्**=राचिञा लपितं आदेश के अभावपक्ष में रञ्ञा लपितं (राजा ने कहा), २—**राज्ञो धनम्**=राचिञो,धनं,रञ्ञो धनं (राजा का धन), यह रूप होता है। **वृत्ति-कार** फरमाते हैं कि पैशाचीभाषा में 'ज्ञ' को ही 'ञ्ञ' यह आदेश होता है, किसी अन्य वर्ण को नहीं। जैसे—**राजा**=राजा (नृप) यहां पर ज्ञ का अभाव था, अतः यहां 'ञ्ञ' यह आदेश नहीं हो सका।

९७६—पैशाचीभाषा में न्य और ण्य इन संयुक्त वर्णों के स्थान में 'ञ्ञ' यह आदेश होता है। जैसे—१—**कन्यका**=कञ्ञका (लड़की), २—**अभिमन्युः**=अभिमञ्ञू (अर्जुन का पुत्र),३—**पुण्यकर्मा**=पुञ्ञकम्मो (पुण्य कर्म-पवित्र काम,करने वाला), ४—**पुण्याहम्**=पुञ्ञाहं (पुण्य रूप दिन) यहां पर न्य और ण्य को 'ञ्ञ' यह आदेश किया गया है।

९७७—पैशाचीभाषा में णकार को नकारादेश होता है। जैसे—१—**गुण-गण-युक्तः**=गुन-गन-युत्तो (गुणों के समुदाय से युक्त),२—**गुणेन**=गुनेन (गुण से),यहां पर णकार को नकार किया गया है।

९७८—पैशाचीभाषा में तकार और दकार के स्थान में तकार होता है। जैसे—**तकार के उदाहरण**—१—**भगवती**=भगवती (ऐश्वर्यशालिनी, भगवत्स्वरूपा), २—**पार्वती**=पव्वती (गणेश जी की जननी,शिव-पत्नी),३—**शतम्**=सतं (१०० की संख्या),**दकार के उदाहरण**—१—**मदन-परवशः**=मतन-परवसो (कामदेव के अधीन), २—**सदनम्**=सतनं (घर), ३—**दामोदरः**=तामोतरो (श्रीकृष्ण), ४—**प्रदेशः**=पतेसो (देश का एक भाग), ५—**वदनकम्**=वतनकं (मुख), ६—**भवतु**=होतु (वह हो), ७—**रमताम्**=रमतु (वह क्रीडा करे), यहां पर तकार तथा दकार को तकारादेश किया गया है।यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि तकार के स्थान में तकार का विधान करने का क्या प्रयोजन है? उत्तर में निवेदन है कि तकार के स्थान में भी जो तकार का विधान किया गया है, इससे तकार के स्थान में होने वाले अन्य आदेशों का निवारण किया गया है। जैसे—१—**पताका**, यहां पर २०६ वें सूत्र से तकार को डकार होना था, इसी प्रकार—**वेतसः**, यहां पर वेतस के अकार को ४६ वें सूत्र से इकार होने पर २०७ वें सूत्र से तकार को डकारादेश की प्राप्ति थी किन्तु प्रस्तुत सूत्र ने तकार के स्थान में तकारादेश का विधान करके डकारादेश नहीं होने दिया। पैशाचीभाषा में **पताका** का **पताका** (झण्डी) तथा **वेतसः** का **वेतिसो** (बेंत) यही रूप रहता है।

९७९—पैशाचीभाषा में लकार को ळकारादेश होता है। जैसे—१—**शीलम्**=सीळं (स्वभाव), २—**कुलम्**=कुळं (कुल, खानदान), ३—**सलिलम्**=सलिळं (पानी), ४—**कमलम्**=कमळं (कमल), यहां पर लकार के स्थान में ळकारादेश किया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि लकार के स्थान में ळकारादेश करने की क्या आवश्यकता थी? उत्तर में निवेदन है कि प्राकृतभाषा में २५५ वें सूत्र से लकार को रेफ और २५६ वें एवं २५७ वें सूत्र से लकार को णकारादेश होता है, परन्तु पैशाचीभाषा में ऐसा नहीं होता,अतः यहां लकार के स्थान में ळकारादेश का विधान किया गया है। प्रस्तुत में **शी-लम्** आदि जो उदाहरण दिए गए हैं, इन के लकार को प्राकृतभाषा के किसी सूत्र से कोई आदेश नहीं होता, तथापि इन का जो उल्लेख किया गया है, इस का कारण—"**सूत्र की पर्जन्यवत् प्रवृत्ति होती है**" यह सूचित करना ही समझना चाहिए।

९८०—पैशाचीभाषा में **शकार** और **षकार** को सकारादेश होता है। **शकार के उदाहरण**, जैसे—१—**शोभते**=सोभति (वह शोभा पाता है), २—**शोभनम्**=सोभनं (सुन्दर), ३—**शशी**=ससी (चन्द्र), ४—**शक्रः**=सक्को (शकेन्द्र महाराज, पहले देवलोक के स्वामी), ५—**शङ्खः**=सङ्खो (शंख) ष-

कार के उदाहरण, जैसे—१—**विषमः**=विसमा (जो सम न हो,असमान,अव्यवस्थित,भीषण, कष्टजनक), २—**कृशानो !**=किसानो ! (हे अग्नि देव !), यहां पर शकार और षकार को सकार किया गया है। कहीं पर **वृषाणः**=विसानो (सींग) ऐसा पाठ भी उपलब्ध होता है। यहां पर प्रश्न उपस्थित होता है कि शकार और षकार के स्थान में सकारादेश तो २६० वें सूत्र से ही हो सकता था फिर यहां पर यह विधान करने की क्या आवश्यकता थी ? उत्तर में निवेदन है कि ९९५ वें सूत्र ने १७७ वें सूत्र से लेकर २६५ वें सूत्र तक सभी सूत्रों द्वारा होने वाले, सभी कार्यों का पैशाचीभाषा में निषेध कर दिया था, अतः इस बाधक सूत्र को बाधित करने के लिए इस योग (सूत्र) की रचना की गई है।

९८१—पैशाचीभाषा में हृदय शब्द के यकार को पकार होता है। जैसे—१—**हृदयकम्**=हितपकं (हृदय, दिल), २—**किमपि, किमपि हृदये अर्थं चिन्तयन्ती**=किं पि, किं पि हितपके अरथं चिन्तयमानी (वह हृदय में कुछ भी, कुछ भी अर्थ सोचती हुई), यहां पर यकार को पकार किया गया है।

९८२—पैशाचीभाषा में 'टु' के स्थान में 'तु' यह आदेश होता है। जैसे—१—**कुटुम्बकम्**=कुतुम्बकं, आदेश के अभावपक्ष में—**कुटुम्बकं** (परिवार) यह रूप बनता है।

९८३—पैशाचीभाषा में **क्त्वा** प्रत्यय के स्थान में **तून** यह आदेश होता है। जैसे—१—**गत्वा**=गन्तून (जा करके), २—**रन्त्वा**=रन्तून (क्रीडा करके), ३—**हसित्वा**=हसितून (हंस करके), ४—**पठित्वा**=पठितून (पढ़ करके), ५—**कथयित्वा**=कधितून (कह करके), यहां क्त्वा प्रत्यय के स्थान में 'तून' यह आदेश किया गया है।

९८४—पैशाचीभाषा में 'ष्ट्वा' के स्थान में **द्धून** और **त्थून** ये दो आदेश किए जाते हैं। यह सूत्र ९८३ वें सूत्र का अपवादभूत सूत्र है। जैसे—**नष्ट्वा**=नद्धून, नत्थून, यहां पिछले सूत्र से **क्त्वा** के स्थान में 'तून' आदेश होना था, किन्तु उसे बाधकर प्रस्तुत सूत्र ने **ष्ट्वा** के स्थान में **द्धून** और **त्थून** ये दो आदेश कर दिये हैं। फलतः **नद्धून, नत्थून** (नष्ट करके) ये रूप बनते हैं। इसी प्रकार—**दृष्ट्वा**=तद्धून, तत्थून (देखकर) ये रूप बन जाते हैं।

९८५—पैशाची भाषा में **र्य**, **स्न** और **ष्ट** इन संयुक्त वर्णों के स्थान में कहीं पर यथासंख्य (संख्या के अनुसार) **रिय, सिन** और **सट** ये आदेश होते हैं। जैसे—१—**भार्या**=भारिया (पत्नी),२—**स्नातम्**=सिनातं (स्नान किया हुआ), ३—**कष्टम्**=कसटं (दुःख) यहां पर **र्य** को **रिय, स्न** को **सिन** और **ष्ट** को **सट** यह आदेश किया गया है। सूत्र में पठित **क्वचित्** (कहीं-कहीं पर) इस पद को ग्रहण करने का क्या प्रयोजन है ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए वृत्तिकार फरमाते हैं कि '**क्वचित्**' इस पद-ग्रहण के कारण—१—**सूर्यः**=सुज्जो (सूर्य), २—**स्नुषा**=सुनुसा (पुत्रवधू), ३—**दृष्टः**=तिट्ठो (देखा हुआ), इन स्थलों में प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी।

९८६—पैशाची भाषा में **क्य**-प्रत्यय को **इय्य** यह आदेश होता है। जैसे—१—**गीयते**=गिय्यते (उस से गाया जाता है), २—**दीयते**=दिय्यते (उस से दिया जाता है), ३—**रम्यते**=रमिय्यते (उससे खेला जाता है), ४—**पठ्यते**=पठिय्यते (उस से पढ़ा जाता है) यहां पर **क्य**-प्रत्यय के स्थान में **इय्य** यह आदेश किया गया है।

९८७—पैशाचीभाषा में **कृञ्** (डुकृञ्-क) धातु से परे यदि **क्य**-प्रत्यय हो तो उसके स्थान में **ईर** (ईर) यह आदेश होता है। जैसे—**प्रथम-व्यसने सर्वस्य एव सम्मानं क्रियते**=पुथुमतंसने सव्वस्स य्येव संमानं कीरते (पहले व्यसन में सबका ही सम्मान किया जाता है), यहां पर **क्य**-प्रत्यय को **ईर**

(ईर) यह आदेश किया गया है। **संसने** का **वर्शने** यह रूप भी होता है, २६ वें सूत्र से आद्य स्वर को अनुस्वारागम, ९७८ वें सूत्र से दकार को तकार, ३५० वें सूत्र से रेफलोप और ९८० वें सूत्र से शकार को सकार हो जाता है।

९८८—पैशाचीभाषा में **यादृश** इस जैसे शब्दों के '**दृ**' इस अवयव को **ति** यह आदेश होता है। जैसे—**१—यादृशः**=यातिसो (जैसा), **२—तादृशः**=तातिसो (वैसा), **३—कीदृशः**=केतिसो (कैसा), **४—ईदृशः**=ऐतिसो (ऐसा), **५—भवादृशः**=भवातिसो (आप जैसा), **६—अन्यादृशः**=अञ्ञातिसो [अन्य (दूसरे) जैसा], **७—युष्मादृशः**=युम्हातिसो (तुम्हारे जैसा), **८—अस्मादृशः**=अम्हातिसो (हमारे जैसा), यहां पर **दृ** के स्थान में **ति** यह आदेश किया गया है।

९८९—पैशाची भाषा में **इच्** और **एच्** इन दोनों आदेशों के स्थान में **ति** यह आदेश होता है। जैसे—**१—उद्वाति**=वसुआति (वह ऊर्ध्व गमन करता है), **२—भवति**=भोति (वह होता है), **३—नयति**=नेति (वह ले जाता है), **४—ददाति**=तेति (वह देता है), यहां **इच्** को **ति** आदेश किया गया है।

९९०—पैशाची भाषा में अकार से परे जो **इच्** और **एच्** हैं, इनके स्थान में **ते** तथा सूत्रोक्त चकार से **ति** यह आदेश होता है। जैसे—**१—लपति**=लपते लपति (वह स्पष्ट बोलता है), **२—आस्ते**=अच्छते, अच्छति (वह बैठता है), **३—गच्छति**=गच्छते, गच्छति (वह जाता है), **४—रमते**=रमते, रमति (वह क्रीड़ा करता है), यहां पर अकार से परवर्ती **इच्** और **एच्** को **ते** और **ति** ये दो आदेश किए गए हैं। प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र में **आत्** (अकार से) यह पद क्यों पढ़ा गया? इसको ग्रहण करने का क्या उद्देश्य है? उत्तर में निवेदन है कि—**१—भवति**=होति (वह होता है), **२—नयति**=नेति (वह ले जाता है) आदि अकारान्त-भिन्न धातुओं से परे आए **इच्** और **एच्** को **ते** तथा **ति** ये आदेश न हो जाएं, इस दृष्टि से सूत्रकार ने **आत्** इस पद का उल्लेख किया है।

९९१—पैशाची भाषा में भविष्यत्-कालीन **इच्** और **एच्** के स्थान पर **एय्य** का ही आदेश होता है, **स्सि** का आगम नहीं हो पाता। जैसे—**तां दृष्ट्वा चिन्तितं राज्ञा, का एषा भविष्यति ?**=तं तद्धून चिन्तितं रञ्ञा, का ऐसा हुवेय्य ? (उसको देख कर राजा ने सोचा, यह कौन होगी ?) यहां पर **इच्** के स्थान में **एय्य** यह आदेश किया गया है। यहां पर ९४६ वें सूत्र से भविष्यदर्थक प्रत्यय के आदि में **स्सि** का आगम होना था किन्तु प्रस्तुत सूत्र ने उसका निषेध कर दिया।

९९२—पैशाची भाषा में अकार से परे **ङसि**-प्रत्यय के स्थान में **ङित्** (जिस में ङकार इत् हो) **आतो** और **आतु** ये दो आदेश होते हैं। जैसे—**१—तावत् च तया दूरादेव दृष्टः**=ताव च तीए दूरातो, दूरातु य्येव तिट्ठो (और तब तक उस ने दूर से ही देखा), **२—त्वत्**=तुमातो, तुमातु (तुझसे), **३—मत्**=ममातो, ममातु (मुझ से) यहां पर **ङसि**-प्रत्यय को **ङातो** और **ङातु** ये दो आदेश किए गए हैं।

९९३—पैशाची भाषा में टा-प्रत्यय के साथ तद् और इदम् इन शब्दों के स्थान में **नेन** और स्त्रीलिङ्ग में **नाए** यह आदेश होता है। जैसे—**तत्र च तेन कृतस्नानेन**=तत्थ च नेन कत-सिनानेन (और स्नान-किए हुए उस पुरुष से वहां पर) **स्त्रीलिङ्ग का उदाहरण-पूजितश्च तया पादाग्र-कुसुम-प्रदानेन**=पूजितो च नाए पातग्ग-कुसुम-प्पानेन (और उस देवी के द्वारा पांवों के आगे कुसुमों के समर्पण से पूजित-सम्मानित) यहां पर पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में टा-प्रत्यय के साथ इदम् शब्द के स्थान में **नेन** और **नाए** ये आदेश किये गये हैं। प्रस्तुत सूत्र में "**टा** (टा-प्रत्यय के साथ)" यह पद पढ़ने का क्या उद्देश्य है ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए वृत्तिकार फरमाते हैं कि—**एवं चिन्तयन् गतः स तस्याः समीपम्**=एवं चिन्तयन्तो गतो सो ताए समीपं (इस तरह सोचता हुआ वह उस देवी के निकट गया) आदि उदा-

हरणों में टा-प्रत्यय के अभाव में ङस् आदि प्रत्ययों के साथ भी तद् शब्द को **नेन** या **नाए** ये आदेश न हों इस दृष्टि से सूत्रकार ने **टा** इस पद का उल्लेख किया है।

३२४—पैशाची-भाषा में जो कुछ कहा गया है अर्थात् पैशाची-भाषा-प्रकरण में जो नियम बताए गए हैं, इन नियमों से अन्य जो नियम हैं, वे सब शौरसेनी-भाषा के ही पैशाची भाषा में लागू होते हैं। दूसरे शब्दों में—पैशाची-भाषा के शेष सभी नियम शौरसेनी-भाषा की भांति ही समझने चाहिएं। जैसे—१—**अथ सशरीरः भगवान् मकर-ध्वजो अत्र परिभ्रमन् भविष्यति**=अथ सरीरो भगवं मकरधजो, एत्थ परिब्भमन्तो हुवेय्य [इस के पश्चात् भगवान कामदेव शरीर-सहित (साकार) यहां पर परि-भ्रमण करते हुए होंगे], २—**एवंविधया भगवत्या कथं तापस-वेषग्रहणं ?**=एवंविधाए भगवतीए कधं-तापस-वेस-गहनं कतं ? (इस प्रकार की भगवती ने तपस्वियों का वेष कैसे ग्रहण कर लिया ?), ३—**ईदृशम् अदृष्ट-पूर्वं महाधनं दृष्ट्वा**=एतिसं अतिट्ठपुरवं महाधनं तदतून [ऐसा अदृष्ट-पूर्व (जो पहले कभी न देखा हो) महान धन देख कर], ४—**भगवन् ! यदि माम् वरं प्रयच्छसि**=भगवं ! यति मं वरं पयच्छसि (हे भगवन्! यदि आप मुझे वर देते हैं), ५—**राजन् ! च तावत् लोकस्व**=राजं ! च दाव लोक (हे राजन् ! तब तक उस को देखो) और ६—**तावच्च तया दूरादेव दृष्टः, स आगच्छन् राजा**=ताव च तीए तूरातो य्येव तिट्ठो सो आगच्छमानो राजा (और तब तक उस देवी ने वह आता हुआ राजा दूर से ही देखा), इन उदाहरणों से वृत्तिकार ने यह संसूचित किया है कि पैशाची भाषा में शौरसेनीभाषा की भांति भी कार्य हो जाता है। भाव यह है कि पैशाची भाषा में प्राकृत-भाषा और शौरसेनी भाषा के कार्य भी हो सकते हैं। जिन-जिन नियमों का विशेष रूप से पैशाचीभाषा में विधान किया गया है, उन के अतिरिक्त प्राकृत तथा शौरसेनी के नियमों का भी इस भाषा में आश्रयण कर लिया जाता है। पैशाची भाषा के किसी शब्द को सिद्ध करने के लिए शौरसेनी या प्राकृत-भाषा के सूत्र का उपयोग करते समय यह आशंका उत्पन्न होती है कि पैशाचीभाषा में प्राकृत आदि भाषाओं के नियमों का उपयोग क्यों किया गया ? इसी आशंका का उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि पैशाची-भाषा में जो कुछ नहीं कहा गया वह सब विधिविधान शौरसेनी भाषा के समान ही समझना चाहिए। प्रस्तुत में पुनः प्रश्न हो सकता है कि सूत्रकार ने तो '**शौरसेनी-वत्**' (शौरसेनी के समान) यह कहा है, इसमें प्राकृत-भाषा के नाम का तो ग्रहण नहीं किया गया फिर प्राकृत-भाषा का कोई नियम पैशाचीभाषा में नहीं लगना चाहिए ? उत्तर में निवेदन है कि २५७ वें सूत्र से शौरसेनीभाषा को प्राकृत भाषा के तुल्य मान लेने के कारण शौरसेनी भाषा में प्राकृत-भाषा अन्तर्हित हो ही जाती है। अतः शौरसेनी के समान कहने से ही 'प्राकृत-भाषा के समान' यह भाव स्वतः प्राप्त हो जाता है।

३२५—प्राकृत-भाषा के १७७ वें सूत्र से लेकर २६५ वें सूत्र तक जितने भी सूत्र हैं और इन के द्वारा जिन कार्यों का विधान किया गया है, वे सब कार्य पैशाची-भाषा में नहीं किए जाते। जैसे—१—**मकरकेतुः**=मकर-केतू (कामदेव की एक उपाधि) यहां पर १७७ वें सूत्र से **मकर** और **केतु** इन दोनों शब्दों के ककारों तथा तकार का लोप होना था, परन्तु इस सूत्र ने इस लोप का निषेध कर दिया। २—**सगरपुत्र-वचनम्**=सगर-पुत्तवचनं (सगर राजा के पुत्र का वचन) यहां पर १७७ वें सूत्र से गकार और चकार के लोप की प्राप्ति थी तथा २२८ वें सूत्र से नकार को णकार होना था, किन्तु प्रस्तुत सूत्र ने इन सब कार्यों का निषेध कर दिया। इसी प्रकार—१—**विजयसेनेन लपितम्**=विजयसेनेन लपितं (विजयसेन नामक पुरुष ने स्पष्ट कहा), २—**मदनम्**=मतनं (कामदेव), ३—**पापम्**=पापं (अनिष्ट आचार), ५—**आयुधम्**=आयुधं (शस्त्र), ६—**देवरः**=तेवरो (पति का छोटा भाई) इन उदाहरणों

में जकार आदि वर्णों का लोप होना था, नकार को णकार के आदेश की प्राप्ति हो रही थी, आदि सभी कार्यों का प्रस्तुत सूत्र ने निषेध कर दिया। वृत्तिकार फरमाते हैं कि इसी प्रकार अन्य सूत्रों के उदाहरण भी देख लेने चाहिएं। भाव यह है कि १७७ वें सूत्र से लेकर २६५ वें सूत्र तक जितने भी विधि-विधान कहे गए हैं, वे पैशाचीभाषा के जिन उदाहरणों में चरितार्थ नहीं होते, उनकी कल्पना या विचारणा स्वयं करने का प्रयास कर लेना चाहिए।

पैशाचीभाषा का विधिविधान ९७४ वें सूत्र से आरम्भ होकर ९९५ वें सूत्र में समाप्त होता है। इस तरह इस भाषा के व्यवस्थापक २२ सूत्र हैं। इन सूत्रों में ही इस भाषा के विधि-विधान का वर्णन किया गया है। इन सूत्रों में जो वर्णन कर रखा है, उस से अन्य पैशाचीभाषा का जो विधि-विधान है वह सब शौरसेनी भाषा के समान होता है, यह निर्देश करके सूत्रकार ने शौरसेनीभाषा को पैशाचीभाषा का मूलाधार स्वीकार किया है। पैशाचीभाषा के प्रकरण का यह अन्तिम सूत्र है। इस प्रकरण की समाप्ति के साथ ही हमारी आत्म-गुण-प्रकाशिका हिन्दी टीका में भी पैशाचीभाषा का विवेचन समाप्त होता है।

यह पैशाची का हुआ, परिपूरण व्याख्यान,
ध्यान सहित इसको पढ़ो, विज्ञ बनो 'मुनि ज्ञान'।

※ पैशाची-भाषा-विवेचन समाप्त ※

★ अथ चूलिका-पैशाची-भाषा-प्रकरणम् ★

९९६—चूलिका-पैशाचिके तृतीय-तुर्ययोराद्य-द्वितीयौ ।८।४।३२५। चूलिकापैशाचिके वर्गाणां तृतीय-तुर्ययो: स्थाने यथासंख्यमाद्य-द्वितीयौ भवत:। नगरम्, नकरं। मार्गण:, मक्कनो। गिरितटम्, किरितटं। मेघ:, मेखो। व्याघ्र:, वक्खो। घर्म:, खम्मो। राजा, राचा। जर्जरम्, चच्चरं। जीमूत:, चीमूतो। निर्झर:, निच्छरो। झर्झर:, छच्छरो। तडागम्, तटाकं। मण्डलम्, मण्टलं। डमरुक:, टमरुको। गाढम्, काठं। षण्ढ:, सण्ठो। ढक्का, ठक्का। मदन:, मतनो। कन्दर्प:, कन्तप्पो। दामोदर:, तामोतरो। मधुरम्, मथुरं। बान्धव:, पन्थवो। धूली, थूली। बालक:, पालको। रभस:, रफसो। रम्भा, रम्फा। भगवती, फकवती। नियोजितम्, नियोच्चितं। क्वचिल्लाक्षणिकस्याऽपि। पडिमा इत्यस्य स्थाने पटिमा। दाढा इत्यस्य स्थाने ताठा।

९९७—रस्य लो वा ।८।४।३२६। चूलिकापैशाचिके रस्य स्थाने लो वा भवति।

पनमथ पनय-पकुप्पित-गोली-चलनग्ग-लग्ग-पति-बिम्बं।
तससु नख-तप्पनेसु एकातस-तनु-थलं लुद्दं॥ १॥
नच्चन्तस्स य लीला-पातुक्खेवेन कम्पिता वसुथा।
उच्छल्लन्ति समुद्दा सइला निपतन्ति तं हलं नमथ॥ २॥

९९८—नादि-युज्योरन्येषाम् ।८।४।३२७। चूलिकापैशाचिकेऽपि अन्येषामाचार्याणां मतेन तृतीय-तुर्ययोरादौ वर्तमानयोर्युजिधातौ च आद्यद्वितीयौ न भवत:। गति:, गती। घर्म:

घम्मो । जीमूतः, जीमूतो । झर्झरः, झच्छरो । डमरुकः, डमरुको । ढक्का, ढक्का । दामोदरः-दामोतरो । बालकः, बालको । भगवती, भकवती । नियोजितम्, नियोजितं ।

९९९—शेषं प्राग्वत् । ८ । ४ । ३२८ । चूलिकापैशाचिके तृतीयतुर्ययोरित्यादि यदुक्तं ततोऽन्यच्छेषं प्राक्तन-पैशाचिकवद् भवति । नकरं । मक्कनो । अनयोर्नो णत्वं न भवति । णस्य च नत्वं स्यात् । एवमन्यदपि ।

※ समाप्तं चूलिका-पैशाचीभाषा-प्रकरणम् ※

★ अथ चूलिका-पैशाची-भाषा-विवेचनम् ★

महावीरं गुरुं नत्वा, योगिनाथं दिवाकरम् ।
पैशाची चूलिका भाषा, ज्ञानेन्दुना विविच्यते ॥

पैशाचीभाषा-व्याख्यानान्तरं, चूलिकापैशाचीभाषाया विवेचनं क्रियते—

९९६—**चूलिका-पैशाचिके वर्गाणामिति** । चूलिकापैशाची-भाषायां वर्गाणां तृतीयस्य तुर्यस्य-चतुर्थस्य च वर्णस्य स्थाने क्रमशः प्रथमद्वितीय-वर्णौ भवतः । यथा—**नगरम्** । ९९६ सू० गकारस्य ककारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **नकरं** इति भवति । बाहुल्येन ३६० सूत्रेण ककारस्य द्वित्वाभावः । **मार्गणः** । मार्गण+सि । ३५० सू० रेफलोपे,प्रस्तुतसूत्रेण गकारस्य स्थाने ककारे,३६० सू० ककारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ९७७ सू० णकारस्य नकारे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **मक्कनो** इति भवति । **गिरितटम्** । प्रस्तुतसूत्रेण गकारस्य ककारे, १९५ सूत्रेण टकारस्य डकार-प्राप्तौ, ९९९ सूत्रेण पैशाचीत्वात् ९९५ तन्निषेधे,२३ सू० मकारानुस्वारे **किरितटं** इति भवति । **मेघः** । मेघ+सि । प्रस्तुत सूत्रेण घकारस्य खकारे, पूर्ववदेव **मेखो** इति भवति । **व्याघ्रः** । व्याघ्र+सि । ३४९ सू० यकारलोपे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण घकारस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे,पूर्ववदेव **वक्खो** इति भवति । **घर्मः** । घर्म+सि । प्रस्तुतसूत्रेण घकारस्य खकारे, रेफस्य लोपे,३६० सू० मकार-द्वित्वे,पूर्ववदेव **खम्मो** इति भवति । **राजा** । प्रस्तुतसूत्रेण जकारस्य चकारे **राचा** इति भवति । **जर्जरम्** । प्रस्तुतसूत्रेण जकारस्य उभयत्रापि चकारे,३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० द्वितीय-चकारद्वित्वे, २३ सू० मकारानुस्वारे **चच्चरं** इति भवति । **जीमूतः** । जीमूत+सि । प्रस्तुतसूत्रेण जकारस्य चकारे,पूर्ववदेव **चीमूतो** इति भवति । **निर्झरः** । निर्झर+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपे,प्रस्तुत-सूत्रेण झकारस्य छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, पूर्ववदेव **निच्छरो** इति भवति । **झर्झरः** । झर्झर+सि । प्रस्तुतसूत्रेण उभयत्रापि झकारस्य छकारे, पूर्ववदेव **छच्छरो** इति भवति । **तडागम्** । प्रस्तुतसूत्रेण डकारस्य टकारे, गकारस्य च ककारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **तटाकं** इति भवति । **मण्डलम्** । प्रस्तुतसूत्रेण डकारस्य टकारे, पूर्ववदेव **मण्टलं** इति साध्यम् । **डमरुकः** । डमरुक+सि । प्रस्तुतसूत्रेण डकारस्य टकारे, पूर्ववदेव **टमरुको** इति भवति । **गाढम्** । प्रस्तुतसूत्रेण गकारस्य ककारे, ढकारस्य च ठकारे, पूर्ववदेव **काठं** इति भवति । **षण्ढः** । षण्ढ+सि । ९८० सू० षकारस्य सकारे, प्रस्तुतसूत्रेण ढकारस्य ठकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **सण्ठं** इति भवति । एवमेव **ठक्का** । प्रस्तुतसूत्रेण ढकारस्य ठकारे **ठक्का** इति भवति । **मदनः** । मदन+सि । प्रस्तुतसूत्रेण दकारस्य तकारे, पूर्ववदेव **मतनो** इति भवति । **कन्दर्पः** । कन्दर्प+सि । प्रस्तुतसूत्रेण दकारस्य तकारे,

३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० पकार-द्वित्वे, पूर्ववदेव **कप्पतो** इति भवति। **दामोदरः**। दामोदर+सि। प्रस्तुतसूत्रेण उभयत्रापि दकारस्य तकारे, पूर्ववदेव **तामोतरो** इति भवति। **मधुरम्**। मधुर+सि। प्रस्तुतसूत्रेण धकारस्य थकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **मथुरं** इति भवति। **बान्धवः**। बान्धव+सि। प्रस्तुतसूत्रेण बकारस्य पकारे, धकारस्य च थकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, पूर्ववदेव **पन्थवो** इति भवति। **धूली**। धूली+सि। प्रस्तुतसूत्रेण धकारस्य थकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे **थूली** इति भवति। **धूलिः** इतिच्छायायान्तु धूलि+सि, इत्यत्र धकारस्य थकारे, ५०८ सू० इकारदीर्घे, सेर्लोपे **थूली** इति भवति। **बालकः**। बालक+सि। इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण बकारस्य पकारे, पूर्ववदेव **पालको** इति साध्यम्। **रभसः**। रभस+सि। प्रस्तुतसूत्रेण भकारस्य फकारे पूर्ववदेव **रफसो** इति भवति। **रम्भा**। रम्भा+सि। प्रस्तुतसूत्रेण भकारस्य फकारे, सेर्लोपे **रम्फा** इति भवति। **भगवती**। प्रस्तुतसूत्रेण भकारस्य फकारे, गकारस्य च ककारे, सेर्लोपे **फकवती** इति भवति। **नियोजितम्**। इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण जकारस्य चकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **नियोचितं** इति भवति। **क्वचिल्लाक्षणिकस्याऽपि**। बाहुल्येन कस्मिंश्चित् स्थले लाक्षणिकस्य-सूत्रनिष्पन्नस्यापि डकारस्य टकारः, ढकारस्य च ठकारो भवति। यथा—**प्रतिमा**। इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, २०६ सू० तकारस्य डकारे, प्रस्तुतसूत्रेण लाक्षणिकस्य डकारस्य टकारे **पटिमा** इति भवति। एवमेव **दंष्ट्रा**। ४१० सू० दंष्ट्राशब्दस्य दाढा इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण लाक्षणिकस्य दकारस्य तकारे, ढकारस्य च ठकारे **ताठा** इति भवति।

९९७— **प्रणमत प्रणयप्रकुपित-गौरी-चरणाग्र-लग्नप्रतिबिम्बम्।**
दशसु नखदर्पणेषु एकादश-तनुधरं रुद्रम्॥१॥

भावार्थः—महादेवप्रणामव्याजेन कश्चित्कविः गौरीचरणयोः नखानां समुज्ज्वलतां प्रतिपादयति। **रुद्रम्**—महादेवं यूयं **प्रणमत**-नमस्कारं कुरुत। **किंविशिष्टं रुद्रम्**? प्रणयेन-प्रेम्णा प्रकुपिता-प्रकर्षेण क्रुद्धा प्रणयप्रकुपिता, प्रणयप्रकुपिता चासौ गौरी-पार्वती तस्याः चरणयोरग्रे लग्नम्-सम्बद्धम्, चरणलग्नं प्रतिबिम्बं-प्रत्याकृतिर्यस्य तथाभूतम्। **पुनः किंविशिष्टं रुद्रम्**? नखान्येव दर्पणानि नखदर्पणानि, तेषु दशसु-दशसंख्यकेषु, एकादश च इमाः तनवः शरीराणीति एकादशतनवः, ताः धरतीति एकादश-तनुधरः तथाभूतम्। गौर्याः चरणाग्रयोः ये दशनखाः सन्ति, तेषामत्युज्ज्वलतया महादेवस्य प्रतिबिम्बं तेषु प्रतिभाति। अनेन गौर्याः चरणनखाः दर्पणतुल्यकान्तिमन्तः सन्ति, इति संसूच्यते।

प्रणमत। प्रपूर्वकः णम-(नम्)-धातुः प्रणामे। अत्र लोट्-लकारः, किन्तु १११८ सूत्रेण लकारद्वयस्यैव जाते सति लोट्-लकारस्थाने लट्लकारो जातः,ततः प्र+नम्+थ इति जाते ३५० सू० रेफलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारप्राप्तौ, ९९१ सूत्रेण पैशाची-वत्त्वात् ९९५ सू० तन्निषेधे, ९१० सू० अकारस्यागमे, ६३२ सू० थस्य ह्थ्-ह इत्यादेशे, ९३९ सू० हकारस्य धकारे,९९६ सू० धकारस्य थकारे **पनमथ** इति भवति। **प्रणयप्रकुपित-गौरी-चरणाग्र-लग्न-प्रतिबिम्बम्**। **प्रणय** इत्यत्र ३५० सू० रेफस्य लोपे,९७७ सू० णककारस्य नकारे (**पनय**),**प्रकुपित** इत्यत्र ३५० सू० रेफस्य लोपे,९०१ सू० पकारद्वित्वे (**पकुप्पित**), **गौरी** इत्यत्र १५९ सू० औकारस्य ओकारे,९९७ सू० रेफस्य स्थाने लकारे (**गोली**),**चरणाग्र** इत्यत्र ९९७ सू० रेफस्य लकारे, ९७७ सू० णकारस्य नकारे,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वे (**चलनग्ग**) **लग्न** इत्यत्र ३४९ सू० नकारलोपे,गकारस्य द्वित्वे (**लग्ग**) **प्रतिबिम्बम्** इत्यत्र ३५० सू० रेफस्य लोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **पतिबिम्बं** इति भवति। **दशसु** इत्यत्र ९७८ सू० दकारस्य तकारे, ९८० सू० शकारस्य सकारे **तससु** इति भवति। **नखदर्पणेषु**। इत्यत्र २२९ सू० नकारस्य

णकारप्राप्तौ ९९९ सूत्रस्य बलेन ९९५ सू० णकारनिषेधे, १८७ सू० खकारस्य हकारप्राप्तौ ९९५ सू० तन्निषेधे, ९९९ *सूत्रस्य बलेन ९७८ सू० दकारस्य तकारे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० पकारस्य द्विस्वे, ९७७ सू० णकारस्य नकारे, ९८० सू० षकारस्य सकारे, २७ सू० अन्त्येऽनुस्वारागमे **नखतप्पनेसुं** इति भवति । **एकादश-तनुधरम्** । इत्यत्र ९७८ सू० दकारस्य तकारे, ९८० सू० शकारस्य सकारे, २२८ सूत्रेण णकारप्राप्तौ,पूर्ववदेव ९९५ सू० तन्निषेधे, ९९६ सू० धकारस्य स्थाने थकारे, प्रस्तुतसूत्रेण रेफस्य लकारे,२३ सू० मकारानुस्वारे **एकातस-तनुथलं** इति भवति । **रुद्रम्** । प्रस्तुतसूत्रेण रेफस्य लकारे, ३५० रेफस्य लोपे,३६० सू० दकारस्य द्विस्वे, २३ सू० मकारानुस्वारे **लुद्दं** इति भवति । श्लोकेऽस्मिन् **गोली, चलनग्ग, तनुथलं, लुद्दं** इत्येतेषु शब्देषु प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्बोध्या ।

नच्चतस्स लीलापादुक्खेवेण कम्पिता वसुधा ।
उच्छल्लन्ति समुद्दा सइला निपतन्ति तं हलं नमथ ।।२।।

भावार्थः—नृत्यतः,इत्यत्र सप्तम्यर्थे षष्ठीविभक्तिर्वर्तते । ६२३ सूत्रेण सप्तम्यर्थे षष्ठीविभक्तिर्जाता । ततोऽस्य श्लोकस्यायमन्वयः—**लीलापादोत्क्षेपेण**, लीलया-विनोदेन पादस्य-चरणस्य उत्क्षेपेण-उत्थापनेन उन्नयनेन वा यस्मिन् महादेवे नृत्यति-ताण्डवनृत्यं कुर्वति सति,वसुधा-पृथ्वी कम्पिता चलिता, समुद्राः उच्छलन्ति-मर्यादामतिक्रामयन्ति,शैलाः-पर्वताः निपतन्ति-निश्शेषेण पतन्ति,एतादृशं हरम्-शिवं नमत-नमस्कारं कुरुतेति भावः ।

नृत्यतः । नृती-धातुः गात्रविक्षेपे । संस्कृतनियमेन नृत्य+शतृ, इति जाते, २२९ सू० नकारस्य णकार-प्राप्तौ ९९९ सूत्रबलेन ९९५ सू० णकारनिषेधे,१२६ सू० ऋकारस्य अकारे,२८४ सू० त्यस्य चकारे,३६० सू० चकारस्य द्विस्वे,६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे,ङस्प्रत्यये जाते,४९९ सू० ङसः स्थाने स्स इत्यादेशे **नच्चन्तस्स** इति भवति । **च** । अव्ययपदमिदम् । १७७ सू० चकारलोपे, बाहुल्येन १८० सू० यकारश्रुतौ **य** इति भवति । **लीलापादोत्क्षेपेण** । इत्यत्र ९७८ सू० दकारस्य तकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३४८ सू० तकारलोपे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्विस्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे,२३१ सू० पकारस्य वकारे,९७७ सू० णकारस्य नकारे **लीलापादुक्खेवेन** इति भवति । **कम्पिता** । संस्कृततुल्यमेव चूलिकापैशाच्यां प्रयुज्यते । **वसुधा** । ९९६ सू० धकारस्य थकारे **वसुथा** इति भवति । **उच्छलन्ति** । उत्पूर्वकः छलधातुः उच्छलने । उत्छल्+झि । ३४८ सू० तकारलोपे,३६० सू० छकारस्य द्विस्वे,३६१ सू० पूर्व-छकारस्य चकारे,९१० सू० अकारस्यागमे,६३१ सू० झिप्रत्ययस्य स्थाने न्ति इत्यादेशे **उच्छलन्ति** इति भवति । **समुद्राः** । समुद्र+जस् । ३५१ सू० वैकल्पिके रेफलोपे, ३६० सू० दकारस्य द्विस्वे, ४९३ सू० जसो लुकि, ५०१ सू० पूर्वाकारदीर्घे **समुद्दा** इति भवति । **शैलाः** । शैल+जस् । ९८० सू० शकारस्य सकारे, १५२ सू० ऐकारस्य अइ इत्यादेशे, जसो लुकि, पूर्ववदेव **सइला** इति भवति । **निपतन्ति** । निपूर्वकः पत्लृ-(पत्)-धातुः निपतने । निपत्+झि । ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, उच्छलन्ति-वदेव **निपतन्ति** इति भवति । **तम्** । तद्+अम् । इत्यत्र ११ सू० दकारलोपे,४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **तं** इति भवति । **हरम्** । प्रस्तुतसूत्रेण रेफस्य लकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **हलं** इति भवति । **नमत** । १११८ सूत्रेण तकारस्यात्यये लोट्-लकारस्य लट्-लकारे जाते **नमथ** प्रथमश्लोक-पठित-पनमथ-वदेव साध्यम् । श्लोकेऽस्मिन् **हलं** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

९९८—चूलिका-पैशाचिकेऽपि । ९९६ सूत्रेण वर्गाणां तृतीयवर्णस्य स्थाने प्रथमो वर्णः, चतुर्थवर्णस्य च द्वितीयवर्णो जायते,किन्तु केषाञ्चिदाचार्याणां मते आदिवर्तमानयोः तृतीय-चतुर्थवर्णयोः क्रमशः

*९९६ सूत्रतः पूर्ववर्तिनां सूत्राणां यत्र यत्र प्रकरणे प्रवृत्तिर्भवति तत्र ९९९ सूत्रस्य बलेनैव भवतीति सर्वत्र बोध्यम् ।

प्रथमद्वितीय-वर्णौ न भवतः। तथा युजूधातोरपि जकारस्य चकारो न भवति। ९९८ सूत्रे सूत्रकारेण ९९६ सूत्र-सम्बन्धिमतान्तरं प्रदर्शितमिति भावः। यथा—**गतिः**। गति+सि। इत्यत्र ९९६ सूत्रेण गकारस्य ककारप्राप्तिरासीत्परन्तु प्रस्तुत-सूत्रेण तन्निषेधे ५०८ सू० इकारदीर्घे १।१।२७। सू० सेरिकारलोपे,११ सू० सकारलोपे **गती** इति भवति। एवमेवाग्रिमा अपि शब्दाः बोध्याः। यथा—**घर्मः**। घर्म+सि। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० मकारद्वित्वे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्य-स्वरादेर्लोपे **घम्मो** इति भवति। अत्र ९९६ सू० घकारस्य स्थाने खकारः प्राप्तः,किन्तु प्रस्तुत-सूत्रेण तन्निषेधो विहितः। **जीमूतः**। जीमूत+सि। पूर्ववदेव **जीमूतो** इति साध्यम्। अत्र प्रस्तुतसूत्रेण जकारस्य चकारो नाऽभूद्। **झर्झरः**। झर्झर+सि। ३५० सू० रेफलोपे,९९६ सू० द्वितीय-झकारस्य छकारे,३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे,पूर्ववदेव **झच्छरो** इति भवति। अत्र प्रस्तुतसूत्रबलेन प्रथमझकारस्य छकारो न जातः। **डमरुकः**। डमरुक+सि। पूर्ववदेव **डमरुको** इति भवति। अत्र डकारस्य टकारो न जातः। **ढक्का**। ढक्का+सि। सेर्लोपे **ढक्का** इति भवति। अत्र ढकारस्य ठकारो न जातः। **दामोदरः**। दामोदर+सि। इत्यत्र ९९६ सू० द्वितीयदकारस्य तकारे, पूर्ववदेव **दामोतरो** इति भवति। अत्र प्रथमदकारस्य तकारो न जातः। **बालकः**। बालक+सि। पूर्ववदेव **बालको** इति साध्यम्। अत्र प्रस्तुत-सूत्रेण बकारस्य पकारो न जातः। **भगवती**। भगवती+सि। ९९६ सू० गकारस्य ककारे, सेर्लोपे **भकवती** इति भवति। अत्र भकारस्य फकारो न जातः। **नियोजितम्**। नियोजित+सि। २२९ सूत्रेण नकारस्य णकारप्राप्तौ ९९९ सूत्रबलेन ९९५ सूत्रेण णकार-निषेधे, ९९६ सू० युज्धातोः जकारस्य चकारप्राप्तौ, परन्तु प्रस्तुतसूत्रबलेन तस्य जकारस्य चकाराभावे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **नियोजितं** इति भवति।

९९९—प्राक्तन-पैशाचिकवद्। चूलिकापैशाचीभाषायां खलु ९९६ सूत्रादारभ्य ९९८ सूत्रपर्यन्तं यानि कार्याण्युक्तानि तदतिरिक्तानि कार्याणि प्राक्तन-(पूर्वभणित)-पैशाची-भाषातुल्यानि ज्ञेयानि। ९७४ सूत्रादारभ्य ९९५ सूत्रपर्यन्तं पैशाचीभाषा-प्रकरणं विद्यते तत्प्रकरणे यानि कार्याणि भणितानि, तेषां कार्याणां चूलिकापैशाची-भाषाप्रकरणेऽपि ग्रहणं बोध्यमिति भावः। यथा—**नगरम्**। नगर+सि=नकरं, प्रक्रिया ९९६ सूत्रे द्रष्टव्या। अत्र पैशाची-भाषाप्रकरणस्य ९९५ सूत्रेण २२८ सूत्रविहिता नकारस्य णकारप्राप्तिर्निषिद्धा। पैशाची-भाषा-विहित-कार्यं ९९९ सूत्र-बलेन चूलिकापैशाचीभाषायामपि संजातमिति भावः। एवमेवाग्रेऽपि बोध्यम्। यथा—**मार्गणः**। मार्गण+सि=**मक्कनो**,प्रक्रिया ९९६ सूत्रे ज्ञेया। **अनयोर्नो णत्वं न भवति**। **नकरं** इत्यत्र नकारस्य २२८ सूत्रेण प्राप्तः णकारः,९९५ सूत्रेण निषिद्धः। **मकनो** इत्यत्रापि पूर्ववदेव २२८ सू० नकारस्य स्थाने णकारो न जातः। **ग्रस्य च नत्वं स्यात्**। **मार्गणः**=मक्कनो,इत्यत्र ९७७ सू० णकारस्य नकारो जातः,णकारस्य नकारविधायकं किमपि सूत्रं चूलिकापैशाचीभाषायां नास्ति, किन्तु पैशाच्यां तद्वर्तते। ९९९ सूत्रबलेन तस्य पैशाचीभाषा-नियमस्य चूलिकापैशाच्यामपि प्रवृत्तिर्जाता। **एवमन्यदपि**। एवमेवाऽन्ये प्रयोगा अपि समवगन्तव्याः। **समाप्तं चूलिकापैशाची-प्रकरणम्**। चूलिकापैशाचीभाषायाः प्रकरणम्-अध्यायः समाप्तम्। मूलग्रन्थे चूलिकापैशाचीभाषा-प्रकरणस्य समाप्तौ बालमनोरमा-टीकायापि तद्विवेचनं समाप्तिमेति।

पैशाची चूलिका टीका, पूर्णा बालमनोरमा।
आत्मगुरोः प्रसादेन, ज्ञानेन्दु-मुनि-निर्मिता॥

※ समाप्तं चूलिकापैशाची-भाषा-विवेचन ※

★ अथ चूलिका-पैशाची-भाषा-विधि ★

विश्ववन्द्य प्रभु वीर हैं, जगती के आधार,
स्वयं तरें जग तारते, महिमा अपरम्पार।
वन्दन कर प्रभु वीर को, *आतमगुरु का ध्यान,
चूलिका पैशाची का, करता हूं व्याख्यान॥

हैमशब्दानुशासन के अष्टमाध्याय में वर्णित प्राकृत आदि षड्विध भाषाओं में पांचवीं भाषा चूलिकापैशाची है। इसे चूलिका-पैशाचिक भी कहते हैं। इस प्रकरण में इसी भाषा के विधि-विधान का वर्णन किया जा रहा है।

९९६—चूलिकापैशाचिक भाषा में वर्गों के तीसरे और चौथे वर्ण के स्थान में यथासंख्य (संख्या के अनुसार, क्रमशः) पहला और दूसरा वर्ण होता है। अर्थात् तीसरे वर्ण के स्थान में पहला और चौथे के स्थान में दूसरा वर्णन हो जाता है। जैसे—१—**नगरम्**=नकरं (शहर), २—**मार्गणः**=मक्कनो (याचक), ३—**गिरितटम्**=किरितटं (पर्वत का किनारा), ४—**मेघः**=मेखो (बादल), ५—**व्याघ्रः**=वक्खो (बाघ), ६—**घर्मः**=खम्मो (धूप), ७—**राजा**=राचा (नरेश), ८—**जर्जरम्**=चच्चरं (कमजोर) ९—**जीमूतः**=चीमूतो (बादल), १०—**निर्झरः**=निच्छरो (स्रोत, झरना), ११—**झर्झरः**=छच्छरो (ढोल, बेल-बूंट की छड़ी, कलियुग), १२—**तडागम्**=तटाकं (तालाब), १३—**मण्डलम्**=मण्टलं (समूह, गोल, जिला), १४—**डमरुकः**=टमरुको (डमरू, वाद्यविशेष), १५—**गाढम्**=काठं (कठिन, मजबूत), १६—**षण्ढः**=सण्ठो (नपुंसक), १७—**ढक्का**=ठक्का (वाद्यविशेष, बड़ा ढोल), १८—**मदनः**=मतनो (कामदेव), १९—**कन्दर्पः**=कन्तप्पो (कामदेव), २०—**दामोदरः**=तामोतरो (श्रीकृष्ण), २१—**मधुरम्**=मथुरं (मीठा), २२—**बान्धवः**=पन्थवो (भाई, बन्धु), २३—**धूली**=थूली (रज), २४—**बालकः**=पालको (बच्चा), २५—**रभसः**=रफसो (सहसा, एकदम, क्रोध, हर्ष, खेद), २६—**रम्भा**=रम्फा (अप्सराविशेष), २७—**भगवती**=फकवती (भगवत्स्वरूपा नारी), २८—**नियोजितम्**=नियोचितं (कार्य में लगाया हुआ), यहां पर वर्ग के तीसरे वर्ण को पहला और चौथे वर्ण को दूसरा वर्ण किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि कहीं पर वर्ग के **लाक्षणिक** (लक्षण-व्याकरण के नियम से प्राप्त) तीसरे वर्ण को पहला और चौथे को दूसरा वर्ण भी हो जाता है, जैसे—१—**प्रतिमा** के रेफ का ३५० वें सूत्र से लोप, तथा २०६ वें सूत्र से उसके तकार को डकार हो कर **पडिमा** और २—**दंष्ट्रा** का ४१० वें सूत्र से **दाढा** यह रूप बनता है। यहां पर डकार और ढकार लाक्षणिक है—व्याकरण के लक्षणों-सूत्रों से सम्प्राप्त है, अतः प्रस्तुत सूत्र से वर्ग के तृतीय वर्ण को पहला वर्ण होने पर **पडिमा**=पटिमा (फोटो) और वर्ग के चतुर्थ वर्ण को दूसरा वर्ण होने पर **दाढा**=ताठा (दाढ, बड़ा दान्त) यह रूप हो जाता है।

९९७—चूलिका-पैशाचिक भाषा में रेफ के स्थान में विकल्प से लकार होता है। जैसे—

प्रणमत प्रणयप्रकुपित-गौरी-चरणाग्र-लग्न-प्रतिबिम्बम्।
दशसु नखदर्पणेषु एकादश-तनु-धरं रुद्रम्॥ १॥

---

*जैन-धर्म-दिवाकर, आचार्यसम्राट् गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज।

नृत्यश्च लीला-पादोत्क्षेपेण कम्पिता वसुधा।
उच्छलन्ति समुद्राः, शैला निपतन्ति तं हरं नमत ॥ २ ॥

अर्थात्—प्रणय (प्रेम) के कारण प्रकुपित (रुष्ट) हुई पार्वती के चरणाग्रों (चरणों के अग्रभागों) के नखरूपी दश-दर्पणों में जिस का प्रतिबिम्ब (परछाई) पड़ रहा है, एकादश-शरीर-धारी ऐसे रुद्र-शंकर को तुम नमस्कार करो। भाव यह है कि पार्वती के पांवों के दश नाखुन दर्पण (शीशे) के समान इतने चमकीले हैं कि उन में शिवशंकर की प्रतिमूर्ति स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही है। नखों के दश प्रतिबिम्ब तथा एक महादेव स्वयं, इस तरह शंकर के ग्यारह रूप बन जाते हैं। इसीलिए कवि कहता है कि ११ शरीरधारी शंकर को नमस्कार करो ॥१॥

लीला (विनोद) के कारण जिस के पादोत्क्षेप (पांव को ऊपर उठाने) से नृत्य करने पर वसुधा (जगतीतल) कम्पित हो गई है, समुद्र उछल पड़े हैं, और पर्वत गिरने की स्थिति में आ गए हैं, उस हर (महादेव) को नमस्कार करो।

यहां पर—१—**गौरी**=गोली, २—**चरण**=चलन, ३—**तनुधरं**=तनुधलं, ४—**रुद्रम्**=लुद्दं, ५—**हरं**=हलं, इन शब्दों के रेफ को लकारादेश किया गया है।

३२८—चूलिका-पैशाचिक भाषा में भी दूसरे आचार्यों के मत से आदि में वर्तमान (शब्द के आरम्भ में विद्यमान) वर्ग के तीसरे और चौथे वर्ण को तथा युज् धातु के तीसरे वर्ण को पहला और दूसरा वर्ण नहीं होता। भाव यह है कि चूलिका-पैशाचिक भाषा के विद्वान कई एक आचार्यों की ऐसी मान्यता है कि यदि वर्ग का तीसरा वर्ण शब्द के आदि में हो तो उसे पहला वर्ण नहीं होता, इसी तरह यदि वर्ग का चौथा वर्ण शब्द के आदि में हो तो उसे भी वर्ग का दूसरा वर्ण नहीं हो पाता। इस के अतिरिक्त, युज् धातु के जकार को वर्ग का प्रथम वर्ण अर्थात् चकार नहीं हो सकता। जैसे—१—**गतिः**=गती (गमन, जाना), २—**घर्मः**=घम्मो (धूप), ३—**जीमूतः**=जीमूतो (बादल), ४—**झर्झरः**=झच्छरो (ढोल), ५—**डमरुकः**=डमरुको (डमरु), ६—**ढक्का**=ढक्का (बड़ा ढोल), ७—**दामोदरः**=दामोतरो (श्रीकृष्ण), ८—**बालकः**=बालको (बच्चा), ९—**भगवती**=भकवती (भगवत्स्वरूपा नारी), १०—**नियोजितम्**=नियोजितं (काम में लगाया हुआ) इन उदाहरणों में वर्ग के आदिभूत तीसरे वर्ण को पहला वर्ण तथा चौथे वर्ण को दूसरा वर्ण नहीं हो सका। **नियोजितम्**, यह युज् धातु का उदाहरण है। यहां जकार आदिभूत नहीं था, किन्तु विशेषरूप से युज् धातु का निर्देश होने से इस के जकार को चकार नहीं हो सका। इस सूत्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि आदिभूत (आदि में विद्यमान) वर्ग के तीसरे वर्ण को पहला तथा चौथे वर्ग को दूसरा वर्ण बनाने का जो विधान है, यह वैकल्पिक है, किसी आचार्य के मत में यह कार्य हो जाता है और किसी को यह कार्य इष्ट नहीं है।

३२९—चूलिकापैशाची भाषा में "वर्ग के तृतीय वर्ण को पहला तथा चतुर्थ वर्ण को दूसरा वर्ण होता है" आदि जो विधिविधान कहा गया है, इस से अन्य जो शेष कार्य हैं, वे सब पहले कही पैशाचिक (पैशाची) भाषा के तुल्य होते हैं। भाव यह है कि चूलिकापैशाची के जो नियम बताए जा चुके हैं इन के अतिरिक्त, इस की सब नियमावलि पैशाची-भाषा के समान ही जाननी चाहिए। जैसे—१—**नगरम्**=नकरं (शहर), २—**मार्गणः**=मक्कनो (याचक), इन शब्दों में नकार को णकार नहीं होता और णकार को नकार हो जाता है। इसी प्रकार शेष नियमों के सम्बन्ध में भी जान लेना चाहिए। इन प्रयोगों को दिखलाने का उद्देश्य यह है, कि **नकरं** के नकार को २२९ वें सूत्र से णकारादेश की प्राप्ति थी

किन्तु पैशाची-भाषा के ९९५ वें सूत्र से उस का निषेध हो गया, तथा मार्गणः=मक्कनो, यहां पर पैशाची-भाषा के ९७७ वें सूत्र से णकार को नकार किया गया है। ये दोनों कार्य पैशाची भाषा के हैं, तथापि चूलिका-पैशाची में इन का आश्रयण किया गया है। इसीलिए प्रस्तुत ९९९ वां सूत्र कहता है कि चूलिकापैशाचिकभाषा में ९९६ वें सूत्र से लेकर ९९८ वें सूत्र तक जो कार्य बतला दिए गए हैं, वे तो इस भाषा में होते ही हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त ९९५ वें सूत्र से नकार को णकार का निषेध तथा ९७७ वें सूत्र से णकार को नकारादेश आदि पूर्व-वर्णित पैशाची-भाषा के सब कार्य भी चूलिकापैशाचिक भाषा में हो जाते हैं। वृत्तिकार ने "**एवमन्यदपि** (इस प्रकार अन्य नियम भी जानने चाहिएं)" यह कह कर पाठकों को सूचना दी है कि पैशाची भाषा के अन्य नियम चूलिका-पैशाची-भाषा के किन-किन उदाहरणों में लागू होते हैं, इस की कल्पना स्वयं कर लेनी चाहिए। इस सूचना के साथ ही वृत्तिकार ने चूलिका-पैशाची-भाषा का प्रकरण समाप्त कर दिया है। चूलिका-पैशाची-भाषा के प्रकरण की समाप्ति के साथ ही हमारी **आत्मगुण-प्रकाशिका** हिन्दी टीका में भी इस भाषा का विवेचन समाप्त होता है।

चूलिकापैशाची का, हुआ पूर्ण व्याख्यान।
ध्यान सहित जो भी पढ़े, प्राज्ञ बने सुविज्ञान॥

※ चूलिका-पैशाचिक-भाषा-विवेचन समाप्त ※

★ अथ अपभ्रंश-भाषा-प्रकरणम् ★

[अथ स्वरविधिः]

१०००—**स्वराणां स्वराः प्रायोऽपभ्रंशे** ।८।४।३२९। अपभ्रंशे स्वराणां स्थाने प्रायः स्वरा भवन्ति। कच्चु, काच्च। वेण, वीण। बाह, बाहा, बाहु। पट्ठि, पिट्ठि, पुट्ठि। तणु, तिणु, तृणु। सुकिदु, सुकिओ, सुकृदु। किन्नओ, किलिन्नओ। लिह, लीह, लेह। गउरि, गोरि। प्रायो-ग्रहणाद्यस्याऽपभ्रंशे विशेषो वक्ष्यते, तस्याऽपि क्वचित् प्राकृतवत् शौरसेनीवच्च कार्यं भवति।

१००१—**स्यादौ दीर्घ-ह्रस्वौ** ।८।४।३३०। अपभ्रंशे नाम्नोऽन्त्यस्वरस्य दीर्घह्रस्वौ स्यादौ प्रायो भवतः। सौ।

ढोल्ला सामला धण चम्पा-वण्णी।
णाइ सुवण्ण-रेह कस-वट्टइ दिण्णी॥१॥

आमन्त्र्ये— ढोल्ला! मइँ तुहुँ वारिया, मा कुरु दीहा माणु।
निद्दए गमिही रत्तडी दडवड होइ विहाणु॥२॥

स्त्रियाम्— बिट्टीए! मइ भणिय तुहुँ मा करु वङ्की दिट्ठि।
पुत्ति! सकण्णी भल्लि जिवँ मारइ हिअइ पइट्ठि॥३॥

जसि— एइ ति घोडा एह थलि एइ ति निसिआ खग्ग।
एत्थु मुणीसिम जाणीअइ जो न वि वालइ वग्ग॥४॥

एवं विभक्त्यन्तरेष्वप्युदाहार्यम् ।

१००२—स्यमोरस्योत् । ८ । ४ । ३३१ । अपभ्रंशे अकारस्य स्यमोः परयोः उकारो भवति ।

दहमुहु भुवण-भयंकरु तोसिअ-संकरु णिग्गउ रह-वरि चडिअउ ।
चउमुहु छंमुहु झाइवि एक्कहिं लाइवि णावइ दइवें घडिअउ ॥१॥

★ अथ अपभ्रंश-भाषा-विवेचनम् ★

[अथ स्वरविधिः]

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकम् ।
महावीरं, गुरुं नत्वा, अपभ्रंशो निगद्यते ॥

प्रस्तुताष्टमाध्याये प्राकृत-शौरसेनी-मागधी-पैशाची-चूलिकापैशाची-अपभ्रंश-नामधेयाः षड्भाषाः विद्यन्ते,तासां मध्ये पंचभाषाः प्राग् वर्णिता एव सन्ति,साम्प्रतं षष्ठ्या अपभ्रंश-भाषायाः वर्णनं क्रियते । अपभ्रंश-भाषायां स्वराणां स्थाने प्रायः ये विभिन्नाः स्वरा भवन्ति, तान् प्रदर्शयत्याचार्यः । यथा—

१०००—कच्चित् । इष्टप्रश्नार्थकमिदमव्ययपदम् । १००० सू० इकारस्य स्थाने उकारे,१११७ सूत्रबलेन शौरसेनी-वत्त्वात् ११ सू० तकारलोपे **कच्चु** प्रस्तुतसूत्रेण प्रथमस्य अकारस्य आकारे,उकारस्य च अकारे **काच्च** इति भवति । **वेणिः** । वेणि+सि । इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण इकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **वेण** एकारस्य ईकारे, इकारस्य च अकारे जाते **वीण** इति भवति । **बाहुः** । बाहु+सि । प्रस्तुतसूत्रेण उकारस्य अकारे, सेर्लोपे **बाह** उकारस्य आकारे जाते **बाहा** यत्र किमपि न जातं तत्र **बाहु** इति भवति । **पृष्ठम्** । पृष्ठ+सि । प्रस्तुतसूत्रेण ऋकारस्य अकारे, इकारे, उकारे च, ३४८ सू० षकारस्य लोपे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, प्रस्तुतसूत्रेण द्वितीयाकारस्य इकारे, बाहुल्येन ५०८ सू० इकारदीर्घाभावे,१०१५ सू० सेर्लोपे—**पट्ठि,पिट्ठि,पुट्ठि** इति भवति । **तृणम्** । तृण+सि । प्रस्तुतसूत्रेण ऋकारस्य अकारे,इकारे च तथा अकारस्य उकारे,पूर्ववदेव **तणु,तिणु** यत्र ऋकारस्य ऋकार एव स्थितस्तत्र **तृणु** इति भवति । **सुकृतम्** । सुकृत+सि । इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण ऋकारस्य इकारे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य उकारे,सेर्लोपे **सुकिदु** बाहुल्येन यत्र तकारस्य दकारो न जातस्तत्र १७७ सू० तकारलोपे,प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य ओकारे **सुकिओ** यत्र ऋकार एव अवस्थितस्तत्र पूर्ववदेव **सुकृदु** इति भवति । **क्लिन्नकः** । क्लिन्नक+सि । इत्यत्र ३५० सू० लकारलोपे, १७७ सू० द्वितीय-ककारस्य लोपे, प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य स्थाने ओकारे, १०१५ सेर्लोपे **किन्नओ** ३७७ सू० लकारात् पूर्वं इकारागमे **किलिन्नओ** इति भवति । **लेखा** । लेखा+सि । इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण एकारस्य इकारे,ईकारे च जाते, १८७ सू० खकारस्य हकारे, १००१ सू० आकारस्य स्थाने अकारे,सेर्लोपे—**लिह,लीह** यत्र एकार एव अवस्थितस्तत्र **लेह** इति भवति । **गौरी** । गौरी+सि । इत्यत्र १६२ सू० औकारस्य अउ इत्यादेशे, १०१ सू० ईकारस्य इकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे गउरि प्रस्तुतसूत्रेण औकारस्य ओकारे **गोरि** इति भवति । **प्रायोग्रहणात्** । १००० सूत्रे प्रायोग्रहणात् यस्य प्रयोगस्य, अपभ्रंशे=अपभ्रंशभाषायां **विशेषो**

वक्ष्यते—विशिष्टनियमः प्रतिपादयिष्यते, तस्याऽपि प्रयोगस्य **क्वचित्**—कस्मिंश्चित्स्थले **प्राकृतवत्**=प्राकृतभाषा-तुल्यं **शौरसेनी-वच्च**—शौरसेनीभाषा-तुल्यञ्च **कार्यं भवति**। अयमत्र भावः—अपभ्रंश-भाषा-नियमेष्वपि कुत्रचित् प्राकृत-शौरसेनीभाषा-नियमाः प्रवर्तन्ते।

१००१—नाम्नोऽन्त्येति। नाम्नः—प्रातिपदिकस्य। अन्ते भवोऽन्त्यः, अन्त्यश्चासौ स्वरोऽन्त्य-स्वरस्तस्येति भावः। दीर्घश्च-ह्रस्वश्च दीर्घ-ह्रस्वौ इति द्वन्द्वसमासः। **सौ**। सिप्रत्यये परे सति प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिं प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—

नायकः श्यामलः नायिका चम्पकवर्णा।
इव सुवर्णरेखा कषपट्टके दत्ता ॥१॥

भावार्थः—कश्चित् कविः नायकस्य नायिकायाश्च वर्णसौन्दर्यमुपमयन्नाह-नायकः-काव्यविशेषस्य चरित-नायकस्तु, श्यामलः—श्याम एव श्यामलः कृष्णवर्ण इत्यर्थः। किन्तु नायिका=नायक-भार्या,काव्ये यस्याः प्राधान्यं भवति सा नारी वा। चम्पकवर्णा-चम्पकं पुष्पविशेषं तस्य वर्णः चम्पकवर्णः, चम्पकवर्ण इव वर्णो यस्याः सा चम्पकपुष्पसमाना इत्यर्थः। यथा कृष्णवर्णे कषपट्टके—निकषे [कसौटी इति भाषायाम्] सुवर्णरेखा सुवर्णस्य रेखा—चिन्हं दत्ता—लिखिता शोभते,तद्वत् चम्पकवर्ण-समान-वर्णवती नायिका श्याम-नायकेन संयुक्ता शोभां भजते।

नायकः। नायक+सि। अपभ्रंशे १०९३ सू० नायक-स्थाने ढोल्ल इति शब्दः प्रयुज्यते, १००१ सू० अकारस्य आकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **ढोल्ला** इति भवति। **श्यामलः**। श्यामल+सि। इत्यत्र २६० सू० शकारस्य सकारे,३४९ सू० यकारलोपे,प्रस्तुतसूत्रेण अन्त्याकारस्य आकारे,सेर्लोपे **सामला** इति भवति। **नायिका**। नायिका+सि। अपभ्रंशे नायिकास्थाने 'धण' इति शब्दः प्रयुज्यते,स्त्रीत्वादाप्-(आ)-प्रत्यये,दीर्घ-सन्धौ,प्रस्तुतसूत्रेण आकारस्य अकारे,सेर्लोपे **धण** इति भवति। **चम्पकवर्णा**। चम्पकवर्णा+सि। १७७ सू० ककारलोपे ५ सू० दीर्घसन्धौ,३५० सू० रेफस्य लोपे,३६० सू० णकारद्वित्वे,प्रस्तुतसूत्रेण आकारस्य स्थाने अकारे, स्त्रीत्वविवक्षायां ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, १० सू० स्वरे परे स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये,१०१५ सू० सेर्लोपे-**चम्पावण्णी** इति भवति। प्रस्तुत-सूत्रे प्रायो-ग्रहणादत्र ईकारस्य इकारो न जातः। **इव**। अव्ययपदमिदम्। इत्यत्र १११५ सू० इवार्थे नाइ इति प्रयुज्यते, २२८ सू० नकारस्य णकारे **णाइ** इति भवति। **सुवर्णरेखा**। सुवर्णरेखा+सि। इत्यत्र ३५० रेफलोपे, ३६० सू० णकारद्वित्वे, १८७ सू० खकारस्य हकारे, प्रस्तुतसूत्रेण आकारस्य अकारे, १०१५ सेर्लोपे **सुवण्ण-रेह** इति भवति। **कषपट्टके**। कषपट्टक+ङि। २६० सू० षकारस्य सकारे, २३१ सू० पकारस्य स्थाने वकारे, १७७ सू० ककारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **कसवट्टइ** इति भवति। **दत्ता**। दत्ता+सि। ४६ सू० अकारस्य इकारे, ३१४ सू० त्तस्य णकारे, ३६० सू० णकारद्वित्वे, चम्पावण्णी-सममेव **दिण्णी** इति भवति। **ढोल्ला, सामला, धण, चम्पावण्णी, सुवण्णरेह, दिण्णी** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्दृश्यते। **आमन्त्र्ये**। आमन्त्रणे—सम्बोधने प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिं प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—

नायक ! मया त्वं वारितः, मा कुरु दीर्घं मानम्।
निद्रया गमिष्यति रात्रिः,शीघ्रं भवति विभातम् ॥२॥

भावार्थः—**नायक** !-प्रिय ! **मया त्वं वारितः**-निवारितः, सत्यमिदम् तथापि त्वं **दीर्घम्**-अधिकं **मानं**-गर्वं **मा कुरु**, यतः **रात्रिस्तु** निद्रया **गमिष्यति**, **विभातं**-प्रभातं च **शीघ्रं**-सत्वरमेव **भवति**-भविष्यतीति क्रोधावेशेन मौनावलम्बिनं निजनायकं प्रति कस्याश्चिन्नायिकाया उक्तिरियम्।

नायक !। नायक+सि=**ढोल्ला** इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया उपर्युक्तश्लोके ज्ञेया। अत्र सम्बोधनार्थकं पदमिदम्। अत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **मया**। अस्मद्+टा। १०४८ सू० टाप्रत्ययेन सह अस्मदः स्थाने मइँ इत्यादेशे **मइँ** इति भवति। **त्वम्**। युष्मद्+सि। १०३९ सू० युष्मदः स्थाने तुहुं इत्यादेशे, १०८२ सू० अनुस्वारस्य *अनुनासिके, १०१५ सू० सेर्लोपे तुहुँ इति भवति। **वारितः**। वारित+सि। इत्यत्र १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, प्रस्तुतसूत्रेण अन्त्याकारस्य आकारे, सेर्लोपे **वारिया** इति भवति। **मा**। अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेव अपभ्रंशे प्रयुज्यते। **कुरु**। डुकृञ्-कृ करणे। कृ+हि। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ९०९ सू० आद्याकारस्य उकारे, ६६२ सू० हि इत्यस्य सु इत्यादेशे, १०५८ सू० सोः स्थाने उकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **कुरु** इति भवति। **दीर्घम्**। दीर्घ+अम्। ३५० सू० रेफलोपे, १८७ सू० घकारस्य हकारे, प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य आकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **दीहा** इति भवति। **मानम्**। मान+अम्। २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, अमो लोपे **माणु** इति भवति। **निद्रया**। निद्रा+टा। इत्यत्र ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० दकारद्वित्वे, प्रस्तुतसूत्रेण आकारस्य अकारे, १०२० सू० टास्थाने एकारे **निद्दए** इति भवति। **गमिष्यति**। गम्लृ-(गम्)-गतौ। गम्+स्यति। ९१० सू० इकारस्यागमे, ६५५ सू० प्रत्ययस्यादौ हि इत्यस्य प्रयोगे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे, ६२८ सू० स्यतेः स्थाने इच् (इ) इत्यादेशे, गमि+हि+इ इत्यत्र ५ सू० दीर्घसन्धौ **गमिही** इति भवति। **रात्रिः**। रात्रि+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफलोपे ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, ११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, स्त्रीत्वविवक्षायां ११०२ सू० डी-(ई)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **रत्तडी** इति भवति। **शीघ्रम्**। शीघ्रार्थे दडवड इतिशब्दोऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। **भवति**=होइ, प्रक्रिया ७३१ सूत्रे ज्ञेया। **विभातम्**। विभात+सि। अपभ्रंशे विभातार्थे विहाण इति-शब्दः प्रयुज्यते, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **विहाणु** इति भवति। **ढोल्ला**, **वारिया**, **दीहा**, **निद्दए** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **स्त्रियाम्**। स्त्रीलिङ्गे प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिः प्रदर्श्यते। यथा—

पुत्रि ! मया भणिता त्वं, मा कुरु वक्रां दृष्टिम्।
पुत्रि ! सकर्णा भल्लीर्यथा मारयति हृदये प्रविष्टा॥३॥

भावार्थः—हे पुत्रि !-वत्से !, **मया त्वं पूर्वं भणिता**-कथिता यद् **दृष्टिं वक्रां**-विकारयुक्तां **मा कुरु**-विधेहि, **हे पुत्रि ! यथा हृदये**-वक्षःस्थले **प्रविष्टा सकर्णा**-कर्णेन सह वर्तमाना, तीक्ष्णाग्रभागा **भल्ली**:—तीरं **मारयति**-प्राणिनं हन्ति, तथैव वक्रा दृष्टिरपि जीवानां प्राणनाशं करोति। मातुः, पितुः गुरोर्वा पुत्रीं प्रतीयमुक्तिः।

पुत्रि !। अपभ्रंशे पुत्री इत्यर्थे बिट्टी इति-शब्दः प्रयुज्यते। ततः बिट्टी+सि इति जाते, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, स्त्रीत्वविवक्षायाम् आप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घसन्धौ बिट्टीआ+सि इति स्थिते, ५३० सू० आकारस्य एकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **बिट्टीए !** इति भवति। **मया**=मइं, प्रक्रिया ५९८ सूत्रे ज्ञेया। **भणिता**। भणिता+सि। इत्यत्र १७७ सू० तकारलोपे, बाहुल्येन १८० सू० यकारश्रुतौ, प्रस्तुतसूत्रेण आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **भणिय** इति भवति। **त्वम्**=तुहुँ, इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया प्रस्तुतसूत्रस्य द्वितीय-श्लोके ज्ञेया। **मा**। अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेव अपभ्रंशे प्रयुज्यते। **कुरु**। डुकृञ्-कृ करणे। कृ+हि। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, १०५८ सू० हेः स्थाने उकारे, १० सू० स्वरस्य

*अनुस्वारस्य सानुस्वरमनुनासिकत्वमित्यर्थः।

लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **वक्क** इति भवति । **वक्राम्** । वक्र+अम् । २६ सू० आदिस्वरस्य अनुस्वारागमे, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्ये, ३५० सू० रेफलोपे, स्त्रीत्वादाप्-प्रसंगे ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये वङ्की+अम् इति जाते, १०१५ सू० अमो लोपे **वङ्कि** इति भवति । **दृष्टिम्** । दृष्टि+अम् । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे १०१५ सू० अमो लोपे **दिट्ठि** इति भवति । **पुत्रि !** । पुत्री+सि । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, प्रस्तुतसूत्रेण ईकारस्य इकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पुत्ति !** इति भवति । **सकर्णा** । सकर्णा+सि । इत्यत्र ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० णकारद्वित्वे, स्त्रीत्वादाप्प्रसंगे ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **सकण्णी** इति भवति । **भल्ली:** । भल्ली+सि । प्रस्तुतसूत्रेण ईकारस्य इकारे, सेर्लोपे **भल्लि** इति भवति । **यथा** । अव्ययपदमिदम् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०७२ सू० था इत्यस्य डिम(इम) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १०६८ सू० मकारस्य सानुनासिके वकारे **जिवँ** इति भवति । **मारयति** । मृङ् (मृ) प्राणत्यागे । मृ+णिग्+तिव् । ९०५ ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६३८ सू० णिग अकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६४२ सू० आदेरकारस्य आकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **मारइ** इति भवति । **हृदये** । हृदय+ङि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० दकारस्य यकारस्य च लोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **हिअइ** इति भवति । **प्रविष्टा** । प्रविष्टा+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपे, १७७ सू० वकारलोपे, दिट्ठि-वदेव **पइट्ठा** इति जाते, प्रस्तुतसूत्रेण आकारस्य अकारे, १००० सू० अकारस्य इकारे **पइट्ठि** इति भवति । **भणिय, पुत्ति !, भल्लि, पइट्ठि** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य **प्रवृत्तिर्जाता** । **जसि** । जस्-प्रत्यये परे सति प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिं प्रदर्शयति वृत्तिकारः । यथा—

एते तेऽश्वाः, एषा, स्थली एते ते निशिताः खड्गाः ।
अत्र मनुष्यत्वं ज्ञायते, यो नाऽपि वालयति वल्गाम् ॥४॥

भावार्थः—**एते ते**-तव, अथवा तद्-शब्दस्यैव बहुवचनम् ते, **अश्वाः**-घोटकाः, **एषा स्थली**—रणाङ्गणम्, **एते च ते निशिताः**-तीक्ष्णाः, **खड्गाः**—असयः सन्ति, अत्र एतादृशे अनुकूल-युद्ध-सामग्री-संग्रहे युद्धकाले इत्यर्थः । **मनुष्यत्वम्**-मनुष्यस्य भावः मनुष्यत्वं-पौरुषं-पुरुषबलमित्यर्थः, **ज्ञायते**—ज्ञातुं शक्यते, **यः वल्गाम्**—अश्व-बन्धन-रज्जु-विशेषं **नाऽपि**-न कदाचिदपि, **वालयति** पश्चादावर्तयति ।

एते । एतद्++जस् । १०३४ सू० एतदः स्थाने एइ इत्यादेशे, १०१५ सू० जसो लुकि **एइ** इति भवति । **ते** । तद्+जस् । इत्यत्र १००० सू० अकारस्य इकारे, ११ सू० दकारलोपे, जसो लुकि **ति** इति भवति । **अश्वाः** । अश्व+जस् । अपभ्रंशे अश्वार्थे घोड-शब्दः प्रयुज्यते, ५०१ सू० अकारस्य आकारे, जसो लुकि **घोडा** इति भवति । **एषा** । एतद्+सि । इत्यत्र १०३३ सू० एतदः स्थाने एह इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे **एह** इति भवति । **स्थली** । स्थली+सि । ३४८ सू० सकारलोपे, प्रस्तुत-सूत्रेण ईकारस्य इकारे, सेर्लोपे **थलि** इति भवति । **निशिताः** । निशित+जस् । इत्यत्र २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लुकि **निसिआ** इति भवति । **खड्गाः** । खड्ग+जस् । ३४८ सू० डकारलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, ५०१ सू० अकारस्य आकारे, प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लुकि **खग्ग** इति भवति । **अत्र** । अव्ययपदमिदम् । १०७६ सू० अत्र-स्य स्थाने डेत्थु (एत्थु) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **एत्थु** इति भवति । **मनुष्यत्वम्** । मनुष्यस्य भावः । मनुष्यत्व+सि । १००० सू० आद्याकारस्य उकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००० सू०

उकारस्य ईकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ३४९ सू० यकारलोपे, ४२५ सू० त्वप्रत्ययस्य स्थाने डिमा (इमा) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, प्रस्तुतसूत्रेण आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **मुणीसिम** इति भवति । **ज्ञायते** । ज्ञा-धातुः अवबोधने-ज्ञाने । ज्ञा+क्य+ते । ६७८ सू० ज्ञाधातोः स्थाने जाण इत्यादेशे, ६४९ सू० क्यस्य स्थाने ईअ इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० ते इत्यस्य इच् (इ) इत्यादेशे **जाणीअइ** इति भवति । **यः** । यद्+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, सेर्लोपे **जो** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेवापभ्रंशे प्रयुज्यते । **अपि** । अव्ययपदमिदम् । इत्यत्र ४८३ सू० अप्यर्थे वि इत्यस्य प्रयोगे वि इति भवति । **वालयति** । वल-वल् चलने-पश्चादावर्तने । वल्+णिग्+तिव् । ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य आकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **वालइ** इति भवति । **वल्गाम्** । वल्गा+अम् । ३५० सू० लकारलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, प्रस्तुतसूत्रेण आकारस्य अकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **वग्ग** इति भवति । **धलि, निसिआ, खग्ग, मुणीसिम, वग्ग** इत्येषु प्रयोगेषु प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **एवं विभक्त्यन्तरेषु** । एवम्-पूर्वोक्तप्रकारेण विभक्त्यन्तरेषु-अन्यासु विभक्तिष्वपि उदाहार्यम्-अन्यानि उदाहरणानि बोधव्यानीति भावः ।

१००२—दशमुखः भुवनभयंकरस्तोषितशंकरो निर्गतः रथवरे आरूढः ।

चतुर्मुखं षण्मुखं ध्यात्वा एकस्मिन् लात्वा इव दैवेन घटितः ॥१॥

भावार्थः—दशमुखानि यस्य स दशमुखः-रावणः कीदृशोऽसौ रावणः? **भुवनभयंकरः**, भुवने भुवनस्य कुले वा भयंकरः-भीषणः, पुनः कीदृशो रावणः ?, **तोषितशंकरः**, तोषितः-प्रसन्नतां नीतः शंकरः-महादेवो येन सः, पुनः कीदृशो रावणः? **रथवरे**-रथश्चासौ वरः, तस्मिन् विशिष्ट-रथे, **आरूढः**-स्थितः, पुनः कीदृशो रावणः ? **निर्गतः**-युद्धार्थं निष्कान्तः । एतादृशो रावणः एवं प्रतिभाति, **इव**-यथा **चतुर्मुखम्**-चत्वारि मुखानि यस्य सः, तं ब्रह्माणम्, **षण्मुखं**—षड्मुखानि यस्य सः, तं-कार्तिकेयं महादेवपुत्रं **ध्यात्वा**-चिन्तयित्वा तयोः दशमुखानि **एकस्मिन्**-एकस्मिन् मनुष्ये **लात्वा**—आदाय, **दैवेन**-विधिना रावणो **घटितः**—निर्मितः ।

दशमुखः । दशमुख+सि । इत्यत्र २६२ सू० शकारस्य स्थाने वैकल्पिके हकारे, १८७ सू० खकारस्य स्थाने हकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **दहमुहु** इति भवति । **भुवनभयंकरः** । भुवनभयंकर+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, प्रस्तुतसूत्रेण रेफस्याकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **भुवणभयंकरु** इति भवति । **तोषितशंकरः** । तोषितशंकर+सि । २६० षकारस्य शकारस्य च सकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **तोसिअसंकरु** इति भवति । **निर्गतः** । निर्गत+सि । २२९ सू० नकारस्य णकारे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, पूर्ववदेव **णिग्गउ** इति भवति । **रथवरे** । रथवर+ङि । १८७ सू० थकारस्य स्थाने हकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **रहवरि** इति भवति । **आरूढः** । आङ्पूर्वकः रुह्-धातुः आरोहणे । आरुह्+क्त-तः । इत्यत्र ८७७ सू० आरुह्-धातोः स्थाने चड इत्यादेशे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, सि-प्रत्यये, ४२५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये स्वार्थिक-कप्रत्ययस्य च लोपे चडिअअ+सि इति जाते, प्रस्तुतसूत्रेण अन्तिमस्याकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **चडिअउ** इति भवति । **चतुर्मुखम्** । चतुर्मुख+अम् । १७७ सू० तकारलोपे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, वैकल्पिकत्वात् ३६८ सू० मकारस्य द्वित्वाभावे, १८७ सू० खकारस्य हकारे, प्रस्तुतसूत्रेण अन्त्याकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे

छउमुह इति भवति। **षण्मुखम्**। षण्मुख+अम्। इत्यत्र २६५ सू० षकारस्य छकारे, २५ सू० णकारस्यानुस्वारे, १८७ सू० खकारस्य हकारे, पूर्ववदेव **छंमुह** इति भवति। **ध्यात्वा**। ध्यैंधातुः चिन्तायाम्। ध्यैं+क्त्वा। इत्यत्र ६७७ सू० ध्यैंधातोः स्थाने झा इत्यादेशे, १११० सू० क्त्वः स्थाने इवि इत्यादेशे **झाइवि** इति भवति। **एकस्मिन्**। एक+ङि। ३७० सू० ककारद्वित्वे, बाहुल्येन ८४ सूत्रस्याप्रवृत्तौ, १०२८ सू० ङेः स्थाने हिं इत्यादेशे **एक्कहिं** इति भवति। **लात्वा**। ला आदाने। ला+क्त्वा। उपर्युक्त-**झाइवि-वदेव लाइवि** इति साध्यम्। **इव**। अव्ययपदमिदम्। १११५ सू० इवार्थे नावइ इत्यस्य प्रयोगे, २२९ सू० नकारस्य णकारे **णावइ** इति भवति। **दैवेन**। दैव+टा। १५१ सू० ऐकारस्य अइ इत्यादेशे, १००४ सू० अन्त्याकारस्य एकारे, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य अनुस्वारे **दइवें** इति भवति। **घटितः**। घटित+सि। इत्यत्र १९५ सू० टकारस्य डकारे, १७७ सू० तकारलोपे, ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये कप्रत्ययस्य लोपे च, प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **घडिअउ** इति भवति। **चउमुहु, भुवण-भयंकरु, तोसिअ-संकरु, णिग्गउ, चडिअउ, छउमुहु, छंमुहु, घडिअउ** इत्यत्र प्रस्तुतस्य [१००२] सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

★ अथ अपभ्रंश-भाषा-विधि ★

महावीर परमेश हैं, करुणा के अवतार,
वीतराग अखिलेश हैं, आएं सब अविहार।
शान्तिसुधा के पुञ्ज हैं, क्षमा दया साकार,
करता हूं प्रभु वीर को, वन्दन बारम्बार।
दयाशील गुरुदेव हैं, मुनिवर आत्माराम,
धर्म-दिवाकर जिनभवन, जप तप सब अभिराम।
गुरुवर की शुभ शरण ले, हिन्दी में व्याख्यान,
अपभ्रंश का ध्यान से, करता है "मुनि ज्ञान"।

हैमशब्दानुशासन में **प्राकृत** और **शौरसेनी** आदि जिन ६ भाषाओं का विवेचन किया गया है, उन में अपभ्रंश भाषा का अन्तिम स्थान है। कोषकारों के मत में अपभ्रंश भाषा प्राकृत भाषाओं का वह परवर्ती रूप है, जिस से उत्तर भारत की आधुनिक आर्य भाषाओं की उत्पत्ति मानी जाती है। प्रस्तुत प्रकरण में अपभ्रंश भाषा के व्याकरण-सम्बन्धी विधिविधान का निरूपण किया जा रहा है। **प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची** तथा **चूलिका-पैशाची** इन भाषाओं से अपभ्रंश भाषा क्या भिन्नता लिए हुए है? इस प्रश्न का प्रस्तुत प्रकरण में समाधान किया जायगा।

१०००—अपभ्रंश-भाषा में स्वरों के स्थान में प्रायः अन्य स्वरों का आदेश हो जाता है। अर्थात् किसी भी स्वर के स्थान में कोई भी स्वर किया जा सकता है। जैसे—१—**कच्चित्**=कच्चु, काच्च (यह **अव्ययपद**—प्रश्न, हर्ष और मङ्गल का बोधक है), २—**वेणिः**=वेण, वीण (केशों की चोटी, गुत्त), ३—

बाहुः=बाह, बाहा, बाहु (भुजा), ४—**पृष्ठम्**=पट्ठि, पिट्ठि, पुट्ठि (पीठ), ५—**तृणम्**=तणु, तिणु, तृणु (तिनका), ६—**सुकृतम्**=सुकिदु, सुकिओ, सुकृदु (अच्छा काम), ७—**क्लिन्नकः**=किन्नओ, किलिन्नओ (आर्द्र),८—**लेखा**=लिह,लीह,लेह (रेखा, लकीर,बाढ), ९—**गौरी**=गउरि, गोरि (पार्वती, सुन्दराङ्गी); यहां पर स्वरों के स्थान में अन्य स्वरों का आदेश किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने "**प्रायः** (आम तौर पर)" इस पद का जो ग्रहण किया है, इस के बल से "अपभ्रंश भाषा में जो विशेष नियम बताए जा रहे हैं" वहां पर भी कहीं प्राकृत और कहीं पर शौरसेनी-भाषा के समान कार्य किया जा सकता है। भाव यह है कि प्रस्तुत सूत्रोक्त **प्रायः** यह पद अपभ्रंश भाषा में भी प्राकृत और शौरसेनी भाषा के नियमों को लागू कर देता है।

१००१—अपभ्रंश भाषा में सि आदि प्रत्ययों के परे रहने पर नाम-प्रातिपदिक के अन्तिम स्वर को प्रायः दीर्घ और ह्रस्व स्वर हो जाता है। अर्थात् ह्रस्व स्वर, दीर्घ और दीर्घस्वर, ह्रस्व स्वर बन जाता है। **सि-प्रत्यय का उदाहरण—**

नायकः श्यामलः, नायिका चम्पक-वर्णा।
इव सुवर्णरेखा कष-पट्टके दत्ता ॥१॥

अर्थात्—कवि नायक और नायिका के वर्ण-गत सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कहता है कि नायक (किसी काव्य का चरितनायक, मुख्यपुरुष) श्याम (कृष्ण) रंग का है और नायिका (काव्य की प्रधान पात्री, स्वामिनी, भार्या, चम्पक फूल के रंग (स्वर्ण-जैसे रंग) वाली है। इन दोनों का सम्बन्ध ऐसा है,जैसे कषपट्टक (सोना परखने के लिए घिसाने के काम में आने वाला काला-पत्थर,कसौटी) पर सुवर्ण की रेखा (लकीर) दे रखी हो।

यहां पर **नायकः**=**ढोल्ला** तथा **श्यामलः**=**सामला** के अकार को आकार, **नायिका**=**धण** तथा **सुवर्णरेखा**—**सुवण्णरेह** के आकार को अकार किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में **प्रायः** इस पद का ग्रहण होने से **चम्पा-वण्णी** तथा **दिण्णी** यहां पर ईकार को इकार नहीं हो सका। **आमन्त्रण-सम्बन्धी सि-प्रत्यय का उदाहरण—**

नायक ! मया त्वं वारितः, मा कुरु दीर्घं मानम्।
निद्रया गमिष्यति रात्रिः, शीघ्रं भवति विभातम् ॥२॥

अर्थात्—नायिका कुपित नायक से कह रही है कि हे नायक ! मैंने तुझे रोका था, यह सत्य है किन्तु लम्बे समय तक अभिमान मत कर,क्योंकि रात्रि तो निद्रा से ही व्यतीत हो जाएगी, और फिर शीघ्र प्रभात हो जाने वाला है।

यहां पर १—**नायक !**=**ढोल्ल** को **ढोल्ला !** (अकार को आकार), २—**वारितः**=**वारिय** को **वारिया** (अकार को आकार), ३—**दीर्घम्**=**दीह** को **दीहा** (अकार को आकार), ४—**निद्रया** को **निद्दए** (आकार को अकार) बनाया गया है। **स्त्रीलिङ्ग का उदाहरण—**

पुत्रि ! मया भणिता त्वं, मा कुरु वक्रां दृष्टिम्।
पुत्रि ! सकर्णा भल्लीर्यथा मारयति हृदये प्रविष्टा ॥३॥

अर्थात्—माता अपनी पुत्री को समझाती हुई कहती है कि हे पुत्रि ! मैंने तुझे कहा था कि दृष्टि को वक्र-कुटिल (विकारमय) मत कर,क्योंकि पुत्रि! वक्र दृष्टि हृदय में प्रविष्ट होकर सकर्ण (तीक्ष्ण नोक वाले) भाले की भांति मनुष्य को मार देती है।

जैसे पुल्लिङ्ग में सि आदि प्रत्ययों के आगे रहने पर शब्दों के दीर्घ स्वर को ह्रस्व तथा ह्रस्व स्वर को दीर्घ स्वर हो जाता है, वैसे स्त्रीलिङ्ग में भी दीर्घ स्वर को ह्रस्व और ह्रस्व स्वर को दीर्घ स्वर हो जाता है। जैसे यहां पर (तीसरे श्लोक में), **१—भणिता=भणिया को भणिय** (आकार को अकार), **२—पुत्रि !=पुत्ती को पुत्ति !** (ईकार को इकार), **३—भल्ली:=भल्ली को भल्लि** (ईकार को इकार), तथा **४—प्रविष्टा=पइट्ठा को पइट्ठि** (आकार को इकार) बनाया गया है। **जस्-प्रत्यय का उदाहरण—**

एते तेऽश्वाः, एषा स्थली एते ते निशिताः खड्गाः।

अत्र मनुष्यत्वं ज्ञायते यो नाऽपि वालयति वल्गाम् ॥४॥

अर्थात्—युद्धकाल में सेनापति अपने सैनिकों से कह रहा है कि ये वे घोड़े हैं, यह युद्ध-भूमि है और ये वे तीक्ष्ण खड्ग हैं, युद्ध-सामग्री से परिपूर्ण ऐसे युद्धकाल में जो योद्धा अपने घोड़े की लगाम पीछे नहीं खींचता, अर्थात् आगे बढ़ता है, उसी योद्धा का वीरत्व जाना जाता है।

यहां पर **१—स्थली=थली को थलि** (ईकार को इकार), **२—निशिताः=निसिअ को निसिआ** (अकार को आकार), **३—वल्गाम्=वग्गा को वग्ग** (आकार को अकार), **४—खड्गाः=खग्गा को खग्ग** (आकार को अकार), बनाया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि इसी प्रकार अन्य विभक्तियों में भी ऐसे उदाहरणों की कल्पना कर लेनी चाहिए, जिनमें दीर्घ को ह्रस्व और ह्रस्व को दीर्घ स्वर बनाया जाता है।

१००२—अपभ्रंश भाषा में **सि** और **अम्**, इन दोनों प्रत्ययों के परे रहने पर अकार के स्थान में उकारादेश होता है। जैसे—

दशमुखः भुवनभयंकरस्तोषित-शंकरो निर्गतः रथवरे आरूढः।

चतुर्मुखं षण्मुखं ध्यात्वा एकस्मिन् लात्वा दैवेन घटितः ॥१॥

अर्थात्—भुवन (संसार) के लिए भयंकर और तोषित-शंकर (जिसने तपस्या द्वारा शंकर को प्रसन्न कर रखा हो) दशमुख (दशमुख वाला) रावण श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ (सवार) हो कर निकला। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों चतुर्मुख (चार मुख वाले) ब्रह्मा तथा ६ मुख वाले कार्तिकेय का चिन्तन करके दशमुखों को एक ही शरीर में लाकर दैव (भाग्य) ने उसे बनाया है।

सि-प्रत्यय परे रहने पर **१—दशमुखः** (दहमुहु), **२—भुवन-भयंकरः** (भुवण-भयंकरु), **३—तोषित-शंकरः** (तोसिअ-संकरु), **४—निर्गतः** (णिग्गउ), **५—आरूढः** (चडिअउ), **६—घटितः** (घडिअउ) इन शब्दों के अकार को उकार हुआ तथा **अम्**-प्रत्यय परे रहने पर—**१—चतुर्मुखम्** (चउमुहु) और **२—षण्मुखम्** (छंमुहु) इन शब्दों के अकार को उकार किया गया है। जैसे इन शब्दों में **सि** तथा **अम्** प्रत्यय परे होने पर अकार को उकार किया गया है, वैसे प्रथमा तथा द्वितीया विभक्ति के एक वचन के परे होने पर अन्य उदाहरणों में भी अकार को उकारादेश कर लेना चाहिए।

★ अथ पुल्लिङ्गीय-स्यादि-विधिः ★

१००३—सौ पुंस्योद्वा। ८। ४। ३३२। अपभ्रंशे पुल्लिङ्गे वर्तमानस्य नाम्नोऽकारस्य सौ परे ओकारो वा भवति।

अगलिअ-नेह-निवट्टाहं जोअण-लक्खु वि जाउ।

वरिस-सएण वि जो मिलइ सहि ! सोक्खहं सो ठाउ ॥१॥

पुंसीति किम् ? अङ्गहिँ अङ्गु न मिलिउ हलि! अहरेँ अहरु न पत्तु ।
पिअ जोअन्तिहेँ मुह-कमलु एम्वइ सुरउ समत्तु ॥२॥

१००४—एट्टि । ८ । ४ । ३३३ । अपभ्रंशे अकारस्य टायामेकारो भवति ।

जे महु दिण्णा दिअहडा दइएं पवसन्तेण ।
ताण गणन्तिए अङ्गुलिउ जज्जरिआउ नहेण ॥१॥

१००५—ङिनेच्च । ८ । ४ । ३३४ । अपभ्रंशे अकारस्य ङिना सह इकारः, एकारश्च भवति ।

सायरु उप्परि तणु धरइ तलि घल्लइ रयणाइं ।
सामि सुभिच्चु वि परिहरइ संमाणेइ खलाइं ॥१॥

तले घल्लइ ।

१००६—भिस्येद्वा ।८।४।३३५। अपभ्रंशे अकारस्य भिसि परे एकारो वा भवति ।

गुणहिँ न संपइ, कित्ति पर फल लिहिआ भुञ्जन्ति ।
केसरि न लहइ बोड्डिअ वि गय लक्खेहिँ घेप्पन्ति ॥१॥

१००७—ङसेर्हे-हू ।८।४।३३६। अस्येति पञ्चम्यन्तं विपरिणम्यते । अपभ्रंशे अकारात्परस्य ङसेर्हे, हु इत्यादेशौ भवतः ।

वच्छहे गृण्हइ फलइँ जणु कडु-पल्लव वज्जेइ ।
तो वि महद्दुमु सुअणु जिवँ ते उच्छङ्गि धरेइ ॥१॥

वच्छहु गृण्हइ ।

१००८—भ्यसो हुं ।८।४।३३७। अपभ्रंशे अकारात्परस्य भ्यसः पञ्चमी-बहुवचनस्य हुं इत्यादेशो भवति ।

दूरुड्डाणें पडिउ खलु अप्पणु जणु मारेइ ।
जिह गिरि-सिङ्गहुं पडिअ सिल अन्नु वि चूरुकरेइ ॥१॥

१००९—ङसः सु-हो-स्सवः । ८ । ४ । ३३८ । अपभ्रंशे अकारात्परस्य ङसः स्थाने सु, हो, स्सु इति त्रय आदेशा भवन्ति ।

जो गुण गोवइ अप्पणा पयडा करइ परस्सु ।
तसु हउँ कलि-जुगि दुल्लहहो बलि-किज्जउँ सुअणस्सु ॥१॥

१०१०—आमो हं । ८ । ४ । ३३९ । अपभ्रंशे अकारात्परस्यामो हमित्यादेशो भवति ।

तणहँ तइज्जी भङ्गि न वि तें अवड-यडि वसन्ति ।
अह जणु लग्गिवि उत्तरइ अह सह सइं मज्जन्ति ॥१॥

१०११—हुं चेदुद्भ्याम् । ८ । ४ । ३४० । अपभ्रंशे इकारोकाराभ्यां परस्यामो हुं, हं चादेशौ भवतः ।

दइवु घडावइ वणि तरुहुँ सउणिहँ पक्क-फलाइं ।
सो वरि सुक्खु पइट्ठ ण वि कण्णहिँ खल-वयणाइं ॥१॥

प्रायोऽधिकारात् क्वचित्सुपोऽपि हुं ।

धवलु विसूरइ सामिअहो गरुआ भरु पिक्खेवि ।
हउँ कि न जुत्तउ दुहुँ दिसिहिँ खण्डइँ दोण्णि करेवि ॥१॥

१०१२—ङसि-भ्यस्-ङीनां हे-हुं-हयः । ८ । ४ । ३४१ । अपभ्रंशे इदुद्भ्यां परेषां ङसि, भ्यस्, ङि इत्येतेषां यथासंख्यं हे, हुं, हि इत्येते त्रय आदेशा भवन्ति । ङसेर्हे ।

गिरिहेँ सिलायलु तरुहेँ फलु घेप्पइ नीसावँन्नु ।
घरु मेल्लेप्पिणु माणुसहं तो वि न रुच्चइ रन्नु ॥१॥

भ्यसो हुं— **तरुहुँ वि वक्कलु फलु मुणि वि परिहणु असणु लहन्ति ।**
सामिहुँ एत्तिउ अग्गलउं आयरु भिच्चु गृहन्ति ॥२॥

ङेर्हि । **अह विरल-पहाउ जि कलिहि धम्मु ।**

१०१३—आट्टो णाऽनुस्वारौ ।८।४।३४२। अपभ्रंशे अकारात्परस्य टावचनस्य णाऽनुस्वारावादेशौ भवतः । **दइएं पवसन्तेण** । [३३३.४] ।

१०१४—एं चेदुतः । ८ । ४ । ३४३ । अपभ्रंशे इकारोकाराभ्यां परस्य टावचनस्य *एं चकारात् णाऽनुस्वारौ च भवन्ति । एं—

अग्गिएँ उण्हउ होइ जगु वाएं सीअलु तेवँ ।
जो पुणु अग्गिं सीअला तसु उण्हत्तणु केवँ ॥१॥

णाऽनुस्वारौ । **विप्पिअ-आरउ जइ वि पिउ तो वि तं आणहि अज्जु ।**
अग्गिण दड्ढा जइ वि घरु तो तें अग्गिं कज्जु ॥२॥

एवमुकारादप्युदाहार्याः ।

१०१५—स्यम्-जस्-शसां लुक् । ८ । ४ । ३४४ । अपभ्रंशे सि अम्, जस्, शस् इत्येतेषां लोपो भवति । **एइ ति घोडा एह थलि** । [३३०.४] इत्यादि । अत्र स्यम्-जसां लोपः ।

जिवँ जिवँ वंकिम लोअणहं णिरु सामलि सिक्खेइ ।
तिवँ तिवँ वम्महु निअय-सर खर-पत्थरि तिक्खेइ ॥१॥

---

*एँ इत्यपि पाठान्तरं विद्यते ।

अत्र स्यम्-शसां लोपः ।

१०१६—षष्ठ्याः । ८ । ४ । ३४५ । अपभ्रंशे षष्ठ्या विभक्त्याः प्रायो लुग् भवति ।

संगर-सएहिँ जु वण्णिअइ देक्खु अम्हारा कन्तु ।
अइमत्तहं चत्तङ्कुसहं गय कुम्भइं दारन्तु ॥१॥

पृथग्योगो लक्ष्यानुसारार्थः ।

१०१७—आमन्त्र्ये जसो होः । ८ । ४ । ३४६ । अपभ्रंशे आमन्त्र्येऽर्थे वर्तमानान्नाम्नः परस्य जसो हो इत्यादेशो भवति । लोपाऽपवादः । तरुणहो !, तरुणिहो ! मुणिउ मइँ करहु म अप्पहोँ घाउ ।

१०१८—भिस्सुपोर्हि ।८।४।३४७। अपभ्रंशे भिस्सुपोः स्थाने हिं इत्यादेशो भवति । गुणहिँ न संपइ कित्ति पर [३३५,४] ।

सुप् । भाईरहि जिवँ भारइ मग्गेहिँ तिहिँ वि पयट्टइ ।

★ अथ पुंल्लिङ्गीय-स्यादिविधिः ★

अपभ्रंश-भाषायां पुल्लिङ्ग-प्रकरणे स्यादि-प्रत्ययैः सम्बन्धितं यद्विधिविधानं समीहितं भवति, तत्प्रदर्शयत्याचार्यः । यथा—

१००३— अगलित-स्नेह-निर्वृत्तानां योजन-लक्षमपि यातु ।
वर्षशतेनाऽपि यः मिलति सखि! सौख्यानां स स्थानम् ॥१॥

भावार्थः—हे सखि ! सः मे प्रिय इति यावत्, सौख्यानां सुखमेव सौख्यं तेषाम् स्थान-कारणं विद्यते । कीदृशानां सौख्यानाम् ? अगलित-स्नेह-निर्वृत्तानाम्, अगलितो अविनष्टः स्नेहः तेन निर्वृत्तम्-निष्पन्नम्, तेषाम् । यः प्रियः योजनलक्षमपि, चत्वारः क्रोशाः योजनं तेषां लक्षमपि यातु-गच्छतु, किञ्च, यः वर्षशतेनाऽपि, वर्षाणां शतं, तेन, वर्षशतव्यतिक्रान्तेऽपि मिलति—सम्मुखमायाति तथापि सः सौख्यानां जनकं जायते । अयं भावः—यत्र पारस्परिकः स्नेहस्तत्र वर्षशतेनाऽपि यदि सम्मिलनं भवेत्तदापि तत् सुखोत्पादकं भवति । अतएवोच्यते—

दूरस्थोऽपि न दूरस्थः, यो यस्य हृदये स्थितः ।
यो यस्य हृदये नाऽस्ति, समीपस्थोऽपि दूरतः ॥१॥

अगलित-स्नेह-निर्वृत्तानाम् । अगलित-स्नेह-निर्वृत्त+आम् । १७७ सू० तकारलोपे, ३४८ सू० सकारलोपे, ३५० सू० रेफलोपे, १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, ३०० सू० त्तस्य टकारे, ३६० सू० टकारद्वित्वे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, १००१ सू० अन्त्याकारस्य आकारे अगलिअ-नेह-निवट्टाहं इति भवति । योजन-लक्षम् । योजनलक्ष+सि । इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य जकारे, १७७ सू० जकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, १००२ सू० अन्त्याकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे जोअण-लक्खु इति भवति । अपि । अव्ययपदमिदम् । ४८९ सू० अप्यर्थे वि इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते । यातु । या-धातुः प्रापणे । या+तुव् । इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य जकारे, ६६२ सूत्रेण तुवः स्थाने दु इत्यादेशे, १७७ सू० दकारलोपे जाउ इति भवति ।

वर्षशतेन। वर्षशत+टा। ३७६ सू० रेफात् पूर्वं इकारागमे, २६० सू० षकारस्य शकारस्य च सकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे,१०१३ सू० टा-प्रत्ययस्य णकारे, १००४ सू० अकारस्य स्थाने एकारे **वरिससएण** इति भवति। **यः**। यद्+सि। इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जो** इति भवति। **मिलति**। मिल् संगमे-मिलने। मिल्+तिप्। ९१० सू० अकारागमे,६२८ सू० तिपः स्थाने इचादेशे **मिलइ** इति भवति। **सखि !**। सखी+सि। इत्यत्र १८७ सू० खकारस्य हकारे,१००१ सू० ईकारस्य इकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **सहि!** इति भवति। **सौख्यानाम्**। सौख्य+आम्। १५९ सू० औकारस्य ओकारे,३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, बाहुल्येन ८४ सूत्रस्याप्रवृत्तौ, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे,१०८२ सू० अनुस्वारस्य अनुनासिके जाते **सोक्खहँ** इति भवति। १००१ सूत्रे प्रायो-ग्रहणादत्र अकारस्य आकारो न जातः। **तत्**। तद्+सि। ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारलोपे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सो** इति भवति। **स्थानम्**। ष्ठा (स्था) धातुः गतिनिवृत्तौ। स्था+ल्युट्-अन। ९८७ सू० स्थाधातोः स्थाने ठा इत्यादेशे,बाहुल्येन न इत्यस्य लोपे, सिप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **ठाउ** इति भवति। **जो, सो** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **पुंसीति किम् ?** पुल्लिङ्गे एव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति, नान्यत्र। यथा—

अङ्गैः अङ्गं न मिलितं, सखि ! अधरेणाधरः न प्राप्तः।
प्रियस्य पश्यन्त्याः मुखकमलमेव सुरतं समाप्तम् ॥२॥

भावार्थः—काचित् सखी निजसखीं प्रति निजदुःखं कथयति। यथा—हे **सखि** ! **अङ्गैः** शरीरावयवैः सह **अङ्गं न मिलितम्**, **अधरेण** अधरस्तनोष्ठेन सह **अधरः**-अधरस्तनोष्ठः **न प्राप्तः**, किन्तु **प्रियस्य मुखकमलं** कमलतुल्यं प्रियस्याननमेव **पश्यन्त्याः**-अवलोकयन्त्याः मम **सुरतं** समाप्तम्, कामक्रीडा समाप्ता। संभोगेहा न पूर्णतां गतेति भावः।

अङ्गैः। अङ्ग+भिस्। इत्यत्र १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे,१०८२ सू० अनुस्वारस्य अनुनासिके **अङ्गहिँ** इति भवति। **अङ्गम्**। अङ्ग+सि। क्लीबत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **अङ्गु** इति भवति। **न**। अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेव अपभ्रंशे प्रयुज्यते। **मिलितम्** । मिलित+सि। इत्यत्र १७७ सू० तकारलोपे, क्लीबत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ, पूर्ववदेव **मिलिउ** इति भवति। **सखि !**। सखी+सि। इत्यत्र ४६६ सूत्रेण सख्या आमन्त्रणार्थे हले इति प्रयुज्यते,१००० सू० एकारस्य इकारे, अव्ययत्वात् सेर्लोपे **हलि!** इति भवति। **अधरेण**। अधर+टा। १८७ सू० धकारस्य हकारे,१००४ सू० अकारस्य एकारे,१०१३ सू० टाप्रत्ययस्य अनुस्वारे **अहरें** इति भवति। **अधरः**। अधर+सि=अहर+सि। वैकल्पिकत्वात् प्रस्तुत-सूत्रस्याप्रवृत्तौ, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे १०१५ सू० सेर्लोपे **अहरु** इति भवति। **प्राप्तः**। प्राप्त+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३४८ सू० पकारलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, वैकल्पिकत्वात्र प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ, पूर्ववदेव **पत्तु** इति भवति। **प्रियस्य**। प्रिय+ङस्। इत्यत्र ३५० सू० रेफस्य लोपे,१७७ सू० यकारस्य लोपे, १०१६ सू० ङसो लोपे **पिअ** इति भवति। **पश्यन्त्याः**। दृशिर (दृश्) दर्शने। अपभ्रंशे दृशार्थे १०६६ सू० जोअ इति देश्य-धातुः प्रयुज्यते,ततः जोअ+शतृ इति जाते,६७१ सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, स्त्रीत्वविवक्षायां ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये,१० सू० स्वरस्य लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये, ङस्-प्रत्यये, जोअन्ती+ङस् इति स्थिते,१००१ सू० ईकारस्य इकारे,१०२१ सू० ङसेः स्थाने हे इत्यादेशे,

१०८१ सू० उच्चारणलाघवे ओअम्तिहे इति भवति । **मुखकमलम्** । मुखकमल+अम् । १८७ सू० ख-कारस्य हकारे, क्लीबत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ,१००२ सू० अन्त्याकारस्य उकारे,१०१५ सू० अमो लोपे **मुहकमलु** इति भवति । **एवमेव** । अव्यय-पद-द्वयम् । १०९१ सू० एवमेव इत्यस्य स्थाने एम्वइ इ-त्यादेशे **एम्वइ** इति भवति । **सुरतम्** । सुरत+सि । १७७ सू० तकारलोपे, क्लीबत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्या-प्रवृत्तौ, १००२ सू० अन्त्याकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सुरउ** इति भवति । **समाप्तम्** । समाप्त+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३४८ सू० पकारलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे,क्लीबत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्याप्रवृत्तौ १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सेर्लोपे **समत्तु** इति भवति । **अङ्गु**, **भिलिउ**, **मुह-कमलु**, **सुरउ**, **समत्तु** इत्यत्र क्लीबत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता ।

१००४— **ये मम दत्ता दिवसाः, दयितेन प्रवसता ।**

तान् गणयन्त्याः अङ्गुल्य जर्जरिता नखेन ॥१॥

भावार्थ:—प्रवसता-देशान्तरं गच्छता सता **दयितेन**-प्रियेण **मम**-मदर्थं **ये दिवसा:**-दिनानि **दत्ताः**-नियतीकृताः, इयतो दिवसान् यावदहं पुनरागमिष्यामि एवंविधेन वचसा ये दिवसाः संकेतिताः, आसन्, **तान्** दिवसान् **नखेन**-कराग्रेण **गणयन्त्याः** मम **अङ्गुल्यः जर्जरिताः**-जीर्णतां गताः ।

ये । यद्+जस् । इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य स्थाने जकारे, ५४७ सू० जसः स्थाने डे(ए)इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **जे** इति भवति । **मम** । अस्मद्+ङस् । इत्यत्र १०५० सू० ङसा सह अस्मदः स्थाने महु इत्यादेशे **महु** इति भवति । **दत्ताः** । दत्त+जस् । ४६ सू० आद्याकारस्य इकारे, ३१४ सू० त्त इत्यस्य स्थाने णकारे,३६० सू० णकारद्वित्वे,१००१ सू० अकारस्य आकारे,१०१५ सू० जसो लोपे **दिण्णा** इति भवति । **दिवसाः** । दिवस+जस् । इत्यत्र १७७ सू० वकारलोपे,२६३ सू० सकारस्य हकारे,४३५सू० स्वार्थे कप्रत्यये,११०० सू० डड-(अड)-प्रत्ययस्य,कप्रत्ययस्य लोपे च,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,१००१ सू० अकारस्य आकारे, जसो लोपे **दिअहडा** इति भवति । **दयितेन** । दयित+टा । इत्यत्र १७७ सू० यका-रस्य तकारस्य च लोपे, १००४ सू० अकारस्य एकारे, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे **दइएं** इति भवति । **प्रवसता** । प्रपूर्वकः-वस् धातुः प्रवासे । प्रवस्+शतृ । इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ९१० सू० अकारागमे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे,१००४ सू० अकारस्य एकारे, १०१३ सू० टास्थाने णकारे **पवसन्तेण** इति भवति । **तान्** । तद्+शस् । इत्यत्र ११ सू० दकारलोपे,१००१ सू० अकारस्य आकारे, ४९५ सू० शसः स्थाने णकारे **ताण** इति भवति । **गणयन्त्याः** । गण् गणने।धातुः । गण्+शतृ । ९१० सू० अकारागमे, ६७१ सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे,स्त्रीत्वविवक्षायां ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये,१० सू० स्वरे परे स्वरस्य लोपे, ५१८ सू० ङसः स्थाने एकारे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे **गणन्तिए** इति भवति । **अङ्गुल्यः** । अङ्गुलि+जस् । १०१९ सू० जसः स्थाने उकारे **अङ्गुलिउ** इति भवति । **जर्जरिताः** । जर्जरिता+जस् । ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० जकार-द्वित्वे, १७७ सू० तकारलोपे, पूर्ववदेव **जज्जरिआउ** इति सा-ध्यम् । **नखेन** । नख+टा । १८७ सू० खकारस्य हकारे, १००४ सू० अकारस्य एकारे, १०१३ सू० टा-प्रत्ययस्य णकारे **नहेण** इति भवति । **दइएं**, **पवसन्तेण**, **नहेण** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१००५— **सागर उपरि तृणं धरति, तले क्षिपति रत्नानि ।**

स्वामी सुभृत्यमपि परिहरति सम्मानयति खलान् ॥१॥

भावार्थ:—स्वामी-नायकः, **सुभृत्यमपि**-शोभनो भृत्यः-सेवकः,तमपि **परिहरति**-तिरस्करोति,अथ-च **खलान्**-दुष्टान् **सम्मानयति** । कः इव यथा **सागरः**-समुद्रः **रत्नानि**-सारोपेत-वस्तूनि **तले**-अधोभागे **क्षि**-

घत्ति-पातयति तेषां क्षेपं करोति किन्तु तृणं-घासमुपरि-जलस्योर्ध्वभागे धरति-धारयति । यथा सागरस्यायं प्राकृतिकः स्वभावः, एवमेव स्वामिनोऽपि स्वभावोऽस्तीति भावः ।

सायरु । सागर+सि । १७७ सू० गकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १००२ सू० अन्त्याकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सायरु** इति भवति । **उप्परि** । अव्ययपदमिदम् । ३७० सू० पकारस्य द्वित्वे **उप्परि** इति भवति । **तृणम्** । तृण+अम् । १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **तणु** इति भवति । **धरति** । धृङ् (धृ) धारणे । धृ+तिव् । इत्यत्र ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **धरइ** इति भवति । **तले** । तल+ङि । १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **तलि** इति भवति । **क्षिपति** । क्षिप्-धातुः प्रक्षेपे । क्षिप्+तिव् । अपभ्रंशे क्षिपार्थे घल्ल इति देश्यधातुः प्रयुज्यते, ६२८ सू० तिव इचादेशे **घल्लइ** इति भवति । **रत्नानि** । रत्न+जस् । ३७२ सू० नकारात् पूर्वं अकारागमे, १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे **रयणाइं** इति भवति । **स्वामी** । स्वामिन्+सि । ३५० सू० वकारलोपे, ११ सू० नकारलोपे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सामि** इति भवति । **सुभृत्यम्** । सुभृत्य+अम् । इत्यत्र १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, २८४ सू० त्यस्य स्थाने चकारे, ३६० सू० चकारद्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **सुभिच्चु** इति भवति । **अपि** । अव्ययपदमिदम् । ४८९ सू० अप्यर्थे **वि** इति प्रयुज्यते । **परिहरति** । परिपूर्वकः हृधातुः परिहरणे । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **परिहरइ** इति भवति । **संमानयति** । सम्पूर्वकः मान्-धातुः संमानने । सम्-मान्+णिच्+तिव् । २३ सू० मकारानुस्वारे, ६३८ सू० णिचः स्थाने एकारे, पूर्ववदेव **संमानेइ** इति भवति । बाहुल्येनात्र २२८ सू० नकारस्य णकारो न जातः । **खलान्** । खल+शस् । १००१ सू० अकारस्य आकारे, ३४ सू० क्लीबत्वे, १०२४ सू० शसः स्थाने इं इत्यादेशे **खलाइं** इति भवति । **तलि** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण ङिना सह अकारस्य **इकारो** जातः । यत्र ङिना सह अकारस्य **एकारो** भवति, तदुदाहरणं प्रदर्श्यते । यथा—**तले** । तल+ङि । १००५ सू० ङिना सह अकारस्य एकारे **तले** इति भवति । **क्षिपति**=घल्लइ, पूर्ववदेव साध्यम् ।

१००६— **गुणैः न संपत् कीर्तिः परं, फलानि लिखितानि भुञ्जन्ति ।**
केसरी कपर्दिकामपि न लभते गजाः लक्षैः गृह्यन्ते ॥१॥

भावार्थः—गुणैः-शौर्यादिगुणैः **कीर्तिर्भवति**, यशस्-सम्पदः प्राप्तिर्जायते, परं-किन्तु तैर्गुणैः **सम्पत्** न प्राप्यते । **फलानि**-कर्म-फलानि **लिखितानि**, ललाटपट्टके-मस्तके यथाऽङ्कितानि सन्ति तथैव **भुञ्जन्ति**-प्राप्तुं शक्यानि भवन्ति । भाग्यादेव लाभो जायते । एतमेवाभिप्रायं दृष्टान्तेन स्पष्टयति श्लोककारः । यथा—**केसरी** सिंहः शौर्यादिगुणसम्पन्नोऽपि **कपर्दिकामात्रमपि** मूल्यं **न लभते** किन्तु **गजाः** सिंहमपेक्ष्य वीरत्वादिगुणहीना अपि **लक्षैः गृह्यन्ते**-प्राप्यन्ते । गुणेभ्यो भाग्यं बलवत्तरमिति भावः ।

गुणैः । गुण+भिस् । १००६ सू० अकारस्य वैकल्पिके एकारे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० अनुस्वारस्य अनुनासिके **गुणेहिँ गुणहिँ** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेवापभ्रंशे प्रयुज्यते । **संपत्** । संपद्+सि । १०७१ सू० दकारस्य इकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **संपइ** इति भवति । **कीर्तिः** । कीर्ति+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, सेर्लोपे **कित्ति** इति भवति । **परम्** । अव्ययपदमिदम् । १०८९ सू० 'परम्' इत्यस्य पर इत्यादेशे **पर** इति भवति । **फलानि** । फल+शस् । १०१५ सू० शसो लोपे **फल** इति भवति । **लिखितानि** । लिखित+शस् । १८७ सूत्रेण खकारस्य हकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, शसो

लोपे **लिहिआ** इति भवति । **भुञ्जन्ति** । भुजधातुः पालनाऽभ्यवहारयोः । संस्कृतनियमेन भुञ्ज्+अन्ति इति जाते,९१० सू० अकारागमे,६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **भुञ्जन्ति** इति सिद्धम् । **केसरी** । केसरिन्+सि । इत्यत्र ११ सू० नकारलोपे,१०१५ सू० सेर्लोपे **केसरि** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदम् । संस्कृतसममेवापभ्रंशे प्रयुज्यते । **लभते** । डुलभष्-(लभ्)-धातुः लाभे । लभ्+ते । ९१० सू० अकारागमे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य स्थाने इचादेशे **लहइ** इति भवति । **कपर्दिकाम्** । कपर्दिका+अम् । अपभ्रंशे कपर्दिकार्थे १०९३ सू० बोड्डिआ इति शब्दः प्रयुज्यते,१००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **बोड्डिअ** इति इति भवति । **अपि**=वि,प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **गजाः** । गज+जस् । इत्यत्र १७७ सू० जकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १०१५ सू० जसो लोपे **गय** इति भवति । **लक्षैः** । लक्ष+भिस् । इत्यत्र २७४ सू० क्षस्य खकारे,३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे,१००६ सू० अकारस्य वैकल्पिके एकारे,१०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे **लक्खेहिं** इति भवति । **गृह्यन्ते** । ग्रह्-धातुः उपादाने । ग्रह्+क्य+अन्ते । ९२७ सू० ग्रह-धातोः स्थाने घेप्प इत्यादेशे, क्यस्य च लोपे,६३१ अन्ते इत्यस्य न्ति इत्यादेशे **घेप्पन्ति** इति भवति । **गुणेहिं, गुणहिं, लक्खेहिं** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१००७—अस्येति पञ्चम्यन्तम् । १००५ सूत्रे अस्य इति पदं षष्ठ्यन्तं वर्तते,किन्तु प्रस्तुते (१००७) सूत्रे तत्पदं पञ्चम्यन्तेन विपरिणम्यते-परिवर्त्यते । व्याकरण-शास्त्रे-'**अर्थवशाद् विभक्ति-परिणामः**' इति न्यायः आद्रियते । अतएवाऽत्र षष्ठ्याः स्थाने पञ्चम्याः विपरिणामो जातः । फलतः इत आरभ्य,'**अकारात्**' इत्यस्य पदस्यानुवृत्तिर्बोध्या ।

वृक्षाद् गृह्णाति फलानि, जनः कटुपल्लवान् वर्जयति ।
ततोऽपि महाद्रुमः सुजनो यथा तानुत्सङ्गे धरति ॥१॥

भावार्थः:—**जनः**-मनुष्यः **वृक्षाद्** आस्वादयोग्यानि **फलानि गृह्णाति**, परन्तु **कटुपल्लवान्**-कटुस्वादी पल्लवाः, तान्, मधुरस्वाद-रहितानि पत्राणि **वर्जयति**-परित्यजति । **ततोऽपि**-तथापि **महाद्रुमः**-महाविस्तारी द्रुमः-वृक्षः **सुजन इव**-यथा श्रेष्ठजनः दुर्जनमपि आश्रये धरति तथैवेत्यर्थः । **तान्** कटु-पल्लवान् **उत्सङ्गे-क्रोडे धरति**, तेभ्यः आश्रयं ददातीति भावः ।

वृक्षाद् । वृक्ष+ङसि । १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, २८८ सू० क्षस्य स्थाने छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, १००७ सू० ङसः स्थाने हे इत्यादेशे, १०८१ सू० एकारस्य उच्चारणे लाघवे=अनुनासिके जाते **वच्छहे** इति भवति । **गृह्णाति** । ग्रह् उपादाने । ग्रह्+तिप् । इत्यत्र ८८० सू० ग्रह्-धातोः स्थाने गेण्ह इत्यादेशे,१००० सू० एकारस्य अकारे, ६२८ सू० तिपः स्थाने इचादेशे **गृण्हइ** इति भवति । **फलानि** । फल+जस् । १०२४ सू० जसः स्थाने इँ इत्यादेशे **फलइँ** इति भवति । **जनः** । जन+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जणु** इति भवति । **कटुपल्लवान्** । कटुपल्लव+शस् । १९५ सू० टकारस्य डकारे,क्लीबत्वाभावात् १०२४ सू० शसः स्थाने इं इत्यादेशाभावे, १०१५ सू० शसो लोपे **कडुपल्लव** इति भवति । **वर्जयति** । वृजी-(वृज्)-धातुः वर्जने । संस्कृतनियमेन वर्ज+णिग्+तिप् इति जाते, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे, ६३८ सू० णिगः स्थाने एकारे, ६२८ सू० तिपः स्थाने इचादेशे **वज्जेइ** इति भवति । **ततः** । अव्ययपदमिदम् । १०८८ सू० ततः इत्यस्य स्थाने तो इत्यादेशे **तो** इति भवति । **अपि**=वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **महाद्रुमः** । महाद्रुम+सि । ८४ सूत्रेण आकारस्य अकारे, ३५० सू० रेफस्य

लोपे, ३६० सू० दकारस्य द्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सि-प्रत्ययस्य लोपे **महद्दुमु** इति भवति । **सुजनः** । सुजन+सि । १७७ सू० जकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **सुअणु** इति भवति । **यथा**—जिवँ, इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया । **तान्** । तद्+शस् । इत्यत्र ११ सू० दकारलोपे, ५०३ सू० अकारस्य स्थाने एकारे, १०१५ सू० शसो लुकि ते इति भवति । **उत्सङ्गे** । उत्सङ्ग+ङि । २९२ सू० त्सस्य स्थाने छकारे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य स्थाने चकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **उच्छङ्गि** इति भवति । **धरति** । धृङ् (धृ) धारणे । धृ+तिप् । इत्यत्र ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे, ६२८ सू० तिपः स्थाने इचादेशे **धरेइ** इति भवति । **वच्छहे** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण ङसि-प्रत्ययस्य हे इत्यादेशो जातः । यत्र ङसि-प्रत्ययस्य स्थाने हु इत्यादेशो भवति, तदुदाहरणं प्रदर्श्यते, यथा-**वृक्षात्** । वृक्ष+ङसि=वच्छ+ङसि । १००७ सू० ङसेः स्थाने हु इत्यादेशे **वच्छहु** इति भवति । **वृक्षात्**=**वृच्छहु** इति पूर्ववदेव साध्यम् ।

१००८— **दूरोड्डयनेन पतितः खलः, आत्मानं जनं मारयति ।**
यथा गिरिशृङ्गेभ्यः पतिता शिला अन्यदपि चूर्णीकरोति ॥१॥

भावार्थः—दूरोड्डयनम्-दूरञ्च तद् उड्डयनम्, ऊर्ध्वगमनम्, तेन **पतितः खलः**-दुर्जनः आत्मानम्-स्वं, **जनम्**-अन्यज्जनं च **मारयति** । ऊर्ध्वगतोऽपि दुर्जनः अधः आगतः आत्मानं, स्वनिकटवर्तिनं च जनं निज-स्नेहभाजनमपि पुरुषं परिपीडयति, किमिव, **यथा**-येन प्रकारेण **गिरिशृङ्गेभ्यः**, गिरेः शृङ्गाणि, तेभ्यः **पतिता** स्खलिता **शिला** प्रस्तरखण्डं स्वयमपि चूर्णीभवति, स्वसमीपस्थितमन्यदपि च वस्तु **चूर्णीकरोति** । दुर्जनः न केवलं स्वयं नश्यति, किन्तु स्वसम्बद्धानपि जनान् नाशयतीति भावः ।

दूरोड्डयनेन । दूरोड्डयन+टा । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १७७ सू० यकारलोपे, ५ सू० दीर्घसन्धौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००४ सू० अकारस्य एकारे, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य स्थाने अनुस्वारे **दुरुड्डाणें** इति भवति । **पतितः** । पतित+सि । ८९० सू० तकारस्य डकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पडिउ** इति भवति । **खलः** । खल+सि । १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **खलु** इति भवति । **आत्मानम्** । आत्मन्+अम् । इत्यत्र ३२२ सू० त्मस्य स्थाने पकारे, ३६० सू० पकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ५४५ सू० अन् इत्यस्य आण इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००० सू० आकारस्य अकारे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **अप्पणु** इति भवति । **जनम्** । जन+अम् । २२८ सू० नकारस्य स्थाने णकारे, पूर्ववदेव **जणु** इति भवति । **मारयति** । मृङ् (मृ) प्राणत्यागे । मृ+णिग्+तिप् । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६२८ सू० णिगः स्थाने एकारे, ६४२ सू० आद्याकारस्य आकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० तिपः स्थाने इचादेशे **मारेइ** इति भवति । **यथा** । अव्ययपदमिदम् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०७२ सू० था इत्यस्य डिह-(इह) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **जिह** इति भवति । **गिरिशृङ्गेभ्यः** । गिरिशृङ्ग+भ्यस् । इत्यत्र २६० सू० शकारस्य सकारे, १३० सू० ऋकारस्य इकारे, प्रस्तुतसूत्रेण भ्यसः स्थाने हुं इत्यादेशे **गिरि-सिङ्गहुं** इति भवति । **पतिता** । पतिता+सि । ८९० सू० तकारस्य डकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पडिअ** इति भवति । **शिला** । शिला+सि । २६० सू० शकारस्य सकारे, १००१ सूत्रेण आकारस्य अकारे, सेर्लोपे **सिल** इति भवति । **अन्यद्** । अन्यद्+सि । इत्यत्र ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० नकारस्य द्वित्वे, ११ सू० द-

कारस्य लोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे अम्बु इति भवति । अग्नि—त्ति, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । चूर्णीकरोति । अचूर्णं चूर्णं करोतीति । चूर्णीकृ+तिव् । अपभ्रंशभाषायां १०९३ सू० चूर्णी इत्यस्य चुण्ण इति शब्दः प्रयुज्यते, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६४७ सू० अन्त्याकारस्य एकारे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे चुण्णकरेइ इति भवति । गिरि-सिङ्गहुं इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्ति-र्जाता ।

१००९—

यो गुणान् गोपयति आत्मीयान्, प्रकटं करोति परस्य ।
तस्याऽहं कलियुगे दुर्लभस्य बलीक्रिये सुजनस्य ॥१॥

भावार्थः—यः-सज्जनः, आत्मीयान्-स्वकीयान् गुणान् गोपयति-आच्छादयति, परन्तु परस्य गुणान् प्रकटं करोति तस्य दुर्लभस्य-दुष्प्राप्यस्य सुजनस्य, शोभनश्चासौ जनः, सुजनस्तस्य कृते अहं कलियुगे बलीक्रिये-निजं बलिदानं करोमि, आत्मानं तस्मै समर्पयामीति भावः ।

यः । यद्+सि—जो, प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया । गुणान् । गुण+शस् । १०१५ सू० शसो लोपे गुण इति भवति । गोपयति । गुपू (गुप्) रक्षणे । गुप्+णिच्+तिव् । १००० सू० उकारस्य ओकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, ६३८ सू० णिचः स्थाने अकारे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे, गोवइ इति भवति । आत्मीयान् । आत्मीय+शस् । इत्यत्र १०९३ सू० आत्मीयस्य स्थाने अप्पण इत्यादेशे १००० सू० अन्त्याकारस्य आकारे, १०१५ सू० शसो लोपे अप्पणा इति भवति । प्रकटम् । प्रकट+अम् । १०६९ सू० रेफलोपे, १७७ सू० ककारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १९५ सू० टकारस्य डकारे, १००१ सू० अन्त्याकारस्य आकारे, १०१५ सू० अमो लोपे पयडा इति भवति । करोति । डुकृञ्-(कृ)-धातुः करणे । कृ+तिव् । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे करइ इति भवति । परस्य । पर+ङस् । इत्यत्र १००९ सू० ङसः स्थाने स्सु इत्यादेशे परस्सु इति भवति । तस्य । तद्+ङस् । ११ सू० दकारलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण ङसः स्थाने सु इत्यादेशे तसु इति भवति । अहम् । अस्मद्+सि । १०४६ सू० अस्मदः स्थाने हउं इत्यादेशे, १०८२ सू० अनुस्वारस्य अनुनासिके, १०१५ सू० सेर्लोपे हउँ इति भवति । कलि-युगे । कलियुग+ङि । २४५ सू० यकारस्य जकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य स्थाने इकारे कलि-जुगि इति भवति । दुर्लभस्य । दुर्लभ+ङस् । इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० लकार-द्वित्वे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, प्रस्तुतसूत्रेण ङसः स्थाने हो इत्यादेशे दुल्लहहो इति भवति । बली-क्रिये । बलिपूर्वकः डुकृञ् (कृ) धातुः बलिहारे । संस्कृत-नियमेन बलीकृ+क्य इति जाते, १००० सू० ईकारस्य इकारे, ६४९ सू० क्यस्य स्थाने इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, ए-प्रत्यये, १०५६ सू० ए-प्रत्ययस्य स्थाने उं इत्यादेशे, १०८२ सू० अनुस्वारस्य अनुनासिके बलिकिज्जउँ इति भवति । सुजनस्य । सुजन+ङस् । इत्यत्र १७७ सू० जकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, प्रस्तुतसूत्रेण ङसः स्थाने स्सु इत्यादेशे सुअणस्सु इति भवति । परस्सु, तसु, दुल्लहहो, सुअणस्सु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०१०—

तृणानां तृतीया भङ्गी, नाऽपि तेन अवटतटे तिष्ठन्ति ।
अथ जनः लगित्वा उत्तरति अथ सह स्वयं मज्जन्ति ॥१॥

भावार्थः—तृणानां तृतीया भङ्गी-प्रकारः नाऽपि-नैव वर्तते, इति सुनिश्चितम्, तेन-अतएव तानि तृणानि अवटतटे कूपस्य तटे उपरिभागे तिष्ठन्ति । अथ जनः-प्राणिवर्गः जलस्य पारगन्तुमभिकामो मनुष्यः तानि तृणानि लगित्वा-आश्रित्य अवलम्ब्य वा उत्तरति-पारमधिगच्छति । अथ-अथवा तानि तृणानि तेन मज्जता जनेन सह स्वयमपि-स्वस्थानादुत्तारयमाणान्यपि मज्जन्ति-जलमग्नानि भवन्ति । तृणानि परोप-कार-कारकाणि भवन्ति, अतएव तानि जलतटे स्थितिं कुर्वन्ति । तानि तृणानि निमज्जतो जनस्य साहाय्यं

कर्षन्ति,यदि मज्जन्तं जनं पारयितुं नाऽलं भवन्ति,तदा तानि"**उपकार-शून्यस्य जीवनं धिग्**"इति हेतोः निमज्जता जनेन सार्द्धमेव निमज्जन्ति। तृणजीवनस्य "**असहायस्य साहाय्यकरणम्**" अथवा "**जीवनोत्सर्गः**" एतद् लक्ष्यद्वयमेव वर्तते, एतेषां तृतीया गतिर्नास्तीति भावः।

तृणानाम्। तृण+आम्। १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, १०८२ सू० अनुस्वारस्य अनुनासिके **तणहँ** इति भवति। **तृतीया**। तृतीया+सि। ऋकारस्य अकारे, १७७ सू० द्वितीय-तकारलोपे,२४८ सू० यकारस्य स्थाने ज्ज इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, स्त्रीत्वविवक्षायामाप्प्रसंगे,५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **तइज्जी** इति भवति। प्रायोग्रहणाद् अत्र १००१ सूत्रेण ईकारस्य इकाराभावो बोध्यः। **भङ्गी**। भङ्गी+सि। १००१ सू० ईकारस्य इकारे, सेर्लोपे **भङ्गि** इति भवति। **न**। अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेवापभ्रंशे प्रयुज्यते। **अपि**=वि,प्रक्रिया ४८६ सूत्रे ज्ञेया। **तेन**। तद्+टा। ११ सू० दकारलोपे, १००४ सू० अकारस्य स्थाने एकारे,१०१३ सू० टास्थाने अनुस्वारे **तें** इति। **अवटतटे**। अवट-तट+ङि। १९५ सू० उभयत्रापि टकारस्य डकारे, १७७ सू० वकारलोपे,१८० सू० यकारस्य श्रुतौ,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **अवडयडि** इति भवति। **वसन्ति**। वस (वस्) निवासे। वस्+अन्ति। इत्यत्र ९१० सू० अकारागमे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **वसन्ति** इति भवति। **अथ**। अव्ययपदमिदम्। १८७ सू० थकारस्य हकारे **अह** इति भवति। **जनः**=जणु प्रक्रिया १००७ सूत्रे ज्ञेया। **लगित्वा**। लग्-धातुः लग्ने। लग्+क्त्वा। ९०१ सू० गकार-द्वित्वे,१११० सू० क्त्वः स्थाने इवि इत्यादेशे **लग्गिवि** इति भवति। **उत्तरति**। उत्-पूर्वकः तॄधातुः उत्तरणे। उत्तॄ+तिव्। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **उत्तरइ** इति भवति। **सह**। अव्ययपदमिदम्। संस्कृतसममेवापभ्रंशे प्रयुज्यते। **स्वयम्**। अव्ययपदमिदम्। ३५० सू० वकारलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, १००० सू० अकारस्य इकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **सइं** इति भवति। **मज्जन्ति**। टुमस्जो (मस्ज्) शुद्धौ। मस्ज्+अन्ति। ३४८ सू० सकारलोपे, ३६० सू० जकारद्वित्वे,९१० सू० अकारागमे,**वसन्तिवत् मज्जन्ति** इति भवति। **तणहँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

१०११— **दैवं घटयति वने तरुणां शकुनीनां पक्वफलानि।**
तद् वरं सौख्यं प्रविष्टानि नाऽपि कर्णयोः खलवचनानि॥११॥

भावार्थः—**दैवं**-प्रकृतिः **वने शकुनीनां**-पक्षिणां कृते **तरुणां**-वृक्षाणां **पक्वफलानि**-पक्वानि च तानि फलानि, **घटयति**-निर्मापयति, **तत्तेषां** भक्षणं **वरं**-श्रेष्ठम्, **सौख्यं**-सुखोत्पादकं किन्तु बहुजन-समाकीर्णेऽपि-नगरे **कर्णयोः**-श्रोत्रयोः **प्रविष्टानि खलवचनानि** खलानां-दुर्जनानां वचनानि-वचांसि **नाऽपि**-नैव न कदाचिदपि सुखकरानि भवन्तीत्यर्थः। वने निवसनं श्रेष्ठतमं न तु दुष्टजनाकीर्णं नगरं इति भावः।

दैवम्। दैव+सि। १५३ सू० ऐकारस्य अइ इत्यादेशे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **दइवु** इति भवति। **घटयति**। घट्-धातुः चेष्टायाम्। घट्+णिग्+तिव्। इत्यत्र १९५ सू० टकारस्य डकारे,६३८ सू० णिगः स्थाने आव इत्यादेशे,१० सू० स्वरलोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **घडावइ** इति भवति। **वने**। वन+ङि। इत्यत्र २२८ सू० नकारस्य णकारे,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य स्थाने इकारे **वणि** इति भवति। **तरूणाम्**। तरु+आम्। इत्यत्र १०११ सू० आमः स्थाने हुं इत्यादेशे, १०८२ सू० अनुस्वारस्य अनुनासिके **तरुहुँ** इति भवति। **शकुनीनाम्**। शकुनि+आम्। २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० ककारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०११

सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, पूर्ववदेव अनुस्वारस्य अनुनासिके **सउणिहँ** इति भवति । **पक्व-फलानि** । पक्वफल+जस् । ३५० सू० वकारलोपे, ३६० सू० ककार-द्वित्वे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे **पक्कफलाइं** इति भवति । **तद्** । तद्+सि । ३३ सू० तद्-शब्दस्य लिङ्गस्य व्यत्यये, ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारलोपे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सो** इति भवति । **वरम्** । वर+सि । इत्यत्र १००० सू० अन्त्याकारस्य इकारे, सेर्लोपे **वरि** इति भवति । **सौख्यम्** । सौख्य+सि । १६० सू० औकारस्य उकारे, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० खकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे १०१५ सू० सेर्लोपे **सुक्खु** इति भवति । **प्रविष्टानि** । प्रविष्ट+जस् । ३५० सू० रेफस्य लोपो, १७७ सू० वकारलोपे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **पइट्ठ** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदम् । २२८ सू० नकारस्य स्थाने णकारे **ण** इति सिद्धम् । **अपि**=वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **कर्णयोः** । कर्ण+ओस् । ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० णकारद्वित्वे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१८ सू० सुप्-प्रत्ययस्य स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० अनुस्वारस्य अनुनासिके **कण्णहिँ** इति सिद्धम् । **खलवचनानि** । खलवचन+जस् । १७७ सू० चकारलोपे, १८० सू० यकारस्य श्रुतौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे **खलवयणाइं** इति भवति । **तरुहँ, सउणिहँ, कण्णहिँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **प्रायोऽधिकारात्** । १००० सूत्रे पठितस्य **प्रायः** इति पदस्यात्र सूत्रेऽनुवृत्तिरायाति, तेन सुप्-प्रत्ययस्यापि हुं इत्यादेशो भवति । यथा—

धवलः खिद्यति स्वामिनः गुरुं भरं प्रेक्ष्य ।
अहं किं न युक्तः द्वयोर्दिशोः खण्डे द्वे कृत्वा ॥१॥

भावार्थः—कश्चित् स्वामिभक्तः **धवलः**-श्वेतो वृषभः **स्वामिनः गुरुं**-महान्तं **भरं**-भारं प्रेक्ष्य, महद्भारं वहमानं स्वामिनं समीक्ष्येत्यर्थः । यदा **खिद्यति**-दुःखी भवति, तदा विचारयति यदहं **द्वयोःदिशोः**-उभयोः पार्श्वयोः **द्वे खण्डे**-भागद्वयं **कृत्वा**-विधाय **किं**-कथं न **युक्तः**-योजितः ? कस्यचित् सार्थस्य एको वृषभः पञ्चत्वमुपगतः, तदाऽसौ शकटं वृषभश्च कस्यचिद् व्यक्तेः पार्श्वे त्यक्त्वा स्वयमेव आवश्यकं भारं मस्तकोपरि निधाय चलितः । तदा द्वितीयो वृषभः एतादृशीं दशां प्रेक्ष्य खिद्यतीति भावः ।

धवलः । धवल+सि । इत्यत्र १००२ सू० अन्त्याकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **धवलु** इति भवति । **खिद्यति** । खिद-धातुः परितापे । खिद्+तिव् । इत्यत्र ८०३ सू० खिद्-धातोः स्थाने विसूर इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **विसूरइ** इति भवति । **स्वामिनः** । स्वामिन्+ङस् । इत्यत्र ३५० सू० वकारलोपे, ११ सू० नकारस्य लोपे, ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये क-प्रत्ययस्य च लोपे, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे **सामिअहो** इति भवति । **गुरुम्** । गुरु+अम् । इत्यत्र १०९ सू० आदेरुकारस्य स्थाने अकारे, ४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये कप्रत्ययस्य च लोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **गरुआ** इति भवति । **भरम्** । भर+अम् । १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, अमो लोपे **भरु** इति भवति । **प्रेक्ष्य** । प्रपूर्वकः **ईक्ष्**-धातुः प्रेक्षणे । प्रेक्ष्+क्त्वा । इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य स्थाने ककारे, ११११ सू० क्त्वः स्थाने एवि इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **पिक्खेवि** इति भवति । **अहम्** । अस्मद्+सि । इत्यत्र १०४६ सू० अस्मदः स्थाने **हउं** इत्यादेशे, १०८२ सू० अनुस्वारस्य स्थाने अनुनासिके, १०१५ सू०

सेर्लोपे **हुउँ** इति भवति । **किम्** । किम्+सि । इत्यत्र २३ सू० मकारानुस्वारे, २९ सू० अनुस्वारस्य लोपे, १०१५ सू० सेर्लोपे **कि** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेवापभ्रंशे प्रयुज्यते । **युक्तः** । युक्त+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ३४८ सू० ककार-लोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, ११०० सू० स्वार्थे प्रत्यये कप्रत्ययस्य च लोपे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जुत्तउ** इति भवति । **द्वयोः** । द्वि+ओस् । ९४ सू० इकारस्य उकारे, ३५० सू० वकारलोपे, ६१९ सू० द्विवचनस्य स्थाने बहुवचने, वस्तुते [१०११] सूत्रे प्रायोऽधिकारात् सुपः स्थानेऽपि हुं इत्यादेशे, १०८२ सू० अनुस्वारस्य स्थाने अनुनासिके **दुहुँ** इति भवति । **दिशोः** । दिश्+ओस् । १९ सू० शकारस्य सकारे, दिस+ओस् इति जाते, १००० सू० अकारस्य इकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१८ सू० सुपः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० अनुस्वारस्य अनुनासिके **दिसिहिँ** इति भवति । **खण्डे** । खण्ड+औ । द्विवचनस्य बहुवचने, १०२४ सू० जसः स्थाने इँ इत्यादेशे **खण्डइँ** इति भवति । **द्वे** । द्वि+औ = **दोण्णि**, प्रक्रिया ६०९ सूत्रे ज्ञेया । **कृत्वा** । डुकृञ्-कृ करणे । कृ+क्त्वा । ९०५ सू० ऋकारस्य अरादेशे, ११११ सू० क्त्वः स्थाने एवि इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **करेवि** इति भवति । प्रायोग्रहणाद् **दुहुँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०१२—ङसेर्हें । १०१२ सूत्रेण यत्र ङसेः स्थाने हें इत्यादेशो भवति, तदुदाहरणं प्रदीयते वृत्तिकारेण । यथा—

गिरेः शिलातलं तरोः फलं गृह्यते निःसामान्यम् ।
गृहं मुक्त्वा मानुषाणां ततोऽपि न रोचतेऽरण्यम् ॥१॥

भावार्थः—निःसामान्यं, निः-निश्शेषं, सर्वं च तत् सामान्यं-साधारणमिति, सर्वैरपि जनैरिति यावत् । अथवा निः-निर्गतं सामान्यम्-साधारणं यत्र तन्निस्सामान्यं विशेषरूपेणेत्यर्थः सकलैः प्राणिभिरित्यध्याहार्यम् । कथनाशयं *गिरेः-पर्वतात् **शिलातलं**, शिलायाः तलमुपरिभागं गृह्यते-प्राप्यते, किञ्च, **तरोः**-वृक्षाद् **फलं**-फलानि जनैः गृह्यते, तथापि गृहं त्यक्त्वा मानवेभ्यः वनं न रोचते । मानवः वनेऽपि स्वजीवननिर्वाहं निर्विघ्नतया कर्तुं शक्नोति, तथाप्यसौ धन-धान्य-परिवारादीनां मोहाद् गृहं त्यक्तुं न समर्थ इति भावः ।

गिरेः । गिरि+ङस् । इत्यत्र १०१२ सू० ङसः स्थाने हें इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे-अनुनासिके **गिरिहें** इति भवति । **शिलातलम्** । शिलातल+अम् । २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **सिलायलु** इति भवति । **तरोः** । तरु+ङस् । १०१२ सू० ङसः स्थाने हें इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **तरुहें** इति भवति । **फलम्** । फल+अम् । १००२ सू० अकारस्य उकारे, अमो लोपे **फलु** इति भवति । **गृह्यते** । ग्रह् उपादाने । ग्रह्+क्य+ते । ६२७ सू० ग्रह्-धातोः स्थाने घेप्प इत्यादेशे, क्यस्य च लुकि, ६२८ सू० ते इत्यस्य स्थाने इ-आदेशे **घेप्पइ** इति भवति । **निस्सामान्यम्** । क्रियाविशेषणमिदम् । निस्सामान्य+अम् । ३४८ सू० संयुक्त-सकारलोपे, ४३ सू० आदिस्वरस्य दीर्घे, १०६८ सू० मकारस्य स्थाने सानुनासिके वकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० नकारद्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **नीसावँन्नु** इति भवति । **गृहम्** । गृह+अम् । ४१५ सू० गृहस्य स्थाने घर इत्यादेशे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, अमो लोपे **घरु** इति भवति । **मुक्त्वा** । मुच्लृ (मुच्) मोचने । मुच्+क्त्वा ७६२ सू० मुच्धातोः स्थाने मेल्ल इत्यादेशे, ११११ सू० क्त्वः स्थाने एप्पिणु इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य

*गिरेः शिलातलम्, तरोः फलम्, एतेषु पदेषु जातावेकवचनं बोध्यम् ।

लोपे, अज्भीने परेण संयोगे मेलेप्पिणु इति भवति। मानुषाणाम्। मानुष+आम्। २२८ सू० नकार-स्य णकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे माणुसहं इति भवति। ततः=सो, इत्यस्य प्रक्रिया १००७ सूत्रे ज्ञेया। अपि=वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया। न। अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेवापभ्रंशे प्रयुज्यते। रोचते। रुच-रुच् दीप्तौ अभिप्रीतौ च। रुच्+ते। ९०१ सू० चकारद्वित्वे, ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० ते इत्यस्य स्थाने इचादेशे रुच्चइ इति भवति। अरण्यम्। अरण्य+सि। ६६ सू० आदेरकारस्य लोपे, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० णकारद्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे रन्नु इति भवति। गिरिहें, तरुहें इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। भ्यसो हुं। १०१२ सूत्रेण यत्र भ्यसः स्थाने हुं इत्यादेशो भवति, तदुदाहरणं प्रदर्श्यते वृत्तिकारेण। यथा—

तरुभ्योऽपि वल्कलं फलं मुनयोऽपि परिधानमशनं लभन्ते।
स्वामिभ्यः इयदग्रकम्, आदरं भृत्याः गृह्णन्ति ॥२॥

भावार्थः—**मुनयोऽपि**-सन्तजना अपि **परिधानं**-परिधानार्थं, वस्त्रार्थं, **तरुभ्यः**-तरूणां सकाशात् **वल्कलं**-तरुत्वचं, भोजनार्थम्-**अशनं**-फलादिकं **लभन्ते**, परन्तु **भृत्याः** यत् **स्वामिभ्य आदरं**-सम्मानं **गृह्णन्ति इयत्**-एतावदेव **अग्रकम्**-अधिकम् विशिष्टत्वं प्राप्नुवन्ति। भृत्याः सम्मानार्थमेव भृत्यत्वमङ्गीकुर्वन्ति न तु भोजनाद्यार्थम्। भोजनादिकं तु अकिंचना मुनयोऽपि लभन्त एवेति भावः।

तरुभ्यः। तरु+भ्यस्। १०१२ सू० भ्यसः स्थाने हुं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **तरुहुँ** इति भवति। **अपि**। अव्ययपदमिदम्। ४८९ सू० अप्यर्थे वि इत्यस्य प्रयोगे **वि** इति भवति। **वल्कलम्**। वल्कल+अम्। इत्यत्र ३५० सू० संयुक्त-लकारलोपे, ३६० सू० ककारद्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उ-कारे, १०१५ सू० अमो लोपे **वक्कलु** इति भवति। **फलम्**=फलु इति प्रथमश्लोकवत् साध्यम्। **मुनयः**। मुनि+जस्। इत्यत्र २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **मुणि** इति भवति। **परिधानम्**। परिधान+अम्। १८७ सू० धकारस्य हकारे, १००० सू० आकारस्य अकारे, २२८ सू० नकारस्य ण-कारे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **परिहणु** इति भवति। **अशनम्**। अ-शन+अम्। २६० सू० शकारस्य सकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, परिहणु-वदेव **असणु** इति भवति। **लभन्ते**। डुलभष् (लभ्) लाभे। लभ्+अन्ते। १८७ सू० भकारस्य हकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारा-गमे, ६३१ सू० अन्ते इत्यस्य स्थाने न्ति इत्यादेशे **लहन्ति** इति भवति। **स्वामिभ्यः**। स्वामिन्+भ्यस्। इत्यत्र ३५० सू० वकार-लोपे, ११ सू० नकारलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण भ्यसः स्थाने हुं इत्यादेशे, १०८२ सू० अनुस्वारस्य अनुनासिके **सामिहुँ** इति भवति। **इयत्**। इयद्-शब्दस्य प्रकृतिः इदम् वर्तते। संस्कृतव्या-करणेन इदमः स्थाने इश् (इ) इत्यादेशे, वतु (अतु) प्रत्यये इ+अतु इति जाते, ४२८ सू० अतुप्रत्ययस्य स्थाने डेत्तिअ (एत्तिअ) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अम्-प्रत्यये एत्तिअ+अम् इति जाते, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **एत्तिउ** इति भवति। **अग्रकम्**। अग्र+अम्। इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, ४४५ सू० अग्गशब्दस्य निपातेन लकारागमे, ४३५ सू० क-प्रत्यये, ११०० सू० स्वार्थे अ-प्रत्यये कप्रत्ययस्य च लोपे अग्गलअ+अम् इति जाते, १०२५ सू० अकारस्य स्थाने सानुस्वारे उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **अग्गलउं** इति भवति। **आदरम्**। आदर+अम्। १७७ सू० दकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १००२ सू० अकारस्य उकारे, अमो लोपे **आयरु** इति भवति। **भृ-त्याः**। भृत्य+जस्। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, २८४ सू० त्यस्य चकारे, ३६० सू० चकारद्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **भिच्चु** इति भवति। **गृह्णन्ति**। ग्रह्-धातुः उपा-

स्थाने। ग्रह्+अन्ति। ३५० सू० रेफस्य लोपे,१००० सू० अकारस्य आकारे,९१० सू० वकारागमे,६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **गृह्णन्ति** इति भवति। **तत्थु**, **सामिहुँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

ङेर्हि । यत्र ङेः स्थाने हि इत्यादेशो भवति,तस्योदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारो यथा—**अथ विरलप्रभावः एव कलौ धर्मः**। अयं भावः—अथ अव्ययपदमिदं निश्चयार्थे वर्तते। कलौ-कलियुगे धर्मः-अहिंसा-संयमाद्यनुष्ठानं,विरलप्रभावः,विरल-स्वल्पः प्रभावो-महत्त्वम्,महिमा यस्य सः,तुच्छप्रभाव एव जातः, इत्यर्थः। **अध**। १८७ सू० थकारस्य हकारे **अह** इति भवति। **विरल-प्रभावः**। विरलप्रभाव+सि। इत्यत्र ३५० सू० रेफस्य लोपे,१८७ सू० भकारस्य हकारे,१७७ सू० वकारलोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **विरल-पहाउ** इति भवति। **एव**। अव्ययपदमिदम्। इत्यत्र १०९१ सू० एवार्थे जि इत्यस्य प्रयोगे **जि** इति भवति। **कलौ**। कलि+ङि। इत्यत्र १०१२ सू० ङेः स्थाने हि इत्यादेशे **कलिहि** इति भवति। **धर्मः**। धर्म+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० मकारद्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सेर्लोपे **धम्मु** इति भवति। **कलौ**-कलिहि इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

१०१३—दयितेन प्रबसता—दइएं पवसन्तेण, एतेषां पदानां प्रक्रिया १००४ सूत्रे ज्ञेया। अत्र प्रस्तुतसूत्रेण टा-प्रत्ययस्य स्थाने अनुस्वारो णकारश्च विहितः।

१०१४—एं। एं (एँ इत्यपि पाठान्तरमुपलभ्यते) इत्यादेशस्योदाहरणं प्रदर्शयत्याचार्यः। **यथा**—

अग्निना उष्णकं भवति जगत्, वातेन शीतलं तथा।

यः पुनरग्निना शीतलः, तस्योष्णत्वं कथम्? ॥१॥

भावार्थः—**अग्निना जगत्**-संसारः,जीवसमुदायः, **उष्णकं भवति**-तापमुपयाति। तथा **वातेन**-शीतानिलेन **शीतलं**-शीतलतामुपगच्छति। **यः पुनः अग्निनाऽपि शीतलम्**-शैत्यमनुभवति, **तस्योष्णत्वं कथम्**? अयं भावः-अनुकूलसमये सर्वे जनाः शान्तिं विन्दन्ते, किन्तु प्रतिकूलेऽपि काले यो धैर्यधुरीणः सुखमुपैति, स एव उत्तमः। **यः सम्पदि न हृष्यति, विपदि न विषीदति**, स महापुरुष इति मण्यते।

अग्निना। अग्नि+टा। ३४९ सू० नकारलोपे,३६० सू० गकारद्वित्वे, १०१४ सू० टास्थाने एँ इत्यादेशे **अग्गिएँ** इति भवति। **उष्णकम्**। उष्णक+सि। ३४६ सू० ष्णस्य स्थाने ण्ह इत्यादेशे, ११०० सू० स्वार्थे अ-प्रत्यये, क-प्रत्ययस्य च लोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **उण्हउ** इति भवति। **भवति**=होइ,इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया ७३१ सूत्रे ज्ञेया। **जगत्**। जगत्+सि। ११ सू० तकारस्य लोपे,१००२सू०अकारस्य उकारे,सेर्लोपे **जगु** इति भवति। **वातेन**। वात+टा। १७७ सू०तकारस्य लोपे, १००४ सू० अकारस्य एकारे,१०१३ सू० टास्थाने अनुस्वारे **वाएं** इति भवति। **शीतलम्**। शीतल+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे,१७७ सू० तकारलोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सीअलु** इति भवति। **तथा**। अव्ययपदमिदम्। इत्यत्र १०७२ सू० था इत्यस्य स्थाने डेम (एम) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, १०६८ सू० मकारस्य स्थाने सानुनासिक वकारे **तेवँ** इति भवति। **यः**। यद्+सि=जो,प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया। **पुनर्**। अव्ययपदमिदम्। २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०९७ सू० स्वार्थे डु (उ) प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये **पुणु** इति भवति। **अग्निना**। अग्नि+टा। इत्यत्र ३४९ सू० नकारस्य लोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे **अग्गिं** इति भवति। **शीतलः**। शीतल+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००१ सू० अन्त्याकारस्य आकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सीअला** इति भवति। **तस्य**। तद्+ङस्। ११ सू० दकारलोपे, १००९ सू० ङसः स्थाने सु इत्यादेशे **तसु** इति भवति।

उष्णत्वम् । उष्णत्व+सि । इत्यत्र ३४६ सू० ष्णस्य स्थाने ण्ह इत्यादेशे, ४२५ सू० त्वस्य स्थाने त्तण इत्यादेशे, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **उण्हत्तणु** इति भवति । **कथम्** । अव्ययपदमिदम् । १०७२ सू० थकारस्य स्थाने डेम (एम) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादिलोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०६८ सू० मकारस्य स्थाने सानुनासिके वकारे **केवँ** इति भवति । **अग्गिएँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **णाऽनुस्वारौ** । णकारस्य अनुस्वारस्य चोदाहरणं प्रदीयते, वृत्तिकारेण । यथा—

विप्रिय-कारको यद्यपि प्रियस्ततोऽपि तमानय अद्य ।
अग्निना दग्धं यद्यपि गृहं, ततस्तेनाऽग्निना कार्यम् ॥२॥

भावार्थः—हे सखि ! मम **प्रियो यद्यपि विप्रियकारकः**-अप्रियकर्ता विद्यते **ततोऽपि** तथापि मम **कृते त्वमद्य तमानय** । **यद्यपि**-यतोहि कदाचन **अग्निना**-वह्निना **गृहं** पटादिकं वा **दग्धं** भवति,तथापि **तेनाऽग्निना** कालान्तरे **कार्यं** भवत्येव,तेनैवाऽग्निना ओदनादीनि बहूनि कार्याणि साध्यन्ते । यतः कदाचन विप्रियकारकोऽपि मम भर्ता न सर्वदाकृते बहिष्करणीयः ।

विप्रिय-कारकः । विप्रिय-कारक+सि । इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे,३६० सू० पकारद्वित्वे,१७७ सू० ककारस्य ककारद्वयस्य च लोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **विप्पिअ-आरउ** इति भवति । **यदि** । अव्ययपदमिदम् । २४५ सू० यकारस्य स्थाने जकारे,१७७ सू० दकारलोपे **जइ** इति सिद्धम् । **अपि** । अव्ययपदमिदम् । ४८२ सू० अप्यर्थे वि इत्यस्य प्रयोगे **वि** इति भवति । **प्रियः** । प्रिय+सि । इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे,१७७ सू० यकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पिउ** इति भवति । **ततः** । अव्ययपदमिदम् । १०८८ सू० ततः इत्यस्य तो इत्यादेशे **तो** इति भवति । **तम्** । तद्+अम् । इत्यत्र ११ सू० दकारलोपे, ४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **तं** इति भवति । **आनय** । आङ्पूर्वकः णीञ्-(नी)-धातुः आनयने । आनी+हि । इत्यत्र १००० सू० ईकारस्य अकारे, २२८ सू० नकारस्य स्थाने णकारे, १०५८ सू० हि इत्यस्य स्थाने वैकल्पिकाः इ, उ, ए इत्यादेशाः प्राप्ताः, किन्तु वैकल्पिकत्वादत्र तेषामभावे **आणहि** इति भवति । **अद्य** । अव्ययपदमिदम् । २९५ सू० द्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारद्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे **अज्जु** इति भवति । **अग्निना** । अग्नि+टा । ३४९ सू० नकारस्य लोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, १०१४ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे **अग्गिए** इति भवति । **दग्धम्** । दग्ध+सि । इत्यत्र २११ सू० ग्धस्य ढकारे, ३६० सू० ढकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वढकारस्य डकारे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **दड्ढा** इति भवति । **गृहम्** । गृह+सि । ४१५ सू० गृहस्य घर इत्यादेशे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, सेर्लोपे **घरु** इति भवति । **तेन** । तद्+टा । ११ सू० दकारलोपे,१००४ सू० अकारस्य एकारे, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य अनुस्वारे **तें** इति भवति । **अग्निना** । अग्नि+टा=अग्गि+टा । प्रस्तुतसूत्रेण टाप्रत्ययस्य अनुस्वारे **अग्गिं** इति भवति । **कार्यम्** । कार्य+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २९५ सू० र्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारद्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **कज्जु** इति भवति । **अग्गिण, अग्गिं** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण टास्थाने णकारः, अनुस्वारश्च विहितः । **एवमुकारादपि** । एवम्-अनेनैव प्रकारेण उकारान्तादपि शब्दात् टास्थाने एं, णकारानुस्वारौ च इत्यादेशा भवन्ति । उकारान्तानां शब्दानामुदाहरणानि स्वयमेव कल्पनीयानीति भावः ।

१०१५—एते ते अश्वाः, एषा स्थली=एइ ति घोडा, एह थलि, एतेषां पदानां प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया । अत्र प्रस्तुतेन[१०१५]सूत्रेण सि,अम्,जस् इत्येतेषां प्रत्ययानां लोपो जातः ।

यथा यथा वक्रिमाणं लोचनयोः निरतरां श्यामला शिक्षते ।
तथा तथा मन्मथः निजकशरान् खरप्रस्तरे तीक्ष्णयति ॥१॥

भावार्थः—**यथा, यथा श्यामला**-एतन्नामधेया काचिद् वनिता, अथवा श्यामवर्णा काचिन्नायिका **लोचनयोः वक्रिमाणं**-वक्रत्वं **निरतरां**-पर्याप्तं क्रियाविशेषणमिदं **शिक्षते**-कटाक्षकरणे कौशल्यमापद्यते, **तथा तथा मन्मथः**—कामदेवः, **खरप्रस्तरे**—खरश्चासौ प्रस्तरः, तस्मिन्, तीक्ष्णपाषाण इत्यर्थः, **निजकशरान्**—निज एव निजकः, तस्य बाणाः, स्वकीयशरान् इति यावत्, **तीक्ष्णयति**—तीक्ष्णान् करोति । यथा-यथा कुरङ्ग-लोचनानां नायिकानां कटाक्षवृद्धिर्जायते तथा-तथा कामुकानां मनांसि प्रखर-वासना-तरङ्गितानि भवन्तीति भावः ।

यथा । अव्ययपदमिदम् । **जिवँ**,इत्यस्य प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया । **वक्रिमाणम्** । वक्रिमन्+अम् । २६ सू० आदेरकारस्य अनुस्वारागमे, ३५० सू० रेफलोपे,११ सू० नकारलोपे, १०१५ सू० अमो लोपे **वंकिम** इति भवति । **लोचनयोः** । लोचन+ओस् । १७७ सू० चकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य स्थाने बहुवचने लोअण+आम् इति जाते, १०१० सू० आम्-प्रत्ययस्य स्थाने हं इत्यादेशे **लोअणहं** इति भवति । **निरतराम्** । अव्ययपदमिदम् । अपभ्रंश-भाषायां १०९३ सू० निरतरामर्थे **णिरु** इति शब्दः प्रयुज्यते । **श्यामला** । श्यामला+सि । २६० सू० शकारस्य सकारे,३४९ सू० यकारलोपे, १००० सू० आकारस्य इकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सामलि** इति भवति । **शिक्षते** । शिक्ष्-धातुः विद्योपादाने । शिक्ष्+ते । इत्यत्र २६० सू० शकारस्य सकारे, ३०४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे,३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे,९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे,६४७ सू० अकारस्य एकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **सिक्खेइ** इति सिद्धम् । **तथा** । अव्ययपदमिदम् । १०७२ सू० था इत्यस्य स्थाने डिम (इम) इत्यादेशे,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,१०६८ सू० मकारस्य सानुनासिके वकारे **तिवँ** इति भवति । **मन्मथः** । मन्मथ+सि । २४२ सू० मकारस्य वकारे,३२२ सू० न्मस्य मकारे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे, १८७ सू० थकारस्य हकारे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **वम्महु** इति भवति । **निजकशरान्** । निजक-शर+शस् । १७७ सू० जकारस्य ककारस्य च लोपे,१८० सू० द्वितीयाकारस्य यकारश्रुतौ,२६० सू० शकारस्य सकारे,१०१५ सू० शसो लोपे **निअय-सर** इति भवति । **खरप्रस्तरे** । खर-प्रस्तर+ङि । ३५० सू० रेफलोपे,३१६ सू० स्तस्य थकारे,३६० सू० थकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **खरपत्थरि** इति भवति । **तीक्ष्णयति** । तीक्ष्ण-तीक्ष् तीक्ष्ण-करणे । तीक्ष्+णिग्+तिव् । २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,६३८ सू० णिगः स्थाने एकारे, १० सू० स्वरलोपे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **तिक्खेइ** इति भवति । **वंकिम,सामलि,वम्महु, निअयसर** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **अत्र स्यम्शसाम्** । अस्मिन् श्लोके सि-अम्-शसां प्रत्ययानां लोप उदाहृतोऽस्ति ।

१०१६— **संगरशतेषु यो वर्ण्यते पश्य अस्मदीयं कान्तम् ।**
अतिमत्तानां त्यक्ताङ्कुशानां गजानां कुम्भान् दारयन्तम् ॥१॥

भावार्थः—काचिन्नारी निजपतेः वीरत्वप्रदर्शनाय निजसखीं प्रत्याह—हे सखि ! इत्यध्याहार्यम् । **यः** पुरुषः **संगरशतेषु**-संगराणां-युद्धानां शतानि तेषु संगरशतेषु **वर्ण्यते**-प्रशस्यते, यत्तदोर्नित्यसम्बन्धः, इति न्यायेन **तम्, अस्मदीयं कान्तम्**, अस्माकमयमस्मदीयः, तं प्राणनाथं **पश्य**-अवलोकय । पुनः कीदृशं कान्तम् ? **अतिमत्तानाम्**-अतितरां मत्ताः, अत्यधिकमदयुक्ताः, तेषां, **त्यक्ताङ्कुशानाम्**-त्यक्ताः तिरस्कृताः

अंकुशाः-हस्तिवश-कारकाः अस्त्र-विशेषाः यैः, तेऽङ्कुशप्रहाराननपेक्ष्य स्वैरिणः, तेषां **गजानां कुम्भान्**-मस्तकानि **दारयन्तम्**-भेदयन्तम् । एवंविधस्य प्राणवल्लभस्य जीवनसहचरीत्वमासादयन्त्या मयाऽपि भाग्यशालिन्या भूयते, इति व्यज्यते ।

संगरशतेषु । संगरशत+सुप् । २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० तकारलोपे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे, १०१८ सू० सुपः स्थाने हिंइत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारण-लाघवे **संगरसएहिँ** इति भवति । **यः** । यद्+सि । इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य जकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **जु** इति भवति । **वर्ण्यते** । वर्णधातुः श्लाघायाम् । वर्ण्+क्य+ते । ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० णकारद्वित्वे, ६४९ सू० क्यस्य स्थाने ईअ इत्यादेशे, अज्भीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० ईकारस्य इकारे,६२८ सू० ते इत्यस्य इच्चादेशे **वण्णिअइ** इति भवति । **पश्य** । दृशिर (दृश्) धातुः दर्शने । दृश्+हि । ८५२ सू० दृशः स्थाने देक्ख इत्यादेशे,१०५८ सू० हि-स्थाने उ इत्यादेशे,१० सू० स्वरस्य लोपे,अज्भीने परेण संयोज्ये **देक्खु** इति भवति । **अस्मदीयम्** । अस्मदीय+अम् । ३४५ सू० स्मस्य स्थाने म्ह इत्यादेशे, ११०५ सू० ईयस्य डार (आर) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,अज्भीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० अन्त्याकारस्य आकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **अम्हारा** इति भवति । **कान्तम्** । कान्त+अम् । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, अमो लोपे **कन्तु** इति भवति । **अतिमत्तानाम्** । अतिमत्त+आम् । १७७ सू० असंयुक्त-तकारस्य लोपे,१०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे **अइमत्तहं** इति भवति । १०१६ सूत्रे प्रायोग्रहणादत्र षष्ठी-विभक्तेः लोपो न जातः । **त्यक्ताङ्कुशानाम्** । त्यक्ताङ्कुश+आम् । २८४ सू० त्यस्य चकारे,३४८ सू० ककारलोपे,३६० सू० तकारद्वित्वे,३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्ये,८४ सू० परे संयोगे ह्रस्वे,२६० सू० शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **चत्तङ्कुसहं** इति भवति । अत्रापि प्रस्तुतसूत्रे प्रायोग्रहणात् षष्ठीविभक्तेः लोपो नाऽभवत् । **गजानाम्** । गज+आम् । १७७ सू० जकारलोपे,१८० सू० यकारश्रुतौ, १०१६ सू० आम्प्रत्ययस्य लोपे **गय** इति भवति । अत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **कुम्भान्** । कुम्भ+शस् । अत्र कुम्भशब्दः पुलिङ्गस्तस्य १११६ सू० नपुंसकत्वे विहिते, १०२४ सू० शसः स्थाने इं इत्यादेशे **कुम्भइं** इति भवति । **दारयन्तम्** । दृ-धातुः विदारणे । दृ+णिग्+शतृ । १०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य दीर्घे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, अम्-प्रत्यये,१००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे,१०१५ सू० अमो लोपे **दारन्तु** इति भवति । **गय** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **पृथग्योगेति** । १०१५ तथा १०१६ इत्येतत् सूत्रद्वयं वर्तते,प्रथमसूत्रेण स्यम्-जस्-शसां प्रत्ययानां लोपो भवति, द्वितीय-सूत्रेण ङस्-आम्-प्रत्ययानां लोपो जायते । अत्राशंका जायते यत् १०१५ सूत्रे एव षष्ठीविभक्तेरपि ग्रहणं करणीयमासीत्, १०१६ सूत्रस्य नासीदावश्यकता, तर्हि किमर्थं पृथक्सूत्रस्य रचना विहिता ? वैयाकरणास्तु **'एकमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते,'** तर्हि कथमत्र गुरुताश्रिता ? प्रश्नस्यैतस्य समाधानं कुर्वन् वृत्तिकारो भणति यत् पृथक्-योगः-पृथक्सूत्रकरणं लक्ष्यानुसारार्थः-लक्ष्यस्य-प्रयोगस्य अनुसारः-अनुसरणम् तदर्थं वर्तते । अयं भावः-पृथग्योगेन प्रयोगमनुसृत्यैव षष्ठ्याः लोपः करणीयः, यत्र लोपो दृश्यते तत्रैव लोपो विधेयः, यत्र षष्ठ्या लोपो न दृश्यते, तत्र लोपो न कार्यः ।

१०१७—लोपाऽपवादः । १०१५ सूत्रेण जसो लोपो जायते,किन्तु १०१७ सूत्रेण तस्य निषेधो विहितः । अतः प्रस्तुतसूत्रमिदं १०१५ सूत्रस्यापवादसूत्रं ज्ञातव्यम् । यथा—**तरुणाः ! तरुण्यः !, ज्ञातवा मां, कुरुत मा आत्मनो घातम्** । अयं भावः-उपपतिना सह रन्तुं काचिद् युवतिः संकेतितस्थलेऽगच्छत्, तत्र

केनचित् पुरुषेण तौ रममाणौ अवलोकितौ, तदा संजातत्रपौ शरीर-पाताय उद्यतौ,तदा तौ प्रति स पुरुषः शंसति—हे तरुणाः !, हे तरुण्यः ! मां ज्ञात्वा आत्मनः-निजस्य घातं-हननं मा कुरुत ।

तरुणाः । तरुण+जस् । इत्यत्र १०१७ सू० जसः स्थाने हो इत्यादेशे **तरुणहो** इति भवति । **तरुण्यः** । तरुणी+जस् । १००१ सू० ईकारस्य इकारे, प्रस्तुतसूत्रेण जसः स्थाने हो इत्यादेशे **तरुणिहो** इति भवति । **ज्ञात्वा** । ज्ञाधातुः अवबोधने । ज्ञा+क्त्वा । ६७८ सू० ज्ञाधातोः स्थाने मुण इत्यादेशे, १११० सू० क्त्वः स्थाने इउ इत्यादेशे,१० सू० स्वरस्य लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये **मुणिउ** इति भवति । **माम्** । अस्मद्+अम् । १०४८ सू० अम्-प्रत्ययेन सह अस्मदः स्थाने मइँ इत्यादेशे **मइँ** इति भवति । **कुरुत** । डुकृञ् (कृ) करणे । कृ+त । ९०५ सू० ऋकारस्य स्थाने अर इत्यादेशे,१०५५ सू० त इत्यस्य हु इत्यादेशे **करहु** इति भवति । **मा** । अव्ययपदमिदम् । १००० सू० आकारस्य अकारे **म** इति भवति । **आत्मनः** । आत्मन्+ङस् । इत्यत्र ३२२ सू० त्मस्य स्थाने पकारे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ११ सू० नकारस्य लोपे, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **अप्पहो** इति भवति । **घातम्** । घात+सि । इत्यत्र १७७ सू० तकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **घाउ** इति भवति ।

१०१८—भिस्-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदर्श्यते । यथा-**गुणैः न सम्पत्, कीर्तिः परम्**=गुणहिँ न संपइ कित्ति पर, एतेषां पदानां प्रक्रिया १००६ सूत्रे ज्ञेया । अत्र प्रस्तुत-सूत्रेण भिसः स्थाने हिं इत्यादेशो विहितः । **सुप्** । साम्प्रतं सुप्-प्रत्ययस्य उदाहरणं प्रदीयते वृत्तिकारेण । यथा—

भागीरथी यथा भारते मार्गेषु त्रिषु अपि प्रवर्तते ।

भावार्थः—भागीरथी-गङ्गा भारते भरतस्यायं भारतः तस्मिन्, भारते देशे इत्यर्थः । **त्रिष्वपि मार्गेषु**-ऊर्ध्वलोक-मध्यलोक-पाताल-लोकेषु प्रवर्तते-प्रवहतीत्यर्थः । अतएव कथ्यते-**भागीरथी त्रिपथगा**" इत्यमरः । भागीरथी-प्रभृतीनां शब्दानां साधना त्वित्थम्—**भागीरथी** । भागीरथी+सि । १७७ सू० गकारस्य लोपे, १८७ सू० थकारस्य हकारे, १००१ सू० अन्त्यस्य ईकारस्य इकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **भाईरहि** इति भवति । **यथा**=जिवँ, प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया । **भारते** । भारत+ङि । १७७ सू० तकारलोपे,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **भारइ** इति भवति । **मार्गेषु** । मार्ग+सुप् । इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे, १०८१ सू० एकारस्य उच्चारणलाघवे,१०१८ सू० सुपः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **मग्गेहिँ** इति भवति । **त्रिषु** । त्रि+सुप् । ३५० सू० रेफस्य लोपे,मग्गेहिँ-वदेव **तिहिँ** इति भवति । **अपि**=वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **प्रवर्तते** । प्रपूर्वकः वृतु(वृत्)धातुः प्रवर्तने, कार्यसंलग्ने । प्रवृत्+ते । संस्कृत-नियमेन प्रवर्त्+ते इति जाते । ३५० सू० प्रथम-रेफस्य लोपे,१७७ सू० वकारलोपे, १८० सू० यकार-श्रुतौ,११० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ३०१ सू० र्तस्य स्थाने टकारे,३६० सू० टकार-द्वित्वे, ६९८ सू० ते इत्यस्य इ इत्यादेशे **पयट्टइ** इति भवति ।

★ अथ पुंल्लिङ्गीय स्यादिविधि ★

अपभ्रंश-भाषा के **पुल्लिङ्ग-प्रकरण** में सि आदि प्रत्ययों को लेकर जो विधिविधान पाया जाता है, अब सूत्रकार उस का निर्देश कर रहे हैं—

१००३—अपभ्रंश-भाषा में सि-प्रत्यय के परे रहने पर पुल्लिङ्ग में वर्तमान (विद्यमान) नाम-

प्रातिपदिक के अकार को विकल्प से ओकार होता है। जैसे—

अगलित-स्नेहनिवृत्तानां योजन-लक्षमपि यातु।
वर्ष-शतेनाऽपि यः मिलति सखि! सौख्यानां स स्थानम् ॥१॥

अर्थात्—हे सखि! जिन का स्नेह अगलित—अविनष्ट (स्थायी) होता है, वे लाख योजन की दूरी पर भी चले जाएं, और सौ वर्षों की अवधि के बाद भी उनका मिलन हो तो भी वे सौख्य-सुख के स्थान होते हैं। अर्थात् जिन हृदयों में पारस्परिक अनुराग होता है, वे भले ही लाख योजन दूर बैठे हों तथा सौ वर्षों के अनन्तर भी उनका समागम होता हो तथापि उनका सम्मिलन बड़ा सुखप्रद लगता है। इसके विपरीत स्नेह-हीन व्यक्ति प्रतिक्षण भी मिलते रहें तब भी वहां सुखानुभूति नहीं हो पाती।

यहां पर प्रस्तुतसूत्र से सि-प्रत्यय परे होने पर **यः** को **जो** तथा **सः** को **सो** बना कर अकार को ओकार किया गया है। यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र में सूत्रकार ने **पुंसि** (पुल्लिङ्ग में)" इस पद का ग्रहण क्यों किया है? वृत्तिकार इस प्रश्न का उत्तर प्रदान करते हुए फरमाते हैं—

अङ्गैः अङ्गं न मिलितं सखि! अधरेण अधरः न प्राप्तः।
प्रियस्य पश्यन्त्याः [मम] मुखकमलेन सुरतं समाप्तम् ॥२॥

अर्थात्—हे सखि! अपने प्रीतम के अङ्गों के साथ मेरा अङ्ग भी नहीं मिल सका, तथा मैंने अधर से अधर भी प्राप्त नहीं किया। अर्थात् अधर-पान (चुम्बन) भी नहीं हो सका, किन्तु प्रिय के मुखकमल को निहारती हुई मुझ अभागिनी का व्यर्थ ही सुरत (काम-क्रीडा) समाप्त हो गया।

इस श्लोक में पठित—'अङ्ग' शब्द अकारान्त है, तथा इस के आगे सिप्रत्यय भी अवस्थित है, किन्तु यह नपुंसकलिङ्गी है, पुल्लिंगी नहीं है, ऐसे पुल्लिङ्ग-भिन्न अकारान्त शब्दों के अकार को सि-प्रत्यय परे होने पर ओकार न हो जाए, इस दृष्टि से सूत्रकार ने प्रस्तुत में **पुंसि** इस पद का उल्लेख किया है।

१००४—अपभ्रंश भाषा में टा-प्रत्यय के परे होने पर अकार के स्थान में एकार का आदेश होता है। जैसे—

ये मम दत्ता दिवसाः, दयितेन प्रवसता।
तान् गणयन्त्याः अङ्गुलयः जर्जरिता नखेन ॥१॥

अर्थात्—प्रवास करते (विदेश जाते) हुए मेरे प्रिय (प्रीतम) ने जो दिन दिए थे, अर्थात् "अमुक दिन तक मैं वापिस लौट आऊंगा" ऐसा कहा था, उन दिनों को नाखून से गिनती हुई मुझ भाग्यहीना की अङ्गुलियां जर्जरित हो गई हैं, घिस गई हैं।

यहां पर—**दयित** तथा **नख** शब्द से टाप्रत्यय के परे रहने पर इन के अकार के स्थान में प्रस्तुत सूत्र से एकारादेश होने पर **दइएं** तथा **नहेण** यह रूप बनता है।

१००५—अपभ्रंश भाषा में ङि-प्रत्यय के साथ अकार के स्थान में क्रमशः इकार और एकार ये दो आदेश होते हैं। जैसे—

सागरः उपरि तृणानि धरति, तले क्षिपति रत्नानि।
स्वामी सुभृत्यमपि परिहरति सम्मानयति खलान् ॥१॥

अर्थात्—सागर-समुद्र जिस प्रकार तिनकों को तो ऊपर रखता है, किन्तु रत्नों (बहुमूल्य पदार्थों) को नीचे फेंक देता है, इसी प्रकार स्वामी भी अच्छे नौकर को छोड़ देता है और खलों-दुष्टों का सम्मान करता है।

यहां पर **तले** इस शब्द के ङि-प्रत्यय को अकार के साथ इकार और एकार बना करके—**तलि** तथा **तले** ये दो शब्द बनाए गए हैं। श्लोक में पठित **तले क्षिपति** का **तलि घल्लइ** तथा **तले घल्लइ** यह रूप होता है।

१००६—अपभ्रंश-भाषा में भिस्-प्रत्यय आगे होने पर अकार के स्थान में विकल्प से एकारादेश होता है। जैसे—

गुणैः न सम्पत्, कीर्तिः, परं फलानि लिखितानि भुञ्जन्ति।
केसरी कपर्दिकामपि न लभते, गजाः लक्षैः गृह्यन्ते ॥१॥

अर्थात्—गुणों से सम्पत्ति नहीं, किन्तु कीर्ति मिलती है, और सुख, दुःख आदि फल तो अपने भाग्य के अनुसार ही लिखे हुए मिलते हैं। क्योंकि शौर्य आदि गुणों से सम्पन्न होने पर भी केसरी-सिंह का मूल्य एक कौडी भी नहीं होता, किन्तु हाथियों का मूल्य लाखों रुपये पड़ता है।

यहां पर **गुणैः**—गुणहिं, तथा **लक्षैः**—लक्खेहिं, इन दो उदाहरणों में भिस् प्रत्यय के परे होने पर अकार को एकारादेश विकल्प से किया गया है।

१००७—व्याकरण-जगत में एक नियम प्रसिद्ध है—**अर्थवशाद् विभक्ति-परिणामः**। अर्थात् प्रयोजन-वश विभक्ति का परिणाम-परिवर्तन कर लिया जाता है, इस नियम के आधार पर प्रस्तुत सूत्र में वृत्तिकार ने षष्ठ्यन्त पद का पञ्चम्यन्त पद के रूप में परिवर्तन किया है। १००२ वें सूत्र से **अस्य** (अकार को) इस पद की अनुवृत्ति चली आ रही है। यह षष्ठ्यन्त पद है। प्रस्तुत में वृत्तिकार को यह पद पञ्चम्यन्त अपेक्षित है। अतः वृत्तिकार फरमाते हैं कि "**अस्य**" यह षष्ठ्यन्त पद पञ्चम्यन्त पद के रूप में परिवर्तित किया जाता है। विभक्ति का परिवर्तन कर लेने के अनन्तर सूत्र का अर्थ होता है—अपभ्रंश भाषा में अकार से परे आए ङसि-प्रत्यय के स्थान में हे और हु ये दो आदेश होते हैं। जैसे—

वृक्षाद् गृह्णाति फलानि जनः, कटु-पल्लवान् वर्जयति।
ततोऽपि महाद्रुमः सुजनो यथा तान् उत्सङ्गे धरति ॥१॥

अर्थात्—मनुष्य वृक्ष के (मधुर) फलों को तो ग्रहण कर लेता है, किन्तु उस के कटुक (कड़ुवे) पल्लवों (पत्तों) को त्याग देता है, तथापि सुजन (श्रेष्ठ मनुष्य) के समान महावृक्ष (महान वृक्ष) उन कड़ुवे पत्तों को भी अपने उत्संग (गोद) में धारण किए रहता है, उनका परित्याग नहीं करता।

वृक्षाद् गृह्णाति—इस वाक्य के—**वच्छहे गृण्हइ, वच्छहु गृण्हइ** (वह वृक्ष से ग्रहण करता है) ये दो रूप बनते हैं। यहां प्रस्तुत सूत्र से ङसि-प्रत्यय के स्थान में हे और हु ये दो आदेश किए गए हैं।

१००८—अपभ्रंश भाषा में अकारान्त शब्द से परे यदि पञ्चमी विभक्ति का बहुवचन भ्यस्-प्रत्यय पड़ा हो तो उसके स्थान में 'हुं' यह आदेश होता है। जैसे—

दूरोड्डयनेन पतितः खलः आत्मानं जनं मारयति।
यथा गिरिशृङ्गेभ्यः पतिता शिला अन्यदपि चूर्णीकरोति ॥२॥

अर्थात्—जैसे पर्वत की चोटियों से गिरी हुई शिला अपना तथा अन्य वस्तुओं का भी विनाश कर डालती है, वैसे ही दूर की उड़ान से अर्थात् बहुत ऊंचे चढ़ कर यदि खल-दुष्ट व्यक्ति का पतन होता है तो वह भी अपने आप को तथा अन्य लोगों को भी मार डालता है।

यहां **गिरिशृङ्गेभ्यः**—गिरिसिङ्गहुं (पर्वत की चोटियों से), इस प्रयोग में प्रस्तुत सूत्र से भ्यस् के स्थान में 'हुं' यह आदेश किया गया है।

१००९—अपभ्रंश भाषा में अकारान्त शब्द से परे आए ङस्-प्रत्यय के स्थान में सु, हो और स्सु ये तीन आदेश होते हैं। जैसे—

यो गुणान् गोपयति आत्मीयान् प्रकटं करोति परस्य।
तस्य अहं कलियुगे दुर्लभस्य बलीक्रिये सुजनस्य ॥१॥

अर्थात्—जो मनुष्य अपने गुणों को छिपाता है, और दूसरे के गुणों को प्रकट करता है, कलियुग में ऐसे दुर्लभ (जिस का प्राप्त करना मुश्किल हो) सुजन (श्रेष्ठ मनुष्य) के मैं बलिहारी जाता हूं।

यहां पर—१—**परस्य**=परस्सु (दूसरे के), २—**तस्य**=तसु (उस के), ३—**दुर्लभस्य**=दुल्लहहो (दुर्लभ के), ४—**सुजनस्य**=सुअणस्सु (सुजन पुरुष के) इन शब्दों में यथास्थान प्रस्तुत सूत्र से ङस्-प्रत्यय के स्थान में 'सु, हो और स्सु ये तीन आदेश किए गए हैं।

१०१०—अपभ्रंश भाषा में अकारान्त शब्द से परे आए आम्-प्रत्यय के स्थान में 'हं' यह आदेश किया जाता है। जैसे—

तृणानां तृतीया भङ्गी नाऽपि तेन अवट-तटे वसन्ति।
अथ जनः लगित्वा उत्तरति अथ सह स्वयं मज्जन्ति ॥१॥

अर्थात्—जो घास कूप आदि के किनारे पर पैदा होते हैं, उन की दो ही अवस्थाएं होती हैं, तीसरी अवस्था नहीं होती। वे घास अवट-तट (कूप, जलाशय के तट) पर रहते हैं, उन के साथ लगा मनुष्य (उनको पकड़ कर) पार उतर जाता है, अन्यथा वे घास डूबने वाले मनुष्य के साथ ही डूब जाते हैं। भाव यह है कि या तो घास मनुष्य को बचा लेता है या फिर उसके साथ ही समाप्त हो जाता है।

यहां—**तृणानाम्**=तणहं (तिनकों की) इस शब्द में प्रस्तुत सूत्र से आम् प्रत्यय के स्थान में 'हं' यह आदेश किया गया है।

१०११—अपभ्रंश-भाषा में इकार और उकार से आगे आए आम्-प्रत्यय के स्थान में हुं और हं ये दो आदेश होते हैं। जैसे—

दैवं घटयति वने तरूणां शकुनीनां पक्वफलानि।
तद् वरं सौख्यं प्रविष्टानि नाऽपि कर्णयोः खलवचनानि ॥१॥

अर्थात्—वन में पक्षियों के लिए दैव-प्रकृति (भाग्य) ने वृक्षों के फल पैदा कर दिए हैं, उनको खाकर वन में रहना सुखदायक है, परन्तु नगरों में रह कर दुष्टों के दुर्वचनों का कानों में प्रविष्ट होना श्रेष्ठ नहीं है।

यहां—१—**तरूणाम्**=तरुहुं, (वृक्षों के), २—**शकुनीनाम्**=सउणिहं (पक्षियों के) इन शब्दों में आम्-प्रत्यय के स्थान में क्रमशः हुं और हं ये दो आदेश किए गए हैं। वृत्तिकार फरमाते हैं कि यहां पर १००० वें सूत्र से '**प्रायः**' इस पद का अधिकार चला आ रहा है। यहां पर '**प्रायः**' शब्द '**बहुलता**' इस अर्थ का बोधक समझना चाहिए। अतः बहुलाधिकार से कहीं पर सुप्-प्रत्यय के स्थान में भी 'हुं' यह आदेश हो जाता है। जैसे—

धवलः खिद्यते स्वामिनः गुरुं भरं प्रेक्ष्य।
अहं किं न युक्तः, द्वयोर्दिशोः खण्डे द्वे कृत्वा ॥१॥

अर्थात्—स्वामिभक्त श्वेत वृषभ अपने स्वामी के महान भार को देख कर विषादयुक्त हो रहा है और मन में विचार करता है कि मेरे दो टुकड़े करके दोनों दिशाओं में (गाड़े के दोनों ओर) मुझ

को ही क्यों न जोत दिया गया। यहां पर—द्वयोः=दुहुं (दोनों), इस शब्द में सुप्-प्रत्यय के स्थान में प्रस्तुतसूत्र में प्रायः का अधिकार होने से 'हुं' यह आदेश किया गया है।

१०१२—अपभ्रंश भाषा में इकारान्त और उकारान्त शब्दों से परे आए ङसि, भ्यस् और ङि इन प्रत्ययों के स्थान में यथासंख्य (संख्या के अनुसार, क्रमशः) हे, हुं और हि ये तीन आदेश होते हैं। ङसि प्रत्यय के स्थान में होने वाले हे इस आदेश का उदाहरण इस प्रकार है—

गिरेः शिलातलं तरोः फलं गृह्यते निःसामान्यम्।
गृहं मुक्त्वा मानुषाणां ततोऽपि न रोचतेऽरण्यम्॥१॥

अर्थात्—बिना किसी भेदभाव के, प्रत्येक मनुष्य विश्रामार्थ पर्वतों से शिलातल (शिला का ऊपरी भाग, पाषाणपृष्ठ) तथा भक्षणार्थ वृक्षों से फल प्राप्त कर सकता है, तथापि दुःखरूप घर को छोड़कर मनुष्यों को वन में रहना पसन्द नहीं है।

यहां पर—१—गिरेः=गिरिहे (पहाड़ से),२—तरोः=तरुहे (वृक्ष से) इन शब्दों के ङसि-प्रत्यय को प्रस्तुत सूत्र से 'हे' यह आदेश किया गया है। भ्यस् के स्थान में हुए हुं इस आदेश का उदाहरण—

तरुभ्योऽपि वल्कलं फलं मुनयोऽपि परिधानमशनं लभन्ते।
स्वामिभ्यः इयदधिकमादरं भृत्याः गृह्णन्ति॥२॥

अर्थात्—मुनिजन वृक्षों से परिधानार्थ (पहनने के लिए) वल्कल-छाल और भोजनार्थ फल प्राप्त कर लेते हैं, इतनी ही अधिकता है कि स्वामिजनों से नौकर-लोग आदर प्राप्त कर लेते हैं। भाव यह है कि मनुष्य नौकरी केवल सम्मान की दृष्टि से ही करता है न कि भोजनादि के लिए, क्योंकि भोजन और वस्त्र की समस्या तो अकिंचन मुनि भी वनों से समाहित कर लेते हैं। अथवा—भोजन की समस्या तो वन में भी समाहित हो सकती है, मनुष्य व्यर्थ ही जरा से आदर की भूख से विवश होकर अपने आप को परतन्त्र बना लेता है।

यहां पर—१—तरुभ्यः=तरुहुं (वृक्षों से),२—स्वामिभ्यः=सामिहुं (मालिकों से) इन शब्दों में भ्यस् के स्थान में हुं यह आदेश किया गया है। ङि-प्रत्यय के स्थान में हुए हि इस आदेश का उदाहरण—

"अथ विरल-प्रभावः एव कलौ धर्मः"

अर्थात्—निश्चय ही कलियुग में धर्म विरल-प्रभाव (जिस का प्रभाव बहुत कम हो) हो गया है। भाव यह है कि कलियुग में धर्म का प्रभाव (शक्ति) बहुत कम देखने में आता है। यहां पर—कलौ=कलिहि (कलियुग में) इस शब्द में ङि-प्रत्यय के स्थान में हि यह आदेश किया गया है।

१०१३—अपभ्रंशभाषा में अकारान्त शब्द से परे आए टा-प्रत्यय के स्थान में ण और अनुस्वार (ं) ये दो आदेश होते हैं। जैसे—दयितेन प्रवसता=दइएं पवसन्तेण (प्रदेश को गए प्रीतम ने) यहां पर टा-प्रत्यय को क्रमशः अनुस्वार तथा ण ये दो आदेश किए गए हैं। दयितेन प्रवसता यह श्लोक का एक हिस्सा है। सम्पूर्ण श्लोक १००४ वें सूत्र में दिया गया है।

१०१४—अपभ्रंश भाषा में इकार और उकार से परे आए टा-प्रत्यय के स्थान में एं तथा सूत्रोक्त चकार के कारण ण और अनुस्वार इस तरह तीन आदेश होते हैं। एं इस पद का एँ यह पाठान्तर भी अन्य प्रतियों में उपलब्ध होता है। अतः आदेश के ये दोनों प्रकार यथास्थान ग्रहण किए जा सकते हैं। 'एँ' इस आदेश का उदाहरण—

अग्निना उष्णकं भवति जगत् वातेन शीतलं तथा।
यः पुन अग्निना शीतलः, तस्य उष्णत्वं कथम्?॥१॥

अर्थात्—संसार अग्नि से उष्णता (गरमी) और (शीत) वायु से शीतलता प्राप्त करता है,परन्तु जो पुरुष अग्नि से भी शीतलता का अनुभव करता है,उस के लिए उष्णता कहां ? भाव यह है कि शान्ति से परिपूर्ण वातावरण में सब शान्त रहते हैं,किन्तु अशान्त वातावरण में भी शान्त रहना,यह बहुत बड़ी बात है। दुःख में भी समता को संभालने वाला व्यक्ति महापुरुष होता है।

यहां पर—**अग्निना**=अग्गिएँ (अग्नि से) इस शब्द में टा-प्रत्यय के स्थान में एँ यह आदेश किया गया है। **ण और अनुस्वार के उदाहरण**—

विप्रिय-कारकः यद्यपि प्रियस्ततोऽपि तमानय अद्य।
अग्निना दग्धं यद्यपि गृहं ततस्तेन अग्निना कार्यम् ॥२॥

अर्थात्—हे सखि ! यद्यपि प्रिय (प्रीतम) प्रतिकूलता करने वाले हैं, तथापि आज तुम उन को लाओ (क्योंकि उन के बिना मेरा निर्वाह नहीं हो सकता),यद्यपि अग्नि से घर जल जाता है तो भी उस अग्नि से ही काम चलता है।

यहां पर—१—**अग्निना**=अग्गिण (अग्नि से), २—**अग्निना**=अग्गिं (अग्नि से) इस इकारान्त शब्द में टा-प्रत्यय के स्थान में क्रमशः 'ण' तथा **अनुस्वार** [०] ये दो आदेश किए गए हैं। वृत्तिकार फरमाते हैं कि इकारान्त शब्द की भांति उकारान्त शब्द से आए टा-प्रत्यय के स्थान में किए ए,ण तथा **अनुस्वार** इन आदेशों के उदाहरण भी समझ लेने चाहिएं, अर्थात्—इन के उदाहरणों की कल्पना भी **स्वयं** कर लेनी चाहिए।

१०१५—अपभ्रंश भाषा में **सि, अम्, जस्** और **शस्** इन चार प्रत्ययों का लोप होता है। जैसे—**१—एते तेऽश्वाः, एषा स्थली**=एइ ति घोडा, एह थलि (ये वे घोड़े हैं, यह रणस्थल है)। इत्यादि पदों में **सि, अम्** और **जस्** इन प्रत्ययों का लोप किया गया है। यह अपूर्ण श्लोक है, पूर्ण श्लोक १००१ सूत्र में दिया गया है। वह इस प्रकार है—

एइ ति घोडा एह थलि एइ ति निसिआ खग्ग।
एत्थु मुणीसिम जाणीअइ जो न वि वालइ वग्ग ॥१॥

यहां पर—१—**एते**=एइ (ये), २—**ते**=ति (वे), ३—**घोटकाः**=घोडा (घोड़े), ४—**निशिताः**=निसिआ (तीक्ष्ण), ५—**खड्गाः**=खग्ग (तलवारें) इन शब्दों में प्रस्तुत सूत्र से जस्-प्रत्यय का, १—**एषा** एह (एह), २—**स्थली**=थलि (युद्धस्थल), ३—**मनुष्यत्वम्**=मुणीसिम (पुरुषत्व), ४—**यः**=जो (जो) यहां पर सिप्रत्यय का तथा **वल्गाम्**=वग्ग (लगाम को) यहां पर अम् प्रत्यय का लोप किया गया है।

यथा यथा वक्रिमाणं लोचनयोः नितरां श्यामला शिक्षते।
तथा तथा मन्मथः निजकशरान् खर-प्रस्तरे तीक्ष्णयति ॥१॥

अर्थात्—जैसे-जैसे श्यामला (श्याम वर्ण की कन्या) नेत्रों की वक्रता (कटाक्षपूर्वक वक्र देखना) सीखती चली आ रही है, अर्थात् इस के नयनों में वक्रता आती जाती है, वैसे-वैसे मन्मथ (कामदेव) अपने वाणों को कठोर-पत्थर पर तीक्ष्ण करता जा रहा है।

यहां पर—१—**वक्रिमाणम्**=वंकिम (वक्रता को) इस शब्द में अम्प्रत्यय का, २—**श्यामला**=सामलि (कृष्ण वर्ण की लड़की), ३—**मन्मथः**=वम्महु (कामदेव) इन शब्दों में सिप्रत्यय का, तथा—४—**निजकशरान्**=निअय-सर (अपने वाणों को) यहां पर प्रस्तुत सूत्र से शस्-प्रत्यय का लोप किया गया है।

१०१६—अपभ्रंशभाषा में षष्ठी विभक्ति का प्रायः (आमतौर पर) लोप हो जाता है। जैसे—

संगर-शतेषु यो वर्ण्यते पश्य अस्मदीयं कान्तम्।
अतिमत्तानां त्यक्ताङ्कुशानां गजानां कुम्भान् दारयन्तम् ॥११॥

अर्थात्—अत्यधिक मदसे उन्मत्त तथा निरङ्कुश हाथियों के मस्तकों का भेदन करते हुए, तथा सैंकड़ों युद्धों में जिस के यश का वर्णन किया जाता है, ऐसे मेरे कान्त (प्रीतम) को तू देख।

यहां—**गजानाम्**=गय (हाथियों के) इस शब्द में प्रस्तुत सूत्र से षष्ठी विभक्ति के आम्-प्रत्यय का लोप किया गया है। यहां पर एक प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र से जिस कार्य का विधान किया गया है, यह विधान तो गत १०१५ वें सूत्र से ही हो जाना चाहिए था, वह सूत्र जहां पर सि, जस्, अम् और शस् इन प्रत्ययों का लोप करता है,वहां ङस् और आम् का भी लोप कर सकता था। फिर इस सूत्र की स्वतन्त्र रूप से रचना क्यों की गई?,उत्तर में निवेदन है कि प्रस्तुत सूत्र की जो पृथक् रचना की गई है, उस का प्रयोजन लक्ष्य-प्रयोग का अनुसरण करना है,भाव यह है कि जिस प्रयोग में षष्ठी के लोप की आवश्यकता प्रतीत हो, वहां इस सूत्र से लोप कर देना चाहिए,अन्यथा नहीं। इसी बात को वृत्तिकार ने—'**पृथक् योग** (सूत्र की रचना) **लक्ष्य** (प्रयोग) **के अनुसरण के लिए है**' इन शब्दों से संसूचित किया है। इसी कारण प्रस्तुत गाथा में—१—**अतिमत्तानाम्**=अइमत्तहं, २—**त्यक्ताङ्कुशानाम्**=चत्तङ्कुसहं तथा ३—**गजानाम्**=गय इन तीन षष्ठ्यन्त पदों में से केवल '**गज**' शब्द के आम्-प्रत्यय का ही लोप किया गया है, शेष का नहीं।

१०१७—अपभ्रंश भाषा में **आमन्त्र्य** (आमन्त्रण-सम्बन्धी) अर्थ में वर्तमान (विद्यमान) **नाम**-प्रातिपदिक से परे आए जस्-प्रत्यय के स्थान में '**हो**' यह आदेश होता है। यह सूत्र १०१५ वें सूत्र से होने वाले जस् के लोप का बाधक होने से **लोपाऽपवाद-सूत्र** कहलाता है। जैसे—**तरुणाः!,तरुण्यः! ज्ञात्वा मां, कुरुत मा आत्मनो घातम्**=तरुणहो!, तरुणिहो! मुणिउ मइँ करहु म अप्पहो घाउ [हे तरुण-पुरुषो!, हे तरुण नारियो! मुझे जान कर, अपनी घात (आत्महत्या) मत करो] यहां पर आमन्त्रणसम्बन्धी जस् प्रत्यय के स्थान में '**हो**' यह आदेश किया गया है।

१०१८—अपभ्रंशभाषा में **भिस्** और **सुप्** इन प्रत्ययों के स्थान में '**हिं**' यह आदेश होता है। **भिस् प्रत्यय का उदाहरण**, जैसे—**गुणैः न सम्पत्, कीर्तिः परम्**=गुणहिं न संपइ, कित्ति पर [गुणों से सम्पत्ति नहीं,किन्तु कीर्ति प्राप्त होती है] यहां भिस् प्रत्यय के स्थान में '**हिं**' यह आदेश किया गया है। यहां श्लोक का एक भाग दिया गया है। सम्पूर्ण श्लोक १००६ वें सूत्र में दिया जा चुका है। **सुप् का उदाहरण-भागीरथी यथा भारते मार्गेषु त्रिष्वपि प्रवर्तते**=भाईरहि जिवँ भारइ मग्गेहिं तिहिं वि पयट्टइ [जैसे गंगा नदी भारत में तीन मार्गों में बहती है] यहां **मार्गेषु** तथा **त्रिषु** इन शब्दों में सुप्-प्रत्यय के स्थान में '**हिं**' यह आदेश करके **मग्गेहिं, तिहिं** ये रूप बनाए गए हैं।

★ अथ स्त्रीलिङ्गीय-स्यादिविधिः ★

१०१९—**स्त्रियां जस्-शसोरुदोत्** ।८।४।३४८। अपभ्रंशे स्त्रियां वर्तमानान्नाम्नः परस्य जसः शसश्च प्रत्येकमुदोतावादेशौ भवतः। लोपाऽपवादौ। जसः। **अंगुलिउ जज्जरियाउ नहेण** [३३३,४] शसः। **सुन्दर-सव्वङ्गाउ विलासिणीओ पेच्छन्ताण**। वचनभेदान्न यथासंख्यम्।

१०२०—**ट ए**।८।४।३४९। अपभ्रंशे स्त्रियां वर्तमानान्नाम्नः परस्याष्टायाः स्थाने ए इत्यादेशो भवति।

निअ-मुह-करहिँ वि मुद्ध कर अन्धारइ पडिपेक्खइ ।

ससि-मण्डल-चन्दिमए पुणु काइँ न दूरे देक्खइ ॥१॥

जहिँ मरगय-कन्तिए संवलिअं ।

१०२१—ङस्-ङस्योर्हे । ८ । ४ । ३५० । अपभ्रंशे स्त्रियां वर्तमानान्नाम्नः परयोर्ङस्, ङसि इत्येतयोः हे इत्यादेशो भवति । ङसः—

तुच्छ-मज्झहे तुच्छ-जम्पिरहे ।

तुच्छच्छ-रोमावलिहे तुच्छ-राय ! तुच्छयर-हासहे ।

पिय-वयणु अलहन्तिअहे तुच्छकाय-वम्मह-निवासहे ।

अन्नु जु तुच्छउँ तहेँ धणहे तं अक्खणह न जाइ ।

कटरि थणंतरु मुद्धडहे जें मणु विच्चि ण माइ ॥१॥

ङसेः— फोडेन्ति जे हियडउँ अप्पणउँ ताहँ पराई कवण घृण ।

रक्खेज्जहु लोअहो अप्पणा बालहे जाया विसम थण ॥२॥

१०२२—भ्यसामोर्हुः । ८ । ४ । ३५१ । अपभ्रंशे स्त्रियां वर्तमानान्नाम्नः परस्य भ्यस आमश्च हु इत्यादेशो भवति ।

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि ! महारा कन्तु ।

लज्जेज्जन्तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एन्तु ॥१॥

वयस्याभ्यो वयस्यानां वेत्यर्थः ।

१०२३—ङेर्हि । ८ । ४ । ३५२ । अपभ्रंशे स्त्रियां वर्तमानान्नाम्नः परस्य ङेः सप्तम्येकवचनस्य *हि [हिं] इत्यादेशो भवति ।

वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिट्ठउ सहस त्ति ।

अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्ट तड त्ति ॥१॥

★ अथ स्त्रीलिङ्गीय-स्यादि-विधिः ★

अपभ्रंश-भाषायाः स्त्रीलिङ्ग-प्रकरणे स्यादि-प्रत्ययानां स्थाने यद् विधिविधानं विधीयते तत्प्रदर्शयत्याचार्यः ।

१०१९—लोपाऽपवादेति । १०१५ सूत्रेण जस्-शसोः लोपो जायते, किन्तु तस्याऽपवादभूतो उकार-ओकारौ १०१९ सूत्रेण विधीयेते । अतः प्रस्तुतसूत्रं तस्यापवादसूत्रं ज्ञेयम् । जसः । जस्-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदीयते, यथा—अङ्गुल्यः जर्जरिताः नखेन=अङ्गुलिउ जज्जरिआउ नहेण, प्रक्रिया १००४ सूत्रे ज्ञेया । अंगुलिउ इत्यत्र २५ सू० ङकारस्यानुस्वारो जातः । जज्जरियाउ इत्यत्र बाहुल्येन १८० सूत्रेण यकारस्य श्रुतिः संजाता । अंगुलिउ, जज्जरियाउ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण जसः स्थाने उकारो जातः । शसः । शस्-प्र-

*हि इति पाठान्तरमुपलभ्यते ।

र्थयस्योदाहरणं प्रदर्शयत्याचार्यः, यथा—**सुन्दरसव्वङ्गाः विलासिनीः प्रेक्षमाणानाम्** । अयं भावः-सुन्दराणि सर्वाण्यङ्गानि यासां ताः सुन्दर-सर्वाङ्गाः विलासिनीः-विलासवतीः नारीः प्रेक्षमाणानां-पश्यतां पुरुषाणामित्यध्याहार्यम् । **सुन्दरसव्वङ्गाः** । सुन्दर-सर्वाङ्गा+शस् । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०१९ सू० शसः स्थाने उकारे **सुन्दरसव्वङ्गाउ** इति भवति । **विलासिनीः** । विलासिनी+शस् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०१९ सू० शसः स्थाने ओकारे **विलासिणीओ** इति भवति । अस्मिन् प्रयोगद्वये प्रस्तुतसूत्रेण शसः स्थाने क्रमशः उकारः, ओकारश्च विहितः । **प्रेक्षमाणानाम्** । प्रपूर्वक ईक्ष्धातुः प्रेक्षणे । प्रेक्ष्+आनश्+आम् । इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, २८८ सू० क्षस्य छकारे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ६७० सू० आनशः स्थाने न्त इत्यादेशे, ४१५ सू० आमः स्थाने णकारे, ५०१ सू० पूर्वकारस्य दीर्घे पेच्छन्ताण इति भवति । **वचनभेदान्न यथासंख्यम्** । वचनयोः भेदः, वचन-भेदः, तस्माद् न यथासंख्यम्-संख्यामनतिक्रम्येति यथासंख्यम् । अयं भावः—१०१९ सूत्रे जस्-शसोः [जस् च शस् चेति जस्-शसौ, तयोः] इति द्विवचनान्तं पदम् । उदोत् [उच्च ओच्च तयोः समाहारः, उदोत्] इत्येकवचनान्तम् । यत्र स्थानिनोः द्विवचनान्तत्वं भवति तत्रादेशयोरपि द्विवचनान्तत्वं भवितुमर्हति, किमर्थमत्राऽत्र वचन-भेद उपन्यस्तः ? इत्याशंकाया उत्तरं प्रदीयते वृत्तिकारेण, यत् स्थान्यादेशयोः वचन-भेदकरणेनेदं ज्ञाप्यते यद् "**यथासंख्यमनुदेशः समानाम्**" इति न्यायो नाऽत्र प्रवर्तते । अतएव जस्-प्रत्ययस्य यथा उकारौकारौ भवतः, तथैव शस्-प्रत्ययस्याऽपि उकारौकारौ जायेते ।

१०२०— **निअमुहकरेहिँ वि मुद्धा करमन्धारे पडिपेक्खइ ।**
ससिमण्डल-चन्दिमाए पुणो किं न दूरे पेच्छइ ॥१॥

भावार्थः—काचिद् **मुग्धा** सुन्दरी नारी यदा **निजमुखकरैः**-निजस्य मुखं तस्य करैः-किरणैः, **अन्धकारे**-ध्वान्तेऽपि निजं **करं**-हस्तं **प्रतिप्रेक्षते**-पश्यति, **शशिमण्डलचन्द्रिकया**-शशिनः चन्द्रस्य मण्डलं-गोलकं, तस्य चन्द्रिकया-कान्त्या, सा मुग्धा **पुनः दूरे किं**-कथं **न पश्यति** ? अपितु पश्यत्येवेति भावः । यथा चन्द्रप्रभया जनाः दूरस्थितानपि पदार्थान् पश्यन्ति तथैव चंद्रकान्तिवद्-मुखी इयं सुन्दरी निबिडेऽन्धकारे समीपस्थौ करावबलोकयेत्, को नाम विस्मयोऽत्र ? न कोऽपीति ।

निज-मुख-करैः । निज-मुख-कर+भिस् । १७७ सू० जकारलोपे, १८७ सू० खकारस्य हकारे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिँ इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **निअ-मुह-करहिँ** इति भवति । **अपि**—वि, इत्यस्य प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **मुग्धा** । मुग्धा+सि । ३४८ सू० गकारस्य लोपे, ३६० सू० धकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **मुद्ध** इति भवति । **करम्** । कर+अम् । इत्यत्र १०१५ सू० अमो लोपे **कर** इति भवति । **अन्धकारे** । अन्धकार+ङि । १७७ सू० ककार-लोपे, ५ सू० दीर्घसन्धौ, ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, १७७ सू० ककारस्य लोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **अन्धारइ** इति भवति । **प्रतिप्रेक्षते** । प्रतिपूर्वकः ईक्षधातुः प्रतिप्रेक्षणे । प्रतिप्रेक्ष्+ते । ३५० सू० उभयत्रापि रेफलोपे, २०६ सू० तकारस्य डकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, २७४ सू० क्षस्य स्थाने खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-खकारस्य स्थाने ककारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **पडिपेक्खइ** इति भवति । **शशि-मण्डल-चन्द्रिकया** । शशिमण्डलचन्द्रिका+टा । इत्यत्र २६० सू० उभयत्रापि शकारस्य सकारे, ३५० सू० रेफलोपे, १८५ सू० ककारस्य मकारे, १००२ सू० आकारस्य अकारे, १०२० सू० टास्थाने ए इत्यादेशे **ससिमण्डल-चन्दि-**

मए इति भवति। **पुनर्**—पुणु प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **किम्**। किम्+सि। इत्यत्र १०३८ सू० किमः स्थाने काइँ इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे **काइँ** इति भवति। **न**। अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेवापभ्रंशे प्रयुज्यते। **दूरे**। दूर+ङि। ५०० सू० ङेः स्थाने डे (ए) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **दूरे** इति भवति। **पश्यति**। दृशिर्-(दृश्)-धातुः दर्शने। दृश्+तिव्। ८५२ सू० दृशः स्थाने देक्ख इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **देक्खइ** इति भवति। **शशि-मण्डल-चन्द्रिकया**—ससि-मण्डल-चन्दिमए इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। यस्मिन् मरकत-कान्त्या संवलितम्। अयं भावः—यस्मिन् मरकतकान्त्या, मरकतं-मणिविशेषः, तस्य कान्तिः, तया संवलितं-मिश्रितमित्यर्थः। **यस्मिन्**। यद्+ङि। २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, १०२८ सू० ङि इत्यस्य स्थाने हिं इत्यादेशे **जहिं** इति भवति। **मरकत-कान्त्या**। मरकत-कान्ति+टा। १०६७ सू० ककारस्य गकारे, १७७ सू० तकारलोपे १८० सू० यकारश्रुतौ, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०२० सू० टाप्रत्ययस्य स्थाने ए इत्यादेशे, **मरगय-कन्तिए** इति भवति। **संवलितम्**। संवलित+सि। १७७ सू० तकारलोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **संवलिअं** इति भवति। **मरकत-कान्त्या-मरगय-कन्तिए** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

१०२१—ङसः। ङस्-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—

तुच्छमध्यायाः तुच्छजल्पिन्याः [तुच्छजल्पनशीलायाः],
तुच्छाच्छरोमावल्याः तुच्छराग ! तुच्छतर-हासायाः।
प्रियवचनमलभमानायाः तुच्छकाय-मन्मथ-निवासायाः,
अन्यद् यत्तुच्छकं तस्याः धन्यायाः तदाख्यातुं न याति।
आश्चर्यं स्तनान्तरं मुग्धायाः येन मनो वर्त्मनि न माति ॥१॥

भावार्थः—अन्यासक्तं प्रियं प्रति नायिकया प्रेषिता दूती शंसति—**हे तुच्छराग !**—तुच्छः-स्वल्पो रागोऽनुरागो यस्य सः, तत्सम्बोधनम्। **तस्याः धन्यायाः**—पुण्यवतीनायिकायाः **अन्यद्** प्रस्तुतवर्णनातिरिक्तं **यत्तुच्छकं** जातं **तदाख्यातुं न याति** न कश्चित् पारयति। किंभूतायाः तस्याः? **तुच्छमध्यायाः**—तुच्छो मध्यः—मध्यभागो यस्याः सा, तस्याः। पुनः किंभूतायाः तस्याः? **तुच्छजल्पिन्याः**, तुच्छजल्पनशीलायाः, पुनः किंभूतायास्तस्याः? **तुच्छाच्छरोमावल्याः**—रोम्णामावली पंक्तिः, रोमावली, अच्छाः (निर्मलाः) च ताः रोमावल्यः, तुच्छाः अच्छरोमावल्यः यस्याः सा, तस्याः। पुनः किंभूतायास्तस्याः? **तुच्छ-तर-हासायाः**—अतिशयेन तुच्छः तुच्छतरः, तुच्छतरो हासो यस्याः सा तस्याः। पुनः किंभूतायास्तस्याः? **प्रियवचनम्**—प्रियस्य कान्तस्य वचनं संभाषणमलभमानायाः। पुनः किंभूतायास्तस्याः? **तुच्छ-काय-मन्मथ-निवासायाः**—तुच्छश्चासौ कायः—शरीरं, तस्मिन् मन्मथस्य कामदेवस्य निवासः—निवसनं यस्याः सा तस्याः। एतादृश्याः **मुग्धायाः**—सुन्दर्याः **स्तनान्तरं**—स्तनयोः अन्तरं—मध्यभागः **आश्चर्यम्**—आश्चर्यजनकं जातमिति। **येन** अतएव **मनोऽपि तत्र वर्त्मनि न माति**। अयं भावः—स्तनौ इयन्तौ पीनतमौ मिथःसम्पृक्तौ च वर्तेते यत्तयोः मध्येऽल्पमपि स्थानं नास्ति। अतएव तत्र अतिसूक्ष्ममनसाऽपि प्रवेष्टुं न शक्यते। स्तनयोरतिपीनत्वमभिव्यञ्जितं कविनेति।

तुच्छमध्यायाः। तुच्छमध्या+ङस्। २९७ सू० ध्यस्य झकारे, ३६० सू० झकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वझकारस्य जकारे, १००१ सू० आकारस्य स्थाने अकारे, १०२१ सू० ङसः स्थाने 'हे' इत्यादेशे **तुच्छ-मज्झहे** इति भवति। **तुच्छ-जल्पिन्याः**। तुच्छ-जल्पिनी+ङस्। जल्प्-धातुः जल्पने। जल्प्+तृन्

+ङस् । इत्यत्र ३५० सू० लकारलोपे, २६ सू० आदेरकारस्य अनुस्वारागमे, ३० सू० अनुस्वारस्य व-र्गान्त्ये मकारे जाते जम्प्+तृ+ङस् [अथवा जम्पिरहे इत्यस्य पदस्य *कथयित्र्याः इति संस्कृत-रूपे कथ्+णिच्+तृ+ङस् इति जाते, ६७३ सू० कथ्-धातोः स्थाने जम्प इत्यादेशे, ६३८ सू० णिचः स्थाने अकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य आकारे, ८४ सूत्रेण आद्याकारस्य अकारे,१० सू० अन्त्याकारस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये जम्प+तृ+ङस्] इतिस्थिते, अत्र शीलार्थकः तृन्प्रत्ययोऽस्त्यतएव ४१६ सू० तृनः स्थाने इर इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये तुच्छजम्पिर+ङस् इति जाते, स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घसन्धौ, १००१ सू० आकारस्य अकारे, प्रस्तुतसूत्रेण ङसेः स्थाने हे इत्यादेशे तुच्छजम्पिरहे इति भवति । तुच्छाच्छरोमावल्याः । तुच्छाच्छरोमावली+ङस् । ८४ सू० सं-योगे परे ह्रस्वे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, प्रस्तुतसूत्रेण ङसः स्थाने हे इत्यादेशे तुच्छच्छरोमावलिहे इति भवति । तुच्छराग ! । तुच्छराग+ सि । १७७ सू० गकार-लोपे,१८० सू० यकारश्रुतौ, १०१५ सू० सेर्लोपे तुच्छराय ! इति भवति । तुच्छतरहासायाः । तुच्छतरहासा+ङस् । १७७ सू० तकारस्य लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ,१००१ सू० आकारस्य अकारे,प्रस्तुतसूत्रेण ङसः स्थाने हे इत्यादेशे तुच्छयरहासहे इति भवति । प्रियवचनम् । प्रियवचन+अम् । ३५० सू० रेफलोपे, १७७ सू० चकारलोपे १८० सू० यकारश्रुतौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमोलोपे पियव-यणु इति भवति । अलभमानायाः । नञ्पूर्वकः(लभ्)धातुः अप्राप्तौ । अ-लभ्+आनश्+ङस् । १८७ सू० भकारस्य हकारे, ९१० सूत्रेण धातोरन्तोऽकारागमे, ६७१ सू० आनशः स्थाने न्त इत्यादेशे, स्त्रीत्वा-दाप्-प्रत्यय-प्रसंगे ५२१ सू० ङीप्-(ई)-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, प्रस्तुतसूत्रेण ङसः स्थाने हे इत्यादेशे अलहन्तिहे इति भवति । तुच्छकाय-मन्मथ-निवासायाः । तुच्छकाय-मन्मथ-निवासा+ङस् । २४२ सू० आदिम-मकारस्य वकारे, ३३२ सू० न्मस्य मकारे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे,१८७ सू० थकारस्य हकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, प्रस्तुत-सूत्रेण ङसः स्थाने हे इत्यादेशे तुच्छकाय-वम्मह-निवासहे इति भवति । अन्यद् । अन्यद्+सि, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० नकारस्य द्वित्वे, ११ सू० दकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे अन्नु इति भवति । यद् । यद्+हि । २४५ सू० यकारस्य जकारे,११ सू० दकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे जु इति भवति । तुच्छकम् । तुच्छक+सि । १७७ सू० ककारलोपे, १०२५ सू० सिना सह अकारस्य उं इत्यादेशे,१०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे तुच्छउँ इति भवति । त-स्याः । तद्+ङस । ११ सू० दकारलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण ङसः स्थाने हे इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे तहेँ इति भवति । धन्यायाः । धन्या+ङस् । ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सूत्रे "क्वचिन्न भवति" इति वचनात् द्वित्वाभावे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, प्रस्तुत-सूत्रेण ङसः स्थाने हे इत्यादेशे धणहे इति भवति । तम् । तद्+अम् । इत्यत्र ११ सू० दकारस्य लोपे, ४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे तं इति भवति । आख्यातुम् । आङ्पूर्वकः ख्याधातुः कथने । आख्या+तुम् । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-खकारस्य ककारे, ११११ सू० तुमः स्थाने अणहं इत्यादेशे, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, १००१ सू० आका-रस्य अकारे अक्खणहं इति भवति । न । अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेवापभ्रंशे प्रयुज्यते । याति । या गति-प्रापणयोः । या+तिप् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ६२८ सू० तिप इचादेशे जाइ इति भवति । आ-

*कथन-शीलायाः, जल्पन-शीलाया इत्यर्थः ।

श्चर्यम् । अव्ययपदमिदम् । अपभ्रंशे आश्चर्यम् इत्यर्थे १०९३ सू० कटरिशब्दः प्रयुज्यते । **स्तनान्तरम्** । स्तनान्तर+सि । ३१६ सू० स्तस्य स्थाने थकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २५ सू० नकारानुस्वारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **थणंतरु** इति भवति । **मु-ग्धायाः** । मुग्धा+ङस् । ३४८ सू० गकारस्य लोपे, ३६० सू० धकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-धकारस्य दकारे, ४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये, ११०० सू० स्वार्थे डड (अड)-प्रत्यये, कप्रत्ययस्य च लोपे, ङिति परे-ऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, प्रस्तुतसूत्रेण ङसः स्थाने हे इत्यादेशे **मुद्धडहे** इति भवति । **येन** । यद्+टा । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, १००४ सू० अकारस्य एकारे, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य स्थाने अनुस्वारे **जें** इति भवति । **मनः** । मनस्+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, ११ सू० सकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे मणु इति भवति । **वर्त्मनि** । वर्त्मन्+ङि । इत्यत्र १०९२ सू० वर्त्मनः स्थाने विच्च इत्यादेशे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **विच्चि** इति भवति । **न** । अव्यय-पदमिदम् । इत्यत्र २२९ सू० नकारस्य वैकल्पिके णकारे **ण** इति भवति । **माति** । माङ्(मा)धातुः माने । मा+तिव् । ६२८ सू० तिवः स्थाने इत्यादेशे **माइ** इति भवति । **तुच्छमज्झहे, तुच्छजम्पिरहे** इत्यादिषु नवसु प्रयोगेषु प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । अत्र प्रस्तुतसूत्रेण ङस्-प्रत्ययस्य स्थाने हे इत्यादेशो जातः । **ङसेः** । सम्प्रति ङसि-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदर्शयत्याचार्यः । यथा—

स्फोटयतः यौ हृदयमात्मीयं तयोः परकीया का घृणा ।
रक्षत लोकाः ! आत्मानं बालायाः जातौ विषमौ स्तनौ ॥२॥

भावार्थ :—बालायाः स्तनयोः अतिशयेन विकारजनकत्व-प्रदर्शनाय कश्चिन्नायको भणति । **यौ स्तनौ आत्मीयम्**-निजं, **हृदयम्**-वक्षः-स्थलं, **स्फोटयतः**-भिन्तः, **तयोः**-कुचयोः **परकीया**-परविषये **का घृणा** ? न काऽपि अनुकम्पा भवितुं शक्नोति । अतो हे **लोकाः** ! यौ बालायाः **विषमौ**—भयंकरौ विकारजनकौ वा स्तनौ स्तः, ताभ्याम् **आत्मानं रक्षत**—स्वस्य रक्षां कुरुत । एतयोरुपरि न दृष्टिः प्रक्षेपणीयेति भावः ।

स्फोटयतः । स्फुट् स्फोटने-विदारणे । स्फुट्+णिग्+तस् । ३४८ सू० सकारलोपे, १००० सू० उकारस्य ओकारे, १९५ सू० टकारस्य डकारे, ६३८ सू० णिगः स्थाने एकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ६३१ सू० अन्ति इत्यस्य न्ति इत्यादेशे **फोडेन्ति** इति भवति । **यौ** । यद्+औ । इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ५४७ सू० जसः स्थाने डे (ए) इत्यादेशे, ङिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **जे** इति भवति । **हृदयम्** । हृदय+अम् । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० दकारलोपे, बाहुल्येन १८० सू० यकारश्रुतौ, २६९ सू० द्वितीय-सस्वर-यकारलोपे, ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये जाते, ११०१ सू० स्वार्थे डडअ-(अडअ)-प्रत्यये क-प्रत्ययस्य च लोपे, ङिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चा-रणलाघवे, १०१५ सू० अमो लोपे **हिअडउँ** इति भवति । **आत्मीयम्** । आत्मीय+अम् । १०९३ सू० आत्मीयस्य शब्दस्य अप्पण इत्यादेशे, ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, १७७ सू० ककारस्य लोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०१५ सू० अमो लोपे, १०८२ सू० अनुस्वारस्य उच्चारणस्य लाघवे **अप्पणउँ** इति भवति । **तयोः** । तद्+ओस् । ११ सू० दकारलोपे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १००१ सू० अका-रस्य आकारे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **ताहँ** इति भवति । **परकीया** । परकीया+सि । अपभ्रंशे परकीयार्थे १०९३ सू० पराई-शब्दः प्रयुज्यते, १०१५ सू० सेर्लोपे **पराई** इति भवति । **का** । किम्+सि । इत्यत्र १०३८ सू० किमः स्थाने कवण इत्यादेशे, स्त्रीत्वादाप्-

(आ)-प्रत्यये, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **कवण** इति भवति। **घृणा**। घृणा+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, सेर्लोपे **घण** अत्र बाहुल्येन ऋकारस्य अकारो न विहितस्तत्र तु **घृण** इति भवति। **रक्षत**। रक्ष्धातुः रक्षणे। रक्ष्+त। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे, *बहुलाधिकाराद् ६६७ सू० प्रकृति-प्रत्ययोर्मध्ये 'ज्ज' इत्यस्य प्रयोगे, १०५५ सू० 'त' इत्यस्य हु इत्यादेशे **रक्खेज्जहु** इति भवति। **अथवा—रक्षत खलु**, इतिच्छायायां तु। **रक्षत**। रक्ष्+त=रक्खे+त=इत्यत्र ६६६ सू० 'त' इत्यस्य स्थाने 'ज्ज' इत्यादेशे **रक्खेज्ज** इति भवति। **खलु**। अव्ययपदमिदम्। ४६९ सू० खल्वर्थे 'हु' इत्यस्य प्रयोगे **'हु'** इति भवति। **लोकाः**!। लोक+जस्। १७७ सू० ककारलोपे, १०१७ सू० जसः स्थाने हो इत्यादेशे **लोअहो**! इति भवति। **आत्मानम्**। आत्मन्+अम्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३२२ सू० त्मस्य स्थाने पकारे, ३६० सू० पकारद्वित्वे, ५४५ सू० अन् इत्यस्य आण इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० आकारस्य अकारे, अन्त्याकारस्य च आकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **अप्पाणा** इति भवति। **बालायाः**। बाला+ङसि। १००१ सू० द्वितीयस्य आकारस्य अकारे, १०२१ सू० ङसेः स्थाने हे इत्यादेशे **बालहे** इति भवति। **जातौ**। जात+औ। १७७ सू० तकारस्य लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **जाया** इति भवति। **विषमौ**। विषम+औ। २६० सू० षकारस्य सकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१५ सू० जसो लोपे **विसम** इति भवति। **स्तनौ**। स्तन+औ। ३१६ सू० स्तस्य थकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **थण** इति भवति। **बालायाः**=बालहे इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रेण ङसि-प्रत्ययस्य स्थाने हे इत्यादेशो जातः।

१०२२— **भव्यं भूतं यन्मारितः, भगिनि! अस्मदीयः कान्तः।**
अलज्जिष्यं वयस्याभ्यः यदि भग्नः गृहमेष्यत्॥१॥

भावार्थः—हे **भगिनि**! इदं **भव्यं**-साधु **भूतम्**-जातम्, **यद् युद्धे अस्मदीयः कान्तः**-प्रियः **मारितः**—शत्रुणा हतः। **यद्यसौ भग्नः**-शत्रुणा पराजितः, **गृहमैष्यत्**-गृहमागमिष्यत् तदाऽहं **वयस्याभ्यः**-सखीभ्यः, वयस्यानां वा, सखीनां मध्ये इत्यर्थः। **अलज्जिष्ये**-लज्जामप्राप्स्यम्। युद्धे मरणं श्रेष्ठं न तु पश्चादावर्तनमिति भावः।

भव्यम्। भव्य+सि। अप भ्रंशे १०९३ सू० भव्यार्थकः भल्लशब्दः प्रयुज्यते, १००१ सू० अन्त्याकारस्य आकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **भल्ला** इति भवति। **भूतम्**। भू सत्तायाम्। भू+क्त-त। ७३२ सू० भू-धातोः स्थाने हु इत्यादेशे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, सिप्रत्यये, सेर्लोपे **हुआ** इति भवति। **यः**। यद्+सि=जु, प्रक्रिया १०१६ सूत्रे ज्ञेया। **मारितः**। मारित+सि। १७७ सू० तकारलोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, सेर्लोपे **मारिआ** इति भवति। **भगिनि**!। भगिनी+सि। ३९७ सू० भगिनी-शब्दस्य बहिणी इत्यादेशे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, सेर्लोपे **बहिणि**! इति भवति। **अस्मदीयः**। अस्माकमयमिति अस्मदीयः। अस्मद्+ईय+ङस्। बाहुल्येन ६०२ सू० अस्मदः स्थाने मह इत्यादेशे, ११०५ सू० ईयप्रत्ययस्य डार (आर) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये महार+सि इति जाते, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **महारा** इति भवति। **कान्तः**। कान्त+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **कन्तु** इति भवति। **अलज्जिष्ये**। लज्ज् मनोग्लानौ। लज्ज्+स्ये। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६४६ सू० अकारस्य एकारे, ६६८ सू० स्ये इत्य-

*बहुलाधिकाराद् हलन्त-धातोरपि स्वरान्तधातोरिव ज्ज इत्यस्य विकरणं जायते।

स्य ज्ज इत्यादेशे, २६ सू०"**क्वचिद् छन्दःपूरणेऽपि**" इति वचनात् अनुस्वारागमे **लज्जेज्जं** इति भवति। **तु**। अव्ययपदमिदं पाद-पूरणे प्रयुज्यते। लज्जेज्जं+तु इत्यत्र ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्ये **लज्जेज्जन्तु** इति भवति। **वयस्याभ्यः**। वयस्या+भ्यस्। इत्यत्र २६ सू० द्वितीयस्वरस्यान्तेऽनुस्वारागमे, ३४९ सू० यकारलोपे, १००० सू० आकारस्य इकारे, ४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये कप्रत्ययस्य च लोपे,स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)-प्रत्यये,५ सू० दीर्घसन्धौ वयंसिआ+भ्यस् इति जाते,१००१ सूत्रेण आकारस्य अकारे,१०२२ सू० भ्यसः स्थाने हु इत्यादेशे **वयंसिअहु** यत्र **वयस्यानाम्** इतिच्छाया तत्र वयस्या+आम्=वयंसिअ+आम् इति स्थिते,१०२२ सू० आमः स्थाने हु इत्यादेशे **वयंसिअहु** इति भवति। **यदि**। अव्यय-पदमिदम्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, १७७ सू० दकारलोपे **जइ** इति भवति। **भग्नः**। भग्न+सि। ३४९ सू० नकारलोपे, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **भग्गा** इति भवति। **गृहम्**। गृह+अम्=घरु प्रक्रिया १०१२ सूत्रस्य प्रथमे श्लोके ज्ञेया। **एष्यत्**। इण्धातुः गतौ। इ+स्यत्। १००० सू० इकारस्य एकारे,६६९ सू० स्यत् इत्यस्य न्त इत्यादेशे, सिप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **एन्तु** इति भवति। **एन्तु** इत्यस्मिन् प्रयोगे स्यत् [क्रियातिपत्तेः—लृङः प्रथमपुरुषस्य एकवचनम्] इत्यस्य स्थाने ६६९ सूत्रेण 'न्त' इत्यादेशो भवति, अनया रीत्यैव एन्तु इति प्रयोगः सिध्यति। ६७० सूत्रेण शतृ, आनश् इत्येतयोः प्रत्यययोः स्थाने प्रत्येकं न्त, माण, इत्यादेशौ भवतः। शतृ, आनश् इत्येतौ कृत्-प्रत्ययौ स्तः। एतयोः स्थाने भवन्तौ न्त, माण इत्येतौ आदेशावपि स्थानिवत्त्वात् कृत्प्रत्ययौ एव भवतः। ६६९ सूत्रे यथा 'न्त' इत्यस्य विधानं विद्यते,तथैव ६७० सूत्रेऽपि 'न्त' इत्यस्य विधानं विद्यते। इत्थं [न्त इत्यत्र] वर्णसाम्यात्,शब्दशक्तिस्वाभाव्यात् [1]कृदन्ताधिकारविहितत्वाद्वा ६६९ सूत्रेण विधीयमानस्य 'न्त' इत्येतस्य आदेशस्यापि कृत्त्वं-कृत्-प्रत्ययत्वं भवति। एतत्कृत्प्रत्ययान्तस्य कृदन्तत्वात् नामत्वं-प्रातिपदिकत्वमस्ति। प्रातिपदिकत्वाच्च एन्त, इत्यस्मात् प्रातिपदिकात् सिप्रत्ययो जातः। नैतत्सन्देग्धव्यं यत्तिङ्-आदेशान्तस्य [तिङः स्थाने य आदेशः, तदन्तस्य] प्रातिपदिकत्वं न भवति। यतोहि व्याकरणे तिङ्-आदेशान्तस्यापि प्रातिपदिकत्व-साधकं प्रमाणमुपलभ्यते। तथाहि ५-२-२ हैमशब्दानुशासनस्य [2]सूत्रेण परोक्षा-[लिट्-लकार]-विषये धातोः परौ क्वसुकानौ विधीयेते,एतत्-प्रत्ययान्ताः शुश्रुवान्,ऐदिवान् पेचिवान् इत्यादयः शब्दाः शब्द-शक्तिस्वाभाव्यात् कृदन्ताधिकार-विहितत्वाच्च प्रातिपदिकसंज्ञां लभन्ते। एवमेव एन्त इत्ययं तिङ्-आदेशान्त-शब्दोऽपि प्रातिपदिकसंज्ञाभाग् भवतीति बोध्यम्।

१०२३—**ह्रेंहिः**। हिं इति पाठान्तरमपि समुपलभ्यते। प्रयोगानुसारं प्रवृत्तिर्विज्ञेया।

वायसमुड्डापयन्त्या [नायिकया] **प्रियो दृष्टः सहसेति।**
अर्धानि वलयानि मह्यां गतानि, अर्धानि स्फुटितानि तटिति ॥१॥

भावार्थः—**वायसं**-काकम्,**उड्डापयन्त्याः** प्रियविरह-जनित कार्श्यमनुभवन्त्याः नायिकाया दौर्बल्याऽधिक्येन **अर्धानि वलयानि**-कंकणानि **मह्यां**-पृथिव्यां **गतानि**-पतितानि। तस्मिन्नेव प्रसंगे **सहसा**-अकस्मात्तथैव **वायसमुड्डापयन्त्या** नायिकया बहिरागतः निजः **प्रियः**-पतिः, **दृष्टः**-अवलोकितः, तदा तस्याः

---

1. पाणिनीयमतानुसारेण 'कृत्तद्धित-समासाश्च ।१।२।४६।' [कृत्तद्धितान्तौ समासाश्च तथा (प्रातिपदिकानि) स्युः] इत्यनेन सूत्रेण कृदन्ताः शब्दाः प्रातिपदिक-संज्ञायुताः भवन्ति।

2. तत्र क्वसुकानौ तद्वत् ।५।२।२। परोक्षामात्रविषये धातोः परौ क्वसुकानौ स्याताम्, तौ च परोक्षेव। शुश्रुवान्। सेदिवान्। अधिवान्। पेचिवान्। पेचानः। —हैमशब्दानुशासने।

प्रियदर्शन-जनित-हर्षातिरेकाद्वर्धानि-अवश्लिष्टानि वलयानि **तडित्** इति ध्वनिं विधाय **स्फुटितानि-त्रुटितानि**। प्रियदर्शन-जनितहर्षबाहुल्येन बाह्वोः स्थौल्यं संजातमित्यभिव्यक्तं कविनेति।

वायसम्। वायस+अम्। इत्यत्र १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **वायसु** इति भवति। **उड्डापयन्त्या**। उत्पूर्वकः डीङ्(डी)धातुः विहायसा गतौ। इत्यत्र संस्कृतनियमेन उत्डी+णिग्+शतृ+टा इति जाते। ३४८ सू० तकारस्य लोपे, ३६० सू० डकारस्य द्वित्वे, ६३८ सू० णिगः स्थाने आव इत्यादेशे,१० सू० स्वरस्य लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, ६७० सूत्रेण शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे,स्त्रीत्वादाप्-प्रसङ्गे,५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये कृते,१० सू० स्वरस्य लोपे,अज्भीने परेण संयोज्ये उड्डावन्ती+टा इति जाते,१००० सू० ईकारस्य इकारे, ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये कप्रत्ययस्य च लोपे,२।४।१८। सू० *आप्-(आ)-प्रत्यये कृते,५ सू० दीर्घ-सन्धौ, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०२० सू० टा-स्थाने एकारे **उड्डावन्तिअए** इति भवति। **प्रियः**। प्रिय+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, १७७ सू० यकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पिउ** इति भवति। **दृष्टः**। दृष्ट+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे,३०५ सू० ष्टस्य ठकारे,३६० सू० ठकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे,११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये,१००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **दिट्ठु** इति भवति। **सहसा**। अव्ययपदमिदम्। १००० सू० आकारस्य अकारे **सहस** इति भवति। **इति**। अव्ययपदमिदम्। ४२ सूत्रेण प्रथमस्य इकारस्य लोपे,तकारस्य च द्वित्वे **त्ति** इति भवति। **अर्धानि**। अर्ध+जस्। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० धकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारे, १००१ सू० अकारस्य आकारे,१०१५ सू० जस्-प्रत्ययस्य लोपे **अद्धा** इति भवति। **वलयानि**। वलय+जस्। अद्धावदेव **वलया** इति भवति। **मह्याम्**। मही+ङि। इत्यत्र १००१ सू० ईकारस्य इकारे,१०२३ सू० ङेः स्थाने हि इत्यादेशे **महिहि** इति भवति। **गतानि**। गत+जस्। १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **गया** इति भवति। **स्फुटितानि**। स्फुटित+जस्। अपभ्रंशे १०९३ सू० स्फुटितार्थकः फुट्ट-शब्दः प्रयुज्यते, १०१५ सू० जसो लोपे **फुट्ट** इति भवति। **तडित्**। ध्वन्यनुकरणकार्थकमव्यय-पदमिदम्। १००० सू० इकारस्य अकारे, ११ सू० तकारस्य लोपे **तड** इति भवति। **इति**—त्ति इति पदं पूर्ववदेव साध्यम्। **महिहि** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

★ अथ स्त्री-लिङ्गीय-स्यादि विधि ★

अपभ्रंश-भाषा में स्त्रीलिङ्ग-सम्बन्धी सि आदि प्रत्ययों के स्थान में जो विधि-विधान पाया जाता है, अब सूत्रकार उसका निर्देश कर रहे हैं—

१०१६—अपभ्रंश भाषा में, स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान नाम (प्रातिपदिक) से परे जस् और शस् इन प्रत्ययों के स्थान में प्रत्येक को **उ** और **ओ** ये दो आदेश होते हैं। **१०१५** वें सूत्र से जस् और शस् का लोप होता है,किन्तु इस सूत्र ने इस लोप का निषेध कर दिया,अतः यह दोनों कार्य लोप के अपवाद-स्वरूप कार्य समझने चाहिएं। **जस् का उदाहरण-अङ्गुल्यः जर्जरिताः नखेन**—अंगुलिउ जज्जरियाउ नहेण (नाखून से अंगुलियां जर्जरित हो गई हैं, घिस गई हैं) यह श्लोक का एक अवयव है, सम्पूर्ण श्लोक १००४ वें सूत्र में दिया जा चुका है। यहां पर **अङ्गुल्यः**—अंगुलिउ,तथा **जर्जरिताः**—जज्जरियाउ, इन शब्दों में जस्-प्रत्यय के स्थान में 'उ' यह आदेश किया गया है। **शस्-प्रत्यय का उदाहरण—सुन्दर-सर्वाङ्गाः विलासिनीः प्रेक्षमाणानाम्**—सुन्दर-सव्वङ्गाउ विलासिणीओ पेच्छन्ताण [सभी अङ्गों से सुन्दर स्त्रियों

*आप् ।२।४।१८।अकारान्तात् स्त्रियाम् आप् स्यात्। खट्वा। या। सा। —हैमशब्दानुशासने।

को देखते हुओं का] यहां पर **सुन्दर-सर्वाङ्गाः**=सुन्दर-सव्वङ्गाउ,तथा **विलासिनीः**=विलासिणीओ के शस् प्रत्यय के स्थान पर क्रमशः उ और ओ ये आदेश किए गए हैं। यहां पर एक आशंका उत्पन्न होती है कि **'जस्-शसोः'** यह स्थानिरूप पद द्वि-वचनान्त है और **'उदोत्'** यह आदेश रूप पद एक-वचनान्त है,यह वचन-भेद क्यों है ? उत्तर में निवेदन है कि यह वचन-भेद यहां व्यर्थ नहीं है,क्योंकि इस वचन-भेद के कारण यहां पर **'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्'**, यह परिभाषा प्रवृत्त नहीं होती। इस परिभाषा का **अर्थ है**—समसम्बन्धी विधि यथासंख्य होती है, जहां पर स्थानी और आदेश की संख्या समान हो तो वहां पर आदेश क्रम से प्रथम को प्रथम और द्वितीय को द्वितीय इस तरह यथासंख्य होते हैं। इस परिभाषा के प्रवृत्त न होने से यहां पर आदेश यथासंख्य नहीं हो पाते।

१०२०—अपभ्रंश-भाषा में स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान नाम-प्रातिपदिक से परे आए टा-प्रत्यय के स्थान में 'ए' यह आदेश होता है। जैसे—

निज-मुख-करैः अपि मुग्धा करमन्धकारे प्रतिप्रेक्षते।
शशिमण्डल-चन्द्रिकया पुनः किं न दूरे पश्यति ॥१॥

अर्थात्—अपने मुख की किरणों से जब कि वह मुग्धा-सुन्दरी अन्धकार में भी अपने हाथ को देख सकती है तो फिर चन्द्र-मण्डल की चन्द्रिका (रोशनी) के द्वारा दूर-स्थ वस्तु को क्यों नहीं देख सकती ? उत्तर स्पष्ट है कि अवश्य देख सकती है।

यहां पर—**शशिमण्डलचन्द्रिकया**=ससिमण्डल-चन्दिमए इस शब्द में **टा-प्रत्यय** के स्थान में 'ए' यह आदेश किया गया है। **दूसरा उदाहरण**—**यस्मिन् मरकत-कान्त्या संवलितम्**=जहिं मरगय-कन्तिए संवलिअं [जिस में मरकत-मणि की कान्ति (आभा) से मिला हुआ] यहां पर-**कान्त्या**=कन्तिए, इस शब्द में **टा-प्रत्यय** के स्थान में 'ए' यह आदेश किया गया है।

१०२१—अपभ्रंश-भाषा में स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान नाम-प्रातिपदिक से परे आए ङस् और ङसि इन प्रत्ययों के स्थान 'हे' यह आदेश होता है। **ङस्-प्रत्यय का उदाहरण**—

तुच्छमध्यायाः तुच्छ-जल्पिन्याः (तुच्छजल्पन-शीलायाः),
तुच्छाच्छरोमावल्याः तुच्छराग ! तुच्छतर-हासायाः।
प्रिय-वचनमलभमानायाः तुच्छकाय-मन्मथ-निवासायाः,
अन्यद् यत् तुच्छकं तस्याः धन्यायाः तदाख्यातुं न याति।
आश्चर्यं स्तनान्तरं मुग्धाया येन मनो वर्त्मनि न माति ॥१॥

अर्थात्—हे तुच्छराग [अन्यासक्त होने से जिस में अनुराग की स्वल्पता हो] नायक ! नायिका का मध्यभाग तुच्छ [सूक्ष्म] है, वह बहुत कम बोलने के स्वभाव वाली है, उसके शरीर की रोमावली [रोम-पंक्ति] स्वल्प है, उस का हास्य-विनोद-अत्यन्त कम हो चुका है, उसको अपने प्रीतम का वाणी-विलास भी अप्राप्त है, तथापि उस के दुबले, पतले शरीर में मन्मथ [कामदेव] का निवास है,उस नायिका के जीवन में जो कुछ और तुच्छता [स्वल्पता] है,उस का वर्णन नहीं किया जा सकता! यह सब कुछ होने पर भी एक बात का महान आश्चर्य है कि उस सुन्दरी के स्तनान्तर [स्तनों का मध्यभाग] की तुच्छता इतनी अधिक है कि उस के मध्य में मन जैसा अति सूक्ष्म पदार्थ भी नहीं समा सकता।

यहां पर—१—**तुच्छमध्यायाः**, २—**तुच्छजल्पिन्याः**, ३—**तुच्छाच्छरोमावल्याः**, ४—**तुच्छतर-हासायाः**,५—**अलभमानायाः**, ६—**तुच्छकाय-मन्मथ-निवासायाः**, ७—**धन्यायाः**,८—**तस्याः**,९—**मुग्धायाः** ये ९ पद षष्ठ्यन्त हैं। प्रस्तुत सूत्र से इन के ङस्-प्रत्यय के स्थान में 'हे' यह आदेश करके १—**तुच्छ-म-**

कभहे, २—तुच्छअम्भिरहे, ३—तुच्छच्छ-रोमावलिहे, ४—तुच्छयर-हासहे, ५—अलहन्तिअहे, ६—तुच्छकाय-वम्महनिवासहे, ७—तहे, ८—धणहे, ९—मुद्धहे ये ९ रूप बताए गए हैं। ङसि-प्रत्यय का उदाहरण—

स्फोटयतः यौ हृदयमात्मीयं तयोः परकीया का घृणा।

रक्षत लोकाः! आत्मानं बालायाः, जातौ विषमौ स्तनौ ॥२॥

अर्थात्—जो स्तन अपने हृदय को फोड़ डालते हैं, वे दूसरों पर कैसे अनुकम्पा कर सकते हैं? अतः हे लोगो! अपनी रक्षा करो, क्योंकि इस बाला के स्तन विषम [भीषण] हो चुके हैं।

यहां पर **बालायाः**=बालहे (लड़की से), इस पद में **ङसि-प्रत्यय** के स्थान में प्रस्तुत [१०२१] सूत्र से 'हे' यह आदेश किया गया है।

१०२२—अपभ्रंशभाषा में स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान-विद्यमान नाम-प्रातिपदिक से परे आए **भ्यस्** और **आम्** इन प्रत्ययों के स्थान में 'हु' यह आदेश होता है। जैसे—

भव्यं भूतं यन्मारितः, भगिनि! अस्मदीयः कान्तः।

अलज्जिष्ये वयस्याभ्यः यदि भग्नः गृहमैष्यत् ॥१॥

अर्थात्—हे बहिन! अच्छा हुआ, जो मेरा कान्त (प्रीतम) युद्ध में मारा गया, अन्यथा यदि वह भग्न हो [भगौड़ा बन] कर घर में आता तो मुझे सखियों के मध्य में लज्जित होना पड़ता।

वृत्तिकार फरमाते हैं कि '**वयंसिअहु**' इस पद के **वयस्याभ्यः** [सहेलियों से] अथवा **वयस्यानाम्** [सहेलियों के मध्य में] ये दो संस्कृत रूप होते हैं। यहां पर एक स्थान पर **भ्यस्** के स्थान में तथा एक स्थान पर **आम्** के स्थान में 'हु' यह आदेश किया गया है।

१०२३—अपभ्रंशभाषा में स्त्रीलिङ्ग में [वर्तमान] नाम-प्रातिपदिक से परे आए सप्तमी के एक वचन ङि-प्रत्यय के स्थान में 'हि' [हिं] यह आदेश होता है। हि के स्थान पर हिं ऐसा पाठान्तर भी उपलब्ध होता है। अतः आदेश के दोनों प्रकार यथास्थान ग्रहण किए जा सकते हैं। जैसे—

वायसमुड्डापयन्त्या [नायिकया] प्रियो दृष्टः सहसेति।

अर्धानि वलयानि मह्यां गतानि, अर्धानि स्फुटितानि तडिति ॥१॥

अर्थात्—काग उड़ाती हुई नायिका के, पतिविरहजन्य दुर्बलता के कारण आधे वलय-कंगन पृथ्वी पर गिर पड़े और जब उसने अकस्मात् अपने प्रीतम को देखा तो हर्षातिरेक के कारण भुजाओं के स्थूल होने से उस के आधे कंगन तड़ाक से टूट गए।

यहां पर **मह्याम्**=महिहि (भूमि पर) इस शब्द में सप्तमी विभक्ति के एक वचन **ङि-प्रत्यय** के स्थान में 'हि' यह आदेश किया गया है।

★ अथ नपुंसक-लिङ्गीय-स्यादिविधिः ★

१०२४—क्लीबे जस्-शसोरिं। ८। ४। ३५३। अपभ्रंशे क्लीबे वर्तमानान्नाम्नः प-रयोर्जस्-शसोः *इं [इँ] इत्यादेशो भवति।

कमलइँ मेल्लवि अलि-उलइँ करि-गण्डाइँ महन्ति।

असुलहमेच्छण जाहँ भलि ते ण वि दूर गणन्ति ॥१॥

१०२५—कान्तस्यात उं स्यमोः।८।४।३५४। अपभ्रंशे क्लीबे वर्तमानस्य ककारान्तस्य

*इँ इत्यपि पाठान्तरमुपलभ्यते।

नाम्नो योऽकारस्तस्य स्यमोः परयोः उं इत्यादेशो भवति। अन्नु जु तुच्छउँ तहे॑ धणहे [३५०.४]

मग्गउँ देक्खवि निअय-बलु बलु पसरिअउँ परस्सु ।

उम्मिल्लइ ससिरेह जिवँ करि करवालु पियस्सु ॥१॥

★ अथ नपुंसक-लिङ्गीय-स्यादिविधिः ★

अपभ्रंश-भाषायां नपुंसक-लिङ्ग-प्रकरणे स्यादि-प्रत्ययानां स्थाने यद् विधिविधानं समीहितं वर्तते, तत्प्रतिपादयत्याचार्यः । यथा—

१०२४—इं इत्यादेशः । प्रस्तुतसूत्रेण जस्-शसोः स्थाने इं इत्यादेशो भवति । **इं** इत्यस्य स्थाने **इँ** इति पाठान्तरमपि दृश्यते । अतः प्रस्तुतसूत्रेण जस्-शसोः स्थाने कुत्रचिद् इं इत्यादेशः, कुत्रचिद् इँ इत्यादेशश्चाऽपि भवतीति ज्ञातव्यम् ।

कमलानि मुक्त्वाऽलिकुलानि करिगण्डान् काङ्क्षन्ति ।

असुलभमेष्टुं येषां निर्बन्धः ते नाऽपि दूरं गणयन्ति ॥१॥

भावार्थः—अलिकुलानि-अलीनां भ्रमराणां कुलानि-समूहाः, **कमलानि**-पद्मानि **मुक्त्वा**-त्यक्त्वा **करिगण्डान्**-करिणां हस्तिनां गण्डाः-कपोलाः तान् **काङ्क्षन्ति**-अभिलषन्ति, यतोहि **येषामसुलभं**-दुष्प्राप्यं **पदार्थमेष्टुं**-प्राप्तुं **निर्बन्धः**-उत्साहः समस्ति, **ते** भ्रमराः **नाऽपि**-नैव, **दूरं**-विप्रकृष्टं **गणयन्ति** । दृढनिश्चयानां व्यक्तीनां कृते न किमपि दूरम्-न किमपि अलभ्यं भवतीति भावः।

कमलानि । कमल+शस् । १०२४ सू० शसः स्थाने इँ इत्यादेशो **कमलइँ** इति भवति । **मुक्त्वा** । मुच्लृ-मुच् मोचने । मुच्+क्त्वा । ७६२ सू० मुचः स्थाने मेल्ल इत्यादेशे, ११२० सू० क्त्वः स्थाने अवि इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **मेल्लवि** इति भवति । **अलि-कुलानि** । अलिकुल +जस् । १७७ सू० ककारलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण जसः स्थाने इं इत्यादेशे **अलि-उलइं** इति भवति । **करिगण्डान्** । करिगण्ड+शस् । १००१ सू० अन्त्याकारस्य आकारे, ३४ सूत्रेण गण्डशब्दस्य क्लीबत्वे, प्रस्तुतसूत्रेण शसः स्थाने इँ इत्यादेशे करिगण्डाइँ इति भवति । **काङ्क्षन्ति** । काक्षि आकांक्षायाम् । संस्कृतनियमेन काङ्क्ष्+अन्ति इति जाते, ८६३ सू० काङ्क्ष्धातोः स्थाने मह इत्यादेशे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **महन्ति** इति भवति । **असुलभम्** । असुलभ+अम् । इत्यत्र १८७ सू० भकारस्य हकारे, ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **असुलहं** इति भवति । **एष्टुम्** । इष् इच्छायाम् । इष्+तुम् । १००० सू० इकारस्य एकारे, ८८६ सू० षकारस्य छकारे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-छकारस्य चकारे, १११२ सू० तुमः स्थाने अण इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **एच्छण** इति भवति । असुलहम्+एच्छण इत्यत्र अज्झीने परेण संयोज्ये **असुलहमेच्छण** इति भवति । **येषाम्** । यद्+आम् । इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य स्थाने जकारे, ११ सू० दकारलोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, १०८९ सू० उच्चारणस्य लाघवे **जाहँ** इति भवति । **निर्बन्धः** । निर्बन्ध+सि । अपभ्रंशे १०९३ सू० निर्बन्धार्थे भलि-शब्दः प्रयुज्यते, १०१५ सू० सेर्लोपे **भलि** इति भवति । **ते** । तद्+जस् । इत्यत्र ११ सू० दकारलोपे, ५४७ सू० जसः स्थाने डे (ए) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **ते** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदम् । २२९ सू० नकारस्य वैकल्पिके णकारे **ण** इति भवति । **अपि** । अव्ययपदमिदम् । ४१ सू० अकारस्य लोपे, २३१ सू० पकारस्य वकारे **वि** इति भवति । **दूरम्** । दूर+अम् । १०१५ सू० अमो लोपे **दूर** इति

भवति । **गणयन्ति** । गण-(गण्)-धातुः संख्याने-गणनायाम् । गण्+णिग्+अन्ति । ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, बाहुल्येन ६४२ सू० आदेरकारस्य दीर्घाभावे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **गणन्ति** इति भवति । **कमलइं, अलिउलइं, करिगण्डाइं** इत्येषु शब्देषु प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०२५—अन्यद् यत् तुच्छकं तस्याः धन्यायाः—अन्नु जु तुच्छउँ तहे धणहे, प्रक्रिया १०२१ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **तुच्छउँ** इत्यत्र प्रस्तुतेन [१०२५] सूत्रेण सि-प्रत्यये परे सति अकारस्य स्थाने उँ इत्यादेशो जातः । इदानीं अम्-प्रत्ययोदाहरणं प्रदर्श्यते । यथा—

भग्नकं दृष्ट्वा निजक-बलं बलं प्रसृतकं परस्य ।
उन्मीलति शशि-रेखा यथा करे करवालः प्रियस्य ॥१॥

भावार्थः—काचिन्नायिका निजसहचरीं प्रति निजपत्युः वीरत्वमुपदर्शयति । हे सखि ! **निजक-बलं**-निजमेव निजकम्, तस्य बलं-सैन्यम्, स्वकीयसैन्यमित्यर्थः । **भग्नकं**-नष्टं **दृष्ट्वा**-समीक्ष्य तथा **परस्य**-रिपोः, शत्रोः **बलं प्रसृतकम्**-प्रत्युन्नतं दृष्ट्वा,स्वापकर्षं शत्रोरुत्कर्षमवलोक्येत्यर्थः,**प्रियस्य**-मम पत्युः **करे**-हस्ते **करवालः**-कृपाणः **एवमुन्मीलति**-शोभते **यथा शशिरेखा**-चन्द्ररेखा दीप्यते । पराहतः कन्दुकः यथा पूर्वस्माद् द्विगुणमुत्प्लवते तथैव युद्धे शत्रुभिराहतोऽपि मे पतिः पूर्वापेक्षया द्विगुणोत्साहेन युध्यते इति भावः ।

भग्नकम् । भग्नक+अम् । ३४९ सू० नकारस्य लोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे,१७७ सू० ककारलोपे,१०२५ सू० अकारस्य सानुस्वारे उकारे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे,१०१५ सू० अमो लोपे, **भग्गउँ** इति भवति । **दृष्ट्वा** । दृशिर् (दृश्) दर्शने । दृश्+क्त्वा । ८५२ सू० दृशः स्थाने देक्ख इत्यादेशे, ११९० सू० क्त्वाप्रत्ययस्य स्थाने इवि इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **देक्खिवि** इति भवति । **निजक-बलम्** । निजक-बल+अम् । १७७ सू० जकारस्य ककारस्य च लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **निअय-बलु** इति भवति । **बलम्** । बल+अम् । पूर्ववदेव **बलु** इति साध्यम् । **प्रसृतकम्** । प्रपूर्वकः सृधातुः प्रसारे-विस्तारे । प्रसृ+क्त-त । इत्यत्र ३५० सू० रेफस्य लोपे, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, अम्-प्रत्यये कृते, ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, १७७ सू० ककारलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे जाते, १०१५ सू० अमो लोपे **पसरिअउँ** इति भवति । **परस्य** । पर+ङस् । १००९ सू० ङसः स्थाने स्सु इत्यादेशे **परस्सु** इति भवति । **उन्मीलति** । उत्पूर्वकः मील्धातुः उन्मीलने-शोभायाम् । उन्मील्+तिव् । ३३२ सू० न्मस्य मकारे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे, ९०३ सू० लकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ९१० सू० अकारस्यागमे, ६२८ सू० तिव्-प्रत्ययस्य स्थाने इच्-इ इत्यादेशे **उम्मिल्लइ** इति भवति । **शशिरेखा** । शशिरेखा+सि । २६० सू० उभयत्राऽपि शकारस्य सकारे, १८७ सू० खकारस्य हकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **ससिरेह** इति भवति । **यथा**—जिवँ,प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया । **करे** । कर+ङि । १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **करि** इति भवति । **करवालः** । करवाल+सि । १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **करवालु** इति भवति । **प्रियस्य** । प्रिय+ङस् । ३५० सू० रेफलोपे, १००९ सू० ङसः स्थाने स्सु इत्यादेशे **पियस्सु** इति भवति । **भग्गउँ, पसरिअउँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

★ अथ नपुंसकलिङ्गीय स्यादिविधि ★

अपभ्रंश-भाषा में नपुंसक-लिङ्ग-सम्बन्धी सि आदि प्रत्ययों के स्थान में जो आदेशादि कार्य होते हैं, अब सूत्रकार उनका निर्देश कर रहे हैं—

१०२४—अपभ्रंशभाषा में, नपुंसकलिङ्ग में विद्यमान नाम-प्रातिपदिक से परे आए **जस्** और **शस्** इन प्रत्ययों के स्थान में **इं** [इँ] यह आदेश होता है। **इं** के स्थान पर **इँ** ऐसा पाठान्तर भी मिलता है। अतः आदेश के दोनों प्रकार यथास्थान ग्रहण किये जा सकते हैं। जैसे—

कमलानि मुक्त्वा अलिकुलानि करिगण्डान् काङ्क्षन्ते।
असुलभमेष्टुं येषां निर्बन्धः ते नाऽपि दूरं गणयन्ति ॥१॥

अर्थात्—अलिकुल (भ्रमर-समूह) कमलों को छोड़कर सुगन्धि के लिए हाथियों के गण्डस्थलों को चाहते हैं। वास्तव में जिनका आग्रह असुलभ-दुर्लभ पदार्थों को प्राप्त करने का होता है, वे दूरी की परवाह नहीं किया करते, किसी पदार्थ को अलभ्य नहीं मानते।

यहां पर **१—कमलानि**=कमलइँ (कमलों को), २—**अलिकुलानि**=अलि-उलइं (भ्रमर-समूह), **३—करिगण्डान्**=करिगण्डाइँ (हाथियों के गण्डस्थलों को) इन शब्दों में **शस्** और **जस्** के स्थान में **इं** तथा **इँ** यह आदेश किया गया है।

१०२५—अपभ्रंशभाषा में नपुंसकलिङ्ग में विद्यमान ककारान्त (जिस के अन्त में ककार हो) नाम—प्रातिपदिक का जो ककार है उसको सि और अम् इन प्रत्ययों के परे रहते 'उं' यह आदेश होता है। **सि-प्रत्यय का उदाहरण**, जैसे—**अन्यद् यद् तुच्छकं तस्याः धन्यायाः**=अन्नु जु तुच्छउँ तहें धणहे (उस नायिका का जो और तुच्छ है) यहां पर—**तुच्छउँ**, इस पद में सिप्रत्यय परे होने पर प्रस्तुत सूत्र से ककार को 'उं' यह आदेश किया गया है। **अम्-प्रत्यय का उदाहरण**—

भग्नकं दृष्ट्वा निजक-बलं बलं प्रसृतकं परस्य।
उन्मीलति शशि-रेखा यथा करे करवालः प्रियस्य ॥१॥

अर्थात्—अपनी सेना को भग्न (हतोत्साह) हुई देखकर तथा शत्रु की सेना को बढ़ी हुई निहार कर मेरे प्रीतम के हाथ में तलवार शशि-रेखा (चन्द्र की किरण) के समान चमक रही है।

यहां पर १—**भग्नकम्**=भग्गउँ (नष्ट हुई को), २—**प्रसृतकम्**=पसरिअउँ (बढ़ी हुई को) इन शब्दों में **अम्-प्रत्यय** परे रहने पर ककार को 'उं' यह आदेश किया गया है।

★ अथ सर्वादिशब्दानां विधिः ★

१०२६—सर्वादेर्ङसेर्हां । ८ । ४ । ३५५ । अपभ्रंशे सर्वादेरकारान्तात् परस्य ङसेर्हां इत्यादेशो भवति । जहां होन्तउ आगदो । तहां होन्तउ आगदो । कहां होन्तउ आगदो ।

१०२७—किमो डिहे वा । ८ । ४ । ३५६ । अपभ्रंशे किमोऽकारान्तात्परस्य ङसेर्डिहे इत्यादेशो वा भवति ।

जइ तहे तुट्टउ नेहडा मइँ सहुँ न वि तिल-तार !।
तं किहे वङ्केहिं लोअणेहिँ जोइज्जउँ सय-वार ॥१॥

१०२८—ङेर्हि । ८ । ४ । ३५७ । अपभ्रंशे सर्वादेरकारान्तात्परस्य ङेः सप्तम्येकवचनस्य हिं इत्यादेशो भवति ।

जहिँ कप्पिज्जइ सरिण सरु छिज्जइ खग्गिण खग्गु ।
तहिँ तेहइ भड-घड-निवहि कन्तु पयासइ मग्गु ॥१॥

एक्कहिं अक्खिहिं सावणु अन्नहिं भद्दवउ,
माहउ महिअल-सत्थरि गण्ड-स्थले सरउ।
अङ्गिहिं गिम्ह सुहच्छी-तिल-वणि मग्गसिरु,
तहें मुद्धहें मुह-पङ्कइ आवासिउ सिसिरु ॥२॥
हिअडा ! फुट्टि तड त्ति करि काल-क्खेवें काइं ?।
देक्खउं हय-विहि कहिं ठवइ पइं विणु दुक्ख-सयाइं ॥३॥

१०२९—यत्तत्किंभ्यो ङसो डासुर्न वा । ८ । ४ । ३५८ । अपभ्रंशे यत्तत्किम् इत्येतेभ्योऽकारान्तेभ्यः परस्य ङसो डासु इत्यादेशो वा भवति।

कन्तु महारउ हलि सहिए ! निच्छइं रूसइ जासु।
अत्थिहिं सत्थिहिं हत्थिहिं वि ठाउ वि फेडइ तासु ॥१॥
जीविउ कासु न वल्लहउं धणु पुणु कासु न इट्ठु।
दोण्णि वि अवसर-निवडिअइं तिणसम गणइ विसिट्ठु ॥२॥

१०३०—स्त्रियां डहे ।८।४।३५९। अपभ्रंशे स्त्रीलिङ्गे वर्तमानेभ्यो यत्तत्किंभ्यः परस्य ङसो डहे इत्यादेशो वा भवति। जहे केरउ। तहे केरउ। कहे केरउ।

१०३१—यत्तदः स्यमोर्ध्रुं त्रं ।८।४।३६०। अपभ्रंशे यत्तदोः स्थाने स्यमोः परयोर्यथासंख्यं ध्रुं, त्रं इत्यादेशौ वा भवतः। प्रङ्गणि चिट्ठदि नाहु ध्रुं त्रं रणि करदि न भ्रन्ति। पक्षे। तं बोल्लिअइ जु निव्वहइ।

१०३२—इदम इमुः क्लीबे । ८ । ४ । ३६१ । अपभ्रंशे नपुंसकलिङ्गे वर्तमानस्येदमः स्यमोः परयोः इमु इत्यादेशो भवति। इमु कुलु तुह तणउं। इमु कुलु देक्खु।

१०३३—एतदः स्त्री-पुं-क्लीबे एह एहो एहु ।८।४।३६२। अपभ्रंशे स्त्रियां, पुंसि, नपुंसके वर्तमानस्यैतदः स्थाने स्यमोः परयोर्यथासंख्यम् एह, एहो, एहु इत्यादेशा भवन्ति।

एह कुमारी, एहो नरु, एहु मणोरह-ठाणु।
एहउं वढ चिन्तन्ताहं पच्छइ होइ विहाणु ॥१॥

१०३४—एइर्जस्-शसोः । ८ । ४ । ३६३ । अपभ्रंशे एतदो जस्-शसोः परयोः एइ इत्यादेशो भवति। एइ ति घोडा एह थलि [३३०.४] एइ पेच्छ।

१०३५—अदस ओइ ।८।४।३६४। अपभ्रंशे अदसः स्थाने जस्-शसोः परयोः ओइ इत्यादेशो भवति।

जइ पुच्छह घर वड्डाइं तो वड्डा घर ओइ।
विहलिअ-जण-अब्भुद्धरणु कन्तु कुडीरइ जोइ ॥१॥

अमूनि वर्तन्ते पृच्छ वा ।

१०३६—इदम आयः । ८ । ४ । ३६५ । अपभ्रंशे इदम्शब्दस्य स्यादौ आय इत्यादेशो भवति ।

आयइँ लोअहो लोअणइँ जाईं सरइ न भन्ति ।
अप्पिए दिट्ठइ मउलिअहिं पिए दिट्ठइ विहसन्ति ॥१॥
सोसउ म सोसउ च्चिअ उअही वडवानलस्स किं तेण ?।
जं जलइ जले जलणो आएण वि किं न पज्जत्तं ॥२॥
आयहो दड्ढ-कलेवरहो जं वाहिउ तं सारु ।
जइ उट्ठब्भइ तो कुहइ अह डज्झइ तो छारु ॥३॥

१०३७—सर्वस्य साहो वा । ८ । ४ । ३६६ । अपभ्रंशे सर्वशब्दस्य साह इत्यादेशो वा भवति ।

साहु वि लोउ तडप्फडइ वड्डत्तणहो तणेण ।
वड्डप्पणु परिपाविअइ हत्थि मोक्कलडेण ॥१॥ पक्षे । सव्वु वि ।

१०३८—किमः काइं-कवणौ वा ।८।४।३६७। अपभ्रंशे किमः स्थाने *काइं [काइँ], कवण इत्यादेशौ वा भवतः ।

जइ न सु आवइ दूइ ! घरु काइँ अहो-मुहु तुज्झु ।
वयणु जु खण्डइ तउ सहिए !, सो पिउ होइ न मज्झु ॥१॥

काइँ न दूरे देक्खइ [३४९,४] ।

फोडेन्ति जे हिअडउँ अप्पणउँ ताहँ पराई कवण घृण ।
रक्खेज्जहु लोअहो ! अप्पणा बालहे जाया विसम थण ॥२॥
सुपुरिस कङ्गुहे अणुहरहिं भण कज्जें कवणेंण ।
जिवँ जिवँ वड्डत्तणु लहहिं तिवँ तिवँ नवहिं सिरेण ॥३॥

पक्षे— जइ ससणेही तो मुइअ अह जीवइ निन्नेह ।
बिहिं वि पयारेंहिं गइअ धण किं गज्जहि खल-मेह !॥४॥

१०३९—युष्मदः सौ तुहुं ।८।४।३६८। अपभ्रंशे युष्मदः सौ परे तुहुं इत्यादेशो भवति ।

भमर ! म रुणझुणि रण्णडइ सा दिसि जोइ म रोइ ।
सा मालइ देसन्तरिअ जसु तुहुँ मरहि विओइ ॥१॥

१०४०—जस्-शसोस्तुम्हे तुम्हइं । ८ । ४ । ३६९ । अपभ्रंशे युष्मदो जसि शसि च

*काइँ इत्यपि पाठान्तरमुपलभ्यते ।

प्रत्येक तुम्हे, तुम्हइं इत्यादेशौ भवतः । तुम्हे, तुम्हइं जाणह । तुम्हे तुम्हइं पेच्छइ । वचनभेदो यथासंख्य-निवृत्यर्थः ।

१०४१—टा-ड्यमा पइं तइं । ८ । ४ । ३७० । अपभ्रंशे युष्मदः टा, ङि, अम् इत्येतैः सह [1]पइं [पइँ], [2]तइं [तइँ] इत्यादेशौ भवतः । टा—

पइँ मुक्काहँ वि वर-तरु फिट्टइ पत्तत्तणं न पत्ताणं ।
तुह पुणु छाया जइ होज्ज कह वि ता तेहिँ पत्तेहिं ॥१॥
महु हिअउँ तइं, ताए तुहुँ, स वि अन्नें विनडिज्जइ ।
पिअ ! काइँ करउँ हउँ,काइँ तुहुँ,मच्छें मच्छु गिलिज्जइ ॥२॥

ङिना— पइँ मइँ बेहिँ वि रण-गयहिं को जय-सिरि तक्केइ ।
केसहिँ लेप्पिणु जम-घरिणि भण सुहु को थक्केइ ? ॥३॥

एवं तइं । अमा— पइँ मेल्लन्तिहे महु मरणु मइँ मेल्लन्तहो तुज्झु ।
सारस ! जसु जो वेग्गला सो वि कृदन्तहो सज्झु ॥४॥ एवं तइं ।

१०४२—भिसा तुम्हेहिं । ८ । ४ । ३७१ । अपभ्रंशे युष्मदो भिसा सह तुम्हेहिं इत्यादेशो भवति ।

तुम्हेहिँ अम्हेहिँ जं किअउं दिट्ठउँ बहुअ-जणेण ।
तं तेवड्डुं समर-भरु निज्जिउ एक्क-खणेण ॥१॥

१०४३—ङसि-ङस्भ्यां तउ तुज्झ तुध्र ।८।४।३७२। अपभ्रंशे युष्मदो ङसि-ङस्-भ्यां सह तउ,तुज्झ,तुध्र इत्येते त्रय आदेशा भवन्ति । तउ होन्तउ आगदो । तुज्झ होन्तउ आगदो । तुध्र होन्तउ आगदो । ङसा—

तउ गुण-संपइ तुज्झ मदि तुध्र अणुत्तर खन्ति ।
जइ उप्पत्ति अन्न जण महि-मंडलि सिक्खन्ति ॥१॥

१०४४—भ्यसाम्भ्यां तुम्हहं । ८ । ४ । ३७३ । अपभ्रंशे युष्मदो भ्यस्, आम् इत्येताभ्याम् सह तुम्हहं इत्यादेशो भवति । तुम्हहं होन्तउ आगदो । तुम्हहं केरउं धणु ।

१०४५—तुम्हासु सुपा । ८ । ४ । ३७४ । अपभ्रंशे युष्मदः सुपा सह तुम्हासु इत्यादेशो भवति । तुम्हासु ठिअं ।

१०४६—सावस्मदो हउं । ८ । ४ । ३७५ । अपभ्रंशे अस्मदः सौ परे हउं इत्यादेशो भवति । तसु हउँ कलि-जुगि दुल्लहहो [३३८.४] ।

१. पइं इत्यपि पाठान्तरं समुपलभ्यते ।
२. तइं इत्यपि पाठान्तरमुपलभ्यते । अतः यथास्थानं प्रयोगानुसारिणी प्रवृत्तिः विधेया ।

१०४७—जस्-शसोरम्हे अम्हइं । ८ । ४ । ३७६ । अपभ्रंशे अस्मदो जसि, शसि च परे प्रत्येकम् अम्हे, अम्हइं इत्यादेशौ भवतः ।

अम्हे थोवा रिउ बहुअ कायर एम्व भणन्ति ।
मुद्धि ! निहालहि गयण-यलु कइ जण जोण्ह करन्ति ॥१॥
अम्बणु लाइवि जे गया पहिअ पराया के वि ।
अवस न सुअहिं सुहच्छिअहिं जिवँ अम्हइं तिवँ ते वि ॥२॥

अम्हे देक्खइ, अम्हइं देक्खइ । वचनभेदो यथासंख्य-निवृत्यर्थः ।

१०४८—टा-ङ्यमा मइं । ८ । ४ । ३७७ । अपभ्रंशे अस्मदः टा, ङि, अम् इत्येतैः सह *मइं [मइँ] इत्यादेशो भवति । टा ।

मइं जाणिउँ पिअ ! विरहिअहं क वि धर होइ विआलि ।
णवर मिअङ्कु वि तिह तवइ जिह दिणयरु खय-गालि ॥१॥

ङिना । पइं मइं बेहिं वि रणगयहिं [३७०,४] अमा । मइँ मेल्लन्तहो तुज्झु [३७०,४] ।

१०४९—अम्हेहिं भिसा । ८ । ४ । ३७८ । अपभ्रंशे अस्मदो भिसा सह अम्हेहिं इत्यादेशो भवति । तुम्हेहिं, अम्हेहिं जं किअउँ [३७१, ४] ।

१०५०—महु-मज्झु ङसि-ङस्भ्याम् ।८।४।३७९। अपभ्रंशे अस्मदो ङसिना, ङसा च सह प्रत्येकं महु, मज्झु इत्यादेशौ भवतः । महु होन्तउ गदो । मज्झु होन्तउ गदो । ङसा ।

महु कन्तहो बे दोसडा हेल्लि ! म झङ्खहि आलु ।
देन्तहो हउं पर उव्वरिअ जुज्झन्तहो करवालु ॥१॥
जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि ! मज्झु पिएण ।
अह भग्गा अम्हहं तणा तो तें मारिअडेण ॥२॥

१०५१—अम्हहं भ्यसाम्भ्याम् ।८।४।३८०। अपभ्रंशे अस्मदो भ्यसा, आमा च सह अम्हहं इत्यादेशो भवति । अम्हहं होन्तउ आगदो । आमा । अह भग्गा अम्हहं तणा [३७९,४] ।

१०५२—सुपा अम्हासु । ८ । ४ । ३८१ । अपभ्रंशे अस्मदः सुपा सह अम्हासु इत्यादेशो भवति । अम्हासु ठिअं ।

★ अथ सर्वादिशब्दानां विधिः ★

सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, किम् इत्यादयः शब्दाः सर्वादयो भवन्ति । अपभ्रंश-भाषायां सर्वादिशब्दैः सम्बन्धितं यद्विधिविधानं भवति, तत्प्रदर्श्यते । यथा—

---

*मइँ इत्यपि पाठान्तरमस्ति, प्रयोगानुसारिणी प्रवृत्तिः विधेया ।

१०२६—**यस्माद् भवन् आगतः।** **यस्माद्**। यद्+ङसि। २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, १०२६ सू० ङसेः स्थाने हां इत्यादेशे **जहां** इति भवति। **भवन्**। भू सत्तायाम्। भू+शतृ। ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, सिप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **होन्तउ** इति भवति। **आगतः**। आगत+सि। १०६७ सू० तकारस्य दकारे, ३७ सू० विसर्गस्य डो (ओ) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **आगदो** इति भवति। **तस्माद् भवन् आगतः।** **तस्माद्**। तद्+ङसि। ११ सू० दकारस्य लोपे, जहां-वदेव **तहां** इति साध्यम्। भवन्=होन्तउ, आगतः=आगदो, इति पूर्ववदेव साध्यम्। **कस्माद् भवन् आगतः**। **कस्माद्**। किम्+ङसि। ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, जहांवत् **कहां** इति साध्यम्। **भवन् आगतः**-होन्तउ आगदो, इत्यपि पूर्ववदेव साध्यम्। **जहां, तहां, कहां** इत्येषु पदेषु प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

१०२७— **यदि तस्याः त्रुटितः स्नेहः मया सह नाऽपि तिलतार !।**
तत् कस्माद् वक्राभ्यां लोचनाभ्यां दृश्ये शतवारम् ?॥१॥

भावार्थः—हे **तिलतार** !-तिलवत् स्निग्धा तारा-कनीनिका यस्य सः, तत्सम्बोधनम्। **यदि तस्याः**-कस्याश्चिन्नायिकायाः **स्नेहः मया सह नाऽपि**-नैव **त्रुटितः**-छिन्नः, **तत्कस्मादहं** त्वया **वक्राभ्यां**-रोषपूर्णाभ्यां, **लोचनाभ्यां शतवारं**-शतानां वाराणां समाहारः शतवारम्, कथं **दृश्ये** ? स्नेहाऽस्तित्वे दृष्टिः वक्रा-रोषपूर्णा न भवितव्येति भावः।

यदि=जइ, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य द्वितीय-श्लोके ज्ञेया। **तस्याः**। तद्+ङस्। ११ सू० दकारलोपे, स्त्रीत्वादाप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०२१ ङसः स्थाने हे इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **तहे** इति भवति। **त्रुटितः**। त्रुट-त्रुट् विच्छेदे-विनाशे। त्रुट्+क्त=त। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ९०१ सू० टकारद्वित्वे, ९१० सू० अकारागमे, १७७ सू० तकारलोपे, सिप्रत्यये, बाहुल्येन ६४५ सूत्रस्याप्रवृत्तौ, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **तुट्टउ** इति भवति। **स्नेहः**। स्नेह+सि। इत्यत्र ३४८ सू० सकारलोपे, ११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, सेर्लोपे **नेहडा** इति भवति। **मया**। अस्मद्+टा। १०४८ सू० टाप्रत्ययेन सह अस्मदः स्थाने मइँ इत्यादेशे **मइँ** इति भवति। **सह**। अव्ययपदमिदम्। १०९० सू० सह इत्यस्य स्थाने सहुं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **सहुँ** इति भवति। **न**। अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। **अपि**। अव्ययपदमिदम्। ४१ सू० अकारस्य लोपे, २३१ सू० पकारस्य वकारे **वि** इति भवति। **तिलतार** !। तिलतार+सि। १०१५ सू० सेर्लोपे **तिलतार** ! इति भवति। **तत्**। तद्+सि। ११ सू० दकारलोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे **तं** इति भवति। **कस्मात्**। किम्+ङसि। ५६० सू० किमः क इत्यादेशे, १०२७ सू० ङसेः स्थाने डिहे [इहे] इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **किहे** इति भवति। **वक्राभ्याम्**। वक्र+भ्याम्। २६ सू० आदिस्वरस्य अनुस्वारागमे, ३५० सू० रेफलोपे, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्ये, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, १००६ सू० अकारस्य स्थाने एकारे, १०८१ सू० एकारस्य उच्चारणस्य लाघवे, १०८२ सू० अनुस्वारस्य उच्चारणलाघवे **वङ्केहिँ** इति भवति। **लोचनाभ्याम्**। लोचन+भ्याम्। १७७ सू० चकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, द्विवचनस्य बहुवचने, वङ्केहिँ-वदेव **लोअणेहिँ** इति भवति। **दृश्ये**। दृशिर्-दृश् दर्शने। दृश्+वय+ए। अपभ्रंशे १०९३ सू० दृशार्थे **प्रौ** इति देश्यधातुः प्रयुज्यते, ६४९ सू० क्यस्य स्थाने इज्ज इत्यादेशे, बाहुल्येन

१० सूत्रस्याप्रवृत्तौ, १०५६ सू० ए इत्यस्य स्थाने उं इत्यादेशे,१०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **जोइज्जउं** इति भवति। **शतवारम्**। शत-वार+अम्। २६० सू० शकारस्य सकारे,१७७ सू० तकारलोपे,१८० सू० यकारश्रुतौ, १०१५ सू० अमो लोपे **सयवार** १००२ सूत्रस्य प्रवृत्तौ तु **सयवारु** इति भवति। **तहिँ**, **किहिँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

१०२८— यस्मिन् कल्प्यते शरेण शरः छिद्यते खड्गेन खड्गः।
तस्मिन् तादृशे भट-घटा-निवहे कान्तः प्रकाशयति मार्गम् ॥१॥

भावार्थः—**यस्मिन्**-युद्धे, **शरेण**-बाणेन, **शरः**-बाणः, **कल्प्यते**-कृत्यते, तथा **खड्गेन**-असिना, **खड्गः**-असिः, **छिद्यते**-भिद्यते, **तादृशे**-भीषण-संग्रामे, **भट-घटा-निवहे**-भटानां-सुभटानां घटा-दलानि तासां निवहः-समुदायः यत्र तस्मिन् भट-घटा-निवहे-भयंकरतमे युद्धे, **कान्तः**-प्राणेश्वरः, मार्गं प्रकाशयति-नेतृत्वं करोति, कर्तव्यं बोधयतीत्यर्थः। अत्र काचिन्नायिका निजकान्तस्य वीरत्वमुखेन श्लाघां करोति।

यस्मिन्। यद्+ङि। इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, १०२८ सू० ङेः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **जहिँ** इति भवति। **कल्प्यते**। कृप्-धातुः छेदने। कल्प्+क्य+ते। ३५० सू० लकारलोपे,३६० सू० पकारद्वित्वे, ६४९ सू० क्यस्य स्थाने इज्ज इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **कप्पिज्जइ** इति भवति। **शरेण**। शर+टा। २६० सू० शकारस्य सकारे, १००० सू० अन्त्याकारस्य इकारे, १०१३ सू० टास्थाने णकारे **सरिण** इति भवति। **शरः**। शर+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सरु** इति भवति। **छिद्यते**। छिदिर्-छिद् द्वैधीकरणे। छिद्+क्य+ते। ११ सू० दकारलोपे, ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, कप्पिज्जइ-वदेव **छिज्जइ** इति साध्यम्। **खड्गेन**। खड्ग+टा। ३४८ सू० डकारलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, १००० सू० अकारस्य इकारे, १०१४ सू० टास्थाने णकारे **खग्गिण** इति भवति। **खड्गः**। खड्ग+सि=खग्ग+सि। इत्यत्र १००२ सूत्रेण अन्त्याकारस्य स्थाने उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **खग्गु** इति भवति। **तस्मिन्**। तद्+ङि। ११ सू० दकारलोपे, १०२८ सू० ङेः स्थाने हिं इत्यादेशे,१०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **तहिँ** इति भवति। **तादृशे**। तादृश+ङि। १०७३ सू० दृश इत्यस्य स्थाने डेह (एह) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये,११०० सू० स्वार्थे अ-प्रत्यये, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **तेहइ** इति भवति। **भट-घटा-निवहे**। भट-घटा-निवह+ङि। १९५ सू० उभयत्रापि टकारस्य डकारे,४ सू० आकारस्य अकारे,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **भड-घड-निवहि** इति भवति। **कान्तः**। कान्त+सि=कन्तु, इत्यस्य प्रक्रिया १०१६ सूत्रे ज्ञेया। **प्रकाशयति**। प्रपूर्वकः काशृ-(काश्)-धातुः दीप्तिकरणे। प्रकाश्+णिच्+तिव्। ३५० सू० रेफस्य लोपे, १७७ सू० ककारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ,२६० सू० शकारस्य सकारे,६३८ सू० णिच अकारे,बाहुल्येन ६४२ सूत्रस्याप्रवृत्तौ, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **पयासइ** इति भवति। **मार्गम्**। मार्ग+अम्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,३५० सू० रेफस्य लोपे,३६० सू० गकारस्य द्वित्वे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० अमो लोपे **मग्गु** इति भवति। **जहिँ**,**तहिँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **हिं** इत्यादेशस्यान्यान्युदाहरणान्यपि प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—

एकस्मिन् अक्ष्णि श्रावणः, अन्यस्मिन् भाद्रपदः।
माधवः [वसन्तः] **महीतल-स्रस्तरे गण्डस्थले शरत्॥**
अङ्गेषु ग्रीष्मः सुखासिका-तिलवने मार्गशिरः।
तस्याः मुग्धायाः मुखपङ्कजे आवासितः शिशिरः ॥२॥

भावार्थः—प्रियविरह-खिन्नायाः कस्याश्चिन्नायिकायाः ऋतूनां तुलनया तदङ्गानि वर्ण्यन्ते वि-दुषा कविना। तस्याः मुग्धायाः ... प्रोषितभर्तृकायाः विरहवेदनयानवरतं रुद-त्याः **एकस्मिन् अक्षिण-नेत्रे श्रावणः,अन्यस्मिन्नेत्रे भाद्रपदः** प्रतीयते। यथा श्रावण-भाद्रपदमासौ वर्षामासौ जलस्राविणौ भवतस्तथैव तस्याः नेत्रेऽपि अश्रु-स्राविणी संजाते। जलस्राविस्वेन नेत्रयुगलं **वर्षर्तु नोपमि-तम्**। विरहजन्य-शोकात् **महीतलस्रस्तरे**-महीतलं तत्र स्रस्तरः-संस्तारकः शय्येति यावत्, तस्य नवीन-पल्लवमयत्वाद् **माधवः** वसन्तः उपकल्पितः। **गण्डस्थले**-कपोलप्रान्ते शरदृतु नोपमिते, शरदृतुः काश-कुसुमादिबाहुल्याद् यथा पाण्डुरूपा जायते तथैव प्रिय-वियोगाद् विरहवत्याः कपोले कान्ति-हीनत्वात् पाण्डुरूपे संजाते,अयमेव हेतुः यत्कपोलौ **शरदृतुना** उपमीयेते। **अङ्गेषु**—शरीरावयवेषु कामजन्यताप-बाहुल्यं वर्तते,अतएवाङ्गानि **ग्रीष्मर्तुना** तुल्यतामावहन्ति, **सुखासिका-तिलवने**, सुखस्य आसिका-अवस्थानं, **तिलानां वनं** तिलवनम्,सुखासिका एव तिलवनं सुखासिका-तिलवनम्,तस्मिन्, **मार्गशिरः**-यथा मार्गशीर्षे तिलवनानामुच्छेदो जायते, तथैवाऽस्याः अपि पति-वियोगात् सुखावस्थानस्योच्छेदः संजातः, इति हेतोः द्वयोः सुखावस्थान—ग्रीष्मयोः सादृश्यमुक्तम्। **मुखपङ्कजे**—मुखमेव पङ्कजं—कमलं, तस्मिन **शिशिरः** आवासितः-स्थितो वर्तते, माघफाल्गुणौ किल शिशिरसंज्ञकौ, तस्मिन्-शिशिरे यथा कमलानां शातनं-म्लानत्वं भवति तथैवाऽस्या अपि **मुग्धायाः** मुखं म्लानं जातम्। म्लानत्वसाम्येन मुखं शिशिरर्तु नोप-मितम्। कृत्स्नस्यापि श्लोकस्याऽयं भावो यन्नायिकायाः कृते प्रियवियोगोऽसह्यतमो जायते।

एकस्मिन्। एक+ङि। ३७० सू० ककारस्य द्वित्वे,१०२८ सू० ङेः स्थाने हिं इत्यादेशे **एक्कहिं** इति भवति। **अक्षिण**। अक्षिन्+ङि। २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-खकारस्य ककारे,११ सू० नकारलोपे,अञ्जल्यादि-गण-पठितत्वात् ३५ सू० स्त्रीलिङ्गत्वे जाते,१०२३ सू० ङेः स्थाने हिं इत्यादेशे **अक्खिहिं** इति भवति। **श्रावणः**। श्रावण+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सावणु** इति भवति। **अन्य-स्मिन्**। अन्यद्+ङि। ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० नकारद्वित्वे, ११ सू० दकारलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण ङेः स्थाने हिं इत्यादेशे **अन्नहिं** इति भवति। **भाद्रपदः**। भाद्रपद+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,३५० सू० रेफस्य लोपे,३६० सू० दकारद्वित्वे,२३१ सू० पकारस्य वकारे, १७७ सू० दकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **भद्दवउ** इति भवति। **माधवः**। माधव+सि। १८७ सू० धकारस्य हकारे, १७७ सू० वकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **माहउ** इति भवति। **म-हीतल-स्रस्तरे**। महीतल-स्रस्तर+ङि। ४ सू० ईकारस्य इकारे,१७७ सू० तकारलोपे, ३५० सू० रेफ-लोपे, ३१६ सू० स्तस्य थकारे,३६० सू० थकारद्वित्वे,३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **महिअल-सत्थरि** इति भवति। **गण्डस्थले**। गण्डस्थल+ङि। ३४८ सू० सकारलोपे, ३६० सू० थकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य एकारे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **गण्ड-त्थलें** इति भवति। **शरत्**। शरत्+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे,१८ सू० तकारस्य अकारे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सिप्रत्ययस्य लोपे **सरउ** इति सिद्धम्। **अङ्गेषु**। अङ्ग+सुप्। १००० सू० अन्त्याकारस्य इकारे, १०१८ सू० सुपः स्थाने हिं इत्यादेशे **अङ्गिहिं** इति भवति। **ग्रीष्मः**। ग्रीष्म+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,३५० सू० रेफलोपे,३४५ सू० ष्मस्य स्थाने म्ह इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे **गिम्ह** इति भवति। **सुखासिका-तिल-वने**। सुखासिका-तिलवन+ङि। अपभ्रंशे १०९३ सू० सुखासिकाऽर्थे **सुहच्छी** इति-शब्दः प्रयुज्यते,२२८ सू० नकारस्य णकारे,१००५ सू०

ङिना सह अकारस्य इकारे **मुहच्छी-सिलवरि** इति भवति। **मार्गशिराः**। मार्गशिरस्+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफलोपे, २६० सू० गकारद्वित्वे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ११ सू० सकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **मग्ग-सिरु** इति भवति। **तस्याः** तद्+ङस्। ११ सू० दकारलोपे, स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)-प्रत्यये, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०२१ सू० ङसः स्थाने हे इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **तहें** इति भवति। **मुग्धायाः**। मुग्धा+ङस्। ३४८ सू० गकारलोपे, ३६० सू० धकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०२१ सू० ङसेः स्थाने हे इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **मुद्धहें** इति भवति। **मुखपङ्कजे**। मुखपङ्कज+ङि। १८७ सू० खकारस्य हकारे, १७७ सू० जकारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **मुहपङ्कइ** इति भवति। **आवासितः**। आवासित+सि। १७७ सू० तकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **आवासिउ** इति भवति। **शिशिरः**। शिशिर+सि। २६० सू० उभयत्राऽपि शकारस्य सकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सिसिरु** इति भवति। **एक्कहिं, अन्नहिं** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

हिअय! स्फुट तडत्ति [शब्दम्] कृत्वा कालक्षेपेण किम्?।
पश्यामि हतविधिः कस्मिन् स्थापयति त्वया विना दुःखशतानि॥३॥

भावार्थः—कस्याश्चिद् दुःखाकुलाया नायिकायाः उक्तिरियम्। हे **हृदय**! **तडित्** इति शब्दं **कृत्वा** शीघ्रं **स्फुट्**-भिद्यताम्, **कालक्षेपेण**-कालस्य क्षेपः-विलम्बः, तेन **किम्**? त्वया किमर्थं विलम्बो विधीयते? **पश्यामि हतविधिः**-हतश्चासौ विधिः-भाग्यम्, दौर्भाग्यमित्यर्थः। **त्वया** हृदयेन **विना-दुःखशतानि**-दुःखानां शतानि, **कस्मिन्** प्रदेशे **स्थापयति**। "**वर्तमानसामीप्ये वर्तमानाद्वा**" ति सिद्धान्तेन स्थापयिष्यतीति भावः। अयमभिप्रायः-दुःखानां स्थानं हृदयम्। हृदयनाशे तदाश्रितानां दुःखानामपि नाशोऽवश्यंभावी।

हृदय!। हृदय+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० दकारलोपे, २६९ सू० सस्वरयकारलोपे, ११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **हिअडा**! इति भवति। **स्फुट**। स्फुट-स्फुट् भेदने। स्फुट्+हि। ३४८ सू० सकारलोपे, ९०१ सू० टकारद्वित्वे, १०५८ सू० हि इत्यस्य इकारे **फुट्टि** इति भवति। **तडित्**। अव्ययपदमिदम्। १००० सू० इकारस्य अकारे, ११ सू० तकारलोपे **तड** इति भवति। **इति**=त्ति, प्रक्रिया ४२ सूत्रे ज्ञेया। **कृत्वा**। डुकृञ्-कृ करणे। कृ+क्त्वा। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, १११० सू० क्त्वः स्थाने इकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **करि** इति भवति। **काल-क्षेपेण**। कालक्षेप+टा। २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, १००४ सू० अकारस्य एकारे, १०१३ सू० टास्थाने अनुस्वारे **कालक्खेवें** इति भवति। **किम्**। किम्+सि। १०३८ सू० किमः स्थाने काइं इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे **काइं** इति भवति। **पश्यामि**। दृशिर्-दृश् दर्शने। दृश्+मिव्। ८५२ सू० दृशः स्थाने देक्ख इत्यादेशे, १०५६ सू० मिवः स्थाने उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **देक्खउँ** इति भवति। **हतविधिः**। हतविधि+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १८७ सू० धकारस्य हकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **हयविहि** इति भवति। **कस्मिन्**। किम्+ङि। ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण ङेः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **कहिँ** इति भवति। **स्थापयति**। ष्ठा-स्था गतिनिवृत्तौ। स्था+णिग्+तिव्। ६८७ सू० स्था-धातोः स्थाने ठा इत्यादेशे, ६३८ सू० णिगः स्थाने आव इत्यादेशे, ५ सू० दीर्घसन्धौ, ९०९ सू० आकारस्य अकारे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इत्यादेशे **ठवइ** इति भवति। **त्वया**। **युष्मद्**

+टा। १०४१ सू० टाप्रत्ययेन सह युष्मदः स्थाने पइँ इत्यादेशे पइँ इति भवति। विना। अव्ययपद-मिदम्। २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०९७ सू० स्वार्थे डु-(उ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अ-ज्झीने परेण संयोज्ये विणु इति भवति। दुःख-शतानि। दुःख-शत+जस्। ३४८ सू० जिह्वामूलीयस्य लोपे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे दुक्खसयाइं इति भवति। कहिं इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

१०२६— **कान्तोऽस्मदीयः हला सखिके ! निश्चयेन रुष्यति यस्य।**
अस्त्रैः, शस्त्रैः, हस्तैरपि स्थानमपि भ्रंशयति तस्य ॥१॥

भावार्थः—हला-नारीणां कृते सम्बोधनार्थकमव्ययपदमिदम्, **सखिके !**, हे सखि ! इत्यर्थः, **अ-स्मदीयः कान्तः**-नायकः,**निश्चयेन यस्योपरि रुष्यति**-रुष्टो भवति तदाऽसौ,तस्य-शत्रोः **अस्त्रैः**-क्षेप्तुं योग्यैः बाणादिभिः, अत्थिहिं इत्यस्य अर्थैः इत्यपि छाया भवति, अतः **अर्थैः**-द्रव्यदानैः, **शस्त्रैः**-क्षेप्तुमयोग्यैः करवालादिभिः, **हस्तैश्चापि स्थानमपि भ्रंशयति**, शत्रोः मूलोच्छेदं करोतीति भावः।

कान्तः। कान्त+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे कन्तु इति भवति। **अस्मदीयः**। अस्मदीय+सि। अस्मदीयार्थे १०९३ सू० महारअ-शब्दः प्रयुज्यते,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे महारउ इति भवति। **हला**। अव्ययपदमिदम्। १००० सू० आकारस्य इकारे हलि इति भवति। **सखिके !**। सखिका+सि। इत्यत्र १८७ सू० खकारस्य हकारे,१७७ सू० ककारलोपे,५३० सू० आकारस्य एकारे,सेर्लोपे सहिए ! इति भवति। **निश्चयेन**। नि-श्चय+टा। २९२ सू० श्चस्य स्थाने छकारे,३६० सू० छकारस्य द्वित्वे,३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, १७७ सू० यकारलोपे, १००० सू० अकारस्य इकारे, १०१४ सू० टास्थाने अनुस्वारे निच्छइं इति भ-वति। **रुष्यति**। रुष-रुष् रोषे। रुष्+तिव्। ९०७ सू० उकारस्य ऊकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ९१० सू० अकारागमे, ३२८ सू० तिव इचादेशे रूसइ इति भवति। **यस्य**। यद्+ङस्। २४५ सू० य-कारस्य जकारे, १०२९ सू० ङसः स्थाने डासु [आसु] इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे जासु इति भवति। **अस्त्रैः**। अस्त्र+भिस्। ३५० सू० रेफलोपे, ३१६ सू० स्तस्य थकारे, ३६० सू० थकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, १००० सू० अन्त्याकारस्य इकारे,१०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे अत्थिहिं अर्थैः इतिच्छायायान्तु अर्थ+भिस् इत्यत्र रेफलोपे,थकारद्वित्वे, पूर्वथकारस्य तकारे, अत्थिहिं-वदेव अत्थिहिं इति साध्यम्। **शस्त्रैः**। शस्त्र+भिस्। २६० सू० शकारस्य सकारे,रेफस्य लोपे, स्तस्य थकारे, अत्थिहिं-वदेव सत्थिहिं इति साध्यम्। **हस्तैः**। हस्त+भिस्। ३१६ सू० स्तस्य थकारे, पूर्व-वदेव हत्थिहिं इति साध्यम्। १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे हत्थिहिं इति भवति। **अपि**—वि,प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया। **स्थानम्**। ष्ठा-स्था गतिनिवृत्तौ। स्था+ल्युट्—अन+सि। ६८७ सू० स्थाधातोः स्थाने ठा इत्यादेशे,५ सू० दीर्घ-सन्धौ ठान+सि इति जाते, बाहुल्येन नकारस्य लोपे ठाअ+सि इति स्थिते, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे ठाउ इति भवति। **भ्रंशयति**। भ्रंशु-भ्रंश् विनाशे। भ्रंश्+णिग्+तिव्। ८४८ सू० भ्रंश्धातोः स्थाने फिड इत्यादेशे, १००० सू० इकारस्य एकारे, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० तिव इचादेशे फेडइ इति भवति। **तस्य**। तद्+ङस्। १०२९ सू० ङसः स्थाने डासु (आसु) इत्यादेशे,डिति परेऽन्त्यस्वरादे-र्लोपे तासु इति भवति। जासु, तासु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

जीवितं कस्य न वल्लभकं, धनं पुनः कस्य नेष्टम् ? ।
द्वेऽपि अवसर-निपतिते तृणसमे गणयति विशिष्टः ॥२॥

भावार्थः—**जीवितं**-जीवनं **कस्य न वल्लभकं**-प्रियं भवति ? अपितु सर्वेषां भवति । **धनम्**—अर्थः **कस्य न इष्टम्** ? अभिलषितम् ? प्रत्युत धनं सकलानामेव पुरुषाणां प्रियं भवति । किन्तु **विशिष्टः**—गुणज्ञः पुरुषः **द्वे अपि**—जीवितधनेऽपि, कीदृशे द्वे **अवसरनिपतिते**—अवसरस्य निपातः, अवसरनिपातः, तेन युक्ते अवसरनिपतिते—सम्प्राप्तावसरे ते धनजीवने **तृणसमे**—तृणेन समे—तुल्ये **गणयति**—मन्यते । उत्तमप्रकृतिको जनः अवसरे सम्प्राप्ते [illegible] परार्थं त्यजतीति भावः ।

जीवितम् । जीवित+सि । १७७ सू० तकारस्य लोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जीविउ** इति भवति । **कस्य** । किम्+ङस् । ५६० सू० किमः क इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण ङसः स्थाने डासु (आसु) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **कासु** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेव अपभ्रंशे प्रयुज्यते । **वल्लभकम्** । वल्लभक+अम् । १८७ सू० भकारस्य हकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे, १०१५ सू० सेर्लोपे **वल्लहउँ** इति सिद्धम् । **धनम्** । धन+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **धणु** इति भवति । **पुनर्**=पुणु, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **इष्टम्** । इष्ट+सि । ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **इट्ठु** इति भवति । **द्वे** । द्वि+औ । ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ६०९ सू० द्वेः स्थाने जसा सह दोण्णि इत्यादेशे **दोण्णि** इति भवति । **अपि**=वि, प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया । **अवसरनिपतिते** । अवसरनिपतित+औ । २३१ सू० पकारस्य वकारे, ८९० सू० तकारस्य डकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे **अवसर—निवडिअइं** इति भवति । **तृणसमे** । तृणसम+औ । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१५ सू० जसो लोपे **तिणसम** इति भवति । **गणयति** । गण-गण् गणनायाम् । गण्+णिग्+तिव् । ६३८ सू० णिग अकारे, प्रयोगदर्शनात् ६४२ सू० अकारस्य दीर्घाभावे, ६२८ सू० तिव इत्यादेशे **गणइ** इति भवति । **विशिष्टः** । विशिष्ट+सि । २६० सू० शकारस्य सकारे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **विसिट्ठु** इति भवति । **कासु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०३०—यस्याः । यद्+ङस् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)-प्रत्यये, १०३० सू० ङसः स्थाने डहे [अहे] इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **जहे** इति भवति । **सम्बन्धी** । सम्बन्धिन्+सि । १०९३ सू० सम्बन्धिन् इत्यस्य केर इत्यादेशे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **केरउ** इति भवति । **तस्याः** । तद्+ङस् । ११ सू० दकारलोपे, जहे-वत् **तहे** इति साध्यम् । **कस्याः** । किम्+ङस् । प्रस्तुतसूत्रेण ङस्प्रत्ययस्य डहे [अहे] इत्यादेशे, तहे-वदेव **कहे** इति भवति । **जहे, तहे, कहे** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०३१— "प्राङ्गणे तिष्ठति नाथो यः स रणे करोति न भ्रान्तिम्"

भावार्थः—काचिन्नारी स्वप्राणनाथं श्लाघते **यत्प्राङ्गणे** गृहाङ्गणे **यो नाथः तिष्ठति**-मदीयः यो नाथः, यदि स प्राङ्गणे तिष्ठति-अवस्थितो वर्तते तदाऽसौ **रणे**-युद्धविषये **भ्रान्तिं न करोति**, भ्रान्तिमान्नास्ति, अपितु निश्चयवानस्ति । युद्धार्थं सदाऽसौ सन्नद्धोऽवतिष्ठत इति भावः ।

प्राङ्गणे। प्राङ्गण+ङि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **प्रङ्गणि** इति भवति। अत्र ३५० सूत्रेण रेफलोपप्राप्तिरासीत् किन्तु १०६९ सूत्रेण सा वैकल्पिका विहिताऽतएवाऽत्र तस्य प्रवृत्तिर्न जाता। **तिष्ठति**। ष्ठा-स्था गतिनिवृत्तौ। स्था+तिव्। ६८७ सू० स्थाधातोः स्थाने चिट्ठ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इच् इत्यादेशे, ९४५ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **चिट्ठदि** इति भवति। **नाथः**। नाथ+सि। १८७ सू० थकारस्य हकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **नाहु** इति भवति। **यः**। यद्+सि। १०३१ सू० यद् इत्यस्य ध्रुं इत्यादेशे, सेर्लोपे **ध्रुं** इति भवति। **सः**। तद्+सि। १०३१ सू० तद् इत्यस्य त्रं इत्यादेशे, सेर्लोपे **त्रं** इति भवति। **रणे**। रण+ङि। १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **रणि** इति भवति। **करोति**। डुकृञ्-कृ करणे। कृ+तिव्। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इच् इत्यादेशे, ९४५ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **करदि** इति भवति। **न**। अव्ययपदमिदं संस्कृत-सममेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। **भ्रान्तिम्**। भ्रान्ति+अम्। ३५० सू० रेफस्य लोपप्राप्तौ, १०६९ सूत्रस्य वैकल्पिकत्वात्तस्याऽभावे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०१५ सू० अमो लोपे **भ्रन्ति** इति भवति। ध्रुं, त्रं इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **पक्षे**। प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावपक्ष इत्यर्थः। **तत् कथ्यते यद् निर्वहति**। अयं भावः—अनेन पुरुषेण तदेव **कथ्यते**-प्रति-ज्ञायते, **यदयं निर्वहति**—प्रतिपालयति। **तद्**। तद्+सि। २४ सूत्रे "**बहुलाधिकाराद् अन्यस्याऽपि व्यञ्जनस्य मकारः**" इति पाठाद् दकारस्य मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **तं** इति भवति। **कथ्यते**। कथ-कथ् कथने। कथ्+क्य+ते। ६७३ सू० कथ्धातोः स्थाने बोल्ल इत्यादेशे, ६४९ सू० क्यस्य ईअ इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००० सू० ईकारस्य इकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **बोल्लिअइ** इति भवति। **यद्**। यद्+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जु** इति भवति। **निर्वहति**। निर्-पूर्वकः वह-(वह्)-धातुः निर्वाहे। निर्वह्+तिव्। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० वकार-द्वित्वे, ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **निव्वहइ** इति भवति। प्रस्तुतसूत्रस्य वैकल्पिकत्वाद् **तद्**-तं, **यद्**-जु इत्यत्र प्रवृत्तिर्न जाता।

१०३२—इदम्। इदम्+सि। १०३२ सू० इदमः स्थाने इमु इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे **इमु** इति भवति। **कुलम्**। कुल+सि। १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **कुलु** इति भवति। **तव**। युष्मद्+ङस्=तुह, प्रक्रिया ५८८ सूत्रे ज्ञेया। **सम्बन्धी**। सम्बन्धिन्+सि। १०९३ सू० सम्बन्धिन् इत्यस्य तण इत्यादेशे, ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, १७७ सू० ककारलोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे **तणउं** इति भवति। **इदं कुलं**=इमु कुलु इति पूर्ववदेव साध्यम्। **पश्य**=देक्खु, प्रक्रिया १०१६ सूत्रे ज्ञेया। **इदम्**-इमु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

१०३३— एषा कुमारी, एष नरः, एतद् मनोरथ-स्थानम्।
एतद् मूढानां चिन्तयतां पश्चाद् भवति विभातम्॥१॥

भावार्थः—**एषा**-समीपस्था शय्यासीनेति यावत्। **कुमारी**-कन्या विद्यते, **एषो** हि, **नरो** वर्तते, **एतद् मनोरथस्थानम्**-मनोरथानामभिलाषाणां स्थानम्-केन्द्रम्। **एतद् चिन्तयतां**-विचारयतामेव **मूढानाम्**-मूर्खपुरुषाणां **विभातम्**-प्रभातं भवतीति भावः।

एषा। एतद्+सि। १०३३ सू० एतदः स्थाने एह इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे **एह** इति भवति। **कुमारी**। कुमारी+सि। १०१५ सू० सेर्लोपे **कुमारी** इति भवति। **एषः**। एतद्+सि। १०३३

सू० एतदः स्थाने एहो इत्यादेशे, सेर्लोपे **एहो** इति भवति । **नरः** । नर+सि । १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे नरु इति भवति । **एतद्** । एतद्+सि । १०३३ सू० एतदः स्थाने एहु इत्यादेशे,सेर्लोपे **एहु** इति भवति । **मनोरथ-स्थानम्** । मनोरथस्थान+सि । २२८ सू० प्रथम-नकारस्य णकारे, १८७ सू० थकारस्य हकारे, [ष्ठा-स्था गतिनिवृत्तौ । ष्ठा+ल्युट्-अन] ६८७ सू० ष्ठा-धातोः स्थाने ठा इत्यादेशे, ५ सू० दीर्घ सन्धौ,२२८ सू० नकारस्य णकारे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सेर्लोपे **मणोरह-ठाणु** इति भवति । **एतद्** । एतद्+अम् । १०३३ सू० एतदः स्थाने एहु इत्यादेशे, १००० सू० उकारस्य अकारे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे, १०१५ सू० अमो लोपे **एहउँ** इति भवति । **मूढानाम्** । मूढ+आम् । १०९३ सू० मूढस्य वढ इत्यादेशे, १०१६ सू० आमो लोपे **वढ** इति भवति । **चिन्तयताम्** । चिती चिन्तायाम् । संस्कृतनियमेन चिन्त्+शतृ इति जाते, ९१० सू० अकारागमे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, आम्-प्रत्यये,१००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे **चिन्तन्ताहं** इति भवति । **पश्चात्** । अव्ययपदमिदम् । १०९१ सू० पश्चाद् इत्यस्य पच्छइ इत्यादेशे **पच्छइ** इति भवति । **भवति** । भू सत्तायाम् । भू+तिव्= **होइ**,प्रक्रिया ७३१ सूत्रे ज्ञेया । **विभातम्** । विभात+सि । अपभ्रंशे १०९३ सू० विभातार्थे विहाण-शब्दः प्रयुज्यते, १००२ सू० आकारस्य उकारे, १०१५ सेर्लोपे **विहाणु** इति भवति । **एह, एहो, एहु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०३४—एते तेऽश्वाः, एषा स्थली=एइ ति घोडा, एह थलि, एतेषां पदानां प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया । **एइ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । साधना त्वित्थम् । **एते** । एतद्+जस् । प्रस्तुतसूत्रेण एतदः स्थाने एइ इत्यादेशे, १०१५ सू० जसो लोपे **एइ** इति भवति । **एतान्** । एतद्+शस् । प्रस्तुतसूत्रेण एतदः स्थाने एइ इत्यादेशे, १०१५ सू० शसो लोपे **एइ** इति भवति । **पश्य** । दृशिर्-दृश् दर्शने । दृश्+हि । ८५२ सू० दृशधातोः स्थाने पेच्छ इत्यादेशे, ६६२ सू० हि इत्यस्य सु इत्यादेशे, ६६४ सू० सोर्लुकि **पेच्छ** इति भवति । **एइ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०३५— **यदि पृच्छथ गृहाणि बृहन्ति ततो बृहन्ति गृहाण्यमूनि ।**
विह्वलित-जनाभ्युद्धरणं कान्तं कुटीरके पश्य ॥१॥

भावार्थः—कामिन्नायिका कञ्चित् पथिकं प्रत्याह-**यदि यूयं बृहन्ति**-महान्ति **गृहाणि पृच्छथ, ततो**-तदा तानि **गृहाणि अमूनि** प्रत्यक्षोपलभ्यमानानि वर्तन्ते । यदि त्वं दानादीनामभिलाषी तदा तु **कुटीरके** सम्मुखस्थितायां कुट्यां **विह्वलित-जनाभ्युद्धरणम्**-विह्वलिताश्च ते जनाः तेषां,व्याकुल-जनानाम्, अभ्युद्धरणम्-समुद्धारकं मदीयं **कान्तं**-प्राणनाथं **पश्येति** भावः ।

यदि । अव्ययपदमिदम् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, १७७ सू० दकारलोपे **जइ** इति भवति । **पृच्छथ** । प्रच्छ्-धातुः ज्ञीप्सायाम्-प्रश्ने । प्रच्छ्+थ । ७६८ सू० प्रच्छ्धातोः स्थाने पुच्छ इत्यादेशे, ६३२ सू० थकारस्य हच् (ह) इत्यादेशे **पुच्छह** इति भवति । **गृहाणि** । गृह+शस् । ४१५ सू० गृहस्य घर इत्यादेशे,१०१५ सू० शसो लोपे **घर** इति भवति । **बृहन्ति** । बृहत्+जस् । १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, बाहुल्येन २३७ सू० बकारस्य वकारे, ४४५ सू० हकारस्य ड्ढ इत्यादेशे, ११ सू० तकारलोपे,१००१ सू० अन्त्याकारस्य आकारे,१०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे **वड्ढाइं** इति भवति । **ततः** । अव्ययपदमिदम् । १०८८ सू० ततः इत्यस्य तो इत्यादेशे **तो** इति भवति । **बृहन्ति** । बृहत्+जस् । पूर्ववदेव वड्ढा+जस् । इति जाते, १०१५ सू० जसो लोपे **वड्ढा** इति भवति । **गृहाणि** । गृह+जस् । गृहस्य घर इत्यादेशे, १०१५ सू० जसो लोपे **घर** इति भवति । **अमूनि** । अदस्+जस् । १०३५ सू० अदसः स्थाने ओइ इत्यादेशे,

१०१५ सू० जसो लोपे **ओइ** इति भवति। **विह्वलित-अनाम्युद्धरणम्** । विह्वलित-अनाम्युद्धरण+अम् । ३५० सू० वकारलोपे, १७७ सू० तकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० भकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **विहलिअ-जणब्भुद्धरणु** इति भवति। **कान्तम्** । कान्त+अम् । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, अमो लोपे **कन्तु** इति भवति। **कुटीरके** । कुटीरक+ङि। १९५ सू० टकारस्य डकारे, १७७ सू० ककारलोपे,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **कुडीरइ** इति भवति। **पश्य** । दृशिर्-दृश् दर्शने। दृश्+हि । अपभ्रंशे १०६६ सू० दृशार्थे जो इति प्रयुज्यते, १०५८ सू० हेः स्थाने इकारे **जोइ** इति भवति। अमूनि=**आइं** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

१०३६— **इमानि लोकस्य लोचनानि जातिं स्मरन्ति न भ्रान्तिः ।**
अप्रिये दृष्टे मुकुलितानि प्रिये दृष्टे विहसन्ति ॥१॥

भावार्थः—**लोकस्य इमानि लोचनानि**-नेत्राणि, **जातिम्**-स्वसमानजातीयं कमल-पुष्पं **स्मरन्ति**-स्मृतिपथमानयन्ति, नयनयोः कमलतुल्यस्वभावत्वात्, इति **न भ्रान्तिः**—न संशयः। यतः **अप्रिये**, न प्रियः, अप्रियः-अनिष्टः तस्मिन् अप्रिये **दृष्टे** नेत्राणि **मुकुलितानि**-संकोचमापद्यन्ते, **प्रिये** च **दृष्टे विहसन्ति**-विकसन्ति। **अयं भावः**—लोचनानि कमलनिभानि भवन्ति। यथा सूर्य-विकासि-कमलानि निजं प्रियं भास्करं विलोक्य विकसन्ति, अप्रियं शशधरं निरीक्ष्य संकोचतामुपयान्ति, तथैव लोचनान्यपि स्नेहिनं दृष्ट्वा विकासतां यान्ति, अप्रियमुद्वीक्ष्य मुकुलितानि जायन्ते।

अमूनि । इदम्+जस् । १०३६ सू० इदमः स्थाने आय इत्यादेशे,१०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे **आयइं** इति भवति। **लोकस्य** । लोक+ङस् । इत्यत्र १७७ सू० ककारस्य लोपे,१००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **लोअहों** इति भवति। **लोचनानि** । लोचन+जस् । १७७ सू० चकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे **लोअणइं** इति भवति। **जातिम्** । जाति+अम् । १७७ सू० तकारलोपे,१००१ सू० इकारस्य ईकारे,१०१५ सू० अमो लोपे **जाई** इति भवति। **स्मरन्ति** । स्मृ स्मरणे। स्मृ+अन्ति । ३४९ सू० मकारस्य लोपे,९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे,१०५३ सू० अन्ति इत्यस्य हिं इत्यादेशे, बाहुल्येन हकारस्य लोपे जाते **सरइं** इति भवति। **न** । अव्ययपदमिदमपभ्रंशे संस्कृतवदेव प्रयुज्यते। **भ्रान्तिः** । भ्रान्ति+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०१५ सू० सेर्लोपे **भन्ति** इति भवति। **अप्रिये** । अप्रिय+ङि । ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वे, १७७ सू० यकारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य एकारे **अप्पिए** इति भवति। **दृष्टे** । दृष्ट+ङि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य स्थाने टकारे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **दिट्ठइ** इति भवति। **मुकुलितानि** । मुकुलितपदस्य आचारार्थक-क्विबन्तात् धातुसंज्ञायां अन्ति-प्रत्यये मुकुलित+अन्ति इति स्थिते, १७७ सू० ककारस्य तकारस्य च लोपे, १०५३ सू० अन्तेः स्थाने हिं इत्यादेशे **मउलिअहिं** इति भवति। **प्रिये** । प्रिय+ङि । ३५० सू० रेफस्य लोपे,१७७ सू० यकारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य एकारे **पिए** इति भवति। **विहसन्ति** । विपूर्वकः हस्-धातुः विहासे-विकासे। विहस्+अन्ति । ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **विहसन्ति** इति भवति। **आयइं** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

शुष्यतु मा शुष्यतु वोदधिः, वडवानलस्य किन्तेन ? ।
यद् ज्वलति जले ज्वलनः एतेनाऽपि किन्न पर्याप्तम् ? ॥२॥

भावार्थः—कविः वडवानलस्य-समुद्रवन्हेः सामर्थ्यं स्तौति । **उदधिः**-समुद्रः वन्हिना **शुष्यतु**-जल-शून्यो भवतु, अथवा **मा शुष्यतु, तेन** वडवानलस्य **किम्** ? समुद्रवन्हेः का नाम हानिः? न काऽपीति भावः । **वा** इति निश्चितम्, परन्तु **जले ज्वलनो**-वन्हिः **यत्** प्रज्वलति-ज्वलत्येव, एतावताऽपि **किं न पर्याप्तम्** ? जले वन्हेरभावो जायते, इति सर्वेऽवगच्छन्ति, तथाऽपि तस्य जलराशौ प्रज्वलनं नहि किमपि साधारणं कार्यं वर्तते, वन्हेरियमसाधारणताऽवसेयेति भावः ।

शुष्यतु । शुष-शुष् शोषणे । शुष्+तुव् । इत्यत्र २६० सू० शकारस्य षकारस्य च सकारे, १००० सू० उकारस्य ओकारे, ९१० सू० अकारागमे, ६६२ सू० तुवः स्थाने दु इत्यादेशे, १७७ सू० दकारस्य लोपे **सोसउ** इति भवति । **मा** । अव्ययपदमिदम् । १००० सू० आकारस्य अकारे **म** इति भवति । **वा** । अव्ययपदमिदम् । अव्ययशब्दाः निपाताः भवन्ति, तथा "**निपाताः धातवश्च अनेकार्थकाः भवन्ति**" इति न्यायेन वा-पदमप्यत्रावधारणार्थकं बोध्यम् । ततः ४५५ सू० अवधारणार्थे विअ इत्यस्य प्रयोगे, ३७० सू० वकारद्वित्वे **व्विअ** इति भवति । **उदधिः** । उदधि+सि । १७७ सू० दकारलोपे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, १००१ सू० इकारस्य ईकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **उअही** इति भवति । **वडवानलस्य** । वडवानल+ङस् । ४९९ सू० ङसः स्थाने स्स इत्यादेशे **वडवानलस्स** इति भवति । **किम्** । किम्+सि । ५६९ सू० सिना सह किमः स्थाने किं इत्यादेशे **किं** इति भवति । **तेन** । तद्+टा । इत्यत्र ११ सू० दकारलोपे, १००४ सू० अकारस्य एकारे, १०१३ सू० टा-प्रत्ययस्य णकारे **तेण** इति भवति । **यद्** । यद्+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारे, २४ सूत्रे "**बहुलाधिकारादन्यस्याऽपि व्यञ्जनस्य मकारः**" इति पाठाद् दकारस्य मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे १०१५ सू० सेर्लोपे **जं** इति सिद्धम् । **ज्वलति** । ज्वल-[ज्वल्]-धातुः ज्वलने । ज्वल्+तिव् । ३५० सू० वकारलोपे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **जलइ** इति भवति । **जले** । जल+ङि । १००५ सू० ङिना सह अकारस्य एकारे **जले** इति भवति । **ज्वलनः** । ज्वलन+सि । ३५० सू० वकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, सेर्लोपे **जलणो** इति भवति । **अनेन** । इदम्+टा । १०३६ सू० इदमः स्थाने आय इत्यादेशे, १७७ सू० यकारलोपे, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे, १००४ सू० अकारस्य एकारे **आएण** इति भवति । **अपि**=वि, प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया । **न** । अव्ययपदमिदमपभ्रंशे संस्कृतवदेव प्रयुज्यते । **पर्याप्तम्** । पर्याप्त+सि । २४५ सू० यस्य जकारे, ३६० सू० जकारद्वित्वे, ३४८ सू० पकारलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, ८४ सू० आकारस्य अकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **पज्जत्तं** इति भवति । आएण इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

अस्य दग्धकलेवरस्य यद् वाहितं तत्सारम् ।

यदि आच्छाद्यते तदा कुथ्यति अथ दह्यते तदा क्षारः ॥३॥

भावार्थः—**अस्य दग्धकलेवरस्य**, दग्धं-निकृष्टं च तत् कलेवरम्-शरीरं, निकृष्टदेहमित्यर्थः, तस्य-तस्मादिति यावत् **यद् वाहितं**—निष्कासितं, सदनुष्ठानादिकं कृतमिति भावः ? **तदेव सारम्**—तत्त्वम् । मरणान्तरं तु **यदीदमाच्छाद्यते**—पटादिना आव्रियते **तदा कुथ्यति**—विकृतिमापद्यते, दौर्गन्ध्यं भजते । अथ यद्येतस्य **दह्यते**-अग्निसंस्कारः क्रियते **तदा** तच्छरीरं **क्षारः**—भस्मसाद् भवति । अतोऽमुना नश्वरेण कायेन यद्धर्मादिकमाचरितन्तदेव साफल्यं शरीरस्येति भावः ।

अस्य । इदम्+ङस् । इत्यत्र १०३६ सू० इदमः स्थाने आय इत्यादेशे, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **आयहो॑** इति सिद्धम् । **दग्ध-कलेवरस्य** । दग्धकलेवर+ङस् । २११ सू० ग्धस्य ढकारे, ३६० सू० ढकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वढकारस्य डकारे, १००९ सू० ङसः

स्थाने हो इत्यादेशे **वड्ड-कलेवरहो** इति भवति। **जं**। यद्+सि=जं प्रक्रियाऽस्यैव सूत्रस्य द्वितीय-श्लोके उपन्यस्ता। **बाहितम्**। बाहित+सि। १७७ सू० तकारलोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **बाहिउ** इति भवति। **तद्**। तद्+सि। २४ सूत्रेण (बहुलाधिकाराद्) दकारस्य मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **तं** इति भवति। **सारम्**। सार+सि। १००२ सू० अकारस्य उकारे १०१५ सू० सेर्लोपे **सारु** इति भवति। **यदि**=जइ, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य द्वितीय-श्लोके ज्ञेया। **आच्छा-द्यते**। आङ्पूर्वकः छदि-(छद्)-धातुः आवरणे। आ-छद्+क्य+ते। अपभ्रंशे १०६६ सू० 'आ-छद्+क्य' इत्यस्य उट्टुम्भ इतिदेश्यधातुः प्रयुज्यते,ततः ९२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **उट्टुम्भइ** इति भवति। **तदा**। अव्ययपदमिदम्। १०८८ सू० तदा इत्यस्य तो इत्यादेशे **तो** इति भवति। **कुथ्यति**। कुथ-कुथ् दुर्गन्धे। कुथ्+तिव्। १८७ सू० थकारस्य हकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ९२८ सू० तिव इचादेशे **कुहइ** इति भवति। **अथ**। अव्ययपदमिदम्। १८७ सू० थकारस्य हकारे **अह** इति भवति। **दह्यते**। दह-दह् दाहे। दह्+क्य+ते। २१८ सू० दकारस्य डकारे, ९१७ सू० हकारस्य ज्झ इत्यादेशे क्यस्य च लोपे, ९२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **डज्झइ** इति भवति। **क्षारः**। क्षार+सि। २८८ सू० क्षस्य छकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **छारु** इति भवति। **छारहो** इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

१०३७— **सर्वोऽपि लोकः प्रस्पन्दते बृहत्त्वस्य कृते।**
बृहत्त्वं परिप्राप्यते, हस्तेन मुक्तेन॥१॥

भावार्थः—**सर्वोऽपि लोकः प्रस्पन्दते**-चेष्टते, उद्योगं करोतीति भावः। किमर्थम्? **बृहत्त्वस्य**-महत्त्वस्य **कृते** परं **बृहत्त्वं मुक्तेन हस्तेन**-दानादिकर्मणा **परिप्राप्यते**-लभ्यते। महत्त्वं काममानैर्मनिवेक-धारधिया दानादिकमाचरणीयमिति भावः।

सर्वः। सर्व+सि। १०३७ सू० सर्वस्य विकल्पेन साह इत्यादेशे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **साहु** इति भवति। **अपि**=वि, प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया। **लोकः**। लोक+सि। १७७ सू० ककारलोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,सेर्लोपे **लोउ** इति भवति। **प्रस्पन्दते**। प्रपूर्वकः स्पन्द्-धातुः प्रस्पन्दने-चेष्टायाम्। प्रस्पन्द्+ते। अपभ्रंशे प्रस्पन्दार्थे १०६६ सू० तडप्फड इति देश्यधातुः प्रयुज्यते, ९२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **तडप्फडइ** इति भवति। **बृहत्त्वस्य**। बृहत्-त्व+ङस्। बाहुल्येन २२७ सू० बकारस्य वकारे, १२६ सू० ऋकारस्य अकारे,४४५ सू० हकारस्य डु इति निपातिते, ११ सू० तकार-लोपे, ११०८ सूत्रे प्रायोऽधिकाराद् त्वस्य प्पण इत्यादेशाभावे, ४२५ सू० त्वस्य त्तण इत्यादेशे, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **वड्डत्तणहो** इति भवति। **कृते**। अव्यय-पदमिदम्। इत्यत्र १०९६ सू० कृते इत्यस्य स्थाने तादर्थ्ये [तस्मै इदं तदर्थम्, तस्य भावः तादर्थ्यम्, तस्मिन्] द्योत्ये तणेण इत्यस्य प्रयोगो भवति। **बृहत्त्वम्**। बृहत्-त्व+सि। पूर्ववदेव बकारस्य वकारे, ऋकारस्य अकारे,हकारस्य डु इत्यादेशे,तकारस्य लोपे, ११०८ सू० त्वस्य प्पण इत्यादेशे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **वड्डुप्पणु** इति भवति। **परिप्राप्यते**। परि-आङ्-(आ)-पूर्वकः आप्लृ-धातुः परिप्राप्तौ-लाभे। परिप्राप्+क्य+ते। ३५० सू० संयुक्त-रेफलोपे,२३१ सू० तृतीय-पकारस्य वकारे,९४९ सू० क्यस्य स्थाने ईअ इत्यादेशे,अज्झीने परेण संयोज्येपरिपावीअ+ते इति स्थिते,१००० सू० ईकारस्य इकारे, ९२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **परिपाविअइ** इति भवति। **हस्तेन**। हस्त+टा। ३१६ सू० स्तस्य थकारे, ३६० सू० थकारद्वित्वे,३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, १००० सू० अकारस्य इकारे,१०१४ सू० टास्थाने अनुस्वारे **हत्थिं** इति भवति। **मुक्तेन**। मुक्त+टा। अपभ्रंशे मुक्तार्थे १०९२

सू० मोक्कलड-शब्दः प्रयुज्यते, १०१३ सू० टास्थाने णकारे, १००४ सू० अकारस्य एकारे **मोक्कलडेण**
इति भवति। **सर्वः**—साहु इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **पक्षे**। वैकल्पिकत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्य-
भावपक्ष इत्यर्थः। यथा—**सर्वः**। सर्व+सि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, १००२
सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सव्वु** इति भवति। अत्र वैकल्पिकत्वात्प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न
जाता। **अपि**—वि, प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया।

१०३८—काइं। मूलसूत्रे **काइं** इत्यादेशस्योल्लेखो दृश्यते, परं ग्रन्थान्तरे **काइँ** इत्यपि पाठान्तरं
समुपलभ्यते। प्रयोगानुसारिणी: प्रवृत्तिः विधेया।

यदि न स आयाति दूति! गृहं किमधोमुखं तव ?।

वचनं यः खण्डयति तव सखिके ! स प्रियो भवति न मम ॥१॥

भावार्थ:—कस्यचन परपुरुषस्य सांकेतित-समय-स्खलनमवलोक्य खिद्यमानां दूतीं नायिका प्रो-
वाच—हे **दूति**! **यदि सः** मम प्रियः **गृहं न आयाति**-आगच्छति, तर्हि **तव अधोमुखं** किम ? का लज्जा ?
त्वया न लज्जितव्यमिति भावः। हे **सखिके**! **यः** प्रियः-कान्तः तव **वचनं**-कथनं **खण्डयति**—उल्लङ्घयति
सः ममाऽपि प्रियो नास्ति।

यदि—जइ, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। न। अव्ययपदमिदमपभ्रंशे संस्कृतसममेव
प्रयुज्यते। **सः**। तद्+सि। ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, १००२ सू० अकारस्य
उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सु** इति भवति। **आयाति**। आङ्पूर्वकः याधातुः आगतौ। आया+तिव्।
अपभ्रंशे आया इत्यर्थे १०६६ सू० आव इतिदेश्यधातुः प्रयुज्यते, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **आवइ**
इति भवति। **दूति**!। दूती+सि। १७७ सू० तकारलोपे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, सेर्लोपे **दुइ**!
इति भवति। **गृहम्**। गृह+अम्। ४१५ सू० गृहस्य स्थाने घर इत्यादेशे, १००२ सू० अकारस्य उकारे,
१०१५ सू० अमो लोपे **घरु** इति भवति। **किम्**। किम्+सि। इत्यत्र १०३८ सू० किमः स्थाने **काइं** इत्या-
देशे, सेर्लोपे **काइं** इति भवति। **अधोमुखम्**। अधोमुख+सि। १८७ सू० धकारस्य खकारस्य च हकारे,
१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **अहोमुहु** इति भवति। **तव**। युष्मद्+ङस्। १०४३
सू० ङसा सह युष्मदः स्थाने तुज्झ इत्यादेशे, १००० सू० अकारस्य उकारे **तुज्झु** इति भवति। **वचनम्**।
वचन+सि। १७७ सू० चकारस्य लोपे, १८० सू० यकारस्य श्रुतौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००२
सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **वयणु** इति भवति। **यः**—जु प्रक्रिया १०१६ सूत्रे ज्ञेया। **खण्डयति**।
खडि-धातुः खण्डने। संस्कृतनियमेन खण्ड्+णिग्+तिव् इति जाते, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, ६४२
सू० आदेरकारस्य आकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **खण्डइ** इति
भवति। **तव**। युष्मद्+ङस्। १०४३ सू० ङसा सह युष्मदः स्थाने तउ इत्यादेशे **तउ** इति भवति।
सखिके!। सखिका+सि। १८७ सू० खकारस्य हकारे, १७७ सू० ककारलोपे, ५३० सू० आकारस्य
एकारे १०१५ सू० सेर्लोपे **सहिए**! इति भवति। **सः**—सो, प्रक्रिया १००३ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया।
प्रियः—पिउ, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य द्वितीय-श्लोके ज्ञेया। **भवति**—होइ, इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया ७३१
सूत्रे ज्ञेया। **न**। अव्ययपदमिदम्। संस्कृतवदेव अपभ्रंशे प्रयुज्यते। **मम**। अस्मद्+ङस्। १०५० सू०
ङसा सह अस्मदः स्थाने मज्झु इत्यादेशे **मज्झु** इति भवति। **किम्**—**काइँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्ति-
र्जाता। **किं न दूरे पश्यसि**—काइँ न दूरे देक्खइ, प्रक्रिया १०२० सूत्रे ज्ञेया। **किम्**—काइँ इत्यत्राऽपि प्र-
स्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्दृश्यते।

स्फोटयतः यौ हृदयमात्मीयं तयोः परकीया का घृणा ?।
रक्षत लोकाः! आत्मानं बालायाः जातौ विषमौ स्तनौ ॥२॥

श्लोकस्याऽस्य व्याख्या १०२१ सूत्रे विहिता। शब्दसाधनाऽपि तत्रैवाऽवलोकनीया। **यौ**=जे इत्यत्र १०८१ सूत्रेण उच्चारणस्य लाघवं न जातम्। **लोकाः!**=**लोअहो!**, **बालायाः**=**बालहे** इत्यत्र १०८१ सूत्रेण उच्चारणस्य लाघवं जातम्। **कवण** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

सुपुरुषाः कङ्गोः अनुहरन्ति भण कार्येण केन।
यथा यथा बृहत्त्वं लभन्ते, तथा तथा नमन्ति शिरसा ॥३॥

भावार्थः—विनम्रपुरुषं धान्यविशेषदृष्टान्तेनोत्प्रेक्षते कविः। **सुपुरुषाः**-शोभनाः पुरुषाः,**कङ्गोः**-धान्यविशेषस्य **अनुहरन्ति**-अनुकुर्वन्ति, सदृशा भवन्तीत्यर्थः। **भण**-कथय, **केन कार्येण**-कया रीत्या ? उच्यते, **यथा यथा ते कङ्गवः बृहत्त्वं**-महत्त्वं **लभन्ते तथा तथा ते शिरसा नमन्ति**,विनम्रा भवन्ति। यथा कङ्गुनामधेयो धान्यविशेषः सम्वृद्धिं प्राप्तः नम्रो भवति,एवमेव सज्जनोऽपि महत्त्वमधिगम्य नम्रः-मानरहितो भवति। इदमेव तेषां सादृश्यं बोध्यमिति।

सुपुरुषाः। सुपुरुष+जस्। १११ सू० रोरुकारस्य इकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **सुपुरिस** इति भवति। **कङ्गोः**। कङ्गु+ङस्। ३५ सू० स्त्रीलिङ्गत्वे,१०२१ सू० ङसः स्थाने हे इत्यादेशे,१०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **कङ्गुहे** इति भवति। **अनुहरन्ति**। अनुपूर्वकः हृञ्(हृ)-धातुः अनुकरणे। अनुहृ+अन्ति। २२८ सू० नकारस्य णकारे,९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, १०५३ सू० अन्तेः स्थाने हिं इत्यादेशे **अणुहरहिं** इति भवति। **भण**। भण् कथने। भण्+हि। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे,६६२ सू० हि इत्यस्य सु इत्यादेशे,६६४ सू० सोर्लोपे **भण** इति भवति। **कार्येण**। कार्य+टा। २९५ सू० र्यस्य जकारे, ३६० सू० जकार-द्वित्वे,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०१३ सू० टा-स्थाने अनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **कज्जें** इति भवति। **केन**। किम्+टा। १०३८ सू० किमः स्थाने कवण इत्यादेशे,१०१३ सू० टा-स्थाने णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे,**कवणेण** इति भवति। **यथा**=जिवँ,प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया। **बृहत्त्वम्**। बृहत्त्व+अम्। १०३७ सूत्रतुल्यमेव वड्डत्तण+अम् इति जाते, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **वड्डत्तणु** इति भवति। **लभन्ते**। डुलभष्-लभ् प्राप्तौ। लभ्+अन्ते। १८७ सू० भकारस्य स्थाने हकारे,९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे,१०५३ सू० अन्ते इत्यस्य हिं इत्यादेशे **लहहिं** इति भवति। **तथा**। अव्ययपदमिदम्। १०७२ सू० था इत्यस्य डिम (इम) इत्यादेशे,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,१०६८ सू० मकारस्य सानुनासिके वकारे **तिवँ** इति भवति। **नमन्ति**। णम (नम्) नमने। नम्+अन्ति। ८९७ सू० मकारस्य वकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, १०५३ सू० अन्तेः स्थाने हिं इत्यादेशे **नवहिं** इति भवति। **शिरसा**। शिरस्+टा। २६० सू० शकारस्य सकारे, ११ सू० सकारलोपे, १०१३ सू० टास्थाने णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **सिरेण** इति भवति। **केन-कवणेण** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **पक्षे**। प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावपक्षे इत्यर्थः। यथा—

यदि ससनेहा तदा मृतिका अथ जीवति निःस्नेहा।
द्वाभ्यामपि प्रकाराभ्यां गतिका धन्या किं गर्जसि खलमेघ !॥४॥

भावार्थः—कस्याश्चिद् नायिकायाः प्रियतमः देशान्तरं गतः, तत्र तद्-विरह-व्यथितोऽसौ कामालिरेकमभिव्यञ्जयन्तं मेघं प्रत्याह—हे **खलमेघ** !,दुष्टमेघ! त्वं किं वृथा **गर्जसि** ? कोलाहलं करोषि ?

यतोहि सा मम नायिका **यदि सस्नेहा**-स्नेहेन सह वर्तमाना **स्यात्तदा** तु साऽवश्यमेव **मृतिका**-मृता स्यात्, मम विरहाद्धेतोरिति शेषः। **अथ**—अथवा **यदि** सा **जीवति** प्राणान् धारयति तदा **निःस्नेहा**-स्नेहशून्या एव वर्तते,इति मे दृढो निश्चयः। आभ्यां **द्वाभ्यामेव** सस्नेह-निःस्नेह-लक्षण-**प्रकाराभ्यां** मम **धन्या** प्रिया **गतिका**-गता, मृता भविष्यतीति यावत्।

यदि। अव्ययपदमिदम्। २४५ सू० यकारस्य जकारे,१७७ सू० दकारस्य लोपे **जइ** इति भवति। **सस्नेहा**। सस्नेहा+सि। ३७३ सू० नकारात् पूर्वेऽकारागमे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, स्त्रीत्वादाप्-प्रसंगे ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **स-सणेही** इति भवति। **तदा**=तो, प्रक्रिया १००७ सूत्रे ज्ञेया। **मृतिका**। मृतिका+सि। इत्यत्र १३१ सू० इति ऋकारस्य उकारे,१७७ सू० तकारस्य ककारस्य च लोपे,१००१ सू० आकारस्य अकारे,सेर्लोपे **मु-इअ** इति भवति। **अथ**। अव्ययपदमिदम्। १८७ सू० थकारस्य हकारे **अह** इति भवति। **जीवति**। जीव्-धातुः प्राणधारणे। जीव्+तिव्। ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६२८ सू० तिव इत्यादेशे **जीवइ** इति भवति। **निःस्नेहा**। निर्स्नेहा+सि। १३ सू० रेफलोपे, ४३ सू० इकारस्य दीर्घे, ३४८ सू० सकारलोपे, ३६० सू० नकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,१००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **नि-ण्णेह** इति भवति। **द्वाभ्याम्**। द्वि+भ्याम्। ६०८ सू० द्विशब्दस्य वे इत्यादेशे,१००० सू० एकारस्य इ-कारे, बाहुल्येन २३७ सू० वकारस्य बकारे,६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने,१०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे **बिहिं** इति भवति। **अपि**=वि,प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया। **प्रकाराभ्याम्**। प्रकार+भ्याम्। ३५० सू० रेफलोपे, १७७ सू० ककारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ३०५ सू० अकारस्य एकारे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे **पयारेंहिं** इति भवति। **गतिका**। गतिका+सि। १७७ सू० तकारस्य ककारस्य च लोपे,१००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **गइअ** इति भवति। **धन्या**। धन्या+सि। ३४९ सू० यकारलोपे; २२८ सू० नकारस्य णकारे,१००१ सू० आकारस्य अकारे,सेर्लोपे **धण** इति भवति। **किम्**। किम्+सि=किं प्रक्रिया ५६९ सूत्रे ज्ञेया। **गर्जसि**। गर्ज-(गर्ज्)-धातुः गर्जने। गर्ज्+सिव्। ३५० सू० रेफस्य लोपे,३६० सू० जकार-द्वित्वे, ९१० सू० अकारागमे, १०५४ सू० सिवः स्थाने हि इत्यादेशे **गज्जहि** इति भवति। **खलमेघ**!। खलमेघ+सि। १८७ सू० घकारस्य हकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **खलमेह**! इति भवति। **किम्**=**किं** इ-त्यत्र वैकल्पिकत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता।

१०३९—तुहुं। युष्मदः स्थाने सौ परे तुहुं इत्यादेशो भवति। **तुहुं** इत्यपि पाठान्तरं समुपल-भ्यते। यथास्थानं प्रयोगानुसारिणी प्रवृत्तिः विधेया।

भ्रमर! मा रुणझुणि [इति] शब्दय, तां दिशं दृष्ट्वा मा रुदिहि।
सा मालती देशान्तरिता यस्याः [कृते] त्वं म्रियसे वियोगे॥१॥

भावार्थ:—कस्मिँश्चिदुद्याने मालतीलताऽऽसीत्, तस्यां कश्चिद् भ्रमर आसक्तोऽभूत्, किन्तु सा मालती केनचिदुत्पाट्य देशान्तरं नीता, तदाऽसौ **भ्रमरः** मालतीशून्यं स्थानमवलोक्य तद्वियोगेनातुरः सन् दुःखपूर्णं 'रुणझुणि' इति शब्दं करोति स्म। तं शिक्षमाणः कश्चिदाह—हे **भ्रमर**!-द्विरेफ!, द्वौ रेफौ यत्र स द्विरेफः,तत्सम्बोधनम्। त्वमरण्ये **मा रुणझुणि शब्दय** रुणझुणि इति शब्दं **मा** कुरु,यस्यां दिशायां मालतीलताऽऽसीत्, तत्पुष्पाणि चाऽऽसन्, **तां दिशं दृष्ट्वा मा रुदिहि**, रोदनं मा कुरु, यतः **सा मालती देशा-न्तरिता**, अन्यो देशः देशान्तरं, देशान्तरं गता देशान्तरिता। **यस्याः**-मालत्याः **वियोगे**-विरहे **त्वं म्रियसे**-

मरणाय प्रयतसे । प्रिय-जन-वियोगे धैर्य्यमवलम्ब्य स्थातव्यमिति भावः ।

भमर !। भ्रमर+सि । इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे,१०१५ सू० सेर्लोपे **भमर** इति भवति । **मा** । अव्ययपदमिदम् । १००० सू० आकारस्य अकारे **म** इति भवति । **रुणझुणि** इति भ्रमरस्य ध्वनिः, एवमेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **शब्दय** । शब्द-धातुः ध्वनि-करणे । शब्द+हि । अपभ्रंशे शब्द इत्यर्थे १०६६ सू० रण्णड इति देश्यधातुः प्रयुज्यते, १०५८ सू० हि इत्यस्य स्थाने इ इत्यादेशे **रण्णडइ** इति भवति । **ताम्** । तद्+अम् । बाहुल्येनाऽत्र द्वितीयाऽर्थे प्रथमा विभक्तिः प्रयुज्यते,तेन तद्+सि इति जाते,५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारलोपे, स्त्रीत्वादाप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, १०१५ सू० सेर्लोपे **सा** इति भवति । **दिशम्** । दिश्+अम् । १९ सू० शकारस्य सकारे,बाहुल्येनाऽत्र द्वितीयाऽर्थे प्रथमा-विभक्तौ दिस+सि इति जाते,स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)-प्रत्यये,५ सू० दीर्घसन्धौ,१००० सू० आकारस्य इकारे, सेर्लोपे **दिसि** इति भवति । **दृष्ट्वा** । दृश्-धातुः दर्शने । दृश्+क्त्वा । १०९३ सू० दृशार्थे जो इति देश्यधातुः प्रयुज्यते,ततः जो+क्त्वा इति जाते,१११० सू० क्त्वः स्थाने इ इत्यादेशे **जोइ** इति भवति । **रुदिहि** । रु-धातुः शब्दे । रु+हि । ९०८ सू० उकारस्य स्थाने ओकारे, १०५८ सू० हि इत्यस्य स्थाने इकारे **रोइ** इति भवति । **सा** । तद्+सि । ५७५ सू० तकारस्य स्थाने सकारे,११ सू० दकारलोपे,स्त्रीत्वादाप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ,१०१५ सू० सेर्लोपे **सा** इति भवति । **मालती** । मालती+सि । १७७ सू० तकारलोपे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे,सेर्लोपे **मालइ** इति भवति । **देशान्तरिता** । देशान्तरिता+सि । इत्यत्र २६० सू० शकारस्य सकारे,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १७७ सू० असंयुक्त-तकारलोपे, १००१ सू० आकारस्य स्थाने अकारे,सेर्लोपे **देसन्तरिअ** इति भवति । **यस्याः** । यद्+ङस् । २४५ सू० यकारस्य जकारे,११ सू० दकारलोपे,स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)-प्रत्यये,५ सू० दीर्घ-सन्धौ,१००१ सू० आकारस्य अकारे,१००९ सू० ङसः स्थाने सु इत्यादेशे **जसु** इति भवति । **त्वम्** । युष्मद्+सि । १०३९ सू० युष्मदः स्थाने तुहुं इत्यादेशे,१०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे, १०१५ सू० सेर्लोपे **तुहुं** इति भवति । **म्रियसे** । मृङ्-मृ प्राणत्यागे । मृ+सिप् । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, १०५४ सू० सिपः स्थाने हि इत्यादेशे **मरहि** इति भवति । **वियोगे** । वियोग+ङि । १७७ सू० यकारस्य गकारस्य च लोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **विओइ** इति भवति । **त्वम्=तुहुं** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०४०—यूयम् । युष्मद्+जस् । इत्यत्र १०४० सू० युष्मदः स्थाने तुम्हे,तुम्हइं इत्यादेशौ,१०१५ सू० जसो लोपे **तुम्हे,तुम्हइं** इति भवति । **जानीथ** । ज्ञा-धातुः अवबोधने । ज्ञा+थ । इत्यत्र ६७८ सू० ज्ञाधातोः स्थाने जाण इत्यादेशे,६३२ सू० थ इत्यस्य स्थाने हच् (ह) इत्यादेशे **जाणह** इति भवति । **युष्मान्** । युष्मद्+शस् । प्रस्तुतसूत्रेण युष्मदः स्थाने तुम्हे,तुम्हइं इत्यादेशौ,१०१५ सू० शसो लोपे **तुम्हे,तुम्हइं** इति भवति । **प्रेक्षते** । प्रपूर्वकः ईक्षधातुः प्रेक्षणे । प्रेक्ष्+ते । ३५० सू० रेफलोपे, २८८ सू० क्षस्य स्थाने छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे,३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे,६२८ सू० ते इत्यस्य इत्यादेशे **पेच्छइ** इति भवति । **वचनभेदो यथासंख्यनिवृत्त्यर्थः** । प्रस्तुतसूत्रे जस्-शसोः इति स्थानिपदं द्विवचनान्तं वर्तते, परन्तु **तुम्हे, तुम्हइं** इत्यादेशपदे च एकवचनान्ते वर्तेते । अतोऽत्र **"यथासंख्यमनुदेशः समानाम्"** इति न्यायो न प्रवर्तते । वचनभेद एवाऽत्र कारणं बोध्यम् ।

१०४१—पइं तइं इति । **पइँ तइँ** इत्यपि पाठान्तरं दृश्यते । प्रयोगानुसारिणी प्रवृत्तिः विधेया । **टा** । टाप्रत्ययस्योदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः । यथा—

त्वया मुक्तानामपि वरतरो !, भ्रश्यति पत्रत्वं न पत्राणाम् ।
तव पुनः छाया यदि भवेत्, कथमपि तावत् तैः पत्रैः ॥१॥

भावार्थः—हे **वरतरो** !-वरश्चासौ तरुः तस्सम्बोधनम्, हे उत्तमवृक्ष ! इत्यर्थः । **त्वया मुक्ता**-नामपि-परित्यक्तानामपि **पत्राणाम्** किसलयानां **पत्रत्वं न भ्रश्यति**-नाऽपगच्छति । पुनः-किन्तु **कथमपि**-केनाऽपि प्रकारेण, **तावत्** निश्चितमिदं यद् यदि तव त्वदीया **छाया भवेत्**, छाया भवितुं शक्नोति, तदा **तैः पत्रैरेव** भवति, नान्यथा । पत्रैः सहैव वृक्षाणां शोभा संभवितुं शक्नोतीति भावः ।

त्वया । युष्मद्+टा । १०४१ सू० टाप्रत्ययेन सह युष्मदः स्थाने पइँ इत्यादेशे **पइँ** इति भवति । **मुक्तानाम्** । मुक्त+आम् । २७३ सू० क्तस्य ककारे, ३६० सू० ककारद्वित्वे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे जाते **मुक्काहँ** इति भवति । **अपि**—वि, प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया । **वरतरो** ! । वरतरु+सि । १०१५ सू० सेर्लोपे **वरतरु** ! इति भवति । **भ्रश्यति** । भ्रंशु-भ्रंश् भ्रंशने । भ्रंश्+तिव् । ८४८ सू० भ्रंश्धातोः स्थाने फिट्ट इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इत्यादेशे **फिट्टइ** इति भवति । **पत्रत्वम्** । पत्रत्व+सि । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, ४२५ सू० त्वस्य स्थाने त्तण इत्यादेशे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे **पत्तत्तणं** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदमपभ्रंशे संस्कृतसममेव प्रयुज्यते । **पत्राणाम्** । पत्र+आम्=पत्त+आम् । ४२५ सू० आमः स्थाने णकारे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, २७ सू० णकारस्यान्तेऽनुस्वारागमे **पत्ताणं** इति भवति । **तव** । युष्मद्+ङस् । ५८५ सू० युष्मदः स्थाने तुह इत्यादेशे, ४२७ सू० ङसो लुकि **तुह** इति भवति । **पुनः** । अव्ययपदमिदम् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०९७ सू० स्वार्थे डु-(उ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **पुणु** इति भवति । **छाया** । छाया+सि । इत्यत्र १०१५ सू० सेर्लोपे **छाया** इति भवति । **यदि**—जइ, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । **भवेत्** । भू सत्तायाम् । भू+यात् । ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, ६६६ सू० यात् इत्यस्य ज्ज इत्यादेशे **होज्ज** इति भवति । **कथम्** । अव्ययपदमिदम् । १८७ सू० थकारस्य हकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे, २९ सू० अनुस्वारलोपे **कह** इति भवति । **तावत्** । अव्ययपदमिदम् । २७१ सू० सस्वर-वकारलोपे, ११ सू० तकारलोपे **ता** इति भवति । **तैः** । तद्+भिस् । ११ सू० दकारलोपे, १००६ सू० अकारस्य एकारे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **तेहिँ** इति भवति । **पत्रैः** । पत्र+भिस् । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, १००६ सू० अकारस्य एकारे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे **पत्तेहिं** इति भवति । **त्वया**—**पइँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

मम हृदयं त्वया, तया त्वं, साऽपि अन्येन विनाट्यते ।
प्रिय ! किं करोम्यहं, किं त्वं ?, मत्स्येन मत्स्यः गिल्यते ॥२॥

भावार्थः—काचिन्नायिका अन्यनायिकासक्तं स्वपतिं प्रतिवक्ति—हे **प्रिय** ! **मम हृदयं त्वया** गृहीतम्, **त्वञ्च तया** वनितया गृहीतोऽसि, **साऽपि अन्येन** पुरुषेण **विनाट्यते**-विडम्ब्यते । प्रिय ! कथय **अहं किं करोमि, त्वञ्च किं** कुर्याः ? जगतीतले **मत्स्येन मत्स्यः गिल्यते**-भक्ष्यते । लघीयान् मत्स्यः गरीयसा मत्स्येन भक्ष्यते इति भावः ।

मम । अस्मद्+ङस् । १०५० सू० ङस्-प्रत्ययेन सह अस्मदः स्थाने महु इत्यादेशे **महु** इति भवति । **हृदयम्** । हृदय+सि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० दकारलोपे, २६९ सू० सस्वर-यकारस्य लोपे, ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, १७७ सू० ककारलोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे, १०१५ सू० सेर्लोपे **हिअउँ** इति भवति । **त्वया** । युष्मद्+टा । १०४१ सू० टा-प्रत्ययेन सह युष्मदः स्थाने तइं इत्यादेशे **तइं** इति भवति । **तया** । तद्+टा । इत्यत्र ११ सू० दकारलोपे,

स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)-प्रत्यये,५ सू० दीर्घ-सन्धौ,५१८ सू० टाप्रत्ययस्य एकारे **ताए** इति भवति । **त्वम्** । युष्मद्+सि । १०३९ सू० युष्मदः स्थाने तुहुं इत्यादेशे, १०८२ सू० अनुस्वारस्य उच्चारणलाघवे,१०१५ सू० सेर्लोपे **तुहुँ** इति भवति । **सा** । तद्+सि । ५७५ सू० तकारस्य सकारे,११ सू० दकारलोपे,स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)-प्रत्यये,५ सू० दीर्घ-सन्धौ,१००१ सू० आकारस्य अकारे,सेर्लोपे **स** इति भवति । **अपि**=वि, प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया । **अन्येन** । अन्य+टा । ३४९ सू० यकारलोपे,३६० सू० नकारस्य द्वित्वे, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य अनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **अन्नें** इति भवति । **विनाट्यते** । विपूर्वकः नट्धातुः विनर्तने । विनट्+क्य+ते । इत्यत्र १९५ सू० टकारस्य डकारे,६४९ सू० क्यस्य स्थाने इज्ज इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **विनडिज्जइ** इति भवति । **प्रिय** ! । प्रिय+सि । ३५० सू० रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पिअ** ! इति भवति । **किम्** । किम्+सि । १०३८ सू० किमः स्थाने काइँ इत्यादेशे, १०१५ सेर्लोपे **काइँ** इति भवति । **करोमि** । डुकृञ्-कृ करणे । कृ+मिव् । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, १०५६ सू० मिवः स्थाने उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **करउँ** इति भवति । **अहम्** । अस्मद्+सि । १०४६ सू० अस्मदः स्थाने हउं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **हउँ** इति भवति । **मत्स्येन** । मत्स्य+टा । ३४९ सू० यकारलोपे,२९२ सू० त्सस्य छकारे,३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य,चकारे, १०१३ सू० टास्थाने अनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **मच्छें** इति भवति । **मत्स्यः** । मत्स्य+सि=मच्छ+सि । १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **मच्छु** इति भवति । **गिल्यते** । गृधातुः निगरणे । संस्कृतनियमेन गिल्+क्य+ते इति जाते, ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, अज्झीने-परेण संयोज्ये,६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **गिलिज्जइ** इति भवति । **त्वया**=**तइं** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **ङिना** । पूर्वोक्तमुदाहरण-द्वयं टाप्रत्ययस्य बोधव्यम्, परन्त्वग्रिमे उदाहरणे ङि-प्रत्ययेन सह युष्मदः स्थाने मइँ इत्यादेशो भवति । यथा—

त्वयि मयि द्वयोरपि रणगतयोः **को जयश्रियं तर्कयति ।**
केशैः **लात्वा** **यमगृहिणीं भण सुखं कस्तिष्ठति ? ॥३॥**

भावार्थः—रणशूरौ द्वौ पुरुषौ निजवीरत्वं प्रशंसयन्तौ प्राहतुः **यत्त्वयि मयि** चावयोः **द्वयोरपि रणगतयोः** रणे-युद्धे गतयोः-गतवतोः **को** नाम **जयश्रियं**-विजयलक्ष्मीं **तर्कयति**-शंकते ? आवयोः सम्मुखे को नाम योद्धा विजयं प्राप्तुं शक्नोति ? न कोऽपीति भावः । यतः **यमगृहिणीम्** यमस्य-कालस्य गृहिणीं-प्रमदां **केशैः** **लात्वा**-गृहीत्वा **कः सुखं** सुखपूर्वकः **तिष्ठति**-स्थातुं शक्नोति ? एतत्त्वमेव भण । यथा यमराजस्यापराधं कुर्वतो जनस्य प्राणान्तत्वं सुनिश्चितं भवति तथैवाऽऽवयोरपि द्वयोः संग्रामाय प्रस्थितवतोः यः कोऽपि योद्धा युद्धार्थं समागमिष्यति, तस्य सर्वस्वं विनाशमुपयास्यतीति नाऽत्र संशयः करणीयः ।

त्वयि । युष्मद्+ङि । इत्यत्र १०४१ सू० ङिना सह युष्मदः स्थाने पइँ इत्यादेशे **पइँ** इति भवति । **मयि** । अस्मद्+ङि । १०४८ सू० ङिना सह अस्मदः स्थाने मइँ इत्यादेशे **मइँ** इति भवति । **द्वयोः** । द्वि+ओस् । ६०८ सू० द्विशब्दस्य स्थाने वे इत्यादेशे, बाहुल्येन २३७ सू० वकारस्य बकारे, ६११ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१८ सू० सुपः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **बेहिँ** इति भवति । **अपि**=वि, प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया । **रणगतयोः** । रणगत+ओस् । १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ६११ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१८ सू० सुपः स्थाने हिं इत्यादेशे, **रणगयहिँ** इति भवति । **कः** । किम्+सि । ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, १००२ सू० अकारस्य

ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **को** इति भवति। **जयश्रियम्**। जयश्री+अम्। इत्यत्र ३७५ सू० रेफात् पूर्वे इकारागमे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **जयसिरि** इति भवति। **तर्कयति**। तर्क—तर्क् वितर्कने। तर्क्+णिग्+तिव्। इत्यत्र ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० ककारद्वित्वे, ६३८ सू० णिगः स्थाने एकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य आकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **तक्केइ** इति भवति। **केशैः**। केश+भिस्। २६० सू० शकारस्य सकारे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **केसहिँ** इति भवति। **लात्वा**। ला आदाने। ला+क्त्वा। ११११ सू० क्त्वः स्थाने एप्पिणु इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **लेप्पिणु** इति भवति। **यमगृहिणीम्**। यमगृहिणी+अम्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, ४१५ सू० गृहस्य स्थाने घर इत्यादेशे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **जमघरिणि** इति भवति। **भण**। भण—भण् भणने। भण्+हि। ९१० सू० अकारागमे, ६६२ सू० हि इत्यस्य स्थाने सु इत्यादेशे, ६६४ सू० सोर्लुकि **भण** इति भवति। **सुखम्**। क्रियाविशेषणमिदम्। सुख+अम्। १८७ सू० खकारस्य हकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **सुहु** इति भवति। **कः**। किम्+सि। ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **को** इति भवति। **तिष्ठति**। ष्ठा-(स्था)-धातुः गतिनिवृत्तौ। स्था+तिव्। ६८७ सू० स्थाधातोः स्थाने थक्क इत्यादेशे, ६४७ अकारस्य एकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **थक्केइ** इति भवति। **त्वयि=पइँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **एवं तइँ**। एवमेव **तइँ** इत्यादेशस्याऽपि प्रयोगः कल्पनीयः। **अमा**। अम्-प्रत्ययेन सहाऽपि युष्मदः स्थाने **पइँ** इत्यादेशो भवति। यथा—

> **त्वां मुञ्चन्त्याः मम मरणं, मां मुञ्चतः तव।**
> **सारस ! यस्य यो दूर-वर्ती सोऽपि कृतान्तस्य साध्यः ॥४॥**

भावार्थः—काचिद् वनिता स्वस्यामनुरक्तं कान्तं प्रति सारसान्योक्त्या कथयति—हे **सारस !** **त्वां मुञ्चन्त्याः मम मरणमेव** भविष्यति, तव विरहाऽसहनादिति भावः। **मां मुञ्चतस्तव** त्वदीयमपि मरणं भविष्यति, मम वियोगाऽसहनादिति यावत्। **यो यस्य दूरवर्ती**-परोक्षो भविष्यति **सोऽपि**-स एव **कृतान्तस्य**-यमराजस्य **साध्यः**-भोजनमस्ति, तस्य मरणं ध्रुवमिति।

त्वाम्। युष्मद्+अम्। १०४१ सू० अमा सह युष्मदः स्थाने पइँ इत्यादेशे **पइँ** इति भवति। **मुञ्चन्त्याः**। मुच्लृ-मुच् मोचने। मुच्+शतृ। ७६२ सू० मुचः स्थाने मेल्ल इत्यादेशे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)-प्रत्ययस्य प्राप्तौ, ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ङस्प्रत्यये, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, १०२१ सू० ङसः स्थाने हे इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **मेल्लन्तिहेँ** इति भवति। **मम**। अस्मद्+ङस्। १०५० सू० ङसा सह अस्मदः स्थाने महु इत्यादेशे **महु** इति भवति। **मरणम्**। मरण+सि। १००१ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **मरणु** इति सिद्धम्। **माम्**। अस्मद्+अम्। १०४८ सू० अमा सह अस्मदः स्थाने मइँ इत्यादेशे **मइँ** इति भवति। **मुञ्चतः**। मुच्लृ (मुच्) मोचने। मुच्+शतृ+ङस्। पूर्ववदेव मेल्लन्त—ङस् इति जाते, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **मेल्लन्तहोँ** इति भवति। **तव**। युष्मद्+ङस्। १०४३ सू० ङसा सह अस्मदः स्थाने तुज्झ इत्यादेशे, १००० सू० अकारस्य उकारे **तुज्झु** इति भवति। **सारस !**। सारस+सि। १०१५ सू० सेर्लोपे **सारस !** इति भवति। **यस्य**। यद्+ङस्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, १००९ सू० ङसः स्थाने सु इत्यादेशे

जु इति भवति । यः । यद्+सि । पूर्ववदेव ज+सि । इति जाते,१००३ सू० अकारस्य ओकारे, सेर्लोपे जो इति भवति । दूरवर्ती । दूरवर्तिन्+सि । १०९३ सू० दूरवर्तिन् इत्यर्थे वेग्गल शब्दः प्रयुज्यते, १००० सू० अकारस्य आकारे, सेर्लोपे वेग्गला इति भवति । सः । तद्+सि । ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारलोपे, १००३ सू० सकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे सो इति भवति । अपि=वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । कृतान्तस्य । कृतान्त+ङस् । बाहुल्येन १२६ सू० ऋकारस्य अकाराभावे, १०६७ सू० आद्यतकारस्य दकारे,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,१००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे,१०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे कृदन्तहो इति भवति । साध्यः । साध्य+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २९७ सू० ध्यस्य झकारे,३६० सू० झकारस्य द्वित्वे,३६१ सू० पूर्वझकारस्य जकारे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे सज्झु इति भवति । स्थाम्=पई इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । एवं तई । एवमेव तई इत्यादेशस्यापि उदाहरणं कल्पनीयम् ।

१०४२— युष्माभिरस्माभिः यत् कृतं दृष्टं बहुकजनेन ।
तत्तावत् समरभरः, निर्जितः एकक्षणेन ॥१॥

भावार्थः—वीराः परस्परं स्ववीरत्वं श्लाघन्ते । तथाहि-युष्माभिरस्माभिः यत्कृतम्-युद्धे विजयः सम्पादित इति भावः । तद् बहुकजनेन, बहुरेव बहुकः, बहुकश्चासौ जनः बहुकजनः, तेन दृष्टम्, अवलोकितम्, तत्कृतं किंस्वरूपमित्याह-तत्तावत्, क्रियाविशेषणमिदम् समर-भरः, समरस्य-युद्धस्य भरः-भारः महान् युद्धः इति भावः । एकक्षणेन-एकं च तत् क्षणं, तेन निर्जितः—विजितः ।

युष्माभिः । युष्मद्+भिस् । १०४२ सू० भिसा सह युष्मदः स्थाने तुम्हेहिं इत्यादेशे, १०८१ सू० एकारस्य उच्चारणलाघवे,१०८२ सू० अनुस्वारस्य उच्चारणलाघवे तुम्हेँहिँ इति भवति । अस्माभिः । अस्मद्+भिस् । १०४९ सू० भिसा सह अस्मदः स्थाने अम्हेहिं इत्यादेशे,१०८१ सू० एकारोच्चारणस्य लाघवे,१०८२ सू० अनुस्वारस्य उच्चारणलाघवे अम्हेँहिँ इति भवति । यत् । यद्+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारे,११ सू० दकारलोपे,५१४ सू० सेर्मकारे,२३ सू० मकारानुस्वारे जं इति भवति । कृतम् । कृत+सि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे,४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये, १७७ सू० ककारस्य लोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे,१०१५ सू० सेर्लोपे किअउं इति भवति । दृष्टम् । दृष्ट+सि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे,३०५ सू० ष्टस्य स्थाने ठकारे,३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, ४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये, १७७ सू० ककारस्य लोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे दिट्ठउँ इति भवति । बहुकजनेन । बहुकजन+टा । १७७ सू० ककारलोपे,२२८ सू० नकारस्य णकारे,१०१३ सू० टास्थाने णकारे,स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे बहुअजणेण इति भवति । तत् । तत्+सि । २४ सूत्रे "बहुलाधिकाराद् अन्यस्याऽपि व्यञ्जनस्य मकारः" इति पाठेन तकारस्य मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे तं इति भवति । तावत् । तावत्+सि । १०७८ सू० वत् इत्यस्य डेवड [एवड] इत्यादेशे,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,४३५ सू० स्वाथिक-कप्रत्यये, १७७ सू० ककारस्य लोपे,१०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, सेर्लोपे तेवडुउं इति भवति । समरभरः । समरभर+सि । १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे समरभरु इति भवति । निर्जितः । निर्जित+सि । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० जकारद्वित्वे १७७ सू० तकारद्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे निज्जिअउ इति भवति । एकक्षणेन । एकक्षण+टा । ३७० सू० ककारस्य द्वित्वे, बाहुल्येन ८४ सू० ह्रस्वाभावे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, प्रयोगदर्शनात् ३६० खकारस्य द्वित्वाभावे,

१०१३ सू० टास्थाने णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **एक्कसरेण** इति भवति। **युष्माभिः**=**तुम्हेहिँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

१०४३—तव। युष्मद्+ङसि। १०४३ सू० ङसिना सह युष्मदः स्थाने तउ, तुब्भ, तुध्र इत्यादेशाः भवन्ति। ततः—**तउ, तुब्भ, तुध्र** इति रूपाणि भवन्ति। **भवन्**। भू सत्तायाम्। भू+शतृ। ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, ११०० सू० स्वार्थे अ-प्रत्यये, सिप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **होन्तउ** इति भवति। **आगतः**। आगत+सि। १०६७ सू० तकारस्य दकारे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **आगदो** इति भवति। **ङसा**। ङस्-प्रत्ययेन सह युष्मदः स्थाने ये आदेशा भवन्ति, तान् प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—

तव गुणसम्पदं तव मतिं तव अनुत्तरां क्षान्तिम्।
यदि उत्पत्त्या अन्यजनाः, महीमण्डले शिक्षन्ते ॥१॥

भावार्थः—**तव गुणसम्पदम्**-गुणसम्पत्तिम्, **तव मतिम्** सम्यग्-ज्ञानम्, **तव अनुत्तराम्**,नास्ति उ-त्तरा उत्कृष्टा यस्याः सा,तां **क्षान्तिं**-शान्तिं,**महीमण्डले**-जगतीतले,**अन्यजनाः**-अन्ये च ते जनाः अन्यजनाः **यदि उत्पत्त्या**,उत्पत्तिः निष्पत्तिः-जन्म, तथैव,जन्म लब्ध्वैवेत्यर्थः। **शिक्षन्ते**—शिक्षां प्राप्नुयुरित्यर्थः, तदा तेषां जीवनं सफलं भविष्यति। कश्चिद् भक्तजनः कञ्चित् जगत्तारकं महापुरुषमुद्दिश्य भणति— हे प्रभो! यदि मनुजाः तव गुणसम्पदं शिक्षेरन्, गृह्णीयुः, तव मति-ज्ञानं, तव प्रशस्तां क्षमां च गृह्णीयुस्तदा ते सुखिनो भवेयुरिति भावः

तव। युष्मद्+ङस्। १०४३ सू० ङसा सह युष्मदः स्थाने तउ इत्यादेशे **तउ** इति भवति। **गुणसंपदम्**। गुणसंपद्+अम्। १०७१ सू० दकारस्य इकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **गुणसंपइ** इति भ-वति। **तव**। युष्मद्+ङस्। प्रस्तुतसूत्रेण ङसा सह युष्मदः स्थाने तुब्भ इत्यादेशे **तुब्भ** इति भवति। **मतिम्**। मति+अम्। १०६७ सू० तकारस्य दकारे,१०१५ सू० अमो लोपे **मदि** इति भवति। **तव**। यु-ष्मद्+ङस्। प्रस्तुतसूत्रेण ङसा सह युष्मदः स्थाने तुध्र इत्यादेशे **तुध्र** इति भवति। **अनुत्तराम्**। अनुत्तरा +अम्। २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, अमो लोपे **अणुत्तर** इति भवति। **क्षान्तिम्**। क्षान्ति+अम्। २७४ सू० क्षस्य खकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, अमो लोपे **खन्ति** इति भ-वति। **यदि**। अव्ययपदमिदम्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, १७७ सू० दकारलोपे **जइ** इति भवति। **उत्पत्त्या**। उत्पत्ति+टा। ३४८ सू० तकारलोपे,३६० सू० पकारद्वित्वे,१०१४ सू० टास्थाने अनुस्वारे **उप्पत्तिं** इति भवति। **अन्यजनाः**। अन्यजन+जस्। ३४९ सू० यकारलोपे,३६० सू० नकारद्वित्वे,२२८ सू० नकारस्य णकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **अन्नजण** इति भवति। **महीमण्डले**। महीमण्डल+ङि। ४ सू० ईकारस्य इकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **महिमण्डलि** इति भवति। **शिक्षन्ते**। शिक्ष (शिक्ष्) शिक्षायाम्। शिक्ष्+अन्ते। २६० सू० शकारस्य सकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, २७४ सू० क्षस्य खकारे,३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, ६३१ सू० अन्ते इत्यस्य न्ति इत्यादेशे **सिक्खन्ति** इति भवति। **तव**=**तउ, तुब्भ, तुध्र** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

१०४४—युष्मभ्यम्। युष्मद्+भ्यस्। १०४४ सू० भ्यसा सह युष्मदः स्थाने तुम्हहं इत्यादेशे **तुम्हहं** इति भवति। **भवन्**। भू+शतृ=**होन्तउ**, **आगतः**=आगदो, इत्यस्य प्रक्रिया १०४३ सूत्रे ज्ञेया। **युष्माकम्**। युष्मद्+आम्। १०४४ सू० आमा सह युष्मदः स्थाने **तुम्हहं** इत्यादेशे **तुम्हहं** इति भवति।

सम्बन्धी । सम्बन्धिन्+सि । १०९३ सू० सम्बन्धिन् इत्यस्य केर इत्यादेशे, २४ सू० क्लीबत्वे, ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, १७७ सू० ककारलोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे **केरउं** इति भवति । **वनम्** । वन+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **वणु** इति भवति । **युष्मभ्यम्**=तुम्हहं, **युष्माकम्**=तुम्हहं इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०४५—**युष्मासु** । युष्मद्+सुप् । १०४५ सू० सुपा सह युष्मदः स्थाने तुम्हासु इत्यादेशे **तुम्हासु** इति भवति । **स्थितम्** । ष्ठा-(स्था)-धातुः गतिनिवृत्तौ । स्था+क्त-त । ६८७ सू० स्थाधातोः स्थाने ठा इत्यादेशे, १००० सू० आकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्य अनुस्वारे **ठिअं** इति भवति । **युष्मासु**=तुम्हासु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०४६—**तस्य अहं कलियुगे दुर्लभस्य**=तसु हउं कलिजुगि दुल्लहहो, प्रक्रिया १००९ सूत्रे ज्ञेया । **अहम्**=हउं इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण सौ परे अस्मदः स्थाने हउं इत्यादेशो जातः ।

१०४७— **वयं स्तोकाः, रिपवो बहवः, कातरा एवं भणन्ति ।**
मुग्धे ! निभालय गगनतलं कति जनाः ज्योत्स्नां कुर्वन्ति ॥१॥

भावार्थः—**वयं स्तोकाः**—अल्पसंख्यकाः स्म, **रिपवः**-शत्रवः, **बहवः**-अत्यधिकाः सन्ति, एवं **कातराः**—भीरवः निर्बला वा **भणन्ति**-निगदन्ति, यतोहि हे **मुग्धे** !-सुन्दरि !, **गगनतलम्**-गगनस्य तलं, नभोमण्डलं तं **निभालय**—अवलोकस्व, **कति**-कियन्तो **जनाः ज्योत्स्नां** प्रकाशं **कुर्वन्ति** ? **"एकश्चन्द्रः तमो हन्ति,न च तारागणोऽपि च"** इति विचार्य अस्मदीया या संख्या-स्वल्पता वर्तते,तया न भीतिः करणीया । एकाकिनोऽपि वयं कार्यं विधास्याम इति भावः ।

वयम् । अस्मद्+जस् । इत्यत्र १०४७ सू० अस्मदः स्थाने अम्हे इत्यादेशे, १०१५ सू० जसो लोपे **अम्हे** इति भवति । **स्तोकाः** । स्तोक+जस् । ३९६ सू० स्तोकस्य थोव इत्यादेशे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, जसो लोपे **थोवा** इति भवति । **रिपवः** । रिपु+जस् । १७७ सू० पकारलोपे, जसो लोपे **रिउ** इति भवति । **बहवः** । बहु+जस् । ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, जसो लोपे **बहुअ** इति भवति । **कातराः** । कातर+जस् । १७७ सू० तकारस्य लोपे, १८० सू० यकार-श्रुतौ, १०१५ सू० जसो लोपे **कायर** इति भवति । **एवम्** । अव्ययपदमिदम् । १०८९ सू० एवम् इत्यस्य एम्ब इत्यादेशे **एम्ब** इति भवति । **भणन्ति** । भण-भण् भणने । भण्+अन्ति । ९१० सू० अकारस्यागमे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **भणन्ति** इति भवति । **मुग्धे !** । मुग्धा+सि । ३४८ सू० गकारलोपे, ३६० सू० धकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारे, १००० सू० आकारस्य इकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **मुद्धि** ! इति भवति । **निभालय** । नि-पूर्वकः भाल्-धातुः निभालने-दर्शने । निभाल्+हि । १८७ सू० भकारस्य हकारे, ९१० सू० अकारागमे, ६६२ सू० हि इत्यस्य सु इत्यादेशे, ६६३ सू० सु इत्यस्य हि इत्यादेशे **निहालहि** इति भवति । **गगनतलम्** । गगनतल+सि । १७७ सू० द्वितीय-गकारस्य तकारस्य च लोपे, १८० सू० उभयत्रापि यकारश्रुतौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **गयणयलु** इति भवति । **कति** । कति+जस् । १७७ सू० तकारलोपे, १०१५ सू० जसो लोपे **कइ** इति भवति । **जनाः** । जन+जस् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **जण** इति भवति । **ज्योत्स्नाम्** । ज्योत्स्ना+अम् । ३४९ सू० यकारलोपे, ३४८ सू० तकारलोपे, ३४६ सू० स्नस्य स्थाने ण्ह इत्यादेशे, बाहुल्येन ८४ सूत्रस्याप्रवृत्तौ १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **जोण्ह** इति भवति । **कुर्वन्ति** । डुकृञ्-कृ करणे । कृ+अन्ति । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **करन्ति** इति

भवति । **वयम्—अम्हे** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

अम्लत्वं लात्वा ये गताः पथिकाः परकीयाः केऽपि ।
अवश्यं न स्वपन्ति सुखासिकायां, यथा वयं तथा तेऽपि ॥२॥

भावार्थः—ये केऽपि केचन **परकीयाः**—स्नेहपरवशाः **पथिकाः**—पान्थाः, **अम्लत्वं** स्नेहं **लात्वा** आदाय गताः, तेषां वियोगेन **यथा वयं सुखासिकायां**—सुखशय्यायां न स्वपामः, **तथा**-एवमेव **तेऽपि** पथिकाः **अवश्यं**-निश्चितरूपेणाऽस्माकं वियोगेन **न स्वपन्ति** शयिष्यन्ते इति भावः । एतेन पथिकानां पारस्परिकः स्नेहातिरेकोऽभिव्यञ्जितः ।

अम्लत्वम् । अम्लत्व+सि । १०९३ सू० अम्लत्वार्थे अम्बण-शब्दः प्रयुज्यते,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **अम्बणु** इति भवति । **लात्वा** । ला आदाने । ला+क्त्वा । १११० सू० क्त्वः स्थाने इवि इत्यादेशे,बाहुल्येन १० सूत्रस्याप्रवृत्तौ **लाइवि** इति भवति । **ये** । यद्+जस् । २४५ सू० यकारस्य जकारे,११ सू० दकारलोपे,५४७ सू० जसः स्थाने डे (ए) इत्यादेशे,डिति परेऽन्त्य-स्वरादेर्लोपे **जे** इति भवति । **गताः** । गत+जस् । १७७ सू० तकारलोपे,१८० सू० यकार-श्रुतौ,१००१ सू० अकारस्य आकारे,१०१५ सू० जसो लोपे **गया** इति भवति । **पथिकाः** । पथिक+जस् । १८७ सू० थकारस्य हकारे, १७७ सू० ककारलोपे, जसो लोपे **पहिअ** इति भवति । **परकीयाः** । परकीय+जस् । १७७ सू० ककारलोपे,१००० सू० ईकारस्य आकारे,१० सू० स्वरस्य लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये,१००१ सू० अकारस्य आकारे, बाहुल्येन १७७ सू० यकारस्य लोपाऽभावे, १०१५ सू० जसो लोपे **पराया** इति सिद्धम् । **के** । किम्+जस्=के, प्रक्रिया ५६० सूत्रे ज्ञेया । **अपि**=वि, प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया । **अवश्यम्** । अव्ययपदमिदम् । २६० सू० शकारस्य सकारे, ३४९ सू० यकारलोपे, १०९८ सू० स्वार्थे ड-(अ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **अवस** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **स्वपन्ति** ञिष्वप्-ष्वप् स्वापे । ष्वप्+अन्ति । २६० सू० षकारस्य सकारे,६४ सू० आदेरकारस्य उकारे, बाहुल्येन ३५० सू० वकारलोपे,९१० सू० अकारागमे, १७७ सू० पकारलोपे, १०५३ सू० अन्तेः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **सुअहिँ** इति भवति । **सुखासिकायाम्** । सुखासिका+ङि । १०९३ सू० सुखासिकार्थे सुहच्छिआ-शब्दः प्रयुज्यते, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०२३ सू० ङेः स्थाने हिं इत्यादेशे **सुहच्छिअहिं** इति भवति । **यथा** । अव्ययपदमिदम् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०७२ सू० था इत्यस्य डिम-(इम)-इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०६८ सू० मकारस्य सानुनासिके वकारे **जिवँ** इति भवति । **वयम्** । अस्मद्+जस् । १०४७ सू० अस्मदः स्थाने अम्हइं इत्यादेशे,१०१५ सू० जसो लोपे **अम्हइं** इति भवति । **तथा** । अव्ययपदमिदम् । **जिवँ**-वदेव **तिवँ** इति साध्यम् । **ते** । तद्+जस्=**ते**, प्रक्रिया ५४७ सूत्रे ज्ञेया । **वयम्—अम्हइं** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **अस्मान्** । अस्मद्+शस् । १०४७ सू० अस्मदः स्थाने अम्हे, अम्हइं इत्यादेशौ, १०१५ सू० शसो लोपे **अम्हे अम्हइं** इति भवति । **पश्यति** । दृशिर्-दृश् दर्शने । दृश्+तिव्=देक्खइ, प्रक्रिया ८५२ सूत्रे ज्ञेया । **अम्हे अम्हइं** इत्यादेशद्वयं प्रस्तुतसूत्रेणैव निष्पन्नं भवति । **वचन-भेदो यथासंख्यनिवृत्त्यर्थः** । प्रस्तुतसूत्रे **जस्-शसोः** इत्यनयोः निमित्तभूतपदयोः द्विवचनं दृश्यते, परन्तु "**अम्हे अम्हइं**" इत्यत्र आदेशभूतपदयोः द्विवचनाभावो वर्तते, वचनभेदादेवाऽत्र "**यथासंख्यमनुदेशः समानाम्**" इति न्यायो न प्रवर्तते । १०४० सूत्रेऽपि प्रकारान्तरेण वचनभेदस्य हार्दं समुल्लिखितं विद्यते, तत्तत्र समवलोकनीयम् ।

१०४८—मइं । मइँ इत्यपि पाठान्तरं समुपलभ्यते । प्रयोगानुसारिणी प्रवृत्तिर्विधेया । **८ा** ।

टा-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—

मया ज्ञातं प्रिये ! विरहितानां कापि धरा भवति विकाले।
केवलं मृगाङ्कोऽपि तथा तपति, यथा दिनकरः क्षयकाले ॥१॥

भावार्थः—**प्रिये ! विरहितानां**-प्रियावियुक्तानां पुरुषाणां कृते **विकाले**-सन्ध्याकाले **कापि धरा**-अवलम्बनं **भवति** ? न भवतीति अध्याहार्यम्। एतत्सर्वं **मया ज्ञातम्**-अवगतम्। किमधिकम्, यतः **मृगाङ्कः**-मृग एव अङ्कः-चिन्हं यस्य सः, चन्द्र इत्यर्थः। **सोऽपि तथा तपति**-अनया रीत्या तापं करोति **यथा क्षयकाले**-प्रलयकाले **दिनकरः**—सूर्यः तपति। चन्द्रो हि शीतलो भवति, किन्तु तस्य शीतलताऽपि विरहितानां कृते महन्तं तापं जनयति, यथा कल्पान्तकाले सूर्यस्तापं प्रसारयति, तथैव चन्द्रोऽपीति भावः।

मया ! अस्मद्+टा। इत्यत्र १०४८ सू० टा-प्रत्ययेन सह अस्मदः स्थाने मइँ इत्यादेशे **मइँ** इति भवति। **ज्ञातम्**। ज्ञा-धातुः अवबोधने। ज्ञा+क्त (त)। ६७८ सू० ज्ञाधातोः स्थाने जाण इत्यादेशे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, सि-प्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **जाणिउँ** इति भवति। **प्रिये** !। प्रिया+सि। ३५० सू० रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पिअ** ! इति भवति। **विरहितानाम्**। विरहित+आम्। १७७ सू० तकारस्य लोपे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे **विरहिअहं** इति भवति। **का**। किम्+सि। ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घसन्धौ, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **क** इति भवति। **अपि**—वि, प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया। **धरा**। धरा+सि। १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सेर्लोपे **धर** इति भवति। **भवति**—होइ, इत्यस्य प्रक्रिया ७३१ सूत्रे ज्ञेया। **विकाले**। विकाल+ङि। १७७ सू० ककारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **विआलि** इति भवति। **केवलम्**। केवल+सि। ४५८ सू० केवलार्थे णवर इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते, अव्ययत्वात् संस्कृतवदेव सेर्लोपे **णवर** इति भवति। **मृगाङ्कः**। मृगाङ्क+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० गकारलोपे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे १०१५ सू० सेर्लोपे **मियङ्कु** इति भवति। **तथा**। अव्ययपदमिदम्। १०७२ सू० था इत्यस्य डिह (इह) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **तिह** इति भवति। **तपति**। तप-तप् तापे। तप्+तिव्। २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **तवइ** इति भवति। **यथा**। अव्यय-पदमिदम्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०७२ सू० था इत्यस्य डिह (इह) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **जिह** इति भवति। **दिनकरः**। दिनकर+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, १७७ सू० ककारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **दिणयरु** इति भवति। **क्षयकाले**। क्षयकाल+ङि। २७४ सू० क्षस्य खकारे, १०६७ सू० ककारस्य गकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **खयगालि** इति भवति। **मया**—**मइँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **ङिना**। ङि-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदर्श्यते। यथा—**त्वयि मयि द्वयोरपि रणगतयोः**—पइँ मइँ बेहिँ वि रण-गयहिँ, प्रक्रिया १०४१ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **त्वयि** इत्यत्र १०४१ सू० ङिप्रत्ययेन सह युष्मदः स्थाने **पइँ** इति सानुस्वार आदेशो जातः। **बेहिँ** इत्यत्र १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवाभावो बोध्यः। प्रस्तुतसूत्रेण **मयि** इत्यत्र ङिना सह अस्मदः स्थाने **मइँ** इत्यादेशोऽभूद्। **अमा**। यत्र अमा सह अस्मदः स्थाने **मइँ** इत्यादेशो जायते, तदुदाहरणं प्रदीयते। यथा-**मां मुञ्चतस्तव**—मइँ मेल्लन्तहो तुज्झु, प्रक्रिया १०४१ सूत्रस्य चतुर्थ-श्लोके ज्ञेया। **तुज्झु** इत्यस्य प्रक्रिया १०३८ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया।

१०४९—युष्माभिः अस्माभिर्यत् कृतम्=तुम्हेहिँ अम्हेहिँ जं किअउँ, प्रक्रिया १०४९ सूत्रे ज्ञेया। **कृतम्=किअउँ** इत्यत्र १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवं जातम्। अस्मद्+भिस् इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रेण भिसा सह अस्मदः स्थाने **अम्हेहिँ** इत्यादेशो जातः।

१०५०—मह् । अस्मद्+ङसि। १०५० सू० ङसिना सह अस्मदः स्थाने महु, मज्झु इत्यादेशौ, ततः **महु मज्झु** इति भवति। **भवन्=होन्तउ**, प्रक्रिया १०४३ सूत्रे ज्ञेया। **गतः**। गत+सि। १०६७ सू० तकारस्य दकारे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **गओ** इति भवति। अस्मद्+ङसि इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण ङसिप्रत्ययेन सह अस्मदः स्थाने **महु मज्झु** इत्यादेशौ जातौ। **ङसा**। ङस्-प्रत्ययेन सह यत्र अस्मदः स्थाने **महु** इत्यादेशो भवति, तदुदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—

मम कान्तस्य द्वौ दोषौ सखि !, उपालम्भस्व अलीकम् ।

ददतोऽहं परमुद्वृत्ता, युध्यमानस्य करवालः ॥१॥

भावार्थः—काचिन्नायिका निजपतेः गुण-द्वयमुखेन स्तुतिमाह—हे **सखि** ! **मम कान्तस्य**-प्रियस्य **द्वौ दोषौ**-दुर्गुणौ स्तः, एतत्त्वम् **अलीकं**—व्यर्थमेव **मा उपालम्भस्व**-न उपालम्भं देहि, त्वद्-दृष्टौ यौ दोषौ वर्तेते तौ तु गुणावेव विद्येते। यथा-एकस्तावद् दानं **ददता** सता **परमुत्कृष्टं** यथा स्यात्तथा**ऽहमुद्वृत्ता**-ममोद्धारो विहितः अपरस्तावद् **युध्यमानस्य**-युद्धं कुर्वतः मम पत्युः युद्धेन **करवाल**-कृपाण **उद्वृत्तः**-सफली-कृतः। यदा मम पतिः दानं ददाति, तदा कस्याः पतिः दानं ददातीति पिपृच्छया मम नाम सर्वत्र प्रसिद्धम्। तथा यदा मम पतिः युद्धे करवालं भ्रामयति, तदा सैनिकाः झटिति वदन्ति—**दर्शनीयः खल्वयं खड्ग-चमत्कारः**, इति कथनेन करवालस्य सर्वत्र ख्यातिर्जायते इति भावः।

मम। अस्मद्+ङस्। १०५० सू० ङसा सह अस्मदः स्थाने महु इत्यादेशे **महु** इति भवति। **कान्तस्य**। कान्त+ङस्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **कन्तहोँ** इति भवति। **द्वौ**। द्वि+औ। ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ६०९ सू० जसा सह द्विशब्दस्य वे इत्यादेशे, बाहुल्येन २३७ सू० वकारस्य बकारे **बे** इति भवति। **दोषौ**। दोष+औ। २६० सू० षकारस्य सकारे, ६११ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **दोसडा** इति भवति। **सखि** !। सखी+सि। १०९३ सूत्रेण 'हे सखि !' इत्यर्थे हेल्लि इत्यस्य प्रयोगे, १०१५ सू० सिप्रत्ययस्य लोपे **हेल्लि**! इति भवति। प्रयोगदर्शनादत्र ८४ सू० एकारस्य स्थाने इकारो न जातः। **मा**। निषेधार्थकमव्ययपदमिदम्। १००० सू० आकारस्य स्थाने अकारे जाते **म** इति भवति। **उपालम्भस्व**। उप-आङ्-पूर्वकः लम्भ्-धातुः उपालम्भे। उपालम्भ्+स्व। ८२७ सू० उपालम्भ्-धातोः स्थाने झंख इत्यादेशे, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्ये, ६६२ सू० स्वप्रत्ययस्य स्थाने सु इत्यादेशे, ६६३ सू० सु इत्यस्य हि इत्यादेशे **झङ्खहि** इति भवति। **अलीकम्**। अलीक+अम्। १०९३ सूत्रेण अलीकार्थे आलु इति देश्य-शब्दः प्रयुज्यते, १०१५ सू० अमो लोपे **आलु** इति भवति। **ददतः**। डुदाञ्-(दा)-धातुः दाने। दा+शतृ। १००० सू० आकारस्य एकारे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, ङस्-प्रत्यये, १००९ सू० ङस्-प्रत्ययस्य हो इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **देन्तहोँ** इति भवति। **अहम्**। अस्मद्+सि। १०४६ सू० अस्मदः स्थाने हउं इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे **हउं** इति भवति। **परम्**। अव्यय-पदमिदम्। २३ सू० मकारानुस्वारे, १०८९ सू० परं इत्यस्य पर इत्यादेशे **पर** इति भवति। **उद्वृत्ता**। उद्वृत्ता+सि। १०९३ सू० उद्वृत्तार्थे उव्वारिआशब्दः प्रयुज्यते, १००१ सू० आकारस्य अकारे, सेर्लोपे **उव्वारिअ** इति भवति। **युध्यमानस्य**। युध-युध् संप्रहारे। युध्+शानश्। २४५ सू० यकारस्य जकारे,

८८८ सू० धकारस्य भ्रुभ इत्यादेशे,३६१ सू० पूर्वभकारस्य जकारे, ६७० सू० आनशः स्थाने न्त इत्यादेशे, ङस्-प्रत्यये, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **जुज्झन्तहों** इति भवति । **करवालः** । करवाल+सि । १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **करवालु** इति भवति । **मम=मज्झु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

यदि भग्नाः परकीयास्ततः सखि ! मम प्रियेण ।

अथ भग्ना अस्माकं सम्बन्धिनस्तदा तेन मारितेन ॥२॥

भावार्थः—हे सखि ! यदि परकीयाः-शत्रुसैनिकाः, **भग्नाः**-मारिताः,**ततः**—तदा **मम प्रियेण**-कान्तेन,नाऽन्येनेति भावः । **अथ**—यदि चास्माकं **सम्बन्धिनः**-सैनिकाः,**भग्नाः**-हताः **तदा तेन मारितेन**-तस्मिन् प्राणनाथे मृत्युमुपगते सति, न तस्य जीवनावधिकाले इत्यर्थः ।

यदि=जइ, प्रक्रिया १०४३ सूत्रे ज्ञेया । **भग्नाः** । भग्न+जस् । ३४९ सू० नकारलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **भग्गा** इति भवति । **परकीयाः** । परकीय+जस् । ४४ सू० आदेरकारस्य आकारे, ४१९ सू० कीयप्रत्ययस्य क्क इत्यादेशे, ११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० अकारस्य आकारे, जसो लोपे **पारक्कडा** इति भवति । **ततः** । अव्ययपदमिदम् । १०८८ सू० ततः इत्यस्य तो इत्यादेशे **तो** इति भवति । **सखि** ! सखी+सि=सहि !, प्रक्रिया, १००३ सूत्रस्य प्रथम-श्लोके ज्ञेया । **मम** । अस्मद्+ङस्=मज्झु,प्रक्रिया १०३८ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **प्रियेण** । प्रिय+टा । १०६९ सूत्रेण रेफस्य वैकल्पिके लोपे, १७७ सू० यकारलोपे, १०१३ सू० टास्थाने णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **पिएण** इति भवति । **अथ=अह**,प्रक्रिया १०३८ सूत्रस्य चतुर्थ-श्लोके ज्ञेया । **अस्माकम्** । अस्मद्+आम् । १०५१ सू० आमा सह अस्मदः स्थाने अम्हहं इत्यादेशे **अम्हहं** इति भवति । **सम्बन्धिनः** । सम्बन्धिन्+जस् । १०९३ सू० सम्बन्धिन् इत्यस्य तण इत्यादेशे,१००१ सू० अकारस्य आकारे १०१५ सू० जसो लोपे **तणा** इति भवति । **तदा** । अव्ययपदमिदम् । १०८८ सू० तदा इत्यस्य तो इत्यादेशे **तो** इति भवति । **तेन** । तद्+टा=तें,प्रक्रिया १०१० सूत्रे ज्ञेया । **मारितेन** । मारित+टा । १७७ सू० तकारलोपे, ११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १०१३ सू० टास्थाने णकारे स्थानिवत्त्वेन १००४ सू० अकारस्य एकारे **मारिअडेण** इति भवति । **मम=मज्झु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०५१—अस्मद् भवन् आगतः=अम्हहं होन्तउ आगदो,प्रक्रिया १०४४ सूत्रे ज्ञेया । **अम्हहं** इत्यस्य शब्दस्य साधना त्वित्थम्-अस्मद्+भ्यस् । १०५१ सू० भ्यसा सह अस्मदः स्थाने अम्हहं इत्यादेशे **अम्हहं** इति भवति । **आमा** । आम्-प्रत्ययेन सह अस्मदः स्थाने **अम्हहं** इत्यादेशो भवति । यथा-**अथ भग्नाः अस्माकं सम्बन्धिनः**=अह भग्गा अम्हहं तणा, प्रक्रिया १०५० सूत्रे ज्ञेया । अस्मद्+आम् इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण आम्प्रत्ययेन सह अस्मदः स्थाने **अम्हहं** इत्यादेशो जातः ।

१०५२—अस्मासु । अस्मद्+सुप् । १०५२ सू० सुपा सह अस्मदः स्थाने अम्हासु इत्यादेशे **अम्हासु** इति भवति । **स्थितम्=ठिअं**, इत्यस्य प्रक्रिया १०४५ सूत्रे ज्ञेया । **अस्मासु=अम्हासु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

★ अथ सर्वादि शब्दों की सिद्धि ★

अपभ्रंश भाषा में सर्व आदि शब्दों से सम्बन्धित जो कार्य होते हैं । अब सूत्रकार

उन कार्यों का निर्देश कर रहे हैं—

१०२६—अपभ्रंश भाषा में अकारान्त सर्व आदि शब्दों से परे आए ङसि प्रत्यय के स्थान में 'हां' यह आदेश होता है। जैसे—१—**यस्मात् भवन् आगतः**=जहां होन्तउ आगदो [जहां से होता हुआ आया है], २—**तस्मात् भवन् आगतः**=तहां होन्तउ आगदो [वहां से होता हुआ आया है], ३—**कस्मात् भवन् आगतः**=कहां होन्तउ आगदो [कहां से होता हुआ आया है] यहां पर अकारान्त सर्वनाम यद्, तद् और किम् शब्द से परे आए **ङसि**-प्रत्यय के स्थान में **'हां'** यह आदेश किया गया है।

१०२७—अपभ्रंश भाषा में किम् शब्द के अकारान्त स्वरूप से परे आए **ङसि**-प्रत्यय के स्थान में **इहे** [इहे] यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—

यदि तस्याः त्रुटितः स्नेहः मया सह नाऽपि तिलतार !।
तत् कस्मात् वक्राभ्यां लोचनाभ्यां दृश्ये (अहं) शतवारम् ॥१॥

अर्थात्—हे तिलतार ! [तिल के समान जिस की आंख की तारा—कनीनिका स्निग्ध हो] यदि उस नायिका का स्नेह मेरे से समाप्त नहीं हो पाया है तो फिर वह मुझे वक्र-रोषपूर्ण लोचनों-नयनों से क्यों निहारती है ? भाव यह है कि जहां हृदयों में स्नेह-सम्बन्ध होता है, वहां पर नयनों में वक्रता-कटुता नहीं हुआ करती।

यहां पर **कस्मात्**=किहे [किस कारण से] इस शब्द में प्रस्तुत सूत्र से ङसि-प्रत्यय के स्थान में **इहे** [इहे] यह आदेश किया गया है।

१०२८—अपभ्रंश भाषा में अकारान्त सर्व आदि शब्दों से परे आए सप्तमी के एकवचन **ङि**-प्रत्यय के स्थान में **'हिं'** यह आदेश होता है। जैसे—

यस्मिन् कल्प्यते शरेण शरः, छिद्यते खड्गेन खड्गः।
तस्मिन् तादृशे भट-घटा-निवहे कान्तः प्रकाशयति मार्गम् ॥१॥

अर्थात्—जिस युद्ध में बाण से बाण काटा जाता है, तलवार से तलवार काटी जा रही है, योद्धा-रूप घटाओं के समूह वाले ऐसे युद्ध में मेरा कान्त [प्रीतम] मार्ग प्रकाशित करता है, योद्धाओं को युद्ध-कला की शिक्षा दे रहा है।

यहां पर १—**यस्मिन्**=जहिं [जिस में], २—**तस्मिन्**=तहिं [उस में] इन शब्दों के **ङि**-प्रत्यय के स्थान में **'हिं'** यह आदेश किया गया है।

एकस्मिन् अक्षिणि श्रावणः, अन्यस्मिन् भाद्रपदः,
माघः महीतल-स्रस्तरे, गण्डस्थले शरद्।
अङ्गेषु ग्रीष्मः सुखासिका-तिलवने मार्गशिराः,
तस्याः मुग्धायाः मुखपङ्कजे आवासितः शिशिरः ॥२॥

अर्थात्—पति-वियोग-जन्य दुःख से व्याकुल किसी नायिका का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि उस की एक आंख में श्रावण और दूसरी में भाद्रपद मास निवास कर रहा है, अर्थात् श्रावण-भाद्रपद की भांति उस के दोनों नेत्रों में अश्रु बह रहे हैं। पृथ्वी-तल के स्रस्तर [बिछौने] पर माघ मास विद्यमान है,-पृथ्वी पर पत्तों का बिछौना किए हुए है। गण्डस्थल [कपोलों] पर शरद् ऋतु है—लालिमा के स्थान पर श्वेतिमा आई हुई है। वियोग-जनित उष्णता के कारण अंगों में ग्रीष्मतु-ग्रीष्मता है। सुखासिका [सुख की अवस्थिति] रूप तिलवन [तिलों का वन] में मार्गशीर्ष है। अर्थात् मार्गशीर्ष

मास में जैसे तिलों का अन्त हो जाता है, उसी प्रकार उस वियोगिनी के सुख रूपी तिलों का अन्त हो चुका है, और उस मुग्धा-सुन्दरी के मुखपङ्कज [मुखरूपी कमल] पर शिशिर का आवास है, वियोग के कारण मुख की कान्ति म्लान हो चुकी है।

१—**एकस्मिन्**=एक्कहिं (एक में),२—**अन्यस्मिन्**=अन्नहिं (दूसरे में) इन दोनों पदों में **ङि**-प्रत्यय के स्थान में 'हिं' यह आदेश किया गया है।

हृदय ! स्फुट तडिव् इति कृत्वा कालक्षेपेण किम् ?।
पश्यामि हतविधिः कस्मिन् स्थापयति त्वया विना दुःखशतानि ॥३॥

अर्थात्—हे हृदय ! '**तड़ाक**' ऐसा शब्द करके विदीर्ण हो जा, फट जा, तू कालक्षेप [विलम्ब] क्यों कर रहा है ? तेरे विदीर्ण हो जाने पर मैं देखती हूं कि हतविधि-दुर्भाग्य तेरे बिना सैंकड़ों दुःखों को कहां स्थापित करता है ?

यहां पर-**कस्मिन्**=कहिँ (किस में) इस शब्द के **ङि**-प्रत्यय के स्थान में प्रस्तुत सूत्र के द्वारा '**हिं**' यह आदेश किया गया है।

१०२६—अपभ्रंशभाषा में **यत्, तत्** और **किम्** (जब ये अकारान्त बन जाते हैं तब) इन अकारान्त शब्दों से आगे आए **ङस्** प्रत्यय के स्थान में **आसु** (आसु) यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—

कान्तः अस्मदीयः हला सखिके ! निश्चयेन रुष्यति यस्य।
अस्त्रैः शस्त्रैः हस्तैरपि स्थानमपि भ्रंशयति तस्य ॥१॥

अर्थात्—हे *हला सखि ! मेरा कान्त [प्रीतम] जब जिस पर रुष्ट हो जाता है, तब वह उस के निवास स्थान को अस्त्रों [फेंक के मारे जाने वाले हथियारों],शस्त्रों [बिना फेंके मारे जाने वाले हथियारों] और [अधिक क्या] हाथों से भी नष्ट कर डालता है।

यहां पर—१—**यस्य**=जासु (जिसके), २—**तस्य**=तासु (उस के) इन दो शब्दों में प्रस्तुतसूत्र से **ङस्**-प्रत्यय के स्थान में '**आसु**' यह आदेश किया गया है।

जीवितं कस्य न वल्लभकं, धनं पुनः कस्य नेष्टम् ?।
द्वे अपि अवसर-निपतिते तृणसमे गणयति विशिष्टः ॥२॥

अर्थात्—जीवन किसे प्रिय नहीं है ? और धन किसे इष्ट नहीं है ? अर्थात् ये दोनों वस्तुएं सब को प्रिय हैं, इष्ट हैं, परन्तु अवसर आने पर विशिष्ट व्यक्ति (महापुरुष) जीवन और धन इन दोनों को तृण के समान ही समझता है, दोनों का परित्याग कर देता है।

यहां पर **कस्य**=कासु (किस को) इस शब्द में **ङस्**-प्रत्यय को '**आसु**' यह आदेश किया गया है।

१०३०—अपभ्रंशभाषा में स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान-विद्यमान **यत्, तत्** और **किम्** इन शब्दों से आगे आए **ङस्**-प्रत्यय के स्थान में **अहे**(अहे)यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—१—**यस्याः सम्बन्धी**=जहे केरउ [जिस नारी का रिश्तेदार], २—**तस्याः सम्बन्धी**=तहे केरउ [उस नारी का सम्बन्धी], ३—**कस्याः सम्बन्धी**=कहे केरउ [किस नारी का सम्बन्धी] यहां पर **यत्** आदि शब्दों के **ङस्**-प्रत्यय के स्थान में '**अहे**' यह आदेश किया गया है।

१०३१—अपभ्रंश भाषा में **यत्** और **तत्** इन दोनों शब्दों के स्थान में **सि** और **अम्** इन प्रत्ययों के आगे रहने पर यथासंख्य-क्रमशः ध्रुं और त्रं ये दो आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे—**प्राङ्गणे**

*स्त्रियों को सम्बोधित करने का अव्यय। जैसे—हला शकुन्तले !।

तिष्ठति नाथः, यः सः रणे करोति न भ्रान्तिम्—प्रङ्गणि चिट्ठदि नाहु ध्रु त्रं रणि करदि न भ्रन्ति (मेरे पतिदेव प्राङ्गण में विराजमान हैं, वो जो युद्ध में भ्रान्ति नहीं करता है, भाव यह है कि उस व्यक्ति को युद्ध में जो सन्देह नहीं है,इसका कारण है कि मेरे पति-देव उसके सामने आँगन में खड़े हैं) यहां पर—**यः** को **ध्रु** और **सः** को **त्रं** ये दो आदेश क्रमशः विकल्प से किए गए हैं। आदेशों के अभावपक्ष में—**तद् कथ्यते यद् निर्वहति**=तं बोल्लिअइ जु निव्वहइ (उस से वह कहा जाता है, जो वह निभाता है) यहां पर **यद्** और **तद्** इन शब्दों को क्रमशः **ध्रु** और **त्रं** ये दो आदेश नहीं हो सके।

१०३२—अपभ्रंशभाषा में, नपुंसकलिङ्ग में वर्तमान-विद्यमान **इदम्** शब्द को **सि** और **अम्** इन प्रत्ययों के आगे रहने पर '**इमु**' यह आदेश होता है। जैसे—**इदं कुलं तव सम्बन्धी। इदं कुलं पश्य**—इमु कुलु तुह तणउं। इमु कुलु देक्खु [यह कुल-खानदान तेरा सम्बन्धी है,इस कुल को देखो] यहां पर **इदम्** शब्द को '**इमु**' यह आदेश किया गया है।

१०३३—अपभ्रंश भाषा में स्त्रीलिङ्ग,पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में वर्तमान-विद्यमान **एतद्** शब्द के स्थान में **सि** और **अम्** इन प्रत्ययों के परे होने पर यथासंख्य-क्रमशः एह,एहो और एहु ये तीन आदेश होते हैं। अर्थात्—एतद् शब्द को **स्त्रीलिङ्ग में एह, पुल्लिङ्ग में एहो और नपुंसक-लिङ्ग में** एतद् शब्द् को **एहु** यह आदेश हो जाता है। जैसे—

एषा कुमारी, एष नरः, एतद् मनोरथ-स्थानम्।
एतद् मूढानां चिन्तयतां पश्चात् भवति विभातम् ॥१॥

अर्थात्—यह कुमारी है—कन्या है, यह पुरुष है, यह मनोरथों का स्थान है, मूर्खों के इस प्रकार चिन्तन करते-करते ही पीछे प्रभात हो जाता है।

यहां पर-**एषा** को **एह**। (यह कन्या) **एषः** को **एहो** (यह पुरुष) और **एतद्** को **एहु** (यह स्थान) ये आदेश किए गए हैं।

१०३४—अपभ्रंश भाषा में **जस्** और **शस्** इन प्रत्ययों के परे रहने पर **एतद्** शब्द के स्थान में '**एइ**' यह आदेश होता है। जैसे—१—**एते तेऽश्वाः,एषा स्थली**—*एइ ते घोड़ा,एह थलि [ये वे घोड़े हैं, यह युद्धभूमि है], २—**एतान् पश्य**=एइ पेच्छ [इन को देखो] यहां पर—१—**एते**=एइ (ये), २—**एतान्**=एइ (इन को) इन पदों में क्रमशः **जस्** और **शस्** प्रत्यय के परे रहते **एतद्** शब्द के स्थान में '**एइ**' यह आदेश किया गया है।

१०३५—अपभ्रंश-भाषा में **जस्** और **शस्** इन प्रत्ययों के परे रहते **अदस्** शब्द के स्थान में '**ओइ**' यह आदेश होता है। जैसे—

यदि पृच्छथ गृहाणि बृहन्ति, ततो बृहन्ति गृहाणि अमूनि।
विह्वलित-जनाभ्युद्धरणं कान्तं कुटीरके पश्य ॥१॥

अर्थात्—यदि तुम बड़े घरों को पूछते हो,तो देखो,बड़े घर ये सामने हैं। यदि पीड़ित जनों का उद्धार करने वाले महापुरुष को देखना हो तो कुटीर[छोटी कुटिया]में बैठे मेरे कान्त को देखो। भाव यह है कि यह कुटीर भी बड़ा घर होता है, जहां जन-कल्याण करने वाले लोगों का निवास रहता है।

यहां पर १—**अमूनि**=ओइ [वे हैं] इस पद में **जस्** प्रत्यय के परे रहते अदस् शब्द को **ओइ** यह आदेश किया गया है। अथवा—२—**अमूनि पृच्छ** [उन को पूछो] ऐसी व्याख्या होने पर **अमूनि**

*देखो १००१वें सूत्र का चतुर्थ श्लोक।

यहां पर अवस् शब्द का शस् प्रत्यय के परे रहते 'ओइ' यह रूप बन जाता है।

१०३६—अपभ्रंश भाषा में सि आदि प्रत्ययों के परे होने पर इदम् शब्द के स्थान में 'आय' यह आदेश होता है। जैसे—

इमानि लोकस्य लोचनानि जातिं न स्मरन्ति न भ्रान्तिः।
अप्रिये दृष्टे मुकुलितानि प्रिये दृष्टे विहसन्ति ॥१॥

अर्थात्—लोगों के ये लोचन-नयन अपनी जाति का [अपनी जाति वाले कमलों का] स्मरण करते हैं, इस में कोई भ्रान्ति सन्देह नहीं है, अप्रिय के देखने पर ये मुकुलित [बन्द] हो जाते हैं और प्रिय के देखने पर विकसित। भाव यह है कि जैसे सूर्यविकासी या चन्द्रविकासी कमल सूर्य या चन्द्र को देख कर विकसित तथा इन के अस्त हो जाने पर मुकुलित हो जाते हैं, वैसे ही प्राणिजगत के नयन भी प्रिय को देखकर विकसित-प्रसन्न और अप्रिय जन को निहार कर मुकुलित-उदासीन हो जाते हैं।

यहां पर **इमानि**—आयइं [ये] इस पद में प्रस्तुत सूत्र से जस् प्रत्यय परे होने पर इदम् शब्द के स्थान में 'आय' यह आदेश किया गया है। आय-आदेश का **दूसरा उदाहरण**—

शुष्यतु मा शुष्यतु वा उदधिः, वडवानलस्य किं तेन ?।
यद् ज्वलति जले ज्वलनः, अनेनाऽपि किं न पर्याप्तम् ॥२॥

अर्थात्—उदधि-समुद्र सूखे अथवा न सूखे, वडवानल [समुद्र की अग्नि] को इस से क्या प्रयोजन है ? जल के मध्य में वह अग्नि जलती रहती है, क्या इतना ही पर्याप्त नहीं ? अर्थात् जल में अग्नि का सदा जाज्वल्यमान रहना, यह भी बहुत बड़ी बात है। शक्तिशाली शत्रु का भले ही बीजनाश न हो तथापि अशक्त व्यक्ति का सशक्त व्यक्ति के विरोध में खड़ा होना ही बड़े साहस का कार्य है।

यहां पर **अनेन**—आएण (इस से) इस पद में टा-प्रत्यय परे होने पर **इदम्** शब्द के स्थान में **आय** यह आदेश किया गया है। आय-आदेश का **तीसरा उदाहरण**—

अस्य दग्ध-कलेवरस्य यद् वाहितं तत्सारम्।
यदि आच्छाद्यते तदा कुथ्यति, अथ दह्यते तदा क्षारः ॥३॥

अर्थात्—इस दग्ध-कलेवर [निकृष्ट शरीर] में से संयम आदि अध्यात्म अनुष्ठानों के द्वारा जो प्राप्त कर लिया जाए, वही सार है, उत्तम है क्योंकि यदि इसे दबाया (ढकाया) जाए तो यह सड़ जाता है, और यदि इसे जलाया जाए तो इस की राख बन जाती है।

यहां पर पठित—**अस्य**—आयहो (इस का) इस पद में ङस्-प्रत्यय परे होने पर प्रस्तुत सूत्र से **इदम्** शब्द के स्थान में 'आय' यह आदेश किया गया है।

१०३७—अपभ्रंशभाषा में **सर्व** शब्द के स्थान में 'साह' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—

सर्वोऽपि लोकः प्रस्पन्दते बृहत्त्वस्य कृते।
बृहत्त्वं परिप्राप्यते हस्तेन मुक्तेन ॥१॥

अर्थात्—सब लोग बड़प्पन के लिए बेचैन हो रहे हैं, परन्तु यह बड़प्पन तो मुक्त हस्त से अर्थात् दान करने से ही प्राप्त होता है।

यहां पर **सर्वः**—साहु (सब) इस पद में **सर्व** शब्द को 'साह' यह आदेश विकल्प से किया गया है। जहां पर यह आदेश नहीं हो सका, वहां पर "**सर्वः अपि**" का '**सव्वु वि** (सब ही)' यह रूप बन जाता है।

१०३८—अपभ्रंश भाषा में **किम्** शब्द के स्थान में **काइं**(काइँ) और **कवण** ये दो आदेश विकल्प

से होते हैं। काइं के स्थान पर काइँ ऐसा पाठान्तर भी उपलब्ध होता है। अतः आदेश के दोनों प्रकार यथास्थान प्रयुक्त किए जा सकते हैं। जैसे—

यदि न स आयाति दूति! गृहं किमधोमुखं तव ?।
वचनं यः खण्डयति तव सखिके! स प्रियो भवति न मम ॥१॥

अर्थात्—हे दूति! यदि वे घर नहीं आते तो तेरा मुख अधः (अवनत) क्यों हो गया है ?, तू उदासीन क्यों हो गई है ?, हे सखि ! जो तेरा वचन खण्डित करता है, तेरा कहना नहीं मानता है, वह मेरा भी प्रिय नहीं हो सकता। अर्थात् मेरा भी उस से कोई सम्बन्ध नहीं है।

यहां पर—**किम्** के स्थान में **'काइ'** यह आदेश किया गया है। दूसरा उदाहरण—**किं न दूरे पश्यति ?**—काइँ न दूरे देक्खइ ? [क्या वह दूर नहीं देखता है] यहां पर भी **किम्** शब्द के स्थान में **'काइँ'** यह आदेश कर रखा है। यह श्लोक का चतुर्थ चरण है, सम्पूर्ण श्लोक १०२० वें सूत्र में दिया जा चुका है। **तीसरा उदाहरण—**

स्फोटयतः यौ हृदयमात्मीयं तयोः परकीया का घृणा ?।
रक्षत लोकाः! आत्मानं बालायाः जातौ विषमौ स्तनौ ॥२॥

इस श्लोक का अर्थ १०२१ वें सूत्र में लिखा जा चुका है। यहां पर **का** के स्थान में **कवण** यह आदेश किया गया है। **चतुर्थ उदाहरण—**

सुपुरुषाः कङ्गोः अनुहरन्ति भण कार्येण केन ?।
यथा यथा बृहत्त्वं लभन्ते तथा तथा नमन्ति शिरसा ॥३॥

अर्थात्—सज्जन पुरुष कङ्गु नामक पौधे का अनुसरण-अनुकरण करते हैं ? यह अनुकरण कैसे किया जाता है ? इस बात को स्पष्ट करते हुए श्लोककार कहते हैं कि जैसे कङ्गु के पौधे को ज्यों-ज्यों फल आते हैं त्यों-त्यों वह नीचे की ओर झुकता चला जाता है, वैसे ही सज्जन पुरुष ज्यों-ज्यों बड़प्पन प्राप्त करते हैं, त्यों-त्यों शिर के द्वारा विनत-विनम्र होते चले जाते हैं। भाव यह है कि सज्जन व्यक्तियों की महानता नम्रता में है, अभिमान में नहीं।

यहां पर **केन**—कवरोण [किस से] इस पद में **टा**-प्रत्यय के परे रहने पर **किम्** शब्द के स्थान में **'कवण'** यह आदेश किया गया है। जहां पर प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है वहां पर किम् शब्द को **काइँ** और **कवण** ये आदेश नहीं होते। जैसे—

यदा सस्नेहा तदा मृतिका, अथ जीवति निःस्नेहा।
द्वाभ्यामपि प्रकाराभ्यां गतिका धन्या, किं गर्जसि खलमेघ! ॥४॥

अर्थात्—यदि वह स्नेह से युक्त है, तो वह मर चुकी है, यदि जीवित है तो स्नेह से रहित है। मेरे लिए वह दोनों अवस्थाओं में ही मृतक के समान है। इसलिए हे दुष्ट मेघ! तू क्यों गरज रहा है ?

यहां पर वैकल्पिक होने के कारण प्रस्तुत सूत्र से **किम्** शब्द के स्थान में **काइं** या **कवण** यह आदेश नहीं हो सका। अतः **किम्** शब्द का कि यह रूप बनाया गया है।

१०३६—अपभ्रंश-भाषा में **सि**-प्रत्यय के परे होने पर **युष्मद्** शब्द के स्थान में **'तुहुं'** यह आदेश होता है। जैसे—

भ्रमर! मा रुणझुणि [इति] शब्दय, तां दिशं दृष्ट्वा मा रुदिहि।
सा मालती देशान्तरिता यस्याः [कृते] त्वं म्रियसे वियोगे ॥१॥

अर्थात्—हे भ्रमर! तू रुणझुणि इस प्रकार के शब्द मत कर और उस दिशा को देख कर रुदन भी न कर क्योंकि जिस के वियोग में तू मर रहा है, वह मालती [एक लताविशेष, इस के फूल बड़े खुशबूदार होते हैं] देशान्तर [अन्य देश] चली गई है ! ।

यहां पर **त्वम्**=तुहुं (तू) इस शब्द में सि-प्रत्यय परे होने पर **युष्मद्** शब्द के स्थान में 'तुहुं' यह आदेश किया गया है ।

१०४०—अपभ्रंश भाषा में युष्मद् शब्द के स्थान में जस् और शस् प्रत्यय परे रहने पर प्रत्येक को **तुम्हे** और **तुम्हइं** ये दो आदेश होते हैं । अर्थात्—जस् प्रत्यय परे होने पर भी युष्मद् शब्द के स्थान में **तुम्हे** और **तुम्हइं** ये दो आदेश होते हैं, और शस् प्रत्यय के परे होने पर भी युष्मद् शब्द के स्थान में **तुम्हे** और **तुम्हइं** ये दो आदेश किए जाते हैं । जैसे—१—**यूयम् जानीथ**=तुम्हे, तुम्हइं जाणह (तुम सब जानते हो), २—**युष्मान् प्रेक्षते**=तुम्हे तुम्हइं पेच्छइ (वह तुम को देखता है) यहां पर **जस्** और **शस्** प्रत्यय के परे होने पर **युष्मद्** के स्थान में **तुम्हे** और **तुम्हइं** ये दो आदेश किए गए हैं । यहां पर एक प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र में '**जस्-शसोः**' यह द्विवचनान्त पद है, और '**तुम्हे तुम्हइं**' ये आदेश पद एकवचनान्त हैं । स्थानी और आदेश में यह वचन-भेद क्यों रखा गया है ? उत्तर में निवेदन है कि इस वचनभेद का कारण **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** [स्थानी और आदेश की संख्या समान हो तो वहां पर आदेश क्रम से प्रथम को प्रथम और दूसरे को दूसरा इस प्रकार यथासंख्य होते हैं] इस परिभाषा की निवृत्ति करना है । अर्थात्—वचन-भेद के कारण यहां पर इस परिभाषा की प्रवृत्ति नहीं होती है ।

१०४१—अपभ्रंश भाषा में **टा**, **ङि** तथा **अम्** इन प्रत्ययों के साथ **युष्मद्** शब्द के स्थान में **पइं** [पइँ] और **तइं** [तइँ] ये दो आदेश होते हैं । **पइँ** और **तइँ** ऐसा पाठान्तर भी उपलब्ध होता है । अतः आदेशों के दोनों प्रकार आवश्यकतानुसार यथास्थान प्रयोग में लाए जा सकते हैं । **टाप्रत्यय का उदाहरण** इस प्रकार है—

त्वया मुक्तानामपि वरतरो ! भ्रश्यति पत्रत्वं न पत्राणाम् ।
तव पुनः छाया यदि भवेत्, कथमपि तावत् तैः पत्रैः ॥१॥

अर्थात्—हे श्रेष्ठ वृक्ष! तुझ से छोड़ देने पर भी पत्रों (पत्तों) का पत्र-त्व समाप्त नहीं होता, परन्तु तेरी छाया तो उन पत्रों के अस्तित्व पर ही निर्भर है । भाव यह है कि हे वृक्षराज ! तुम्हारे से वियुक्त हो जाने पर भी पत्रों का पत्रत्व [उन का अपना स्वाभाविक गुण] कहीं नहीं जाता, किन्तु पत्रों के अभाव में तुम्हारा तो स्वरूप ही लड़खड़ा जाता है, क्योंकि पत्रों के बिना छाया प्रदान करने की तुम्हारी क्षमता ही समाप्त हो जाती है । अतः तुम्हारी शोभा तो पत्रों के साथ ही है ।

यहां पर **त्वया**=पइँ (तुझ से) इस पद में टा-प्रत्यय के साथ **युष्मद्** शब्द के स्थान में '**पइं**' यह आदेश किया गया है । **टा-प्रत्यय का दूसरा उदाहरण**—

मम हृदयं त्वया, तया त्वं, साऽपि अन्येन विनाट्यते ।
प्रिय ! किं करोम्यहं किं त्वं मत्स्येन मत्स्यः गिल्यते ॥२॥

अर्थात्—तुझ से मेरा हृदय तथा उस से तू विडम्बित हो रहा है और वह किसी अन्य पुरुष से विडम्बित की जा रही है [खिन्नता अनुभव कर रही है] प्रिय ! मैं क्या करूं और तू भी क्या करे ? सच तो यह है कि बड़े मत्स्य के द्वारा छोटे मत्स्य को निगला जा रहा है ।

यहां पर—**त्वया**=तइं (तुझ से) इस पद में टा-प्रत्यय के साथ **युष्मद्** शब्द के स्थान में **'तइं'** यह आदेश किया गया है। **ङि-प्रत्यय का** उदाहरण—

त्वयि मयि द्वयोरपि रणगतयोः को जयश्रियं तर्कयति ? ।
केशैः लात्वा यमगृहिणीं भण सुखं कस्तिष्ठति ?॥३॥

अर्थात्—तेरे और मेरे इस तरह दोनों के रण-युद्ध में जाने पर विजयलक्ष्मी में कौन सन्देह कर सकता है ? भाव यह है कि विजय-लक्ष्मी को हम अवश्य प्राप्त करेंगे, क्योंकि यमराज की गृहिणी को केशों से पकड़ने वाला कौन सुख से रह सकता है ? अर्थात् कोई नहीं।

यहां पर—**त्वयि**=पइं (तेरे) इस पद में ङि-प्रत्यय के साथ **युष्मद्** शब्द के स्थान में **'पइं'** यह आदेश किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि जैसे **ङि-प्रत्यय** के साथ **युष्मद्** शब्द के स्थान में **'पइं'** यह आदेश किया गया है, वैसे प्रस्तुत सूत्र से होने वाले 'तइं' इस दूसरे आदेश का उदाहरण भी समझ लेना चाहिए। **अम्-प्रत्यय का उदाहरण**—

त्वां मुञ्चन्त्याः मम मरणं, मां मुञ्चतः तव।
सारस ! यस्य यः दूरवर्ती, सोऽपि कृतान्तस्य साध्यः ॥४॥

अर्थात्—तुझ को छोड़ती हुई का मेरा मरण है, और मुझ को छोड़ते हुए का तेरा मरण है। हे सारस ! जो जिस के दूर है, वही मृत्यु के मुख में है।

यहां पर **त्वाम्**=पइं (तुझ को) इस पद में **अम्**-प्रत्यय के साथ **युष्मद्** को **पइं** यह आदेश किया गया है। **'पइं'** इस आदेश के समान ही **'तइं'** इस आदेश का उदाहरण भी समझ लेना चाहिए।

१०४२—अपभ्रंश-भाषा में **भिस्**-प्रत्यय के साथ **युष्मद्** शब्द के स्थान में **'तुम्हेहिं'** यह आदेश होता है। जैसे—

युष्माभिः अस्माभिः यत् कृतं दृष्टं बहुक-जनेन।
तत् तावत् समरभरः निर्जितः एक-क्षणेन ॥१॥

अर्थात्—तुमने और हम ने जो कुछ किया है, उसे बहुत से लोगों ने देखा है। वह इतना महान युद्ध एक क्षण में ही जीत लिया गया था।

यहां पर-**युष्माभिः**=तुम्हेहिं (तुम ने) इस पद में प्रस्तुत सूत्र से भिस्-प्रत्यय के साथ **युष्मद्** शब्द के स्थान में **'तुम्हेहिं'** यह आदेश किया गया है।

१०४३—अपभ्रंश-भाषा में **ङसि** और **ङस्** प्रत्यय के साथ **युष्मद्** शब्द के स्थान में १—तउ, २—**तुज्झ** और ३—**तुध्र** ये तीन आदेश होते हैं। जैसे—१—**त्वत् भवन् आगतः**=तउ होन्तउ आगदो, तुज्झ होन्तउ आगदो **अथवा** तुध्र होन्तउ आगदो [तुझ से होता हुआ आ गया] यहां पर **ङसि-प्रत्यय** के साथ **युष्मद्** शब्द के स्थान में तउ आदि तीन आदेश किए गए हैं। **ङस्-प्रत्यय का उदाहरण**—

तव गुणसम्पदं, तव मतिं, अनुत्तरां क्षान्तिम्।
यदि उत्पन्नाः अन्यजनाः महीमण्डले शिक्षन्ते ॥१॥

अर्थात्—हे प्रभो ! मही-मण्डल (जगत) में तेरी गुणसम्पत्ति, तेरी मति (बुद्धि) और तेरी अनुत्तरप्रधान क्षान्ति-क्षमा से यदि अन्य लोग जन्म से ही शिक्षा प्राप्त कर लेवें तो उनका अवश्य ही कल्याण हो जाए।

यहां पर १—**तव**=तउ, २—**तव**=तुज्झ, और ३—**तव**=तुध्र, इन पदों में **ङस्-प्रत्यय** के साथ

युष्मद् शब्द के स्थान में क्रमशः तउ आदि तीनों आदेश किए गए हैं।

१०४४—अपभ्रंश भाषा में भ्यस् और आम् इन प्रत्ययों के साथ युष्मद् शब्द के स्थान में 'तुम्हहं' यह आदेश होता है। जैसे—युष्मभ्यं भवन् आगतः=तुम्हहं होन्तउ आगदो [तुम्हारे से होता हुआ आ गया], २—युष्माकं सम्बन्धी धनम्=तुम्हहं केरउं धणु [धन तुम्हारा सम्बन्धी है] यहां पर भ्यस् और आम् प्रत्यय के साथ युष्मद् शब्द के स्थान में 'तुम्हहं' यह आदेश किया गया है।

१०४५—अपभ्रंशभाषा में सुप्-प्रत्यय के साथ युष्मद् शब्द के स्थान में 'तुम्हासु' यह आदेश होता है। जैसे—युष्मासु स्थितम्=तुम्हासु ठिअं [तुम लोगों में ठहरा हुआ] यहां पर सुप् प्रत्यय के साथ युष्मद् शब्द के स्थान में 'तुम्हासु' यह आदेश किया गया है।

१०४६—अपभ्रंश भाषा में सि-प्रत्यय परे होने पर अस्मद् शब्द के स्थान में 'हउं' यह आदेश होता है। जैसे—तस्य अहं कलियुगे दुर्लभस्य=तसु हउं, कलिजुगि *दुल्लहहो। अहम्=हउं यहां पर सिप्रत्यय परे रहते अस्मद् शब्द के स्थान में प्रस्तुत सूत्र से 'हउं' यह आदेश किया गया है।

१०४७—अपभ्रंश-भाषा में जस् और शस् प्रत्यय परे होने पर अस्मद् शब्द को अम्हे और अम्हइं ये दो आदेश होते हैं। जैसे—

वयं स्तोकाः, रिपवः बहवः, कातरा एवं भणन्ति।
मुग्धे! निभालय गगनतलं कति जनाः ज्योत्स्नां कुर्वन्ति ॥१॥

अर्थात्—हम थोड़े हैं और शत्रु अधिक हैं, इस प्रकार की भाषा कायर लोग बोला करते हैं। मुग्धे! [हे सुन्दरि!] देख, गगन-तल को, कितने लोग प्रकाशित करते हैं? अर्थात् अकेला सूर्य ही गगन-मण्डल को प्रकाश प्रदान करता है। अतः अकेलेपन से डरना नहीं चाहिए।

यहां पर—१—वयं=अम्हे (हम) इस पद में जस्-प्रत्यय के आगे होने पर अस्मद् शब्द को अम्हे यह आदेश किया गया है। दूसरा उदाहरण—

अम्लत्वं (स्नेहं) लात्वा ये गताः पथिकाः परकीयाः केऽपि।
अवश्यं न स्वपन्ति सुखासिकायां यथा वयं तथा तेऽपि ॥२॥

अर्थात्—जो परकीय-दूसरे पथिक लोग स्नेह लगाकर चले गए हैं, अवश्य ही वे सुख की शय्या पर नहीं सो सकते। जैसे हम दुःखी हैं, वैसे ही वे भी दुःखी होंगे।

यहां पर वयम्=अम्हइं [हम] इस शब्द में जस्-प्रत्यय परे रहते अस्मद् शब्द के स्थान में अम्हइं यह आदेश किया गया है। शस् का उदाहरण—अस्मान् पश्यति=अम्हे देक्खइ, अम्हइं देक्खइ [वह हम को देखता है] यहां पर शस् प्रत्यय के परे रहते अस्मद् शब्द के स्थान में 'अम्हे' और 'अम्हइं' ये दो आदेश किए गए हैं। यहां एक आशंका उत्पन्न होती है कि प्रस्तुत सूत्र में पठित "जस्-शसोः" यह द्विवचनान्त पद है, और "अम्हे अम्हइं" ये दोनों पद एकवचनान्त हैं। ऐसा क्यों? उत्तर में निवेदन है कि वचनभेद से यहां "यथासंख्यमनुदेशः समानाम् [सम-सम्बन्धी विधि यथासंख्य होती है। अर्थात् यदि स्थानी और आदेश की संख्या समान हो तो वहां पर आदेश क्रम से प्रथम को प्रथम और द्वितीय को द्वितीय, इस प्रकार से यथासंख्य होते हैं]" इस परिभाषा की प्रवृत्ति नहीं हो पाती।

१०४८—अपभ्रंश भाषा में टा, ङि और अम् इन प्रत्ययों के साथ अस्मद् शब्द के स्थान में मइं [मइँ] यह आदेश होता है। मइँ ऐसा पाठान्तर भी उपलब्ध होता है। अतः आदेश के ये दोनों

*अर्थ के लिए १००९ वां सूत्र देखो।

प्रकार यथास्थान गृहीत किए जा सकते हैं। जहां पर जैसा प्रयोग मिले वैसा ही आदेश कर लेना चाहिए। **टा-प्रत्यय का उदाहरण**—

मया ज्ञातं प्रिये ! विरहितानां काऽपि धरा भवति विकाले ? ।
केवलं मृगाङ्कोऽपि तथा तपति यथा दिनकरः क्षयकाले ॥१॥

अर्थात्—हे प्रिये ! मैंने यह जान लिया है कि विरहित-वियोगी व्यक्तियों की विकाल [सन्ध्या-काल] में बहुत बुरी दशा होती है, उन्हें कहीं पर भी शान्ति नहीं प्राप्त होती। अधिक क्या, उस समय चन्द्रमा भी ऐसे तपता है, जैसे प्रलयकाल में सूर्य।

यहां पर—**मया**=मइं (मैंने) इस पद में प्रस्तुत सूत्र से **टा-प्रत्यय** के साथ **अस्मद्** शब्द के स्थान में '**मइं**' यह आदेश किया गया है। **ङि-प्रत्यय का उदाहरण—त्वयि मयि द्वयोरपि रण-गतयोः**=पइं मइं बेहिं वि रणगयहिं [तेरे मेरे दोनों के ही रण में जाने पर] यहां-**मयि**=मइं इस पद में ङि-प्रत्यय के साथ **अस्मद्** शब्द के स्थान में '**मइं**' यह आदेश किया गया है। यह श्लोक का एक अवयव है। सम्पूर्ण श्लोक १०४१ वें सूत्र में दिया गया है। **अम्-प्रत्यय का उदाहरण—माम् मुञ्चतः तव**=मइं मेल्लन्तहो तुज्झु [मुझ को छोडते हुए तेरा] यहां पर **अम्** प्रत्ययान्त **माम्** इस शब्द के स्थान में '**मइं**' यह आदेश किया गया है। यह भी श्लोक का एक अवयव है। सम्पूर्ण श्लोक १०४१ वें सूत्र में देखो।

१०४९—अपभ्रंश भाषा में भिस्-प्रत्यय के साथ **अस्मद्** शब्द के स्थान में "**अम्हेहिं**" यह आदेश होता है। जैसे—**युष्माभिः अस्माभिः यत् कृतम्**=तुम्हेहिं अम्हेहिं जं किअउं [तुमने और हमने जो किया] यहां पर **अस्माभिः** इस भिस्-प्रत्ययान्त **अस्मद्** शब्द के स्थान में '**अम्हेहिं**' यह आदेश किया गया है। यह श्लोक का एक चरण है, सम्पूर्ण श्लोक १०४२ वें सूत्र में दिया जा चुका है।

१०५०—अपभ्रंश भाषा में **ङसि** और **ङस्** इन प्रत्ययों के साथ **अस्मद्** शब्द के स्थान में '**महु**' और '**मज्झु**' ये दो आदेश होते हैं। जैसे—**मद् भवन् गतः**=महु होन्तउ गदो, मज्झु होन्तउ गदो [मेरे से होता हुआ गया] यहां **ङसि**-प्रत्ययान्त **अस्मद्** शब्द के स्थान में **महु** और **मज्झु** ये दो आदेश किए गए हैं। **ङस् प्रत्यय का उदाहरण**—

मम कान्तस्य द्वौ दोषौ, सखि ! मा उपालम्भस्व अलीकम् ।
ददतोऽहं परमुद्धृता युध्यमानस्य करवालः ॥१॥

अर्थात्—हे सखि ! मेरे कान्त (प्रीतम) में दो दोष-अवगुण हैं, यह तू व्यर्थ उपालम्भ दे रही है, क्योंकि वे तो गुण ही हैं। देख, दान करते हुए उसने मेरा उद्धार कर दिया है, मेरा नाम अमर बना दिया है। दूसरे युद्ध करते हुए उसने तलवार का उद्धार कर दिया है, अर्थात्—युद्ध में तलवार के चमत्कार देखकर लोग तलवार के गीत गाते नहीं थकते हैं।

यहां पर **ङस्**-प्रत्ययान्त **अस्मद्**-शब्द (मम) के स्थान में '**महु**' यह आदेश किया गया है। **ङस् प्रत्यय का दूसरा उदाहरण** इस प्रकार है—

यदि भग्नाः परकीयाः ततः सखि ! मम प्रियेण ।
अथ भग्ना अस्माकं सम्बन्धिनः, तदा तेन मारितेन ॥२॥

अर्थात्—यदि शत्रुपक्ष के सैनिक मारे गए हैं तो हे सखि ! वे मेरे प्रिय के द्वारा ही मारे गए हैं, और यदि हमारे सैनिक मारे गए हैं तो उस के मारे जाने के बाद ही। भाव यह है कि मेरे प्रीतम की अवस्थिति में हमारा कोई नुकसान नहीं कर सकता था।

यहां पर ङस्-प्रत्ययान्त अस्मद् शब्द (मम) के स्थान में प्रस्तुतसूत्र के द्वारा मज्झु यह आदेश किया गया है।

१०५१—अपभ्रंश भाषा में भ्यस् और आम् इन प्रत्ययों के साथ अस्मद् शब्द के स्थान में अम्हहं यह आदेश होता है। जैसे—१—अस्मद् भवन् आगतः=अम्हहं होन्तउ आगदो [हमारे से होता हुआ आ गया है] यहां पर भ्यस्-प्रत्ययान्त अस्मद् शब्द (अस्मद्) के स्थान में 'अम्हहं' यह आदेश किया गया है। आम्-प्रत्यय का उदाहरण=अथ भग्नाः अस्माकं सम्बन्धिनः=अह भग्गा अम्हहं तणा [यदि हमारे सम्बन्धी—पक्ष वाले मारे गए हैं] यहां पर आम्-प्रत्ययान्त अस्मद्-शब्द (अस्माकम्) के स्थान में 'अम्हहं' यह आदेश किया गया है।

१०५२—अपभ्रंशभाषा में सुप्-प्रत्यय के साथ अस्मद् शब्द के स्थान में 'अम्हासु' यह आदेश होता है। जैसे—अस्मासु स्थितम्=अम्हासु ठिअं (हमारे में रहा हुआ है) यहां पर सुप्-प्रत्ययान्त अस्मद् शब्द (अस्मासु) के स्थान में 'अम्हासु' यह आदेश किया गया है।

★ अथ स्यादि-विधिः ★

१०५३—त्यादेराद्य-त्रयस्य संबन्धिनो हिं न वा। ८।४।३८२। त्यादीनामाद्य-त्रयस्य संबन्धिनो बहुष्वर्थेषु वर्तमानस्य वचनस्याऽपभ्रंशे हिं इत्यादेशो वा भवति।

मुह-कबरि-बन्ध तहे सोह धरहिं, नं मल्ल-जुज्झु ससि-राहु करहिं।
तहे सहहिं कुरल भमर-उल-तुलिअ, नं तिमिर-डिम्भ खेल्लन्ति मिलिअ॥१॥

१०५४—मध्य-त्रयस्याऽऽद्यस्य हिः।८।४।३८३। त्यादीनां मध्य-त्रयस्य यदाद्यं वचनं तस्याऽपभ्रंशे हि इत्यादेशो वा भवति।

बप्पीहा! पिउ पिउ भणवि कित्तिउ रुअहि हयास!।
तुह जलि महु पुणु वल्लहइ बिहुँ वि न पूरिअ आस॥१॥

आत्मनेपदे। बप्पीहा! कइं बोल्लिएण, निग्घिण! वार इ वार।
सायरि भरिअइ विमल-जलि लहहि न एक्कइ धार॥२॥

सप्तम्याम्। आयहिं जम्महिं अन्नहिं वि गोरि! सु दिज्जहि कन्तु।
गय मत्तहं चत्तङ्कुसहं जो अब्भिडइ हसन्तु॥३॥

पक्षे। रुअसि। इत्यादि।

१०५५—बहुत्वे हुः।८।४।३८४। त्यादीनां मध्यम-त्रयस्य सम्बन्धि बहुष्वर्थेषु वर्तमानं यद्वचनं तस्याऽपभ्रंशे हु इत्यादेशो वा भवति।

बलि अब्भत्थणि महु-महणु लहुईहूआ सो इ।
जइ इच्छहु, वड्डत्तणउं, देहु म मग्गहु को इ॥१॥

पक्षे। इच्छह। इत्यादि।

१०५६—अन्त्य-त्रयस्याऽऽद्यस्य उं । ८ । ४ । ३८५ । त्यादीनामन्त्य-त्रयस्य यदाद्यं वचनं तस्याऽपभ्रंशे उं इत्यादेशो वा भवति ।

विहि विणडउ पीडन्तु गह मं धणि ! करहि विसाउ ।
संपइ कड्ढउँ वेस जिवँ छुडु अग्घइ ववसाउ ॥१॥

बलि किज्जउँ सुअणस्सु । (३३८,४) पक्षे । कड्ढामि इत्यादि ।

१०५७—बहुत्वे हुं । ८ । ४ । ३८६ । त्यादीनामन्त्य-त्रयस्य सम्बन्धि बहुष्वर्थेषु वर्तमानं यद्वचनं तस्य हुं इत्यादेशो वा भवति ।

खग्ग-विसाहिउ जहिँ लहहुं पिय ! तहिँ देसहिँ जाहुं ।
रण-दुब्भिक्खेँ भग्गाइं विणु जुज्झेँ न वलाहुं ॥१॥

पक्षे । लहिमु । इत्यादि ।

१०५८—हि-स्वयोरिदुदेत् । ८ । ४ । ३८७ । पञ्चम्या हि-स्वयोरपभ्रंशे इ, उ, ए इत्येते त्रय आदेशा वा भवन्ति । इत् ।

कुञ्जर ! सुमरि म सल्लइउ सरला सास म मेल्लि ।
कवल जि पाविय विहि-वसिण ते चरि माणु म मेल्लि ॥१॥

उत्— भमरा ! एत्थु वि लिम्बडइ के वि दियहडा विलम्बु ।
घण-पत्तलु छाया-बहुलु फुल्लइ जाम कयम्बु ॥२॥

एत्— प्रिय ! एम्वहिँ करे सेल्लु करि छड्डहि तुहुँ करवालु ।
जं कावालिय बप्पुडा लेहिँ अभग्गु कवालु ॥३॥

पक्षे । सुमरहि । इत्यादि ।

१०५९—वर्त्स्यति-स्यस्य सः । ८ । ४ । ३८८ । अपभ्रंशे भविष्यदर्थ-विषयस्य त्यादेः स्यस्य सो वा भवति ।

दिअहा जन्ति झडप्पडहिं पडहिँ मनोरह पच्छि ।
जं अच्छइ तं माणिअइ होसइ करतु म अच्छि ॥१॥ पक्षे । होहिइ ।

★ अथ त्यादि-विधिः ★

अपभ्रंश-भाषायां तिव्, तस्, अन्ति इत्यादि-प्रत्ययानां स्थाने यद्विधि-विधानं वर्तते, तत्प्रदर्शयति वृत्तिकारः । यथा—

१०५३—मुख-कबरी-बन्धौ तस्याः शोभां धरतः, इव मल्ल-युद्धं शशि-राहू कुरुतः ।
तस्याः राजन्ते कुरलाः भ्रमर-कुल-तुलिताः, इव तिमिर-डिम्भाः खेलन्ति मिलिताः ॥१॥

भावार्थः—कस्याश्चन नायिकायाः शोभातिशयं वर्ण्यते । यथा शशिराहू, शशी च राहुश्च

शशिराहू, मल्लयुद्धम्-मल्लयोः युद्धं कुरुतः, इव एवमेव तस्याः-प्रत्यक्षोपलभ्यमानायाः कस्याश्चिन्नायिकायाः मुख-कबरी-बन्धौ, मुखं च कबरीबन्धश्च, मुखकबरीबन्धौ, कबर्याः-वेण्याः बन्धः—रचनाविशेषः, तौ शोभां धरतः। अत्र मुखं शशितुल्यं गौरवर्णत्वात्, कबरीबन्धः राहुसमः कृष्णवर्णसाम्यात्। तस्याः ललनायाः मुख-कबरीबन्धावन्योऽन्यं शशि-राहू इव युद्धं कुर्वन्तौ प्रतीयेते। पुनरुत्प्रेक्ष्यते, तस्याः कुरलाः-केशाः, राजन्ते, किम्भूताः केशाः, भ्रमर-कुल-तुलिताः, भ्रमराणां कुलं-समूहं तस्येव तुलिताः-समानाः, अथवा चपलाः। पुनः किम्भूतास्ते कुरलाः ? तिमिर-डिम्भा इव, यथा तिमिरस्य-अन्धकारस्य डिम्भाः—बालाः, ते मिलिताः सम्मिल्य खेलन्ति-क्रीडां कुर्वन्ति, एवमेव शशिराहु-भूतास्ते कुरलाः अपि क्रीडां कुर्वन्तीति भावः।

मुख-कबरी-बन्धौ। मुख-कबरी-बन्ध + औ। १८७ सू० खकारस्य हकारे, ४ सू० ईकारस्य इकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१५ सू० जसो लोपे मुह-कबरिबन्ध इति भवति। तस्याः। तद् + ङस्। ११ सू० दकारलोपे, स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०३० सू० ङसः स्थाने डहे (अहे) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे तहे इति भवति। शोभाम्। शोभा + अम्। २६० सू० शकारस्य सकारे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० अमो लोपे सोह इति भवति। धरतः। धृञ्-धृ धारणे। धृ + तस्। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०५३ सू० अन्ति इत्यस्य स्थाने हिं इत्यादेशे धरहिं इति भवति। इव। अव्ययपदमिदम्। १११५ सू० इवार्थे नं इत्यस्य प्रयोगे नं इति भवति। मल्ल-युद्धम्। मल्लयुद्ध + अम् [युध्-धातुः संप्रहारे। युध् + क्त-त। २४५ सू० यकारस्य जकारे, ८८८ सू० धकारस्य ज्झ इत्यादेशे, ३६१ सू० पूर्वझकारस्य जकारे, बाहुल्येन ६४५ सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ, १७७ सू० तकारलोपे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये मल्लजुज्झ + अम्, इति जाते] १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे मल्लजुज्झु इति भवति। शशि-राहू। शशिराहु + औ। इत्यत्र २६० सू० उभयत्राऽपि शकारस्य सकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१५ सू० जसो लोपे ससिराहु इति भवति। कुरुतः। डुकृञ्-कृ करणे। कृ + तस्। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०५३ सू० अन्ति इत्यस्य हिं इत्यादेशे करहिं इति भवति। राजन्ते। राजृ-राज् दीप्तौ। राज् + अन्ते। ७७१ सू० राज्धातोः स्थाने सह इत्यादेशे, १०५३ सू० अन्ते इत्यस्य स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे सहहिँ इति भवति। कुरलाः। कुरल + जस्। १०१५ सू० जसो लोपे कुरल इति भवति। भ्रमर-कुल-तुलिताः। भ्रमरकुलतुलित + जस्। २५० सू० रेफलोपे, १७७ सू० ककारस्य अन्तिम-तकारस्य च लोपे, जसो लोपे भमर-उल-तुलिअ इति भवति। बाहुल्येनाऽत्र १७७ सू० तकारस्य लोपो न जातः। तिमिर-डिम्भाः। तिमिर-डिम्भ + जस्। १०१५ सू० जसो लोपे तिमिरडिम्भ इति भवति। खेलन्ति। खेलृ-खेल् क्रीडायाम्। खेल् + अन्ति। ९०१ सू० लकार-द्वित्वे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे खेल्लन्ति इति भवति। मिलिताः। मिलित + जस्। १७७ सू० तकारलोपे, १०१५ सू० जसो लोपे मिलिअ इति भवति। धरतः=धरहिं, कुरुत=करहिं, राजन्ते=सहहिँ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

१०५४— चातक ! पिउ पिउ [इति] भणित्वा कियद् रोदिषि हताश !।
तव जले, मम पुनर्वल्लभे द्वयोरपि न पूरिताशा ॥१॥

भावार्थः—काचिद् वियोगिनी नायिका चातकान्योक्त्या मनः समाधातुं चेष्टते। हे चातक !

किंभूतोऽसौ चातकः, हताशः, हता-भग्ना आशा यस्य, सः, तत्सम्बोधनम् । निराश-चातक ! **पिउ पिउ** इति भणित्वा **कियद् रोदिषि** ? कियत्काल-पर्यन्तं रोदनं करिष्यसि ? रोदनं न विधेयमिति यावत् । हेतुराह-**तव प्रीतिः जले** वर्तते, **मम च पुनः वल्लभे**-प्रियतमे विद्यते, परं दुर्दैवाद् **द्वयोरपि आशा न पूरिता** भविष्यति, अतः चिन्तां न विधेहीति भावः ।

चातक ! । चातक+सि । १०९३ सू० चातकार्थे बप्पीह-शब्दः प्रयुज्यते,१००१ सू० अकारस्य आकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **बप्पीहा**! इति भवति । **पिउ पिउ** इति ध्वनेरनुकरणमपभ्रंशे एवमेव प्रयुज्यते । नायिकापक्षे तु **प्रियः प्रियः** एवं भवति । तदा—प्रिय+सि,प्रिय+सि इति स्थिते,३५० सूत्रेण रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **पिउ पिउ** इति भवति । **भणि-त्वा** । भण-भण् भणने । भण्+क्त्वा । ११११० सू० क्त्वः स्थाने अवि इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये **भणवि** इति भवति । **कियद्** । किं मानं यस्य तद् । हैमशब्दानुशासनस्य संस्कृतव्याकरणस्य *७।१।१४८। सू० अतुप्रत्यये किमः स्थाने किय् इत्यादेशे च किय्+अत् इतिजाते, ४२८ सू० अतोः स्थाने डित् एत्तिअ इत्यादेशे,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये,अम्-प्रत्यये, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **कित्तिउ** इति भवति । **रोदिषि** । रुदिर्-रुद् अश्रुत्यागे । रुद्+सिप् । ९१० सू० अकारस्यागमे,१७७ सू० दकारलोपे, १०५४ सू० सिपः स्थाने हि इत्यादेशे **रुअहि** इति भवति । **हताश**!। हताश+सि । १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, २६० सू० शकारस्य सकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **हयास** ! इति भवति । **तव** । युष्मद्+ङस्=तुह, प्रक्रिया ५८८ सूत्रे ज्ञेया । **जले** । जल+ङि । इत्यत्र १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **जलि** इति भवति । **मम**=महु, प्रक्रिया १०५० सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **पुनर्**=पुणु, इत्यस्य प्रक्रिया १०४१ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **वल्ल-भे** । वल्लभ+ङि । १८७ सू० भकारस्य हकारे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १००५ सू० ङिना सह अका-रस्य इकारे **वल्लहइ** इति भवति । **द्वयोः** । द्वि+ओस् । ६०८ सू० द्विशब्दस्य वे इत्यादेशे,बाहुल्येन २३७ सू० वकारस्य बकारे, ६११ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १००० सू० एकारस्य इकारे, १०११ सू० आमः स्थाने हुं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **बिहुँ** इति भवति । **अपि**=वि, प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **पूरिता** । पूरिता+सि । इत्यत्र १७७ सू० तकारलोपे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पूरिअ** इति भवति । **आशा** । आशा+सि । २६० सू० शकारस्य सकारे,१००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **आस** इति भवति । **रोदिषि**=**रुअहि** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **आत्मनेपदे** । **रोदिषि** इति परस्मैपदस्य प्रयोगः, अत्र प्रस्तुतसूत्रेण सिप्प्रत्ययस्य स्थाने हि इत्यादेशो विहितः । सम्प्रति आत्मनेपदीय-क्रियापदस्योदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः । यथा—

चातक ! किं कथितेन, निर्घृण ! वारम्वारम् ।

सागरे भृते विमलजले लभसे न एकामपि धाराम् ।।२।।

भावार्थः—हे **निर्घृण** !, निर्गता घृणा-लज्जा यस्मात् सः,तत्सम्बोधनम्, हे **चातक** ! **वारं वारम्** पौनः पुन्येन **कथितेन**-कथनेन **किम्** ? न किमपीत्यर्थः । यतः **विमलजले**, विमलं-निर्मलं जलं यस्मिन्, तस्मिन् **भृते**-परिपूर्णे **सागरे**-पयोधौ **एकामपि धारां न लभसे** । **अयं भावः**-रे निर्लज्ज चातक ! सम्मुखे

*इदं किमोऽतुरिय्‌किय् चास्य ।७।१।१४८। आभ्यां मानार्थाभ्यां षष्ठ्यन्तेभ्यः अतुः स्यात्, तद्योगे चाऽनयोः यथासंख्यमिय्-किय्‌ौ स्याताम् । इयान् । कियान् पटः ।—सिद्धहेमशब्दानुशासने ।

विमलतोयभृतो यः सागरो विद्यते तत्र त्वमेकामपि बिन्दु पातु न शक्नोषि, तर्हि व्यर्थमेव पिउ पिउ इतिकथनेन को नाम लाभो भविष्यति ? न किमपीति यावत् ।

चातक ! । चातक+सि=**चप्पीहा** प्रक्रियाऽस्मिन्नेव सूत्रे पूर्वश्लोके ज्ञेया । **किम्**=काइँ, प्रक्रिया १०४१ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । इत्यत्र १००१ सू० आकारस्य स्थाने अकारे कृते **कइँ** इत्यपि भवति । **कथितेन** । कथ-(कथ्)-धातुः कथने-प्रतिपादने । कथ्+क्त-त । इत्यत्र ६७३ सूत्रेण कथ्-धातोः स्थाने बोल्ल इत्यादेशे,६४५ सू० अकारस्य स्थाने इकारे,टा-प्रत्यये,१७७ सू० तकारलोपे,१०१३ सू० टास्थाने णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य स्थाने एकारे **बोल्लिएण** इति भवति । **निर्घृण** !। निर्घृण+सि । ३५० सू० रेफलोपे, १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, ३६० सू० घकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वघकारस्य गकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **निग्घिण** ! इति भवति । **वारम् वारम्** । वार+अम्, वार+अम् । बाहुल्येन २३७ सू० वकारस्य वकारे,१०१५ सू० अमो लोपे **वार,वार** ४८८ सूत्रेण पादपूरणार्थं इकारस्य प्रयोगे **वार इ वार** इति भवति । **सागरे** । सागर+ङि । १७७ सू० गकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **सायरि** इति भवति । **भृते** । डुभृञ्-[भृ]-धारण-पोषणयोः । भृ+क्त त । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे,६४५ सू० अकारस्य इकारे, ङिप्रत्यये,१७७ सू० तकारलोपे,११०० सू० अप्रत्यये, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **भरिअइ** इति भवति । **विमलजले** । विमलजल+ङि । १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **विमलजलि** इति भवति । **लभसे** । डुलभष्-लभ् प्राप्तौ । लभ्+से । ९१० सू० अकारागमे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, १०५४ सू० से इत्यस्य हि इत्यादेशे **लहहि** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदमपभ्रंशे संस्कृतसममेव प्रयुज्यते । **एकाम्** । एका+अम् । ३७० सू० ककारद्वित्वे, बाहुल्येन ८४ सू० ह्रस्वस्याभावे,१००१ सू० आकारस्य अकारे,११०० सू० अप्रत्यये, १००० सू० अकारस्य इकारे,१०१५ सू० अमो लोपे **एक्कइ** इति भवति । **धाराम्** । धारा+अम् । १००१ सू० आकारस्य अकारे, अमो लोपे **धार** इति भवति । **लभसे=लहहि** इत्ययमात्मनेपदस्य प्रयोगः, अत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **दद्याम्** । दद्याम् [विधिलिङ्-लकारे] प्रस्तुतसूत्रेण यत्र मध्य-त्रयाद्य-वचनस्य स्थाने हि इत्यादेशो भवति, तदुदाहरणेन प्रदर्शयति वृत्तिकारः । यथा—

अस्मिन् जन्मनि अन्यस्मिन्नपि गौरि ! तं दद्याः कान्तम् ।
गजानां मत्तानां त्यक्ताङ्कुशानां यः [सम्मुखे] संगच्छते हसन् ॥३॥

भावार्थः—श्रद्धाभरयुक्ता काचिन्नायिका निजपतये पार्वतीं प्रार्थयते । यथा—हे **गौरि** !, पार्वति !, **तं** तादृशं **कान्तं**-प्राणनाथं हि **अस्मिन् जन्मनि तथाऽन्यस्मिन्नपि जन्मनि दद्याः**-देहि, **यः** कान्तः **त्यक्ताङ्कुशानाम्**, त्यक्ताः अङ्कुशाः यैः, तेषामङ्कुश-नियन्त्रणबहिर्भूतानां, **मत्तानाम्**-मदयुक्तानां **गजानाम्**-हस्तिनामग्रये **हसन्**-सहर्षं **संगच्छते**-सम्मुखमभ्येति ।

अस्मिन् । इदम्+ङि । १०३६ सू० इदमः स्थाने आय इत्यादेशे, १०२८ सू० ङेः स्थाने हिं इत्यादेशे,१०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **आयहिँ** इति भवति । **जन्मनि** । जन्मन्+ङि । ३३२ सू० न्मस्य मकारे,३६० सू० मकारस्य द्वित्वे,११ सू० नकारलोपे,३५ सू० स्त्रीत्वे,१०२३ सू० ङेः स्थाने हि इत्यादेशे,१०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **जम्महिँ** इति भवति । **अन्यस्मिन्** । अन्यद्+ङि । ३४९ सू० यकारलोपे,३६० सू० नकारद्वित्वे,११ सू० दकारलोपे,१०२८ सू० ङेः स्थाने हि इत्यादेशे **अन्नहिँ** इति भवति । **अपि**=वि, इत्यस्य प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया । **गौरि**!। गौरी+सि । १५९ सू० औकारस्य ओकारे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, १०१५ सू०-सेर्लोपे **गोरि** ! इति भवति । **तम्** । तद्+अम् । बाहुल्येन ५७५ सू०

तकारस्य सकारे,११ सू० दकारलोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० अमो लोपे सु इति भवति । दद्याः । डुदाञ्-दा दाने । दा+यास् । ९६७ सू० प्रकृति-प्रत्यययोर्मध्ये ज्ज इत्यस्य विकरणे,१००० सू० आकारस्य इकारे, १०५४सू० यास् इत्यस्य हि इत्यादेशे दिज्जहि इति भवति । अयं सामान्यः-विधि-लिङ्गस्य प्रयोगो ज्ञातव्यः। कान्तम् । कान्त+अम् । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे कन्तु इति भवति । गजानाम् । गज+आम् । इत्यत्र १७७ सू० जकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ,१०१६ सू० आमो लोपे गय इति भवति । मत्तानाम् । मत्त+आम् । १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे,१०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे मत्तहँ इति भवति । त्यक्ताङ्कुशानाम् । त्यक्ताङ्कुश+आम् । २८४ सू० त्यस्य चकारे,३४८ सू० संयुक्तककारस्य लोपे,३६० सू० तकारद्वित्वे,२५ सू० ङकारस्यानुस्वारे, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्ये, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे चत्तङ्कुसहं इति भवति । यः । यद्+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारे,११ सू० दकारलोपे,१००३ सू० अकारस्य ओकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे जो इति भवति । संगच्छते । सम्पूर्वकः गम्लृ(गम्)धातुः संगमने । सम्-गम्+ते । ८३५ सू० समगमः स्थाने अब्भिड इत्यादेशे, ९२८ सू० ते इत्यस्य इ इत्यादेशे अब्भिडइ इति भवति । हसन् । हस् हासे । हस्+शतृ । ९१० सू० अकारागमे,९७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे,सिप्रत्यये,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे हसन्तु इति भवति । यथा:—दिज्जहि इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । पक्षे । प्रस्तुतसूत्रप्रवृत्त्य-भावपक्ष इत्यर्थः । यथा-रोदिषि । रुदिर्-रुद् रोदने । रुद्+सिप् । ९१० सू० अकारागमे,१७७ सू० दकारलोपे, १०५४ सू० सिप्-प्रत्ययस्य वैकल्पिके हि इत्यादेशे रुअहि, हि इत्यादेशाभावपक्षे तु ९२९ सू० सिपः स्थाने सि इत्यादेशे रुअसि इति भवति । वैकल्पिकत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रेण सिपः स्थाने हि इत्यादेशो न विहितः । इत्यादि । एवमेवान्येऽपि प्रयोगाः स्वयमेव कल्पनीयाः ।

१०५५— **बलेरभ्यर्थने मधुमथनो लघुकीभूतः सोऽपि ।**
यदि इच्छथ बृहत्त्वं दत्त, मा मार्गयत कमपि ॥१॥

भावार्थः—कविः दानस्य महत्त्वं दृष्टान्तद्वारेण वर्णयति । यदि यूयं **बृहत्त्वं**-महत्त्वम् **इच्छथ**-अभिलषथ तदा **दत्त**-दानं कुरुत, किन्तु **कमपि मा**-न **मार्गयत**-कस्यापि दातृसज्जनस्यान्वेषणं न करणीयम्, याचनां मा कुरुतेति भावः । यतोहि स जगत्प्रसिद्धः **मधुमथनः**, मधुम्-मधुनामकराक्षसं मथ्नाति-हिनस्तीति मधुमथनः-विष्णुः सोऽपि **बलेः**-पाताल-राजाद् **अभ्यर्थने**-याचने **लघुकीभूतः**, वामनावतार-धारणेन लघुतमो भूतः। अतः कदाचिदपि याचना न करणीयेति भावः ।

बलेः । बलि+ङस् । इत्यत्र १०१६ सू० ङसो लोपे बलि इति भवति । अभ्यर्थने । अभ्यर्थन+ङि । ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० भकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारे,३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे अब्भत्थणि इति भवति । मधुमथनः । मधुमथन+सि । १८७ सू० धकारस्य थकारस्य च हकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे महुमहणु इति भवति । लघुकीभूतः । लघुकीभूत+सि । इत्यत्र १८७ सू० घकारस्य भकारस्य च हकारे, १७७ सू० ककारस्य तकारस्य च लोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे लहुईहूआ इति भवति । सः । तद्+सि । ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारलोपे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे सो इति भवति । अपि । अव्ययपदमिदम् । ४१ सू० अपेरादेरकारस्य

लोपे, १७७ सू० दकारलोपे **इ** इति भवति । **यदि** । २४५ सू० यकारस्य जकारे, १७७ सू० दकारलोपे **जइ** इति भवति । **इच्छथ** । इषु-इष् इच्छायाम् । इष्+थ । ८८६ सू० षकारस्य छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, १०५५ सू० थ इत्यस्य स्थाने हु इत्यादेशे **इच्छहु** इति भवति । **बृहत्त्वम्** । बृहत्-त्व+सि । १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, बाहुल्येन २३७ सू० बकारस्य वकारे, ४४५ सू० हकारस्य हु इत्यादेशे, ११ सू० तकारलोपे, ४२५ सू० त्वस्य त्तण इत्यादेशे, ४३५ सू० क-प्रत्यये, १७७ सू० ककारलोपे, १०२५ सू० अकारस्य स्थाने उं इत्यादेशे, १०१५ सू० अमो लोपे **वड्डुत्तणउं** इति भवति । **दत्त** । डुदाञ्-(दा)-दाने । दा+त । १००० सू० आकारस्य एकारे, १०५५ सू० त इत्यस्य हु इत्यादेशे **देहु** इति भवति । **मा** । अव्ययपदमिदम् । १००० सू० आकारस्य अकारे **म** इति भवति । **मार्गयत** । मार्ग (मार्ग्) अन्वेषणे याचने वा । मार्ग्+णिग्+त । ३५० रेफलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०५५ सू० त इत्यस्य हु इत्यादेशे **मग्गहु** इति भवति । **कम्** । किम्+अम् । ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, १००० सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **को** इति भवति । **अपि**=इ इति पूर्ववदेव साध्यम् । **इच्छथ**=**इच्छहु**, **दत्त**=**देहु**, **मार्गयत**=**मग्गहु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **पक्षे** । प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावपक्ष इत्यर्थः । **यथा**—**इच्छथ** । इष्+थ=इच्छ+थ । ६३२ सू० थ इत्यस्य हच् (ह) इत्यादेशे **इच्छह** इति भवति । वैकल्पिकत्वादत्र प्रस्तुत-सूत्रेण हचः स्थाने हु इत्यादेशो न जातः ।

१०५६— विधिः विनाटयतु, पीडयन्तु ग्रहाः, मा धन्ये ! कुरु विषादम् ।
संपदं कर्षामि वेश्याम्, यथा यदि राजते व्यवसायः ॥१॥

भावार्थः–सम्पद्विहीनस्य कस्यचिद् व्यापारिणः प्रियां प्रत्युक्तिरियम् । हे **धन्ये** !-हे प्रिये ! **विधिः**-भाग्यं **विनाटयतु**-प्रतिकूलो भवतु, **ग्रहाः**—पापग्रहाः, **पीडयन्तु**-पीडाकारकाः भवन्तु । तथाऽपि **विषादं**-चिन्तां **मा कुरु**-कार्षीः । यदि व्यवसायः-व्यापारः, **राजते**-वृद्धिमाप्नुयाः तदा, **यथा** द्रव्येण गणिका आकृष्यते, तथैव **वेश्यां** वेश्यारूपां **सम्पदं**-लक्ष्मीं **कर्षामि**—आकर्षयिष्यामि, ग्रहीष्यामीति भावः ।

विधिः । विधि+सि । इत्यत्र १८७ सू० धकारस्य हकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **विहि** इति भवति । **विनाटयतु** । विपूर्वको नट्धातुः विनर्तने । विनट्+णिग्+तुव् । इत्यत्र २२८ सू० नकारस्य णकारे, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, १९५ सू० टकारस्य डकारे, बाहुल्येन ६४२ सू० पूर्वाकारस्य दीर्घाभावे, ६६२ सू० तुवः स्थाने उ इत्यादेशे, १७७ सू० दकारलोपे **विणडउ** इति भवति । **पीडयन्तु** । पीड्धातुः उपतापे । पीड्+णिग्+अन्तु । ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, ६६५ सू० अन्तु इत्यस्य न्तु इत्यादेशे **पीडन्तु** इति भवति । **ग्रहाः** । ग्रह+जस् । ३५० सू० रेफलोपे, १०१५ सू० जसो लोपे **गह** इति भवति । **मा** । अव्ययपदमिदम् । १०८३ सू० मा इत्यस्य मं इत्यादेशे **मं** इति भवति । **धन्ये** ! । धन्या+सि । ३४९ सू० यकारलोपे, बाहुल्येन ३६० सूत्रेण नकारस्य द्वित्वाभावे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००० सू० आकारस्य इकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **धणि**! इति भवति । **कुरु** । डुकृञ्-कृ करणे । कृ+हि । इत्यत्र ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, १०५४ सू० हि इत्यस्य हि इत्यादेशे **करहि** इति भवति । **विषादम्** । विषाद्+अम् । २६० सू० षकारस्य सकारे, १७७ सू० दकारलोपे १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **विसाउ** इति भवति । **संपदम्** । संपद्+अम् । १०७१ सू० दकारस्य इकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **संपइ** इति भवति । **कर्षामि** । कृष्-कृष् कर्षणे । कृष्+मिव् । ८५८ सू० कृष्-धातोः स्थाने कड्ढ इत्यादेशे, १०५६ सू० मिवः स्थाने उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **कड्ढउँ** इति भवति । **वेश्याम्** । वेश्या+

अम् । ३४९ सू० यकारलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ अमो लोपे **वेस** इति भवति । **यथा** । अव्ययपदमिदम् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०७२ सू० था इत्यस्य डिम-इम इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १०६८ सू० मकारस्य सानुनासिके वकारे **जिवँ** इति भवति । **यदि** । अव्ययपदमिदम् । १०९३ सू० यदि इत्यस्य **जुड्डु** इत्यादेशे **जुड्डु** इति भवति । **राजते** । राज्-राजृ दीप्तौ । राज्+ते । ७७१ सू० राजधातोः स्थाने अग्घ इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इत्यादेशे **अग्घइ** इति भवति । **व्यवसायः** । व्यवसाय+सि । ३४९ सू० संयुक्तयकारस्य लोपे, १७७ सू० यकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **ववसाउ** इति भवति । **कर्षामि=कड्ढउँ** इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **बलिं करोमि सुजनस्य**=बलि किज्जउँ सुअणस्सु, प्रक्रिया १००९ सूत्रे ज्ञेया । **करो-मि=किज्जउँ** इत्यत्राऽपि प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **पक्षे** । प्रवृत्त्यभावपक्ष इत्यर्थः । यथा—**कर्षामि** । कृष्-कृष् कर्षणे । कृष्+मिव्=कड्ढ+मिव् । ६३० सू० मिवः स्थाने मि इत्यादेशे, ६४३ सू० अकारस्य आकारे **कड्ढामि** इति भवति । संकर्षामि=संकड्ढामि इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता । **इत्यादि** । एवमेवान्ये प्रयोगा अपि स्वयमेव कल्पनीयाः ।

१०५७— खड्ग-विसाहिअं यस्मिन् लभामहे प्रिये ! तस्मिन् देशे यामः ।
रणदुर्भिक्षेण भग्नाः विना युद्धेन न वलामहे ॥१॥

भावार्थः—हे प्रिये ! यस्मिन् देशे **खड्ग-विसाधितम्**-खड्गेन विसाधितम्-निष्पादितं द्रव्यमित्य-ध्याहार्यम्, **लभामहे**-प्राप्नुमः, तस्मिन्नेव **देशे यामः**-यास्याम इति भावः । वयं **रणदुर्भिक्षेण**-रणस्य-दुर्भिक्षः, रणाभावस्तेन **भग्नाः** नष्टाः दुःखिताः संजाताः । अतः **युद्धेन** विना न वलामहे-प्रत्यावर्तामहे । योद्धानां कृते युद्धमेव जीवनस्य निर्वाहकं भूषणञ्च भवतीति भावः ।

खड्ग-विसाधितम् । खड्ग-विसाधित+अम् । ३४८ सू० डकारलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **खग्ग-विसाहिउ** इति भवति । **यस्मिन्** । यद्+ङि । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, १०२८ सू० ङिप्रत्ययस्य हिं इत्यादेशे, १०८२ सूत्रेण उच्चारणस्य लाघवे जाते **जहिँ** इति भवति । **लभामहे** । डुलभष्-लभ् लाभे । लभ्+महे । ९१० सू० अकारागमे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, १०५७ सू० महे इत्यस्य हुं इत्यादेशे **लहहुं** इति भवति । **प्रिये !** । प्रिया+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपे, १००१ सू० आ-कारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पिय !** इति भवति । **तस्मिन्** । तद्+ङि । ११ सू० दकारलोपे, **जहिँ**-वदेव **तहिँ** इति साध्यम् । **देशे** । देश+ङि । २६० सू० शकारस्य सकारे, बाहुल्येन १०२८ सू० ङि-प्रत्ययस्य हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **देसहिँ** इति भवति । **यामः** । या धातुः प्रापणे । या+मस् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, प्रस्तुतसूत्रेण मसः स्थाने हुं इत्यादेशे **जाहुं** इति भवति । **रण-दुर्भिक्षेण** । रण-दुर्भिक्ष+टा । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० भकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-भकारस्य बकारे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, १०१३ सू० सू० टास्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **रणदुब्भिक्खें** इति भवति । **भग्नाः** । भग्न+जस् । ३४९ सू० नकारलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, ३४ सू० क्लीबत्वे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे **भग्गाइं** इति भवति । **विना** । अव्ययपदमिदम् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०९७ सू० स्वार्थे डु-(उ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **विणु** इति भवति । **युद्धेन** । युध—युध् संप्रहारे । युध्+क्त-त । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ८८८ सू०

धकारस्य भ्भ इत्यादेशे, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारे, बाहुल्येन ६४५ सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ, १७७ सू० तकारलोपे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, टा-प्रत्यये, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, अनुस्वारस्य स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **सुब्भें** इति भवति । न । अव्ययपदमिदमपभ्रंशे संस्कृतसममेव प्रयुज्यते । **वसामहे** । वस-वस् प्रत्यावृत्तौ । वस्+महे । ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, १००० सू० अकारस्य आकारे, प्रस्तुतसूत्रेण महे इत्यस्य हुं इत्यादेशे **वसाहुं** इति भवति । **लभामहे=लहहुं, यामः=जाहुं, वसामहे=वसाहुं** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **पक्षे** । अप्रवृत्त्यभावपक्ष इत्यर्थः । यथा—**लभामहे** । डुलभष्-लभ् लाभे । लभ्+महे=लह्+महे । ६३३ सू० महे इत्यस्य मु इत्यादेशे, ६४४ सू० अकारस्य इकारे **लहिमु** इति भवति । वैकल्पिकत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता । **इत्यादि** । एतादृशा अन्येऽपि प्रयोगाः स्वयमेव कल्पनीयाः ।

१०५८—पञ्चम्याः । लोट्-लकारस्य हि-स्वयोः प्रत्ययोः स्थाने इ उ ए इत्यादेशाः वैकल्पिका भवन्तीति भावः । **इत्** । इकारस्योदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः । यथा—

कुञ्जर ! स्मर मा सल्लकीः, सरलाम् श्वासान् मा मुञ्च ।
कवलाः ये प्राप्ताः विधिवशेन तांश्चर मानं मा मुञ्च ॥१॥

भावार्थः—कुञ्जर !-हे हस्तिन् ! **सल्लकीः**-करिप्रियवृक्षविशेषान्, **मा स्मर**, तासां स्मरणं मा कार्षीः, तथा **सरलान्** दीर्घानित्यर्थः, **श्वासान् मा मुञ्च** । **विधिवशेन**, विधेः वशेन-भाग्यवशेन ये **प्राप्ताः कवलाः**-ग्रासाः, **तान् चर**-भक्षय, **मानं**-स्वाभिमानं **मा मुञ्च**-त्याक्षीः । दीनो मा भवेरिति भावः ।

कुञ्जर ! । कुञ्जर+सि । १०१५ सू० सेर्लोपे **कुञ्जर!** इति भवति । **स्मर** । स्मृ चिन्तायाम् । स्मृ+हि । ७४५ सू० स्मृधातोः स्थाने सुमर इत्यादेशे, १०५८ सू० हि इत्यस्य इकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **सुमरि** इति भवति । **मा**=म, प्रक्रिया १०५५ सू० सूत्रे ज्ञेया । **सल्लकीः** । सल्लकी+शस् । १७७ सू० ककारस्य लोपे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, १०१९ सू० जसः स्थाने उकारे **सल्लइउ** इति भवति । **सरलान्** । सरल+शस् । १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० शसो लोपे **सरला** इति भवति । **श्वासान्** । श्वास+शस् । ३५० सू० वकारलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, शसो लोपे **सास** इति भवति । **मुञ्च** । मुच्लृ—मुच् मोचने । मुच्+हि । ७६२ सू० मुच्-धातोः स्थाने मेल्ल इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण हि इत्यस्य इकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **मेल्लि** इति भवति । **कवलाः** । कवल+जस् । १०१५ सू० जसो लोपे **कवल** इति भवति । **ये** । यद्+जस् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ५४७ सू० जसः स्थाने डे (ए) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १००० सू० एकारस्य इकारे **जि** इति भवति । **प्राप्ताः** । अपूर्वकः आप्लृ [आप्] धातुः प्राप्तौ । प्राप्+क्त-त । ३५० सू० रेफलोपे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, २३१ सू० द्वितीय-पकारस्य वकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, जस्-प्रत्यये, १०१५ सू० जसो लोपे **पाविय** इति भवति । **विधिवशेन** । विधिवश+टा । १८७ सू० धकारस्य हकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १००० सू० अकारस्य इकारे, १०१४ सू० टास्थाने णकारे **विहि-वसिण** इति भवति । **तान्** । तद्+शस् । ५४७ सू० शसः स्थाने डित् ए इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **ते** इति भवति । **चर** । चर्-धातुः गतौ । चर्+हि । ९१० सू० अकारागमे, प्रस्तुतसूत्रेण हि इत्यस्य इकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **चरि** इति भवति । **मानम्** । मान+अम् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **माणु** इति भवति । **स्मर=सुमरि, मुञ्च=मेल्लि, चर=चरि** इत्यत्र

प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **उत्**। उकारादेशस्योदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारो यथा—

भ्रमर! अत्राऽपि निम्बके, कानपि दिवसान् विलम्बस्व।

घनपत्रवान् छायाबहुलः फुल्लति यावत् कदम्बः ॥२॥

भावार्थः—कमपि विपद्ग्रस्तं पुरुषं कश्चन धैर्यधारणाय आश्वसनाय च भ्रमरोक्त्या कविः शिक्षयति। **भ्रमर! अत्राऽपि** अस्मिन्नेव **निम्बके**—वृक्षविशेषे **कानपि दिवसान्**-कानिचिद् दिनानि यावद्, **विलम्बस्व**-प्रतीक्षस्व, तिष्ठेत्यर्थः। यदा **कदम्बः**-वृक्षविशेषः **घनपत्रवान्**-घनानि निबिडानि पत्राणि, तानि सन्ति यस्य स घनपत्रवान्,**छायाबहुलश्च** छाया बहुला—अधिका यस्य सः,**फुल्लति**-पुष्पितो भवति, तदा-तावत्कालपर्यन्तमत्रैव निवासं कुरु, तदनन्तरं स्वाभीष्टस्थाने गन्तव्यमिति भावः।

भ्रमर!। भ्रमर+सि। ३५० सू० रेफलोपे,१००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **भमरा** इति भवति। **अत्र**। अव्ययपदमिदम्। १०७६ सू० अत्र इत्यस्य एत्थु इत्यादेशे **एत्थु** इति भवति। **अपि**=वि, प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया। **निम्बके**। निम्बक+ङि। २३० सू० नकारस्य लकारे, ११०१ सू० डडअ-(अडअ)-प्रत्यये, स्वार्थिक-क-प्रत्ययस्य च लोपे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **लिम्बडइ** इति भवति। **कान्**। किम्+शस्। ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे,५०३ सू० अकारस्य एकारे, १०८१ सू० एकारस्य उच्चारणलाघवे, १०१५ सू० शसो लोपे **के** इति भवति। **दिवसान्**। दिवस+शस्। १७७ सू० वकारलोपे, बाहुल्येन १८० यकारश्रुतौ, २६३ सू० सकारस्य हकारे, ११०० सू० डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० शसो लोपे **दियहडा** इति भवति। **विलम्बस्व**। विपूर्वकः लबिधातुः विलम्बे। संस्कृतनियमेन विलम्ब्+हि इति जाते, ९१० सू० अकारागमे, प्रस्तुतसूत्रेण हि इत्यस्य उकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **विलम्बु** इति भवति। **घनपत्रवान्**। घनपत्रमत्+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, ४३० सू० मतोः स्थाने आलु इत्यादेशे, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, १००० सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **घणपत्तलु** इति भवति। **छायाबहुलः**। छायाबहुल+सि। १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **छायाबहुलु** इति भवति। **फुल्लति**। फुल्ला (फुल्ल्) विकासे। फुल्ल्+तिव्। ९१० सू० अकारागमे,६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **फुल्लइ** इति भवति। **यावत्**। अव्ययपदमिदम्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०७७ सू० वत् इत्यस्य मकारे **जाम** इति भवति। **कदम्बः**। कदम्ब+सि। १७७ सू० दकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **कयम्बु** इति भवति। **विलम्बस्व**=**विलम्बु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **एत्**। ए इत्यादेशस्योदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—

प्रिय! इदानीं कुरु भल्लं करे, मुञ्च त्वं करवालम्।

येन कापालिकाः वराकाः लान्त्यभग्नं कपालम् ॥३॥

भावार्थः—**प्रिय! त्वं करवालम्**-असिं **मुञ्च**-त्यज किन्तु **इदानीं भल्लं**-कुन्तं **करे**-हस्ते **कुरु**-गृहाण। भल्लग्रहणकारणमाह-**येन वराकाः** दयनीयाः **कापालिकाः**-कपालाः-नरमुण्डाः, तेषां धारकाः, भिक्षुविशेषाः, **अभग्नम्**-अखण्डितं **कपालं लान्ति**-ग्रहणं कुर्युः। **लान्ति** इत्यत्र ११९८ सूत्रेण लकारव्यत्ययत्वात् सप्तम्याः-विधिलिङ्गस्य स्थाने वर्तमाना[लट्-लकारः]जाताऽस्ति। करवालेन तु शिरोभेदाऽऽशंका भवति, अतः करवालं विहाय भल्लग्रहणायाऽसौ भणितः।

प्रिय!। प्रिय+सि। ३५० सू० रेफलोप-प्राप्तौ, १०६९ सू० वैकल्पिकत्वाद् रेफलोपाभावे

१०१५ सू० सेर्लोपे **थिव!** इति भवति। **इदानीम्**। अव्ययपदमिदम्। १०९१ सू० इदानीमः स्थाने एम्वहि इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **एम्वहिँ** इति भवति। **कुरु**। डुकृञ् [कृ] करणे। कृ+हि। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण हि इत्यस्य स्थाने एकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **करेँ** इति भवति। **भल्लम्**। भल्ल+अम्। १०९३ सू० भल्लार्थे सेल्लशब्दः प्रयुज्यते, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **सेल्लु** इति भवति। **करे**। कर+ङि। १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **करि** इति भवति। **मुञ्च**। मुच्लृ [मुच्] मोचने। मुच्+हि। ७६२ सू० मुचः स्थाने छड्ड इत्यादेशे, १०५४ सू० हि इत्यस्य हि इत्यादेशे **छड्डहि** इति भवति। **त्वम्**। युष्मद्+सि। १०३९ सू० युष्मदः स्थाने तुहुं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारण-लाघवे, १०१५ सू० सेर्लोपे **तुहुँ** इति भवति। **करवालम्**। करवाल+अम्। १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **करवालु** इति भवति। **येन**। यद्+टा। २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे **जं** इति भवति। **कापालिकाः**। कापालिक+जस्। २३१ सू० पकारस्य वकारे, १७७ सू० अन्त्य-ककार-लोपे, बाहुल्येन १८० सू० यकारश्रुतौ, १०१५ सू० जसो लोपे **कावालिय** इति भवति। **वराकाः**। वराक+जस्। १०९३ सू० वराकार्थे बप्पुड-शब्दः प्रयुज्यते, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **बप्पुडा** इति भवति। **लान्ति**। ला आदाने। ला+अन्ति। १००० सू० आकारस्य एकारे, १०५३ सू० अन्तेः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **लेहिँ** इति भवति। **अभग्नम्**। अभग्न+अम्। इत्यत्र ३४९ सू० नकारलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **अभग्गु** इति भवति। **कपालम्**। कपाल+अम्। २३१ सू० पकारस्य वकारे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **कवालु** इति भवति। **कुरु=करेँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **पक्षे**। प्रस्तुतसूत्रप्रवृत्त्यभावपक्ष इत्यर्थः। यथा-**स्मर**। स्मृ चिन्तायाम्। स्मृ+हि। ७४५ सू० स्मृधातोः स्थाने सुमर इत्यादेशे, १०५४ सू० हि इत्यस्य स्थाने हि इत्यादेशे **सुमरहि** इति भवति। वैकल्पिकत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। **इत्यादि**। एवमेवाऽन्ये प्रयोगा अपि स्वयमेव कल्पनीयाः।

१०५६— **दिअहा जन्ति झडप्पडहिं, पडहिँ मनोरह पच्छि।**
जं अच्छइ तं माणिअइ होसइ करतु म अच्छि ॥१॥

भावार्थः—कश्चित् सम्यक्-शेमुषीको जनः सामान्यजनानुपदिशति। **दिवसाः**-दिनानि, **वेगैः**-सत्वरं **यान्ति**-गच्छन्ति। **मनोरथाः पश्चात् पतन्ति** पश्चादवतिष्ठन्ते, पूर्णा न भवन्तीत्यर्थः। **यदास्ते**-यद्विद्यते **तत्सम्मान्यते**-आद्रियते, यः कालो गतः स तु गत एवाऽस्ति किन्तु योऽवशिष्टोऽस्ति स एव विचारणीयः, अवशिष्टे काले किमपि समाचरणीयम्, यदा वृद्धावस्था **भविष्यति**, तदा दानाऽऽदिकं दास्यामीति **कुर्वन्**-चिन्तयन् **मा**-न **आस्स्व**-तिष्ठेति भावः।

दिवसाः। दिवस+जस्। इत्यत्र १७७ सू० वकारलोपे, २६३ सू० सकारस्य हकारे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **दिअहा** इति भवति। **यान्ति**। या प्रापणे। या+अन्ति। २४५ सू० यकारस्य जकारे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **जन्ति** इति भवति। **वेगैः**। वेग+भिस्। १०९३ सू० वेगार्थे झडप्पड-शब्दः प्रयुज्यते, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे **झडप्पडहिं** इति भवति। **पतन्ति**। पत्लृ [पत्] पतने। पत्+अन्ति। ९१० सू० अकारागमे, ८९० सू० तकारस्य डकारे, १०५३ सू० अन्तेः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **पडहिँ** इति भवति।

मनोरथाः । मनोरथ+जस् । १८७ सू० थकारस्य हकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **मणोरह** इति भवति । **पश्चात्** । अव्ययपदमिदम् । १०९१ सू० पश्चात् इत्यस्य पच्छइ इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **पच्छि** इति भवति । **यद्** । यद्+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारे, बाहुल्येन २४ सू० दकारस्य मकारे, २३ सू० मकारस्यानुस्वारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जं** इति भवति । **आस्ते** । आस-आस् उपवेशने । आस्+ते=अच्छइ, प्रक्रिया ८८६ सूत्रे ज्ञेया । **तद्** । तद्+सि । २४ सू० बाहुल्येन दकारस्य मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **तं** इति भवति । **मान्यते** । मान [मान्] पूजायाम् । मान्+यय+ते । २२८ सू० नकारस्य णकारे, ६४९ सू० ययस्य स्थाने ईअ इत्यादेशो, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००० सू० ईकारस्य इकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **माणिअइ** इति भवति । **भविष्यति** । भू-धातुः सत्तायाम् । भू+स्यति । ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण स्य इत्यंशस्य स्थाने विकल्पेन सकारे, ६२८ सू० ति इत्यस्य इच् (इ) इत्यादेशे **होसइ** इति भवति । **कुर्वन्** । डुकृञ् [कृ] धातुः करणे । कृ+शतृ । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, २५ सू० नकारस्याऽनुस्वारे, २९ सू० अनुस्वार-लोपे, सिप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **करतु** इति भवति । **मा**=म, प्रक्रिया १०५५ सूत्रे ज्ञेया । **आस्स्व** । आस् उपवेशने । आस्+हि । ८८६ सू० सकारस्य छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०५८ सू० हि इत्यस्य इकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **अच्छि** इति भवति । **भविष्यति**=**होसइ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **पक्षे** । प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावपक्ष इत्यर्थः । यथा—**भविष्यति** । भू सत्तायाम् । भू+स्यति=हो+स्यति । ६५५ सू० हि इत्यस्य विकरणे, ६२८ सू० स्यतेः स्थाने इचादेशे **होहिइ** इति भवति । वैकल्पिकत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावो बोध्यः ।

★ अथ त्यादि प्रत्ययों को होने वाली विधि ★

अपभ्रंशभाषा में ति, तस् और अन्ति आदि प्रत्ययों के स्थान में जो-जो कार्य होते हैं, अब सूत्रकार द्वारा उन का निर्देश किया जा रहा है—

१०५३—त्यादि (वर्तमानादि काल) के आद्य त्रय (प्रथमपुरुष के तीनों वचनों) से सम्बन्धित अनेक अर्थों में वर्तमान (विद्यमान) वचन अर्थात् वर्तमानादि काल के प्रथमपुरुषीय बहुवचन के स्थान में '**हिं**' यह आदेश विकल्प से होता है । जैसे—

> **मुख-कबरी-बन्धौ तस्याः शोभां धरतः**, **इव मल्लयुद्धं शशिराहू कुरुतः** ।
> **तस्याः राजन्ते कुरलाः भ्रमर-कुल-तुलिताः**, **इव तिमिर-डिम्भाः खेलन्ति मिलिताः** । १॥

अर्थात्—उस स्त्री का मुख और उसका कबरी-बन्ध (केश-रचना) इस प्रकार शोभा को धारण कर रहे हैं, जैसे चन्द्रमा और राहु दोनों मिल कर युद्ध कर रहे हों । तथा उसके भ्रमरकुल (भ्रमर-समूह) के समान, कुरल-घुंघराले बाल इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं, मानों तिमिर-शिशु (अन्धकार के बालक) मिल कर खेल रहे हैं ।

यहां पर १—**धरतः**=धरहिं (धारण कर रहे हैं), २—**कुरुतः**=करहिं (कर रहे हैं) और ३—**राजन्ते**=सहहिं (शोभा पा रहे हैं) इन तीन पदों में प्रथमपुरुष के बहुवचन (अन्ति तथा अन्ते) के स्थान में '**हिं**' यह आदेश विकल्प से किया गया है ।

१०५४—अपभ्रंश में त्यादि (वर्तमानादि काल) के मध्यत्रय (मध्यम पुरुष के तीनों वचनों) में जो आद्य वचन (सिप्) है, उस के स्थान में अर्थात् वर्तमानादि कालिक मध्यमपुरुषीय एक वचन

को 'हि' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—

चातक ! पिउ पिउ (इति) भणित्वा **कियद् रोदिषि हताश** ! ।

तव जले, मम पुनर्वल्लभे, द्वयोरपि न पूरिता आशा ॥१॥

अर्थात्—हे हताश (जिस की आशाएं नष्ट हो रही हों) चातक ! पिउ, पिउ इस प्रकार कह कर कहां तक रुदन करेगा ? तेरी जल-प्राप्त करने की आशा तथा मेरी प्रीतम को पाने की आशा इस तरह दोनों की आशाएं कभी पूर्ण नहीं हो सकतीं।

यहां पर—**रोदिषि**=रुअहि (तू रोता है) इस शब्द में मध्यम पुरुष के एकवचन सिप् के स्थान में 'हि' यह आदेश किया गया है। **रोदिषि** यह प्रयोग **परस्मैपद** का है। अब वृत्तिकार **आत्मनेपद** का उदाहरण दे रहे हैं—

चातक ! किं कथितेन निर्घृण ! वारम्वारम् ।

सागरे भृते विमल-जले लभसे न एकामपि धाराम् ? ॥२॥

अर्थात्—हे निर्घृण (निर्लज्ज) चातक ! बार-बार बोलने से क्या लाभ प्राप्त कर सकेगा ? विमल जल से भरे सागर में से भी जब तू एक बून्द प्राप्त नहीं कर रहा, तब व्यर्थ बोलने की क्या आवश्यकता है ?

यहां पर—**लभसे**=लहहि (तू प्राप्त करता है) इस पद में आत्मनेपदीय मध्यमपुरुष के एक वचन से के स्थान में हि यह आदेश किया गया है। अब वृत्तिकार **सप्तमी** (विधिलिङ्ग) के मध्यम-पुरुषीय **एकवचन** का उदाहरण देने लगे हैं—

अस्मिन् जन्मनि अन्यस्मिन्नपि गौरि ! तं दद्याः कान्तम् ।

गजानां मत्तानां त्यक्ताङ्कुशानां यः संगच्छते हसन् ॥३॥

अर्थात्—हे गौरि ! (हे पार्वति !) इस जन्म में तथा अन्य जन्म में भी उस कान्त (प्रीतम) को देना जो निरङ्कुश और मदोन्मत्त हाथियों के सन्मुख हंसता हुआ गमन करे। भाव यह है कि इस जन्म में तथा दूसरे जन्म में ऐसा पति देने की कृपा करना जो निर्भयता की साकार प्रतिमा हो तथा जो वीर-शिरोमणि हो।

यहां पर—**दद्याः**=दिज्जहि (तू दे) इस सप्तमी के मध्यम-पुरुषीय एकवचन-सम्बन्धी **यास्** प्रत्यय के स्थान में **हि** यह आदेश विकल्प से किया गया है।

जहां पर प्रस्तुत सूत्र द्वारा मध्यम पुरुष के एकवचन-सम्बन्धी सिप् प्रत्यय के स्थान में हि यह आदेश हो जाता है, वहां पर तो **रुअहि** यह रूप बनता है। जहां पर **हि** का आदेश नहीं होता, वहां पर—**रोदिषि**=रुअसि (तू रोता है) यह रूप निष्पन्न होता है। इसी प्रकार आदेशाभाव में आत्मने-पदीय तथा सप्तमी के मध्यमपुरुषीय एकवचन के अन्य उदाहरण भी समझ लेने चाहिएं।

१०५५—अपभ्रंश भाषा में त्यादि सम्बन्धी (वर्तमानादि कालिक) मध्यमत्रय (मध्यमपुरुष) के बहुवचन को हु यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—

बलेः अभ्यर्थने मधुमथनो लघुकी-भूतः सोऽपि ।

यदि इच्छथ बृहत्त्वं दत्त मा मार्गयत कमपि ॥१॥

अर्थात्—बलि राजा से याचना करने पर मधुमथन (विष्णु) को भी लघु (वामन) होना पड़ा था, यदि महत्त्व चाहते हो तो किसी से कुछ भी याचना मत करो किन्तु अपने हाथों से कुछ दान दो।

यहां पर—१—इच्छथ=इच्छहु (तुम चाहते हो), २—दत्त=देहु (तुम दान दो) और ३—मार्गयत—मग्गहु (तुम याचना करो), इन तीनों पदों में मध्यमपुरुष के बहुवचन को हु यह आदेश विकल्प से किया गया है। आदेश के अभावपक्ष में—इच्छथ का इच्छह (तुम चाहते हो) यह रूप बनता है। इसी तरह आदेशाभावपक्ष में अन्य रूपों की भी कल्पना कर लेनी चाहिए।

१०५६—अपभ्रंश भाषा में त्यादिसम्बन्धी (वर्तमानादि कालिक) अन्त्यत्रय (उत्तमपुरुष) का जो आद्य (पहला) वचन है, उसके स्थान में उं यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—

विधिः विनाटयतु, पीडयन्तु ग्रहाः, मा धन्ये ! कुरु विषादम्।

संपदं कर्षामि वेश्यां, यथा यदि राजते व्यवसायः ॥१॥

अर्थात्—हे धन्ये ! [हे प्रिये !] चाहे विधि-भाग्य विडम्बित (सन्तप्त) करे, और ग्रह भी पीडित करें तो भी विषाद करने (दुःखी होने) की आवश्यकता नहीं, क्योंकि यदि मेरा व्यवसाय (व्यापार) चल पड़ा तो सम्पत्ति को वेश्या के समान आकर्षित कर के छोड़ूंगा।

यहां पर—१—कर्षामि=कड्ढउं (मैं खींचता हूं) इस पद में उत्तमपुरुष के एकवचन को 'उं' यह आदेश किया गया है। २—बलिं करोमि सुजनस्य=बलि किज्जउं सुअणस्सु [श्रेष्ठ पुरुष के मैं बलिहार जाता हूं] यहां—करोमि=किज्जउं, इस पद में उत्तम-पुरुष के एकवचन को 'उं' यह आदेश विकल्प से किया गया है। आदेश के अभावपक्ष में—कर्षामि=कड्ढामि [मैं खींचता हूं] यह रूप बनता है। इसी प्रकार आदेशाभावपक्ष में अन्य रूपों की भी कल्पना कर लेनी चाहिए।

१०५७—अपभ्रंश-भाषा में त्यादि सम्बन्धी अन्त्यत्रय (उत्तमपुरुष) का जो बहुवचन है, उसके स्थान में 'हुं' यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—

खड्ग-विसाधितं यस्मिन् लभामहे प्रिये ! तस्मिन् देशे यामः।

रण-दुर्भिक्षेण भग्नाः विना युद्धेन न वलामहे ॥१॥

अर्थात्—हे प्रिये ! जिस देश में तलवार से अर्जित (कमाया हुआ) धन प्राप्त होगा, वहीं पर जाएंगे। रण के दुर्भिक्ष (अभाव) से विनष्ट हुए हम युद्ध के बिना वापिस नहीं लौटेंगे।

यहां पर—१—लभामहे=लहहुं (हम प्राप्त करते हैं), २—यामः=जाहुं (हम जाते हैं), और ३—वलामहे=वलाहुं (हम लौटते हैं) इन पदों में उत्तमपुरुष के बहुवचन को 'उं' यह आदेश विकल्प से किया गया है। आदेश के अभावपक्ष में लभामहे=लहिमु (हम प्राप्त करते हैं) यह रूप बनता है। इत्यादि शब्द के उल्लेख से वृत्तिकार फरमाते हैं कि इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझने चाहिएं।

१०५८—अपभ्रंश-भाषा में पञ्चमी (लोट्) के हि और सु इन प्रत्ययों के स्थान में इ, उ और ए ये तीन आदेश विकल्प से होते हैं। इकार का उदाहरण, जैसे—

कुञ्जर ! स्मर मा सल्लकीः, सरलान् श्वासान् मा मुञ्च।

कवलाः ये प्राप्ताः विधिवशेन तांश्चर मानं मा मुञ्च ॥१॥

अर्थात्—हे कुञ्जर ! (हे गजराज !) सल्लकी नामक वृक्षों को याद मत कर, और सरल श्वासों को मत छोड़। अर्थात् हौंके मत भर। विधिवश (भाग्यवश) जो कवल-ग्रास प्राप्त हुए हैं, उन्हीं का भक्षण कर, तथा स्वाभिमान का परित्याग मत कर।

यहां-पर१—स्मर=सुमरि, (स्मरण कर), २—मुञ्च=मेल्लि (छोड़), और ३—चर=चरि (भक्षण कर) इन पदों में पंचमी (लोट्) के 'हि' इस प्रत्यय के स्थान में 'इ' यह आदेश विकल्प से किया

गया है। उकार का उदाहरण—

भ्रमर ! अत्राऽपि निम्बके कानपि दिवसान् विलम्बस्व।

घन-पत्रवान् छायाबहुलः फुल्लति यावत् कदम्बः ॥२॥

अर्थात्—हे भ्रमर। जब तक घने पत्तों वाला तथा विस्तृत छाया वाला कदम्ब नामक वृक्ष विकसित नहीं हो पाता तब तक यहीं नीम के वृक्ष के ऊपर कुछ दिन व्यतीत कर।

यहां पर-विलम्बस्व=विलम्बु (तू व्यतीत कर), इस पद में पंचमी के हि इस प्रत्यय के स्थान में उकारादेश किया गया है। एकार का उदाहरण—

प्रिय ! इदानीं कुरु भल्लं करे, मुञ्च त्वं करवालम्।

येन कापालिकाः वराकाः लान्ति अभग्नं कपालम् ॥३॥

अर्थात्—हे प्रीतम ! तू तलवार को छोड़ दे और अब भाले को हाथ में ग्रहण कर, ताकि बेचारे कापालिक [शैवसम्प्रदाय के अन्तर्गत एक उपसम्प्रदाय, इस सम्प्रदाय के लोग अपने पास खोपड़ी रखते हैं, और उसी में भोजन बना कर या रख कर खाते हैं, वामाचारी] अखण्डित कपाल (खोपड़ी) को प्राप्त कर सकें।

यहां पर १—कुरु=करें (तू कर) इस पद में पंचमी हि प्रत्यय के स्थान में एकार का आदेश विकल्प से किया गया है। २—स्मर=सुमरि यहां पर प्रस्तुत सूत्र से हि प्रत्यय के स्थान में वैकल्पिक इ यह आदेश किया गया है किन्तु आदेश के अभाव-पक्ष में—स्मर=सुमरहि [तू याद कर] ऐसा रूप बनता है, वैकल्पिक होने से यहां पर प्रस्तुत सूत्र से पंचमी के हि प्रत्यय को इ यह आदेश नहीं हो सका। इत्यादि का उल्लेख करके वृत्तिकार फरमाते हैं कि इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझ लेने चाहिएं।

१०५९—अपभ्रंशभाषा में भविष्यदर्थ-विषयक [भविष्यत्काल के अर्थ को अपना विषय बनाने वाले] ति आदि प्रत्ययों के स्य के स्थान में विकल्प से स का आदेश होता है। जैसे—

दिवसा यान्ति वेगैः पतन्ति मनोरथाः पश्चात्।

यदास्ते तन्मान्यते भविष्यति (इति) कुर्वन् मा आस्स्व ॥१॥

अर्थात्—दिन शीघ्रता से व्यतीत हो जाते हैं, और मनुष्य के मनोरथ पूर्ण नहीं हो पाते, वर्तमान में जो कुछ है, उसी का आदर करो और भविष्य की आशाएं मत बांधो।

यहां पर-भविष्यति=होसइ (होगा), इस पद में भविष्यदर्थक स्यादि प्रत्ययों के स्य को 'स' यह आदेश विकल्प से किया गया है, आदेश के अभावपक्ष में-भविष्यति=होहिइ (होगा) यह रूप बनता है।

★ अथ धात्वादेश-विधिः ★

१०६०—क्रियेः कीसु। ८। ४। ३८९। क्रिये इत्येतस्य क्रियापदस्याऽपभ्रंशे कीसु इत्यादेशो वा भवति।

सन्ता भोग जु परिहरइ, तसु कन्तहो बलि कीसु।

तसु दइवेण वि मुण्डियउं जसु खल्लिहडउं सीसु ॥१॥

पक्षे। साध्यमानाऽवस्थात् क्रिये इति संस्कृत-शब्दादेष प्रयोगः। बलि किज्जउं सुअणस्सु [३३८.४]।

१०६१—भुवः पर्याप्तौ हुच्चः। ८। ४। ३९०। अपभ्रंशे भुवो धातोः पर्याप्तावर्थे

वर्तमानस्य हुच्च इत्यादेशो भवति ।

अइतुंगत्तणु जं थणहं सो छेयउ न हु लाहु ।
सहि ! जइ केवँइ तुडिवसेँण अहरि पहुच्चइ नाहु ॥१॥

१०६२—ब्रूगो ब्रुवो वा । ८ । ४ । ३९१ । अपभ्रंशे ब्रूगो धातोर्ब्रुव इत्यादेशो वा भवति । ब्रुवह सुहासिउ किं पि । पक्षे ।

इत्तउँ ब्रोप्पिणु सउणि ठिउ पुणु दूसासणु ब्रोप्पि ।
तो हउँ जाणउँ एहो हरि जइ महु अग्गइ ब्रोप्पि ॥१॥

१०६३—व्रजेर्वुञः । ८ । ४। ३९२ । अपभ्रंशे व्रजतेर्धातोर्वुञ इत्यादेशो भवति । वुञइ । वुञेप्पि । वुञेप्पिणु ।

१०६४—दृशेः प्रस्सः । ८ । ४ । ३९३ । अपभ्रंशे दृशेर्धातोः प्रस्स इत्यादेशो भवति । प्रस्सदि ।

१०६५—ग्रहेर्गृण्हः । ८ । ४ । ३९४ । अपभ्रंशे ग्रहेर्धातोर्गृण्ह इत्यादेशो भवति । पढ गृण्हेप्पिणु व्रतु ।

१०६६—तक्ष्यादीनां छोल्लादयः । ८ । ४ । ३९५ । अपभ्रंशे तक्षि-प्रभृतीनां धातूनां छोल्ल इत्यादय आदेशा भवन्ति ।

जिवँ तिवँ तिक्खा लेवि कर जइ ससि छोल्लिज्जन्तु ।
तो जइ गोरिहे मुह-कमलि सरिसिम का वि लहन्तु ?॥१॥

आदि-ग्रहणाद् देशीषु ये क्रियावचना उपलभ्यन्ते ते उदाहार्याः ।

चूडुल्लउ चुण्णीहोइ सइ मुद्धि ! कवोलि निहित्तउ ।
सासानल-जाल-झलक्किअउ बाह-सलिल-संसित्तउ ॥२॥
अब्भडवंचिउ बे पयइं पेम्मु निअत्तइ जावँ ।
सव्वासण-रिउ-संभवहो कर परिअत्ता तावँ ॥३॥
हिअइ खुडुक्कइ गोरडी गयणि घुडुक्कइ मेहु ।
वासा-रत्ति-पवासुअहं विसमा संकडु एहु ॥४॥
अम्मि ! पओहर वज्जमा निच्चु जे संमुह थंति ।
महु कन्तहो समरङ्गणइ गय-घड भज्जिउ जन्ति ॥५॥
पुत्तें जाएं कवणु गुणु ?, अवगुणु कवणु मुएण ? ।
जा बप्पीकी भुंहडी चम्पिज्जइ अवरेण ॥६॥

तं तेत्तिउ जसु सायरहों सो तेवडु वित्थारु।
तिसहें निवारणु पलु वि न वि पर धुट्ठुअइ असारु ॥७॥

★ अथ धात्वादेशविधिः ★

अपभ्रंशभाषायां डुकृञ् [कृ] इत्यादिभिः धातुभिः सम्बन्धितं यद्विधिविधानं भवति, तत्प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—

१०६०— सतो भोगान् यः परिहरति, तस्य कान्तस्य बलिक्रिये।
तस्य दैवेनाऽपि मुण्डितं यस्य खल्वाटं शीर्षम् ॥१॥

भावार्थः—भोग्यपदार्थाभावे त्यागं कुर्वतः पुरुषस्यापेक्षया, सति भोग्यपदार्थे तेषां भोग्यपदार्थानां त्यागं कुर्वतः पुरुषस्याऽधिक्यं नायिका वर्णयति। यः कान्तः **सतो**-विद्यमानान् **भोगान्**-भोग्यपदार्थान् **परिहरति**—परित्यजति, तस्य **कान्तस्योपरि बलि क्रिये**, आत्मसर्वस्वेन तस्य पूजां करोमीति भावः। **यस्य शीर्षम्**-शिरः **खल्वाटं**—केशशून्यं भवति, **तस्य** तु **दैवेनाऽपि**—दैवेनैव **मुण्डितं** शिरः। अतः त्यागस्तु तेषामेव सफलो भवति, ये खलु विद्यमानान् भोग्यपदार्थान् परित्यजन्ति।

सतः। अस् भुवि। अस्+शतृ। संस्कृतनियमेन अकारस्य लोपे, ९१० सू० अकारागमे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, शस्-प्रत्यये, १००१ सू० अन्त्याकारस्य आकारे, १०१५ सू० शसो लोपे **सन्ता** इति भवति। **भोगान्**। भोग+शस्। १०१५ सू० शसो लोपे **भोग** इति भवति। **यः**। यद्+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जु** इति भवति। **परिहरति**। परिपूर्वकः हृञ् (हृ) धातुः परिहरणे। परिहृ+तिव्। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ९२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **परिहरइ** इति भवति। **तस्य**। तद्+ङस्। ११ सू० दकारलोपे, १००९ सू० ङसः स्थाने सु इत्यादेशे **तसु** इति भवति। **कान्तस्य**—कन्तहों, प्रक्रिया १०५० सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **बलि**। बलि+सि। १०१५ सू० सेर्लोपे **बलि** इति भवति। **क्रिये**। क्रियापदमिदम्। १०६० सू० **क्रिये** इत्यस्य क्रियापदस्य स्थाने कीसु इत्यादेशे **कीसु** इति भवति। **दैवेन**। दैव+टा। १५१ सू० ऐकारस्य अइ इत्यादेशे, १०१३ सू० टास्थाने णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **दइवेण** इति भवति। **अपि**—वि, प्रक्रिया ४१ सूत्रे ज्ञेया। **मुण्डितम्**। मुण्डित+सि। १७७ सू० तकारलोपे, बाहुल्येन १८० सू० यकारश्रुतौ, ४३५ सू० क-प्रत्यये, १७७ सू० ककार-लोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे, १०१५ सू० सेर्लोपे **मुण्डियउं** इति भवति। **यस्य**—जसु, प्रक्रिया १०४१ सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया। **खल्वाटम्**। खल्वाट+सि। १०९३ सू० खल्वाटार्थे खल्लिहड-शब्दः प्रयुज्यते, ४३५ सू० क-प्रत्यये, १७७ सू० ककारस्य लोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **खल्लिहडउं** इति भवति। **शीर्षम्**। शीर्ष+सि। २६० सू० शकारस्य षकारस्य च क्रमशः सकारे, ३५० सू० रेफलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सीसु** इति भवति। **कीसु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **पक्षे**। प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावपक्ष इत्यर्थः। **साध्यमानाऽवस्थात्**। साध्यमाना अवस्था यस्य स **साध्यमानावस्थः**, तस्मात् साध्यमानावस्थात् **क्रियें** इति संस्कृतशब्दात् **कीसु** इति प्रयोगो निष्पन्नो भवति। **क्रिये** इति पदं साध्यमानावस्थापन्नमिति कथने रहस्यमिदं वर्तते, यद् धात्वर्थो *द्विविधो भवति। यथा—**सिद्धावस्थापन्नः, साध्यावस्थापन्नश्च**।

*सिद्ध-साध्यं लिङ्गसंख्यान्वयाऽयोग्यं साध्यावस्थापन्नं, कृदर्थाख्यं तु लिङ्गसंख्यान्वययोग्यं सिद्धावस्थापन्नम्। इति सिद्धान्तकौमुद्याः भावे ३।३।१८। इत्यस्य सूत्रस्य बालमनोरमाटीकात उद्धृतोऽयं ग्रन्थः।

कृद्-वाच्यो लिङ्ग-संख्याऽन्वय-योग्यः [कृतो वाच्यः कृद्-वाच्यः, लिङ्गञ्च संख्या च लिङ्गसंख्ये, तयोरन्वयः, लिङ्गसंख्यान्वयः। तस्य योग्यः लिङ्ग-संख्यान्वयोग्यः] धात्वर्थः सिद्धावस्थापन्न उच्यते। यथा-पाकः, त्यागः, पठनं, गतिः इत्यादिषु शब्देषु कृत्-घञ्प्रत्ययो विद्यते, अत्र लिङ्गं (पुंस्त्वादिकं), संख्या (एकवचनादिकं) अपि वर्तते। अतः एते प्रयोगाः सिद्धावस्थापन्नाः समवगन्तव्याः। यत्र कृद्-वाच्यो न भवेत्, लिङ्गसंख्यान्वयश्च न भवेत्तत्र साध्यावस्था भवति। यथा-पचति, गच्छति इत्यादिषु तिङन्त-प्रयोगेषु, यो धात्वर्थः सः पुंस्त्वादिधर्मयुक्तो न विद्यते। अतएव पचति, क्रियते इत्यादयः शब्दाः साध्यावस्थापन्ना भवन्ति। साध्यावस्थापन्नाः शब्दाः साध्यमानावस्थापन्ना अपि उच्यन्ते। अतएवोक्तं साध्यमानाऽवस्थात् क्रियते इति संस्कृत-शब्दादेषः प्रयोगः। अयं भावः—क्रियते इति धात्वर्थः साध्यावस्थापन्नो वर्तते, न तु सिद्धावस्थापन्नः, इति द्योतनार्थमेव वृत्तिकारेण साध्यमानावस्थात् क्रियते इति संस्कृतशब्दादेष प्रयोगः इति समुल्लिखितम्। बलिक्रियते सुजनस्य=बलि किज्जउँ सुअणस्सु, एतेषां पदानां प्रक्रिया १००९ सूत्रे ज्ञेया। वैकल्पिकत्वात् क्रियते=किज्जइ इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता।

१०६१— अतितुङ्गत्वं यत्स्तनयोः, तच्छेदकं न खलु लाभः।
सखि ! यदि कथमपि त्रुटिवशेन अधरे प्रभवति नाथः ॥१॥

भावार्थः—यत् स्तनयोः-कुचयोरतितुङ्गत्वम्—अत्युन्नतत्वम्, अतिस्थूलत्वं वा वर्तते तत् खलु छेदकं-हानिकारकं, बाधकमित्यर्थः। स्तनयोरतितुङ्गत्वेन न कोऽपि लाभो दृश्यते। का नाम बाधा ? तदाह—हे सखि ! मम नाथः-कान्तः यदि कथमपि-अत्यायासेन, त्रुटिवशेन कालविलम्बरूपत्रुट्या अधरे-निम्नोष्ठे प्रभवति अधर-चुम्बनं करोति। स्तनयोः स्थूलतमत्वात् दीर्घ-कालान्तरमधरचुम्बने समर्थो भवति, इयमेव अतितुङ्ग-स्तनयोः हानिकारकता बोध्या।

अतितुङ्गत्वम्। अतितुङ्गत्व+सि। १७७ सू० प्रथम-तकारलोपे, ४२५ सू० त्वस्य स्थाने त्तण इत्यादेशे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे अइतुङ्गत्तणु इति भवति। यत्। यद्+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारे, बाहुल्येन २४ सू० दकारस्य मकारे, २३ सू० मकाराऽनुस्वारे जं इति भवति। स्तनयोः। स्तन+ओस्। ३१६ सू० स्तस्य स्थाने थकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१० सू० आम्-प्रत्ययस्य स्थाने हं इत्यादेशे थणहं इति भवति। तत्। तद्+सि। बाहुल्येन ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारलोपे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे सो इति भवति। छेदकम्। छेदक+सि। १७७ सू० दकारस्य ककारस्य च लोपे, १८० सूत्रे "क्वचिद् भवति" इति पाठात् यकारश्रुतौ, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे छेयउ इति भवति। न। अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। खलु। अव्ययपदमिदम्। ४६९ सू० खल्वर्थे हु इति प्रयुज्यते। लाभः। लाभ+सि। १८७ सू० भकारस्य हकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे लाहु इति भवति। सखि !। सखी+सि। १८७ सू० खकारस्य हकारे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे सहि ! इति भवति। यदि=जइ, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य द्वितीय-श्लोके ज्ञेया। कथम्। अव्ययपदमिदम्। इत्यत्र १०७२ सू० थम् इत्यंशस्य डेम-एम इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०६८ सू० मकारस्य सानुनासिके वकारे केवँ इति भवति। अपि। अव्ययपदमिदम्। ४८९ सू० अप्यर्थे वि इति प्रयुज्यते, बाहुल्येन १७७ सू० वकारलोपे इ इति भवति। त्रुटिवशेन। त्रुटिवश+टा। ३५० सू० रेफलोपे, १९५ सू० टकारस्य डकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे, १०८१ सू०

एकारस्य उच्चारण-लाघवे **तुडिवसेॅण** इति भवति । **अघरे** । अधर+ङि । १८७ सू० धकारस्य ह्-कारे,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **अहरि** इति भवति । **प्रभवति** । प्रपूर्वकः भूधातुः सामर्थ्ये । प्रभू+तिव् । ३५० सू० रेफलोपे, १०६१ सू० भूधातोः स्थाने हुच्च इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **पहुच्चइ** इति भवति । **नाथः**=नाहु इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया १०३१ सूत्रे ज्ञेया । **प्रभवति**=**पहुच्चइ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०६२—ब्रूत । ब्रूञ्(ब्रूञ्)-ब्रू व्यक्तायां वाचि । ब्रू+त । १०६२ सू० ब्रूधातोः स्थाने विकल्पेन ब्रुव इत्यादेशे, आदेशसामर्थ्यात् ३५० सू० रेफस्य लोपाऽभावे, ६६५ सू० त इत्यस्य हकारे **ब्रुवहु** इति भवति । **सुभाषितम्** । सुभाषित+अम् । १८७ सू० भकारस्य हकारे,२६० सू० षकारस्य सकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० अमो लोपे **सुहासिउ** इति भवति । **किम्** । किम्+अम् । ५६१ सूत्रेण अम्-प्रत्ययेन सह किमः स्थाने किं इत्यादेशे **किं** इति भवति । **अपि**=पि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **ब्रूत**=**ब्रुवहु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **पक्षे** । वैकल्पिकत्वात् प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावपक्ष इत्यर्थः । यथा—

इयद् उक्त्वा शकुनिः स्थितः पुनर्दुःशासन उक्त्वा ।
तदाऽहं जानामि एष हरिः यदि ममाऽग्रतः उक्त्वा ॥१॥

भावार्थः—दुर्योधनस्य गर्वोक्तिरियम् । **शकुनिः**-दुर्योधनस्य मातुलः, **इयद् उक्त्वा** ममाऽग्रे स्थितः, **पुनः**-तथा **दुःशासनः**-दुर्योधनस्य कनीयान् सहोदरः,इयदुक्त्वा ममाऽग्रे स्थितः । **अहन्तु तदा जानामि यदि ममाऽग्रतः एष हरिः**-श्रीकृष्णः **उक्त्वा** तिष्ठेत् । अयं भावः—श्रीकृष्णस्येयन्नाऽस्ति सामर्थ्यं यदसौ ममाऽग्रे किञ्चिदुक्त्वा तिष्ठेत् ।

इयद् । इदं परिमाणमस्येति । इदं परिमाणमस्य इत्यर्थे ७।१।१४८। सू० अतुप्रत्यये, इदमस्य स्थाने इय् इत्यादेशे इय्+अतु इति जाते, ४२८ सू० अतोः स्थाने डेत्तिअ (एत्तिअ) इत्यादेशे, डिति प-रेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,अम्-प्रत्यये,१००० सू० द्वितीयस्य इकारस्य अकारे, १००२ सू० द्वितीयस्य अकारस्य उकारे,६१३ सूत्रेण अदन्तवदतिदेशात्,४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० म-कारस्यानुस्वारे,१०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **एत्तउं** इति भवति । **उक्त्वा** । ब्रूञ्-ब्रू व्यक्तायां वाचि । ब्रू+क्त्वा । वैकल्पिकत्वात् १०६२ सू० रेफलोपाभावे,११११ सू० क्त्वास्थाने एप्पिणु इत्यादेशे,१० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००० सू० एकारस्य ओकारे **ब्रोप्पिणु** इति भवति । **शकुनिः** । शकुनि+सि । २६० सू० शकारस्य सकारे,१७७ सू० ककारलोपे,२२८ सू० नकारस्य णकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **सउणि** इति भवति । **स्थितः** । ष्ठा-स्था गति-निवृत्तौ । स्था+क्त-त । इत्यत्र ६८७ सू० स्थाधातोः स्थाने ठा इत्यादेशे, १००० सू० आकारस्य अकारे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **ठिउ** इति भवति । **पुनः**=पुणु,प्रक्रिया १०४१ सूत्रस्य प्रथमे श्लोके ज्ञेया । **दुःशासनः** । दुश्शासन+सि । ३४८ सू० संयुक्त-शकारस्य लोपे,४३ सू० उकारस्य दीर्घे,२६० सू० शकारस्य स्थाने सकारे,२२८ सू० नकारस्य णकारे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,सेर्लोपे **दूसासणु** इति भवति । **उक्त्वा** । ब्रूञ्-ब्रू व्यक्तायां वाचि । ब्रू+क्त्वा । पूर्ववदेव वैकल्पिकत्वात् १०६२ सू० रेफस्य लोपाऽभावे, ११११ सू० क्त्वः स्थाने एप्पि इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये,१००० सू० एकारस्य ओकारे **ब्रोप्पि** इति भवति । **सदा** । अव्ययपदमिदम् । १०८८ सू० सदा इत्यस्य तो इत्यादेशे **तो** इति भवति । **अहम्** । अस्मद्+सि । १०४६ सू० अस्मदः स्थाने हउं इत्यादेशे,

१०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे, १०१५ सू० सेर्लोपे हुउँ इति भवति । **जानामि** । ज्ञा अवबोधने । ज्ञा+मिव् । ६७८ सू० ज्ञा-धातोः स्थाने जाण इत्यादेशे,१०५६ सू० मिवः स्थाने उं इत्यादेशे,बाहुल्येन १० सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **जाणउँ** इति भवति । **एषः**=एहो, प्रक्रिया १०३३ सूत्रे ज्ञेया । **हरिः** । हरि+सि । १०१५ सू० सेर्लोपे हरि इति भवति । यदि=जइ, प्रक्रिया १०५५ सूत्रे ज्ञेया । **मम**=महु,प्रक्रिया १०५० सूत्रे ज्ञेया । **अग्रतः** । अव्ययपदमिदम् । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे,१७७ सू० तकारलोपे,३७ सू० विसर्गस्य स्थाने डो(ओ)इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १००० सू० ओकारस्य इकारे **अग्गइ** इति भवति । **उक्त्वा=बोप्पिणु,उक्त्वा**=बोपि इत्यत्र वैकल्पिकत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता ।

१०६३—व्रजति । व्रज्-धातुः गमने । व्रज्+तिव् । १०६३ सू० व्रज्-धातोः स्थाने वुञ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **वुञइ** इति भवति । **व्रजित्वा** । व्रज्+क्त्वा । प्रस्तुतसूत्रेण व्रज्धातोः स्थाने वुञ इत्यादेशे, ११११ सू० क्त्वः स्थाने एप्पि,एप्पिणु इत्यादेशौ, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **वुञेप्पि वुञेप्पिणु** इति भवति ।

१०६४—पश्यति । दृशिर्-दृश् दर्शने । दृश्+तिव् । १०६४ सू० दृश्धातोः स्थाने प्रस्स इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे, ९४५ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **प्रस्सदि** इति भवति ।

१०६५—पठ । पठ्-धातुः पठने । पठ्+हि । ९१० सू० अकारागमे, १९९ सू० ठकारस्य ढकारे, ६६२ सू० हि इत्यस्य सु इत्यादेशे,६६४ सू० सु इत्यस्य लोपे **पढ** इति भवति । **गृहीत्वा** । ग्रह्-धातुः उपादाने । ग्रह्+क्त्वा । १०६५ सू० ग्रह्-धातोः स्थाने गृण्ह इत्यादेशे,११११ सू० क्त्वः स्थाने एप्पिणु इत्यादेशे,१० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **गृण्हेप्पिणु** इति भवति । **व्रतम्** । व्रत+अम् । वैकल्पिकत्वात् १०६९ सू० रेफ-लोपाऽभावे,बाहुल्येन १७७ सू० तकारलोपाऽभावे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० अमो लोपे **व्रतु** इति भवति । **गृहीत्वा=गृण्हेप्पिणु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्दृश्यते ।

१०६६—यथा यथा तीक्ष्णान् लात्वा करान् यदि शशी अतक्षिष्यत ।
तथा जगति गौर्याः मुखकमलस्य सदृशत्वं किमपि अलप्स्यत ॥१॥

भावार्थः—कश्चिदुमाभक्तस्तस्याः शोभातिरेकं स्तौति । **यथा यथा**-येन केनाऽपि प्रकारेण **शशी**-चन्द्रः, **यदि तीक्ष्णान्** भयंकरान् आयुधान् **लात्वा**-आदाय **करान्**-स्वरश्मीन् **अतक्षिष्यत**-तेषां तक्षणमकरिष्यत,**तदा जगति**-संसारे **गौर्याः**-पार्वत्याः,**मुखकमलस्य**-मुखं कमलमिव मुखकमलं तस्य **सदृशत्वं**-समानत्वं **किमपि**—किञ्चिदपि,स्वल्पमेव **अलप्स्यत**—प्राप्तमकरिष्यत् ? तथापि गौर्याः मुखमण्डलस्य सौन्दर्यस्य सादृश्यं प्राप्तुं न शक्नोतीति भावः । यतोहि शशी आयुधैः स्वकरान् तक्षयितुं नाऽलमसि,अतएव स शशी गौर्याः सादृश्यमपि प्राप्तुं न समर्थोऽस्ति । अनेन गौरीमुखस्य रूपलावण्यं शोभातिशयि उपमारहितं च वर्तते इति व्यज्यते कविना ।

यथा=जिवँ, प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया । **तथा**=तिवँ, प्रक्रिया १०४७ सूत्रस्य द्वितीय-श्लोके ज्ञेया । **तीक्ष्णान्** । तीक्ष्ण+शस् । इत्यत्र ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,३५३ सू० णकारस्य लोपे,२७४ सू० क्षस्य स्थाने खकारे,३६० सू० खकारद्वित्वे,३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे,१००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० शसो लोपे **तिक्खा** इति भवति । **लात्वा** । ला आदाने । ला+क्त्वा । ११११ सू० क्त्वः स्थाने एवि इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **लेवि** इति भवति । **करान्** । कर+शस् । १०१५ सू० शसो लोपे **कर** इति भवति । **यदि**=जइ,प्रक्रिया १०५५ सूत्रे

ज्ञेया । **शशी** । शशिन्+सि । २६० सू० उभयत्राऽपि शकारस्य सकारे, ११ सू० नकारलोपे, १०१५ सू० सेर्लोपे **ससि** इति भवति । **अलक्षिष्यत** । लक्ष् [लक्ष्] धातुः लक्षणे । लक्ष्+स्यत । १०६६ सू० लक्ष्-धातोः स्थाने छोल्ल इत्यादेशे, ६६७ सू० प्रकृति-प्रत्यययोर्मध्ये ज्ज इत्यस्य विकरणे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे छोल्लिज्ज+स्यत इति जाते, ६६९ सू० स्यत इत्यस्य न्त इत्यादेशे, सिप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **छोल्लिज्जन्तु** इति भवति । **तदा** । अव्ययपदमिदम् । १०८८ सू० तदा इत्यस्य तो इत्यादेशे **तो** इति भवति । **जगति** । जगत्+ङि । १७७ सू० गकारलोपे, ११ सू० तकारलोपे १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **जइ** इति भवति । **गौर्याः** । गौरी+ङस् । १५९ सू० औकारस्य स्थाने ओकारे, १००१ सू० ईकारस्य स्थाने इकारे, १०२१ सू० ङसः स्थाने हे इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **गोरिहें** इति भवति । **मुखकमलस्य** । मुखकमल+ङस् । १८७ सू० खकारस्य हकारे, १०१६ सू० ङसो लोपे, १००० सू० अकारस्य इकारे **मुहकमलि** इति भवति । **सदृशत्वम्** । सदृशत्व+अम् । १४२ सू० ऋकारस्य रि इत्यादेशे, ३४८ सू० दकारलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ४२५ सू० त्वप्रत्ययस्य डिमा (इमा) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये सरिसिमा+अम् इति जाते, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **सरिसिम** इति भवति । **किम्** । किम्+अम् । ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **का** इति भवति । **अपि**=वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **अलभ्यत** । डुलभष्-लभ् लाभे । लभ्+स्यत । ९१० सू० अकारागमे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, ६६९ सू० स्यत इत्यस्य न्त इत्यादेशे, सिप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **लहन्तु** इति भवति । **अलक्षिष्यत=छोल्लिज्जन्तु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **आदिग्रहणात्** । १०६६ सूत्रे आदि-पद-ग्रहणाद् देशीषु—*तत्तद्-देश्य-भाषासु ये क्रियावचनाः, तिङन्त-कृदन्तादयः क्रियावाचकाः शब्दाः उपलभ्यन्ते, ते उदाहार्याः, तेषामुदाहरणानि बोधव्यानि । यथा—

चूटकः चूर्णीभवति स्वयं, मुग्धे ! कपोले निहितः ।
श्वासानल-ज्वाला-सन्तप्तः, बाष्प-सलिल-संसिक्तः ॥२॥

भावार्थः—विरहवत्याः नायिकायाः दुःखपूर्णां दशां वीक्ष्य धैर्य-धारणाय कश्चित्तां प्रत्याह—**मुग्धे !**—हे सुन्दरि !, **कपोले**-गण्डस्थले **निहितः**—स्थापितः **चूटकः**—विवाहकाले परिधापितो मङ्गलभूतो हस्तिदन्तनिर्मितो नववधू-भुजाया आभूषणविशेषः **चूर्णीभवति** अचूर्णः चूर्णो भवतीति । **किम्भूतः चूटकः ? श्वासानल-ज्वाला-संतप्तः**, श्वासानामनलः-वन्हिः, तस्य ज्वाला, ताभिः सन्तप्तः-दग्धप्रायः । पुनः **किम्भूतः चूटकः? बाष्प-सलिल-संसिक्तः**, बाष्पस्य सलिलम् अश्रुजलमित्यर्थः, तेन संसिक्तः-सिंचितः ।

चूटकः । चूटक+सि । १०९३ सू० चूटकार्थे चूडुल्लअ-शब्दः प्रयुज्यते, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **चूडुल्लउ** इति भवति । **चूर्णी भवति** । चूर्णीभू+तिव् । इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० णकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **चुण्णीहोइ** इति भवति । अथवा—**चूर्णीभवति** इत्यस्य क्रियावचनस्य स्थाने प्रस्तुतसूत्रेण चुण्णीहोइ इत्यादेशे **चुण्णीहोइ** इति भवति । **स्वयम्** । अव्ययपदमिदम् । ३५० सू० वकारलोपे, १७७ सू० यकारस्य लोपे, २३ सू० मकाराऽनुस्वारे, २९ सू० अनुस्वारलोपे, १००० सू० अकारस्य इकारे **सइ** इति भवति । **मुग्धे !**=मुद्धि !, प्रक्रिया १०४७ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **कपोले** । कपोल+ङि । २३१ सू०

*अमुक-देशे भवः देश्यः, देशविशेष-प्रसिद्ध इत्यर्थः ।

पकारस्य वकारे,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **कवोलि** इति भवति। **निहितः**। निहित+सि। ३७० सू० तकारद्वित्वे, ४३५ सू० कप्रत्यये, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये कप्रत्ययस्य च लोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **निहित्तउ** इति भवति। **श्वासानल-ज्वाला-संतप्तः**। श्वासानल-ज्वाला-संतप्त+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, ३५० सू० उभयत्राऽपि वकारलोपे, ४ सू० द्वितीय-लकारस्थस्याऽऽकारस्य अकारे,**संतप्त** अयं शब्दः सम्-पूर्वक-तप्-धातुना निष्पन्नः,अतः प्रस्तुतसूत्रेण सम्पूर्वक-तप्धातोः स्थाने झलक्क इत्यादेशे झलक्क+त इति जाते, ६४५ सू० अकारस्य इकारे,१७७ सू० तकारलोपे,सिप्रत्यये,४३५ सू० क-प्रत्यये,१७७ सू० ककारस्य लोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **सासानल-जाल-झलक्किअउ** इति भवति। **बाष्प-सलिल-संसिक्तः**। बाष्पसलिल-संसिक्त+सि। ३४१ सू० ष्पस्य हकारे,३४८ सू० ककारलोपे,३६० सू० तकारद्वित्वे,४३५ सू० क-प्रत्यये, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, कप्रत्ययस्य च लोपे, पूर्ववदेव **बाह-सलिल-संसित्तउ** इति भवति। **संतप्तः**=**झलक्किअउ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

अनुगम्य द्वे पदे प्रेम निवर्तते यावत्।
सर्वाशन-रिपु-संभवस्य कराः परिवृत्ताः तावत्॥३॥

भावार्थः—प्रेमेति। लक्षणया प्रेमपदात् **प्रेमवती**-नायिका गृह्यते। काचित् प्रेमवती नायिका प्रदेशं गन्तु-कामस्य स्वकीय-पत्युः **द्वे पदे**ऽनुगम्य—प्रास्थानिकं द्विपदानुगमनं विधाय **यावत्**-यस्मिन् काले **निवर्तते**-प्रत्यावर्तते **तावत्**-तस्मिन् काले सा एवं प्रतीयते यथा **सर्वाशन-रिपुसंभवस्य**-सर्वमश्नातीति सर्वाशनः-वह्निः तस्य रिपुः-शत्रुः सागर इत्यर्थः। तस्मात् संभवः-उत्पत्तिर्यस्य स सर्वाशनरिपु-संभवः-चन्द्रः, तस्य **कराः**-किरणाः **परिवृत्ताः**-प्रत्यावर्तिताः। नायिकायाः सौन्दर्यातिशयं व्यज्यते।

अनुगम्य। क्रियापदमिदम्। १०६६ सू० अनुगम्यार्थे **अब्भडवंचिउ**-शब्दः प्रयुज्यते। **द्वे**। द्वि+औ। ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ६०९ सू० शसा सह द्विशब्दस्य बे इत्यादेशे, बाहुल्येन २३७ सू० वकारस्य बकारे **बे** इति भवति। **पदे**। पद+औ। इत्यत्र ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने,१७७ सू० दकारलोपे,१८० सू० यकारश्रुतौ,१०२४ सू० शसः स्थाने ई इत्यादेशे **पयई** इति भवति। **प्रेम**। प्रेमन्+सि। इत्यत्र १०६९ सू० रेफलोपे,३७० सू० मकारस्य द्वित्वे,११ सू० नकारलोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पेम्मु** इति भवति। **निवर्तते**। निपूर्वकः वृतु-वृत निवर्तने। निवृत्+ते। संस्कृतनियमेन निवर्त्+ते इति जाते,१७७ सू० वकारलोपे,९१० सू० अकारागमे,३५० सू० रेफस्य लोपे,३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **निअत्तइ** इति भवति। **यावत्**। अव्ययपदमिदम्। २४५ सू० यकारस्य जकारे,१०७७ सू० वत् इत्यस्य मकारे,१०६८ सू० मकारस्य स्थाने सानुनासिके वकारे **जावँ** इति भवति। **सर्वाशन-रिपु-संभवस्य**। सर्वाशन-रिपु-संभव+ङस्। ३५० सू० रेफलोपे,३६० सू० वकारद्वित्वे,२६० सू० शकारस्य सकारे,२२८ सू० नकारस्य णकारे,१७७ सू० पकारलोपे,१००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे **सव्वासण-रिउ-संभवहो** इति भवति। **कराः**। कर+जस्। इत्यत्र १०१५ सू० जसो लोपे **कर** इति भवति। **परिवृत्ताः**। परिवृत्त+जस्। १२६ सू० ऋकारस्य अकारे,१७७ सू० वकारलोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे,१०१५ सू० जसो लोपे **परिअत्ता** इति भवति। **तावत्**। अव्ययपदमिदम्। १०७७ सूत्रेण वत् इत्यस्य मकारे, १०६८ सू० मकारस्य सानुनासिके वकारे **तावँ** इति भवति। **अनुगम्य**=**अब्भडवंचिउ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

हृदये शल्यायते गौरी, गगने गर्जति मेघः।
वर्षारात्रि-प्रवासिनां विषमं संकटमेतद्॥४॥

भावार्थः—कश्चित्कामुकः वर्षतौ नायिका-विरहाद् दुःखी भवन्नाह। यद् यदा **गगने**-नभसि **मेघो गर्जति** तदा **हृदये गौरी**-प्रिया **शल्यायते** शल्यमिवाचरति, शल्यमिव पीडयतीति यावत्। हेतुमाह-**वर्षा-रात्रि-प्रवासिनां**-वर्षाणां रात्रिः, तस्यां ये प्रवासिनः-प्रदेशयात्रिकाः, तेषां कामुकानां कृते **एतद्**-मेघगर्जनं **विषमं**-भीषणं **संकटं**-दुःखोत्पादकं भवतीति भावः।

हृदये। हृदय+ङि। इत्यत्र १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० दकारस्य यकारस्य च लोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **हिअइ** इति भवति। **शल्यायते**। शल्याय+ते। इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण शल्याय+ते इत्यर्थे **खुडुक्कइ** इति शब्दः प्रयुज्यते। **गौरी**। गौरी+सि। इत्यत्र १५९ सू० औकारस्य ओकारे, ४३५ सू० कप्रत्यये, ११०० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये कप्रत्ययस्य च लोपे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, ११०२ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **गोरडी** इति भवति। **गगने**। गगन+ङि। इत्यत्र १७७ सू० द्वितीयगकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **गयणि** इति भवति। **गर्जति**। गर्ज्-धातुः गर्जने। गर्ज्+तिव्। प्रस्तुतसूत्रेण गर्ज्+तिव् इत्यर्थे **घुडुक्कइ**-शब्दः प्रयुज्यते। **मेघः**। मेघ+सि। १८७ सू० घकारस्य हकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **मेहु** इति भवति। **वर्षा-रात्रि-प्रवासिनाम्**। वर्षा-रात्रि-प्रवासिन्+आम्। १०६९ सू० रेफलोपे, ४३ सू० आदेरकारस्य आकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, १०६९ सूत्रेण पुनः उभयत्राऽपि रेफलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ११ सूत्रमनुसृत्य समासे वाक्य-विभक्त्यपेक्षायामन्त्यत्वमनन्त्यत्वञ्च भवति। तेन पकारस्य आदिभूतत्वात् ३६० सू० द्वित्वाऽभावे, ९५ सू० सकारस्थस्य इकारस्य उकारे, ११ सू० नकारलोपे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे **वासा-रत्ति-पवासुअहं** इति भवति। **विषमम्**। विषम+सि। २६० सू० षकारस्य सकारे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **विसमा** इति भवति। **संकटम्**। संकट+सि। १९५ सू० टकारस्य डकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **संकडु** इति भवति। **एतद्**=एहु प्रक्रिया १०३३ सूत्रे ज्ञेया। शल्यायते=खुडुक्कइ, गर्जति=घुडुक्कइ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

अम्ब ! पयोधरौ वज्रमयौ नित्यं यौ संमुखं तिष्ठतः।
मम कान्तस्य समराङ्गणके गजघटाः भङ्क्त्वा यान्ति ॥५॥

भावार्थः—काचिन्नायिका निज-कुच-दार्ढ्यविषयं वीक्ष्य आश्चर्यचकिता जाताऽतएव सा निजमातरमेवमुवाच-हे **अम्ब**!-मातः! मम **पयोधरौ**-स्तनौ, **वज्रमयौ**-वज्रसदृशौ दृश्येते, यतः एतौ **नित्यं**-सर्वदा **मम कान्तस्य सम्मुखं** यथा स्यात्तथा **तिष्ठतः**, प्रतिदिनं मर्दनेऽप्येतयोः किञ्चिदपि शैथिल्यं न जायते। किम्भूतस्य **कान्तस्य** ? **समराङ्गणके**-युद्धभूमौ तिष्ठतः, युद्धं कुर्वत इत्यर्थः, यस्य **मम कान्तस्य** सम्मुखं **गजघटाः**-गजानां-हस्तिनां घटाः-समूहा अपि **भङ्क्त्वा यान्ति**-भग्नीभूय पलायन्ते। परन्तु स्तनयोरुपरि तस्य प्रभावः न किञ्चिदपि उपलक्षितो भवति। अतः मदीय-स्तनाभ्यां सिंहपुरुषोऽपि मे कान्तः पराजित इति भावः।

अम्ब!। अम्बा+सि। इत्यत्र ३५० सू० बकारलोपे, ३६० सू० मकारद्वित्वे, १००० सू० आकारस्य इकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **अम्मि**! इति भवति। **पयोधरौ**। पयः-दुग्धं धरतीति **पयोधरस्तौ**। पयोधर+औ। १७७ सू० यकारलोपे, बाहुल्येन १८० सू० यकार-श्रुतिर्न जाता, १८७ सू० धकारस्य स्थाने हकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य स्थाने बहुवचने, १०१५ सू० जसो लोपे **पओहर** इति भवति। **वज्रमयौ**।

वज्जमय+औ । १०६९ सू० रेफलोपे,३६० सू० जकारद्विस्वे, १७७ सू० यकारलोपे, अत्राऽपि बाहुल्येन १८० सू० यकारश्रुतिर्न जाता, ततः वज्जमअ+औ इति जाते, ५ सू० दीर्घसन्धौ,६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, जसो लोपे **वज्जमा** इति भवति । **नित्यम्** । नित्य+सि । २८४ सू० त्यस्य चकारे, ३६० सू० चकारद्विस्वे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **निच्चु** इति भवति । **यौ** । यद्+औ । २४५ सू० यकारस्य जकारे,६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने,५४७ सू० जसः स्थाने डित् ए इत्यादेशे,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये,१०८१ सू० उच्चारण-लाघवे जेँ इति भवति । **सम्मुखम्** । क्रियाविशेषणमिदम् । सम्मुख+अम् । २३ सू० मकारस्यानुस्वारे,१८७ सू० खकारस्य हकारे,१०१५ सू० अमो लोपे **संमुह** इति भवति । **तिष्ठतः** । ष्ठा-स्था गतिनिवृत्तौ । स्था+तस् । ३४८ सू० सकारलोपे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ६३१ सू० अन्ति इत्यस्य न्ति इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **थन्ति** इति भवति । **मम**=**मइु**, प्रक्रिया १०५० सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **कान्तस्य**=**कन्तहो**ँ,इत्यस्य प्रक्रिया १०५० सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **समराङ्गणके** । समराङ्गणक+ङि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १७७ सू० ककारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **समरङ्गणइ** इति भवति । **गजघटाः** । गज-घटा+जस् । १७७ सू० जकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १९५ सू० टकारस्य डकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **गयघड** इति भवति । **भङ्क्त्वा** । भञ्जो (भञ्ज्) विनाशे । भञ्ज्+क्त्वा । प्रस्तुतसूत्रेण भञ्ज् इत्यस्य भज्ज इत्यादेशे,१११० सू० क्त्वः स्थाने इउ इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **भज्जिउ** इति भवति । अथवा भञ्ज्+क्त्वा इत्यत्र २५ सू० ञकारस्याऽनुस्वारे,२८ सू० अनुस्वारलोपे,३७० सू० जकारद्विस्वे, १११० सू० क्त्वः स्थाने इउ इत्यादेशे,अज्झीने परेण संयोज्ये **भज्जिउ** इति भवति । अनया रीत्याऽपि पदमिदं निष्पन्नं भवति । **यान्ति** । याधातुः गमने । या+अन्ति । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **जन्ति** इति भवति । **भङ्क्त्वा**=**भज्जिउ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

पुत्रेण जातेन को गुणः ? अवगुणः को मृतेन ?।
या [यस्मिन् जीवति] पैतृकी भूमिः, आक्रम्यतेऽपरेण ॥६॥

भावार्थः—**पुत्रेण जातेन को गुणः** ? अथवा जातस्य पुत्रस्य **मृतेन** कोऽपगुणः,अपकृष्टो गुणः—अपगुणः-हानिः,न कोऽपीति भावः,यतः यस्मिन् पुत्रे जीवति सति या **पैतृकी**-पितृसम्बन्धिनी **भूमिः**-स्थानं भवति,सा **अपरेण**-शत्रुजनेन **आक्रम्यते**-आत्मसात्क्रियते । यः पुरुषः पैतृकीं भूम्यादिसम्पत्तिमपि रक्षितुं नाऽलमस्ति तस्य जीवितमरणे तुल्ये स्तः,स हि कापुरुषो भूमौ भारायते,अतएव ईदृशः कुल-घातकः पुरुषः निन्दनीयो धिक्करणीयश्चाऽस्ति ।

पुत्रेण । पुत्र+टा । इत्यत्र १०६९ सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० तकारस्य द्विस्वे,१०१३ सू० टा-स्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **पुत्तें** इति भवति । **जातेन** । जात+टा । १७७ सू० तकारलोपे,१०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **जाएं** इति भवति । **कः** । किम्+सि । १०३८ सू० किमः स्थाने कवण इत्यादेशे,१००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **कवणु** इति भवति । **गुणः** । गुण+सि । १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **गुणु** इति भवति । **अपगुणः** । अपगुण+सि । इत्यत्र २३१ सू० पकारस्य वकारे, पूर्ववदेव **अवगुणु** इति भवति । **मृतेन** । मृत+टा । १३१ सू० ऋकारस्य उकारे,१७७ सू० तकारलोपे, १०१३ सू० टास्थाने णकारे,स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य स्थाने एकारे **मुएण** इति भवति । **या** यद् ।

+सि। २४५ सू० थकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, १०१५ सू० सेर्लोपे **आ** इति भवति। **पैतृकी**। पैतृकी+सि। १०९३ सू० पैतृकी इत्यर्थे बप्पीकी-शब्दः प्रयुज्यते, १०१५ सू० सेर्लोपे **बप्पीकी** इति भवति। **भूमिः**। भूमि+सि। १०९३ सू० भूम्यर्थे भुंहडी-शब्दः प्रयुज्यते, पूर्ववदेव सेर्लोपे **भुंहडी** इति भवति। **आक्रम्यते**। आङ्पूर्वकः क्रमु [क्रम्] धातुः आक्रमणे। आक्रम्+क्य+ते। प्रस्तुतसूत्रेण आक्रम्यते इत्यर्थे **चम्पिज्जइ** इति प्रयुज्यते। **अपरेण**। अपर+टा। २३१ सू० पकारस्य वकारे, १०१३ सू० टास्थाने णकारे,स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **अवरेण** इति भवति। **आक्रम्यते=चम्पिज्जइ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

तत्तावज्जलं सागरस्य, स तावान् विस्तारः।
तृषायाः निवारणं पलमपि नाऽपि परं शब्दायतेऽसारः॥७॥

भावार्थः—सागरोन्योक्त्या कञ्चिद् कृपणं धनिनं प्रति कश्चिदाह-तत् **तावज्जलम्**—स महान् जलराशिरित्यर्थः, तथा **स तावान् विस्तारः**-महान् विस्तारः **सागरस्य**—समुद्रस्य विद्यते तथाऽप्यसौ **तृषायाः**—तृषितस्य पिपासायाः **पलमपि**-किञ्चिन्मात्रमपि **निवारणं**-निवृत्तिं **नाऽपि**-नैव करोति, **परं**-किन्तु सागरोऽयम**सारः**-न विद्यते सारो यस्मिन् सः असारः-सारशून्यः,व्यर्थमिति यावत् **शब्दायते**-शब्दं करोति। **अयं भावः**-तेन धनेन किं यो न ददाति न भुंक्ते ?।

तत्=तं,प्रक्रिया १०५९ सूत्रे ज्ञेया। **तावत्**। तावत्+सि। ४२८ सू० वत् इत्यस्य डित् एत्तिअ इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **तेत्तिउ** इति भवति। बाहुल्येनाऽत्र ८४ सू० ह्रस्वो न जातः। **जलम्**। जल+सि। १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जलु** इति भवति। **सागरस्य**। सागर+ङस्। इत्यत्र १७७ सू० गकारलोपे,१८० सू० यकारश्रुतौ,१००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे,१०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **सायरहों** इति भवति। **सः**=सो, प्रक्रिया १०५५ सूत्रे ज्ञेया। **तावान्**। तावत्+सि। १०७८ सू० वत् इत्यस्य डित् एवड इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **तेवडु** इति भवति। **विस्तारः**। विस्तार+सि। इत्यत्र ३१६ सू० स्तस्य थकारे, ३६० सू० थकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **वित्थारु** इति भवति। **तृषायाः**। तृषा+ङस्। इत्यत्र १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे,१००१ सू० आकारस्य अकारे,१०२१ सू० ङसः स्थाने हे इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **तिसहें** इति भवति। **निवारणम्**। निवारण+सि। १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **निवारणु** इति भवति। **पलम्**। पल+सि। १००२ सू० अकारस्य उकारे, पूर्ववदेव **पलु** इति भवति। **अपि**=वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया। **न**। अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। **परम्**। अव्ययपदमिदम्। १०८९ सू० परम् इत्यस्य पर इत्यादेशे **पर** इति भवति। **शब्दायते**। शब्दं करोतीति। शब्दाय ध्वनिकरणे। शब्दाय+ते। प्रस्तुतसूत्रेण शब्दायते इत्यस्य स्थाने **धुट्ठुअइ** इति-शब्दः प्रयुज्यते। **असारः**। असार+सि। १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **असारु** इति भवति। **शब्दायते=धुट्ठुअइ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

★ अथ कृ आदि धातुओं को होने वाली आदेश-विधि ★

अपभ्रंश-भाषा में डुकृञ् (कृ) आदि धातुओं के स्थान में जो आदेशादि कार्य होते हैं, अब सूत्रकार द्वारा उनका निर्देश किया जा रहा है।

१०६० —अपभ्रंश-भाषा में **'क्रिये'** इस क्रियापद के स्थान में **कीसु** यह आदेश विकल्प से किया जाता है। जैसे—

सतो भोगान् यः परिहरति तस्य कान्तस्य बलि क्रिये।
तस्य दैवेनाऽपि मुण्डितं, यस्य खल्वाटं शीर्षम् ॥१॥

अर्थात्—जिस ने विद्यमान (सम्प्राप्त) भोगों (भोग्य पदार्थों) का परित्याग कर दिया है, उस कान्त (प्रीतम) के मैं बलिहारी जाती हूं। जिस का सिर खल्वाट (गंजा) है, उसे तो दैव (भाग्य) ने ही मुण्डित किया हुआ है।

यहां पर—**क्रिये** इस क्रियापद के स्थान में **कीसु**(करती हूं)यह आदेश विकल्प से किया गया है। आदेश के अभावपक्ष में साध्यमान अवस्था वाले **क्रिये** इस संस्कृत-शब्द का **बलि क्रिये सुजनस्य**—बलि किज्जउँ सुअणस्सु (मैं सुजन-श्रेष्ठ मनुष्य के बलिहार जाता हूं) यह रूप बनता है। यहां पर एक प्रश्न उपस्थित होता है कि वृत्तिकार ने **साध्यमान अवस्था** का जो उल्लेख किया है, इसका क्या अभिप्राय है? उत्तर में निवेदन है कि **धात्वर्थ** दो प्रकार का होता है। एक **सिद्धावस्थापन्न** दूसरा **साध्यावस्थापन्न**। साध्यावस्थापन्न को साध्यमानावस्थापन्न भी कहा जाता है। लिङ्ग और संख्या के अन्वय (सम्बन्ध) से युक्त कृदन्त प्रयोग सिद्धावस्थापन्न धात्वर्थ कहलाता है। जैसे—**पाक** (पकाना), **पठन** (पढ़ना) आदि कृदन्त शब्द लिङ्ग और संख्या के अन्वय से युक्त होते हैं। इनमें पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग या नपुंसक कोई न कोई लिङ्ग अवश्य रहता है तथा एक वचन, द्विवचन आदि संख्या भी पाई जाती है। अतः ये शब्द सिद्धावस्थापन्न कहे जाते हैं। इसके विपरीत, जो धात्वर्थ कृदन्त न हो, लिङ्ग और संख्या के अन्वय से भी युक्त न हो वह साध्यावस्थापन्न माना गया है। जैसे—**पचति** (वह पकाता है)। यह तिङन्त शब्द कृदन्त नहीं है। तथा पुल्लिङ्ग आदि धर्मों से भी रहित है। इसलिए इसे साध्यमानावस्थापन्न कहा जाता है। इसी प्रकार **"क्रिये"** यह क्रियापद भी तिङन्त होने से पुंस्त्व आदि धर्मों से रहित है। अतः यह साध्यमानावस्थापन्न शब्द स्वीकार किया गया है। इसी दृष्टि को आगे रखकर वृत्तिकार ने—**साध्यमान अवस्था वाले क्रिये** इस संस्कृत शब्द का उल्लेख किया है।

१०६१—अपभ्रंश भाषा में पर्याप्त (पर्याप्त होने का भाव, समर्थ, तृप्ति) अर्थ में भू धातु के स्थान में **हुच्च** यह आदेश होता है। जैसे—

अतितुङ्गत्वं यत्स्तनयोः सच्छेदकं न खलु लाभः।
सखि! यदि कथमपि त्रुटिवशेन अधरे प्रभवति नाथः ॥१॥

अर्थात्—हे सखि! स्तनों का अतितुङ्गत्व (अधिक ऊंचाई) लाभदायक नहीं है, किन्तु हानिकारक है, क्योंकि मेरे प्रीतम कठिनाई के साथ तथा देरी के साथ ही **अधर** (नीचे का होंठ) तक पहुंचने में समर्थ हो पाते हैं। भाव यह है कि स्तनों की अधिक ऊंचाई के कारण ही प्रीतम के लिए अधर-चुम्बन करना भी कठिन हो गया है।

यहां पर—**पर्याप्त्यर्थक भू** धातु के स्थान में **हुच्च** यह आदेश करके **प्रभवति** का **पहुच्चइ** (वह समर्थ होता है, वह तृप्त होता है) यह रूप बनाया गया है।

१०६२—अपभ्रंश भाषा में **ब्रूग् (ब्रू)** धातु के स्थान में **ब्रुव** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**ब्रूत सुभाषितं किमपि**—ब्रुवह सुहासिउ किं पि (कुछ भी सुभाषित-सुन्दर उक्ति कहो) यहां पर **ब्रूग्** धातु को **ब्रुव** यह आदेश विकल्प से किया गया है। **आदेश के अभाव पक्ष में—**

इयद् उक्त्वा शकुनिः स्थितः पुनर्दुःशासन उक्त्वा।
तदाऽहं जानामि एष हरिः यदि ममाऽग्रतः उक्त्वा ॥१॥

अर्थात्—दुर्योधन अभिमानपूर्ण भाषा में बोलता हुआ कहता है कि मेरे सामने इतना कह कर शकुनि बैठ गया, फिर दुश्शासन भी इतना बोल कर बैठ गया, किन्तु तब जानूं यदि मेरे आगे यह कृष्ण भी कुछ कह कर दिखाए ? अर्थात् श्री कृष्ण का मेरे सामने बोलने का साहस नहीं है।

यहां पर—उक्त्वा=बोल्पिणु तथा बोल्लिव (कहकर) इन पदों में ब्रूग् धातु का प्रयोग किया गया है, किन्तु वैकल्पिक होने के कारण प्रस्तुत सूत्र से इसे ब्रुव यह आदेश नहीं हो सका।

१०६३—अपभ्रंश-भाषा में व्रज् धातु के स्थान में 'वुञ' यह आदेश होता है। जैसे—१—व्रजति =वुञइ (वह जाता है), २—व्रजित्वा=वुञेप्पि, वुञेप्पिणु (जाकर) यहां पर व्रज् धातु को वुञ यह आदेश किया गया है।

१०६४—अपभ्रंश-भाषा में दृश्-धातु के स्थान में 'प्रस्स' यह आदेश होता है। जैसे—पश्यति= प्रस्सदि (वह देखता है) यहां पर दृश् धातु को प्रस्स यह आदेश किया गया है।

१०६५—अपभ्रंश भाषा में ग्रह् धातु के स्थान में 'गृण्ह' यह आदेश होता है। जैसे—पठ गृहीत्वा व्रतम्=पढ गृण्हेप्पिणु व्रतु (व्रत को ग्रहण करके पढ़ो) यहां पर ग्रह् धातु के स्थान में गृण्ह यह आदेश किया गया है।

१०६६—अपभ्रंश भाषा में तक्षि आदि धातुओं के स्थान में 'छोल्ल' आदि आदेश होते हैं। जैसे— यथा यथा तीक्ष्णान् लात्वा करान् यदि शशी अतक्षिष्यत।
तथा जगति गौर्याः मुखकमलस्य सदृशत्वं किमपि अलप्स्यत ॥१॥

अर्थात्—यदि तीक्ष्ण शस्त्रों को लेकर चन्द्रमा अपनी किरणों का तक्षण करे, चन्द्रमा अपनी किरणों को छील ले तो ही वह [चन्द्रमा] गौरी [गौरवर्ण वाली नायिका या शिव-पत्नी पार्वती] के मुख-कमल की कुछ [थोड़ी सी] समानता को प्राप्त कर सकता है। अर्थात्—गौरी की सुन्दरता के सामने चन्द्रमा का सौन्दर्य नगण्य है।

यहां पर अतक्षिष्यत=छोल्लिज्जन्तु (तक्षण किया जाए) इस पद में प्रस्तुत सूत्र से तक्षिधातु के स्थान से छोल्ल यह आदेश किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि सूत्रोक्त 'तक्ष्यादीनाम्' इस पद में पठित आदि-पद से देशीय प्राकृत-भाषाओं में जो-जो भी क्रिया-वचन उपलब्ध होते हैं, उन सब के उदाहरण भी ग्रहण कर लेने चाहिएं। जैसे—

चूडकः चूर्णीभवति स्वयं मुग्धे ! कपोले निहितः।
श्वासानल-ज्वाला-संतप्तः बाष्प-सलिल-संसिक्तः ॥२॥

अर्थात्—हे मुग्धे ! (हे सुन्दरि !) कपोल पर रखा हुआ कंकण श्वासरूपी अग्नि-ज्वालाओं से संतप्त तथा अश्रु-जल से संसिक्त (सींचा हुआ) हो जाने के कारण अपने आप ही चूरा-चूरा हो रहा है।

यहां पर श्वासानल-ज्वाला-संतप्तः इस समस्त पद में पठित संतप्त इस क्रियापद के स्थान में झलक्क यह आदेश किया गया है। दूसरा उदाहरण—

अनुगम्य द्वे पदे प्रेम निवर्तते यावत्।
सर्वाशन-रिपु-संभवस्य कराः परिवृत्ताः तावत् ॥३॥

अर्थात्—दो कदम पीछे चल कर प्रेम [प्रेमवती नायिका] जिस समय वापिस लौट रही थी

तो उस समय ऐसे प्रतीत हो रही थी, जैसे सर्वाशन-रिपु-संभव (चन्द्रमा) की किरणें वापिस लौट गई हैं। अर्थात् नायिका का रंगरूप चन्द्रकिरणों जैसा तेजस्वी था।

यहां पर 'अनुगम्य' इस क्रियापद के स्थान में प्रस्तुतसूत्र से—'अब्भडवंचिउ' यह आदेश किया गया है। तीसरा उदाहरण—

हृदये शल्यायते गौरी, गगने गर्जति मेघः।
वर्षा-रात्रि-प्रवासिनां विषमं संकटमेतत् ॥४॥

अर्थात्—आकाश में मेघ गरज रहा है, हृदय में गौरी-सुन्दरी का शल्य-कांटा वेदना कर रहा है। सचमुच प्रवासियों [प्रदेश में यात्रा करने वालों] के लिए वर्षा की रात्रि बड़ी संकट-मय होती है।

यहां पर 'शल्यायते' इस क्रियापद के स्थान पर 'खुडुक्कइ' यह आदेश किया गया है। तथा 'गर्जति' इस क्रियापद के स्थान पर 'घुडुक्कइ' यह आदेश कर रखा है। चौथा उदाहरण—

अम्ब ! पयोधरौ वज्रमयौ नित्यं यौ सम्मुखं तिष्ठतः।
मम कान्तस्य समराङ्गणके गजघटाः भङ्क्त्वा यान्ति ॥५॥

अर्थात्—जिस मेरे कान्त—प्रीतम के सामने रणभूमि में हाथियों के झुण्ड भी हार कर भाग जाते हैं, उस के सामने भी ये स्तन वैसे ही खड़े रहते हैं। अतः हे माता! मेरे ये स्तन वज्रमय प्रतीत हो रहे हैं।

यहां पर प्रस्तुतसूत्र के द्वारा 'भञ्जो (भञ्ज)' इस धातु के स्थान पर 'भञ्ज' यह आदेश किया गया है। पांचवां उदाहरण—

पुत्रेण जातेन को गुणः अपगुणः को मृतेन ?।
या पैतृकी भूमिः आक्रम्यतेऽपरेण ॥६॥

अर्थात्—उस पुत्र के पैदा होने से क्या लाभ है ? तथा उसके मर जाने पर भी क्या हानि हो सकती है ? जिस के होते हुए पैतृकी भूमि दूसरे से आक्रान्त हो जाती हो।

यहां 'आक्रम्यते' इस अर्थ में 'चम्पिज्जइ' इस क्रियापद का आदेश किया गया है। छठा उदाहरण—

तत्तावत् जलं सागरस्य, स तावान् विस्तारः।
तृषायाः निवारणं पलमपि, नाऽपि परं शब्दायतेऽसारः ॥७॥

अर्थात्—सागर में इतना महान जल है और इसका इतना विशाल विस्तार है, तथापि यह प्यासे की थोड़ी सी तृषा का भी निवारण नहीं कर सकता और व्यर्थ ही शब्द कर रहा है।

यहां पर 'शब्दायते' इस क्रियापद के स्थान में धुट्ठुअइ यह आदेश किया गया है।

★ अथ कादिव्यञ्जनानां गाद्यादेशविधिः ★

१०६७—अनादौ स्वरादसंयुक्तानां क-ख-त-थ-प-फां ग-घ-द-ध-ब-भाः। ८। ४। ३९६।
अपभ्रंशेऽपदादौ वर्तमानानां स्वरात्परेषामसंयुक्तानां क-ख-त-थ-प-फां स्थाने यथासंख्यं ग-घ-द-ध-ब-भाः प्रायो भवन्ति। कस्य गः।

जं दिट्ठउँ सोम-ग्गहणु असइहिँ हसिउँ निसङ्कु।
पिअ-माणुस-विच्छोह-गरु गिलि गिलि राहु! मयङ्कु ॥१॥

खस्य घः— अम्मीए ! सत्थावत्थेहि सुधिँ चिन्तिज्जइ माणु।
पिए दिट्ठे हल्लोहलेण को चेअइ अप्पाणु ? ॥२॥

त-थ-प-फानां द-ध-ब-भाः । सबधु केरप्पिणु कधिदु मई तसु पर सभलउँ जम्मु ।

जासु न चाउ, न चारहडि, न य पम्हट्ठउ धम्मु ॥३॥

अनादाविति किम् ? सबधु करेप्पिणु । अत्र कस्य गत्वं न भवति। स्वरादिति किम् ? गिलि गिलि राहु ! मयङ्कु । असंयुक्तानामिति किम् ? एक्कहिँ अक्खिहिँ सावणु [३५७,४] प्रायोऽधिकारात् क्वचिन्न भवति ।

जइ केवँइ पावीसु पिउ अकिआ कुड्डु करीसु ।

पाणिउ नवइ सरावि जिवँ सव्वङ्गें पइसीसु ॥४॥

उअ कणिआरु पफुल्लिअउ कञ्चण-कन्ति-पयासु ।

गोरी-वयण-विणिज्जिअउ नं सेवइ वण-वासु ॥५॥

१०६८—मोऽनुनासिको वो वा । ८ । ४ । ३९७ । अपभ्रंशेऽनादौ वर्तमानस्याऽसंयुक्तस्य मकारस्य अनुनासिको वकारो वा भवति । कवँलु, कमलु । भवँरु, भमरु । लाक्षणिकस्यापि । जिवँ । तिवँ । जेवँ । तेवँ । अनादावित्येव । मयणु । असंयुक्तस्येत्येव । तसु पर सभलउ जम्मु [३९६,४] ।

१०६९—वाऽधो रो लुक् । ८ । ४ । ३९८ । अपभ्रंशे संयोगादधो वर्तमानो रेफो लुग् वा भवति । जइ केवँइ पावीसु पिउ [३९६,४] । पक्षे ।

जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि ! मज्झु प्रियेण [३७९,४] ।

१०७०—अभूतोऽपि क्वचित् ।८।४।३९९। अपभ्रंशे क्वचिदविद्यमानोऽपि रेफो भवति ।

व्रासु महारिसि एउ भणइ जइ सुइ-सत्थु पमाणु ।

मायहँ चलण नवन्ताहँ दिवि दिवि गङ्गा-ण्हाणु ॥१॥

क्वचिदिति किम् ? वासेण वि भारह-खम्भि बद्ध ।

१०७१—आपद्विपत्संपदां द इः । ८ । ४ । ४०० । अपभ्रंशे आपद्,विपद्,संपद् इत्येतेषां दकारस्य इकारो भवति । "अणउ करन्तहो पुरिसहो आवइ आवइ" । विवइ । संपइ । प्रायोऽधिकारात् । गुणहिँ न संपय कित्ति पर [३३५,४] ।

★ अथ काऽऽदि-व्यञ्जनानां गाऽऽदि-व्यञ्जनादेशविधिः ★

अपभ्रंशभाषायां क, ख, त, थ,प,फ इत्यादि-व्यञ्जनानां स्थाने गकारादयः ये आदेशा संजायन्ते, तान् प्रदर्शयति वृत्तिकारः । यथा—

१०६७—कस्य गः । अपभ्रंशभाषायां ककारस्य स्थाने गकारो भवति । यथा—

यद् दृष्टं सोम-ग्रहणमसतीभिः [तदा] हसितं निश्शंकम् ।

प्रिय-मानुष-विक्षोभ-करं गिल गिल राहो ! मृगाङ्कम् ॥१॥

भावार्थः—**असतीभिः**-कुलटाभिः नारीभिः **यत् सोमग्रहणम्**-सोमस्य चन्द्रस्य ग्रहणं-ग्रसनं, राहु-चन्द्र-सम्मिलनं वा **दृष्टं**, तदा ताभिः **निश्शंकम्**-शंकायाः निर्गतः, तदिव निश्शंकं-यथेच्छं यथा स्यात्तथा **हसितम्**-चन्द्रस्य उपहासो विहितः। किमूचुस्ताः—**हे राहो! मृगाङ्कम्**-मृगोऽङ्के-क्रोडे यस्य सः, अथवा मृगः अङ्कः-चिह्नं यस्य सः, तं चन्द्रं **गिल गिल**—ग्रस ग्रस, चन्द्रग्रसनं कुरु इति यावत्। यतोह्ययं चन्द्रः अस्मादृशानां कृते दुःखदः, अतः एतस्य ग्रसनमेव वरम्। **किम्भूतं चन्द्रम्? प्रिय-मानुष-विक्षोभ-करम्**, प्रियाश्च ते मानुषाः-जनाः ते प्रियमानुषाः तेषां वियोगे यः विक्षोभः—व्याकुलत्वं तं करोतीति प्रिय-मानुषविक्षोभकरः, तम्। लोकदर्शनभिया उपपतिः प्रकाशे रन्तुं नोत्सहते, अपितु भीतिमाप्नोति, अन्त-र्निहिते च निशाकरे जातान्धकारतया सः निश्शंकं रंस्यतीति भावः।

यद्—जं,प्रक्रिया १०६१ सूत्रे ज्ञेया। **दृष्टम्**। दृष्ट+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे,३०५ सू० ष्टस्य स्थाने ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे,४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, १७७ सू० ककारलोपे,१०२५ सू० अकारस्य स्थाने उं इत्यादेशे,१०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे,१०१५ सू० सेर्लोपे **दिट्ठउँ** इति भवति। **सोम-ग्रहणम्**। सोमग्रहण+सि। इत्यत्र १०६९ सू० रेफलोपे,३६० सू० गकारद्वित्वे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,सेर्लोपे **सोमग्गहणु** इति भवति। **असतीभिः**। असती+भिस्। १७७ सू० तकारस्य लोपे,१००१ सू० ईकारस्य इकारे,१०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **असइहिँ** इति भवति। **हसितम्**। हसित+सि। इत्यत्र १७७ सू० तकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे,५१४ सू० सेर्मकारे,२३ सू० मकारस्यानुस्वारे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **हसिउँ** इति भवति। **निश्शंकम्**। निश्शंक+अम्। ३४८ सू० शकारलोपे, बाहुल्येन ४३ सू० इ-कारस्य दीर्घाभावे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्ये, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० अमो लोपे **निसङ्कु** इति भवति। **प्रिय-मानुष-विक्षोभ-करम्**। प्रिय-मानुष-विक्षोभकर+अम्। १०६९ सू० रेफस्य लोपे,१७७ सू० यकारस्य लोपे,२२८ सू० नकारस्य णकारे, २६० सू० ष-कारस्य स्थाने सकारे, २८८ सू० क्षस्य छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, १०६७ सू० ककारस्य गकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **पिअ-माणुस-विच्छोह-गरु** इति भवति। **गिल**। गिल्-धातुः निगलने। गिल्+हि। इत्यत्र १०५८ सू० हि इत्यस्य इकारे,अज्झीने परेण संयोज्ये **गिलि** इति भवति। **राहो!**। राहु+सि। १०१५ सू० सेर्लोपे **राहु!** इति भवति। **मृगाङ्कम्**। मृगाङ्क+अम्। १२६ सू० ऋकारस्य अकारे,१७७ सू० ग-कारलोपे,१८० सू० यकारश्रुतौ,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **मयङ्कु** इति भवति। **प्रिय-मानुष-विक्षोभ-करम्=पिअ-माणुस-विच्छोह-गरु** इत्यत्र प्र-स्तुतसूत्रेण ककारस्य स्थाने गकारो जातः। **खस्य घः**। साम्प्रतं प्रस्तुतेन (१०६७) सूत्रेण खकारस्य स्थाने घकारो विधीयते। यथा—

अम्बिके! स्वस्थावस्थैः सुखेन चिन्त्यते मानः।
प्रिये दृष्टे व्याकुलत्वेन कश्चेतते आत्मानम्? ॥२॥

भावार्थः—**हे अम्बिके!**-मातः!, **सुखेन**-सुखपूर्वकं **स्वस्थावस्थैः**, स्वस्मिन् तिष्ठतीति स्वस्था अवस्था येषां ते स्वस्थावस्थाः, तैः, स्वस्थचित्तैरित्यर्थः, **मानोऽहङ्कारः चिन्त्यते**, परं-किन्तु **प्रिये दृष्टे** सति तदागमन-जनित-प्रसन्नताऽतिरेकेन **व्याकुलत्वेन आत्मानं कः चेतते** – जानाति? न कोऽपीत्यर्थः।

अम्बिके!। अम्बिका+सि। इत्यत्र ३५० सू० बकारस्य लोपे,३६० सू० मकारस्य द्वित्वे,१७७ सू०

ककारलोपे, ५३० सू० आकारस्य एकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **अम्मिए** ! इति भवति । **स्वस्थावस्थैः** । स्वस्थावस्थ+भिस् । ३५० सू० संयुक्त-वकारलोपे, ३४८ सू० उभयत्राऽपि अलादि-संयुक्त-सकार-लोपे, ३६० सू० उभयत्राऽपि थकारद्वित्वे, ३६१ सू० उभयत्राऽपि पूर्वथकारस्य तकारे, ४०४ सू० अकारस्य एकारे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे **सत्थावत्थेहिं** इति भवति । **सुखेन** । सुख+टा । प्रस्तुत-सूत्रेण खकारस्य घकारे, प्रयोगदर्शनात् ३६० सू० घकारस्य द्वित्वाभावे, १००० सू० अकारस्य इकारे, १०१४ सू० टाप्रत्ययस्य सानुनासिके एकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००० सू० एकारस्य इकारे **सुघिँ** इति भवति । **चिन्त्यते** । चिती चिन्तायाम् । संस्कृतनियमेन चिन्त्+क्य+ते इति जाते, ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० ते इत्यस्य इ आदेशे **चिन्तिज्जइ** इति भवति । **मानः** । मान+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **माणु** इति भवति । **प्रिये** । प्रिय+ङि । इत्यत्र १०६९ सू० रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य एकारे **पिए** इति भवति । **दृष्टे** । दृष्ट+ङि । १२८ सू० ऋकारस्य इ-कारे, ३०५ सू० ष्टस्य स्थाने ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १००५ सू० ङि-ना सह अकारस्य एकारे **दिट्ठे** इति भवति । **व्याकुलत्वेन** । व्याकुलत्व+टा । १०९३ सू० व्याकुलत्वार्थे हल्लोहल-शब्दः प्रयुज्यते, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **हल्लोहलेण** इति भवति । **कः** । किम्+सि । ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **को** इति भवति । **चेतते** । चित [चित्] सावधानतायाम् । चित्+ते । १००० सू० इकारस्य एकारे, ९१० सू० अकारस्यागमे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इ आदेशे **चेअइ** इति भवति । **आत्मानम्** । आत्मन्+अम् । ३२२ सू० त्मस्य स्थाने पकारे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ५४५ सू० अन् इत्यस्य आण इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **अप्पाणु** इति भवति । **सुखेन**=सुघिँ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण खकारस्य घकारो जातः । **त-थ-प-फ-नां द-ध-ब-भाः** । प्रस्तुतसूत्रेण यथा तकारस्य स्थाने दकारो भवति, तथा थकारस्य स्थाने धकारो भवति । एवमेव पकारस्य बकारः, फकारस्य च स्थाने भकारो भवति । एतदेव प्रदर्शयति वृत्तिकारः । यथा—

शपथं कृत्वा कथितं मया तस्य परं सफलं जन्म ।
यस्य न त्यागः, न चारभटी, न च प्रमुषितो धर्मः ॥३॥

भावार्थः—शपथं-प्रणं कृत्वा मया कथितं-भणितम्, यत् परं-केवलं तस्य एव जन्म सफलम्-फलेन सह वर्तमानं सफलं विद्यते, यस्य त्यागः न प्रमुषितः-न नष्टः, यस्य च आरभटी—साहसः, शूरता, न नष्टा, तथा यस्य च धर्मः-कर्तव्यपरायणता न नष्टो भवति । यावज्जीवनं त्याग-शौर्य-गुणैः, कर्तव्य-परायणैश्च भाव्यमिति यावत् । शपथं विधाय वच्मि यत् तेषामेव नराणां जन्म सफलं जगति भवति, यैः पुरुषैः दानं दत्तं, येषां साहसः धर्म-संरक्षकः जनगण-कल्याणकारकश्च विद्यते, यैश्च धर्मो न परित्यक्तः, ते एव प्राणिनः जीविताः सन्तीति भावः ।

शपथम् । शपथ+अम् । इत्यत्र २६० सू० शकारस्य स्थाने सकारे, प्रस्तुतसूत्रेण पकारस्य बकारे, थकारस्य च धकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **सबधु** इति भवति । **कृत्वा** । डुकृञ् [कृ] करणे । कृ+क्त्वा । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ११११ सू० क्त्वः स्थाने एप्पिणु इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **करेप्पिणु** इति भवति । **कथितम्** । कथित+सि ।

प्रस्तुतसूत्रेण थकारस्य धकारे,तकारस्य च दकारे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **कधिदु** इति भवति। **मया**। अस्मद्+टा। इत्यत्र १०४८ सू० टाप्रत्ययेन सह अस्मदः स्थाने मइँ इत्यादेशे **मइँ** इति भवति। **तस्य**। तद्+ङस्। ११ सू० दकारस्य लोपे, १००९ सू० ङसः स्थाने सु इत्यादेशे **तसु** इति भवति। **परम्**। अव्ययपदमिदम्। १०८९ सू० परम् इत्यस्य स्थाने पर इत्यादेशे **पर** इति भवति। **सफलम्**। सफल+सि। प्रस्तुतसूत्रेण फकारस्य भकारे,४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये,१७७ सू० ककारलोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सभलउँ** इति भवति। **जन्म**। जन्मन्+सि। ३३२ सू० न्मस्य स्थाने मकारे, ३६० सू० मकारद्वित्वे, ११ सू० नकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जम्मु** इति भवति। **यस्य**=जासु,प्रक्रिया १०२९ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **न**। अव्ययपदमिदम्। संस्कृतसममेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। **त्यागः**। त्याग+सि। २८४ सू० त्यस्य चकारे,१७७ सू० गकारलोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **चाउ** इति भवति। **च**। अव्ययपदमिदं संस्कृत-तुल्यमेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। ***आरभटी**। आरभटी+सि। १८७ सू० भकारस्य हकारे, १९५ सू० टकारस्य डकारे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **आरहडि** इति सिद्धम्। **च आरहडि** इत्यत्र ५ सूत्रेण दीर्घसन्धौ **चारहडि** इति भवति। **च**। अव्ययपदमिदम्। १७७ सू० चकारस्य लोपे,१८० सू० यकारस्य श्रुतौ **य** इति भवति। **प्रमुषितः**। प्रमुषित+सि। १०९३ सू० [अथवा १०२९ सूत्रेण] प्रमुषितस्य स्थाने पम्हुट्ठ इत्यादेशे, १००० सू० उकारस्य अकारे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पम्हुट्ठउ** इति भवति। **धर्मः**। धर्म+सि। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० मकारद्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **धम्मु** इति भवति। **शपथम्**=**सबधु**, **कथितम्**=**कधिदु**, **सफलम्**=**सभलउँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **अनादावितिकिम्** ? अनादि-भूतानामेव ककारादिव्यञ्जनानां स्थाने गकारादिव्यञ्जनानि भवन्ति, नान्यथा। यथा—**शपथं कृत्वा**—सवधु करेप्पिणु, प्रक्रिया प्रस्तुतसूत्रस्य तृतीयश्लोके समवलोकनीया। अत्र ककारस्याऽऽदिभूतत्वात् गकारो न जातः। **स्वरादिति किम्** ? स्वरात्पर-वर्तिनामेव ककारादिव्यञ्जनानां गकारादिव्यञ्जनानि भवन्ति, नान्यथा। यथा—**गिल गिल राहो ! मृगाङ्कम्**=गिलि गिलि राहु ! मयङ्कु, प्रक्रियाऽस्यैव सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **मयङ्कु** इत्यत्र ककारस्य स्वरात्परत्वाभावात् गकारो न जातः। **असंयुक्तानामिति किम्** ? संयोग-शून्यानामेव ककारादिव्यञ्जनानां गकारादिव्यञ्जनानि भवन्ति, नान्यथा। यथा—**एकस्मिन् अक्ष्णि श्रावणः**=एक्कहिँ अक्खिहिँ सावणु, प्रक्रिया १०२८ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **एक्कहिँ,अक्खिहिँ** इत्यत्र ककारस्य संयुक्तत्वाद् गकारो न जातः। तथा खकारस्याऽपि च संयुक्तत्वात् घकारो न जातः। **प्रायोऽधिकारात् क्वचिन्न भवति**। प्रस्तुत-सूत्रे १००० सूत्रतः **प्रायः** इत्यस्य पदस्याऽनुवृत्तिरायाति, अतः क्वचित्-कस्मिंश्चित् स्थले प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जायते। यथा—

यदि कथंचित् प्राप्स्यामि प्रियमकृतं कौतुकं करिष्यामि।
पानीयं नवके शरावे, यथा सर्वाङ्गेण प्रवेक्ष्यामि ॥४॥

भावार्थः—काचिन्नायिका निजनायकं प्रति स्नेहाऽऽधिक्यं संसूचयति। यथा—**यदि कथंचित्**-केनाऽपि प्रकारेण **प्रियं** निजकान्तं **प्राप्स्यामि** निजपार्श्ववर्तिनं कुर्वानि,तदाऽहं **अकृतं** न कृतम्, अकृतम्-अपूर्वं **कौतुकं** कुतूहलोत्पादकं किमपि कृत्यं **करिष्यामि**। **यथा**—**नवके**-नूतने **शरावे** मृण्मयभाजनविशेषे

*कोषेषु **आरभटी**-शब्दः नृत्यविशेषे, साहसे, रौद्र-भयानक-वीर-रस-विवेचक-वृत्तौ च प्रयुज्यते।

पानीयं जलं **सर्वाङ्गेण** सर्वेषामङ्गानां समाहार: इति सर्वाङ्गम्, तेन सर्वाङ्गेन प्रवेशं करोति, एवमेव अहमपि निजकान्ते सर्वाङ्गेण **प्रवेक्ष्यामि**, कान्ताय सर्वस्वमपि समर्पयिष्यामीति भाव: ।

यदि=जइ,प्रक्रिया १०५५ सूत्रे ज्ञेया । **कथम्**=केवँ,इत्यस्य प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य प्रथम-श्लोके ज्ञेया । **चित्** । अव्ययपदमिदम् । इत्यत्र १७७ सू० चकारलोपे,११ सू० तकारलोपे **इ** इति भवति । **प्राप्स्यामि** । प्रपूर्वकः आप्-लृ-(आप्)-धातुः प्राप्तौ । प्राप्+स्य+मिव् । १०६९ सू० रेफस्य लोपे,९१० सू० अकारागमे,२३१सू० पकारस्य स्थाने वकारे,१०००सू० अकारस्य ईकारे,१०५९ सू० स्यस्य सकारे, १०५६ सू० मिव: स्थाने उं इत्यादेशे,१० सू० स्वरस्य लोपे,अज्भीने परेण संयोज्ये **पावीसुं** इति जाते, बाहुल्येन अनुस्वारस्य लोपे **पावीसु** इति भवति । **प्रियम्** । प्रिय+अम्। इत्यत्र १०६९ सू० रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० अमो लोपे **पिउ** इति भवति । **अकृतम्** । अकृत+अम् । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **अकिआ** इति भवति । प्रस्तुतसूत्रे प्रायोऽधिकारादत्र ककारस्य गकारो न जात: । **कौतुकम्** । कौतुक+अम् । इत्यत्र १०९३ सू० कौतुकार्थे कोड्ड-शब्द: प्रयुज्यते,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,१०१५ सू० अमो लोपे **कुड्ड** इति भवति । **करिष्यामि** । डुकृञ्(कृ)करणे । कृ+स्य+मिव् । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, १००० सू० द्वितीयस्य अकारस्य ईकारे, १०५९ सू० स्यस्य सकारे,१०५६ सू० मिव: स्थाने उं इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, बाहुल्येन अनुस्वारस्य लोपे **करीसु** इति भवति । **पानीयम्** । पानीय+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०१ सू० ईकारस्य इकारे, १७७ सू० यकारस्य लोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **पाणिउ** इति भवति । **नवके** । नवक+ङि । १७७ सू० ककारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य स्थाने इकारे, बाहुल्येन १० सू० स्वरस्य लोपाऽभावे **नवइ** इति भवति । **शरावे** । शराव+ङि। २६० सू० शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **सरावि** इति भवति । **यथा**=जिवँ,इत्यस्य प्रक्रिया १०५६ सूत्रे ज्ञेया । **सर्वाङ्गेण** । सर्वाङ्ग+टा । इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे,३६० सू० वकारद्वित्वे,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,१०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे,अनुस्वारस्य स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **सव्वङ्गें** इति भवति । **प्रवेक्ष्यामि** । प्रपूर्वक: विश्-धातु: प्रवेशे । प्रविश्+स्य+मिव् । इत्यत्र १०६९ सू० रेफलोपे,१७७ सू० वकारलोपे,२६० सू० शकारस्य सकारे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे,१००० सू० द्वितीयस्य अकारस्य ईकारे, १०५९ सू० स्यस्य स्थाने सकारे, १०५६ सू० मिव: स्थाने उं इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे,अज्भीने परेण संयोज्ये, बाहुल्येन अनुस्वारस्य लोपे **पइसीसु** इति भवति । **अकृतम्**=**अकिआ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्राप्तिरासीत् किन्तु प्रायोऽधिकारात् ककारस्य गकारो न जात: ।

पश्य कर्णिकार: प्रफुल्लितक:, काञ्चन-कान्ति-प्रकाश: ।
गौरी-वदन-विनिर्जितक:, इव सेवते वनवासम् ॥५॥

भावार्थ:—गौर्या: सौन्दर्याऽऽधिक्यं कर्णिकार-पुष्पेणोत्प्रेक्ष्यते । हे सखि! **पश्य** एतत् **कर्णिकार:**-पुष्पविशेष: (कनेर इति नागर्याम्) गौरीमुखसौन्दर्येण पराजितो भूत्वा खिन्नमना: **इव वनवासम्**-वनस्य वास:, तं **सेवते** । किम्भूत: कर्णिकार: ? **प्रफुल्लितक:**, प्रकर्षेण विकसित:, पुन: किम्भूत: ? **काञ्चनकान्ति-प्रकाश:**, काञ्चनस्य-सुवर्णस्य कान्ति:-दीप्ति:, तदिव प्रकाशो यस्य स: । पुन: किम्भूत: ? **गौरी-वदन-विनिर्जितक:**, गौर्या:-सुन्दर्या: वदनं-मुखं तेन विनिर्जितक:-पराजित: । परमसौन्दर्यसम्पन्नोऽपि कर्णिकार: गौरीमुखसौन्दर्याऽतिशयेन पराजित: सन् सलज्ज: वनमाश्रित इति भाव: ।

पदथ । दृशिर(दृश)दर्शने । दृश्+हि । संस्कृतनियमेन **पश्य** इति जाते । ४८२ सू० पश्यार्थे **अब** इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते । **कर्णिकारः** । कर्णिकार+सि । ३५० सू० रेफलोपे, बाहुल्येन ३६० सू० णकार-द्वित्वाभावे, १७७ सू० अन्तिम-ककार-लोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **कणिआरु** इति भवति । **प्रफुल्लितकः** । प्रफुल्लितक+सि । इत्यत्र १०६९ सू० रेफलोपे, १०६७ सूत्रे प्रायोऽधिकाराद्त्र फकारस्य स्थाने भकारो न जातः, १७७ सू० तकारस्य ककारस्य च लोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पफुल्लिअउ** इति भवति । **काञ्चन-कान्ति-प्रकाशः** । काञ्चन-कान्ति-प्रकाश+सि । ८४ सू० उभयत्रापि संयोगे परे ह्रस्वे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ३५० सू० रेफलोपे, १७७ सू० ककारलोपे, १८० सू० यकारस्य श्रुतौ, २६० सू० शकारस्य स्थाने सकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **कञ्चण-कन्ति-पयासु** इति भवति । प्रस्तुतसूत्रे प्रायोऽधिकारादत्राऽपदादौ वर्तमानस्य ककारस्य गकारो नाऽभूद् । **गौरी-वदन-विनिर्जितकः** । गौरी-वदन-विनिर्जितक+सि । इत्यत्र १५९ सू० औकारस्य ओकारे, १७७ सू० दकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, २२८ सू० उभयत्रापि नकारस्य णकारे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० जकारद्वित्वे, १७७ सू० तकारस्य ककारस्य च लोपे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **गोरी-वयण-विणिज्जिअउ** इति भवति । अत्राऽपि प्रस्तुतसूत्रे प्रायोऽधिकारात् ककारस्य गकारो न जातः । **इव** । अव्ययपदमिदम् । ११११ सू० इवार्थे **नं** इति प्रयुज्यते । **सेवते** । षेवृ (सेव) सेवायाम् । सेव्+ते । ९१० सू० अकारस्यागमे, ६२८ सू० ते इत्यस्य स्थाने इच् (इ) इत्यादेशे **सेवइ** इति भवति । **वनवासम्** । वनवास+अम् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **वणवासु** इति भवति । प्रस्तुतसूत्रे प्रायोऽधिकारात् **प्रफुल्लितकः**=**पफुल्लिअउ**, **काञ्चन-कान्ति-प्रकाशः**=कञ्चण-कन्ति-पयासु, **गौरी-वदन-विनिर्जितकः**=गोरी-वयण-विणिज्जिअउ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता ।

१०६८—**कमलम्** । कमल+सि । १०६८ सू० मकारस्य वैकल्पिके सानुनासिके वकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **कवँलु कमलु** इति भवति । **भ्रमरः** । भ्रमर+सि । इत्यत्र १०६९ सू० रेफलोपे, १०६८ सू० मकारस्य वैकल्पिके सानुनासिके वकारे, पूर्ववदेव **भवँरु भमरु** इति भवति । **लाक्षणिकस्याऽपि** । लक्षणेन-सूत्रेण जातम्-निष्पन्नं लाक्षणिकं तस्य लाक्षणिकस्याऽपि मकारस्य स्थाने सानुनासिको वकारो भवति । यथा—**तथा** इत्यस्मिन्नव्ययपदे १०७२ सू० था इत्यस्य स्थाने डेम (एम) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **तेम** इति भवति । इत्यत्र मकारः लाक्षणिकः, नतु प्रतिपदोक्तः-स्वाभाविकः । अतोऽत्राऽपि प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जायते । **कमलम्** इत्यत्र मकारो न केनापि सूत्रेण जातोऽतोऽयं मकारः प्रतिपदोक्तः । व्याकरणशास्त्रे **लक्षण-प्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणं भवतीति** न्यायेन १०६८ सूत्रेण मकारस्य स्थाने यः सानुनासिको वकारो भवति स प्रतिपदोक्तस्यैव मकारस्याऽनेनैव न तु लाक्षणिकस्याऽपि । परन्तु बाहुल्येन प्रस्तुतसूत्रेण लाक्षणिकस्य मकारस्य स्थानेऽपि सानुनासिको वकारो भवति । अत्र अपिशब्दः समुच्चयार्थकः । तेन प्रतिपदोक्तस्य मकारस्य, लाक्षणिकस्य च मकारस्य स्थानेऽपि सानुनासिको वकारः करणीयः । तथाहि—**यथा** । अव्ययपदमिदम् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०७२ सू० था इत्यस्य स्थाने डिम(इम), डेम (एम) इत्यादेशौ, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीनं परेण संयोज्ये, १०६८ सू० लाक्षणिकस्य मकारस्य स्थाने सानुनासिके वकारे **जिवँ जेवँ** इति भवति । **तथा** । अव्ययपदमिदम् । १०७२ सू० था इत्यस्य डिम(इम), डेम (एम) इत्यादेशौ, जिवँ-जेवँ-वदेव **तिवँ तेवँ** इति साध्यम् । एषु प्रयोगेषु लाक्षणिकस्य मकारस्य स्थाने सानुनासिको वकारो जातः ।

अनादावित्येव । अनादौ वर्तमानस्यैव मकारस्य स्थाने सानुनासिको वकारो भवति,नान्यथा । यथा—**मदनः** । मदन+सि । मकारस्याऽऽदिभूतत्वादत्र प्रस्तुतसूत्रस्याऽप्रवृत्तौ १७७ सू० दकारलोपे,१८०सू० यकारश्रुतौ,२२८ सू० नकारस्य णकारे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **मयणु** इति भवति । **असंयुक्तस्यैव** । असंयुक्तस्य[संयोगरहितस्य]मकारस्यैव साऽनुनासिको वकारो भवति,नान्यथा। यथा—**तस्य परं सफलं जन्म** = तसु पर सभलउ जम्मु,प्रक्रिया १०६७ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया । **सफलम्** । सफल+सि । इत्यत्र तु १०६७ सू० फकारस्य स्थाने भकारे,४३५ सू० कप्रत्यये,१७७ सू० ककारस्य लोपे,१००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सभलउ** इति भवति । **जन्म**=**जम्मु** इत्यत्र मकारस्य संयुक्तत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः ।

१०६९—**संयोगादधो वर्त्तमानस्य** । यस्य वर्णस्योच्चारणं संयुक्तवर्णात् पूर्वं जायते तद् ऊर्ध्ववर्णमुच्यते, यस्योच्चारणं संयुक्तव्यञ्जनयोः पश्चाद् भवति तद्-वर्णमधः उच्यते । पश्चाद्वर्ती वर्णः अधोवर्णः, पूर्ववर्ती च वर्णः ऊर्ध्ववर्णः समवसेयः । **यदि कथंचित् प्राप्स्यामि प्रियम्**=जइ केवँइ पावीसु पिउ, प्रक्रिया १०६७ सूत्रस्य चतुर्थ-श्लोके ज्ञेया । **प्राप्स्यामि**=**पावीसु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण रेफस्य लोपोऽभवद् । **पक्षे** । प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावपक्ष इत्यर्थः । यथा—**यदि भग्नाः परकीयाः ततः सखि ! मम प्रियेण**=जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि ! मज्झु प्रियेण, प्रक्रिया १०५० सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । **प्रियेण**=**प्रियेण** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण वैकल्पिकत्वाद् रेफस्य लोपाऽभावः, १७७ सूत्रेण इत्युक्तेन यकारलोपोऽभावश्च समवसेयः ।

१०७०—**अभूतोऽपीति** । अभूतः—अविद्यमानः, यस्य पूर्वमभाव इत्यर्थः । अपभ्रंशभाषायां यस्मिन् शब्दे रेफस्य सर्वथाऽभावो दृश्यते,तस्मिन्[अविद्यमानरेफेऽपि] शब्दे रेफस्य योजना विधेया । यथा-

व्यासो महर्षिः एतद् भणति, यदि श्रुतिशास्त्रं प्रमाणम् ।
मातॄणां चरणौ नमतां, दिवा दिवा गङ्गास्नानम् ॥१॥

भावार्थः—मातृचरण-नमस्कार-महिमानं व्यासर्षिः भणति । **व्यासः**—व्यासनामधेयः प्रसिद्धस्तपस्वी **महर्षिः**—महांश्चासौ ऋषिः, महर्षिः, **एतद् भणति**—प्रतिपादयति । **यदि श्रुतिशास्त्रम्**—श्रुतयः-वेदाः, शास्त्राणि-वेदातिरिक्ताः धर्मग्रन्थाः, तेषां समाहारः **श्रुतिशास्त्रम्**,**प्रमाणम्**—शिष्टजनसम्मतं तदा **मातॄणां**—जननीनां **चरणौ नमतां** सतां पुरुषाणां **दिवा-दिवा**—प्रतिदिनं **गङ्गास्नानं** भवति । वैदिकसंसारे गङ्गानाम्नी पवित्रा नदी, तत्र स्नानं यथा कल्याणकरं, मङ्गलकरं, दुःखहरञ्च मन्यते तथैव मातृचरणनमस्कारोऽपि तत्तुल्यमेवाऽवगन्तव्यः ।

व्यासः । व्यास+सि । इत्यत्र ३४९ सू० यकारलोपे,१०७० सू० रेफस्याऽऽगमे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **वासु** इति भवति । **महर्षिः** । महद्-ऋषि+सि । इत्यत्र वाक्यापेक्षया अल्पत्वे, ११ सू० दकारलोपे,४ सू० हकारस्थाकारस्य आकारे,१४१ सू० ऋकारस्य रि इत्यादेशे, २६० सू० षकारस्य सकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **महारिसि** इति भवति । **एतद्** । एतद्+अम् । इत्यत्र १७७ सू० तकारस्य लोपे, ११ सू० दकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **एउ** इति भवति । **भणति** । भण [भण्] भणने । भण्+तिप् । ९१० सू० अकारागमे,६२८ सू० तिप इचादेशे **भणइ** इति भवति । **यदि**=जइ, प्रक्रिया १०५५ सूत्रे ज्ञेया । **श्रुतिशास्त्रम्** । श्रुतिशास्त्र+सि । इत्यत्र १०६९ सू० उभयत्राऽपि रेफलोपे, २६० सू० उभयत्राऽपि शकारस्य सकारे,१७७ सू० तकारलोपे,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,३१६ सू० स्तस्य स्थाने थकारे,३६० सू० थकारद्वित्वे,३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **सुइ-सत्थु** इति भवति । **प्रमाणम्** । प्रमाण+सि । १०६९ सू० रेफ-

लोपे, अकारस्य उकारे,सेर्लोपे **पमाणु** इति भवति। **मातृणाम्**। मातृ+आम्। १२६ सू० ऋकारस्य अ-कारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे,१८० सू० यकारस्य श्रुतौ,१०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **मायहँ** इति भवति। **चरणौ**। चरण+औ। २५४ सू० रेफस्य लकारे,६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने,१०१५ सू० जसो लोपे **चलण** इति भवति। **नमताम्**। णम [नम्] नमने। नम्+शतृ। ११० सू० अकारस्याऽऽगमे,८९७ सू० मकारस्य वकारे,६७० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे,१००१ सू० अकारस्य आकारे, आम्-प्रत्यये,१०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे **नवन्ताहं** इति भवति। **दिवा**। अ-व्ययपदमिदम्। १०९० सू० दिवास्थाने दिवे इत्यादेशे,१००० सू० एकारस्य इकारे **दिवि** इति भवति। **गङ्गा-स्नानम्**। गङ्गास्नान+सि। ३४६ सू० स्नस्य स्थाने ण्ह इत्यादेशे,बाहुल्येन ८४ सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **गङ्गाण्हाणु** इति भवति। **व्यासः=वासु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **क्वचिदिति किम्**? प्रस्तुतसूत्रेण क्वचित्—कस्मिंश्चित् स्थले एव रेफाऽऽगमो विधीयते,न तु सर्वत्र। यथा—**व्यासेन**। व्यास+टा। ३४९ सू० यकारलोपे,१०१३ सू० टास्थाने णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **वासेण** इति भवति। **व्रत=वि**, इ-त्यस्य प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया। **भारतस्तम्भे**। भारतस्तम्भ+ङि। २१४ सू० तकारस्य हकारे,२७९ सू० स्तस्य खकारे,११ सूत्रमनुसृत्य"समासे तु वाक्यविभक्त्यपेक्षायाम् अन्त्यत्वम् अनन्त्यत्वं च" स्वीकृतम्,तेन खकारस्याऽऽदिभूतत्वात् ३६० सूत्रेण द्वित्वाभावे,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य स्थाने इकारे **भारह-खम्भि** इति भवति। **बद्धम्**। बद्ध+सि। १०१५ सू० सेर्लोपे **बद्ध** इति भवति। प्रस्तुतसूत्रे **क्वचित्** इति पाठबलाद् **व्यासेन=वासेण** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः।

१०७१—अनयम्। न नयः—नीतिः, अनयः-अनीतिस्तम्। अनय+अम्। २२८ सू० नकारस्य णकारे, १७७ सू० यकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **अणउ** इति भवति। **कुर्वतः**। डुकृञ् [कृ] करणे। कृ+शतृ। इत्यत्र ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे,ङस्प्रत्यये,१००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे **करन्तहो** इति भवति। **पुरुषस्य**। पुरुष+ङस्। १११ सू० रोरुकारस्य इकारे,२६० सू० षकारस्य सकारे,पूर्ववदेव **पुरिसहो** इति साध्यम्। **आपद्**। आपद्+सि। २३१ सू० पकारस्य वकारे, १०७१ सू० दकारस्य इकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **आवइ** इति भवति। **आयाति**। आङ्पूर्वकः याधातुः आगमने। आया+तिव्। अपभ्रंशे १०६६ सू० आया इत्यर्थे आव इत्यस्य प्रयोगे,६२८ सू० तिव इचादेशे **आवइ** इति भवति। **विपद्**। विपद्+सि। इत्यत्र २३१ सू० पकारस्य वकारे,प्रस्तुतसूत्रेण दकारस्य इकारे,सेर्लोपे **विवइ** इति भवति। **संपद्**। सपद्+सि। बाहुल्येन २३१ सू० पकारस्य वकाराऽभावे,पूर्ववदेव **संपइ** इति साध्यम्। **आपद्=आवइ, विपद्=विवइ, संपद्=संपइ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **प्रायोऽधिकारात्**। प्रस्तुतसूत्रे **प्रायः** इति पदस्य अधिकारात् क्वचित् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न भवति। यथा—**गुणैः न संपत् कीर्तिः परं=**गुणहिँ न संपय कित्ति पर, प्रक्रिया १००६ सूत्रे ज्ञेया। प्रायोऽधिकारात् **संपत्=संपय** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता। **संपय** इ-त्यस्य पदस्य साधना त्वित्थम्—**संपद्**। संपद्+सि। बाहुल्येन २३१ सू० पकारस्य स्थाने वकाराऽभावे, १५ सू० दकारस्य स्थाने आकारे,१८० सू० यकारस्य श्रुतौ,१००१ सू० आकारस्य स्थाने अकारे,१०१५ सू० सिप्रत्ययस्य लोपे **संपय** इति भवति।

★ अथ कादि व्यञ्जनों को होने वाली गकारादि आदेशविधि ★

अपभ्रंशभाषा में क, ख, त और थ आदि व्यञ्जनों के स्थान में जो ग और घ आदि

आदेशकार्य होते हैं। अब सूत्रकार द्वारा उनका निर्देश किया जा रहा है—

१०६७—अपभ्रंश भाषा में, पद के अनादि में वर्तमान (विद्यमान) स्वर से परे, असंयुक्त क, ख, त, थ, प और फ इन व्यञ्जनों के स्थान में प्रायः यथासंख्य (क्रमशः) ग, घ, द, ध, ब और भ ये आदेश होते हैं। **ककार के स्थान में किए गए गकार का उदाहरण**—

यद् दृष्टं सोम-ग्रहणमसतीभिः हसितं निश्शंकम्।
प्रिय-मानुष-विक्षोभ-करं गिल, गिल राहो! मृगाङ्कम् ॥१॥

अर्थात्—असती [कुलटा] स्त्रियों ने जब चन्द्र-ग्रहण को देखा, तो वे खिलखिलाकर हंसीं और कहने लगीं कि हे राहो! प्रिय मनुष्यों के विरह के कारण अशान्ति पैदा करने वाले चन्द्रमा को तू बिना किसी शंका के निगल जा, निगल जा।

यहां पर—**प्रिय-मानुष-विक्षोभकरम्**=पिअ-माणुस-विच्छोह-गरु [प्रिय मनुष्यों के वियोग के कारण विक्षुब्ध करने वाले को] इस पद में **ककार** के स्थान में **गकार** का आदेश किया गया है। खकार के स्थान में किए जाने वाले घकार का उदाहरण—

अम्बिके! स्वस्थावस्थैः, सुखेन चिन्त्यते मानः।
प्रिये दृष्टे व्याकुलत्वेन कश्चेतते आत्मानम्? ॥२॥

अर्थात्—हे जननि! स्वस्थ अवस्था में स्वाभिमान का चिन्तन करना सुगम है, परन्तु प्रियजन के दिखाई देने पर व्याकुलता के कारण अपने-आप का किस को भान रहता है?

यहां पर **सुखेन**=सुघिं (सुख के साथ) इस पद में **खकार** के स्थान में **घकार** का आदेश किया गया है। **तकार, थकार, पकार** तथा **फकार** के स्थान में क्रमशः किए जाने वाले **दकार, धकार, बकार** तथा **भकार** रूप आदेश के उदाहरण—

शपथं कृत्वा कथितं मया, तस्य परं सफलं जन्म।
यस्य न त्यागः, न चारभटी, न च प्रमुषितो धर्मः ॥३॥

अर्थात्—मैं शपथ [सौगन्ध] खाकर कहता हूं कि उसी व्यक्ति का जन्म सफल होता है कि जिस का त्याग [दानधर्म], आरभटी [शूरवीरता] तथा धर्म नष्ट नहीं हुआ है।

यहां पर—१—**कथितम्**=कधिदु [कहा है] इस पद में **थकार** को **धकार** और **तकार** को **दकार** का आदेश किया गया है। २—**शपथम्**=सवधु [सौगन्ध] इस पद में **पकार** को **बकार** तथा **थकार** को **धकार** कर रखा है। ३—**सफलम्**=सभलउं [फल वाला], इस पद में **फकार** को **भकार** बनाया गया है। प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र में "**अनादौ**[आदि में अविद्यमान]इस पद का ग्रहण क्यों किया गया है? उत्तर में निवेदन है कि—**शपथं कृत्वा**=सवधु करेप्पिणु[शपथ करके]आदि प्रयोगों में **आदिभूत ककार** को **गकारादेश** न हो जाए, इसलिए सूत्रकार ने **अनादौ** इस पद का उल्लेख किया है। पुनः प्रश्न उपस्थित होता है कि प्रस्तुत सूत्र में "**स्वरात्**[स्वर से परे हो]"यह पद क्यों पढ़ा है? उत्तर में निवेदन है कि-**गिल गिल राहो! मृगाङ्कम्**=गिलि गिलि राहु! मयङ्कु [हे राहो! चन्द्र को निगल जा, निगल जा] इस **प्रयोग** में **ङकार** [व्यञ्जन]से परे **ककार** को **गकारादेश** न हो, इस दृष्टि से सूत्रकार ने **स्वरात्** इस पद का आश्रयण किया है। पुनः आशंका उत्पन्न होती है कि सूत्रकार ने "**असंयुक्तानाम्**[संयोग-रहितों को]इस पद का उल्लेख किस उद्देश्य से किया है? उत्तर में निवेदन है कि—**एकस्मिन् अक्षिणि श्रावणः**=एक्कहिं अक्खिहिं सावणु [एक आंख में श्रावण मास है] यहां पर

एक्कहिं, अक्खिहिं इन पदों में संयुक्त ककार को गकार तथा संयुक्त खकार को घकार न हो, इसलिए सूत्रकार ने 'असंयुक्तानाम्' यह पद पढ़ा है। इस के अतिरिक्त-प्रस्तुत सूत्र में प्रायः [आमतौर पर] इस पद का १००० वें सूत्र से अधिकार आ रहा है। "प्रायः" यह शब्द प्रस्तुत में बहुलार्थक का बोधक है। अतः कहीं-कहीं पर प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं भी होती। जैसे—

यदि कथञ्चित् प्राप्स्यामि प्रियमकृतं कौतुकं करिष्यामि।
पानीयं नवके शरावे यथा सर्वाङ्गेण प्रवेक्ष्यामि ॥४॥

अर्थात्—यदि किसी तरह अपने प्रिय को प्राप्त करलूं तो अकृत [जो किया न हो] कौतुक [तमाशा] करूंगी। नवीन प्याले में पानी की भांति सर्व अङ्गों से प्रवेश करूंगी। भाव यह है कि नूतन प्याले के कण-कण में जैसे जल समा जाता है, वैसे मैं भी अपना सर्वस्व प्रीतम के चरणों में निछावर कर दूंगी।

यहां पर **अकृतम्**=अकिअ [जो किया न हो] इस पद में **ककार** को **गकारादेश** होना था, परन्तु **बहुलाधिकार** के कारण नहीं हो पाया।

पश्य कर्णिकारः प्रफुल्लितकः काञ्चन-कान्ति-प्रकाशः।
गौरी-वदन-विनिर्जितकः इव सेवते वनवासम् ॥५॥

अर्थात्—स्वर्ण की कान्ति के समान प्रकाश वाले और फूले हुए कनेर के फूल को देख, मानों गौरी [सुन्दरी] के सुन्दर मुख से पराजित हो कर यह वनवास का सेवन कर रहा है।

यहां पर—**प्रफुल्लितकः**=पफुल्लिअउ [विकसित] इस पद में प्रस्तुत सूत्र से **फकार** के स्थान में **भकार**, **तकार** के स्थान में **दकार** और **ककार** के स्थान में **गकार** का आदेश होना था, परन्तु **बहुलाधिकार** के कारण वह नहीं हो सका।

१०६८—अपभ्रंश-भाषा में अनादि में वर्तमान तथा असंयुक्त मकार के स्थान में विकल्प से सानुनासिक (अनुनासिक वाले) वकार का आदेश होता है। जैसे—**१—कमलम्**=कवँलु, कमलु (कमल), **२—भ्रमरः**=भवँरु, भमरु (भँवरा) यहां मकार के स्थान में सानुनासिक वकार का विकल्प से आदेश किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि लाक्षणिक **अर्थात्** लक्षण=सूत्र से निष्पन्न मकार को भी सानुनासिक वकार का आदेश हो जाता है। जैसे—**१—यथा**=जिम=जिवँ (जैसे), **२—तथा**=तिम=तिवँ (वैसे), **३—यथा**=जेम=जेवँ (जैसे), **४—तथा**=तेम=तेवँ (वैसे) यहां पर लाक्षणिक मकार को सानुनासिक वकारादेश किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि अनादिभूत मकार को ही सानुनासिक वकारादेश होता है, आदिभूत को नहीं। जैसे—**मदनः**=मयणु (कामदेव) यहां मकार आदिभूत था, अतः इसे सानुनासिक वकारादेश नहीं हो सका। इसके अलावा—**मकार** यदि असंयुक्त हो तो ही इसे उक्त आदेश होता है, अन्यथा नहीं। जैसे—**तस्य परं सफलं जन्म**=तसु पर सभलउ जम्मु (उस का जन्म बड़ा सफल है) यहां पर संयुक्त होने से **मकार** के स्थान में **सानुनासिक** वकारादेश नहीं हो सका।

१०६९—अपभ्रंश-भाषा में संयोग से अधो-वर्तमान (संयुक्त वर्ण में दूसरा वर्ण) रेफ का विकल्प से लोप होता है। जैसे—**यदि कथंचित् प्राप्स्यामि प्रियम्**=जइ केवँइ पावीसु पिउ (यदि किसी तरह प्रिय को प्राप्त करलूं) यहां पर—**प्रियम्**=पिउ (प्रीतम को) इस पद में अधोवर्तमान रेफ का विकल्प से लोप किया गया है। लोप के अभावपक्ष में—**यदि भग्नाः परकीयाः, ततः सखि मम प्रियेण**=जइ भग्गा पारक्कडा, तो सहि! मज्झु प्रियेण (हे सखि! यदि शत्रुओं को भगाया है, तो मेरे प्रीतम

ने यह रूप बनता है। यहां पर—**प्रियेण**=प्रियेण(प्रीतम ने) इस पद में सूत्र का विधान वैकल्पिक होने से रेफ का लोप नहीं हो सका।

१०७०—अपभ्रंश-भाषा में कहीं-कहीं पर अविद्यमान (जो विद्यमान न हो), रेफ भी प्रयुक्त हो जाता है। जैसे—

व्यासो महर्षिः एतद् भणति यदि श्रुतिशास्त्रं प्रमाणम् ।
मातॄणां चरणौ नमतां दिवा दिवा गङ्गा-स्नानम् ॥१॥

अर्थात्—महर्षि व्यास ऐसा कहते हैं कि यदि श्रुति शास्त्र प्रमाण हैं, प्रमाणस्वरूप हैं, सच्चे हैं तो माता के चरणों में किया गया दैनिक प्रणाम गंगा-स्नान के समान है।

यहां पर, **व्यासः**-व्रासो (व्यास ऋषि)इस पद में रेफ का सर्वथा अभाव था, किन्तु प्रस्तुतसूत्र ने उसका प्रयोग करके **व्रासो** यह रूप बना दिया। प्रश्न हो सकता है कि सूत्रकार ने '**क्वचित्** (कहीं पर), इस पद का आश्रयण क्यों किया है ? उत्तर में निवेदन है कि सर्वत्र अविद्यमान रेफ का प्रयोग न हो जाए इसलिए सूत्रकार ने **क्वचित्** इस पद का उल्लेख किया है। जैसे **व्यासेनाऽपि भारतस्तम्भे बद्धम्**—वासेण वि भारह-खम्भि बद्ध (व्यास ऋषि के द्वारा भी भारत-रूपी स्तम्भ में बांधा गया है) यहां **वासेण** इस पद में रेफ का प्रयोग नहीं किया गया है। भाव यह है कि रेफका प्रयोग सार्वत्रिक नहीं समझना चाहिए।

१०७१—अपभ्रंश-भाषा में **आपद्**, **विपद्** और **संपद्** इन शब्दों के **दकार** को **इकारादेश** होता है। जैसे—१—**अनयं कुर्वतः पुरुषस्य आपद् आयाति**=अणउ करन्तहो पुरिसहो आवइ आवइ[अन्याय करने वाले मनुष्य पर मुसीबत आती है], २—**विपद्**=विवइ [विपत्ति], ३—**संपद्**=संपइ [सम्पत्ति] यहां **आपद्** आदि शब्दों के दकार को इकार किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में **प्रायः** [बहुल] का **अधिकार** होने पर कहीं पर प्रस्तुत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे—**गुणैः न सम्पद्, कीर्तिः परम्**=गुणहिँ न संपय कित्ति पर [गुणों से सम्पत्ति नहीं,परन्तु कीर्ति मिलती है] यहां **सम्पत्** शब्द था, प्रस्तुत सूत्र से इसके **दकार** को **इकार** होना चाहिए था, परन्तु **बहुलाधिकार** के कारण नहीं हो सका।

★ अथ कथन्तादिशब्दसम्बन्धी आदेशविधिः ★

१०७२—कथं-यथा-तथां थादेरेमेमेहेधा डितः।८।४।४०१। अपभ्रंशे कथं,यथा, तथा इत्येतेषां थादेरवयवस्य प्रत्येकम् एम, इम, इह, इध इत्येते डितश्चत्वार आदेशा भवन्ति।

केम समप्पउ दुट्ठु दिणु किध रयणी छुडु होइ।
नव-वहु-दंसण-लालसउ वहइ मणोरह सो इ ॥१॥
ओ गोरी-मुह-निज्जिअउ वद्दलि लुक्कु मियङ्कु।
अन्नु वि जो परिहविय-तणु सो किवँ भवँइ निसङ्कु ॥२॥
बिम्बाहरि तणु रयण-वणु किह ठिउ सिरि-आनन्द !।
निरुवम-रसु पिएं पिअवि जणु सेसहों दिण्णी मुद्द। ३॥
भण सहि! निहुअउँ तेवँ मइं जइ पिउ दिट्ठु सदोसु।
जेवँ न जाणइ मज्झु मणु पक्खावडिअं तासु ॥४॥

जिवँ जिवँ वङ्किम लोअणहं । तिवँ तिवँ वम्महु निअय-सर (३४४,४) ।

मइँ जाणिउ प्रिय ! विरहिअहं क वि धर होइ विआलि ।

नवर मिअङ्कु वि तिह तवइ जिह दिणयरु खय-गालि ॥५॥ (३७७,४)

एवं तिध-जिधावुदाहार्यौ ।

१०७३—यादृक्तादृक्कीदृगीदृशां दादेर्डेहः ।८।४।४०२। अपभ्रंशे यादृगादीनां दादेरवयवस्य डित् एहु इत्यादेशो भवति ।

मइं भणिअउ बलिराय ! तुहुं केहउ मग्गण एहु ।

जेहु तेहु न वि होइ, वढ ! सइं नारायणु एहु ॥१॥

१०७४—अतां डइसः । ८ । ४ । ४०३ । अपभ्रंशे यादृगादीनामदन्तानां यादृश-तादृश-कीदृशेदृशानां दादेरवयवस्य डित् अइस इत्यादेशो भवति । जइसो । तइसो । कइसो । अइसो ।

१०७५—यत्र-तत्रयोस्त्रस्य डिदेत्थ्वत्तु । ८ । ४ । ४०४। अपभ्रंशे यत्र-तत्र-शब्दयोस्त्रस्य एत्थु, अत्तु इत्येतौ डितौ भवतः ।

जइ सो घडदि प्रयावदी केत्थु वि लेप्पिणु सिक्खु ।

जेत्थु वि तेत्थु वि एत्थु जगि भण तो तहि सारिक्खु ॥१॥

जत्तु ठिदो । तत्तु ठिदो ।

१०७६—एत्थु कुत्रात्रे । ८ । ४ । ४०५ । अपभ्रंशे कुत्र, अत्र इत्येतयोस्त्र-शब्दस्य डित् एत्थु इत्यादेशो भवति । केत्थु वि लेप्पिणु सिक्खु । जेत्थु वि तेत्थु वि एत्थु जगि । (४०४,४) ।

१०७७—यावत्तावतोर्वादेर्म उं महिं ।८।४।४०६। अपभ्रंशे यावत्तावदित्यव्यययोर्वकारादेरवयवस्य म, उं, महिं इत्येते त्रय आदेशा भवन्ति ।

जाम न निवडइ कुम्भ-यडि सीह-चवेड-चडक्क ।

ताम समत्तहं मयगलहं पइ पइ वज्जइ ढक्क ॥१॥

तिलहं तिलत्तणु ताउं पर जाउं न नेह गलन्ति ।

नेहि पणट्ठइ ते ज्जि तिल तिल फिट्टवि खल होन्ति ॥२॥

जामहिं विसमी कज्जगइ जीवहं मज्झे एइ ।

तामहिं अच्छउ इयरु जणु सुअणु वि अन्तरु देइ ॥३॥

१०७८—वा यत्तदोतोर्डेवडः । ८ । ४ । ४०७ । अपभ्रंशे यद्,तद् इत्येतयोरत्वन्तयोर्यावत्तावतोर्वकारादेरवयवस्य डित् एवड इत्यादेशो वा भवति ।

जेवडु अन्तरु रावण-रामहं, तेवडु अन्तरु पट्टण-गामहं ।

पक्षे । जेत्तुलो तेत्तुलो ।

१०७९—वेदं-किमोर्यादेः । ८ । ४ । ४०८ । अपभ्रंशे इदम्, किम् इत्येतयोरत्वन्तयोरियत्किर्यतोर्यकारादेरवयवस्य डित् एवड इत्यादेशो वा भवति । एवडु अन्तरु । केवडु अन्तरु । पक्षे एत्तुलो । केत्तुलो ।

१०८०—परस्परस्याऽऽदिरः । ८ । ४ । ४०९। अपभ्रंशे परस्परस्यादिरकारो भवति ।

ते मुग्गडा हराविआ जे परिविट्ठा ताहं ।
अवरोप्परु जोअन्ताहं सामिउ गञ्जिउ जाहं ॥१॥

१०८१—कादि-स्थैदोतोरुच्चार-लाघवम् ।८। ४ । ४१० । अपभ्रंशे कादिषु व्यञ्जनेषु स्थितयोः ए, ओ इत्येतयोरुच्चारणस्य लाघवं प्रायो भवति ।

सुधें चिन्तिज्जइ माणु । (३९६,४) । तसु हउँ कलिजुगि दुल्लहहो (३३८,४) ।

१०८२—पदान्ते उं-हुं-हिं-हंकाराणाम् । ८ । ४ । ४११ । अपभ्रंशे पदान्ते वर्तमानानां उं, हुं, हिं, हं इत्येतेषां उच्चारणस्य लाघवं प्रायो भवति ।

अन्नु जु तुच्छउँ तहें धणहे । (३५०,४) । बलि किज्जउँ सुअणस्सु । (३३८,४) ।
दइउ घडावइ वणि तरुहुं । (३४०,४) । तरुहुं वि वक्कलु । (३४१,४) ।
खग्ग-विसाहिउ जहिं लहहुं । (३८६,४) । तणहँ तइज्जी भङ्गि न वि । (३३९,४) ।

१०८३—म्हो म्भो वा ।८।४।४१२। अपभ्रंशे म्ह इत्यस्य स्थाने म्भ इति मकाराक्रान्तो भकारो वा भवति । म्ह इति पक्ष्म-श्म-ष्म-स्म-ह्मां म्हः (८।२।७४) इति प्राकृत-लक्षण-विहितोऽत्र गृह्यते, संस्कृते तदसंभवात् । गिम्भो । सिम्भो ।

बम्भ ते विरला के वि नर जे सव्वङ्ग-छइल्ल ।
जे वङ्का ते वञ्चयर जे उज्जुअ ते बइल्ल ॥१॥

१०८४—अन्यादृशोऽन्नाइसाऽवराइसौ ।८।४।४१३। अपभ्रंशे अन्यादृश-शब्दस्य अन्नाइस, अवराइस इत्यादेशौ भवतः । अन्नाइसो, अवराइसो ।

१०८५—प्रायसः प्राउ-प्राइव-प्राइम्व-पग्गिम्वाः । ८ । ४ । ४१४ । अपभ्रंशे प्रायस् इत्येतस्य प्राउ, प्राइव, प्राइम्व, पग्गिम्व इत्येते चत्वार आदेशा भवन्ति ।

अन्ने ते दीहर लोअण, अन्नु तं भुअ-जुअलु ।
अन्नु सुघण-थण-हारु, तं अन्नु जि मुह-कमलु ।
अन्नु जि केस-कलावु सु अन्नु जि प्राउ विहि ।
जेण णिअम्बिणि घडिअ स गुण-लायण्ण-णिहि ॥१॥

प्राइव मुणिहँ वि भन्तडी तें मणिअडा गणन्ति ।
अखइ निरामइ परम-पइ अज्ज वि लउ न लहन्ति ॥२॥
अंसु-जलें प्राइम्व गोरिअहे सहि! उव्वत्ता नयण-सर ।
तें संमुह संपेसिआ देन्ति तिरिच्छी घत्त पर ॥३॥
एसी पिउ रूसेसु हउं रुट्ठी मइँ अणुणेइ ।
पग्गिम्व एइ मणोरहइं दुक्करु दइउ करेइ ॥४॥

१०८६—वान्यथोऽनुः ।८।४।४१५। अपभ्रंशे अन्यथा शब्दस्य अनु इत्यादेशो वा भवति ।

विरहाणल-जाल-करालिअउ पहिउ को वि बुड्डिवि ठिअउ ।
अनु सिसिर-कालि सीअल-जलहु धूमु कहन्तिहु उट्ठिअउ ।१॥

पक्षे । अन्नह ।

१०८७—कुतसः कउ कहन्तिहु ।८।४।४१६। अपभ्रंशे कुतस्-शब्दस्य कउ, कहन्तिहु इत्यादेशौ भवतः ।

महु कन्तहों गुट्ठ-ट्ठिअहो कउ झुम्पडा वलन्ति ।
अह रिउ-रुहिरें उल्हवइ अह अप्पणें न भन्ति ॥१॥

धूमु कहन्तिहु उट्ठिअउ [४१५,४] ।

१०८८—ततस्तदोस्तोः ।८।४।४१७। अपभ्रंशे ततस्,तदा इत्येतयोस्तो इत्यादेशो भवति ।

जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि! मज्झु पिएण ।
अह भग्गा अम्हहं तणा तो तें मारिअडेण ॥१॥ [३७९,४]

१०८९—एवं-परं-समं-ध्रुवं-मा-मनाक एम्व-पर-समाणु-ध्रुवु-मं-मणाउं ।८।४।४१८। अपभ्रंशे एवमादीनां एम्वादय आदेशा भवन्ति । एवम एम्व ।

पिय-संगमि कउ निद्दडी पिअहों परोक्खहों केम्व ।
मइं बिण्णि वि विन्नासिआ निद्द न एम्व न तेम्व ॥१॥

परमः परः । गुणहिं न संपइ कित्ति पर [३३५,४] । समम: समाणु: ।

कन्तु जु सीहहों उवमिअइ तं महु खण्डिउ माणु ।
सीहु निरक्खय गय हणइ पिउ पय-रक्ख-समाणु ॥२॥

ध्रुवमो ध्रुवुः चञ्चलु जीविउ, ध्रुवु मरणु, पिअ! रूसिज्जइ काइं ।
होसहिं दिअहा रूसणा दिव्वइं वरिस-सयाइं ॥३॥

मो मं । मं धणि करहि विसाउ [३८५.४] प्रायोग्रहणात्—

माणि पणट्ठइ जइ न तणु तो देसडा चइज्ज ।
मा दुज्जण-कर-पल्लवेंहिं दंसिज्जन्तु भमिज्ज ॥४॥
लोणु विलिज्जइ पाणिएण अरि खल-मेह ! म गज्जु ।
वालिउ गलइ सु झुम्पडा गोरी तिम्मइ अज्जु ॥५॥

मनाको मणाउं । विहवि पणट्ठइ वङ्कुडउ रिद्धिहिं जण-सामन्नु ।
किं पि मणाउं महु पिअहो ससि अणुहरइ न अन्नु ॥६॥

१०६०—किलाऽथवा-दिवा-सह-नहेः किराऽहवइ दिवे सहुं नाहिं ।८।४।४१९। अपभ्रंशे किलाऽऽदीनां किराऽऽदय आदेशा भवन्ति । किलस्य किरः ।

किर खाइ न पिअइ न विद्दवइ धम्मि न वेच्चइ रूअडउ ।
इह किवणु न जाणइ जह जमहो खणेंण पहुच्चइ दूअडउ ॥१॥

अथवो हवइ । अहवइ न सुवंसहं एह खोडि ।
प्रायोऽधिकारात्— जाइज्जइ तहिं देसडइ लब्भइ पियहो पमाणु ।
जइ आवइ तो आणिअइ अहवा तं जि निवाणु ॥२॥

दिवो दिवे । दिवि दिवि गङ्गा-ण्हाणु । [३९९,४] ।
सहस्य सहुं । जउ पवसन्तें सहुं न गय न मुअ विओएं तस्सु ।
लज्जिज्जइ संदेसडा दिन्तेहिं सुहय-जणस्सु ॥३॥

नहेर्नाहिं । एत्तहे मेह पिअन्ति जलु एत्तहे वडवानल आवट्टइ ।
पेक्खु गहीरिम सायरहो एक्क वि कणिअ नाहिं ओहट्टइ ॥४॥

१०६१—पश्चादेवमेवैवेदानीं-प्रत्युतेतसः पच्छइ एम्वइ जि एम्वहिं पच्चलिउ एत्तहे । ८ । ४ । ४२० । अपभ्रंशे पश्चादादीनां पच्छइ इत्यादय आदेशा भवन्ति । पश्चातः पच्छइ । पच्छइ होइ विहाणु [३६२,४] । एवमेवस्य एम्वइ । एम्वइ सुरउ समत्तु [३३२,४] ।

एवस्य जिः । जाउ म जन्तउ पल्लवह देक्खउं कइ पय देइ ।
हिअइ तिरिच्छी हउं जि पर पिउ डम्बरइं करेइ ॥१॥

इदानीम: एम्वहिं । हरि नच्चाविउ पङ्गणइ विम्हइ पाडिउ लोउ ।
एम्वहिं राह-पओहरहं जं भावइ तं होउ ॥२॥

प्रत्युतस्य पच्चलिउ । साव-सलोणी गोरडी नवखी क वि विस-गण्ठि ।
भडु पच्चलिओ सो मरइ जासु न लग्गइ कण्ठि ॥३॥

इतस एत्तहे । एत्तहे मेह पिअन्ति जलु । [४१९,४] ।

१०९२—विषण्णोक्त-वर्त्मनो वुन्न-वुत्त-विच्चं । ८ । ४ । ४२१ । अपभ्रंशे विषण्णादीनां वुन्नादय आदेशा भवन्ति । विषण्णस्य वुन्नः ।

मइँ वुत्तउं तुहुँ धुरु धरहि कसरेहिं विगुत्ताइं ।
पइँ विणु धवल! न चडइ भरु एम्वइ वुन्नउ काइं? ॥१॥

उक्तस्य वुत्तः । मइं वुत्तउं [४२१,४] । वर्त्मनो विच्चः । जं मणु विच्चि न माइ [३५०,४] ।

१०९३—शीघ्राऽऽदीनां वहिल्लादयः । ८ । ४ । ४२२ । अपभ्रंशे शीघ्राऽऽदीनां वहिल्लाऽऽदयः आदेशा भवन्ति ।

एक्कु कइअह वि न आवही अन्नु वहिल्लउ जाहि ।
मइँ मित्तडा प्रमाणिअउ पइँ जेहउ खलु नाहि ॥१॥

कलहस्य घङ्घलः । जिवँ सुपुरिस तिवँ घङ्घलइं जिवँ नइ तिवँ वलणाइं ।
जिवँ डोङ्गर तिवँ कोट्टरइं हिआ ! विसूरहि काइं ॥२॥

अस्पृश्य-संसर्गस्य विट्टालः । जे छड्डेविणु रयणनिहि अप्पउं तडि घल्लन्ति ।
तहं सङ्खहं विट्टालु पर फुक्किज्जन्त भमन्ति ॥३॥

भयस्य द्रवक्कः— दिवेंहिं विढत्तउं खाहि वढ ! संचि म एक्कु वि द्रम्मु ।
को वि द्रवक्कउ सो पडइ जेण समप्पइ जम्मु ॥४॥

आत्मीयस्य अप्पणः । फोडेन्ति जे हिअडउं अप्पणउं [३६७,४] ।

दृष्टेर्द्रेहिः । एक्कमेक्कउं जइ वि जोएदि हरि सुट्ठु सव्वायरेण,
तो वि द्रेहि जहिं कहिं वि राही ।
को सक्कइ संवरेंवि दड्ढ-नयणा नेहिं पलुट्टा ॥५॥

गाढस्य निच्चट्टः । विहवे कस्सु थिरत्तणउं जोव्वणि कस्सु मरट्टु ।
सो लेखडउ पठाविअइ जो लग्गइ निच्चट्टु ॥६॥

साधारणस्य सड्ढलः— कहिं ससहरु कहिं मयरहरु कहिं वरिहिणु कहिं मेहु ।
दूर-ठिआहँ वि सज्जणहं होइ असड्ढलु नेहु ॥७॥

कौतुकस्य कोड्डः— कुञ्जरु अन्नहं तरु-अरहं कुड्डेण घल्लइ हत्थु ।
मणु पुणु एक्कहिं सल्लइहि जइ पुच्छह परमत्थु ॥८॥

क्रीडायाः खेड्डः— खेड्डयं कयमम्हेहिं निच्छयं किं पयम्पह ।
अणुरत्ताउ भत्ताउ अम्हे मा चय सामिअ ! ॥९॥

रम्यस्य रवण्णः— सरिहिँ न सरेहिँ न सरवरेँहिँ न वि उज्जाण-वणेँहि ।
देस रवण्णा होन्ति वढ !, निवसन्तेँहिँ सुअणेँहि ॥१०॥

अद्भुतस्य ढक्करिः— हिअडा ! पइँ एहु बोल्लिअओ महु अग्गइ सय-वार ।
फुट्टिसु पिए पवसन्ति हउँ भण्डय ! ढक्करि-सार ! ॥११॥

हे सखीत्यस्य हेल्लिः । हेल्लि ! म झङ्खहि आलु [३७६,४] पृथक्पृथगित्यस्य जुअंजुअः—
एक्क कुडुल्ली पञ्चहिँ रुद्धी तहँ पञ्चहँ वि जुअंजुअ बुद्धी ।
बहिणुए ! तं घरु कहि किवँ नन्दउ जेत्थु कुडुम्बउँ अप्पण-छन्दउँ ॥१२॥

मूढस्य नालिअ-वढौ—जो पुणु मणि जि खसफसिहूअउ चिन्तइ देइ न दम्मु न रूअउ ।
रइ-वस-भमिरु करग्गुल्लालिउ घरहिँ जि कोन्तु गुणइ सो नालिउ ॥१३॥

दिवेँहिँ विढत्तउँ खाहि वढ ! [४२२,४] नवस्य नवखः । नवखी क वि विसगण्ठि [४२०,४], अवस्कन्दस्य दडवडः—
चलेँहिँ चलन्तेँहिँ लोअणेँहिँ जे तइँ दिट्ठा बालि ! ।
तहिँ मयरद्धय-दडवडउ पडइ अपूरइ कालि ॥१४॥

यदेश्छुडुः—छुडु अग्घइ ववसाउ [३८५,४] संबन्धिनः केर-तणौ—
गयउ सु केसरि पिअहु जलु निच्चिन्तइँ हरिणाइं ! ।
जसु केरएं हुंकारडएं मुहहुँ पडन्ति तृणाइं ॥१५॥

अह भग्गा अम्हहं तणा [३७९,४] मा भैषीरित्यस्य मब्भीसेति स्त्रीलिङ्गम्—
सत्थावत्थहँ आलवणु साहु वि लोउ करेइ ।
आदन्नहँ मब्भीसडी जो सज्जणु सो देइ ॥१६॥

यद्यद्दृष्टं तत्तदित्यस्य जाइट्ठिआ—
जइ रच्चसि जाइट्ठिअए हिअडा !, मुद्ध-सहाव ! ।
लोहेँ फुट्टणएण जिवँ घणा सहेसइ ताव ॥१७॥

१०६४—हुहुरु-घुग्घादयः शब्द-चेष्टाऽनुकरणयोः ।८।४।४२३। अपभ्रंशे हुहुर्वादयः शब्दाऽनुकरणे, घुग्घादयश्चेष्टाऽनुकरणे यथासंख्यं प्रयोक्तव्याः ।
मइँ जाणिउँ बुड्डीसु हउँ पेम्म-द्रहि हुहुरु त्ति ।
नवरि अचिन्तिय संपडिय विप्पिय-नाव झड त्ति ॥१॥

आदिग्रहणात्— खज्जइ न उ कसरक्केंहि पिज्जइ न उ घुण्टेंहि ।
एम्वइ होइ सुहच्छडी पिएं दिट्ठें नयणेंहि ॥२॥

अज्ज वि नाहु महु ज्जि घरि सिद्धत्था वन्देइ ।
ताउँ जि विरहु गवक्खेँहि मक्कड-घुग्घिउ देइ ॥३॥
सिरि जर-खण्डी लोअडी गलि मणियडा न वीस ।
तो वि गोट्ठडा कराविआ मुद्धए उट्ठबईस ॥४॥ इत्यादि ।

★ अथ कथमादि-शब्दसम्बन्धी विधिः ★

अपभ्रंश-भाषायां कथम्, यथा इत्यादि-शब्दैः सम्बन्धितं यद्विधिविधानं समुपलभ्यते, तत्प्रदर्शयति वृत्तिकारः । यथा—

१०७२—थादेरिति । थ आदिर्यस्य अवयवस्य स थादिस्तस्य थादेरवयवस्येत्यर्थः ।

कथं समाप्यतां दुष्टं दिनं, कथं रजनी शीघ्रं भवति ।

नव-वधू-दर्शन-लालसः [कामुकः], वहति मनोरथान् सोऽपि ॥१॥

भावार्थः—काम-वासनाकुलः कश्चिद् नव-विवाहितो युवा यद्विचारयति तदाह—**दुष्टं दिनं कथं समाप्यताम्**-केन प्रकारेण समाप्तिं गच्छेद् ? तथा **रजनी**-निशा **कथं शीघ्रं भवति**, सत्वरमेव भवेदिति यावद् । **सोऽपि**-नवविवाहितयुवकः एव एतादृशान् **मनोरथान्** प्रायः **वहति**-धारयति । किंभूतः युवकः ? **नव-वधू-दर्शन-लालसः**, नवा चासौ वधूः-पत्नी, तस्याः दर्शनं, तस्य लालसा-अभिलाषाऽस्ति यस्य सः ।

कथम् । अव्ययपदमिदम् । १०७२ सू० थम् इत्यंशस्य डेम (एम) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये **केम** इति भवति । **समाप्यताम्** । सम्पूर्वकः आपॢ (आप) धातुः समाप्तौ । समाप्+य+ताम् । संस्कृतनियमेन समाप्य+ताम् इति जाते, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० पकार-द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ६६२ सू० ताम् इत्यस्य दु इत्यादेशे, १७७ सू० दकारस्य लोपे **समप्पउ** इति भवति । **दुष्टम्** । दुष्ट+सि । ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **दुट्ठु** इति भवति । **दिनम्** । दिन+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **दिणु** इति भवति । **कथम्** । प्रस्तुतसूत्रेण थम् इत्यंशस्य डिध (इध) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये **किध** इति भवति । **रजनी** । रजनी+सि । १७७ सू० जकारलोपे, १८० सू० यकारस्य श्रुतौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **रयणी** इति भवति । **शीघ्रम्** । शीघ्रं यथा स्यात्तथा भवतीति क्रियाविशेषणमिदम् । शीघ्र+अम् । अपभ्रंशे १०९३ सू० शीघ्रार्थे छुडु-शब्दः प्रयुज्यते, १०१५ सू० अमो लोपे **छुडु** इति भवति । **भवति**=होइ, प्रक्रिया ७३१ सूत्रे ज्ञेया । **नव-वधू-दर्शन-लालसः** । नव-वधू-दर्शन-लालस+सि । १८७ सू० धकारस्य हकारे, ४ सू० ऊकारस्य उकारे, २६ सू० दकारस्थस्याऽकारस्य अनुस्वारागमे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६३ सू० शकारस्य द्वित्वनिषेधे, २६० सू० शकारस्य सकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **नव-वहु-दंसण-लालसउ** इति भवति । **वहति** । वह्-धातुः प्रापणे । वह्+तिप् । ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० तिपः स्थाने इचादेशे **वहइ** इति भवति । **मनोरथान्** । मनोरथ+शस् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १८७ सू० थकारस्य स्थाने हकारे, १०१५ सू० शसो लोपे **मणोरह** इति भवति । **सः** । तद्+सि । ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारलोपे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सो** इति भवति । **अपि** । अव्ययपदमिदम् । ४८९ सू० अप्यर्थे वि इत्यस्य प्रयोगे, १७७सू० वकारलोपे **इ** इति भवति । **कथम्=केम, कथम्=किध** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

ओ ! गौरीमुख-निर्जितकः, वार्दले निलीनः मृगाङ्कः ।
अन्योऽपि यः परिभूत-तनुः, स कथं भ्रमति निश्शंकम् ॥२॥

भावार्थः—यदा निशाकरः कृष्णमेघेषु मेघेषु प्रविशति तदा गौरी-मुख-सौन्दर्य-प्रभावितेन केनचित् पुरुषेण यद् भणितं तदाह-**ओ** इत्यव्ययपदमभिमुखीकरणे। अथवा पदमिदं सूचनायां प्रयुज्यते। भो लोकाः! इत्यर्थः। यदा **गौरीमुख-निर्जितकः**,गौर्याः मुखं,तेन निर्जितकः-विजितः पराजितो यः सः **मृगाङ्कः**-चन्द्रः, **वार्दले**-मेघसमूहे **निलीनः**-तिरोहितो जातः, गौरी-मुख-सौन्दर्यातिरेकं वीक्ष्य सलज्जः चन्द्रः मेघेषु प्रच्छन्न इति भावः। यदा चन्द्रस्यैतादृशी दशा विद्यते तदा यः **अन्योऽपि**-अन्यः-सामान्यो जनः,कीदृशोऽन्यो जनः ? **परिभूततनुः**-परिभूतं तिरस्कृतं तनु-शरीरं यस्य सः,साधारण-जन इति यावत्। **कथं निश्शंकं**-यथेच्छं **भ्रमति**-भ्रमितुं शक्नोति ? न कोऽपीति यावत्।

ओ। अव्ययपदमिदम्। इत्यत्र ४७४ सू० सूचनार्थे ओ इत्यव्ययपदं प्रयुज्यते। **गौरी-मुख-निर्जितकः**। गौरी-मुख-निर्जितक+सि। १५९ सू० औकारस्य ओकारे,१८७ सू० खकारस्य हकारे,३५० सू० रेफस्य लोपे,३६० सू० जकारद्वित्वे,१७७ सू० तकारस्य ककारस्य च लोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **गोरी-मुह-निज्जिअउ** इति भवति। **वार्दले**। वार्दल+ङि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० दकारद्वित्वे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **वद्दलि** इति भवति। **निलीनः**। निलीन+सि। इत्यत्र ९२९ सू० निलीनस्य लुक्क इत्यादेशे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सेर्लोपे **लुक्कु** इति भवति। **मृगाङ्कः**। मृगाङ्क+सि। इत्यत्र १३० सू० ऋकारस्य इकारे,१७७ सू० गकारलोपे,बाहुल्येन १८० सू० यकारश्रुतौ,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,अकारस्य उकारे,सेर्लोपे **मियङ्कु** इति भवति। **अन्यः**। अन्य+सि। इत्यत्र ३४९ सू० यकारलोपे,३६० सू० नकारस्य द्वित्वे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **अन्नु** इति भवति। **अपि**=वि,इत्यस्य प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया। **यः**। यद्+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारे,११ सू० दकारलोपे,१००३ सू० अकारस्य ओकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **जो** इति भवति। **परिभूत-तनुः**। परिपूर्वकः भूधातुः परिभावे-तिरस्कारे। परिभू+क्त+तनु+सि। ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हुव इत्यादेशे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे,१७७ सू० तकारस्य लोपे,बाहुल्येन १८० सू० यकारश्रुतौ, परिहुवियतनु+सि इति जाते, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **परिहुविय-तणु** इति भवति। **सः**। तद्+सि। ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारलोपे,१००३ सू० अकारस्य ओकारे, सेर्लोपे **सो** इति भवति। **कथम्**। अव्ययपदमिदम्। प्रस्तुतसूत्रेण थम् इत्यंशस्य डिम (इम) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०६८ सू० मकारस्य सानुनासिके वकारे **किवँ** इति भवति। **भ्रमति**। भ्रम्(भ्रमु)भ्रमणे। भ्रम्+तिव्। १०६९ सू० रेफलोपे, ९१० सू० अकारागमे, १०६८ सू० मकारस्य सानुनासिके वकारे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **भवँइ** इति भवति। **निश्शंकम्**। क्रियाविशेषणमिदम्। निश्शंक+अम्। ३४८ सू० शकारलोपे, बाहुल्येन ४३ सूत्रेण इकारस्य दीर्घाभावे, २६० सू० शकारस्य सकारे, बाहुल्येन ३६० सकारस्य द्वित्वाभावे,३० सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्ये, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **निसङ्कु** इति भवति। **कथम्—किवँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्ज्ञाता।

बिम्बाधरे तन्व्याः रदन-व्रणः, कथं स्थितः श्री-आनन्द ! ।
निरुपमरसं प्रियेण, पीत्वेव शेषस्य दत्ता मुद्रा ॥३॥

भावार्थः—शृङ्गार-रस-रसिकः कश्चित्पुरुषः पृच्छति—हे **श्रीआनन्द** !। एषा कस्यचित् कामुक-

व्यक्तेः संज्ञा, तत्सम्बोधनम् । यदा श्रीआनन्दशब्दः रदनव्रणस्य विशेषणीभूतः, तदा नाऽयं सम्बोधनः । श्रियः आनन्दः, श्रीआनन्दः—शोभाकारक इत्यर्थः । तन्व्याः—कृशाङ्ग्याः नायिकायाः बिम्बाधरे—बिम्बं रक्ततमपुष्पविशेषस्तदिव अधरः-निम्नोष्ठः इति बिम्बाधरः, तस्मिन् रदनव्रणः—रदनैः-दन्तैः कृतो व्रणः,दन्तक्षतम् [कीदृशः रदनव्रणः ? श्रीआनन्दः-नायिकायाः कृते शोभावर्धकः] कथं स्थितः—जातः ? इति प्रश्नः,तदा श्री-आनन्द उत्तरयति—यत् प्रियेण अधरस्य निरुपमरसम्,निरुपमः, निर्गतः उपमायाः, उपमाहीनः,इति यावत् । निरुपमश्च सः रसः,निरुपम-रसः,तमद्भुतरसं पीत्वा इव तेन प्रियेण शेषस्य—अवशिष्टस्य रसस्योपरि पुनः पानार्थं मुद्रा दत्ता । बिम्बाधरः मुद्राङ्कित इव कृत इति भावः ।

बिम्बाधरे । बिम्बाधर+ङि । इत्यत्र १८७ सू० धकारस्य हकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे बिम्बाहरि इति भवति । तन्व्याः । तन्वी+ङस् । ३५० सू० वकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००० सू० ईकारस्य उकारे,१०१६ सू० ङसो लोपे तणु इति भवति । रदन-व्रणः । रदनव्रण+सि । १७७ सू० दकारलोपे,१८० सू० अकारश्रुतौ,२२८ सू० नकारस्य णकारे,१०६९ सू० रेफलोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे रयण-वणु इति भवति । कथम् । अव्ययपदमिदम् । इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण थम् इत्यंशस्य स्थाने डिह[इह]इत्यादेशे,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये किह इति भवति । स्थितः । ष्ठा[स्था] गतिनिवृत्तौ । स्था+क्त-त । इत्यत्र ६८७ सू० स्थाधातोः स्थाने ठा इत्यादेशे,१००० सू० आकारस्य अकारे,६४५ सू० अकारस्य इकारे,१७७ सू० तकारलोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे ठिउ इति भवति । श्रीआनन्द ! । श्रीआनन्द+सि । ३७५ सू० रेफात् पूर्वे इकारागमे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ४ सू० ईकारस्य इकारे, २२८ सू० असंयुक्त-नकारस्य णकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे सिरिआणन्द! इति भवति । निरुपम-रसम् । निरुपम-रस+अम् । २३१ सू० पकारस्य वकारे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० अमो लोपे निरुवम-रसु इति भवति । प्रियेण । प्रिय+टा । १०६९ सू० रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, १०१३ सू० टा-स्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य स्थाने एकारे पिएं इति भवति । पीत्वा । पाधातुः पाने । पा+क्त्वा । इत्यत्र१००० सू० आकारस्य स्थाने इकारे, ११९० सू० क्त्वः स्थाने अवि इत्यादेशे, बाहुल्येन १० सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ पिअवि इति भवति । एव । अव्ययपदमिदम् । १११५ सू० एवार्थे अणु इत्यस्य प्रयोगे अणु इति भवति । शेषस्य । शेष+ङस् । २६० सूत्रेण शकारस्य षकारस्य च सकारे,१००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे सेसहो इति भवति । दत्ता । दत्ता+सि । इत्यत्र ४६ सू० आदेरकारस्य इकारे, ३१४ सू० तस्य णकारे, ३६० सू० णकारद्वित्वे, स्त्रीत्वविवक्षायामाप्प्रसंगे ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे दिण्णी इति भवति । मुद्रा । मुद्रा+सि । १०६९ सू० रेफलोपे, ३६० सू० दकारद्वित्वे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे मुद्द इति भवति । कथम्—किह इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

भण सखि ! निभृतकं तथा मयि यदि प्रियो दृष्टः सदोषः ।
यथा न जानाति मम मनः पक्षाऽऽपतितं तस्य ।।४।।

भावार्थः– काचिन्नायिका निज-नायक-विषये सन्दिहाना काञ्चित् निजसखीं पृच्छन्त्याह—हे सखि ! यदि मम प्रियः—कान्तः मयि-मद्विषये सदोषः-दोषोपेतोऽस्ति, मदुपरि सरोषो वर्ततेऽथवा मत्कार्येन मदीयः कश्चिदपराधः कृतो भवेदिति यावत्, तर्हि तथा भण—तत्सर्वं मां प्रति कथय । यतो मम मनः तस्य कान्तस्य पक्षाऽऽपतितं पक्षे आपतितं, पक्षपातयुक्तं वर्तते, अतस्तद् मे मनः, यथा-सम्यक्

प्रकारेण दोषान्न जानाति । पक्षपातपूर्णं मनः मम तस्य दोषान् ज्ञातुं न शक्नोति,अतः निभृतकम्-प्रच्छन्नं, गुप्तरूपेणेति यावत्, त्वं तदीयान्-मम कान्तस्य दोषान् ब्रूहि, यतोऽहं वास्तविकीं स्थितिमवगच्छेयम् ।

भण ! भण[भण्]भणने । भण्+हि । ९१० सू० अकारागमे, ६६२ सूत्रेण हि इत्यस्य सु इत्यादेशे,६६४ सू० सोर्लोपे भण इति भवति । सखि ! सखी+सि । १८७ सू० खकारस्य स्थाने हकारे,१००१ सू० ईकारस्य स्थाने इकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे सहि ! इति भवति । निभृतकम् । क्रियाविशेषणमिदम् । निभृतक+अम् । १८७ सू० भकारस्य स्थाने हकारे,१३१ सूत्रेण ऋकारस्य उकारे, १७७ सू० तकारस्य ककारस्य च लोपे, १०२५ सू० अन्त्याकारस्य उं इत्यादेशे, १०८२ सूत्रेण उच्चारणस्य लाघवे, १०१५ सू० अमो लोपे,निहुअउँ इति भवति । तथा । अव्ययपदमिदम् । १०७२ सू० था इत्यंशस्य डेम(एम)इत्यादेशे,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये,१०६८ सू० मकारस्य स्थाने सानुनासिके वकारे तेवँ इति भवति । मयि । अस्मद्+ङि । १०४८ सू० ङिप्रत्ययेन सह अस्मदः स्थाने मइं इत्यादेशे मइं इति भवति । मयि=मइ,प्रक्रिया १०५५ सूत्रे ज्ञेया । प्रियः । प्रिय+सि । इत्यत्र १०६९ सू० रेफस्य लोपे,१७७ सू० यकारलोपे,१००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५सू०सेर्लोपे पिउ इति भवति । दृष्टः । दृष्ट+सि । इत्यत्र १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे,३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे दिट्ठु इति भवति । सदोषः । सदोष+सि । २६० सू० षकारस्य सकारे,पूर्ववदेव सदोसु इति भवति । यथा । अव्ययपदमिदम् । २४५ सू० यकारस्य जकारे,१०७२ सू० था इत्यंशस्य डेम(एम)इत्यादेशे,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये, १०६८सू० मकारस्य सानुनासिके वकारे जेवँ इति भवति । न । अव्ययपदमिदं संस्कृततुल्यमेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । जानाति । ज्ञा-धातुः अवबोधने । ज्ञा+तिप्=जाणइ,इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया ६७८ सूत्रे ज्ञेया । मम=मज्झु,प्रक्रिया १०५० सूत्रस्य द्वितीय-श्लोके ज्ञेया । मनः । मनस्+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, ११ सू० सकारलोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे मणु इति भवति । पक्षापतितम् । पक्षापतित+सि । २७४ सू० क्षस्य खकारे,३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे,८९० सू० प्रथम-तकारस्य डकारे,१७७ सू० तकारलोपे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३सू० मकारानुस्वारे पक्खावडिअं इति भवति । तस्य । तद्+ङस्=तासु,प्रक्रिया १०२९ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । तथा=तेवँ,यथा=जेवँ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । यथा यथा वक्रिमाणं लोचनयोः । तथा तथा मन्मथः निजकशरान्=जिवँ जिवँ वङ्किम लोअणहं । तिवँ तिवँ वम्महु निअय-सर, प्रक्रिया १०१५ सूत्रे ज्ञेया । जिवँ,तिवँ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । साधना त्वित्थम्-यथा । अव्ययपदमिदम् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०७२ सू० था इत्यंशस्य डिम (इम) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०६८ सू० मकारस्य सानुनासिके वकारे जिवँ इति भवति । तथा । अव्ययपदमिदम् । १०७२ सू० था इत्यस्य डिम (इम) इत्यादेशे, जिवँ—वदेव तिवँ इति साध्यम् ।

मया ज्ञातं प्रिये ! विरहितानां, काऽपि धरा भवति विकाले ।
केवलं मृगाङ्कोऽपि तथा तपति यथा दिनकरः क्षयकाले ॥५॥

एतेषां पदानां शब्दसाधना १०४८ सूत्रे समवलोकनीया । भावार्थश्चाऽपि तत्रैवाऽवलोकनीयः । जाणिउ(ज्ञातम्) इत्यत्र ५१४ सू० सेर्मकारो न जातः किन्तु १०१५ सूत्रेण तस्य लोपोऽभवत् । प्रिय इत्यत्र वैकल्पिकत्वाद् १०६९ सूत्रेण रेफस्य लोपो नाऽभवत्, बाहुल्येन १७७ सू० यकारस्य लोपोऽपि न जातः । नवर इत्यत्र केवलशब्दाऽर्थे ४५८ सू० णवर इत्यादेशे,बाहुल्येन णकारस्य नकारे नवर इति भवति । एवं

तिवजिवाघुवाहार्यौ । एवमेव—**तिव**[तथा],**जिव**[यथा] इत्यनयोरप्युदाहरणानि कल्पनीयानि । साधना इत्थम्—**तथा** । अव्ययपदमिदम् । १०७२ सूत्रेण था इत्यंशस्य स्थाने डिव(इव)इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्य-स्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये **तिव** इति भवति । **यथा** । अव्ययपदमिदम् । २४५ सू० यकारस्य स्थाने जकारे,१०७२ सू० था इत्यंशस्य स्थाने डिव-इत्यादेशे, पूर्ववदेव **जिव** इति भवति ।

१०७३— मया भणितः बलिराज !, त्वं कीदृग् मार्गण एषः ।
यादृक् तादृग् नाऽपि भवति, मूढ ! स्वयं नारायणः ईदृक् ॥१॥

भावार्थः—हे **बलिराज** !-पातालाधिप !,**मया त्वं भणितः**-पृष्टः,**एष** वामनो **मार्गणः**-याचकः, **कीदृग्** ? को नाम महात्मा विद्यते ? इति पृच्छायामुत्तरयति बलिराजः, हे **मूढ** ! एषः याचकः, **यादृक् तादृग् नाऽपि**-नैव **भवति**-वर्तते, किन्तु **ईदृग्**-अयन्तु मार्गणः **स्वयं भगवान् नारायणः**-विष्णुर्वर्तते ।

मया । अस्मद्+टा । इत्यत्र १०४८ सू० टाप्रत्ययेन सह अस्मदः स्थाने मइं इत्यादेशे **मइं** इति भवति । **भणितः** । भणित+सि । १७७ सू० तकारस्य लोपे,४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये,१७७ सू० ककारस्य लोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **भणिअउ** इति भवति । **बलिराज** !। बलिराज+सि । १७७ सू० जकारलोपे,१८० सू० यकारश्रुतौ,सेर्लोपे **बलिराय**! इति भवति । **त्वम्** । युष्मद्+सि । १०३९ सू० युष्मदः स्थाने तुहुं इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे तुहुं १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **तुहुं** इति भवति । **कीदृग्** । कीदृक्+सि । १०७३ सू० दृक् इत्यंशस्य स्थाने डेह (एह) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्य-स्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **केहुउ** इति भवति । **मार्गणः** । मार्गण+सि । १०६९ सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०१५ सू० सेर्लोपे **मग्गणु** इति भवति । **एषः**=एहु, प्रक्रिया १०३३ सूत्रे ज्ञेया । **यादृग्** । यादृक्+सि । २४५ सू० यकारस्य स्थाने जकारे, १०७३ सू० दृक् इत्यंशस्य डेह (एह) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,अज्भीने परेण संयोज्ये,१००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **जेहु** इति भवति । **तादृग्** । तादृक्+सि । प्रस्तुतसूत्रेण दृक् इत्यंशस्य डेह (एह) इत्यादेशे,डिति परेऽन्त्य-स्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **तेहु** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृततुल्यमेव अपभ्रंशे प्रयुज्यते । **अपि**=वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **भवति**=होइ, प्रक्रिया ७३१ सूत्रे ज्ञेया । **मूढ** !। मूढ+सि । १०९३ सू० मूढशब्दस्य स्थाने वढ इत्यादेशे,१०१५ सू० सेर्लोपे **वढ** इति भवति । **स्वयम्** । अव्ययपदमिदम् । ३५० सू० वकारलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, बाहुल्येन १० सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ,१००० सू० अकारस्य इकारे,२३ सू० मकाराऽनुस्वारे **सइं** इति भवति । **नारायणः** । नारायण+सि । १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **नारायणु** इति भवति । **ईदृग्** । ईदृक्+सि । प्रस्तुतसूत्रेण दृक् इत्यंशस्य स्थाने डित् एह इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **एहु** इति भवति । **कीदृग्**=**केहउ**,**यादृक्**=**जेहु**, **तादृक्**=**तेहु**, **ईदृक्**=**एहु** इत्येतेषु पदेषु प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०७४—यादृगादीनाम् । यादृक्-शब्दस्त्रिविधो भवति । यथा—१—क्विप्-प्रत्ययान्तः—यादृक्, २—टक्-प्रत्ययान्तः-यादृशः, ३—सक्-प्रत्ययान्तश्च—यादृक्षः । प्रस्तुतसूत्रे सूत्रकारस्य टक्-प्रत्ययान्त-स्य यादृश-शब्दस्य ग्रहणमभीष्टमस्ति । यथा—**यादृशः** । यादृश+सि । २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०७४ सूत्रेण दृश इत्यंशस्य स्थाने डित् अइस इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,अज्भीने परेण संयोज्ये,१००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जइसो** इति भवति । **तादृशः** । तादृश+सि ।

पूर्ववदेव तइसो इति भवति । **कीदृशः** । कीदृश+सि । पूर्ववदेव **कइसो** इति भवति । **ईदृशः** । ईदृश+सि । प्रस्तुतसूत्रेण दृशस्य स्थाने डित् अइस इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १००३ सू० अकारस्य स्थाने ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **अइसो** इति भवति ।

१०७५— यदि स घटयति प्रजापतिः कुत्राऽपि लात्वा शिक्षाम् ।
यत्राऽपि तत्राऽपि अत्र जगति भण तदा तस्याः सादृश्यम् ॥१॥

भावार्थः—यदि स प्रजापतिः, प्रजानां पतिः-स्वामी ब्रह्मा इत्यर्थः । **कुत्राऽपि शिक्षां लात्वा**-प्राप्य **घटयति-जगन्निर्माणं** करोति **तदा**-तदैव **अत्र**-अस्मिन् जगति **तस्याः** नायिकायाः निर्माणं जातम् । ब्रह्मणा परिपूरण-सतर्कतया एतस्याः नार्याः रचना कृताऽस्ति, अतएव **यत्राऽपि तत्राऽपि**-कुत्रचिदपीति तस्याः नायिकायाः **सादृश्यम्**-सादृश्यं, समानरूपता नहि प्राप्नोतीति **भण**-कथय, मया एतत् सत्यमुक्तमिति त्वमपि स्वीकुरु । ब्रह्मा यदि कुत्रचित् शिक्षां लब्ध्वा जगतः निर्माणं कुर्यात् तदैव एतादृशीं काञ्चिन्नायिकां निर्मातुं प्रभवेन्नान्यथा । अतएव साम्प्रतं जगति तत्सदृशी काऽपि सुन्दरी नास्तीति परमार्थः ।

यदि—जइ, प्रक्रिया १०५५ सूत्रे ज्ञेया । **सः**—सो, प्रक्रिया १०७२ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **घटयति** । घट [घट्] चेष्टायाम् । घट्+णिग्+तिव् । इत्यत्र १९५ सू० टकारस्य डकारे, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, बाहुल्येन ६४२ सूत्रेण आदेरकारस्य आकाराभावे, ९४५ सू० तिवः स्थाने दि इत्यादेशे **घडदि** इति भवति । **प्रजापतिः** । प्रजापति+सि । वैकल्पिकत्वाद् १०६९ सूत्रेण रेफस्याऽलोपे, १७७ सू० जकारस्य लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, २३१ सू० पकारस्य वकारे, १११८ सूत्रेण भाषाव्यत्यये, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, १००१ सू० इकारदीर्घे, १०१५ सू० सेर्लोपे **प्रयावदी** इति भवति । **कुत्र** । अव्ययपदमिदम् । १०७६ सू० अस्य स्थाने डित् एत्थु इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **केत्थु** इति भवति । **अपि**—वि, इत्यस्य प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **लात्वा** । ला धातुः आदाने । ला+क्त्वा । ११११ सू० क्त्वः स्थाने एप्पिणु इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **लेप्पिणु** इति भवति । **शिक्षाम्** । शिक्षा+अम् । इत्यत्र २६० सू० शकारस्य सकारे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **सिक्खु** इति भवति । **यत्र** । अव्ययपदमिदम् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०७५ सू० अस्य डित् एत्थु इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **जेत्थु** इति भवति । **तत्र** । अव्ययपदमिदम् । १०७५ सू० अस्य डित् एत्थु इत्यादेशे, जेत्थुवदेव **तेत्थु** इति भवति । **अत्र** । अव्ययपदमिदम् । १०७६ सू० अस्य स्थाने डित् एत्थु इत्यादेशे, तेत्थुवदेव **एत्थु** इति भवति । **जगति** । जगत्+ङि । ११ सू० तकारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **जगि** इति भवति । बाहुल्येनाऽत्र १७७ सू० गकारस्य लोपो न जातः । **भण** । भण [भण्] धातुः भणने । भण्+हि । ९१० सू० अकारागमे, ६६२ सू० हि इत्यस्य सु इत्यादेशे, ६६४ सू० सोर्लुकि **भण** इति भवति । **तदा** । अव्ययपदमिदम् १०८८ सू० तदा इत्यस्य तो इत्यादेशे **तो** इति भवति । **तस्याः** । तद्+ङस् । ११ सू० दकारलोपे, स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०३० सू० ङसः स्थाने डहे (अहे) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये तहे १००१ सू० एकारस्य इकारे जाते **तहि** इति भवति । **सादृश्यम्** । सादृश्य+सि । १४२ सू० ऋकारस्य स्थाने रि इत्यादेशे, ३४८ सू० दकारस्य लोपे, ३४९ सू० यकारस्य लोपे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सारिक्खु** इति

भवति । यत्र=जेत्थु, तत्र=तेत्थु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । सम्प्रति अत्तु इत्यादेशस्योदाहरण-द्वयं प्रदर्शयति वृत्तिकारो यथा—यत्र । अव्ययपदमिदम् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, प्रस्तुतसूत्रेण त्रस्य स्थाने डिद् अत्तु इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये जत्तु इति भवति । स्थितः । ष्ठा-[स्था]-धातुः गतिनिवृत्तौ । स्था+क्त । ६८७ सू० स्थाधातोः स्थाने ठा इत्यादेशे, १००० सू० आकारस्य अकारे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, सिप्रत्यये, ११९८ सू० भाषाव्यत्यये, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे ठिदो इति भवति । तत्र । अव्ययपदमिदम् । १०७५ सू० त्रस्य स्थाने डिद् अत्तु इत्यादेशे, जत्तु-वदेव तत्तु इति भवति । स्थितः । पूर्ववदेव ठिदो इति साध्यम् ।

१०७६—कुत्राऽपि लात्वा शिक्षां, यत्राऽपि तत्राऽपि अत्र जगति=केत्थु वि लेप्पिणु सिक्खु, जेत्थु वि तेत्थु वि एत्थु जगि, एतेषां पदानां प्रक्रिया १०७५ सूत्रे ज्ञेया । अत्र=एत्थु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण त्र-प्रत्ययस्य स्थाने डिद् एत्थु इत्यादेशो विहितः । साधना दिग्दर्शनम्-अत्र । अव्ययपदमिदम् । १०७६ सू० त्रस्य स्थाने डिद् एत्थु इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे एत्थु इति भवति ।

१०७७— यावन्न निपतति कुम्भतटे सिंह-चपेटा-चटात्कारः ।
तावत्समस्तानां मदकलानां पदे पदे वाद्यते ढक्का ॥१॥

भावार्थः—यावत् कुम्भतटे-कुम्भस्य-हस्तिमस्तकस्य तटः-शरीरस्य अवयवानां संज्ञा, यथा-जघनतटः कुचतटः । प्रस्तुतप्रकरणे मस्तक-तटो ग्राह्यः, तस्मिन् सिंहचपेटा-चटात्कारः,सिंहस्य चपेटा, तज्जनितः चटात्कारः-ध्वनेरनुकरणं,सिंहस्य भीषणः प्रहार इत्यर्थः । न निपतति, तावत्समस्तानां मदकलानां-मदमत्तानां गजानाम्-हस्तिनाम् पदे पदे प्रतिपदं ढक्का-महान् पटहः वाद्यते । अयं भावः-अभिमानी तु-दैव वाचालो भवति यदा विद्वान् मौनावलम्बी अवतिष्ठते ।

यावत् । अव्ययपदमिदम् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०७७ सू० वत् इत्यस्य मकारे जाम इति भवति । न । अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । निपतति । निपूर्वकः पत्लृ [पत्] धातुः निपतने । निपत्+तिप् । २३१ सू० पकारस्य वकारे, ९१० सू० अकारागमे, ८९० सू० तकारस्य डकारे, ६२८ सू० तिपः स्थाने इचादेशे निवडइ इति भवति । कुम्भतटे । कुम्भतट+ङि । १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १९५ सू० टकारस्य स्थाने डकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे कुम्भयडि इति भवति । सिंह-चपेटा-चटात्कारः । सिंह-चपेटा-चटात्कार+सि । २९ सू० अनु-स्वारलोपे, ९२ सू० इकारस्य ईकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, १९५ सू० टकारस्य स्थाने डकारे, ४ सू० प्रथमाऽऽकारस्य अकारे, १०९३ सू० चटात्काराऽर्थे चडक्क-शब्दः प्रयुज्यते, १०१५ सू० सेर्लोपे सीह-चवेड-चडक्क इति भवति । तावत् । अव्ययपदमिदम् । प्रस्तुतसूत्रेण वत् इत्यस्य स्थाने मकारे ताम इति भवति । समस्तानाम् । समस्त+आम् । ३४८ सू० संयुक्तसकारस्य लोपे, ३६० सू० तकारस्य द्वित्वे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे समत्तहं इति भवति । मदकलानाम् । मदकल+आम् । १७७ सू० दकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १०६७ सू० ककारस्य गकारे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे मयगलहं इति भवति । पदे । पद+ङि । १७७ सू० द-कारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे पइ इति भवति । वाद्यते । वद (वद्) सन्देशकथने । वद्+क्य+ते । संस्कृतनियमेन वाद्य+ते इति जाते,२९५ सू० द्यस्य जकारे,३६० सू० जकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ६२८ सू० ते इत्यस्य स्थाने इचादेशे वज्जइ इति भवति । ढक्का । ढक्का+सि । १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे ढक्क इति भवति । तावत्=ताम, यावत्=

आम इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

तिलानां तिलत्वं तावत्परं यावन्न स्नेहाः गलन्ति।
स्नेहे प्रणष्टे ते एव तिलाः, तिलाः भ्रष्ट्वा खला भवन्ति ॥२॥

भावार्थः—स्वत्वसम्पन्नतैव स्थितेः सम्मानकारणं भवति, निःस्वत्वानां यादृशी दशा भवति तां तिलान्योक्त्याऽऽह—**तिलानां तिलत्वं तावत् भवति यावत्तेषु स्नेहाः**-तैलानि न **गलन्ति**-न नश्यन्ति, **परं**-किन्तु **स्नेहे**-तैले **प्रणष्टे सति ते एव तिलाः**-तिलवृक्षस्य बीजानि, **तिलाः भ्रष्ट्वा**-तिलत्वेन नष्ट्वा **खलाः** निस्साराः भवन्ति। सस्नेहः एव तिलः, तिल उच्यते, अन्यथा स एव तिलः खलत्वमुपयातीति भावः।

तिलानाम्। तिल+आम्। इत्यत्र १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **तिलहँ** इति भवति। **तिलत्वम्**। तिलत्व+सि। ४२५ सू० त्वप्रत्ययस्य त्तण इत्यादेशे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **तिलत्तणु** इति भवति। **तावत्**। अव्ययपदमिदम्। १०७७ सू० वत् इत्यस्य स्थाने उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **तावँ** इति भवति। **परम्**। अव्ययपदमिदम्। १०८९ सू० परम् इत्यस्य स्थाने पर इत्यादेशे **पर** इति भवति। **यावत्**। अव्ययपदमिदम्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, तावँ-वदेव **जावँ** इति भवति। न। अव्ययपदमिदं संस्कृत-समवेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। **स्नेहाः**। स्नेह+जस्। इत्यत्र ३४८ सू० सकारलोपे, १०१५ सू० जसो लोपे **नेह** इति भवति। **गलन्ति**। गल्-धातुः गलने। गल्+अन्ति। ९१० सू० अकारस्यागमे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **गलन्ति** इति भवति। **स्नेहे**। स्नेह+ङि। ३४८ सू० सकारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **नेहि** इति भवति। **प्रणष्टे**। प्रणष्ट+ङि। १०६९ सू० रेफलोपे, ३०५ सू० ष्टस्य स्थाने ठकारे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **पणट्ठइ** इति भवति। **ते**। तद्+जस्=ते, इत्यस्य प्रक्रिया ५४७ सूत्रे ज्ञेया। **एव**। अव्ययपदमिदम्। १०९१ सू० एवार्थे जि इत्यस्य प्रयोगे, ३६० सू० जकारद्वित्वे **ज्जि** इति भवति। **तिलाः**। तिल+जस्। १०१५ जसो लोपे **तिल** इति भवति। **भ्रष्ट्वा**। भ्रंशु-[भ्रंश्]-धातुः नाशे। भ्रंश्+क्त्वा। इत्यत्र ८४८ सू० भ्रंशधातोः स्थाने फिट्ट इत्यादेशे, १११० सू० क्त्वः स्थाने अवि इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **फिट्टवि** इति भवति। **खलाः**। खल+जस्। १०१५ सू० जसो लोपे **खल** इति भवति। **भवन्ति**=होन्ति, प्रक्रिया ७३१ सूत्रे ज्ञेया। **तावत्**=तावँ, **यावत्**=जावँ इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

यावत् विषमा कार्यगतिः, जीवानां मध्ये एति।
तावद् आस्तामितरो जनः सुजनोऽप्यन्तरं ददाति ॥३॥

भावार्थः—**यावद्**-यदा **जीवानां**—प्राणिनां **मध्ये**-जीवनमध्ये **कार्यगतिः**-कार्यसंचालनं, जीवनस्य निर्वाहः, कर्मगतिर्वा **विषमा एति**-भवति, वैषम्यं भजते, **तावद्** तदा **इतरो जन आस्ताम्**-तिष्ठतु, तस्य का चर्चा ?, किन्तु **सुजनोऽपि**-शिष्टजनोऽपि, **अन्तरं ददाति**-पृष्ठं ददाति। कर्मप्रतिकूलतायां दुःखवेलायां वा न कोऽपि सहायको भवतीति भावः।

यावत्। अव्ययपदमिदम्। इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य जकारे, प्रस्तुतसूत्रेण वत्प्रत्ययस्य महिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **जामहिँ** इति भवति। **विषमा**। विषमा+सि। २६० सू० षकारस्य सकारे, १००० सू० आकारस्य ईकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **विसमी** इति भवति। **कार्यगतिः**। कार्यगति+सि। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, २९५ सू० र्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, सेर्लोपे **कज्जगइ** इति भवति। **जीवानाम्**। जीव+आम्। इत्यत्र १०१० सू० आमः स्थाने

हं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **जोवहं** इति भवति। **मज्झे**। मध्य+ङि। २९७ सू० ध्यस्य झकारे, ३६० सू० झकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वझकारस्य स्थाने जकारे, १००४ सू० ङिना सह अकारस्य एकारे **मज्झे** इति भवति। **एति**। इण्-(इ)-धातुः गतौ-गमने। संस्कृतनियमेन एति इति जाते, १७७ सू० तकारस्य लोपे **एइ** इति भवति। **तावत्**। अव्ययपदमिदम्। प्रस्तुतसूत्रेण वत्प्रत्ययस्य स्थाने महिं इत्यादेशे जामहिं-वदेव **तामहिं** इति भवति। **आस्ताम्**। आस (आस्) उपवेशने। ८८६ सू० सकारस्य स्थाने छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ६६२ सू० ताम् इत्यस्य दु इत्यादेशे, १७७ सू० दकारलोपे **अच्छउ** इति भवति। **इतरः**। इतर+सि। १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **इयरु** इति भवति। **जनः**। जन+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव **जणु** इति भवति। **सुजनः**। सुजन+सि। १७७ सू० जकारलोपे, पूर्ववदेव **सुअणु** इति भवति। **अवि** = वि, इत्यस्य प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया। **अन्तरम्**। अन्तर+सि। १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **अन्तरु** इति भवति। **ददाति**। डुदाञ् (दा) दाने। दा+तिव्। १००० सू० आकारस्य एकारे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इच् (इ) इत्यादेशे **देइ** इति भवति। **यावत् = जामहिं, तावत् = तामहिं** इत्यत्र प्रस्तुतस्य सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

१०७८—"**यावद् अन्तरं राम-रावणयोः, तावदन्तरं पट्टनग्रामयोः**"-अयं भावः—रामरावणयोः, रामश्च रावणश्च रामरावणौ, तयोः यावदन्तरं—पार्थक्यं विद्यते तावदेवाऽन्तरं पट्टन-ग्रामयोः—पट्टनञ्च ग्रामश्च पट्टन-ग्रामौ, तयोरन्तरं नगर-ग्रामयोर्भवति। एतेषां पदानां साधना त्वित्थम्—**यावत्**। यावद्+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०७७ सू० वत्प्रत्ययस्य विकल्पेन डिद् एवड इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जेवडु** इति भवति। **अन्तरम्**—अन्तरु, प्रक्रिया १०७७ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया। **राम-रावणयोः**। रामरावण+ओस्। ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **राम-रावणहं** इति भवति। **तावत्**। तावद्+सि। प्रस्तुतसूत्रेण वत्प्रत्ययस्य स्थाने डेवड (एवड) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **तेवडु** इति साध्यम्। **पट्टन-ग्रामयोः**। पट्टन-ग्राम+ओस्। २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०६९ सू० रेफस्य लोपे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, पूर्ववदेव **पट्टणगामहं** इति भवति। **पक्षे**। प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावपक्ष इत्यर्थः। **यावत्**। यावद्+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारे, वैकल्पिकत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः। **प्रत्यय-ग्रहणे तदन्तस्याऽपि ग्रहणमिति** परिभाषया डावतोरपि ग्रहणम्, ततः ११०६ सू० अतु-प्रत्ययस्य स्थाने डिद् एत्तुल इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००३ सू० अकारस्य स्थाने ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जेत्तुलो** इति भवति। **तावद्**। तावद्+सि। वैकल्पिकत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याऽप्रवृत्तौ, ११०६ सू० अतु इत्यस्य प्रत्ययस्य स्थाने डेत्तुल (एत्तुल) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००३ सू० अकारस्य स्थाने ओकारे, १०१५ सू० सिप्रत्ययस्य लोपे **तेत्तुलो** इति भवति।

१०७९—**इयत्**। यत् परिमाणमस्येति। इयद्+सि। १०७९ सू० यद् इत्यस्य स्थाने विकल्पेन डिद् एवड इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सिप्रत्ययस्य लोपे **एवडु** इति भवति। **अन्तरम्**। अन्तर+सि। १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **अन्तरु** इति भवति। **कियत्**। किं परिमाणमस्येति। कियत्+सि। प्रस्तुतसूत्रेण यत् इत्यंशस्य

स्थाने विकल्पेन डित् एवड इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, एवडु-वदेव केवडु इति भवति । पक्षे । प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावपक्ष इत्यर्थः । इयत् । इदम्+अतु=इय्+अतु इति संस्कृतनियमेन जाते, ११०६ सू० अतोः स्थाने डेत्तुल (एत्तुल) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, सि-प्रत्यये, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे एत्तुलो इति भवति । कियत् । किम्+अतु=किय्+अतु इति संस्कृत-नियमेन जाते, ११०६ सू० यद् इत्यस्य स्थाने डेत्तुल [एत्तुल] इत्यादेशे, एत्तुलो-वदेव केत्तुलो इति साध्यम् । अत्र वैकल्पिकत्वात् प्रस्तुतस्य [१०७९] सूत्रस्य प्रवृत्त्यभावः ।

१०८०— ते मुद्गाः हारिताः ये परिविष्टास्तेषाम् ।
परस्परं युध्यमानानां स्वामी पीडितो येषाम् ॥१॥

भावार्थः—**परस्परम्**-मिथो **युध्यमानानां येषां**-कलहकारिणां मनुजानां **स्वामी पीडितः**-दुःखितो भवति, तेषां पुरुषाणां कृते ये **मुद्गाः**-धान्यविशेषाः **परिविष्टाः**-प्रदत्ताः सन्ति ते **हारिताः**-व्यर्थीभूता एव भवन्तीति ज्ञेयम् । कलहप्रियाणां नराणां भोजनादिना पोषणं व्यर्थमेव भवतीति भावः ।

ते । तद्+जस्=ते,प्रक्रिया ५८७ सूत्रे ज्ञेया । **मुद्गाः** । मुद्ग+जस् । ३४८ सू० दकारस्य लोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, ११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० अकारस्य स्थाने आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **मुग्गडा** इति भवति । **हारिताः** । हृञ् (हृ) हरणे । हृ+णिग्+क्त-त । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६३८ सू० णिग स्थाने आव इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकार-लोपे, जस्-प्रत्यये,१००१ सू० अकारस्य आकारे, जसो लोपे **हराविआ** इति भवति । **ये**=जे,प्रक्रिया ५४७ सूत्रे ज्ञेया । **परिविष्टा** । परिविष्ट+जस् । ३०५ सू० ष्टस्य स्थाने ठकारे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य स्थाने टकारे, १००१ सू० अकारस्य स्थाने आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **परि-विट्ठा** इति भवति । **तेषाम्** । तद्+आम् । ११ सू० दकारस्य लोपे, १००१ सू० अकारस्य स्थाने आ-कारे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे **ताहं** इति भवति । **परस्परम्** । परस्पर+अम् । १०८० सू० परस्परशब्दस्य आदौ अकारस्य प्रयोगे, २३१ सू० प्रथम-पकारस्य वकारे, ६२ सू० प्रथमरेफस्याकारस्य ओकारे,३४८ सू० रेफस्य लोपे,३६० सू० पकारद्वित्वे, बाहुलकेन ८४ सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ, १००२ सू० अका-रस्य उकारे,१०१५ सू० अम् प्रत्ययस्य लोपे **अवरोप्परु** इति भवति । **युध्यमानानाम्** । युध्धातुः संप्रहारे । युध्+आनश् । अपभ्रंशे १०६६ सू० युध-धातोः स्थाने जोअ इत्यस्य प्रयोगे,६३० सू० आनशः स्थाने न्त इत्यादेशे, आम्-प्रत्यये, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे **जोअन्ताहं** इति भवति । **स्वामी** । स्वामिन्+सि । ३५० सू० वकारस्य लोपे, ११ सू० नकारस्य लोपे, ४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये, १७७ सू० ककारलोपे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सामिउ** इति भवति । **पीडितः** । पीडित+सि । १०९३ सू० पीडितार्थे गञ्जिअ-शब्दः प्रयुज्यते,१००२ सू० अका-रस्य स्थाने उकारे, सेर्लोपे **गञ्जिउ** इति भवति । **येषाम्** । यद्+आम् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे **जाहं** इति भ-वति । **परस्परम्**=**अवरोप्परु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०८१—उच्चारणस्य लाघवं प्रायो भवति । एकारस्य, ओकारस्य च दीर्घत्वं सर्वे वैयाकरणा अवगच्छन्त्येव, परन्तु अपभ्रंशभाषायां कादि-व्यञ्जनेषु ये एकाराः, ओकाराश्च स्थिताः भवन्ति, तेषा-मुच्चारणं लघु [ह्रस्वः] जायते । यथा—**सुखेन चिन्त्यते मानः**=**सुधें चिन्तिज्जइ** माणु, प्रक्रिया १०६७

सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **सुघें** इत्यत्र सुख+ङा इति स्थिते, १०६७ सू० खकारस्य घकारे, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे, १०८१ सू० एकारस्योच्चारणस्य लाघवे **सुघें** इति भवति। **तस्याऽहं कलियुगे दुर्लभस्य**=तसु हउँ कलिजुगि दुल्लहहों, प्रक्रिया १००९ सूत्रे ज्ञेया। **दुल्लहहों** इत्यत्र १०८१ सूत्रेण ओकारस्योच्चारणस्य लाघवं जातम्।

१०८२—उच्चारणस्य लाघवं प्रायो भवति। यस्योच्चारणे जिह्वाग्रोपाग्र*-मध्य-मूलानां शैथिल्यं जायते,तल्लघूच्चारणम्। अनुस्वारस्योच्चारणं गुरु भवति, परन्तु प्रस्तुतसूत्रेणाऽनुस्वारस्याऽनुनासिकत्वं विधीयते। अनुनासिकोच्चारणस्य लाघवं सर्वप्रसिद्धमेव। यथा—**अन्यद् यत्तुच्छकं तस्याः धन्यायाः**=अन्नु जु तुच्छउँ तहें धणहे, प्रक्रिया १०२१ सूत्रे ज्ञेया। **तुच्छकम्**=**तुच्छउँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **बलिं क्रियै सुजनस्य**=बलि किज्जउँ सुअणस्सु, एषां पदानां प्रक्रिया १००९ सूत्रे ज्ञेया। **बलि क्रियै**=**बलि किज्जउँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **दैवं घटयति वने तरूणाम्**=दइउ घडावइ वणि तरुहुँ,प्रक्रिया १०११ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **दैवम्**। देव+सि। इत्यत्र १५३ सू० ऐकारस्य अइ इत्यादेशे, १७७ सू० वकारलोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **दइउ** इति भवति। **तरूणाम्**=**तरुहुँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **तरुभ्योऽपि वल्कलम्**=तरुहुँ वि वक्कलु, प्रक्रिया १०१२ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **तरुभ्यः**=**तरुहुँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **खड्गविसाधितं यस्मिन् लभामहे**=खग्गविसाहिउ जहिँ लहहुं,प्रक्रिया १०५७ सूत्रे ज्ञेया। **यस्मिन्**=**जहिँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेणोच्चारणस्य लाघवं जातं, किन्तु प्रस्तुतसूत्रे प्रायोऽधिकारात् **लहहुं** इत्यत्र उच्चारणस्य लाघवं न जातम्। **तृणानां तृतीया भङ्गी नाऽपि**=तणहँ तइज्जी भङ्गि न वि, प्रक्रिया १०१० सूत्रे ज्ञेया। **तृणानाम्**=**तणहँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। उक्तेषु प्रयोगेषु यथास्थानं प्रस्तुतसूत्रेण विहितमुच्चारणस्य लाघवं दृश्यते।

१०८३—संस्कृते तदसंभवात्। म्ह इत्यस्य संस्कृतभाषायामुपयोगो न भवत्यतः ३४५ सूत्रेण पक्ष्मशब्द-सम्बन्धिनः संयुक्तस्य, श्म-ष्म-स्म-ह्मां स्थाने विहितो यो म्ह इत्यादेशस्तस्यैवाऽत्र ग्रहणं भवति, तेन म्ह इत्यस्य स्थाने म्भ इत्यादेशो जायते इत्युक्तम्। यथा—**ग्रीष्मः**। ग्रीष्म+सि। १०६९ सू० रेफस्य लोपे, ८४ सूत्रेण संयोगे परे ह्रस्वे, ३४५ सू० ष्मस्य स्थाने म्ह इत्यादेशे, १०८३ सू० म्हस्य स्थाने म्भ इत्यादेशे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **गिम्भो** इति भवति। **श्लेष्मा**। श्लेष्मन् +सि। ३५० सू० लकारलोपे, २६० सू० शकारस्य स्थाने सकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३४५ सू० ष्मस्य म्हादेशे, पूर्ववदेव **सिम्भो** इति भवति। निम्नोक्तश्लोकेऽप्युदाहरणं प्रदीयते। यथा—

ब्रह्मन् ! ते विरलाः केऽपि नराः ये सर्वाङ्गच्छेकाः।
ये वक्राः ते वञ्चकतराः, ये ऋजवस्ते बलीवर्दाः॥१॥

भावार्थः—हे **ब्रह्मन्** !, हे विधातः !, **ते केऽपि नराः विरलाः**—स्वल्पाः वर्तन्ते ये **सर्वाङ्गच्छेकाः**, सर्वाणि च तान्यङ्गानि सर्वाङ्गाणि—सर्वकार्याणि तेषु, छेकाः—दक्षाः, हेयोपादेयविवेककुशलाः नराः अल्पीयांस एव सन्ति, यतोहि **ये वक्राः**—सरलेतराः, **ते वञ्चकतराः**-अतिशयेन धूर्ताः भवन्ति। **ये** च पुनः **ऋजवः**-सरलाः सन्ति ते खलु **बलीवर्दाः**—वृषभतुल्याः, मूर्खाः भवन्तीति भावः।

ब्रह्मन् !। ब्रह्मन्+सि। अत्र बाहुल्येन २३७ सू० बकारस्य वकारे, १०६९ सू० रेफलोपे, ३४५ सू० ह्मस्य स्थाने म्ह इत्यादेशे, १०८३ सू० म्हस्य स्थाने म्भ इत्यादेशे, ११ सू० नकारलोपे, १०१५ सू० सेर्लोपे **बम्भ** ! इति भवति। **ते**। तद्+जस्=ते, प्रक्रिया ५४७ सूत्रे ज्ञेया। **विरलाः**। विरल+जस्।

*उपाग्रम्-अग्रभागस्य समीपवर्ती भागः।

१००१ सू० अकारस्य स्थाने आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **विरला** इति भवति । **के**—के, प्रक्रिया ५४७ सूत्रे ज्ञेया । **अपि**—वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **नराः** । नर+जस् । इत्यत्र १०१५ सू० जसो लोपे **नर** इति भवति । **ये**—जे, प्रक्रिया ५४७ सूत्रे ज्ञेया । **सर्वाङ्गच्छेकाः** । सर्वाङ्गछेक+जस् । १०६९ सू० रेफ-लोपे, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वे, ८४ सूत्रेण संयोगे परे ह्रस्वे, १०९२ सू० छेकाऽर्थे छइल्लशब्दः प्रयुज्यते, १०१५ सू० जसो लोपे **सव्वङ्ग-छइल्ल** इति भवति । **वक्राः** । वक्र+जस् । २६ सू० प्रथमस्वरस्याऽनुस्वारागमे, ३० सू० अनुस्वारस्य वर्गाऽन्त्ये वर्णे, १०६९ सू० रेफस्य लोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **वङ्का** इति भवति । **वञ्चकतराः** । वञ्चकतर+जस् । १७७ सू० ककारस्य लोपे, बाहुल्येन १८० सू० यकारस्य श्रुत्यभावे [वञ्च+अ+तर+जस्], १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १७७ सू० तकारस्य लोपे, १८० सू० यकारस्य श्रुतौ, जसो लोपे **वञ्चयर** इति भवति । **ऋजवः** । ऋजु+जस् । १३१ सू० ऋकारस्य उकारे, ३७० सू० जकारस्य द्वित्वे, ११०० सू० स्वार्थे अ-प्रत्यये, जसो लोपे **उज्जुअ** इति भवति । **ते** । तद्+जस्=ते, प्रक्रिया ५४७ सूत्रे ज्ञेया । १०८१ सूत्रेण उच्चारणस्य लाघवे **तें** इति भवति । **बलीवर्दाः** । बलीवर्द+जस् । ४४५ सू० बलीवर्दस्य **बइल्ल** इति निपातिते, १०१५ सू० जसो लोपे **बइल्ल** इति भवति । **कस्मान्**!—**कम्ब**! इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०८४—अन्यादृशः । अन्यादृश+सि । १०८४ सू० अन्यादृशस्य शब्दस्य अन्नाइस, अवराइस इत्यादेशौ, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **अन्नाइसो**, **अवराइसो** इति भवति ।

१०८५— **अन्ये ते दीर्घे लोचने, अन्यद् तद् भुजयुगलम् ।**
अन्यः स घन-स्तन-भारः, तदन्यदेव मुखकमलम् ॥
अन्यः स केशकलापः, सोऽन्य एव प्रायो विधिः ।
येन नितम्बिनी घटिता सा गुण-लावण्य-निधिः ॥१॥

भावार्थः—कस्याश्चन नायिकायाः लावण्यं सौन्दर्यातिशयश्च निरूप्यते—ते **दीर्घे**—लम्बायमाने **लोचने**—नेत्रे, **अन्ये**—विलक्षणे, अनुपमे एव ज्ञेये । **तद् भुजयुगलम्**—भुजयोः युगलमन्यदेव-अपूर्वमेव, **स घनस्तनभारः**, घनौ-अशिथिलौ च तौ स्तनौ-कुचौ, तयोः भारः, **अन्यः**—अद्भुत इति यावत् । **तद्मुख-कमलं**, मुखं कमलमिव मुखकमलम्, **तदन्यदेव**, स **केशकलापः**, केशानां—कचानां कलापः **अन्य एव**, एतत्सर्वं विलक्षमेतस्याः इति यावत् । **प्रायः स विधिः**-विधाता **अन्यः**-विलक्षण **एव** प्रतिभाति, **येन सा नितम्बिनी**-प्रशस्तनितम्बवती [नितम्बप्रशस्त्ये इनिः] काचित् परमसुन्दरी—परमलावण्यमयी नायिका **घटिता**—निर्मिता । **किम्भूता सा नायिका ?** गुणलावण्यनिधिः, गुणाश्च लावण्यञ्च तेषां समाहारः, गुण-लावण्यम्, तस्य निधि-भण्डारः गुण-लावण्य-निधिः । सहिष्णुता, कार्यकुशलता इत्यादयो गुणाः ज्ञेयाः । लावण्यञ्च अङ्गोपाङ्गानां सौन्दर्यं बोध्यम् ।

अन्ये । अन्यद्+औ । ३४९ सू० यकारस्य लोपे, ३६० सू० नकारद्वित्वे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ५४७ सू० जसः स्थाने डित् एत् (ए) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण सं-योज्ये **अन्ने** इति भवति । **ते** । तद्+औ । ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, अन्ने-वदेव **ते** इति साध्यम् । **दीर्घे** । दीर्घ+औ । इत्यत्र ३५० सू० रेफलोपे, ३६३ सू० घकारस्य द्वित्वनिषेधे, १८७ सू० घकारस्य स्थाने हकारे, ४४२ सू० स्वार्थे रेफस्याऽऽगमे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१५ सू० जसो लोपे **दीहर** इति भवति । **लोचने** । लोचन+औ । इत्यत्र १७७ सू० चकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, द्विवचनस्य बहुवचने, जसो लोपे **लोअण** इति भवति । **अन्यद्** । अन्यद्+सि । ३४९ सू० यकारस्य लोपे, ३६० सू०

नकारद्वित्वे, ११ सू० दकारस्य लोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे अन्नु इति भ-वति । एवमेव अन्यः । अन्यद्+सि=अन्नु इति साध्यम् । तद् । तद्+अि । इत्यत्र बाहुल्येन २४ सू० दकारस्य स्थाने मकारे, २३ सू० मकाराऽनुस्वारे, १०१५ सू० सेर्लोपे तं इति भवति । भुजयुगलम् । भुजयुगल+सि । १७७ सू० जकारलोपे, ११ सूत्रमनुसृत्य[1] वाक्यापेक्षया पदस्यादिभूतत्वात् २४५ सूत्रेण यकारस्य स्थाने जकारे, १७७ सू० गकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे भुअ जुअलु इति भवति । सः । तद्+सि । ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उ-कारे,सेर्लोपे सु इति भवति । घन स्तन-भारः । घन-स्तन-भार+सि । २२८ सू० उभयत्रापि नकारस्य णकारे, ३१६ सू० स्तस्य थकारे, ११ सूत्रमनुसृत्य[2] वाक्याऽपेक्षया थकाराऽऽदेशस्य पदाऽऽदिभूतत्वात् ३६० सू० थकारद्वित्वाऽभावे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे घण-थण-हारु इति भवति । एव । अव्ययपदमिदम् । १०९१ सू० एवार्थे जि इत्यस्य प्रयोगे जि इति भवति । मुखकमलम् । मुखकमल+सि । १८७ सू० खकारस्य हकारे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे मुहकमलु इति भवति । केशकलापः । केशकलाप+सि । २६० सू० शकारस्य सकारे, २३१ सू० पकारस्य वकारे, पूर्ववदेव केसकलावु इति भवति । प्रायः । अव्ययपदमिदम् । १०८५ सू० प्रायः इत्यस्य प्राउ इत्यादेशे प्राउ इति भवति । विधिः । विधि+सि । १८७ सू० धकारस्य स्थाने ह-कारे, १०१५ सू० सेर्लोपे विहि इति भवति । येन । यद्+टा । इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य स्थाने ज-कारे, ११ सू० दकारलोपे, १०१३ सू० टास्थाने णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे जेण इति भवति । नितम्बिनी । नितम्बिनी+सि । २२९ सू० नकारस्य स्थाने णकारे, १७७ सू० त-कारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, सेर्लोपे णिअम्बिणि इति भवति । घटिता । १९५ सू० टकारस्य स्थाने डकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, १००१ सू० आकारस्य स्थाने अकारे,सेर्लोपे घडिअ इति भवति । सा । तद्+सि । ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारलोपे, स्त्रीत्वाद् आप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे स इति भवति । गुण-लावण्य-निधिः । गुण-लावण्य-निधि+सि । १७७ सू० वकारस्य लोपे, ३४९ सू० यका-रस्य लोपे, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वे, २२८ सू० नकारस्य स्थाने णकारे, १८७ सू० धकारस्य स्थाने ह-कारे,१०१५ सू० सेर्लोपे गुण-लावण्ण-णिहि इति भवति । प्रायः=प्राउ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

प्रायः मुनीनामपि भ्रान्तिः तेन मणिकाम् गणयन्ति ।
अक्षये निरामये परमपदे अद्याऽपि लयं न लभन्ते ॥२॥

भावार्थः—प्रायो मुनीनामपि तपश्चरण-परायणानामपि भ्रान्तिर्वर्तते, तेन—अतएव ते मुनयः मणिकाम्—मालासंलग्नान् मणीन् गणयन्ति—जपन्ति । यद् अद्याऽपि ते अक्षये, न क्षयो यस्य सः, त-स्मिन्, निरामये, आमयाद्—उत्पादविनाशाभ्यां निर्गतः सः, तस्मिन्, परमपदे, परमं च तत्पदं—मोक्षः तस्मिन्, लयं—तल्लीनतां न लभन्ते । केवलं बाह्याडम्बरेण न किमपि हस्तगतं भवति,परन्तु शुद्धमनसा सहैव विहितं जापादिकं सफलं जायत इति भावः ।

---

१. ११ सूत्रे "समासे तु वाक्यविभक्त्यपेक्षायाम् अन्त्यत्वम्, अनन्त्यत्वं च" इत्युक्तम् । तेन वाक्याऽपेक्षया, पदसमूहो वाक्यं तदपेक्षया, पदस्य आदिभूतत्वात् यकारस्य जकारो जातः ।

२. ११ सूत्रे "समासावस्थायां वाक्याऽपेक्षया विभक्त्यपेक्षया च अन्त्यत्वम्, अनन्त्यत्वञ्च भवति" इत्युक्तम् । तेनाऽत्र वाक्याऽपेक्षया थकारादेशस्य आदिभूतत्वात् ३६० सूत्रेण थकारस्य द्वित्वं न जातम् ।

प्रायः । अव्ययपदमिदम् । प्रस्तुतसूत्रेण प्रायः इत्यस्य प्राइव इत्यादेशे **प्राइव** इति भवति । **मुणी-णाम्** । मुनि+आम् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **मुणिहँ** इति भवति । **अवि**=वि,प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **भ्रान्ति** । भ्रान्ति+सि । १०६९ सू० रेफस्य लोपे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्य-स्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, स्त्रीत्वविवक्षायां ११०२ सू० डी-(ई)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्व-रादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **भन्तडी** इति भवति । **तेन** । तद्+टा । ११ सू० दकारस्य लोपे, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, अनुस्वारस्य स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **तें** इति भवति । **मणिकान्** । मणिक+शस् । ११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये, क-प्रत्ययस्य च लोपे, बाहुल्येन डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपाऽभावे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० शसो लोपे—**मणिअडा** इति भवति । **गणयन्ति** । गण [गण्] गणनायाम् । गण्+णिग्+अन्ति । ६३८ सू० णिग अकारे, बाहुल्येन ६४२ सू० आदेरकारस्य दीर्घाऽभावे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **गणन्ति** इति सिद्धम् । **अक्षये** । अक्षय+ङि । २७४ सू० क्षस्य स्थाने खकारे, ११ सूत्रमनुसृत्य *वाक्यापेक्षया खकारादेशस्य पदादिभूतत्वात् ३६० सू० खकारस्य द्वित्वाऽभावे, १७७ सू० यकारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **अखइ** इति भवति । **निरामये** । निरामय+ङि । १७७ सू० यकारलोपे, पूर्ववदेव **निरामइ** इति भवति । **परमपदे** । परमपद+ङि । १७७ सू० दकारलोपे, पूर्ववदेव **परम-पइ** इति भवति । **अद्य** । अव्यय-पदमिदम् । २९५ सू० द्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे **अज्ज** इति भ-वति । **लयम्** । लय+अम् । १७७ सू० यकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **लउ** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **लभन्ते** । डुलभष [लभ्] लाभे । लभ्+अन्ते । ९१० सू० अकारागमे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, ६३१ सू० अन्ते इत्यस्य न्ति इत्यादेशे **लहन्ति** इति भवति । **प्रायः**—**प्राइव** इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

अश्रुजलेन प्रायः **गौर्याः सखि ! उद्वृत्ते** नयनसरसी ।
ते **संमुखे सम्प्रेषिते दत्तः तिर्यग् घातं परम्** ॥३॥

भावार्थः—**हे सखि !** पतिवियोगात् समुद्भूतेन **गौर्याः**—सुन्दरीनायिकायाः **अश्रुजलेन**, अश्रु-रूपं जलं, तेन **नयनसरसी** नयने एव सरसी—तडागौ, **उद्वृत्ते**—उच्छलिते, ते नयन-सरसी कस्यचित् पुरुषस्य **सम्मुखं सम्प्रेषिते तिर्यक्** यथा स्यात्तथा व्यापारिते परं विलक्षणं **घातं** हननस्वरूपं दुःखं **दत्तः** । पति-विरह-जन्यदुःखेन व्याप्ता काचिन्नायिका अश्रुपूर्ण-नयनाभ्यामपि यदि कञ्चित् पुरुषं तिर्यग्-दृष्ट्या, कामपूर्णदृष्ट्या समवलोकते तदाऽसौ दृष्टः पुरुषः कामवासनाजन्यां महतीं वेदनामनुभवति । कामु-काया अश्रुपूर्णनयनयोरपि वक्रा दृष्टिः भयंकरा **भवतीति** भावः ।

अश्रुजलेन । अश्रुजल+टा । २६ सू० प्रथमस्वरादग्रेऽनुस्वारागमे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १०६९ सू० रेफलोपे, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **अंसु-जलें** इति भवति । **प्रायः** । अव्ययपदमिदम् । प्रस्तुतसूत्रेण प्रायः इत्यव्ययस्य स्थाने **प्राइम्व** इति प्रयुज्यते । **गौर्याः** । गौरी+ङस् । १५९ सू० औकारस्य ओकारे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १०२१ सू० ङसः स्थाने हे इत्यादेशे **गोरिअहे** इति भवति । **सखि !**—सहि !, प्रक्रिया १००३ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **उद्वृत्ते** । उद्वृत्त+औ । ३४८ सू० दकारस्य लोपे, ३६० सू० वकारस्य

*१०८५ सूत्रस्य प्रथमश्लोकस्य व्याख्यायाः टिप्पणी समवलोकनीया ।

द्वित्वे, १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **उब्वसा** इति भवति। **नयनसरसी**। नयनसरस्+औ। वैकल्पिकत्वाद् २२९ सूत्रेण आदिमस्य नकारस्य णकाराऽभावे, २२८ सू० द्वितीय-नकारस्य णकारे, ११ सू० सकारलोपे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१५ सू० जसो लोपे **नयणसर** इति भवति। **ते**। तद्+औ। ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ११ सू० दकारलोपे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००० सू० इकारस्य एकारे तें इति भवति। **संमुखे**। संमुख+औ। १८७ सू० खकारस्य हकारे, द्विवचनस्य बहुवचने, जसो लोपे **संमुह** इति भवति। **संप्रेषिते**। संप्रेषित+औ। १०६९ सू० रेफलोपे, २६० सू० षकारस्य स्थाने सकारे, १७७ सू० तकारलोपे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **संपेसिआ** इति भवति। **दत्तः**। डुदाञ् [दा] दाने। दा+तस्। १००० सू० आकारस्य एकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **देन्ति** इति भवति। **तिर्यक्**। क्रियाविशेषणमिदम्। तिर्यक्+अम्। ४१४ सू० तिर्यच्-शब्दस्य तिरिच्छि इत्यादेशे, १००१ सू० अन्त्यस्य इकारस्य ईकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **तिरिच्छी** इति भवति। **घातम्**। घात+अम्। ३७० सू० तकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, अमो लोपे **घत्त** इति भवति। **परम्**। अव्ययपदमिदम्। १०८९ सू० परम् इत्यस्य पर इत्यादेशे **पर** इति भवति। **प्रायः**—**प्राइम्ब** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

एष्यति प्रियः रोषिष्याम्यहं रुष्टां मामनुनयति।
प्रायः एतान् मनोरथान् दुष्करान् दयिता करोति॥४॥

भावार्थः—काचन सगर्वा नायिका आह—यदा मम **प्रियः**-कान्तः, **एष्यति**-गमिष्यति, **तदाऽहं रोषिष्यामि**-रुष्टा भविष्यामि। यतोऽसौ मम प्रियः कान्तः **रुष्टां**-सरोषां **मामनुनयति**-अनुकूलां कर्तुं प्रार्थयिष्यति। **प्रायः दयिता**-नायिका **एतान् दुष्करान्** कठिनान् पूर्वोक्तमनोरथान् **करोति**। प्रियवल्लभा नार्यः प्रायः प्रणय-प्रकोपविषयकं चिन्तनं कुर्वन्तीति भावः।

एष्यति। इण्-(इ)-धातुः गतौ। संस्कृतनियमेन ए+स्य+तिव् इति जाते, १०५९ सू० स्यस्य स्थाने सकारे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे एस+इ इति जाते, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००० सू० इकारस्य ईकारे **एसी** इति भवति। **प्रियः**। प्रिय+सि। १०६९ सू० रेफस्य लोपे, १७७ सू० यकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पिउ** इति भवति। **रोषिष्यामि**। रुष् रोषे। रुष्+स्य+स्यामि। इत्यत्र ९०७ सू० उकारस्य स्थाने ऊकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ९१० सू० अकारागमे, ६४६ सू० अकारस्य एकारे, १०५६ सू० स्यामि इत्यस्य स्थाने उं इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, बाहुल्येन अनुस्वारस्य लोपे **रूसेसु** इति भवति। **अहम्**=हउँ, प्रक्रिया १०११ सूत्रस्य द्वितीय-श्लोके ज्ञेया। **रुष्टाम्**। रुष्टा+अम्। ३०५ सू० ष्टस्य स्थाने ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १००० सू० आकारस्य ईकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **रुट्ठी** इति भवति। **माम्**। अस्मद्+अम्। १०४८ सू० अमा सह अस्मदः स्थाने मइँ इत्यादेशे **मइँ** इति भवति। **अनुनयति**। अनुपूर्वकः णीञ्-(नी)-धातुः अनुनयने। अनुनी+तिव्। २२८ सू० उभयत्रापि नकारस्य णकारे, ९०८ सू० ईकारस्य एकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **अणुणेइ** इति सिद्धम्। **प्रायः**। अव्ययपदमिदम्। प्रस्तुतसूत्रेण प्रायस् इत्यस्य पग्गिम्व इत्यादेशे **पग्गिम्व** इति भवति। **एतान्**। एतद्+शस्=एइ, प्रक्रिया १०३४ सूत्रे ज्ञेया। **मनोरथान्**। मनोरथ+शस्। २२८ सू० नकारस्य णकारे, १८७ सू० थकारस्य हकारे, ३४ सू० क्लीबत्वे, १०२४ सू० शसः स्थाने इं इत्यादेशे **मणोरहइं** इति

भवति। **दुष्करान्**। दुष्कर+शस्। ३४८ सू० षकारलोपे, ३६० सू० ककारद्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० शसो लोपे **दुक्करु** इति भवति। **दयिता**। दयिता+सि। १७७ सू० यकारस्य तकारस्य च लोपे, १००० सू० आकारस्य अकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **दइउ** इति भवति। **करोति**। डुकृञ् [कृ] करणे। कृ+तिप्। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६४७ सू० द्वितीयाऽकारस्य एकारे, ६२८ सू० तिप इत्यादेशे **करेइ** इति भवति। **प्रायः**—**पच्चिम्ब** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

१०८६— विरहानल-ज्वाला-करालितः, पथिकः कोऽपि मङ्क्त्वा स्थितः।
अन्यथा शिशिरकाले शीतलजलाद् धूमः कुतः उत्थितः॥१॥

भावार्थः—जले धूमं प्रेक्ष्य कश्चित् पुरुषः प्राह—**विरहानल-ज्वाला-करालितः**, कान्तायाः विरहः-वियोगः, तज्जनितोऽनलः वह्निः तस्य ज्वाला, तया करालितः-पीडितः दग्ध इव इति यावत्। एतादृशः **कोऽपि**-कश्चित् **पथिकः** जले **मङ्क्त्वा**-निमज्य **स्थितोऽस्ति**, **अन्यथा शिशिरकाले**, शिशिरस्य शीतर्तोः कालः, तस्मिन्, शीतलजलात्, शीतलं च तज्जलं तस्मात् **कुतः**-कथं **धूमः उत्थितः**?

विरहानल-ज्वाला-करालितः। विरहानल-ज्वाला-करालित+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, ३५० सू० संयुक्त-वकारलोपे, ४ सू० लकारस्थाऽऽकारस्य ह्रस्वे, १७७ सू० तकारलोपे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **विरहाणल-जाल-करालिअउ** इति भवति। **पथिकः**। पथिक+सि। १८७ सू० थकारस्य हकारे, १७७ सू० ककारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **पहिउ** इति भवति। **कः**। किम्+सि। इत्यत्र ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, सेर्लोपे **को** इति भवति। **अपि**=**वि**, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया। **मङ्क्त्वा**। टुमस्जू [मस्ज्] विशुद्धौ। मस्ज्+क्त्वा। ७७२ सू० मस्जधातोः स्थाने बुड्ड इत्यादेशे, ११९० सू० क्त्वः स्थाने इवि इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **बुड्डिवि** इति भवति। **स्थितः**। ष्ठा [स्था] गतिनिवृत्तौ। स्था+क्त—त। ६८७ सू० स्थाधातोः स्थाने ठा इत्यादेशे, १००० सू० आकारस्य अकारे, ६४५ सूत्रेण अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, सिप्रत्यये, १०१५ सू० सेर्लोपे **ठिअउ** इति भवति। **अन्यथा**। अव्ययपदमिदम्। प्रस्तुतसूत्रेण अन्यथाशब्दस्य विकल्पेन अनु इत्यादेशे **अनु** इति भवति। **शिशिरकाले**। शिशिरकाल+ङि। २६० सू० उभयत्राऽपि शकारस्य सकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **सिसिरकालि** इति भवति। **शीतलजलात्**। शीतलजल+ङसि। २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००७ सू० ङसेः स्थाने हु इत्यादेशे **सीअलजलहु** इति भवति। **धूमः**। धूम+सि। १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **धूमु** इति भवति। **कुतः**। अव्ययपदमिदम्। १०८७ सू० कुतः इत्यस्य स्थाने कहन्तिहु इत्यादेशे **कहन्तिहु** इति भवति। **उत्थितः**। उत्पूर्वकः स्थाधातुः उत्थाने। उद्स्था+क्त-त। ३४८ सू० दकारलोपे ६८७ सू० स्थाधातोः स्थाने ठा इत्यादेशे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १००० सू० आकारस्य अकारे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, सि-प्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **उट्ठिअउ** इति भवति। **अन्यथा**=**अनु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य वैकल्पिका प्रवृत्तिर्जाता। **पक्षे**। प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावपक्ष इत्यर्थः। **अन्यथा**। इत्यत्र ३४८ सू० यकारलोपे, ३६० सू० नकारद्वित्वे, १८७ सू० थकारस्य हकारे, १००० सूत्रेण आकारस्य अकारे **अन्नह** इति भवति। अत्र वैकल्पिकत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता।

१०८७— मम कान्तस्य गोष्ठस्थितस्य कुतः कुटीरकाणि ज्वलन्ति ।
अथ रिपुरुधिरेण विध्यापयति, अथाऽऽत्मना न भ्रान्तिः ॥१॥

भावार्थः—गोष्ठस्थितस्य-गोशालायां स्थितस्य-विराजितस्य **मम कान्तस्य कुटीरकाणि**-गृहाणि कथं **ज्वलन्ति ?**-ज्वलन्ति ? मम कान्तस्याऽवस्थितावपि गृहाणि ज्वलन्तीति महदाश्चर्यम् । **अथ**-अथवा यदीमानि कुटीरकाणि केनचित् शत्रुणा ज्वालितानि तदा मम प्रियतमः **रिपुरुधिरेण रिपोः**-शत्रोः रुधिरेण तानि **कुटीरकाणि विध्यापयति**-विध्यापयिष्यति-शमयिष्यतीति यावत् । **अथ**-अथवा यदीमानि कारणान्तरेण स्वयमेव ज्वलन्ति **तदाऽऽत्मना**-स्वयमेव कस्याऽपि साहाय्यं विनैव मम कान्तः तानि कुटीरकाणि विध्यापयिष्यति, नाऽत्र **भ्रान्तिः**-सन्देहः कर्तव्येति भावार्थः । एतावता कथनेन काऽपि नारी स्वपत्युः शौर्यं श्लाघते ।

मम—महु, प्रक्रिया १०५० सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **कान्तस्य**—कन्तहो, इत्यस्य प्रक्रिया १०५० सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **गोष्ठ-स्थितस्य** । गोष्ठ-स्थित+ङस् । इत्यत्र ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३४८ सू० षकारस्य लोपे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे,(स्था+क्त=त इत्यत्र ६८७ सू० स्थाधातोः स्थाने ठा इत्यादेशे,३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे) १७७ सू० तकारलोपे, १००९सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे **गुट्ठ-ट्ठिअहो** इति भवति । **कुतः** । अव्ययपदमिदम् । १०८७ सू० कुतस् इत्यस्य स्थाने कउ इत्यादेशे **कउ** इति भवति । **कुटीरकाणि** । कुटीरक+जस् । अपभ्रंशे १०९३ सू० कुटीरकार्थे झुम्पड-शब्दः प्रयुज्यते, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **झुम्पडा** इति भवति । **ज्वलन्ति** । बल-धातुः प्राणने । "**अनेकार्थाः हि धातवः**" इति न्यायेनाऽत्र बलधातुः ज्वलनेऽपि प्रयुज्यते । ततः बल्+अन्ति इति स्थिते,९१० सू० अकारस्याऽऽगमे,६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **बलन्ति** इति भवति । **अथ**—अह, इत्यस्य प्रक्रिया १०१० सूत्रे ज्ञेया । **रिपु-रुधिरेण** । रिपु-रुधिर+टा । १७७ सू० पकारलोपे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **रिउरुहिरें** इति भवति । **विध्यापयति** । विपूर्वकः ध्मै-(ध्मा)-धातुः विध्यापने । विध्मा+णिग्+तिव् । अपभ्रंशे विध्मा+णिग् इत्यर्थे १०६६ सू० उल्हव इत्यस्य प्रयोगे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **उल्हवइ** इति भवति । **आत्मना** । आत्मन्+टा । ३२२ सू० त्मस्य स्थाने पकारे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ५४५ सू० अन् इत्यस्य आण इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००० सू० आकारस्य अकारे, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **अप्पणें** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृततुल्यमेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **भ्रान्तिः** । १०६९ सू० रेफस्य लोपे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०१५ सू० सेर्लोपे **भन्ति** इति भवति । **कुतः**—**कउ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **धूमः कुतः उत्थितः**—धूमु कहन्तिहु उट्ठिअउ, प्रक्रिया १०८६ सूत्रे ज्ञेया । अत्र **कुतः** इत्यव्ययस्य स्थाने प्रस्तुतसूत्रेण **कहन्तिहु** इत्यादेशो जातः ।

१०८८— यदि भग्नाः परकीयाः ततः सखि ! मम प्रियेण ।
अथ भग्नाः अस्माकं सम्बन्धिनस्तदा तेन मारितेन ॥१॥

एतेषां पदानामर्थः, शब्दसाधना च १०५० सूत्रे समवलोकनीया । अत्र **ततः** इत्यव्ययस्य तथा **तदा** इत्यव्ययस्य च स्थाने प्रस्तुतेन [१०८८] सूत्रेण तो इत्यादेशे **तो** इति भवति ।

१०८९—एवम एम्व । एवम् इत्यस्य शब्दस्य स्थाने एम्व इत्यादेशो भवति । यथा—

प्रियसंगमे कुतः निद्रा ?, प्रियस्य परोक्षस्य कथम् ? ।
मया द्वेऽपि विनाशिते, निद्रा नैवं न तथा ॥१॥

भावार्थः—काचिन्नायिका नायकं प्रति प्रेमातिरेकं प्रकटयति । **प्रियसंगमे**, प्रियस्य-कान्तस्य संगमः-समागमः, तस्मिन् संजाते **कुतो निद्रा** ? संयोगजन्यहर्षहेतोः निद्रा नाऽऽयातीत्यर्थः । **प्रियस्य परोक्षस्य**-प्रिये परोक्षे सति **कथं** निद्रा ? अत्र सप्तम्यर्थे षष्ठी,अक्ष्णोः परं परोक्षम्,तस्मिन् परोक्षे नयनाऽगोचरे सति प्रिये कथं निद्रा समायाति? नाऽऽयातीति यावत् । **मया द्वेऽपि विनाशिते** संयोगवियोग-कालयोः निद्राद्वयमपि सम्पूर्णतां नीतम् । संयोगवियोगावस्थाद्वयेऽपि मम निद्रा विनष्टा । अयं भावः—**एवं**-पतिसमागमे सति **न**-निद्रा न प्राप्यते,**तथा**-पतिवियोगेऽपि **न**-निद्रा नैव लभ्यते इति भावः ।

पियसंगमे । पियसंगम+ङि । इत्यत्र १०६९ सू० रेफस्य लोपे, बाहुल्येन १७७ सू० यकारस्य लोपाऽभावे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **पियसंगमि** इति भवति । **कुतः** । अव्ययपदमिदम् । १०८७ सू० कुतः इत्यस्य कउ इत्यादेशे **कउ** इति भवति । **निद्रा** । निद्रा+सि । इत्यत्र १०६९ सू० रेफलोपे, ३६० सू० दकारद्वित्वे, ११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये,११०२ सूत्रेण ङी-(ई)-प्रत्यये,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **निद्दडी** इति भवति । **प्रियस्य** । प्रिय+ङस् । इत्यत्र १०६९ सू० रेफलोपे, १७७ सू० यकारस्य लोपे,१००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे,१०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **पिअहो** इति भवति । **परोक्षस्य** । परोक्ष+ङस् । इत्यत्र २७४ सू० क्षस्य स्थाने खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, बाहुल्येन ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वाऽभावे **पिअहो**-वदेव **परोक्खहो** इति भवति । **कथम्** । अव्ययपदमिदम् । अपभ्रंशे १०९३ सू० कथम् इत्यस्य शब्दस्य स्थाने केम्व इत्यादेशे **केम्व** इति भवति । **मया** मइँ,प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । **द्वे**=बिण्णि,इत्यस्य प्रक्रिया ६०९ सूत्रे ज्ञेया । अत्र बाहुल्येन २३७ सू० वकारस्य बकारो जातः । **अपि**=वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **विनाशिते** । विनाशिता+औ । ३७० सू० नकारस्य द्वित्वे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, ६१९ सू० द्विवचनस्य स्थाने बहुवचने, १००१ सू० अकारस्य स्थाने आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **विन्नासिआ** इति भवति । **निद्रा** । निद्रा+सि । १०६९ सू० रेफलोपे, ३६० सू० दकारद्वित्वे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **निद्द** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **एवम्** । अव्ययपदमिदम् । १०८९ सू० एवम् इत्यस्य स्थाने एम्व इत्यादेशे **एम्व** इति भवति । **तथा** । अव्ययपदमिदम् । अपभ्रंशे तथाऽर्थे १०९३ सूत्रेण **तेम्व** इतिशब्दः प्रयुज्यते । **एवम्**=एम्व इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **परमः परः** । परम् इत्यस्य शब्दस्य स्थाने पर इत्यादेशो भवति । यथा—**गुणैः न संपत् कीर्तिः परम्**=गुणहिं न संपइ कित्ति पर, एतेषां पदानां प्रक्रिया १००६ सूत्रे ज्ञेया । अन्तरं त्विदम्—**गुणैः** । गुण+भिस् । १११८ सू० भाषाव्यत्यये जाते सति, ४९६ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे **गुणहिं** इति भवति । **परम्**=पर, इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **समम्ः समाणुः** । समम् इत्यस्य शब्दस्य स्थाने **समाणु** इत्यादेशो भवति । यथा—

कान्तो यत् सिंहस्योपमीयते तन्मम खण्डितो मानः ।
सिंहः नीरक्षकान् गजान् हन्ति प्रियः पदरक्षैः समम् ॥२॥

भावार्थः—**यन्मे कान्तः सिंहस्य उपमीयते**—सिंहेनोपमीयते, **तत्**-तदा, **मम**-मदीयः, **मानः**-अभिमानः, **खण्डितः**-विनाशितः, यतः **सिंहः नीरक्षकान्**, निर्गताः रक्षकेभ्यः पुरुषेभ्यः,नीरक्षकाः, तान्—रक्ष-

करहिताम् **गजान् हन्ति**—मारयति, किन्तु मम **कान्तः** । **पदरक्षैः**—पदाति-रक्षकैः **समम्**-सह, पदाति-रक्षकेषु विद्यमानेष्वपि गजान् रणे हन्ति, अतः मम कान्तः सिंहादधिकः पराक्रमी, इति व्यङ्ग्यार्थः ।

कान्तः । कान्त+सि । इत्यत्र ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **कन्तु** इति भवति । **यत्** । यत्+सि । इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जु** इति भवति । **सिंहस्य** । सिंह+ङस् । इत्यत्र २९ सू० अनुस्वारस्य लोपे, ९२ सू० इकारस्य ईकारे, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **सीहहों** इति भवति । **उपमीयते** । उपपूर्वकः माधातुः उपमाने । उपमा+क्य+ते । २३१ सू० पकारस्य वकारे, ६४९ सू० क्यस्य स्थाने ईअ इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००० सू० ईकारस्य इकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **उवमिअइ** इति भवति । **त्वद्**—त्वं इत्यस्य प्रक्रिया १०८५ सूत्रस्य प्रथम-श्लोके ज्ञेया । **मम** । अस्मद्+ङस्=महु, इत्यस्य प्रक्रिया १०५० सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **खण्डितः** । खण्डित+सि । १७७ सू० तकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **खण्डिउ** इति भवति । **मानः**=माणु, प्रक्रिया १०६७ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । **सिंहः** । सिंह+सि । पूर्ववदेव सीह+सि इति जाते, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, सेर्लोपे **सीहु** इति भवति । **नीरक्षकान्** । नीरक्षक+शस् । १००० सू० ईकारस्य इकारे, २७४ सू० क्षस्य स्थाने खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-खकारस्य स्थाने ककारे, १७७ सू० ककारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १०१५ सू० शसो लोपे **निरक्खय** इति भवति । **गजान्** । गज+शस् । १७७ सू० जकारस्य लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, शसो लोपे **गय** इति भवति । **हन्ति** । हन [हन्] हिंसायाम् । हन्+तिव् । ९१० सू० अकारागमे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **हणइ** इति भवति । **भिः**=पिउ, प्रक्रिया १०८५ सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया । **पदरक्षैः** । पदरक्ष+भिस् । इत्यत्र १७७ सू० दकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-खकारस्य ककारे, बाहुल्येन १०१६ सू० भिसो लोपे **पयरक्ख** इति भवति । **समम्** । अव्ययपदमिदम् । प्रस्तुतसूत्रेण समम् इत्यस्य समाणु इत्यादेशे **समाणु** इति भवति । **समम्**=**समाणु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **ध्रुवमो ध्रुवुः** । ध्रुवम् इत्यस्य शब्दस्य स्थाने ध्रुवु इत्यादेशो भवति । **यथा**—

चञ्चलं जीवितं, ध्रुवं मरणं, प्रिय ! रुष्यते किम् ? ।
भविष्यन्ति दिवसाः रोषणस्य दिव्यानि वर्षशतानि ॥३॥

भावार्थः—**प्रिय** !-स्वामिन् !, **जीवितम्**-जीवनं **चञ्चलम्**-क्षणभङ्गुरम्, विनाशशीलमिति यावत् । **मरणम्**—मृत्युश्च **ध्रुवम्**—निश्चितम्, अतो भवता **किम्**-कथं **रुष्यते** ?-रोषः क्रियते । यतः **रोषणस्य**—रोषयुक्तस्य नरस्य **दिवसाः**—दिनानि **दिव्यानि**—देवस्य इमानि दिव्यानि, **वर्षशतानि** वर्षाणां शतानि **भविष्यन्ति** । दुःखावस्थायाः कानिचिद् दिनान्यपि शतवर्षतुल्यानि प्रतीयन्त इति भावः ।

चञ्चलम् । चञ्चल+सि । इत्यत्र १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सेर्लोपे **चञ्चलु** इति भवति । **जीवितम्** । जीवित+सि । १७७ सू० तकारलोपे, अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **जीविउ** इति भवति । **ध्रुवम्** । अव्ययपदमिदम् । प्रस्तुतसूत्रेण ध्रुवम् इत्यस्य ध्रुवु इत्यादेशे **ध्रुवु** इति भवति । **मरणम्** । मरण+सि । इत्यत्र १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **मरणु** इति भवति । **प्रिय** !। प्रिय+सि । १०६९ सू० रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, सेर्लोपे **पिअ** ! इति भवति । **रुष्यते** । रुष [रुष्] रोषे । रुष+क्य+ते । इत्यत्र ९०७ सू० उकारस्य ऊकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ६४९ सू० क्यस्य स्थाने

इज्ज इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० ते इत्यस्य इज्जादेशे **लसिज्जइ** इति भवति । **किम्** । अव्ययपदमिदम् । १०३८ सू० किमः स्थाने काइं इत्यादेशे **काइं** इति भवति । **भविष्यन्ति** । भूधातुः सत्तायाम् । भू+स्य+अन्ति । ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, १०५९ सू० स्यस्य सकारे, १०५३ सू० अन्तेः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२सू० उच्चारणस्य लाघवे **होसहिं** इति भवति । **दिवसाः** । दिवस+जस् । इत्यत्र १७७ सू० वकारस्य लोपे, २६३ सू० सकारस्य स्थाने हकारे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **दिअहा** इति भवति । **रोषणस्य** । रुष्यतीति रोषणस्तस्य । रुष्-धातुः रोषे । रुष्+ल्युट (अन) । २०७ सू० उकारस्य ऊकारे, ९५० सू० अकारागमे, २६० सू० षकारस्य सकारे रूस+अन इति जाते, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ङस्प्रत्यये, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१६ सू० ङसो लोपे **रूसणा** इति भवति । **दिव्यानि** । दिव्य+जस् । इत्यत्र ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सूत्रेण वकारस्य द्वित्वे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे **दिव्वइं** इति भवति । **वर्षशतानि** । वर्षशत+जस् । इत्यत्र ३७६ सू० रेफात्पूर्वं इकारागमे, २६० सू० षकारस्य शकारस्य च सकारे १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकार-श्रुतौ, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे **वरिस-सयाइं** इति भवति । **ध्रुवम्**=**ध्रुवु** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **मो मं** । मा इत्यस्य शब्दस्य स्थाने मं इत्यादेशो भवति । यथा—**मा धन्ये! कुरु विषादम्**=मं धणि ! करहि विसाउ, प्रक्रिया १०५६ सूत्रे ज्ञेया । अत्र मा इत्यव्ययस्य स्थाने प्रस्तुतसूत्रेण मं इत्यादेशो जातः । **प्रायोग्रहणात्** । प्रस्तुतसूत्रे **प्रायः** इत्यस्य पदस्य ग्रहणात् कुत्रचित् मा इत्यस्य मं इत्यादेशो न भवति । यथा—

माने प्रणष्टे यदि न तनु तदा देशं त्यज !
मा दुर्जन-कर-पल्लवैः दर्श्यमानः भ्राम्य ॥४॥

भावार्थः—**माने**-स्वाऽभिमाने **प्रणष्टे** सति **यदि तनु**-शरीरं **न** त्यक्तुं शक्यं तदा **देशं** त्ववश्यमेव **त्यज**—परिहर, त्यक्तव्यो देश इति यावत् । यतः **दुर्जनकर-पल्लवैः**, कराश्च ते पल्लवाः, करपल्लवाः दुर्जनानां करपल्लवाः, तैः दुर्जनकरपल्लवैः **दर्श्यमानः**—भो लोकाः! असौ स एव याति, इति प्रकारेण करैः दर्श्यमानः **मा भ्राम्य**—भ्रमणं मा कुरु । संभावितस्य चाऽकीर्तिः, मरणादतिरिच्यते, इति हार्दम् ।

माने । मान+ङि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **माणि** इति भवति । **प्रणष्टे** । प्रणष्ट+ङि । १०६९ सू रेफस्य लोपे, ३०५ सू० ष्टस्य स्थाने ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे, बाहुल्येन १० सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ **पणट्ठइ** इति भवति । **यदि**—जइ, प्रक्रिया १०५५ सूत्रे ज्ञेया । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृत-सममेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **तनु** । तनु+सि । इत्यत्र २२८ सू० नकारस्य स्थाने णकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **तणु** इति भवति । **तदा** । अव्ययपदमिदम् । १०८८ सू० तदा इत्यस्य तो इत्यादेशे **तो** इति भवति । **देशम्** । देश+अम् । २६० सू० शकारस्य स्थाने सकारे, ११०० सू० डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **देसडा** इति भवति । **त्यज** । त्यज [त्यज्] त्यागे । त्यज्+हि । ७५७ सूत्रे '**त्यजतेरपि चयइ**" इति पाठात् त्यज्धातोः स्थाने चय इत्यादेशे, १७७ सू० यकारलोपे, १००० सू० अकारस्य इकारे, बाहुल्येन १० सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ, ६६६ सू० हि इत्यस्य ज्ज इत्यादेशे **चइज्ज** इति भवति । **मा** । अव्ययपदमिदम् । प्रस्तुतसूत्रे प्रायोग्रहणात् मा-शब्दस्य स्थाने मं इत्यादेशाऽभावे, संस्कृतवदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **दुर्जन-कर-पल्लवैः** । दुर्जनकरपल्लव+भिस् । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० जकारस्य द्वित्वे, २२८ सू० नका-

रस्य स्थाने णकारे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, ५०४ सू० अकारस्य स्थाने एकारे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **भुजअग-कर-पल्लवेहिं** इति भवति। **दृश्यमानः**। दृशिर [दृश्] दर्शने। दृश्+णिग्+क्य+आनश्। ७०३ सू० ण्यन्तस्य दृशः स्थाने दंस इत्यादेशे, ६४९ सू० क्यस्य स्थाने इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६७० सू० आनशः स्थाने न्त इत्यादेशे, सिप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **दंसिज्जन्तु** इति भवति। **भ्राम्य**। भ्रमु (भ्रम्) धातुः भ्रमणे। भ्रम्+हि। १०६९ सू० रेफस्य लोपे, ९१० सू० अकारस्याऽऽगमे, ६६६ सू० हि इत्यस्य स्थाने इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **भमिज्ज** इति भवति। प्रायोग्रहणाद् मा इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता।

लवणं विलीयते पानीयेन अरे खलमेघ! मा गर्ज।
वालितं गलति तत्कुटीरकं गौरी तिम्यति अद्य ॥५॥

भावार्थः—गर्जन्तं मेघं प्रति कश्चित् पुरुषः कथयति-अरे-अयि खलमेघ!-दुष्टमेघ! **मा गर्ज** गर्जनां मा कुरु। यतः **वालितं**—वह्नि..। **बद्धं** कुटीरकम्-सदनं **पानीयेन**-जलेन **गलति**-विनष्टो भवति, तथा **गौरी**-नायिका **अद्य तिम्यति** विषीदति, गर्जनेन व...नातिरेको जायते, अतएव नायिका **खेद**-खिन्ना भवति, तथा तस्याः **लवणं**—लावण्यं सौन्दर्यमपि विलीयते—क्षयते।

लवणम्। लवण+सि। १७१ सू० परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह आदिस्वरस्य स्थाने ओकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **लोणु** इति भवति। **विलीयते**। विपूर्वकः लीङ्(ली)धातुः विलये—क्षरणे। विली+क्य+ते। इत्यत्र ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **विलिज्जइ** इति भवति। **पानीयेन**। पानीय+टा। १०१ सू० ईकारस्य इकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १७७ सू० यकारलोपे, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे १००४ सू० अकारस्य एकारे **पाणिएण** इति भवति। **अरे**। अव्ययपदमिदम्। १००० सू० एकारस्य इकारे **अरि** इति भवति। **खलमेघ!**। खलमेघ+सि। १८७ सू० घकारस्य हकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **खलमेह!** इति भवति। **मा**। अव्ययपदमिदम्। १००० सू० आकारस्य अकारे म इति भवति। प्रस्तुतसूत्रे प्रायोऽधिकारात् मा इत्यस्य स्थाने मं इत्यादेशो न जातः। **गर्ज**। गर्ज्-धातुः गर्जने। गर्ज्+हि। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० जकारस्य द्वित्वे, ९१० सू० अकारागमे, १०५८ सू० हि इत्यस्य स्थाने उ इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **गज्जु** इति भवति। **वालितम्**। वालित+सि। १७७ सू० तकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **वालिउ** इति भवति। **गलति**। गल् गलने। गल्+तिव्। ९१० सू० अकारागमे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **गलइ** इति भवति। **तत्**। तद् सि। बाहुल्येन ५७५ सू० तकारस्य स्थाने सकारे, ११ सू० दकारस्य लोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सु** इति भवति। **कुटीरकम्**। कुटीरक+सि—झुम्पडा, प्रक्रिया १०८७ सूत्रे ज्ञेया। तत्र **कुटीर-कानि** वर्तते अत्र **कुटीरकम्**, अतः तत्र जसो लोपो जातः, अत्र तु सिप्रत्ययस्य लोपो ज्ञातव्यः। **गौरी**। गौरी+सि। १५९ सू० औकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **गोरी** इति भवति। **तिम्यति**। तिम् आर्द्रीभावे। तिम्+तिव्। ९१० सू० अकारागमे, ९०१ सू० मकारस्य द्वित्वे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **तिम्मइ** इति भवति। **अद्य**। अव्ययपदमिदम्। २९५ सू० द्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारद्वित्वे, १००० सू० अकारस्य स्थाने उकारे **अज्जु** इति भवति। प्रयोग्रहणात् **मा—म** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता। **मनाको मनाउं**। प्रस्तुतसूत्रेण मनाक् इत्यस्य शब्दस्य **मनाउं** इत्यादेशो भवति। **यथा—**

विभवे प्रणष्टे वक्रः, ऋद्धिभिः जनसामान्यः ।
किमपि मनाक् मम प्रियस्य शशी अनुहरति नाऽन्यः ॥६॥

भावार्थः—काचिन्नायिका विगतविभवस्य निज-प्रिय-नायकस्य चन्द्रमसा सह सादृश्यं प्रतिपादयति । **विभवे**—सम्पत्तौ **प्रणष्टे**—विगते मम प्रिय-कान्तो **वक्रो** भवति—वक्रिमो जायते । यदा मानवः समृद्धो भवति, तदाऽसौ वक्षःस्थलमुन्नम्य प्रचलति, परं यदाऽसौ समृद्धिहीनो जायते तदा स नैव तथा गच्छति, नतकण्ठो यातीति । एवमेव मत्कान्तः धनहीनतया **वक्रः**—नतकण्ठः प्रचलति । विभवे प्रणष्टे सत्येवाऽसौ नतकण्ठो न गच्छति, किन्तु **ऋद्धि**सम्पन्नोऽप्यसौ **जनसामान्यो** भवति, सम्पन्नदशायामपि सामान्यजन इव मानं परित्यक्त्वा नतकण्ठः प्रचलति, वैभवशालि-दशायामपि असावभिमानं न करोति । विनम्रीभूय जीवन-यापनं करोति । एवम्भूतस्य मम वल्लभस्य यदि **किमपि मनाक्**—स्वल्पमपि **अनुहरति**—अनुकरणं करोति तदा स **शशी**—चन्द्र एव वर्तते नाऽन्यः । अयं भावः—यथा चन्द्रः विभवे-किरणसमूहे प्रणष्टे सति वक्रतामनुभवते, कलानां सम्पूर्णतायान्तु सरलो जायते । एवमेव मम परयुर्दशा विद्यते ।

विभवे । विभव+ङि । इत्यत्र १८७ सू० भकारस्य हकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **विहवि** इति भवति । **प्रणष्टे** । प्रणष्ट+ङि=पणट्ठइ, इत्यस्य पदस्य प्रक्रियाऽस्यैव सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया । **वक्रः** । वक्र+सि । इत्यत्र २६सू० आदिस्वरस्याऽनुस्वाराऽऽगमे, ३०सू० अनुस्वारस्य वर्गान्त्ये, १०६९ सू० रेफस्य लोपे, ११०१ सू० स्वार्थे डडअ-(अडअ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००० सू० द्वितीयस्य अन्त्यस्य च अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **वङ्कुडउ** इति भवति । **ऋद्धिभिः** । ऋद्धि+भिस् । १४० सू० ऋकारस्य रि इत्यादेशे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **रिद्धिहिँ** इति भवति । **जन-सामान्यः** । जन-सामान्य+सि । २२८ सू० नकारस्य स्थाने णकारे, ३४९ सू० यकारस्य लोपे, ३६० सू० नकार-द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जणसामन्नु** इति भवति । **किम्** । किम+सि=किं, प्रक्रिया ५६९ सूत्रे ज्ञेया । **अपि**=पि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **मनाक्** । अव्ययपदमिदम् । प्रस्तुतसूत्रेण मनाक् इत्यस्य शब्दस्य मणाउं इत्यादेशे **मणाउं** इति भवति । **मम**=महु, प्रक्रिया १०५० सूत्रस्य प्रथम-श्लोके ज्ञेया । **प्रियस्य** । प्रिय+ङस् । १०६९ सू० रेफस्य लोपे, १७७ सू० यकारस्य लोपे, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे **पिअहो** इति भवति । **शशी** । शशिन्+सि । २६० सू० उभयत्राऽपि शकारस्य सकारे, ११ सू० नकारलोपे, १०१५ सू० सेर्लोपे **ससि** इति भवति । **अनुहरति** । अनुपूर्वकः हृञ्-(हृ -धातुः अनुहरणे—अनुकरणे । अनुहृ+तिप् । २२८ नकारस्य णकारे, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६२८ सू० तिप इचादेशे **अणुहरइ** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदम् । संस्कृततुल्यमेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **अन्यः**=अन्नु, प्रक्रिया १०७२ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । **मनाक्**=मणाउं इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०८० :—किलस्य किरः । **किल** इत्यव्ययस्य स्थाने **किर** इत्यादेशो भवति । यथा—

किर खाअइ, न पिअइ, न विद्दवइ, धम्मि न वेच्चइ रूअडउ ।
इह किवणु न जाणइ जह जमहो खणेण पहुच्चइ दूअडउ ॥१॥

भावार्थः—**इह** जगति **कृपणः** प्रायः न किमपि खादति, किल-निश्चयः, नाऽत्र सन्देह इति यावत् । न किञ्चित् दुग्धादिकं पौष्टिकं पेय-पदार्थं **पिबति**, न किञ्चिद् **धर्म**-परमार्थे **रूप्यम्**-रूप्यकं **व्ययति** व्ययं करोति, एवं न किमपि **विद्रवति** कुत्राऽपि दानादिकं ददाति, तथाऽसौ **कृपण** एतदपि न **जानाति**,

यद् यथा यमस्य दूतः क्षणेन प्रभवति-यमराजस्य सन्देशवाहकः क्षणमात्रेणैव जीवनलीलायाः समाप्तिं करोति। कृपणस्यैतादृशी शोचनीया दशा भवतीति भावः।

किल। अव्ययपदमिदम्। प्रस्तुतसूत्रेण किल इत्यव्ययस्य किर इत्यादेशे **किर** इति भवति। **खादति।** खादृ(खाद्)भोजने। खाद्+तिव्। ८९९ सू० दकारस्य लोपे,६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **खाइ** इति भवति। **न।** अव्ययपदमिदम्। संस्कृतवदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। **पिबति।** पाधातुः पाने। संस्कृत-नियमेन पिब+तिव् इति जाते। १७७ सूत्रेण बकारस्य लोपे,६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **पिअइ** इति भवति। **विद्रवति।** विपूर्वकः द्रुधातुः दाने। विद्रव्+तिव्। १०६९ सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० दकारद्वित्वे, ९१० सू० अकारागमे, पूर्ववदेव **विद्दवइ** इति भवति। **धर्मे।** धर्म+ङि। १०६९ सू० रेफस्य लोपे,३६० सू० मकारस्य द्वित्वे, १००५ सू० ङि-प्रत्ययेन सह अकारस्य इकारे **धम्मि** इति भवति। **व्ययति।** विपूर्वकः अय्धातुः व्ययकरणे। व्यय्+तिव्। अपभ्रंशे व्यय् इत्यर्थे १०६६ सूत्रेण वेच्च इति-पदं प्रयुज्यते, ६२८ सू० तिव इचादेशे **वेच्चइ** इति भवति। **रूप्यम्।** रूप्य+सि। इत्यत्र ३४८ सू० यकारलोपे, १७७ सू० पकारलोपे,११०१ सू० स्वार्थे डडअ-(अडअ)-प्रत्यये,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, बाहुल्येन १० सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ, १००२ सू० अन्त्याकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **रूअडउ** इति भवति। **इह।** अव्ययपदमिदम्। संस्कृत-तुल्यमेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। **कृपणः।** कृपण+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे,२३१ सू० पकारस्य वकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **किवणु** इति भवति। **जानाति।** ज्ञा अवबोधने। ज्ञा+तिव्। ६७८ सू० ज्ञाधातोः स्थाने जाण इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **जाणइ** इति भवति। **यथा।** अव्ययपदमिदम्। २४५ सू० यकारस्य स्थाने जकारे, १८७ सू० थकारस्य हकारे,१००० सू० आकारस्य स्थाने अकारे **जह** इति भवति। **यमस्य।** यम+ङस्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे **जमहो** इति भवति। **क्षणेन।** क्षण+टा। २७४ सू० क्षस्य स्थाने खकारे, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य स्थाने एकारे, १०८१ सू० एकारस्य उच्चारणलाघवे **खणेण** इति भवति। **प्रभवति।** प्रपूर्वकः भूधातुः प्रभुत्वे। प्रभू+तिव्। १०६९ सू० रेफलोपे, १०६१ सू० भूधातोः स्थाने हुच्च इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **पहुच्चइ** इति भवति। **दूतः।** दूत+सि। १७७ सू० तकारलोपे, ११०१ सू० स्वार्थे डडअ-(अडअ)-प्रत्यये जाते, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, बाहुल्येन १० सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **दूअडउ** इति भवति। **किल—किर** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्ति-र्जाता। **अथवोऽहवइ।** अथवा इत्यस्य पदस्य स्थाने अहवइ इत्यादेशो भवति। यथा—**अथवा न सुवंशा-नामेष दोषः।** अयं भावः-सुवंशानां शोभनाः वंशाः येषां, तेषां पुरुषाणामेषो दोषो नास्ति। **अथवा।** अव्ययपदमिदम्। प्रस्तुतसूत्रेण अथवा इत्यस्य स्थाने **अहवइ** इति प्रयुज्यते। **न।** अव्ययपदमिदं संस्कृ-तवदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। **सुवंशानाम्।** सुवंश+आम्। २६० सू० शकारस्य सकारे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे **सुवंसहं** इति भवति। **एषः।** पुल्लिङ्गोऽयं शब्दः, किन्तु दोष-शब्दस्य स्थाने यः खोडि-शब्दः प्रयुज्यते,सः स्त्रीलिङ्गकोऽस्ति, अतोऽयमपि स्त्रीलिङ्गको जातः। "**अत्र-विशेषण-विशेष्ययोः समान-लिङ्गकत्वं, समानविभक्तिकत्वं,समानवचनत्वं च भवति**" इति न्यायः प्रवर्तते। तेन—एतद्+सि। इत्यत्र १०३३ सू० स्त्रीलिङ्गे एतदः स्थाने एह इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे **एह** इति भवति। **दोषः।** दोष+सि। अपभ्रंशे दोषाऽर्थे १०९३ सू० खोडि-शब्दः प्रयुज्यते, १०१५ सू० सेर्लोपे **खोडि** इति भवति। **अ-थवा—अहवइ** इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **प्रायोऽधिकारात्।** प्रस्तुतसूत्रे प्रायः इत्यस्य पदस्या-

अधिकारात् कदाचिद् अथवा-पदस्य स्थाने अहवइ इत्यादेशोऽपि न भवति । यथा—

यायते तस्मिन् देशे लभ्यते प्रियस्य प्रमाणम् ।
यदि आयाति तदाऽऽनीयते अथवा तदेव निर्वाणम् ॥२॥

भावार्थः—प्रोषितभर्तृका काचिन् नायिका दुःखभरेण विह्वला सती इदं वि-चिन्तयति-यत् त-स्मिन् देशे मया यायते-गम्यते,तत्र—तस्मिन् देशे प्रियस्य प्रमाणम्-शुभाऽशुभाऽऽदिसूचकं किञ्चिद् वृत्तान्तं चिह्नं वा लभ्यते । यद्यसौ प्रार्थनया आयाति-गृहमागच्छति, तदाऽऽनीयते-आनेतव्यः, अथवा-यद्यसौ नाऽऽगच्छेत्तदा तु,तदेव-तत्रैव निर्वाणम्-मृत्युरालिङ्गनीयो मयेति भावः ।

यायते । या-धातुः गतौ । या+क्य+ते । २४५ सू० यकारस्य जकारे,६४९ सू० क्यस्य इज्ज इ-त्यादेशे,बाहुल्येन १० सू० स्वरलोपाऽभावे,६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे जाइज्जइ इति भवति । तस्मिन् । तद्+ङि । ११ सू० दकारस्य लोपे,१०२८ सू० ङिप्रत्ययस्य हिं इत्यादेशे तहिं इति भवति । देशे । देश+ ङि । इत्यत्र २६० सू० शकारस्य सकारे,११०१ सू० स्वार्थे डडअ-(अडअ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादे-र्लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य स्थाने इकारे,बाहुल्येन १० सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ देसडइ इति भवति । लभ्यते । डुलभष्-(लभ्)-धातुः लाभे । लभ्+क्य+ते । संस्कृत-नियमेन लभ्यते इति जाते, ३४९ सूत्रेण यकारस्य लोपे, ३६० सू० भकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-भकारस्य बकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे लब्भइ इति भवति । प्रियस्य=पियहो, इत्यस्य शब्दस्य प्रक्रिया १०८९ सूत्रस्य षष्ठे श्लोके ज्ञेया । १०८१ सूत्रेण उच्चारणस्य लाघवे पिअहों इति जायते । प्रमाणम् । प्रमाण+सि । इत्यत्र १०६९ सू० रेफस्य लोपे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे पमाणु इति भवति । यदि=जइ,प्रक्रिया १०५५ सूत्रे ज्ञेया । आयाति । आङ्-(आ)-पूर्वकः या-धातुः आगमने । आया+तिप् । अपभ्रंशे आया इत्यर्थे १०६६ सू० आव इत्यस्य प्रयोगे,६२८ सू० तिप इचादेशे आवइ इति भवति । तदा =तो, इत्यस्य प्रक्रिया १०८८ सूत्रे ज्ञेया । आनीयते । आङ्-(आ)-पूर्वकः णीञ्-(नी)-धातुः प्रापणे । आनी+क्य+ते । २२८ सू० नकारस्य स्थाने णकारे,६४९ सू० क्यस्य ईअ इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये,१००० सू० ईकारस्य इकारे,६२८ सू० ते इत्यस्य स्थाने इचादेशे आणिअइ इति भवति । अथवा । अव्ययपदमिदम् । प्रायोग्रहणात् प्रस्तुतसूत्रस्याऽप्रवृत्तौ, १८७ सू० थकारस्य स्थाने हकारे अहवा इति भवति । तद्=तं, इत्यस्य प्रक्रिया १०८५ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । एव । अव्ययपदमिदम् । १०९१ सू० एवाऽर्थे जि इत्यस्य प्रयोगे जि इति भवति । निर्वाणम् । निर्वाण+सि । ३५० सू० रेफस्य लोपे,बाहुल्येन ३६० सू० णकारस्य द्वित्वाऽभावे, १००२ सूत्रेण अकारस्य स्थाने उ-कारे, १०१५ सू० सेर्लोपे निवाणु इति भवति । प्रायोग्रहणाद् अथवा=अहवा, इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्र-वृत्तिर्न जाता । दिवो दिवे । दिवा इत्यस्य पदस्य स्थाने दिवे इत्यादेशो भवति । यथा—दिवा दिवा गङ्गा-स्नानम्=दिवि दिवि गङ्गाण्हाणु, प्रक्रिया १०७० सूत्रे ज्ञेया । अत्र प्रस्तुतसूत्रेण दिवा इत्यस्य पदस्य स्थाने दिवे इत्यादेशो जातः । सहस्य सहुं । सह इत्यस्य पदस्य स्थाने सहुं इत्यादेशो भवति । यथा—

यतः प्रवसता सह न गता मृता वियोगेन तस्य ।
लज्ज्यते सन्देशान् ददतीभिः सुभगजनस्य ॥३॥

भावार्थः—कस्याश्चित् प्रोषितभर्तृकायाः (प्रोषितः-प्रवासं गतो भर्ता यस्यास्तस्याः)नायिकायाः स्वसखीं प्रत्युक्तिः । हे सखि ! सुभगजनस्य,सुभगश्चासौ जनः सुभगजनः, तस्य सुभगजनस्य सौभाग्यवतः मम कान्तस्य सन्देशान्-वृत्तान् ददतीभिः-प्रेषयन्तीभिरस्माभिः लज्ज्यते-त्रप्यते, यतः प्रवसता-प्रवासं-दे-

शान्तरं गच्छता कान्तेन **सह**-नाऽहं **गता**-गतवती,तस्य कान्तस्य **वियोगेन** च नाऽहं **मृता**-पञ्चत्वमुपगता। अतः कथन्नाम सन्देशरस्माभिः दातुमुच्चिनः? नोचित इति भावः।

यतः। अव्ययपदमिदम्। इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य जकारे,१७७ सू० तकारलोपे,३७ सू० विसर्गस्य डो(ओ)इत्यादेशे,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,बाहुल्येन १० सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ,१००० सू० ओकारस्य उकारे **जउ** इति भवति। **प्रवसता**। प्रपूर्वकः वस्-धातुः प्रवासे। प्रवस्+शतृ। १०६९ सू० रेफलोपे, ९१० सू० अकारस्याऽऽगमे,६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, टाप्रत्यये,१०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे,स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य स्थाने एकारे **पवसन्तें** इति भवति। **सह**। अव्ययपदमिदम्। प्रस्तुतसूत्रेण सह इत्यस्य सहुं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **सहुँ** इति भवति। **न**। अव्ययपदमिदम्। संस्कृतवदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। **गता**। गता+सि। १७७ सू० तकारस्य लोपे,१८० सू० यकारस्य श्रुतौ, १००१ सू० आकारस्य स्थाने अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **गय** इति भवति। **मृता**। मृता+सि। १३१ सू० ऋकारस्य स्थाने उकारे,१७७ सू० तकारस्य लोपे,१००१ सू० आकारस्य अकारे,सेर्लोपे **मुअ** इति भवति। **वियोगेन**। वियोग+टा। १७७ सू० यकारस्य गकारस्य च लोपे,१०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य स्थाने एकारे **विओएं** इति भवति। **तस्य**। तद्+ङस्। ११ सू० दकारलोपे, १००९ सू० ङसः स्थाने स्सु इत्यादेशे **तस्सु** इति भवति। **लज्ज्यते**। ओलस्जै (लस्ज्) लज्जाकरणे। लस्ज्+क्य+ते। इत्यत्र ३४९ सू० सकारलोपे,३६० सू० जकारद्वित्वे, ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **लज्जिज्जइ** इति भवति। **सन्देशान्**। सन्देश+शस्। २६० सू० शकारस्य सकारे, ११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये,१००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० शसो लोपे **सन्देसडा** इति भवति। **ददतीभिः**। डुदाञ्-(दा)-धातुः दाने। दा+शतृ। १००० सू० आकारस्य एकारे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, स्त्रीत्वविवक्षायां ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००० सू० ईकारस्य एकारे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे, भिस्-प्रत्यये, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **देन्तेहिँ** ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **दिन्तेहिँ** इत्यपि भवति। **सुभगजनस्य**। सुभगजन+ङस्। १८७ सू० भकारस्य हकारे,१७७ सू० गकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ,११ सूत्रवृत्तिमनुसृत्य जकारस्याऽऽदिभूतत्वात् १७७ सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००९ सू० ङसः स्सु इत्यादेशे **सुहय-जणस्सु** इति भवति। **सह**—**सहुँ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **नहेर्नाहिं**। नहि इत्यस्य पदस्य स्थाने **नाहिं** इत्यादेशो भवति। यथा—

इतः मेघाः पिबन्ति जलमितः वडवानलः आवर्तते।
प्रेक्षस्व गभीरिमाणं सागरस्यैकाऽपि कणिका नह्यपभ्रश्यते॥४॥

भावार्थः—सागरस्य गाम्भीर्य्यं प्रतिपाद्यते। **इतः**-अस्मात् पार्श्वात् **मेघाः**-जलदाः जलं **पिबन्ति**, **इतः**-अस्मात् पार्श्वात् **वडवानलः**-सामुद्रो वन्हिः **आवर्तते**-आवर्तनं करोति,सागरस्य जलं शोषयतीति यावत्। तथापि हे मित्र! **सागरस्य गभीरिमाणम्**-गाम्भीर्य्यं **प्रेक्षस्व**-पश्य यद् **एकाऽपि कणिका**-बिन्दुमात्रमपि नहि **अपभ्रश्यते**-हीनतां, न्यूनतां न यातीति भावः।

इतः। अव्ययपदमिदम्। १०९१ सू० इतस् इत्यस्य स्थाने एत्तहे इत्यादेशे,१०८१ सू० हकारगतस्य एकारस्य उच्चारणस्य लाघवे **एत्तहे** इति भवति। **मेघाः**। मेघ+जस्। इत्यत्र १८७ सू० घकारस्य हकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **मेह** इति भवति। **पिबन्ति**। पा पाने। संस्कृतनियमेन पिब+अन्ति इति

जाते, १७७ सू० वकारलोपे,६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **पिअन्ति** इति भवति । **जलम्** । जल+सि । १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **जलु** इति भवति । **वडवानलः** । वडवानल+सि । १०१५ सू० सेर्लोपे **वडवानल** इति भवति । **आवर्तते** । आङ्(आ)-उपसर्ग-पूर्वकः वृतु-(वृत्)-धातुः आवर्तने । संस्कृत-नियमेन आवर्त+ते इति जाते,३०१ सू० र्तस्य टकारे,३६० सू० टकारस्य द्वित्वे,६२८ सू० ते इत्यस्य स्थाने इ इत्यादेशे **आवट्टइ** इति भवति । **प्रेक्षस्व** । प्र-पूर्वकः ईक्ष्धातुः प्रेक्षणे-दर्शने । प्रेक्ष्+हि । १०६९ सू० रेफलोपे,२७४ सू० क्षस्य स्थाने खकारे,३६० सू० खकारस्य द्वित्वे,३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे,१०५८ सू० हि इत्यस्य स्थाने उकारे,१० सू० स्वरस्य लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये **पेक्खु** इति भवति । **गभीरिमाणम्** । गभीरिमन्+अम् । १८७ सू० भकारस्य स्थाने हकारे,११ सू० नकारस्य लोपे १०१५ सू० अमो लोपे **गहीरिम** इति भवति । **सागरस्य** । सागर+ङस् । १७७ सू० गकारस्य लोपे, १८० सू० यकारस्य श्रुतौ, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे **सायरहो** इति भवति । **एका** । एक+सि । ९७० सू० ककारद्वित्वे,१००१ सू० आकारस्य स्थाने अकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **एक्क** इति भवति । **अपि=वि**, इत्यस्य प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **कणिका** । कणिका+सि । १७७ सू० ककारलोपे, १००१ सू० आकारस्य अकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **कणिअ** इति भवति । **नहि** । अव्ययपदमिदम् । प्रस्तुतसूत्रेण नहि इत्यस्य नाहिं इत्यादेशे **नाहिं** इति भवति । **अपभ्रश्यते** । अपपूर्वकः भ्रंश्धातुः अपभ्रंशे । अपभ्रंश्+ते । १०९३ सू० अपभ्रंश्-धातोः स्थाने ओहट्ट इति प्रयुज्यते, ६२८ सू० ते इत्यस्य इ इत्यादेशे **ओहट्टइ** इति भवति । **नहि=नाहिं** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०६१—पश्चातः पच्छइ । पश्चात् इत्यव्ययस्य स्थाने पच्छइ इत्यादेशो भवति । यथा—**पश्चाद् भवति विभातम्** =पच्छइ होइ विहाणु,एतेषां पदानां प्रक्रिया १०३३ सूत्रे ज्ञेया । **पश्चात्=पच्छइ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **एवमेवस्य एम्वइ** । **एवमेव** इत्यस्य पदस्य स्थाने **एम्वइ** इत्यादेशो भवति । यथा—**एवमेव सुरतं समाप्तम्** =एम्वइ सुरउ समत्तु, एतेषां पदानां प्रक्रिया १००३ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । **एवमेव=एम्वइ** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **एवस्य जिः** । एव इत्यस्य पदस्य स्थाने प्रस्तुतसूत्रेण जि इत्यादेशो भवति । यथा—

यातु मा यान्तं पल्लवत द्रक्ष्यामि कति पदानि ददाति ।
हृदये तिर्यगहमेव परं प्रियः डम्बराणि करोति ॥१॥

भावार्थः काचिन्नायिका कथयति—हे सखि ! **यातु** असौ मम प्रियः गच्छतु, **यान्तं** गच्छन्तं **मा पल्लवत**-तस्याऽवरोधाय वस्त्राञ्चलं न गृह्णीत,**द्रक्ष्यामि**—अवलोकयिष्ये **कति पदानि ददाति**—कति पदानि गच्छतीति भावः । यतस्तस्य **हृदये**-हृदयस्य **तिर्यग्**—मध्ये तु **अहमेव** स्थिताऽस्मि, अतः द्रढीयान् मे विश्वासः न यास्यति मे भर्ता, **परं**—केवलं **प्रियः डम्बराणि**—आडम्बराणि **करोति** । मम धैर्यं परीक्षते ।

यातु । या प्रापणे । या+तुव् । २४५ सू० यकारस्य जकारे,६६२ सू० तुवः स्थाने दु इत्यादेशे, १७७ सू० दकारलोपे **जाउ** इति भवति । **मा** । अव्ययपदमिदम् । १००० सू० आकारस्य अकारे **म** इति भवति । **यान्तम्** । या-धातुः गतौ । या+शतृ । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,अम्-प्रत्यये,११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **जन्तउ** इति भवति । **पल्लवत** । पल्लवम्-अञ्चलं गृह्णीतेति पल्लवत । पल्लव+त । ६३२ सू० त इत्यस्य हच् (ह) इत्यादेशे **पल्लवह** इति भवति । **द्रक्ष्यामि** । दृशिर्[दृश्]दर्शने । दृश्+मिव् । ८५२ सू० दृशः स्थाने देक्ख इत्यादेशे,१०५६ सू० मिवः स्थाने उं इत्यादेशे,बाहुल्येन १० सू०

स्वरस्य लोपाऽभावे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **केवलउँ** इति भवति। **कति**। कति+शस्। १७७ सू० तकारलोपे, १०१५ सू० शसो लोपे **कइ** इति भवति। **पदानि**। पद+जस्। १७७ सू० दकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १०१५ सू० जसो लोपे **पय** इति भवति। **ददाति**=देइ, प्रक्रिया १०७७ सूत्रस्य तृतीय-श्लोके ज्ञेया। **हृदये**। हृदय+ङि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० दकारस्य यकारस्य च लोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **हिअइ** इति भवति। **तिर्यक्**। तिर्यच्+सि। ४१४ सू० तिर्यचः स्थाने तिरिच्छि इत्यादेशे, १००१ सू० अन्त्यस्य इकारस्य स्थाने ईकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **तिरिच्छी** इति भवति। **अहम्**=हउँ, इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया १००९ सूत्रे ज्ञेया। **एव**। अव्ययपदमिदम्। प्रस्तुतसूत्रेण एव इत्यस्य पदस्य जि इत्यादेशे **जि** इति भवति। **परम्**। अव्ययपदमिदम्। १०८९ सू० परम् इत्यस्य पर इत्यादेशे **पर** इति भवति। **प्रियः**। प्रिय+सि। १०६९ सू० रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पिउ** इति भवति। **डम्बराणि**। डम्बर+जस्। १०२४ सू० जसः स्थाने इँ इत्यादेशे **डम्बरइँ** इति भवति। **करोति**=करेइ, इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया १०८५ सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया। एव—जि इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **इदानीमः एम्वहिं**। प्रस्तुतसूत्रेण इदानीमः स्थाने एम्वहिं इत्यादेशो भवति। यथा—

हरिः नर्तितः प्राङ्गणे, विस्मये पातितो लोकः।
इदानीं राधा-पयोधरयोः, यद् भाति तद् भवतु ॥२॥

भावार्थः—पातालराजेन बलिदैत्येन **हरिः**—विष्णुः, **प्राङ्गणे**—त्रिभुवनाऽङ्गणे **नर्तितः**—ताण्डवं कारितः। वामनावतार-ग्रहणात्तस्य नृत्यत्वं समवसेयम्, तत्र शारीरिक-विलक्षण-व्यापार-सत्त्वादित्यर्थः। तेन **लोकः विस्मये** आश्चर्ये **पातितः**। वामनः सन्नपि त्रिलोकमेकपदे कृतवानिति विस्मयकारणम्। **इदानीं** कामातुराऽवस्थायां **राधा-पयोधरयोः** राधा-कुचयोः **यद् भाति**—शोभते **तद् भवतु**। निजस्वामिनो वामनावतार-रूपं वीक्ष्य राधामनसि कामातिरेको जात इति भावः।

हरिः। हरि+सि। १०१५ सू० सेर्लोपे **हरि** इति भवति। **नर्तितः**। नृती[नृत्]गात्रविक्षेपे—नर्तने। नृत्+णिग्+क्त—त+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, ८९६ सू० तकारस्य च्च इत्यादेशे, ६३८ सू० णिगः स्थाने आवि इत्यादेशे, ५ सू० दीर्घसन्धौ, १७७ सू० तकारस्य लोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **नच्चाविउ** इति भवति। **प्राङ्गणे**। प्राङ्गण+ङि। १०६९ सू० रेफलोपे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **पङ्गणइ** इति भवति। **विस्मये**। विस्मय+ङि। ३४५ सू० स्मस्य म्ह इत्यादेशे, १७७ सू० यकारलोपे, पङ्गणइ-वदेव **विम्हइ** इति भवति। **पातितः**। पातित+सि। ८९० सू० प्रथमतकारस्य डकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० **पाडिउ** इति भवति। **लोकः**। लोक+सि। १७७ सू० ककारलोपे, अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **लोउ** इति भवति। **इदानीम्**। अव्ययपदमिदम्। प्रस्तुतसूत्रेण इदानीमः स्थाने एम्वहिं इत्यादेशे **एम्वहिं** इति भवति। **राधा-पयोधरयोः**। राधा-पयोधर+ओस्। १८७ सू० उभयत्राऽपि धकारस्य हकारे, ४ सू० हकारस्थाऽऽकारस्य अकारे, १७७ सू० यकारलोपे, बाहुल्येन १८० सू० यकार-श्रुत्यभावे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे **राह-पओहरहं** इति भवति। **यद्**। यद्+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारे, बाहुल्येन २४ सू० दकारस्य मकारे, २३ सू० मकाराऽनुस्वारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जं** इति भवति। **भाति**। भा धातुः दीप्तौ। भा+णिग्+तिव्। ६३८ सू० णिगः स्थाने आव इत्यादेशे, ५ सू० दीर्घसन्धौ, ६२८ सू० तिव इत्यादेशे **भावइ** इति भवति। **तत्**=तं, प्रक्रिया १०८५

सूत्रस्य प्रथम-श्लोके ज्ञेयम् । **भवतु** । भूधातुः सत्तायाम् । भू+तुव् । ७३१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, ६६२ सू० तुवः दु इत्यादेशे, १७७ सू० दकारलोपे **होउ** इति भवति । इदानीम्-एम्वहिं, इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **प्रत्युतस्य पच्चलिउ** । प्रस्तुतसूत्रेण प्रत्युत इत्यस्य पदस्य पच्चलिउ इत्यादेशो भवति । यथा—

सर्वलावण्या गौरी नवा काऽपि विषग्रन्थिः ।

भटः प्रत्युत स म्रियते यस्य न लगति कण्ठे ॥३॥

भावार्थः—इयं **गौरी**—गौर-वर्ण-वती नायिका **काऽपि** काचित् **नवा**-नवीना अद्भुतेत्यर्थः, **विषग्रन्थिः** विषस्य—हलाहलस्य ग्रन्थिर्वर्तते, **प्रत्युत**-यतो **यस्य** भटस्येयं कण्ठे न **लगति**-स्पृशति, तयाऽस्पृष्टोऽपि **स भटः**—योद्धा म्रियते । या लोक-प्रसिद्धा विषग्रन्थिर्विद्यते, सा तु कण्ठे विलग्ना सति प्राणिनं मारयति, किन्त्वियं गौरीरूपा विषग्रन्थिरेतादृशी भीष्मा वर्तते यत् कण्ठेऽलग्नैव प्राणिनं मारयतीति भावः ।

सर्वलावण्या । सर्वलावण्या+सि । १०६९ सू० रेफलोपे, १००० सू० आद्याऽकारस्य आकारे, दीर्घत्वात् ३६३ सू० वकारस्य द्वित्वाऽभावे, अत्र लवणार्थको लावण्यशब्दोऽस्त्यतः १७१ सू० परेण सस्वरव्यञ्जनेन सह आद्याकारस्य स्थाने ओकारे, ३४९ सू० यकारस्य लोपे, ३६३ सू० णकारस्य द्वित्वाभावे स्त्रीत्वविवक्षायां ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य लोपे अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **साव्वलोणी** इति भवति । **गौरी** । गौरी+सि । १५९ सू० औकारस्य स्थाने ओकारे, ११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ११०२ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **गोरडी** इति भवति । **नवा** । नवा+सि । १०९३ सू० नव इत्यस्य स्थाने नवख इत्यादेशे, स्त्रीत्वविवक्षायामाप्-प्रसंगे ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, १० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सेर्लोपे **नवखी** इति भवति । **का** । किम्+सि । ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, स्त्रीत्वविवक्षायामाप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, १००१ सू० आकारस्य स्थाने अकारे, सेर्लोपे **क** इति भवति । **अपि**—वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **विषग्रन्थिः** । विषग्रन्थि+सि । २६० सू० षकारस्य सकारे, ७९१ सू० ग्रन्थ्-धातोः गण्ठ स्थाने इत्यादेशे विसगण्ठ+इ+सि इति जाते, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सिप्रत्ययस्य लोपे **विसगण्ठि** इति भवति । **भडु** । भट+सि । इत्यत्र १९५ सू० टकारस्य स्थाने डकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **भडु** इति भवति । **प्रत्युत** । अव्ययपदमिदम् । प्रस्तुतसूत्रेण प्रत्युत इत्यस्य पच्चलिउ इत्यादेशे, १००० सू० उकारस्य ओकारे **पच्चलिओ** इति भवति । **सः** । तद्+सि—सो, प्रक्रिया १००३ सूत्रस्य प्रथम-श्लोके ज्ञेया । **म्रियते** । मृङ् प्राणत्यागे । मृ+ते । ९०५ सू० ऋकारस्य मर इत्यादेशे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इ इत्यादेशे **मरइ** इति भवति । **यस्य**—जासु, प्रक्रिया १०२९ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **न** । अव्ययपमिदं संस्कृतवदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **लगति** । लग्-धातुः लगने । लग्+तिव्—लग्गइ, इत्यस्य प्रक्रिया ९०१ सूत्रे ज्ञेया । **कण्ठे** । कण्ठ+ङि । १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **कण्ठि** इति भवति । **प्रत्युत**—पच्चलिओ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **इतस एत्तहे** । इतः इत्यस्य पदस्य स्थाने एत्तहे इत्यादेशो भवति । यथा—**इतः मेघाः पिबन्ति जलम्**—एत्तहे मेह पिअन्ति जलु, एतेषां पदानां प्रक्रिया १०९० सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया । **इतः**—एत्तहे इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्दृश्यते ।

१०९२—विषण्णस्य वुन्नः । प्रस्तुतसूत्रेण विषण्णशब्दस्य वुन्न इत्यादेशो भवति । यथा—

मयोक्तं त्वं धुरं धर गलिवृषभैः विगुप्तानि ।

त्वया विना धवल ! नारोहति भरः एवमेव विषण्णः किम् ?॥१॥

भावार्थः—युग-काष्ठविक्षेपकं वृषभं प्रति कस्यचन शाकटिकस्य उक्तिरियम्-**गलिवृषभैः**, गल-यश्च ते वृषभाः गलिवृषभाः,तैः शक्तिचोरवृषभैः **विगुप्तानि**-अवशितानि, नीचैः पातितानि शकटादीनी-त्यर्थः, हे **धवल** ! श्वेतवृषभ ! **त्वया विना** केनचिदप्यन्येन वृषभेन एष **भरः**-भारः **नारोहति**-नाऽवरोढुं शक्यः, **इति किल** निश्चयोऽस्ति । अतः **मयोक्तं यत्त्वं धुरो भर**-भारं वाहय, **एवमेव**-अन्यथैव **विषण्णः**-दुःखितः सन् किं करिष्यसि ? न किमपीति भावः ।

मया—मइँ, प्रक्रिया १०४१ सूत्रस्य तृतीय-श्लोके ज्ञेया । **उक्तम्** । उक्त+सि । प्रस्तुतसूत्रेण उ-क्त इत्यस्य वुत्त इत्यादेशे, ४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये,१७७ सू० ककारस्य लोपे १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे,१०१५ सू० सेर्लोपे **वुत्तउं** इति भवति । **त्वम्**—तुहुँ,प्रक्रिया १०३९ सूत्रे ज्ञेया । **धुराम्** । धुरा-+अम् । १००१ सू० आकारस्य स्थाने अकारे,१०१५ सू० अमो लोपे **धुर** १००० सू० अकारस्य उकारे **धुरु** इति भवति । **धर** । धृञ्-(धृ)-धरणे । धृ+हि । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, १०५४ सू० हि इत्यस्य हि इत्यादेशे **धरहि** इति भवति । **गलिवृषभैः** । गलिवृषभ+भिस् । अपभ्रंशे गलिवृषभार्थे १०९३ सू० कसर-शब्दः प्रयुज्यते, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, ५०४ सू० अकारस्य एकारे **कसरेहिं** इति भवति । **विगुप्तानि** । विगुप्त+जस् । ३४९ सू० पकारलोपे,३६० सू० तकारद्वित्वे,१००१ सू० अकारस्य आकारे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे **विगुत्ताइं** इति भवति । **त्वया**—पइँ, प्रक्रिया १०४१ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **विना** । अव्ययपदमिदम् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०९७ सू० स्वार्थे डु-(उ)-प्रत्यये,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये **विणु** इति भवति । **धवलः** । धवल+सि । १०१५ सू० सेर्लोपे **धवल** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **आरोहति** । आङ्पूर्वकः रुह्-धातुः आरोहणे । आरुह्+तिव् । ८७७ सू० आरुह् इत्यस्य स्थाने चड इत्यादेशे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **चडइ** इति भवति । **भरः** । भर+सि । १००२ सू० अकारस्य उकारे,सेर्लोपे **भरु** इति भ-वति । **एवमेव**—एम्वइ,प्रक्रिया १०९१ सूत्रे ज्ञेया । **विषण्णः** । विषण्ण+सि । प्रस्तुतसूत्रेण विषण्णशब्दस्य वुन्न इत्यादेशे,११०० सू० अप्रत्यये,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **वुन्नउ** इति भवति । किम्—काइं,प्रक्रिया १०३८ सूत्रे ज्ञेया । **विषण्णः**—वुन्नउ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **उक्तस्य वुत्तः** । उक्त इत्यस्य पदस्य वुत्त इत्यादेशो भवति । यथा—**मया उक्तम्**—मइं वुत्तउं, प्रक्रियाऽस्मिन्नेव सूत्रे समु-ल्लिखिताऽस्ति । **मया** । अस्मद्+टा । इत्यत्र १०४८ सू० टाप्रत्ययेन सह अस्मदः स्थाने **मइं** इत्यादेशे **मइं** इति भवति । **वर्त्मनो विच्च** । वर्त्मन् इत्यस्य पदस्य स्थाने विच्च इत्यादेशो भवति । यथा—**येन मनो वर्त्मनि न माति**—जें मणु विच्चि न माइ,प्रक्रिया १०२१ सूत्रे ज्ञेया । **न** इत्यत्र वैकल्पिकत्वात् २२९ सू० नकारस्य णकारो न जातः । **वर्त्मनि**—विच्चि इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०९३— **एकं कस्मिन् ह ! अपि नाऽऽयासि अन्यत् शीघ्रं यासि ।**
मया मित्र ! प्रमाणितः त्वया यादृशः खलः नहि ॥१॥

भावार्थः—मित्रं प्रति रोषपूर्णमुपालम्भवाक्यं कश्चिदाह-**ह** इति सम्बोधने, हे इत्यर्थः । **एकं**-प्रथमं तु त्वमस्माकं गृहे **कस्मिन्-कदाचिदपि नाऽऽयासि**,यदि कदाचिदायासि तदा **शीघ्रमेव यासि**-प्रस्थितो भवसि । **त्वया** आचरितमिदं व्यवहारं समीक्ष्य हे **मित्र** ! **मयाऽयं प्रमाणितः**-निश्चितः, **यादृशस्त्वं खलः**-कठोरः तादृशः खलु न कोऽपि खलो वर्तते । त्वं बहुनिष्ठुरोऽसीति भावः ।

एकम् । एक+सि । ३७० सू० ककारस्य द्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **एक्कु** इति भवति । **कस्मिन्** । किम्+ङि । इत्यत्र ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, ५५४ सू०

ङि इत्यस्य स्थाने इमा इत्यादेशे,बाहुल्येन १० सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ,१००१ सू० आकारस्य अकारे कइअ इति भवति। हु। अव्ययपदमिदम्। संस्कृत-तुल्यमेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। अवि=वि,प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया। न। अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। आयासि। आङ्-पूर्वकः याधातुः प्रापणे। आया+सि। अपभ्रंशे आया इत्यर्थे १०६६ सू० आव इति प्रयुज्यते, १०५४ सू० सिप्रत्ययस्य स्थाने हि इत्यादेशे, १००० सू० इकारस्य ईकारे आवही इति भवति। अन्यत्। अन्यद्+सि। इत्यत्र ३४९ सू० यकारस्य लोपे, ३६० सू० नकारस्य द्वित्वे,११ सू० दकारलोपे, १००२ सू० अन्त्याकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपि अन्नु इति भवति। शीघ्रम्। शीघ्र+अम्। प्रस्तुतसूत्रेण शीघ्र-पदस्य वहिल्ल इत्यादेशे, ११०० सू० स्वार्थे अ-प्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे वहिल्लउ इति भवति। यासि। या-धातुः गतौ। या+सिव्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०५४ सू० सिवः स्थाने हि इत्यादेशे जाहि इति भवति। मया=मइँ,प्रक्रिया १०४८ सूत्रे ज्ञेया। मित्र!। मित्र+सि। १०६९ सू० रेफलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, ११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे मित्तडा! इति भवति। प्रमाणितः। प्रमाणित+सि। वैकल्पिकत्वात् १०६९ सू० रेफस्याऽलोपे, १७७ सू० तकारलोपे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे प्रमाणिअउ इति भवति। त्वया=पइँ, इत्यस्य प्रक्रिया १०४१ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। यादृशः। यादृश+सि। २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०७३ सू० दृश इत्यस्य डेह (एह) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे जेहउ इति भवति। खलः। खल+सि। १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे खलु इति भवति। नहि। अव्ययपदमिदम्। १०९० सू० नहि इत्यस्य नाहिं इत्यादेशे नाहिं इति भवति। शीघ्रम्=वहिल्लउ इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। कलहस्य घङ्घलः*। कलह-शब्दस्य स्थाने घङ्घल इत्यादेशो भवति। यथा—

यथा सुपुरुषाः तथा कलहाः, यथा नद्यस्तथा वलनानि।
यथा पर्वताः तथा कोटराणि, हृदय! खिद्यसे किम्?॥२॥

भावार्थः—दुःख-भार-विकलं पुरुषं प्रति कस्यचन पुरुषस्य आश्वासनोक्तिरियम्—**यथा**-यादृशाः, **सुपुरुषाः**—शोभनाः पुरुषाः भवन्ति **तथा** तादृशा एव **कलहा** अपि भवन्ति। यथा **नद्यः** सजलाः परोपकारिण्यश्च भवन्ति। तथा तासु **वलनानि**-वक्रत्वान्यपि भवन्ति। **यथा** विशालाः **पर्वताः** तथैव तेषु **कोटराणि**—गह्वराण्यपि भवन्ति। अतः हे **हृदय**! दुःखेन **किम्**-कथम् **खिद्यसे**—किमर्थं दुःखी भवसि? यावन्तो महापुरुषाः सम्भूताः ते सर्वे दुःखान्यनुभूयैव महत्त्वमुपगताः। अतः स्वल्पेन दुःखेन निराशो मा भव।

यथा=जिवँ,इत्यस्य प्रक्रिया १०६८ सूत्रे ज्ञेया। **सुपुरुषाः**। सुपुरुष+जस्। १११ सू० उकारस्य इकारे,२६० सू० षकारस्य सकारे,१०१५ सू० जसो लोपे सुपुरिस इति भवति। **तथा**=तिवँ,प्रक्रिया १०६८ सूत्रे ज्ञेया। **कलहाः**। कलह+जस्। प्रस्तुतसूत्रेण कलहस्य घङ्घल इत्यादेशे, बाहुल्येन १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे घङ्घलइं इति भवति। **नद्यः**। नदी+जस्। १७७ सू० दकारस्य लोपे,१००१ सू० ईकारस्य इकारे,१०१५ सू० जसो लोपे नइ इति भवति। **वलनानि**। वलन+जस्। २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे वलणाइं इति भवति। **पर्वताः**। पर्वत+जस्। अपभ्रंशे पर्वतार्थे प्रस्तुतसूत्रेण डोङ्गर-शब्दः प्रयुज्यते, जसो लोपे डोङ्गर इति

*संकटस्य घङ्घलः, इति पाठान्तरमपि समुपलभ्यते।

भवति। **कोट्टराणि**। कोटर+जस्। २७० सू० टकारस्य द्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ११६ सू० उकारस्य ओकारे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे **कोट्टरइं** इति भवति। **हृदय**!। हृदय+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० दकारस्य लोपे, २६१ सू० यकारस्याऽऽलोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **हिआ**! इति भवति। **खिद्यसे**। खिद् खेदे। खिद्+से। ८०३ सू० खिद्धातोः स्थाने विसूर इत्यादेशे, १०५४ सू० से इत्यस्य हि इत्यादेशे **विसूरहि** इति भवति। **किम्**=काइं, प्रक्रिया १०३८ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **कलहाः**=भड्वलइं, **पर्वताः**=डोङ्गर, इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **अस्पृश्यसंसर्गस्य विट्टालः**। अस्पृश्यसंसर्ग-शब्दस्य स्थाने **विट्टाल** इत्यादेशो भवति। यथा-

ये मुक्त्वा रत्ननिधिमात्मानं तटे क्षिपन्ति।
तेषां शङ्खानामस्पृश्यसंसर्गः परं फूत्कुर्वाणा भ्रमन्ति ॥३॥

भावार्थः—योग्यस्थानं परित्यज्य गच्छन्तं कञ्चिन्नरं प्रति शङ्खान्योक्त्या कश्चिदाह-ये शङ्खाः, **रत्ननिधिम्**, रत्नानां निधिः, रत्ननिधिः, तं रत्ननिधिम्-रत्नाकरं समुद्रं **मुक्त्वा**—त्यक्त्वा आत्मानं **तटे**—समुद्रतटे **क्षिपन्ति**—स्थापयन्ति, **तेषां शङ्खानां** संग्रहणं कृत्वा, **अस्पृश्यसंसर्गाः**, अस्पृश्यः संसर्गो येषां तेऽधमजनाः गोपालकाः वा **फूत्कुर्वाणाः**-वादनपरा इतस्ततः **भ्रमन्ति** पर्यटन्तीति भावः।

ये=जे, प्रक्रिया ५४७ सूत्रे ज्ञेया। **मुक्त्वा**। मुच्लृ(मुच्)मोचने। मुच्+क्त्वा। ७६२ सू० मुच्धातोः स्थाने छड्ड इत्यादेशे, ११११ सू० क्त्वः स्थाने एप्पिणु इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **छड्डेप्पिणु** इति भवति। **रत्ननिधिम्**। रत्ननिधि+अम्। ३७२ सू० नकारात्पूर्वेऽकाराऽऽगमे, १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, २२८ सू० प्रथमनकारस्य णकारे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **रयणनिहि** इति भवति। ११ सूत्रस्य वृत्तिमनुसृत्य नकारस्याऽऽदिभूतत्वादत्र २२८ सू० णकारो न जातः। **आत्मानम्**। आत्मन्+अम्। ३२२ सू० त्मस्य पकारे, ३६० सू० पकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ११ सू० नकारलोपे, ४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये, १७७ सू० ककारस्य लोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे, १०१५ सू० अमो लोपे **अप्पउं** इति भवति। **तटे**। तट+ङि। १९५ सू० टकारस्य डकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **तडि** इति भवति। **क्षिपन्ति**। क्षिप् क्षेपे। क्षिप्+अन्ति। अपभ्रंशे क्षिपधे १०६६ सू० घल्ल इति देश्यधातुः प्रयुज्यते, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **घल्लन्ति** इति भवति। **तेषाम्**। तद्+आम्। ११ सू० दकारलोपे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे **तहं** इति भवति। **शङ्खानाम्**। शङ्ख+आम्। २६० सू० शकारस्य सकारे, पूर्ववदेव **सङ्खहं** इति भवति। **अस्पृश्यसंसर्गाः**। अस्पृश्य-संसर्ग+जस्। प्रस्तुतसूत्रेण अस्पृश्यसंसर्गस्य स्थाने विट्टाल-शब्दः प्रयुज्यते, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **विट्टालु** इति भवति। **परम्**=पर, प्रक्रिया १०८९ सूत्रे ज्ञेया, १००० सू० अकारस्य उकारे **परु** इत्यपि भवति। **फूत्कुर्वाणाः**। फूत्पूर्वकः डुकृञ्(कृ)धातुः फूत्-करणे। फूत्कृ+आनश्+जस्। इत्यत्र अपभ्रंशे १०६६ सू० फूत्कृ इत्यस्य स्थाने फुक्किज्ज इति देश्यधातुः प्रयुज्यते, ६७० सू० आनशः स्थाने न्त इत्यादेशे, १०१५ सू० जसो लोपे **फुक्किज्जन्त** इति भवति। **भ्रमन्ति**। भ्रमु(भ्रम्)भ्रमणे। भ्रम्+अन्ति। १०६९ सू० रेफ-लोपे, ९१० सू० अकारागमे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **भमन्ति** इति भवति। **अस्पृश्य-संसर्गाः**=विट्टालु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **भयस्य द्रवक्कः**। प्रस्तुतसूत्रेण भयशब्दस्य स्थाने **द्रवक्क** इत्यादेशो भवति। यथा—

दिवैः अर्जितं खाद मूढ! संचिनु मा एकमपि द्रम्मम्।
किमपि भयं तत्पतति येन समाप्यते जन्म ॥४॥

भावार्थः—कृपणं नरं प्रति कस्यचित् पुरुषस्योक्तिरियम्। हे मूढ!-हे विवेकविकल!, दिवैः-दिवसैरर्जितम्-उपार्जितं द्रव्यं-धनादिकं खाद-भक्षय, सेवय। एकमपि द्रम्मम्-गणितशास्त्रप्रसिद्धं मानम्, तं मा -अव्ययपदं निषेधे संचिनु-संग्रहं कुरु, यतः किमपि-अनिर्दिष्टम्, भयं-आतुरं भयं पतति-धावति येन झटिति जन्म-जीवनं समाप्यते-समाप्तिमेति। कर्मणो गतिः विचित्रा वर्तते, अतः न जाने कदा कर्मणः प्रकोपो भवेदिति भावः।

दिवैः। दिव+भिस्। १००६ सू० अकारस्य स्थाने एकारे, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे दिवेहिं इति भवति। अर्जितम्। अर्जित+सि। ९२९ सू० अर्जितस्य स्थाने विढत्त इत्यादेशे, ४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये, १७७ सू० ककारलोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे, १०१५ सू० सेर्लोपे विढत्तउं इति भवति। खाद। खाद् भक्षणे। खाद्+हि। ८९९ सू० दकारलोपे, १०५४ सू० हि इत्यस्य हिं इत्यादेशे खाहिं इति भवति। मूढ!। मूढ+सि। प्रस्तुतसूत्रेण मूढस्य स्थाने वढ इत्यादेशे, सेर्लोपे वढ! इति भवति। संचिनु। सम्पूर्वकः चिञ्-(चि)-धातुः चयने-संचये। संचि+हि। १०५८ सू० हि इत्यस्य इकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये संचि इति भवति। मा। अव्ययपदमिदम्। १००० सू० आकारस्य अकारे म इति भवति। एकम्। एक+अम्। इत्यत्र ३७० सू० ककारद्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे एक्कु इति भवति। अपि=वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया। द्रम्मम्। द्रम्म+अम्। वैकल्पिकत्वात् १०६९ सू० रेफलोपस्याऽभावे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे द्रम्मु इति भवति। किम्। किम्+सि। अत्र किम्-शब्दः नपुंसकलिङ्गको वर्तते किन्तु भयस्य स्थाने यः द्रवक्क-शब्दाऽऽदेशो भवति, स पुल्लिङ्गः, तद्विशेषणत्वात् अत्र किम्-शब्दोऽपि पुल्लिङ्ग एव संगृहीतः। ततः ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, १००३ सू० अकारस्य स्थाने ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे को इति भवति। भयम्। भय+सि। प्रस्तुतसूत्रेण भयस्य स्थाने द्रवक्क इति पुल्लिङ्गाऽऽदेशे जाते, ११०० सू० अप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे द्रवक्कउ इति भवति। तद्=सो, इत्यस्य प्रक्रिया १०११ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। पतति=पडइ, प्रक्रिया ८९० सूत्रे ज्ञेया। येन=जेण, प्रक्रिया १०८५ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। समाप्यते। सम्पूर्वकः आप्लृ-(आप्)-धातुः समाप्तौ। समाप्+क्य+ते। संस्कृतनियमेन समाप्य+ते इति जाते, ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० पकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इ-आदेशे समप्पइ इति भवति। जन्म। जन्मन्+सि=जम्मु, प्रक्रिया १०६७ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया। भयम्=द्रवक्कउ, इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। आत्मीयस्य अप्पणः। प्रस्तुतसूत्रेण आत्मीय-शब्दस्य स्थाने अप्पण-शब्दः प्रयुज्यते। यथा—स्फोटयतः यौ हृदयमात्मीयम्=फोडेन्ति जे हिअडउं अप्पणउं, प्रक्रिया १०३८ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। हिअडउं, अप्पणउं इत्यत्र बाहुल्येन १०८२ सूत्रेण उच्चारणस्य लाघवं न जातम्। आत्मीयम्=अप्पणउं, इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। दृष्टेर्द्रेहिः। दृष्टिशब्दस्य स्थाने द्रेहि इत्यादेशो भवति। यथा—

एकमेकं यद्यपि पश्यति हरिः सुष्ठु सर्वादरेण,
ततोऽपि दृष्टिः यस्मिन् कस्मिन्नपि राधा।
कः शक्नोति संवरीतुं दग्धनयने स्नेहेन पर्यस्ते ॥५॥

भावार्थः—सर्वप्रियस्याऽपि कृष्णस्य राधाया उपरि स्नेहातिरेकं वीक्ष्य कस्यचनोक्तिरियम्। हरिः-कृष्णः यद्यपि, एकमेकं-प्रत्येकं प्रियजनं सुष्ठु-शोभनेन प्रकारेण सर्वादरेण, सर्वश्चासौ आदरस्तेन च

पश्यतीति सत्यं **ततोऽपि**-तथापि **यस्मिन् कस्मिन्नपि**-यत्र कुत्राऽपि **राधा** भवति तत्रैव तस्य कृष्णस्य **दृष्टिः**-पतति। यतः **स्नेहेन पर्यस्ते**-परिपूर्णे **दृढनयने**,दृढे-सबले नयने, **संवरीतुं**-निरोद्धुं **कः शक्नोति** ? को नाम समर्थो भवति ? न कोऽपीति। यत्र स्नेहाऽऽधिक्यं भवति, तत्रैव दृष्टिर्यातीति भावः।

एकैककम्। एक+अम्, एक+अम्। इत्यत्र ३७० सूत्रेण प्रथमस्य ककारस्य द्वित्वे, ४१० सू० वीप्साऽर्थके पदे परे अम्-प्रत्ययस्य मकारे, अज्भीने परेण संयोज्ये एक्कमेक्क+अम् इति जाते,३७० सू० ककारस्य द्वित्वे, ४३५ सू० कप्रत्यये, १७७ सू० ककारलोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०१५ सू० अमो लोपे **एक्कमेक्कउं** इति भवति। बाहुल्येनाऽत्र ८४ सू० ह्रस्वो न जातः। **यदि**=जइ, प्रक्रिया १०५५ सूत्रे ज्ञेया। **अपि**=वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया। **पश्यति**। दृशिर्-(दृश्)-धातुः दर्शने। दृश्+तिव्। अपभ्रंशे दृश् इत्यर्थे १०६६ सू० जोअ इति देश्यधातुः प्रयुज्यते, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे, ९४४ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे, ६४७ सू० अकारस्य एकारे **जोएदि** इति भवति। **हरिः**। हरि+सि। १०१५ सू० सेर्लोपे **हरि** इति भवति। **सुष्ठु**। अव्ययपदमिदम्। ३४८ सू० षकारलोपे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे **सुट्ठु** इति भवति। **सर्वादरेण**। सर्वादर+टा। ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० वकारस्य द्वित्वे, १७७ सूत्रेण दकारलोपे, १८० सू० यश्रुतौ, १०१३ सू० टास्थाने णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **सव्वायरेण** इति भवति। **ततः**=तो, इत्यस्य प्रक्रिया १०५० सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **दृष्टिः**। दृष्टि+सि। प्रस्तुतसूत्रेण दृष्टि-शब्दस्य द्रेहि इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे **द्रेहि** इति भवति। **यस्मिन्**=जहिं, प्रक्रिया ५४९ सूत्रे ज्ञेया। **कस्मिन्**=कहिं, प्रक्रिया ५४९ सूत्रे ज्ञेया। **राधा**। राधा+सि। इत्यत्र १८७ सू० धकारस्य हकारे, १००० सू० आकारस्य ईकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **राही** इति भवति। **कः**=को,प्रक्रिया १०६७ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **शक्नोति**। शक्लृ [शक्] शक्तौ। शक्+तिव्=सक्कइ, प्रक्रिया ९०१ सूत्रे ज्ञेया। **संवरीतुम्**। सम्पूर्वकः वृ-धातुः संवरणे। संवृ+तुम्। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, अज्भीने परेण संयोज्ये, १११२ सू० तुम्-प्रत्ययस्य स्थाने एवि इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, १०८१ सू० उच्चारणस्य लाघवे **संवरेवि** इति भवति। **दृढनयने**। दृढनयन+औ। १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, ३७० सू० ढकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वढकारस्य डकारे, ११ सूत्रमनुसृत्य "समासे तु वाक्य-विभक्त्यपेक्षायामन्त्यत्वमनन्त्यत्वञ्च भवति, अतोऽत्र नयनस्य आदिमनकारस्य आदिभूतत्वात् २२९ सूत्रेण प्राप्तः णकारः वैकल्पिको भवति, वैकल्पिकत्वादेवाऽत्र नकारस्य णकाराऽभावे, २२८ सू० अन्त्य-नकारस्य णकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **दड्ढनयणा** इति भवति। **स्नेहेन**। स्नेह+टा। ३४८ सू० सकारलोपे, १००० सू० अकारस्य इकारे, १०१४ सू० टास्थानेऽनुस्वारे **नेहिं** इति भवति। **पर्यस्ते**। पर्यस्त+औ। ३३९ सू० र्यस्य ल्ल इत्यादेशे, ३१८ सू० स्तस्य टकारे, ३६० सू० टकारस्य द्वित्वे, १००० सू० ल्ल-स्थस्य अकारस्य उकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने,१००१ सू० अकारस्य स्थाने आकारे, १०१५ सू० जस्-प्रत्ययस्य लोपे **पल्लुट्टा** इति भवति। **दृष्टिः**=द्रेहि, इत्यत्र प्रस्तुतस्य [१०९३] सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **गाढस्य निच्चट्टः**। गाढशब्द-स्य स्थाने **निच्चट्ट** इत्यादेशो भवति। यथा—

विहवे कस्सु थिरत्तणं, जोव्वणि कस्सु मरट्टु ?
सो लेखडउ पठाविअइ, जो लग्गइ निच्चट्टु ॥६॥

भावार्थः—यौवन-वैभव-मान-द्योतकं पत्रकं वीक्ष्य कस्यचन-ज्ञानिन उक्तिरियम्—**विभवे**-स-म्पत्तौ **कस्य स्थिरत्वम्** ? को नाम सर्वदा धनी भवति ? न कोऽपीति भावः। **यौवने कस्य गर्वः ?**,

अभिमानः स्थिरो भवेत् ? न कस्यापि । इयं वस्तुस्थितिः परन्तु तेन पुरुषेण स एव लेखः-यौवन-वैभव-मान-परिपूर्णः लेखः **प्रस्थाप्यते-प्रेष्यते, यः गाढं लगति** अतिशयता-पूर्णम्, अतिशयोक्ति-युक्तं प्रतीयते ।

विभवे । विभव+ङि । १८७ सू० भकारस्य हकारे,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य एकारे **विहवे** इति भवति । **कस्य** । किम्+ङस् । इत्यत्र ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे,१००९ सू० ङसः स्थाने स्सु इत्यादेशे **कस्सु** इति भवति । **स्थिरत्वम्** । स्थिरत्व+सि । ३४८ सू० सकारस्य लोपे,४२५ सू० त्वस्य त्तण इत्यादेशे, ४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये, १७७ सू० ककारलोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे **थिरत्तणउं** इति भवति । **यौवने** । यौवन+ङि । इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य जकारे, १५९ सू० औकारस्य ओकारे,३७० सू० वकारद्वित्वे,बाहुल्येनाऽत्र ८४ सू० ह्रस्वाऽभावे,२२८ सू० नकारस्य णकारे, १००५ ङिना सह अकारस्य इकारे **जोव्वणि** इति भवति । **गर्वः** । गर्व+सि । अपभ्रंशे गर्वाऽर्थे १०९३ सू० मरट्ट-शब्दः प्रयुज्यते, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **मरट्टु** इति भवति । **सः**=सो, प्रक्रिया १०७२ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **लेखः** । लेख+सि । प्रायोग्रहणादत्र १८७ सू० खकारस्य ह-काराऽभावे, ११०१ सू० स्वार्थे डडअ-(अडअ)-प्रत्यये,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **लेखडउ** इति भवति । **प्रस्थाप्यते** । प्रपूर्वकः ष्ठा-[स्था]-धातुः प्र-स्थापने । प्रस्था+णिग्+ते । इत्यत्र १०६९ सू० रेफलोपे,६८७ सू० स्थाधातोः स्थाने ठा इत्यादेशे,बाहु-ल्येन ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वाऽभावे, ६३९ सू० णिगः स्थाने अवि इत्यादेशे, ५ सू० दीर्घसन्धौ,क्य-प्रत्यये, ६४९ सू० क्यस्य ईअ इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये पठावीअ+ते इति जाते, १००० सू० ईकारस्य इकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **पठाविअइ** इति भवति । **यः**=जो, प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया । **लगति**=लग्गइ, प्रक्रिया ९०१ सूत्रे ज्ञेया । **गाढम्** । क्रिया-विशेषणमिदम् । गाढ+अम् । प्रस्तुतसूत्रेण गाढ-शब्दस्य स्थाने निच्चट्ट इत्यादेशे, १००२ सू० अका-रस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **निच्चट्टु** इति भवति । **गाढम्**=निच्चट्टु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्ति-र्जाता । **साधारणस्य सड्ढल** । साधारणशब्दस्य **सड्ढल** इत्यादेशो भवति । यथा—

कुत्र शशधरः, कुत्र मकरधरः, कुत्र बर्हिणः, कुत्र मेघः ?
दूरस्थितानामपि सज्जनानां भवत्यसाधारणः स्नेहः ॥७॥

भावार्थः—**कुत्र**-क्व, **शशधरः** शशम्-शशाङ्कं धरतीति शशधरः **चन्द्रः**, **कुत्र मकरधरः**-समुद्रः, तथा **कुत्र बर्हिणः**-मयूरः,**कुत्र मेघः**-घनः,समस्ति,तथापि एषां **मिथो**-परस्परं महान् स्नेहो विद्यते, चन्द्रं समीक्ष्य समुद्रः उच्छलति, तथा बर्हिणाः-मयूराः मेघ-गर्जनं निशम्य केकारवं कुर्वन्ति, अत्राऽसाधारणः स्नेहः एव कारणं प्रतीयते । सत्यमेतत्,यद् **दूरस्थितानामपि** दूरवर्तिनामपि **सज्जनानां** सतां, सहृदयानां, पुरुषाणाम् **असाधारणः**-अतिशयितः **स्नेहो भवति** ।

कुत्र । अत्र कस्मिन् इत्यर्थकः कुत्र-शब्दो बोध्यः । अतोऽत्र किम्+ङि इति जाते, ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, ५४९ सू० ङेः स्थाने हिं इत्यादेशे,१०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **कहिँ** इति भवति । **शशधरः** । शशधर+सि । २६० सू० उभयत्राऽपि शकारस्य सकारे,१८७ सू० धकारस्य हकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **ससहरु** इति भवति । **मकर-धरः** । मकरधर+सि । १७७ सू० ककारस्य लोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १८७ सू० धकारस्य स्थाने हकारे,पूर्ववदेव **मयर-हरु** इति भवति । **बर्हिणः** । बर्हिण+सि । ३७५ सू० रेफात् पूर्वं इकारागमे,पूर्ववदेव **बरिहिणु** इति भवति । **मेघः** । मेघ+सि । १८७ सू० घकारस्य हकारे,पूर्ववदेव **मेहु** इति भवति । **दूरस्थितानाम्** । दूर-ष्ठा (स्था)

+क्त । ६८७ सू० स्थाधातोः स्थाने ठा इत्यादेशे, ११ सूत्रमनुसृत्य ठकारस्य आदिभूतत्वात् ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वाऽभावे, १००० सू० आकारस्य अकारे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, आम्-प्रत्यये, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **ठिआहँ** इति भवति । अपि=वि, प्रक्रिया ४८१ सूत्रे ज्ञेया । **सज्जनानाम्** । सज्जन+आम् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे **सज्जणहं** इति भवति । **भवति**=होइ, प्रक्रिया ७३१ सूत्रे ज्ञेया । **असाधारणः** । असाधारण+सि । प्रस्तुतसूत्रेण साधारणशब्दस्य सड्ढल इत्यादेशे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सिप्रत्ययस्य लोपे **असड्ढलु** इति भवति । **स्नेहः** । स्नेह+सि । ३४८ सू० सकारस्य लोपे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **नेहु** इति भवति । **असाधारणः**=असड्ढलु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **कौतुकस्य कोड्डः** । कौतुकशब्दस्य स्थाने **कोड्ड** इत्यादेशो भवति । यथा—

कुञ्जरोऽन्येषां तरुवराणां कौतुकेन क्षिपति हस्तम् ।
मनः पुनरेकस्यां सल्लक्यां यदि पृच्छथ परमार्थम् ॥८॥

भावार्थः—कविः गजानां सल्लक्यां स्नेहाऽधिक्यं वर्णयति-**कुञ्जरो**-हस्ती, **अन्येषां तरुवराणाम्**, तरुषु वराः, तरुवराः, तेषाम् । अत्र सप्तम्यर्थे षष्ठी । अन्येषु तरुष्वित्यर्थः, **कौतुकेन**-कुतूहलेन **हस्तं**-करं **क्षिपति**, किन्तु **यदि** यूयं **परमार्थं**, परमश्चासौ अर्थः, परमार्थस्तं वस्तुतत्त्वमिति यावत्, **पृच्छथ**, तदाऽहं कथयामि यत्तस्य **मनस्त्वेकस्यां सल्लक्यां**, सल्लकिरिति हस्तिप्रियः कश्चिद् वृक्षविशेषः, तस्यां वर्तते । हस्ती खलु सल्लकिप्रियो भवतीति भावः ।

कुञ्जरः । कुञ्जर+सि । इत्यत्र १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **कुञ्जरु** इति भवति । **अन्येषाम्** । अन्यद्+आम् । ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० नकारद्वित्वे, ११ सू० दकारलोपे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **अन्नहँ** इति भवति । **तरुवराणाम्** । तरुवर+आम् । इत्यत्र १७७ सू० वकारलोपे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे **तरु-अरहँ** इति भवति । **कौतुकेन** । कौतुक+टा । प्रस्तुतसूत्रेण कौतुकस्य स्थाने कोड्ड इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०१३ सू० टास्थाने णकारे, स्थानिवद्भावात् १००४ सू० अकारस्य एकारे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **कुड्डेँण** इति भवति । **क्षिपति** । क्षिप्-धातुः क्षेपे । क्षिप्+तिव् । अपभ्रंशे क्षिप् इत्यस्य धातोः स्थाने १०६६ सू० घल्ल इत्यस्य प्रयोगे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **घल्लइ** इति भवति । **हस्तम्** । हस्त+अम् । ३१६ सू० स्तस्य स्थाने थकारे, ३६० सू० थकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **हत्थु** इति भवति । **मनः**=मणु, प्रक्रिया १०२१ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **पुनः**=पुणु, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **एकस्याम्** । एका+ङि । इत्यत्र ३७० सू० ककारद्वित्वे, १००१ सू० आकारस्य स्थाने अकारे, १०२८ सू० ङिप्रत्ययस्य हिँ इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **एक्कहिँ** इति भवति । **सल्लक्याम्** । सल्लकि+ङि । १७७ सू० ककारलोपे, पूर्ववदेव **सल्लइहिँ** इति भवति । अत्र १०२३ सू० ङेः स्थाने हिँ इत्यादेशो जातः । **यदि**=जइ, प्रक्रिया १०५५ सूत्रे ज्ञेया । **पृच्छथ** । प्रच्छ्-धातुः पृच्छायाम् । प्रच्छ्+थ । ७६८ सू० प्रच्छ्धातोः पुच्छ इत्यादेशे, ६३२ सू० थ इत्यस्य हच् (ह) इत्यादेशे **पुच्छह** इति भवति । **परमार्थम्** । परमार्थ+अम् । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० थकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **परमत्थु** इति भवति । **कौतुकेन**=कुड्डेँण इत्यत्र

प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **क्रीडायाः खेड्डः** । क्रीडाशब्दस्य स्थाने खेड्ड इत्यादेशो भवति । यथा—

क्रीडा कृता अस्माभिः, निश्चयं किं प्रकथयथ ।

अनुरक्ताः भक्ताः अस्मान् मा त्यज स्वामिन् ! ॥९॥

भावार्थः—काश्चन नायिकाः उपहासजन्य-निजाऽपराधेन सरोषं नायकं प्रत्याऽऽहुः—**हे स्वामिन् ! अस्माभिस्तु क्रीडा कृता,** उपहासो विहितः, किन्तु **यूयं किं निश्चयं**-सत्यमेव **प्रकथयथ**-मन्यध्वे ? वयन्तु भवदीयाः **भक्ताः, अनुरक्ताः**-अनुरागिण्यः स्मः, अतः हे **स्वामिन्** ! रोषं मा कार्षीः, तथा भक्ताः, अनुरक्ताश्च **अस्मान् मा त्यज** ।

क्रीडा । क्रीडा+सि । इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण क्रीडाशब्दस्य खेड्ड इत्यादेशे, ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, १७७ सू० ककारलोपे, १८० सू यकारश्रुतौ, ५१४ सू० सेर्मकारे,२३ सू० मकाराऽनुस्वारे **खेड्डयं** इति भवति । **कृता** । कृता+सि । १२६ सू० ऋकारस्य अकारे,१७७ सू० तकारलोपे,१८० सू० यकार-श्रुतौ, खेड्डशब्दः पुल्लिङ्गः, तस्य क्रियापदमपि पुलिङ्गमेव भविष्यति, अतोऽत्र आप्प्रत्ययो न जातः, ततः ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकाराऽनुस्वारे **कयं** इति भवति । **अस्माभिः**—अम्हेहिं प्रक्रिया १०४९ सूत्रे ज्ञेया । अत्र बाहुल्येन १०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवं न जातम् । कयम्+अम्हेहिं । इत्यत्र अज्भीने परेण संयोज्ये **कयमम्हेहिं** इति भवति । **निश्चयम्** । निश्चय+अम् । २९२ सू० श्चस्य स्थाने छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० मकाराऽनु-स्वारे **निच्छयं** इति भवति । **किम्** । किम्+अम्—किं, प्रक्रिया ५६९ सूत्रे ज्ञेया । **प्रकथयथ** । प्रपूर्वकः कथ्धातुः प्रकथने । प्रकथ्+थ । १०६९ सू० रेफलोपे,६७३ सू० कथ्धातोः स्थाने जम्प इत्यादेशे,१७७ सू० जकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ,६३२ सू० थ इत्यस्य हकारे **पयम्पह** इति भवति । **अनुरक्ताः** । अनुरक्ता+शस् । २२८ सू० नकारस्य णकारे,३४८ सू० ककारलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, ५१६ सू० शसः स्थाने उकारे **अणुरत्ताउ** इति भवति । **भक्ताः** । भक्ता+शस् । ३४८ सू० ककारस्य लोपे,तकारस्य द्वित्वे,शसः स्थाने उकारे **भत्ताउ** इति भवति । **अस्मान्** । अस्मद्+शस् । १०४७ सू० अस्मदः स्थाने अम्हे इत्यादेशे, १०१५ सू० शसो लोपे **अम्हे** इति भवति । **मा** । अव्ययपदमिदम् । संस्कृतवदेवाऽपभ्रंशे प्रयु-ज्यते । **त्यज** । त्यज [त्यज्] त्यागे । त्यज्+हि । बाहुल्येन ७५७ सू० त्यज्-धातोः स्थाने चय इत्यादेशे, ६६२ सू० हि इत्यस्य सु इत्यादेशे, ६६४ सू० सोर्लुकि **चय** इति भवति । **स्वामिन्** ! । स्वामिन्+सि । ३५० सू० वकारलोपे,११ सू० नकारस्य लोपे,११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये,१०१५ सू० सेर्लोपे **सामिअ** ! इति भवति । **क्रीडा**—खेड्डयं, इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **रम्यस्य रवण्णः** । रम्य-शब्दस्य स्थाने **रवण्ण** इत्यादेशो भवति । यथा—

सरिद्भिः न सरोभिः न सरोवरैः नाऽपि उद्यानवनैः ।

देशाः रम्याः भवन्ति मूढ ! निवसद्भिः सुजनैः ॥१०॥

भावार्थः—सतां पुरुषाणां महिमानं वर्णयन् कविराह-**हे मूढ ! सरिद्भिः**-नदीभिः, **देशाः रम्याः न भवन्ति,सरोभिः**-तडागैः देशाः रम्याः न भवन्ति,**सरोवरैः**,सरस्सु वराः सरोवराः, तैः उत्तमसरोवरैः,तथा **उद्यानवनैः**,पुष्पवाटिका-काननादिभिरपि देशाः रम्याः न भवन्ति,देशास्तु **देशनिवसद्भिः सुजनैः**-सज्जनैः सत्पुरुषैश्च रम्याः भवन्तीत्यर्थः ।

सरिद्भिः । सरिद्+भिस् । ११ सू० दकारलोपे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे,१०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **सरिहिँ** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतसममेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते ।

सरोभिः । सरस+भिस् । ११ सू० सकारलोपे,१००६ सू० अकारस्य एकारे,१०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे,१०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **सरेहिँ** इति भवति । **सरोवरैः** । सरस्-वर+भिस् । वाक्यापेक्षया सकारस्याऽन्त्यत्वेन ११ सू० सकारलोपे,१००६ सू० अकारस्य स्थाने एकारे, १०८१ सू० एकारस्य उच्चारणलाघवे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **सर-वरेँहिँ** इति भवति । **अपि**=वि,प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **उद्यानवनैः** । उद्यानवन+भिस् । २९५ सू० द्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारद्वित्वे, २२८ सू० उभयत्राऽपि नकारस्य णकारे, १००६ सू० अकारस्य एकारे, १०१८ भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे,प्रयोगदर्शनात् १०८२ सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ **उज्जाण-वणेहिं** इति भवति । **देशाः** । देश+जस् । २६० सू० शकारस्य सकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **देस** इति भवति । **रम्याः** । रम्य+जस् । प्रस्तुतसूत्रेण रम्यस्य स्थाने रवण्ण इत्यादेशे,१००१ सू० अकारस्य आकारे,जसो लोपे **रवण्णा** इति भवति । **भवन्ति**=होन्ति,प्रक्रिया ७३१ सूत्रे ज्ञेया । **मूढ!**। मूढ+सि । प्रस्तुतसूत्रेण मूढस्य वढ इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे **वढ!** इति भवति । **निवसद्भिः** । निपूर्वकः वस्-धातुः निवासे । निवस्+शतृ । ९१० सू० अकारागमे,६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे,भिस्-प्रत्यये,१०१८ सू० भिस स्थाने हिं इत्यादेशे, १००६ सू० अकारस्य एकारे,१०८१ सू० एकारस्य उच्चारणलाघवे, १०८२ सू० अनुस्वारस्य उच्चारणलाघवे **निवसन्तेँहिँ** इति भवति । **सुजनैः** । सुजन+भिस् । १७७ सू० जकारलोपे,२२८ सू० नकारस्य स्थाने णकारे,१००६ सू० अकारस्य स्थाने एकारे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे **सुअणेहिं** इति भवति । **रम्याः**=रवण्णा, **मूढ !**=वढ !=इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **अद्भुतस्य ढक्करिः** । अद्भुत-शब्दस्य स्थाने ढक्करिः इत्यादेशो भवति । यथा—

हृदय ! त्वया एतत्कथितं ममाऽग्रतः शतवारम् ।
स्फुटिष्यामि प्रिये प्रवसति अहं भण्ड ! अद्भुतसार ! ॥१॥

भावार्थः—काचित् प्रोषितभर्तृका **नितम्बिनी** **वियोगोऽसहनयो भवति**, इति व्यनक्ति—हे अद्भुतसार !, अद्भुतः सारो यस्य,सः विलक्षणसत्त्वः,विलक्षणपरिणामो वा,तत्सम्बोधनम् । भण्ड !—भाजनविशेषः, तत्सम्बोधनम्, कुत्सितपात्रविशेषरूप इत्यर्थः, **हृदय** ! हे हृदय-भण्ड ! **त्वया मम अग्रतः**-सम्मुखे **एतत् शतवारम्**-शतधा **कथितम्**, यत् **प्रिये**-कान्ते **प्रवसति**, प्रवासं-प्रदेशं गते सति **स्फुटिष्यामि**-नाशमुपयास्यामि । हे हृदय ! त्वं कठोरतमोऽसि, यत्प्रिये प्रवासमुपगतेऽपि न स्फुटितोऽसीति भावः ।

हृदय ! । हृदय+सि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० दकारलोपे, २६९ सू० सस्वरयकारलोपे, ११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १००१ सू० अन्त्याकारस्य आकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **हिअडा** ! इति भवति । **त्वया** । युष्मद्+टा । १०४१ सू० टाप्रत्ययेन सह युष्मदः स्थाने पइं इत्यादेशे **पइं** इति भवति । **एतत्** । एतद्+सि=**एहु**, प्रक्रिया १०३३ सूत्रे ज्ञेया । **कथितम्** । कथ(कथ्)कथने । कथ्+क्त-त । ६७३ सू० कथ्धातोः स्थाने बोल्ल इत्यादेशे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, ११०० सू० अप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **बोल्लिअउ** इति भवति । **अग्रतः** । अव्ययपदमिदम् । १०६९ सू० रेफलोपे, ३६० सू० गकारस्य द्वित्वे, १७७ सू० तकारलोपे, ३७ सू० विसर्गस्य डो (ओ) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १००० सू० ओकारस्य इकारे **अग्गइ** इति भवति । **शतवारम्** । शतवार+अम् । २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १०१५ अमो लोपे **सयवार** इति भवति । **स्फुटिष्यामि** । स्फुट्-धातुः भ्रंशे । स्फुट्+स्य+मिप् । ३४८ सू० सकारलोपे,९०२ सू० टकारद्वित्वे,९१०

सू० अकाराऽऽगमे, १०५९ सू० स्यस्य सकारे, ६४६ सू० अकारस्य इकारे,१०५६ सू० मिवः स्थाने उं इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, बाहुल्येन अनुस्वारलोपे **कुड्डिसु** इति भवति। **प्रिये**। प्रिय+ङि। १०६९ सू० रेफस्य लोपे, १७७ सूत्रेण यकारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य एकारे **पिए** इति भवति। **प्रवसन्ति**। प्रपूर्वकः वस्-धातुः प्रवासे। प्रवस्+शतृ। १०६९ सू० रेफलोपे, ९१० सू० अकाराऽऽगमे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे,ङिप्रत्यये,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **पवसन्ति** इति भवति। **अहम्**=हउँ,प्रक्रिया १००९ सूत्रे ज्ञेया। **भण्ड**!। भण्ड+सि। ४३५ सू० स्वार्थे क-प्रत्यये, १७७ सू० ककारस्य लोपे, १८० सू० यकारस्य श्रुतौ, १०१५ सू० सेर्लोपे **भण्डय**! इति भवति। **अद्भुतसार**!। अद्भुतसार+सि। प्रस्तुतसूत्रेण अद्भुतस्य शब्दस्य स्थाने ढक्करि इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे **ढक्करिसार**! इति भवति। **अद्भुतसार**!=ढक्करिसार! इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **हे सखीत्यस्य हेल्लिः**। हे सखि! इत्यस्य पदद्वयस्य स्थाने **हेल्लि**! इत्यादेशो भवति। यथा-**हेसखि! मा उपालम्भस्व अलीकम्**=हेल्लि! म झङ्खहि आलु, एषां पदानां प्रक्रिया १०५० सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **हे सखि**!=हेल्लि! इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **पृथक्-पृथगित्यस्य जुअंजुअः**। पृथक्पृथक् इत्यस्य पदद्वयस्य स्थाने **जुअंजुअ** इत्यादेशो भवति। यथा—

एका कुटी पञ्चभिः रुद्धा तेषां पञ्चानामपि पृथक्-पृथक् बुद्धिः।
भगिनि! तद् गृहं कथय कथं नन्दतु यत्र कुटुम्बमात्मच्छन्दकम्॥१२॥

भावार्थः—कयाचिद् वनितया निज-परिवारस्य स्वच्छन्दाचारित्वं परस्पर-विचार-पार्थक्यञ्च शरीरस्य उदाहरणेन निवेदयन्त्या स्वसखी भगिनीपदेन सम्बोध्य उच्यते-**एका कुटी**-शरीरं, **पञ्चभिः** श्रोत्र-प्रभृति-ज्ञानेन्द्रियैः **रुद्धा**-वशीकृता,**तेषां** ज्ञानेन्द्रियाणां **पञ्चानामपि पृथक् पृथक् बुद्धिः**,स्वच्छाचारित्वं विद्यते, तेनैव प्राणिनो विकलाः खेदखिन्नाश्च दृश्यन्ते, इन्द्रियाणां स्वतन्त्रत्वे कुतः सुखप्राप्तिर्भवेद्? न भविष्यतीति भावः। एवमेव हे **भगिनि**! **कथय**-प्रतिपादय **तद् गृहं**-सदनं **कथं नन्दतु**? सुखी भवेत्? **यत्र कुटुम्बम्**-परिवारः, **आत्मछन्दकम्**-उच्छृङ्खलो, उद्दण्डो वा भवेत्। अतः पारिवारिकी व्यवस्था सर्वथा सम्माननीया स्नेहपूर्णा च भाव्येति भावः।

एका। एका+सि। ३७० सू० ककारद्वित्वे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **एक्क** इति भवति। बाहुल्येनाऽत्र ८४ सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता। **कुटी**। कुटी+सि। १९५ सू० टकारस्य डकारे,११०० सू० स्वाऽर्थे डुल्ल-(उल्ल)-प्रत्यये,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये, ११०२ सू० डी-(ई)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **कुडुल्ली** इति भवति। **पञ्चभिः**। पञ्चन्+भिस्। ११ सू० नकारलोपे,१०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे,१०८२ सू० उच्चारणस्य लाघवे **पञ्चहिँ** इति भवति। **रुद्धा**। रुद्धा+सि। इत्यत्र १००० सू० आकारस्य ईकारे, सेर्लोपे **रुद्धी** इति भवति। **तेषाम्**। तद्+आम्। ११ सू० दकारलोपे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **तहँ** इति भवति। **पञ्चानाम्**। पञ्चन्+आम्। ११ सू० नकारलोपे, तहँ-वदेव **पञ्चहँ** इति भवति। **अपि**=वि,प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया। **पृथक्पृथक्**। अव्ययपदद्वयमिदम्। प्रस्तुतसूत्रेण पृथक्पृथक् इत्यस्य पदद्वयस्य **जुअंजुअ** इति प्रयुज्यते। **बुद्धिः**। बुद्धि+सि। १००१ सू० इकारस्य ईकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **बुद्धी** इति भवति। **भगिनि**!। भगिनी+सि। ३९७ सू० भगिनीशब्दस्य बहिणी इत्यादेशे,१००० सू० ईकारस्य स्थाने उकारे,११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, स्त्रीत्वविवक्षायामाप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, ५३० सू० आकारस्य एकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **बहिणुए**! इति भवति। **तद्**=तं, प्रक्रिया १०८५ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **गृहम्**=घरु,

प्रक्रिया १०२२ सूत्रे ज्ञेया। **कधहु**। कथ (कथ्) कथने। कथ्+हि। १८७ सू० थकारस्य हकारे, १०५८ सू० हि इत्यस्य हुकारे, अज्झीने परेण संयोज्ये **कहिु** इति भवति। **कथम्**=किवँ,प्रक्रिया १०७२ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **नन्दतु**। टुनदि (नद्) समृद्धौ। संस्कृतनियमेन नन्द्+तुव् इति जाते,९१० सू० अकाराऽऽगमे, ६६२ सू० तुवः स्थाने दु इत्यादेशे, १७७ सू० दकारलोपे **नन्दउ** इति भवति। **यत्र**। अव्ययपदमिदम्। २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०७५ सू० त्रप्-प्रत्ययस्य डित् एत्थु इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **जेत्थु** इति भवति। **कुटुम्बकम्**। कुटुम्ब+सि। १९५ सू० टकारस्य डकारे, ४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये, १७७ सू० ककारलोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे,१०१५ सू० सेर्लोपे **कुडुम्बउँ** इति भवति। **आत्मच्छन्दकम्**। आत्मन्छन्दक+सि। ३२२ सू० त्मस्य पकारे, ३६० सू० पकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ५४५ सू० अन् इत्यस्य आणादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००० सू० आकारस्य अकारे, १७७ सू० ककारलोपे, १०२५ सू० अकारस्य उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे, १००५ सू० सेर्लोपे **अप्पण-छन्दउँ** इति भवति। **पृथक्पृथक्**=जुअंजुअ इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **मूढस्य नालिअ-वढौ**। मूढशब्दस्य **नालिअ, वढ** इत्यादेशौ भवतः। यथा—

यः पुनो मनस्येव व्याकुलीभूतः चिन्तयति ददाति न द्रम्मं न रूपकम्।
रतिवशभ्रमणशीलः कराग्रोल्लालितं गृहे एव कुन्तं गुणयति स मूढः ॥१३॥

भावार्थः—मूर्खस्य लक्षणं प्रतिपादयत्याचार्यः। यथा—**यः पुनः मनस्येव**—हृदये एव **व्याकुलीभूतः**—विह्वलीभूतः सन् **चिन्तयति**—विचारयति, किन्तु **द्रम्मम्**—अल्पपरिमाणविशेषम्,**रूपकं मुद्रां न ददाति** न वितरति। धनोपार्जने—शक्तोऽपि कुटुम्बस्य सम्मुखात्स्वं गृहस्वामिने नार्पयति, तथा **रतिभ्रमणशीलः**, रत्याः-कामवासनायाः वशः—अधीनः, तेन भ्रमणशीलः, काम-वासनाऽधीनः, पर्यटनस्वभावः सन् **गृहे**—निज-सदने **एव कराग्रोल्लालितम्**, हस्ताग्रभागेनोच्चालितं **कुन्तं**—भल्लं **गुणयति**—चालयति; **स मूढः**-मूर्खः लोकैरुच्यते इति शेषः।

यः=जो,प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया। **पुनः**=पुणु,प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **मनसि**। मनस्+ङि। २२८ सू० नकारस्य स्थाने णकारे, ११ सू० सकारलोपे,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **मणि** इति भवति। **एव**=जि, प्रक्रिया १०९१ सूत्रे प्रथमश्लोके ज्ञेया। **व्याकुलीभूतः**। व्याकुलीभूत+सि। अपभ्रंशे १०९३ सू० व्याकुलीभूताऽर्थे खसफसि-हूअअ इति शब्दः प्रयुज्यते, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **खसफसि-हूअउ** इति भवति। **चिन्तयति**। चिति संज्ञाने। संस्कृतनियमेन चिन्त्+णिग्+तिव् इति जाते,६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **चिन्तइ** इति भवति। **ददाति**। डुदाञ् (दा) दाने। दा+तिव्=देइ, प्रक्रिया १०७७ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया। **न**। अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। **द्रम्मम्**=द्रम्मु, प्रक्रियाऽस्यैव सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया। **रूपकम्**। रूपक+अम्। १७७ सू० पकारस्य ककारस्य च लोपे, १००२ सू० द्वितीयस्य अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **रूअउ** इति भवति। **रतिभ्रमणशीलः**। रतिभ्रमणशील+सि। १७७ सू० तकारलोपे, भ्रमणशीलः इत्यर्थे तृन्-प्रत्ययो भवति, तेन भ्रम्+तृन् इति ते, १०६९ सू० रेफलोपे, ४१६ सू० तनः स्थाने इर इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये रइ-भमिर+सि इति स्थिते, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **रइ-भमिरु** इति भवति। **कराग्रोल्लालितम्**। कराग्रोल्लालित+अम्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०६९ सू० रेफलोपे, ३६० सू०

मकारद्वित्वे, ८४ सू० ओकारस्य उकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **करम्मुल्लालिउ** इति भवति। **गृहे**। गृह+ङि। ४१५ सू० गृह-शब्दस्य घर इत्यादेशे, १०२८ सूत्रे बहुलाधिकारात् ङेः स्थाने हि इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **घरहिँ** इति भवति। **कुन्तम्**। कुन्त+अम्। ११६ सू० उकारस्य ओकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **कोन्तु** इति भवति। **गुणयति**। गुण्-धातुः चालने। गुण+णिग्+तिव्। ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० तिवः स्थाने इत्यादेशे **गुणइ** इति भवति। सः=सो, प्रक्रिया १०३८ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **मूढः**। मूढ+सि। प्रस्तुतसूत्रेण मूढस्य शब्दस्य स्थाने नालिअ इत्यादेशे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे नालिउ इति भवति। मूढः=नालिउ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। सम्प्रति वढाऽऽदेशस्योदाहरणं प्रदीयते। यथा—**दिवसैरर्जितं खाद मूढ !**=दिवेहिँ विढत्तउँ खाहि वढ !, प्रक्रियाऽस्य सूत्रस्यैव चतुर्थश्लोके ज्ञेया। **मूढ !**=वढ ! इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **नवस्य नवखः**। नवशब्दस्य स्थाने नवख इत्यादेशो भवति। यथा—**नवा काऽपि विषग्रन्थिः**=नवखी क वि विसगण्ठि, एतेषां पदानां प्रक्रिया १०९१ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया। **अवस्कन्दस्य दडवडः**। अवस्कन्दशब्दस्य स्थाने दडवड इत्यादेशो भवति। यथा—

चलाभ्यां चलद्भ्यां लोचनाभ्यां ये त्वया दृष्टा बाले ! ।
तेषु मकरध्वजावस्कन्दः पतत्यपूरे काले ॥१४॥

भावार्थः—कस्याश्चन नायिकायाः सौन्दर्यातिरेकं व्यञ्जयति—**हे बाले ! लोचनाभ्यां**-नयनाभ्यां, कथम्भूताभ्यां लोचनाभ्यां ? **चलाभ्यां**-चपलाभ्यां, पुनः किम्भूताभ्याम् लोचनाभ्याम् ? **चलद्भ्यां**-परिस्पन्दमानाभ्यां **त्वया ये** पुरुषाः **दृष्टाः**-दृष्टिपथं नीताः,**तेषु अपूरे**-अपूर्णे **काले**-समयात्पूर्वमेव, **मकरध्वजावस्कन्दः**, मकरध्वजः-कामदेवः, तस्य अवस्कन्दः-आक्रमणम्, **पतति**-जायते। अतः हे बाले ! एतादृशं कामवासनोत्तेजकं दृष्टिक्षेपं मा कार्षीरिति भावः।

चलाभ्याम्। चल+भ्याम्। इत्यत्र ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने,१००६ सू० अकारस्य एकारे, १०८१ सू० उच्चारणलाघवे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **चलेँहिँ** इति भवति। **चलद्भ्याम्**। चल्-धातुः चलने। चल्+शतृ+भ्याम्। ९१० सू० अकारागमे,६७० सू० शतुः न्त इत्यादेशे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, पूर्ववदेव अकारस्य एकारे, एकारस्य उच्चारणलाघवे, भिसः स्थाने हि इत्यादेशे, अनुस्वारस्य उच्चारणलाघवे **चलन्तेँहिँ** इति भवति। **लोचनाभ्याम्**। लोचन+भ्याम्। १७७ सू० चकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव **लोअणेँहिँ** इति भवति। **ये**=जे, प्रक्रिया ५४७ सूत्रे ज्ञेया। **त्वया**=युष्मद्+टा। १०४१ सू० टाप्रत्ययेन सह युष्मदः स्थाने **तइँ** इत्यादेशे **तइँ** इति भवति। **दृष्टाः**। दृष्ट+जस्। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे,३०५ सू० ष्टस्य स्थाने ठकारे,३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे,१००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **दिट्ठा** इति भवति। **बाले !**। बाला+सि। १००० सू० अन्त्यस्य आकारस्य इकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **बालि !** इति भवति। **तेषु**। तद्+सुप्। इत्यत्र ११ सू० दकारलोपे, १०१८ सू० सुपः स्थाने हिं इत्यादेशे,१०८२ सू० उच्चारणलाघवे **तहिँ** इति भवति। **मकरध्वज-अवस्कन्दः**। मकरध्वज-अवस्कन्द+सि। १७७ सू० ककारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ३५० सू० वकारलोपे, ३६० सू० धकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारे, १७७ सू० जकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, प्रस्तुतसूत्रेण अवस्कन्दस्य स्थाने दडवड इत्यादेशे,११०० सू० अप्रत्यये,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **मयरद्धय-**

दडवडउ इति भवति । **पतति**=पडइ, प्रक्रिया ८९० सूत्रे ज्ञेया । **अपूरे** । अपूर+ङि । ११०० सू० अ-प्रत्यये, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य स्थाने इकारे **अपुरइ** इति भवति । **काले** । काल+ङि । १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **कालि** इति भवति । **मकर-ध्वज-अवस्कन्दः**=मयर-द्धय-दडवडउ, इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **यदेश्छुडुः** । यदि इत्यस्य पदस्य छुडु इत्यादेशो भवति । यथा—**यदि राजते व्यवसायः**=छुडु अग्घइ ववसाउ, प्रक्रिया १०५६ सूत्रे ज्ञेया । **यदि**=छुडु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्ति-र्जाता । **संबन्धिनः केर-तणौ** । सम्बन्धिन् इत्यस्य पदस्य स्थाने केर, तण इत्यादेशौ भवतः । यथा—

गतः स केसरी पिबत जलं निश्चिन्तं हरिणाः !।
यस्य सम्बन्धिना हुंकारेण मुखेभ्यः पतन्ति तृणानि ॥१५॥

भावार्थः—हे हरिणाः!-हे मृगाः !, **यस्य** सिंहस्य **सम्बन्धिना हुंकारेण**-गर्जनशब्देन युष्माकं **मुखे-भ्यः तृणानि**-घासकवलानि **पतन्ति**-अधस्तात् स्खलन्ति, **स केसरी**-सिंहो **गतः**, अतो यूयं **निश्चिन्तम्**, निर्गता चिन्ता यस्मात्तत् निश्चिन्तं चिन्तारहितं यथा स्यात्तथा, क्रियाविशेषणमिदम्, **जलं पिबत**, जल-पानं करणीयम्, भयकारणाऽपगमे सति भयं न कार्यमिति भावः ।

गतः । गत+सि । १७७ सू० तकारस्य लोपे,१८० सू० यकारश्रुतौ, ११०० सू० अप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **गयउ** इति भवति । **सः** । तद्+सि । इत्यत्र ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सु** इति भवति । **केसरी** । केसरिन्+सि । ११ सू० नकारलोपे, १०१५ सू० सेर्लोपे **केसरि** इति भवति । **पिबत** । पाधातुः पाने । पा+त । संस्कृतनियमेन पिब+त इति जाते,१७७ सू० अकारस्य लोपे, १०५५ सू० त इत्यस्य स्थाने हु इत्यादेशे **पिअहु** इति भवति । **जलम्** । जल+अम् । १००२ सू० अकारस्य, स्थाने उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **जलु** इति भवति । **निश्चिन्तम्** । निश्चिन्त+अम् । ३४८ सू० शकारलोपे, ३६० सू० चकार-द्वित्वे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १००० सू० अकारस्य स्थाने इकारे, ६१३ सू० अदन्तवदतिदेशात् ४९४ सू० अमोऽकारस्य लोपे,२३ सू० मकाराऽनुस्वारे **निच्चिन्तइं** इति भवति । **हरिणाः** । हरिण+जस् । ३४ सूत्रेण क्लीबत्वे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे **हरिणाइं** इति भवति । **यस्य** । यद्+ङस् । इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य स्थाने जकारे,१० सू० दकारलोपे, १००९ सू० ङसः स्थाने सु इत्यादेशे **जसु** इति भवति । **सम्बन्धिना** । सम्बन्धिन्+टा । प्रस्तुतसूत्रेण सम्बन्धिन् इत्यस्य स्थाने केर इत्यादेशे,११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **केरएं** इति भवति । **हुंकारेण** । हुंकार+टा । इत्यत्र १००० सू० स्वार्थे डडअ-(अडअ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **हुंकारडएं** इति भवति । **मुखेभ्यः** । मुख+भ्यस् । इत्यत्र १८७ सू० खकारस्य हकारे, १००८ सू० भ्यसः स्थाने हुं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **मुहहुं** इति भवति । **पतन्ति** । पत्लृ (पत्) पतने । पत्+अन्ति । ८९० सू० तकारस्य डकारे, ९१० सू० अकारागमे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **पडन्ति** इति भवति । **तृणानि** । तृण+जस् । १००० सू० ऋकारस्य ऋकारे एव स्थिते, १००० सू० अकारस्य आकारे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे **तृणाइं** इति भवति । **स-म्बन्धिना**=केरएं इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । सम्प्रति वृत्तिकारः तणादेशस्योदाहरणं प्रदर्शयति । यथा—**अथ भग्ना अस्माकं सम्बन्धिनः**=अह भग्गा अम्हहं तणा, एतेषां पदानां प्रक्रिया १०५० सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । **सम्बन्धिनः**=तणा इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **मा भैषीरित्यस्य** । मा भैषी,इ-

त्यस्य पद-द्वयस्य स्थाने **मब्भीसा** इत्यादेशो भवति । शब्दोऽयं स्त्रीलिङ्गको बोध्यः । यथा—

स्वस्थावस्थानामालपनं सर्वोऽपि लोकः करोति।
आर्तानां मा भैषीः यः सज्जनः स ददाति ॥१६॥

भावार्थः—सज्जनानां लक्षणं निरूप्यते-**स्वस्थावस्थानाम्**,स्वस्था-शोभना अवस्था येषां ते, स्वस्थावस्थाः, **तेषामालपनं**-संलापं सस्नेहं वार्तालापं **सर्वोऽपि लोकः**-जनसमुदायः **करोति**, किन्तु **आर्तानां**-पीडितानां नराणां **मा भैषीः**-भयं मा कार्षीः, इति आश्वासनं **यः ददाति**, **स** एव **सज्जनः**, शोभनो जनः सज्जनो, महाजनो भवति । धनाढ्यानां तु सर्वे जनाः सहायकाः भवन्ति, किन्तु निर्धनानां, निराश्रितानां परिव्यथितानाञ्च पुरुषाणां यः सहायको भवति स एव सत्पुरुषो ज्ञेयः ।

स्वस्थाऽवस्थानाम् । स्वस्थावस्थ+आम् । ३५० सू० संयुक्त-वकारलोपे,३४८ सू० उभयत्राऽपि संयुक्त-सकारलोपे,३६० सू० उभयत्राऽपि थकारद्वित्वे,३६१ सू० उभयत्राऽपि पूर्वथकारस्य तकारे,१०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **सत्थावत्थहं** इति भवति । **आलपनम्** । आलपन+अम् । २३१ सू० पकारस्य वकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अम्-प्रत्ययस्य लोपे **आलवणु** इति भवति । **सर्वोऽपि लोकः**—साहु वि लोउ, प्रक्रिया १०३७ सूत्रे ज्ञेया । **करोति**—करेइ,प्रक्रिया १००८ सूत्रे ज्ञेया । **आर्तानाम्** । आर्त+आम् । अपभ्रंशे आर्त इत्यस्य १०९३ सू० **आदन्न** इत्यस्य पदस्य प्रयोगे,१०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **आदन्नहं** इति भवति । **मा भैषीः** । मा इत्यव्ययपदम्,भैषीः इति ञिभीधातोः लुङ्-लकारे मध्यमपुरुषस्यैकवचनम् । मा भैषीः इत्यनयोः पदयोः स्थाने प्रस्तुतसूत्रेण मब्भीसा इत्यादेशे,सिप्रत्यये,११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये,स्त्रीत्वविवक्षायां ११०२ सू० डी-(ई)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **मब्भीसडी** इति भवति । **यः**—जो,प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया । **सज्जनः** । सज्जन+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **सज्जणु** इति भवति । **सः**—सो, प्रक्रिया १०७२ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **ददाति** । डुदाञ्(दा)दाने । दा+तिव् । १००० सू० आकारस्य एकारे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **देइ** इति भवति । **मा भैषीः**—मब्भीसडी इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **यद्यद्दृष्टं तत्तदित्यस्य** । यद्यद्दृष्टं तत्तद् इत्यस्य स्थाने **जाइट्ठिआ** इत्यादेशो जातः । यथा—

यदि रज्यसे यद्यद् दृष्टं तत्तद् हृदय ! मुग्धस्वभाव ! ।
लोहेन स्फुटिता यथा घनः सहिष्यते तापम् ॥१७॥

भावार्थः—कश्चित् महामनाः पुरुषः यत्र तत्र वस्तुष्वासक्तं हृदयमुपदिशति-**मुग्धस्वभाव** !,मुग्धः-मोहं प्राप्तः स्वभावः-प्रकृतिर्यस्य सः, तत्सम्बोधनम् । **हे हृदय** ! **यदि** भ्रमणशीलेन त्वया **यद् यद् दृष्टं तत्तद्**-तस्मिन्-तस्मिन् तत्र तत्रेति यावत् **अनुरज्यसे**-पदार्थेष्वासक्तो भवसि **तदा** त्वं **तापं**-दुःखं **सहिष्यसे** । **स्फुटिता-स्फोटमुपगच्छता लोहेन** यथा **घनः**-लोहकुट्टनाधारः तापं **सहिष्यते**-सहते इत्यर्थः । एवमेव त्वमपि परिपीडितो भविष्यसि । अयं भावः-तप्तो लोहः यदा कुट्टितो भवति, ततः उत्पतितैः स्फुलिङ्गकैः घनो नितान्तं तापं यथा सहते तथैव विषयेषु व्यासक्तस्त्वमपि तापं वासनाजनितं दुःखं सहेथाः ।

यदि—जइ,इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । **रज्यसे** । रञ्ज-[रञ्ज्]-धातुः रागे । रञ्ज्+से । अपभ्रंशे १०६६ सूत्रेण रञ्ज् इत्यस्य धातोः स्थाने रच्च इत्यस्य प्रयोगे, ६२९ सू० से इत्यस्य स्थाने सि इत्यादेशे **रच्चसि** इति भवति । **यद्-यद् दृष्टं तत्तद्** । अपभ्रंशे'यद् यद् दृष्टं तत्तद्'

एतेषां पदानां स्थाने जाइद्धिआ इत्यादेशे,**तत्तव्** इति पदद्वयं तस्मिन्-तस्मिन् इति सप्तम्यर्थ-बोधकं वर्तते, अतएवाऽत्र ङिप्रत्ययो भवति । ततः जाइद्धिआ+ङि इति जाते, १००१ सू० आकारस्य स्थाने अकारे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य एकारे **जाइद्धिअए** इति भवति । **हृदय !**=हिअडा !, प्रक्रियाऽस्यैव सूत्रस्य एकादशे श्लोके ज्ञेया । **मुग्धस्वभाव !** । मुग्धस्वभाव+सि । ३४८ सू० गकारलोपे, ३६० सू० धकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारे, ३५० सू० संयुक्तवकारलोपे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **मुद्ध-सहाव !** इति भवति । **लोहेन** । लोह+टा । १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे,स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **लोहें** इति भवति । **स्फुटित्वा** । स्फुट्-धातुः भ्रंशे । स्फुट्+तृन् । ३४८ सू० सकारलोपे,९०२ सू० टकारद्वित्वे,१११४ सू० तृनः स्थाने अणअ इत्यादेशे,अज्झीने परेण संयोज्ये,[illegible],१०१३ सू० [illegible], स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **फुट्टणएण** इति भवति । **यथा**=जिवँ, प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया । **घनः** । घन+सि । २२८ सू० नकारस्य णकारे,१००१ सू० अकारस्य आकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **घणा** इति भवति । **सहिष्यते** । षह-[सह्]-धातुः सहने । सह्+स्य+क्य+ते । इत्यत्र ६४९ सूत्रे '**क्वचित् क्योऽपि विकल्पेन भवतीति**' पाठात् क्याऽभावे, सह्+स्य+ते इति स्थिते, ९१० सू० धातोरन्ते अकारागमे, ६४६ सू० अकारस्य स्थाने एकारे, १०५९ सू० स्यस्य स्थाने सकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य स्थाने इचादेशे **सहेसइ** इति भवति । **तापम्** । ताप+अम् । इत्यत्र २३१ सू० पकारस्य स्थाने वकारे, १०१५ सू० अम्-प्रत्ययस्य लोपे **ताव** इति भवति । **यद् यद् दृष्टं तत्तत्**=जाइट्ठिअए, इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

१०६४— मया ज्ञातं मंक्ष्यामि अहं प्रेम-ह्रदे हुहुरु इति ।
केवलमचिन्तिता संपतिता विप्रियनौः झटिति ॥१॥

भावार्थः— काचिन्नायिका स्व-प्रिय-वियोगेन दुःखाऽभिव्यक्तिं व्यनक्ति—**मयेदं ज्ञातम्**-अवगतं **यदहं हुहुरु** इति शब्दं कृत्वा **प्रेमह्रदे**, प्रेम एव ह्रदस्तस्मिन् स्नेहसरोवरे **निमंक्ष्यामि**-निमज्जनं करिष्यामि, एतत्सर्वं मया **केवलं**—निश्चितरूपेण यथा स्यात्तथा चिन्तितमासीत् किन्तु दुर्दैवात् मम-सम्मुखे**ऽचिन्तिता**-आकस्मिकी **विप्रियनौः**-वियोगरूपा नौका **झटिति संपतिता**-समागता ।

मया=मइँ,इत्यस्य प्रक्रिया १०४८ सूत्रे ज्ञेया । **ज्ञातम्** । ज्ञाधातुः अवबोधने । ज्ञा+क्त-त । ६७८ सू० ज्ञाधातोः स्थाने जाण इत्यादेशे,६४५ सू० अकारस्य इकारे,१७७ सू० तकारलोपे,सिप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारानुस्वारे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **जाणिउँ** इति भवति । **मंक्ष्यामि** । टुमस्जू-[मस्ज्]-शुद्धौ । मस्ज्+स्य+मिव् । ७७२ सू० मस्ज्धातोः स्थाने बुड्ड इत्यादेशे, १००० सू० अकारस्य ईकारे, १०५९ सू० स्यस्य सकारे, १०५६ सू० मिवः स्थाने उं इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, बाहुल्येन अनुस्वारलोपे **बुड्डीसु** इति भवति । **अहम्**=हउँ, प्रक्रिया १००९ सूत्रे ज्ञेया । **प्रेमह्रदे** । प्रेम-ह्रद+ङि । १०६९ सू० रेफलोपे, ३६९ सू० मकारद्वित्वे,३९१ सू० हकारदकारयोः व्यत्यये-परिवर्तने,वैकल्पिकत्वात् १०६९ सू० रेफाऽलोपे,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **पेम्मद्रहि** इति भवति । **हुहुरु** इति शब्दाऽनुकरणं विद्यते,प्रस्तुतसूत्रेण शब्दाऽनुकरणे **हुहुरु** इति शब्दः प्रयुज्यते । **इति**=त्ति, प्रक्रिया ४२ सूत्रे ज्ञेया । **केवलम्** । क्रियाविशेषणमिदम् । केवल+अम् । इत्यत्र ४५८ सू० केवलार्थे नवर इत्यस्य प्रयोगे, १००० सू० अकारस्य इकारे, अव्यय-पदत्वात् अमो लोपे **नवरि** इति भवति । **अचिन्तिता** । अचिन्तिता+सि । १७७ सू० असंयुक्त-तकारलोपे,बाहुल्येन १८० सू० यकारश्रुतौ,१००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **अचिन्तिय**

इति भवति । **संपतिता** । संपतिता+सि । ८९० सू० तकारस्य डकारे, १७७ सू० अन्त्य-तकारलोपे, बाहुल्येन १८० सू० यकारश्रुतौ,स्त्रीत्वविवक्षायामाप्-(आ)-प्रत्यये,५ सू० दीर्घ-सन्धौ, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **संपडिय** इति भवति । **विप्रियमौः** । विप्रियनौ+सि । १०६९ सू० रेफलोपे, ३६० सू० पकारस्य द्वित्वे,१६४ सू० औकारस्य आव इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये,आप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **विप्पिय-आव** इति भवति । **झटिति** । अव्ययपदमिदम् । १९५ सू० टकारस्य डकारे, १००० सू० प्रथमस्येकारस्य अकारे, ३७० सू० लकारद्वित्वे **झडत्ति** इति भवति । **हुहुरु**:—**हुहुरु** । इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **आदि-ग्रहणात्** । आदिपदस्य ग्रहणात् निम्नोक्तस्थलेष्वपि प्रस्तुत-सूत्रस्य प्रवृत्तिर्भवति । यथा—

खाद्यते न तु कसरक्क शब्दं कृत्वा, पीयते न तु घुण्ट शब्दं कृत्वा ।
एवमेव भवति सुखाशा प्रियेण दृष्टेन नयनाभ्याम् ॥२॥

भावार्थः—कस्याश्चिन्नायिकायाः प्रिय-दर्शनजनितं प्रेमातिरेकं वर्ण्यते । यथा—**नयनाभ्यां-प्रियेण दृष्टेन** इत्यत्र हेतौ तृतीया सप्तम्यर्थे वा तृतीया, अतएव प्रिये दृष्टे सतीत्यर्थः कदाचित् नायिका-हृदये **सुखाशा**—सुखस्य आशा-वाञ्छा **एवमेव**-एतादृशी व्यथिका समुत्पन्ना भवति, यतो सा अन्न-पान-ग्रहणस्य स्वाभाविक-प्रक्रियामपि कर्तुं न शक्नोति । यथा-तथा **कसरक्क-शब्देन** चर्वणध्वनिनाऽपि **न खाद्यते**, भोजनसमये ये कसरक्क-शब्दाः जायन्ते, हर्षातिरेकेण सा नायिका तान् शब्दानपि न करोति, चर्वणमकृत्वैव भोजनमत्ति । तथा तथा **घुण्टशब्देन न पीयते**, जलपान-करण-समये घुण्ट इति शब्दः प्रायो भवति,परन्तु प्रियदर्शन-जनित-हर्षाऽऽधिक्येन सा नायिका इयती विह्वला संजाता,यद् घुण्टशब्दा-नपि न करोति, घुण्ट-शब्दमकृत्वैव जलं पिबतीति भावः ।

खाद्यते । खाद्धातुः भोजने । खाद्+क्य+ते । संस्कृतनियमेन खाद्य+ते इति जाते,२९५ सू० द्यस्य जकारे, ३६० सू० जकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **खज्जइ** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **तु** । अव्ययपदमिदम् । इत्यत्र १७७ सू० तकारलोपे **उ** इति भवति । कसरक्क-शब्दं कृत्वा इत्यर्थे प्रस्तुतसूत्रेण कसरक्क इति शब्दः प्रयुज्यते, भिस्-प्रत्यये, कसरक्क+भिस् इति जाते, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, स्थानिवत्त्वात् १००६ सू० अकारस्य एकारे **कसरक्केहिं** इति भवति । **पीयते** । पाधातुः पाने । पा+क्य+ते । ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोगे,६२८ सू० इचादेशे **पिज्जइ** इति भवति । **घुण्ट शब्दं** कृत्वा इत्यर्थे प्रस्तुतसूत्रेण घुण्ट इत्यस्य पदस्य प्रयोगे,भिस्प्रत्यये घुण्ट+भिस् इति जाते, कसरक्केहिंवदेव **घुण्टेहिं** इति भवति । **एवमेव**=एम्बइ,प्रक्रिया १०९१ सूत्रे ज्ञेया । **भवति**=होइ,प्रक्रिया ७३१ सूत्रे ज्ञेया । **सुखाशा** । सुखाशा+सि । अपभ्रंशे सुखाशा-स्थाने १०९३ सू० सुहच्छडी-शब्दः प्रयु-ज्यते, १०१५ सू० सेर्लोपे **सुहच्छडी** इति भवति । **प्रियेण** । प्रिय+टा । १०६९ सू० रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **पिएं** इति भवति । **दृष्टेन** । दृष्ट+टा । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अका-रस्य एकारे **दिट्ठें** इति भवति । **नयनाभ्याम्** । नयन+भ्याम् । २२८ सू० द्वितीय-नकारस्य णकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, स्थानिवत्त्वात् १००६ सू० अ-कारस्य एकारे **नयणेहिं** इति भवति । **कसरक्क-शब्दं कृत्वा**=कसरक्केहिं, **घुण्ट शब्दं कृत्वा**=घुण्टेहिं

इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

अद्याऽपि नाथः ममैव गृहे सिद्धार्थान् वन्दते ।
तावदेव विरहः गवाक्षेषु मर्कटचेष्टां ददाति ॥३॥

भावार्थः—अद्याऽपि-अधुना तु **नाथः मम गृहे सिद्धार्थान्**-सर्षपान् **वन्दते**-नमस्करोति, पुरातनसमये गन्तुकामो नरः सर्षपान् वन्दते स्म । अतएव नायकस्य सर्षपवन्दनाद् प्रियो गन्तुमिच्छतीति नायिका प्रत्येति, सम्प्रति तु मम कान्तः गृहे एवाऽवस्थितोऽस्ति, नाऽत्र तस्याऽभाव इत्यर्थः । तथाऽपि **तावदेव**-पत्युः गमनात्पूर्वमेव **विरहः**-वियोगः **गवाक्षेषु**-वातायनेषु **मर्कट-चेष्टां**, मर्कटस्य-वानरस्य चेष्टां, व्यापारं **ददाति**-नर्तनं करोति । इष्टजनस्य गमनात्पूर्वमेव वियोगः परिपीडयतीति भावः ।

अद्य=अज्ज, इत्यस्य प्रक्रिया १०८५ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । **अपि**=वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **नाथः**=नाहु, प्रक्रिया १०३१ सूत्रे ज्ञेया । **मम**=महु, प्रक्रिया १०५० सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **एव** । अव्ययपदमिदम् । १०९१ सू० एवपदस्य जि इत्यादेशे, ३७० सू० जकारद्वित्वे **ज्जि** इति भवति । **गृहे** । गृह+ङि । ४१५ सू० गृहस्य घर इत्यादेशे, १००५ ङिना सह अकारस्य इकारे **घरि** इति भवति । **सिद्धार्थान्** । सिद्धार्थ+शस् । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० थकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० शसो लोपे **सिद्धत्था** इति भवति । **वन्दते** । वदि अभिवादनस्तुत्योः । संस्कृतनियमेन वन्द्+ते इति जाते, ९१० सू० अकारागमे, ६४७ सू० अकारस्य स्थाने एकारे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **वन्देइ** इति भवति । तावद्=ताऊँ, प्रक्रिया १०७७ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । **एव**=जि, प्रक्रिया १०९१ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **विरहः** । विरह+सि । १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **विरहु** इति भवति । **गवाक्षेषु** । गवाक्ष+सुप् । इत्यत्र २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०१८ सू० सुपः स्थाने हिं इत्यादेशे, स्थानिवत्त्वात् १००६ सू० अकारस्य एकारे, १०८१ सू० उच्चारणलाघवे **गवक्खेँहिं** इति भवति । **मर्कटचेष्टाम्** । मर्कट-चेष्टा+अम् । १०६९ सू० रेफलोपे, ३६० सू० ककारद्वित्वे, १९५ सू० टकारस्य डकारे, प्रस्तुतसूत्रेण चेष्टाऽनुकरण-द्योतकस्य चेष्टाशब्दस्य घुग्घ इत्यादेशे, १००० सू० अकारस्य इकारे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **मक्कड-घुग्घिउ** इति भवति । **ददाति**=देइ, इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया १०९३ सूत्रस्य षोडशे श्लोके ज्ञेया । **मर्कटचेष्टाम्**=मक्कडघुग्घिउ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता ।

शिरसि जराखण्डा लोमपटी गले मणिका न विंशतिः ।
ततोऽपि गोष्ठाः कारिताः मुग्धया उत्थानोपवेशनम् ॥४॥

भावार्थः—कस्याश्चिद् नायिकायाः सौन्दर्यातिरेकं व्यञ्जयति कविः-**मुग्धायाः**-सुन्दर्याः **शिरसि**-शीर्षे **लोमपटी**-ऊर्णाप्रावरणं वर्तते,कीदृशी लोमपटी ? **जराखण्डा** जरया-वृद्धत्वेन खण्डा-खण्डशो जाता, अतिपुरातनेत्यर्थः,तस्याः **गले**-कण्ठे **विंशतिः**-विंशतिसंख्यकाः **मणिका** अपि न वर्तन्ते,शोभावर्धक-बहुमूल्य-हारादिकमपि तस्याः पार्श्वे नाऽस्तीति । **ततोऽपि**-तथापि तया **मुग्धया गोष्ठा**-गोकुले तिष्ठन्तीति गोष्ठाः, अत्र "**तात्स्थ्यात् तद्व्यपदेशः**" इति न्यायात् गोष्ठस्थाः पुरुषाः, गोपालाः **उत्थानोपवेशनम्**, उत्थानं च उपवेशनं चेत्युत्थापनोपवेशनं **कारिताः** । दीनहीनदशाया अपि तस्याः सुन्दर्याः सम्मुखे गोपालाः बद्धाञ्जलयः, आज्ञाकारिणश्च तिष्ठन्तीति भावः ।

शिरसि । शिरस्+ङि । २६० सू० शकारस्य सकारे, ११ सू० सकारलोपे, १००५ सू० ङिना

सह अकारस्य इकारे सिवि इति भवति। जरा-खण्डा। जराखण्ड+सि। ४ सू० आकारस्य अकारे, स्त्रीत्वविवक्षायां ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे जरखण्डी इति भवति। लोमपटी। लोमपटी+सि। अपभ्रंशे, १०९३ सू० लोमपटी इत्यर्थे लोअडी-शब्दः प्रयुज्यते, सेर्लोपे लोअडी इति भवति। गले। गल+ङि। १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे गलि इति भवति। मणिकाः। मणिक+जस्। इत्यत्र १७७ सू० ककारस्य लोपे, बाहुल्येन १८० सू० यकारस्य श्रुतौ, ११०० सू० डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे मणिअडा इति भवति। न। अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। विंशतिः। विंशति+सि। २८ सू० अनुस्वारस्य लोपे, ९२ सू० तिशब्देन सह इकारस्य ईकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, स्त्रीत्वविवक्षायामाप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घसन्धौ, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे वीस इति भवति। ततः=तो, इत्यस्य प्रक्रिया १०८८ सूत्रे ज्ञेया। अपि=वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया। गोष्ठाः। गोष्ठ+जस्। ३४८ सू० षकारलोपे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, बाहुल्येन ८४ सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ, ११०० सू० डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे गोट्ठडा इति भवति। कारिताः। डुकृञ्-(कृ)-धातुः करणे। कृ+णिग्+क्त। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६३८ सू० णिग आव इत्यादेशे, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, जस्-प्रत्यये, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे कराविआ इति भवति। मुग्धया। मुग्धा+टा। ३४८ सू० गकारलोपे ३६० सू० धकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, ५१८ सू० टा-स्थाने एकारे मुद्धए इति भवति। उत्थानोपवेशनम्। उत्थानोपवेशन+अम्। अपभ्रंशे १०९४ सू० उत्थानोपवेशनस्य उट्ठबईस इति प्रयुक्ते, १०१५ सू० अमो लोपे उट्ठबईस इति भवति। उत्थानोपवेशनम्=उट्ठ-बईस इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। इत्यादि। एवमेवाऽन्यान्यपि उदाहरणानि बोध्यानि।

★ अथ कथम् आदि पदों को छोने वाली आदेशविधि ★

अपभ्रंशभाषा में कथम् आदि शब्दों से सम्बन्धित जो-जो आदेशादि कार्य होते हैं, अब सूत्रकार द्वारा उन का निर्देश किया जा रहा है—

१०७२—अपभ्रंशभाषा में **कथम्, यथा** और **तथा** इन शब्दों के **थादि** [जिस के आदि में थकार हो] अवयव के स्थान में **डेम=एम, डिम=इम, डिह=इह** और **डिध=इध** ये चार डित् [जिस में डकार इत्-लुप्त किया गया हो] आदेश होते हैं। जैसे—

कथं समाप्यतां दुष्टं दिनं, कथं रजनी शीघ्रं भवति।
नव-वधू-दर्शन-लालसः वहति मनोरथान् सोऽपि॥१॥

अर्थात्—यह दुष्ट दिन कैसे समाप्त हो, और शीघ्र ही रात हो जाए, नव-वधू के दर्शन की लालसा रखने वाला मनुष्य इस प्रकार के मनोरथों को धारण कर रहा है।

यहां पर १—**कथम्**=केम [किस तरह], २—**कथम्**=किध [कैसे] इन पदों में थादि अवयव को **डेम=एम** और **डिध=इध** ये दो डित् आदेश किए गए हैं। **डिम=इम** आदेश का **उदाहरण**—

ओ! गौरी-मुख-निर्जितकः, वार्दले निलीनः मृगाङ्कः।
अन्योऽपि यः परिभूत-तनुः स कथं भ्रमति निश्शंकम्॥२॥

अर्थात्—अरे ! गौरी [सुन्दरी] के सुन्दर मुख से पराजित यह मृगाङ्क [चन्द्र] बादलों में छिप गया है,जब चन्द्रमा की यह दशा है,तो दूसरा व्यक्ति जिस का कि पराभव [तिरस्कार] हो गया है, वह निश्शंक हो कर कैसे भ्रमण कर सकता है ?

यहां पर **कथम्**=किवँ (कैसे), इस पद में **आदि** अवयव को डिम [डित् इम] यह आदेश किया गया है। **डिह्**=इह आदेश का उदाहरण—

बिम्बाधरे तन्व्याः रदन-व्रणः कथं स्थितः श्री-आनन्द !।
निरुपमरसं प्रियेण पीत्वा शेषस्य दत्ता मुद्रा ॥३॥

अर्थात्—हे श्री आनन्द [किसी व्यक्ति का नाम है] तनु-पतले शरीर वाली स्त्री के बिम्ब फल के समान लाल अधर [निचले ओंठ] पर दन्तक्षत [घाव] ऐसे प्रतीत होता है कि मानों निरुपम [अनुपम] रस पीकर प्रिय के द्वारा शेष रस पर मुद्रा [मोहर] अंकित कर दी गई हो।

यहां पर **कथम्**=किह [कैसे] इस अव्ययपद के **आदि** अवयव को डिह अर्थात् **डित् इह** यह आदेश किया गया है। **डेम**=एम आदेश के अन्य उदाहरण—

भण सखि ! निभृतकं तथा मयि यदि प्रियो दृष्टः सदोषः।
यथा न जानाति मम मनः पक्षाऽऽपतितं तस्य ॥४॥

अर्थात्—हे सखि ! यदि तू ने प्रिय को मुझ में सदोष [दोष वाला,नाराज] देखा है,तो गुप्त-रूप से कह दे क्योंकि उस के पक्ष में पड़ा हुआ मेरा मन उस के दोष को नहीं जान सकता।

यहां पर १—**तथा**=तेवँ (वैसे), २—**यथा**=जेवँ (जैसे) इन दोनों पदों में **आदि** अवयव के स्थान में **डेम** [डित् एम] यह आदेश किया गया है। **डिम्**=इम के अन्य **उदाहरण**—**यथा यथा व-क्रिमाणं लोचनयोः। तथा तथा मन्मथः निजकशरान्**=जिवँ जिवँ वङ्किम लोअणहं। तिवँ तिवँ वम्महु निअय-सर [जैसे-जैसे नेत्रों की वक्रता होती है। वैसे-वैसे मन्मथ-कामदेव अपने बाणों को]यहां पर—१—**यथा**=जिवँ (जैसे), २—**तथा**=तिवँ (वैसे) इन पदों में **आदि** अवयव के स्थान में **डिम** [**डित् इम**] यह आदेश किया गया है।

मया ज्ञातं प्रिये! विरहितानां, काऽपि धरा भवति विकाले ?।
केवलं मृगाङ्कोऽपि तथा तपति, यथा दिनकरः क्षयकाले ॥५॥

इस श्लोक की व्याख्या १०४८ वें सूत्र में की जा चुकी है। पाठक वहां देखें। यहां पर—**तथा**=तिह [वैसे] २—**यथा**=जिह [जैसे] इन पदों में **आदि** अवयव के स्थान में डिह [डित् इह] यह आदेश किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि इसी प्रकार **तथा**=तिध(वैसे)और **यथा**=जिध(जैसे)इन पदों के उदाहरण भी समझ लेने चाहिएं। इन पदों में **आदि** अवयव को **डित् इध** यह आदेश किया गया है।

१०७३—अपभ्रंश भाषा में **यादृक्** आदि शब्दों के **आदि** [जिस के आदि में दकार हो] अवयव के स्थान में **डित्** (जिस में डकार इत् हो) एह यह आदेश होता है। जैसे—

मया भणितं बलिराज ! त्वं कीदृग् मार्गण एषः।
यादृक् तादृग् नाऽपि भवति, मूढ ! स्वयं नारायणः ईदृक् ॥१॥

अर्थात्—हे बलिराज ! (बलियों के स्वामिन् !) मैंने तुझे कहा है कि यह मांगने वाला कैसा है ? कौन है ? । इस प्रश्न का समाधान करते हुए बलिराज फरमाते हैं कि हे मूर्ख ! यह जैसा तैसा अर्थात् साधारण याचक नहीं है, किन्तु यह तो स्वयं नारायण [विष्णु] ही हो सकता है।

यहां --१—कीदृग्=केहउ (कैसा), २—यादृग्=जेहु (जैसा), ३—तादृग्=तेहु (वैसा), ४—ईदृग्=एहु (ऐसा) इन पदों में दादि अवयव के स्थान में डेहु [डित् एह] यह आदेश किया गया है।

१०७४—अपभ्रंश भाषा में अदन्त [जिस के अन्त में अकार हो] यादृग् आदि अर्थात् यादृश तादृश, कीदृश तथा ईदृश इन शब्दों के दादि [जिस में दकार आदि में हो] अवयव के स्थान डित् [जिस में डकार इत् हो] अइस यह आदेश होता है। जैसे—१—यादृशः=जइसो [जैसा], २—तादृशः=तइसो [वैसा], ३—कीदृशः=कइसो [कैसा], ४—ईदृशः=अइसो [ऐसा] यहां पर यादृश आदि शब्दों के दादि अवयव को डित् अइस यह आदेश किया गया है।

१०७५—अपभ्रंश-भाषा में यत्र और तत्र इन शब्दों के 'त्र' प्रत्यय के स्थान में एत्थु और अत्तु ये दो डित् आदेश होते हैं। जैसे—

यदि स घटयति प्रजापतिः, कुत्राऽपि लात्वा शिक्षाम्।
यत्राऽपि तत्राऽपि अत्र जगति भण तदा तस्याः सादृश्यम्?॥१॥

अर्थात्—यदि वह प्रजापति-ब्रह्मा यहां पर, वहां पर अथवा कहीं पर भी शिक्षा प्राप्त करके रचना करे तो क्या इस संसार में उस स्त्री के समान [किसी पुरुष की] रचना कर सकता है? कभी नहीं। भाव यह है कि इस नारी का सौन्दर्य अद्वितीय है।

यहां पर १—यत्र=जेत्थु (जहां पर), २—तत्र=तेत्थु (वहां पर) इन दोनों पदों में 'त्र' के स्थान में डित् एत्थु यह आदेश किया गया है। इस के अतिरिक्त—१—यत्र स्थितः=जत्तु ठिदो (जहां पर ठहरा हुआ है), २—तत्र स्थितः=तत्तु ठिदो (वहां पर ठहरा हुआ है), यहां पर त्र प्रत्यय के स्थान में डित् अत्तु यह आदेश किया गया है।

१०७६—अपभ्रंशभाषा में कुत्र और अत्र इन शब्दों के 'त्र' के स्थान में डित् एत्थु यह आदेश होता है। जैसे—कुत्राऽपि लात्वा शिक्षां, यत्राऽपि तत्राऽपि अत्र जगति=केत्थु वि लेप्पिणु सिक्खु, जेत्थु वि, तेत्थु वि, एत्थु जगि [यहां पर, वहां पर अथवा कहीं पर भी शिक्षा प्राप्त करके इस जगत में] यहां पर—१—कुत्र=केत्थु [कहां पर], २—अत्र=एत्थु [यहां पर] इन पदों में 'त्र' प्रत्यय के स्थान में डित् 'एत्थु' यह आदेश किया गया है।

१०७७—अपभ्रंश-भाषा में यावत् और तावत् इन दोनों अव्ययपदों के वादि [जिस के आदि में वकार हो] अवयव को म, उं और महिं ये तीन आदेश होते हैं। जैसे—

यावत् न निपतति कुंभ-तटे सिंह-चपेटा-चटात्कारः।
तावत् समस्तानां मदकलानां पदे पदे वाद्यते ढक्का॥१॥

अर्थात्—जब तक समस्त मदोन्मत्त हाथियों के *कुम्भ-तट पर चटात्कार शब्द करता पर सिंह का चपेटा नहीं पड़ता तभी तक उन पर पग-पग पर ढक्का (बड़ा ढोल) सुनाई देती है।

यहां पर—१—यावत्=जाम (जबतक), २—तावत्=ताम (तब तक) इन पदों में वादि अवयव को 'म' का आदेश किया गया है। 'उं' आदेश का उदाहरण—

तिलानां तिलत्वं तावत्, परं यावत् न स्नेहाः गलन्ति।
स्नेहे प्रणष्टे ते एव तिलाः, तिलाः भ्रष्टाः खलाः भवन्ति॥२॥

अर्थात्—तिलों का तिलत्व [तिलपना] तभी तक है, जब तक उन में से स्नेह [चिकनाहट,

*हाथी के माथे के दो मांसपिण्ड। तट शरीर के कतिपय अवयवों की संज्ञा है। जैसे—कटितट, कुचतट आदि।

तेल] नहीं निकलता। स्नेह के निकल जाने पर वे तिल भी तिल रूप से भ्रष्ट हो कर खल रूप हो जाते हैं।

यहां पर—१—**तावत्**=ताउँ (तब तक), २—**यावत्**=जाउँ [जब तक] इन पदों में **वादि** **अवयव** को 'उँ' यह आदेश किया गया है। **'महिं' आदेश का उदाहरण**—

यावद् विषमा कार्य-गतिः, जीवानां मध्ये एति।
तावद् आस्तामितरो जनः, सुजनोऽप्यन्तरं ददाति ॥३॥

अर्थात्—जब जीवों पर विषम कार्यगति [कर्मगति] आती है, अर्थात् जीवों का अशुभ कर्मोदय होता है, तब औरों [साधारण मनुष्यों] का क्या कहना, वे तो बदल ही जाते हैं किन्तु सुजन [श्रेष्ठ व्यक्ति] में भी अन्तर आ जाता है।

यहां पर—१—**यावद्**=जामहिँ [जब तक], २—**तावद्**=तामहिँ [तब तक] इन पदों में **वादि** अवयव को **'महिं'** यह आदेश किया गया है।

१०७८—अपभ्रंश भाषा में **अत्वन्त** [जिस के अन्त में अतु प्रत्यय हो] **यद्** और **तद्** इन शब्दों के **अर्थात् यावत्** और **तावत्** इन शब्दों के **वादि** [जिस के आदि में वकार हो] अवयव को **डित्** [जिस में डकार इत् हो] **एवड** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**यावद् अन्तरं रामरावणयोः, तावद् अन्तरं पट्टन-ग्रामयोः**=जेवडु अन्तरु रावण-रामहँ, तेवडु अन्तरु पट्टणगामहँ [जितना अन्तर राम और रावण में डकार है, उतना ही अन्तर पट्टन-नगर और ग्राम में होता] यहां पर १—**यावद्**=जेवडु (जितना), २—**तावद्**=तेवडु (उतना) इन पदों में **वादि** अवयव को **डित् 'एवड'** यह आदेश विकल्प से किया गया है। आदेश के अभाव पक्ष में—**यावद्** का जेत्तुलो [जितना] और **तावद्** का **तेत्तुलो** [उतना] यह रूप बनता है।

१०७९—अपभ्रंश भाषा में अत्वन्त **इदम्** और **किम्** अर्थात् **इयत्** और **कियत्** इन शब्दों के **यकारादि** [जिसके आदि में यकार हो] अवयव को **डित् 'एवड'** यह आदेश विकल्प से होता है। जैसे—**१—इयद् अन्तरम्**=एवडु अन्तरु [इतना अन्तर है], **२—कियद् अन्तरम्?**=केवडु अन्तरु? [कितना अन्तर है?] यहां पर **यकारादि** अवयव के **स्थान में डित् 'एवड'** यह आदेश विकल्प से **किया गया है।** **आदेश के अभावपक्ष में**—**इयद्** का एत्तुलो और **कियद्** का केत्तुलो यह रूप बन जाता है।

१०८०—अपभ्रंश भाषा में **'परस्पर'** शब्द के आदि में **अकार** जोड दिया जाता है। जैसे—

ते मुद्गाः हारिताः ये परिविष्टाः तेषाम्।
परस्परं युध्यमानानां स्वामी पीडितः येषाम् ॥१॥

अर्थात्—परस्पर लडने वाले जिन लोगों के स्वामी पीडित-दुःखी हों, उनको परोसे गए मूंग **व्यर्थ** ही जाते हैं। भाव यह है कि जो सेवक परस्पर लडते रहते हैं, और स्वामी को खेद-खिन्न बनाते रहते हैं, उनको दिया गया वेतन या पारितोषिक निष्फल ही समझना चाहिए। यहां पर—**परस्परम्**=**अवरोप्पर** [आपस में] इस पद में आदि में अकार का संयोजन किया गया है।

१०८१—अपभ्रंश-भाषा में **ककार** आदि व्यञ्जनों में यदि **एकार** और **ओकार** स्थित हों तो प्रायः इन के **उच्चारण** में **लाघव** किया जाता है। अर्थात् इनके उच्चारण में लघुता आ जाती है, एकार और ओकार को ह्रस्व मान लिया जाता है। जैसे—**१—सुखेन चिन्त्यते मानः**=सुधेँ चिन्तिज्जइ माणु [सुख की दशा में स्वाभिमान का चिन्तन किया जाता है], २—**तस्य अहं कलियुगे दुर्लभस्य**=तसु हउँ कलिजुगि दुल्लहहो [कलियुग में उस दुर्लभ को] यहां पर—**सुखेन**=सुधेँ इस पद में ए-

कार के तथा दुर्लभस्य=दुल्लहहो, इस पद में ओकार के उच्चारण में लाघव लाया गया है। अर्थात्-उच्चारण करते समय इनको हलकी आवाज़ से [ह्रस्व की भाँति] बोला जाता है।

१०८२—अपभ्रंश-भाषा में पद के अन्त में विद्यमान उं, हुं, हिं और हं इन शब्दों के उच्चारण में प्रायः लाघव होता है। अर्थात्-अपभ्रंश भाषा में उं, हुं, हिं और हं इनका अनुस्वार अनुनासिक हो जाता है। ध्यान रहे कि अनुस्वार को गुरु माना जाता है और अनुनासिक को लघु। अतः उच्चारण के लाघव का अर्थ है—उस का ह्रस्व बन जाना। जैसे १—अन्यद् यत् तुच्छकं तस्याः धन्यायाः=अन्नु जु तुच्छउँ, तहेँ धणहे [उन नायिका का अन्य जो तुच्छ है], २—बलि क्रिये सुजनस्य=बलि किज्जउँ सुअणस्सु [सज्जन पुरुष के मैं बलिहारी जाती हूं], ३—दैवं घटयति वने तरूणाम्=दइउ घडावइ वणि तरुहुँ [वन में पक्षियों के लिए दैव-भाग्य वृक्षों के फल पैदा कर देता है], ४—तरुभ्योऽपि वल्कलम्=तरुहुँ वि वक्कलु [वृक्षों से छाल भी], ५—खड्ग-विसाधितं यस्मिन् लभामहे=खग्ग-विसाहिउ जहिँ लहहुं [जिस देश में तलवार से विसाधित-कमाया हुआ, प्राप्त करते हैं], ६—तृणानां तृतीया भङ्गी नाऽपि=तणहँ तइज्जी भङ्गि न वि [तिनकों की तीसरी अवस्था नहीं है] यहां पर—१—तुच्छकम्=तुच्छउँ, तथा क्रिये=किज्जउँ, इन पदों में 'उं' के, २—तरूणाम्=तरुहुँ, इस पद में हुं के तथा ३—तृणानाम्=तणहँ, इन पदों में हं के उच्चारण में लाघव लाया गया है। प्रायः [बहुल] का अधिकार होने से लहहुं यहां पर प्रस्तुतसूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकी।

१०८३—अपभ्रंश-भाषा में 'म्ह' इस के स्थान में मकाराक्रान्त [मकार से युक्त] भकार अर्थात् 'म्भ' यह आदेश विकल्प से होता है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि ३४५ सूत्र से क्ष्म, ष्म, स्म और ह्म आदि संयुक्त व्यञ्जनों के स्थान में होने वाले 'म्ह' इस आदेश का यहां पर ग्रहण किया जाता है, क्योंकि संस्कृतभाषा में 'म्ह' यह संयुक्तवर्ण सम्भव ही नहीं है। जैसे—१—ग्रीष्मः=गिम्हो=गिम्भो (गरमी की ऋतु), और २—श्लेष्मा=सिम्हो=सिम्भो (बलगम) इन पदों में 'म्ह' के स्थान में 'म्भ' यह आदेश किया गया है।

ब्राह्मण ! ते विरलाः केऽपि नराः ये सर्वाङ्ग-छेकाः।
ये वक्राः ते वञ्चकतराः, ये ऋजवः ते बलीवर्दाः ॥१॥

अर्थात्—हे ब्राह्मण ! ऐसे मनुष्य संसार में बहुत कम हैं, जो सर्वप्रकार से दक्ष [चतुर] हों, क्योंकि जो वक्र हैं, वे तो वञ्चक [धोखा देने वाले] हैं, और जो ऋजु-सरल हैं, वे बलीवर्द-बैल के समान हैं, मूर्ख हैं। यहां पर—ब्रह्मन् !=बम्ह !=बम्भ ! [हे ब्राह्मन्] इस पद के 'म्ह' को 'म्भ' यह आदेश किया गया है।

१०८४—अपभ्रंशभाषा में अन्यादृश इस शब्द के स्थान में अन्नाइस और अवराइस ये दो आदेश होते हैं। जैसे—अन्यादृशः=अन्नाइसो, अवराइसो [औरों जैसा] यहां पर अन्यादृश शब्द के स्थान में अन्नाइस और अवराइस ये दो आदेश किए गए हैं।

१०८५—अपभ्रंशभाषा में "प्रायः" इस अव्ययपद के स्थान में प्राउ, प्राइव, प्राइम्व और पग्गिम्व ये चार आदेश होते हैं। जैसे—

अन्ये ते दीर्घे लोचने, अन्यद् तद् भुज-युगलम्।
अन्यः स घन-स्तन-भारः, तदन्यदेव मुख-कमलम् ॥
अन्यः स केश-कलापः सोऽन्य एव प्रायो विधिः।
येन नितम्बिनी घटिता, सा गुण-लावण्य-निधिः ॥१॥

अर्थात् - वे विशाल नेत्र, वह भुज-युगल [भुजाओं का जोड़ा], वह घन-स्तन-भार [घन-कसे हुए, स्तनों का भार-बोझ], वह मुख-कमल और वह केश-कलाप [बालों का ढेर] अन्य है, अर्थात् असाधारण [विलक्षण] ही है। यहां तक कि वह विधि [भाग्य] भी अन्य [और] ही है जिस ने कि गुणों और लावण्य की निधिस्वरूप उस नितम्बिनी [बड़े और सुन्दर नितम्बों वाली स्त्री] की रचना की है। यहां पर 'प्रायः' इस अव्ययपद के स्थान में 'प्राउ' यह आदेश किया गया है। 'प्राइव' आदेश का उदाहरण—

प्रायो मुनीनामपि भ्रान्तिः, तेन मणिकान् गणयन्ति।
अक्षये, निरामये परमपदे, अद्याऽपि लयं न लभन्ते ॥२॥

अर्थात्—मुनिजनों को भी प्रायः भ्रान्ति बनी हुई है, इसी लिए वे माला के मणिकों [मनकों] को गिनते हैं, अर्थात् मालाएं फेरते हैं। इन मुनियों ने अभी तक अक्षय और निरामय [रोग-रहित] परमपद में लीनता को प्राप्त नहीं किया। यहां पर 'प्रायः' इस पद के स्थान में 'प्राइव' यह आदेश किया गया है। 'प्राइम्व' का उदाहरण—

अश्रुजलेन प्रायः गौर्याः सखि ! उद्वृत्ते नयनसरसी।
ते सम्मुखे सम्प्रेषिते दत्तः तिर्यग् घातं परम् ॥३॥

अर्थात्—हे सखि ! गौरी के नयन-रूप सरोवर यद्यपि अश्रुजल से उद्वृत्त हैं, अर्थात् उछल रहे हैं, फिर भी वे किसी कामुक व्यक्ति के सन्मुख प्रेषित किए गए तिर्यक् [टेढा] एवं विलक्षण घात कर डालते हैं। अकथनीय दुःख पहुंचाते हैं। भाव यह है कि पति-विरह-जन्य दुःख से व्याकुल सुन्दरी अश्रुपूर्ण नयनों से भी यदि किसी कामी व्यक्ति को निहारती है तब भी उसके विकार-पूर्ण नयन उस कामुक व्यक्ति को परिव्यथित कर देते हैं। इसके विपरीत, यदि वह सुन्दरी प्रसन्न नयनों द्वारा किसी कामुक व्यक्ति को देख ले तब तो उस व्यक्ति की दुर्दशा का कहना ही क्या है ? यहां पर प्रायः इस अव्ययपद के स्थान में प्रस्तुतसूत्र से **प्राइम्व** यह आदेश किया गया है। **पग्गिम्व** का उदाहरण—

एष्यति प्रियः रोषिष्यामि, अहं रुष्टां मामनुनयति।
प्रायः एतान् मनोरथान् दुष्करान् दयिता करोति ॥४॥

अर्थात्—प्रीतम जायगा, मैं रुष्ट हो जाऊंगी, रुष्ट हुई मुझ को वह मनायगा, इस प्रकार के दुष्कर [जिन का पूर्ण होना कठिन हो] मनोरथों को प्रायः दयिता [नायक की प्रिय नायिका] ही किया करती है। यहां पर 'प्रायः' इस अव्ययपद के स्थान में 'पग्गिम्व' यह आदेश किया गया है।

१०८६—अपभ्रंश भाषा में 'अन्यथा' इस अव्ययपद के स्थान में 'अनु' यह आदेश विकल्प से किया जाता है। जैसे—

विरहाऽनल-ज्वाला-करालितः पथिकः कोऽपि मङ्क्त्वा स्थितः।
अन्यथा शिशिरकाले शीतलजलाद् धूमः कुतः उत्थितः ॥१॥

अर्थात्—प्रतीत होता है कि विरहाऽग्नि की ज्वालाओं से दग्ध कोई पथिक डुबकी लगाए हुए जल में स्थित है, यदि ऐसा न होता तो शिशिर काल [माघ और फाल्गुण मास] में शीतल जल से धूआं कैसे निकलता ? यहां पर अन्यथा इस अव्ययपद के स्थान में 'अनु' यह आदेश विकल्प से किया गया है। आदेश के अभावपक्ष में-**अन्यथा**—अन्नह [नहीं तो] यह रूप बनता है।

१०८७—अपभ्रंश-भाषा में "कुतः" इस अव्ययपद के स्थान में **कउ** और **कहन्तिहु** ये दो

आदेश होते हैं। जैसे—

मम कान्तस्य गोष्ठस्थितस्य कुतः कुटीरकाणि ज्वलन्ति।
अथ रिपुरुधिरेण विध्यापयति अथ आत्मना, न भ्रान्तिः ॥१॥

अर्थात्—गोष्ठ [गोशाला, अहीरों का अड्डा,जमाव] में स्थित होने पर भी मेरे प्रिय के कुटीरक [छोटी कुटियाएं] क्यों जल रहे हैं? यदि ये किसी शत्रु ने जलाए हैं तो वह स्वयं रिपु के रुधिर से उन्हें बुझाएगा। अथवा अपने आप ही ये जल रहे हैं तो भी यह बिना किसी से सहायता लिए अपने आप ही इन को बुझा डालेगा, इस में कोई भ्रान्ति [सन्देह] नहीं करनी चाहिए।

यहां पर 'कुतः' इस अव्ययपद के स्थान में 'कउ' यह आदेश किया गया है। **कहन्तिहु** का **उदाहरण—धूमः कुतः उत्थितः**=धूमु कहन्तिहु उट्ठिअउ [धूआं कहां से उठा हुआ है] यहां पर **'कुतः'** इस अव्ययपद के स्थान में **'कहन्तिहु'** यह आदेश किया गया है।

१०८८—अपभ्रंश-भाषा में **ततः** और **तदा** इन शब्दों के स्थान में **'तो'** यह आदेश किया जाता है। जैसे—

यदि भग्नाः परकीयाः ततः सखि! मम प्रियेण।
अथ भग्ना अस्माकं सम्बन्धिनः तदा तेन मारितेन ॥१॥

इस श्लोक का अर्थ १०५० वें सूत्र के दूसरे श्लोक में दिया जा चुका है। यहां पर **'ततः'** इस अव्ययपद के स्थान में **'तो'** यह आदेश किया गया है।

१०८९—अपभ्रंश-भाषा में सूत्रोक्त **१—एवम्, २—परम्, ३—समम्, ४—ध्रुवम्, ५—मा,** और **६—मनाक्** इन पदों के स्थान में क्रमशः **१—एम्व, २—पर, ३—समाणु, ४—ध्रुवु, ५—मं** और **६—मणाउं** ये आदेश होते हैं। **एवम्** के स्थान में होने वाले **एम्व** का **उदाहरण**—

प्रियसंगमे कुतः निद्रा, प्रियस्य परोक्षस्य कथम्।
मया द्वे अपि विनाशिते, नैवं न तथा ॥१॥

अर्थात्—प्रीतम का संगम होने पर निद्रा कहां? और उस के परोक्ष [वियोग] में भी निद्रा कहां? दोनों प्रकार से मेरी निद्रा का नाश हो चुका है। भाव यह है कि न निद्रा इस तरह [पति की उपस्थिति में] आती है,और नांही उस तरह [पति के विरह-काल में] निद्रा की स्थिति बनती है। यहां पर—'एवम्' [इस प्रकार] इस अव्ययपद के स्थान पर **एम्व** यह आदेश किया गया है। **परम्** के स्थान में किए **पर** आदेश का **उदाहरण—गुणैः न सम्पत् कीर्तिः परम्**=गुणहिं न संपइ कित्ति पर [गुणों से सम्पत्ति नहीं,किन्तु कीर्ति मिलती है] यहां पर **'परम्'** के स्थान में **'पर'** यह आदेश किया गया है। **समम्** के स्थान में किए गए **समाणु** का **उदाहरण**—

कान्तो यत् सिंहस्य उपमीयते तन्मम खण्डितः मानः।
सिंहः नीरक्षकान् गजान् हन्ति प्रियः पद-रक्षैः समम् ॥२॥

अर्थात्—मेरे प्रीतम को जो सिंह से उपमा दी गई है, इस से मेरा मान खण्डित हुआ है क्योंकि सिंह तो नीरक्षक [जिस का कोई रक्षक न हो] हाथियों को ही मारता है, किन्तु मेरा प्रीतम पदातियों [पैदल सेना] से रक्षित हाथियों को मारता है। यहां पर—**समम्** [साथ] इस पद को **समाणु** यह आदेश किया गया है। **ध्रुवम्** के स्थान में किये गए **ध्रुवु** आदेश का **उदाहरण**—

चञ्चलं जीवितं, ध्रुवं मरणं, प्रिय! रुष्यसे किम्।
भविष्यन्ति दिवसाः रोषयुक्तस्य दिव्यानि वर्षशतानि ॥३॥

अर्थात्—हे प्रिय ! जीवन चञ्चल है, अस्थिर है, और मृत्यु ध्रुव-निश्चित है, अतः तू क्यों रुष्ट हो रहा है। रोषयुक्त व्यक्ति के थोड़े दिन भी सैंकड़ों दिव्य [स्वर्गीय] वर्षों के समान हो जाएंगे। भाव यह है कि दुःखी जन को कुछ दिन भी सैंकड़ों वर्षों तुल्य प्रतीत होते हैं। यहां पर '**ध्रुवम्**' इस पद के स्थान पर '**ध्रुवु**' यह आदेश किया गया है। '**मा**' के स्थान में किए गए '**मं**' इस आदेश का **उदाहरण**—**मा धन्ये ! कुरु विषादम्**=मं धणि ! करहि विसाउ [हे सुन्दरि ! विषाद मत कर] यहां पर 'मा' को '**मं**' यह आदेश किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में १००० वें सूत्र से प्रायः [बहुल] इस पद की अनुवृत्ति आने से कहीं पर 'मा' के स्थान में 'मं' यह आदेश नहीं भी होता। जैसे—

माने प्रनष्टे यदि न तनुः, तदा देशं त्यज।

मा दुर्जन-कर-पल्लवैः दर्श्यमानः भ्राम्य ॥४॥

अर्थात्—स्वाभिमान के नष्ट हो जाने पर यदि शरीर नहीं तो देश को अवश्य छोड़ देना चाहिए, क्योंकि दुर्जनों से कर-पल्लवों [कर रूपी पल्लव-कोंपल] द्वारा दिखाए जाते हुए व्यक्ति का भ्रमण करना सर्वथा अनुचित है। यहां पर '**मा**' इस पद के **स्थान में मं** यह आदेश नहीं हो सका।

लवणं विलीयते पानीयेन अरे ! खलमेघ मा गर्ज !।

ज्वालितं गलति तत्कुटीरकं गौरी तिम्यति अद्य ॥५॥

अर्थात्—अरे दुष्ट मेघ ! तू आज गरजना मत कर, क्योंकि पानी से लवण-लावण्य [सौन्दर्य] विलीन (नष्ट) हो रहा है और जलाया हुआ कुटीर गल रहा है तथा गौरी [सुन्दरी] वासनाजन्य अन्तर्वेदना से पीड़ित हो रही है। यहां पर भी '**मा**' इस अव्ययपद के स्थान में 'मं' यह आदेश नहीं हो सका। **मनाक्** के स्थान में किए गए '**मणाउं**' इस आदेश का **उदाहरण**—

विभवे प्रनष्टे वक्रः ऋद्धिभिः जन-सामान्यः।

किमपि मनाक् मम प्रियस्य शशी अनुहरति नाऽन्यः ॥६॥

अर्थात्—वैभव के नष्ट हो जाने पर मेरा प्रीतम वक्र और ऋद्धि के होने पर जनसामान्य की भांति चलता है। अर्थात् वक्रता से रहित हो जाता है। मेरे प्रिय की इस स्थिति का चन्द्रमा ही कुछ-कुछ अनुकरण करता है, अन्य कोई नहीं। यहां पर '**मनाक्**' इस अव्ययपद के स्थान में '**मणाउं**' यह आदेश किया गया है।

१०५०—अपभ्रंशभाषा में—१—**किल**, २—**अथवा**, ३—**दिवा**, ४—**सह** और ५—**नहि** इन शब्दों के स्थान में क्रमशः **१—किर**, **२—अहवइ**, **३—दिवे**, **४—सहुं** और **५—नाहिं** ये आदेश होते हैं। **किल के स्थान में किए गए 'किर' का उदाहरण**—

किल खादति, न पिबति, न विद्रवति, धर्मे न व्ययति रूप्यम् !

इह कृपणो न जानाति यथा यमस्य क्षणेन प्रभवति दूतः ॥१॥

अर्थात्—निश्चय ही कृपण व्यक्ति न तो कुछ खाता है, न पीता है, न धर्म में ही रुपया दान करता है, और नांही [अन्य किसी कार्य में] व्यय करता है, क्योंकि वह नहीं जानता कि यम का दूत क्षणभर में अपना प्रभुत्व जमा लेगा। तात्पर्य यह है कि व्यक्ति किसी भी क्षण मृत्यु के मुंह में आ सकता है, तथापि वह अपना हानिलाभ सोचने का यत्न नहीं करता। यहां पर '**किल**' के स्थान में '**किर**' यह आदेश किया गया है। **अथवा** के स्थान में किए गए '**अहवइ**' इस आदेश का **उदाहरण**—**अथवा न सुवंशानामेष दोषः**=अहवइ न सुवंसहं एह खोडि [अथवा अच्छे वंश वालों का यह दोष नहीं

है] यहां पर 'अथवा' इस अव्ययपद को 'अहवइ' यह आदेश किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में "१००० वें सूत्र में पठित 'प्रायः [बहुल]' इस पद का अधिकार [अनुवृत्ति] होने से" कहीं पर अथवा के स्थान में 'अहवइ' यह आदेश नहीं भी होता। जैसे—

यायते (गम्यते) तस्मिन् देशे, लभ्यते प्रियस्य प्रमाणम्।
यदि आयाति तदा आनीयते, अथवा तत्रैव (तत्रैव) निर्वाणम्॥२॥

अर्थात्—जिस देश में प्रीतम का प्रमाण [चिन्ह] मिलेगा उस देश में जाऊंगी, यदि वह आएगा तो ले आऊंगी, यदि वह नहीं आयगा तो वहीं पर निर्वाण [मृत्यु] को प्राप्त हो जाऊंगी। यहां पर 'अथवा' के स्थान में 'अहवइ' यह आदेश नहीं हो सका। **दिवा** के स्थान में किए गए **दिवे** इस आदेश का उदाहरण-**दिवा दिवा गङ्गा-स्नानम्**=दिवि-दिवि गङ्गा-ण्हाणु [प्रतिदिन गङ्गास्नान है] यहां पर '**दिवा**' के स्थान में '**दिवे**' यह आदेश किया गया है। '**सह**' के स्थान किए '**सहुं**' का उदाहरण—

यतः प्रवसता सह न गता, न मृता वियोगेन तस्य।
लज्ज्यते सन्देशान् ददतीभिः सुभग-जनस्य॥३॥

अर्थात्—न तो मैं प्रवास [विदेश-गमन] करते हुए के साथ गई और नां ही मैं उस के वियोग में मरी, अतः अब सौभाग्यशाली प्रिय को सन्देश देती हुई मुझ को लज्जा आ रही है। यहां पर '**सह**' के स्थान में '**सहुं**' यह आदेश किया गया है। **नहि** के स्थान में कृत '**नाहि**' इस आदेश का **उदाहरण**—

इतः मेघाः पिबन्ति जलम्, इतः वडवानलः आवर्तते।
प्रेक्षस्व गभीरिमाणं सागरस्य, एकाऽपि कणिका नहि अपभ्रश्यते॥४॥

अर्थात्—इधर तो बादल पानी पी रहे हैं और उधर बड़वानल (समुद्र की आग) पानी को शोषित कर रहा है, फिर भी पानी की एक बून्द भी उसमें से कम नहीं होती। समुद्र की इस गम्भीरता को देखो। यहां पर '**नहि**' इस अव्ययपद के स्थान में '**नाहि**' यह आदेश किया गया है।

१०६१—अपभ्रंश-भाषा में—१—**पश्चात्**, २—**एवमेव**, ३—**एव**, ४—**इदानीम्**, ५—**प्रत्युत** और ६—**इतस्**, इन शब्दों के स्थान में क्रमशः—१—**पच्छइ**, २—**एम्वइ**, ३—**जि**, ४—**एम्वहिं**, ५—**पच्चलिउ** और ६—**एत्तहे** ये आदेश होते हैं। **पश्चात्** के स्थान में किए गए **पच्छइ** इस आदेश का **उदाहरण**—**पश्चात् भवति विभातम्**=पच्छइ होइ विहाणु, इन पदों का अर्थ १०३३ वें सूत्र में लिखा जा चुका है। यहां **पश्चात्** के स्थान में '**पच्छइ**' यह आदेश किया गया है। **एवमेव** के स्थान में किए **एम्वइ** का **उदाहरण**—**एवमेव सुरतं समाप्तम्**=एम्वइ सुरउ समत्तु [इसी तरह सम्भोग समाप्त हो गया] यहां पर **एवमेव** इस पद के स्थान में **एम्वइ** यह आदेश किया गया है। **एव** शब्द के स्थान में किए गए **जि** इस आदेश का **उदाहरण** इस प्रकार है—

यातु मा यान्तं पल्लवत द्रक्ष्यामि पदानि ददाति।
हृदये तिर्यग् अहमेव परं प्रियः डम्बराणि करोति॥१॥

अर्थात्—हे सखि! मेरे प्रीतम को जाने दो, जाते हुए का पल्ला मत पकड़ो, मैं देखूंगी कि वह कितने पग जाता है? उस के हृदय में तो मैं ही छिपी हुई हूं, ऐसी स्थिति में वह जा ही नहीं सकता, वह मेरा प्रिय केवल जाने का आडम्बर करता है। यहां पर '**एव**' इस पद को '**जि**' यह आदेश किया गया है। **इदानीम्** के स्थान में किए गए '**एम्वहिं**' आदेश का **उदाहरण**—

हरि नर्तितः प्राङ्गणे, विस्मये पातितः लोकः।
इदानीं राधा-पयोधरयोः, यद् भाति तद् भवतु॥२॥

अर्थात्—प्राङ्गण [आँगन] में हरि को नचाया गया है, और सब लोगों को विस्मय में डाल दिया गया है,अब राधा के पयोधरों को जो अच्छा लगता है,वह हो। भाव यह है कि पाताल के राजा बलि के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए विष्णु भगवान को वामन अवतार धारण करना पड़ा। एक पाँव से तीन लोक को आवृत कर लेने के कारण समस्त संसार आश्चर्य-चकित रह गया। भगवान को वामन रूप में देखकर राधा के मन में कामवासना अँगड़ाइए लेने लगीं। यहां पर '**इदानीम्**' इस अव्ययपद के स्थान में '**एम्वहिं**' यह आदेश किया गया है। प्रत्युत इस अव्ययपद के स्थान में किए गए '**पच्चलिउ**' इस आदेश का **उदाहरण**—

सर्वलावण्या गौरी नवा काऽपि विषग्रन्थिः।

भटः प्रत्युत स म्रियते यस्य न लगति कण्ठे ॥३॥

अर्थात्—सर्व प्रकार के लावण्य से युक्त गौरी [गौर वर्ण वाली नायिका] कोई नवीन ही विष-ग्रन्थि [विष की गाँठ] है, क्योंकि जिस योद्धा के कण्ठ में यह नहीं लगी, वह योद्धा भी मारा जा रहा है। तब जिस के कण्ठ का यह स्पर्श करती है, उसकी मरणदशा का तो कहना ही क्या है? यहां पर—'**प्रत्युत**' के स्थान '**पच्चलिउ**' यह आदेश किया गया है। इतः के स्थान में किए **एत्तहे** का **उदाहरण**—**इतः मेघाः पिबन्ति जलम्**=एत्तहे मेह पिअन्ति जलु [इधर मेघ पानी पी रहे हैं] यहां पर **इतः** इस अव्ययपद के स्थान में '**एत्तहे**' यह आदेश किया गया है।

१०९२—अपभ्रंश भाषा में १—**विषण्ण**, २—**उक्त** और ३—**वर्त्म** इन तीन शब्दों के स्थान में क्रमशः १—**वुन्न**, २—**वुत्त** और ३—**विच्च** ये तीन आदेश होते हैं। **विषण्ण** के स्थान में किए गए **वुन्न** इस आदेश का **उदाहरण** इस प्रकार है। जैसे—

मया उक्तं त्वं धुरं धर, गलिवृषभैः विगुप्तानि।

त्वया विना धवल! नाऽऽरोहति भरः एवमेव विषण्णः किम्?॥१॥

अर्थात्—मैंने तुझे कहा है कि तू धुरा को धारण कर, गलिवृषभों [शक्ति के चोर बैलों] के द्वारा हम विडम्बित हो चुके हैं। हे धवल [श्वेत] वृषभ! तेरे बिना यह भार नहीं उठाया जा सकेगा, अतः अब तू व्यर्थ ही विषण्ण [विषादयुक्त] क्यों हो रहा है? यहां पर '**विषण्ण**' शब्द के स्थान में '**वुन्न**' यह आदेश किया गया है। '**उक्त**' के स्थान में किए गए '**वुत्त**' आदेश का **उदाहरण**—**मया उक्तम्**—मइं वुत्तउं [मैंने कहा है] यहां '**उक्त**' के स्थान में '**वुत्त**' यह आदेश किया गया है। '**वर्त्म**' के स्थान में किये गए'**विच्च**'इस आदेश का **उदाहरण**—**येन मनो वर्त्मनि न माति**=जें मणु विच्चि न माइ [क्योंकि मन मार्ग में समाता नहीं है] यहां पर '**वर्त्म**' के स्थान में **विच्च** यह आदेश किया गया है।

१०९३—अपभ्रंश-भाषा में **शीघ्र** आदि शब्दों के स्थान में '**वहिल्ल**' आदेश आदि होते हैं। १—**शीघ्र** के स्थान में किए गए '**वहिल्ल**' आदेश का **उदाहरण**—

एकं कदा ह! अपि नाऽऽयासि, अन्यत् शीघ्रं यासि।

मया मित्र! प्रमाणितः, त्वया यादृशः खलः नहि॥१॥

अर्थात्—हे मित्र! पहिले तो तू कभी आता ही नहीं है, यदि आता भी है तो शीघ्र ही चला जाता है, मुझे यह प्रमाणित हो गया है कि तेरे जैसा दुष्ट कोई नहीं है। यहां पर '**शीघ्र**' के स्थान में '**वहिल्ल**' यह आदेश किया गया है। २—**कलह** के स्थान में किए गए '**घङ्घल**' आदेश का **उदाहरण**—

यथा सुपुरुषाः तथा कलहाः, यथा नद्यः तथा वलनानि।

यथा पर्वताः तथा कोटराणि, हृदय! खिद्यसे किम्॥२॥

अर्थात्—जैसे सत्पुरुष वैसे कलह। अर्थात् सत्पुरुषों के साथ क्लेश लगे हुए हैं। जैसे—नदियां, वैसे बलन-मोड़ तोड़। अर्थात् नदियों में बहुत मोड़-तोड़ होते हैं। जैसे पर्वत वैसे कोटर। अर्थात् पर्वतों में कोटर-गढ्ढे बहुत होते हैं। अतः हे हृदय ! तू खिन्न क्यों हो रहा है ? यहां पर "**कलह**" के स्थान '**घङ्घल**' यह आदेश किया गया है। ३—**अस्पृश्य-संसर्ग** इस शब्द के स्थान में किए गए '**विट्टाल**' इस आदेश का **उदाहरण** इस प्रकार है—

ये मुक्त्वा रत्ननिधिं, आत्मानं तटे क्षिपन्ति।

तेषां शङ्खानामस्पृश्यसंसर्गाः, परं फूत्कुर्वाणाः भ्रमन्ति ॥३॥

अर्थात्—जो शङ्ख रत्नाकर-समुद्र को छोड़कर अपने आप को तट पर फेंक देते हैं, उन शङ्खों को अस्पृश्य-संसर्ग [जिन का संसर्ग-सहवास अस्पृश्य है,करने योग्य नहीं है, ऐसे अधमजन] बजाते हुए भ्रमण करते रहते हैं। अर्थात्-समुद्र को छोड़कर शङ्ख नीचजनों के संसर्ग से नीच हो जाते हैं। यहां पर—'**अस्पृश्य-संसर्ग**' इस शब्द के स्थान में '**विट्टाल**' यह आदेश किया गया है। ४—**भय** इस शब्द स्थान में किए गए **द्रवक्क** इस आदेश का **उदाहरण**—

चिरैः (चिरस्ः) अर्जितं खाद मूढ !, संचिनु मा एकमपि द्रम्मम्।

किमपि भयं तत् पतति येन समाप्यते जन्म ॥४॥

अर्थात्—हे मूढ ! बहुत दिनों से जो धन उपार्जित किया गया है,उसका उपभोग कर,उसमें से एक भी द्रम्म [प्राचीन सिक्का या नाप, तोलविशेष] का संग्रह मत कर, क्योंकि कोई उस तरह का भय (बीमारी, रोग या डर) आ जायगा कि जिस से यह जीवन ही समाप्त हो जायेगा। यहां पर **भय** के स्थान में **द्रवक्क** यह आदेश किया गया है। ५—**आत्मीय** शब्द के स्थान में विहित **अप्पण** इस आदेश का **उदाहरण-स्फोटयतः यौ हृदयमात्मीयम्**—फोडेन्ति जे हिअडउं अप्पणउं (जो दोनों अपने हृदय को फोड़ डालते हैं) यहां पर **आत्मीय** इस शब्द के स्थान में **अप्पण** यह **आदेश** किया गया है। ६—**दृष्टि** इस शब्द के स्थान में किए गए **द्रेहि** इस आदेश का **उदाहरण**—

एकमेकं यद्यपि पश्यति हरिः सुष्ठु सर्वादरेण।

ततोऽपि दृष्टिः यस्मिन् कस्मिन् अपि राधा॥

कः शक्नोति संवरीतुं दग्धनयने स्नेहेन पर्यस्ते ॥५॥

अर्थात्—हरि [कृष्ण] यद्यपि प्रत्येक को बड़े आदर के साथ देखते हैं, तथापि उन की दृष्टि वहीं पर पड़ती है, जहां कि राधा होती है। स्नेह से परिपूर्ण नेत्रों को भला कौन नियंत्रित कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं। यहां पर '**दृष्टि**' इस शब्द के स्थान में '**द्रेहि**' यह आदेश किया गया है। ७—**गाढ** [अतिशय, दृढ] के स्थान में विहित '**निच्चट्ट**' इस आदेश का **उदाहरण**—

विभवे कस्य स्थिरत्वम् ?, यौवने कस्य गर्वः ?।

सः लेखः प्रस्थाप्यते, यः लगति गाढम् ॥६॥

अर्थात्—विभव-धन किस का स्थिर है ? अर्थात्—किसी का नहीं, और यौवन पर कौन गर्व [मान] कर सकता है ? अर्थात्—कोई नहीं। यह वस्तुस्थिति है, तथापि उस व्यक्ति ने यौवन और वैभव का अभिमान-सूचक जो लेख भेजा है,वह गाढ [अतिशयोक्ति पूर्ण] प्रतीत होता है। यहां पर—'**गाढ**' इस शब्द के स्थान में '**निच्चट्ट**' यह आदेश किया गया है। ८—'**साधारण**' इस शब्द के स्थान में किए गए '**सड्ढल**' इस आदेश का उदाहरण—

कुत्र शशधरः, कुत्र मकरधरः, कुत्र बर्हिणः ? कुत्र मेघः ? ।
दूर-स्थितानामपि सज्जनानां, भवति असाधारणः स्नेहः ॥७॥

अर्थात्—कहां तो शशधर-चन्द्रमा, और कहां मकरधर-समुद्र ? कहां बर्हिण-मोर और कहां मेघ-बादल ? तथापि इन में अद्‌भुत प्यार पाया जाता है। वस्तुतः दूर-स्थित होने पर भी सज्जनों का स्नेह असाधारण [जो साधारण न हो] ही होता है। यहां पर **साधारण** शब्द के स्थान में '**सड्ढल**' यह आदेश किया गया है। ९—**कौतुक** [कुतूहल, उत्सव, हर्ष, आमोद-प्रमोद, हंसीमजाक] इस शब्द के स्थान में किए गए '**कोड्ड**' इस आदेश का **उदाहरण**—

कुञ्जरोऽन्येषां तरुवराणां, कौतुकेन क्षिपति हस्तम् ।
मनः पुनः एकस्यां सल्लक्यां, यदि पृच्छथ परमार्थम् ॥८॥

अर्थात्—कुञ्जर [हाथी] अन्य वृक्षों पर भी बड़े कौतुक-हर्ष के साथ सूण्ड को फेंकता है, घिसाता है, परन्तु यदि सच पूछो तो उसका मन तो केवल सल्लकि [वृक्ष-विशेष, जो हाथी को अत्यधिक प्रिय होता है] में ही रहता है। यहां पर '**कौतुक**' इस शब्द के स्थान में '**कोड्ड**' यह आदेश किया गया है। १०—**क्रीडा** [खेल] के स्थान में विहित '**खेड्ड**' इस आदेश का **उदाहरण**—

क्रीडा कृता अस्माभिः, निश्चयं किं प्रकथयत ? ।
अनुरक्ताः भक्ताः, अस्मान् मा त्यज स्वामिन् ! ॥९॥

अर्थात्—हम ने तो केवल क्रीडा [उपहास] की थी, आप इसे निश्चय क्यों मान रहे हैं ? हम तो आप के अनुरागी [स्नेही] एवं भक्त [भक्ति रखने वाले] व्यक्ति हैं। इसलिए हे स्वामिन् ! हम स्नेही और भक्त जनों को मत छोड़ो। यहां पर '**क्रीडा**', शब्द के स्थान में '**खेड्ड**' यह आदेश किया गया है। ११—**रम्य** (सुन्दर) के स्थान में किए गए '**रवण्ण**' इस आदेश का **उदाहरण**—

सरिद्भिः न, सरोभिः न, सरोवरैः नाऽपि उद्यान-वनैः ।
देशाः रम्याः भवन्ति मूढ !, निवसद्भिः सुजनैः ॥१०॥

अर्थात्—हे मूर्ख ! नदियों से, सरों [जलप्रपातों-जल के झरणों] से, सरोवरों [झीलों] से, उद्यानों से तथा वनों से देश रमणीक नहीं होते किन्तु वहां रहने वाले सुजनों [श्रेष्ठ पुरुषों] से ही वे रमणीक बन सकते हैं। यहां पर '**रम्य**' शब्द के स्थान में '**रवण्ण**' यह आदेश किया गया है। १२—**अद्‌भुत** [अपूर्व] इस शब्द के स्थान में विहित '**ढक्करि**' इस आदेश का **उदाहरण**—

हृदय ! त्वया एतत् कथितं, मम अग्रतः शतवारम् ।
स्फुटिष्यामि प्रिये प्रवसति अहं भण्ड ! अद्‌भुतसार ! ॥११॥

अर्थात्—हे हृदय रूप भण्ड ! तू मेरे आगे सौ बार कह चुका है कि प्रिय के प्रवास करते ही मैं फूट जाऊंगा, अतः हे अद्‌भुतसार [अद्‌भुत-विलक्षण सार [शक्ति या परिणाम] वाला] भण्ड ! अब तू फूट जा। भाव यह है कि हे हृदयभण्ड ! तू महान कठोर है, जो प्रियतम के प्रदेश चले जाने पर भी फूट नहीं पाया। यहां पर '**अद्‌भुत**' इस शब्द के स्थान में '**ढक्करि**' यह आदेश किया गया है। १३—"**हे सखि !**" इन पदों के स्थान में किए गए '**हेल्लि !**' इस आदेश का **उदाहरण**—**सखि ! मा उपालम्भस्व अलीकम्**=हेल्लि ! म झङ्खहि आलु [हे सखि ! झूठा उपालंभ मत दे] यहां पर '**हे सखि !**' इन पदों के स्थान में '**हेल्लि !**' यह आदेश किया गया है। १४—"**पृथक् पृथक्**" इन पदों के स्थान में किए जाने वाले '**जुअंजुअ**' इस आदेश का **उदाहरण**—

एका कुटी पञ्चभिः रुद्धा, तेषां पञ्चानामपि पृथक्-पृथक् बुद्धिः।
भगिनि ! तद् गृहं कथय, कथं नन्दतु यत्र कुटुम्बमात्मच्छन्दकम् ॥१२॥

अर्थात्—कुटिया एक है, किन्तु पांचों ने उसे रोक रखा है, फिर इन पांचों की बुद्धि भी पृथक्-पृथक् (अलग-अलग) है। हे बहिन ! तू ही बतला, उस घर की वृद्धि कैसे हो सकती है, जिस में रहने वाला कुटुम्ब स्वच्छन्द हो, स्वेच्छाचारी हो ? भाव यह है कि एकता को ही ऋद्धि, वृद्धि और समृद्धि का मूल स्रोत समझना चाहिए। यहां पर '**पृथक्-पृथक्**' इन पदों के स्थान में '**जुअं-जुअ**' यह आदेश किया गया है। **संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ** नामक कोष में अद्भुतसार शब्द के अद्भुत राल, सर्जरस धक्षधूप ये अर्थ लिखे हैं। प्रस्तुत में इस शब्द का "जिस का सार [शक्ति या परिणाम] अद्भुत हो, आश्चर्य जनक हो" यही अर्थ प्रतीत होता है। १५—**मूढ** (मूर्ख) शब्द के स्थान में किए गए '**नालिअ**' और **वढ** इन दो आदेशों के **उदाहरण** इस प्रकार हैं—

यः पुनः मनस्येव व्याकुलीभूतः चिन्तयति ददाति न द्रम्मं न रूपकम्।
रति-वश-भ्रमण-शीलः करायोल्लालितं गृहे एव कुन्तं गुणयति स मूढः ॥१३॥

अर्थात्—जो रुपया और द्रम्म [पैसा] दान तो नहीं करता है, किन्तु व्याकुल हो कर मन में ही चिन्तन करता रहता है, तथा जो रति [काम-क्रीडा, हर्ष, अनुराग] वश भ्रमणशील है, अर्थात् अमोद-प्रमोद के लिए सदा भ्रमण करता रहता है और घर में ही कुन्त [भाले] को हाथ में उछालता रहता है,वह पुरुष मूर्ख होता है। अथवा मूर्ख के चार लक्षण होते हैं। जैसे—१—जो हृदय में व्याकुलता रखकर सोचता रहता है। २—जो धन कमा कर मालिक को नहीं सौंपता है, स्वयं ही रख लेता है। ३—धनार्जन [धन कमाने] में अशक्त होने पर भी काम-वासना के अधीन हो इधर-उधर भ्रमण करता है। और ४—घर में ही भाले को उछाल-उछाल कर अपने को वीर समझता है। यहां पर '**मूढ**' शब्द के स्थान में '**नालिअ**' यह आदेश किया गया है। '**मूढ**' के स्थान में विहित '**वढ**' इस आदेश का **उदाहरण**-**दिवसैः अर्जितम् खाद मूढ !**—दिवेहिं विढत्तउं खाहि वढ ! [हे मूढ ! दिनों से कमाए को खा, सेवन कर] यहां पर **मूढ** को '**वढ**' यह आदेश किया गया है। १६—**नव** के स्थान में कृत '**नवख**' इस आदेश का **उदाहरण**—**नवा काऽपि विषग्रन्थिः**—नवखी क वि विस-गण्ठि [यह कोई नई विष की गांठ है] यहां पर '**नव**' को '**नवख**' यह आदेश किया गया है। १७—**अवस्कन्द** [आक्रमण, ऊपर से नीचे उतरने की क्रिया, छावनी] इस शब्द के स्थान में किए गए '**दडवड**' इस आदेश का **उदाहरण**—

चलाभ्यां वलमानाभ्यां लोचनाभ्यां ये त्वया दृष्टा बाले !।
तेषु मकरध्वजाऽवस्कन्दः पतति अपूरे काले ॥१४॥

अर्थात्—हे बाले ! चञ्चल और वक्र नयनों द्वारा तू ने जिन्हें देख लिया है उन पर अपूर्णकाल में [समय से पहले ही] मकरध्वज [कामदेव] का अवस्कन्द [आक्रमण] हो जाता है। यहां पर '**अवस्कन्द**' के स्थान में '**दडवड**' यह आदेश किया गया है। १८—**यदि** [अगर] के स्थान में किए गए **छुडु** इस आदेश का **उदाहरण**—**यदि राजते व्यवसायः**—छुडु अग्घइ ववसाउ [अगर व्यवसाय-व्यापार सुन्दर चल रहा है] यहां पर '**यदि**' के स्थान में '**छुडु**' यह आदेश किया गया है। १९—**सम्बन्धी** शब्द स्थान में किए गए **केर** और **तण** इन दो आदेशों के **उदाहरण**—

गतः स केसरी, पिबत जलं, निश्चिन्तं हरिणाः !।
यस्य सम्बन्धिना हुंकारेण, मुखेभ्यः पतन्ति तृणानि ॥१५॥

अर्थात्—जिस की हुङ्कार [गरजना] के कारण मुख से तिनके गिर जाते हैं, वह केसरी-सिंह चला गया है। अतः हे हिरणो ! अब तुम सब निश्चिन्त हो कर पानी पीओ। यहां पर सम्बन्धी के स्थान में 'केर' यह आदेश किया गया है। सम्बन्धी के स्थान में किए गए 'तण' आदेश का उदाहरण—अथ भग्ना अस्माकं सम्बन्धिनः—अह भग्गा अम्हहं तणा [अथवा हमारे सम्बन्धी जो मारे गए हैं] यहां पर 'सम्बन्धी' के स्थान में 'तण' यह आदेश किया गया है। २०—"मा भैषीः (तू मत डर)" इन पदों के स्थान में किए गए मब्भीसा इस स्त्रीलिङ्गीय आदेश का उदाहरण—

स्वस्थाऽवस्थानामालपनं सर्वोऽपि लोकः करोति।
आर्तानां मा भैषीः यः सज्जनः स ददाति ॥१६॥

अर्थात्—स्वस्थ [रोग रहित] अवस्था वालों के साथ सभी लोग वार्तालाप करते हैं, परन्तु दुःखियों को "भय मत कर" ऐसा वही कहता है, जो सज्जन होता है। भाव यह है दुःखी और निर्धन व्यक्तियों को विशेषरूप से सम्मान देना चाहिए। यहां पर 'मा भैषीः' इन पदों के स्थान में—'मब्भीसा' इस शब्द का आदेश किया गया है। २१—"यद् यद् दृष्टं तद् तद्" इन पदों के स्थान में किए गए 'जाइट्ठिआ' इस आदेश का उदाहरण इस प्रकार है—

यदि रज्यसे यद् यद् दृष्टं तस्मिन् तस्मिन् हृदय ! मुग्धस्वभाव !।
लोहेन स्फुटिता यथा घनः सहिष्यसे तापः ॥१७॥

अर्थात्—हे मुग्धस्वभाव [जिस का भोला स्वभाव हो] हृदय ! यदि तू प्रत्येक दृष्ट पदार्थ में अनुराग करेगा तो घन [हथौड़े] द्वारा तोड़े जाने वाले लोहे के समान तुझे ताप [सन्ताप] कष्ट सहन करना पड़ेगा। यहां पर—"यद् यद् दृष्टं तद् तद्" इन पदों के स्थान में "जाइट्ठिआ" इस शब्द का आदेश किया गया है। श्लोक में पठित "यद् यद् दृष्टं तस्मिन् तस्मिन्" इन पदों में 'तस्मिन् तस्मिन्' ये तद् शब्द के ही सप्तम्यन्त रूप दे रखे हैं।

१०६४—अपभ्रंश भाषा में हुहुरु आदि पद 'शब्द के अनुकरण' इस अर्थ में तथा 'घुग्घ' आदि शब्द चेष्टा के अनुकरण में यथासंख्य [क्रमशः] प्रयुक्त करने चाहिएं। जैसे—

मया ज्ञातं मंक्ष्यामि अहं प्रेम-ह्रदे हुहुरु इति (शब्दं कृत्वा)।
केवलमचिन्तिता संपतिता विप्रय-नौः झटिति ॥१॥

अर्थात्—मैंने समझा था कि प्रेमह्रद [प्रेम के तालाब] में हुहुरु यह शब्द करके निमज्जित [जलमग्न] हो जाऊंगा, किन्तु अकस्मात् और शीघ्र ही विप्रिय-नावा [वियोग की नौका] सम्प्राप्त हो गई। अर्थात् शीघ्र ही परस्पर वियोग हो गया। यहां पर शब्द के अनुकरण में 'हुहुरु' यह प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में पठित आदि शब्द के ग्रहण से शब्दानुकरण में प्रयुक्त किए जाने वाले कसरक्क आदि अन्य शब्दों का भी आश्रयण किया जा सकता है। जैसे—

खाद्यते न तु 'कसरक्क' (इति शब्दं कृत्वा), पीयते न तु घुण्ट (इति शब्दं कृत्वा)।
एवमेव भवति सुखाशा प्रियेण दृष्टेन नयनाभ्याम् ॥२॥

अर्थात्—अपने प्रिय नायक को निहारने से विह्वल हुई किसी नायिका के भावावेश का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि नयनों से प्रिय को देख लेने पर नायिका के हृदय में सुख की आशा इतनी अधिक अंगड़ाइयां लेने लगी कि वह अन्य सब कुछ भूल बैठी। अधिक क्या, भोजन को चबाते समय कसरक्क यह जो स्वाभाविक ध्वनि होती है, वह ध्वनि भी निकलनी बन्द हो गई, तथा जलपान

करते समय घूंट भरने की जो घुण्ट यह आवाज आया करती है, वह भी समाप्त हो गई।

अद्याऽपि नाथः ममैव गृहे सिद्धार्थान् वन्दते।
तावदेव विरहः गवाक्षेषु मर्कटचेष्टां ददाति ॥३॥

अर्थात्—अभी तो मेरा नाथ घर में ही सिद्धार्थ (देवविशेष) की वन्दन कर रहा है, तथापि विरह-वियोग गवाक्ष (झरोखे) में मर्कट-चेष्टा (वानर का हावभाव) कर रहा है। अर्थात्—पतिदेव के विदेश जाने से पूर्व ही उनका विरह मुझे परिपीडित बना रहा है। यहां पर चेष्टा के अनुकरण में घुग्घ शब्द का प्रयोग किया गया है। सूत्र में पठित आदि शब्द से चेष्टा के अनुकरण में अन्य शब्दों का भी ग्रहण किया जाता है। जैसे—

शिरसि जरा-खण्डा लोमपुटी गले मणिका न विंशतिः।
ततोऽपि गोष्ठाः कारिताः, मुग्धया उत्थानोपवेशनम् ॥४॥

अर्थात्—उस मुग्धा-सुन्दरी के सिर पर जरा-खण्डित (बहुत पुरानी, फटी हुई), लोमपुटी (लोई) है और गले में बीस मनके भी नहीं हैं। अर्थात्—उस ने कोई हार भी नहीं पहन रखा है, तथा प अपने स्वाभाविक सौन्दर्य के कारण वह गोष्ठ (गोशाला) में स्थित व्यक्तियों को उत्थानोपवेशन (उठना, बैठना) करवा रही है, उन्हें नचवा रही हैं। यहां पर उठने बेठने की चेष्टा के अनुकरण में 'उट्ठबईस' इस शब्द का प्रयोग किया गया है।

★ अथ निपात-शब्द-सिद्धिः ★

१०९५—घइमादयोऽनर्थकाः। ८। ४। ४२४। अपभ्रंशे घइमित्यादयो निपाताः अनर्थकाः प्रयुज्यन्ते।

अम्मडि ! पच्छायावडा पिउ कलहिअउ विआलि।
घइं विवरीरी बुद्धडी होइ विणासहों कालि ॥१॥

आदिग्रहणात् खाइं इत्यादयः।

१०९६—तादर्थ्ये केहिं-तेहिं-रेसि-रेसिं-तणेणाः। ८। ४। ४२५। अपभ्रंशे तादर्थ्ये द्योत्ये केहिं, तेहिं, रेसि, रेसिं, तणेण इत्येते पंच निपाताः प्रयोक्तव्याः।

ढोल्ला ! एह परिहासडी अइ ! भण कवणहिं देसि ?।
हउं झिज्जउं तउ केहिं पिअ ! तुहुं पुणु अन्नहि रेसि ॥१॥

एवं तेहिं-रेसिमावुदाहार्यौ। वडत्तणहों तणेण (३६६,४)।

★ अथ निपातशब्द—सिद्धिः ★

निपात-शब्दस्य यदर्थसम्बन्धि-चिन्तनमपेक्षितं वर्तते तत् ६२६ सूत्रे विहितमस्ति। अपभ्रंश-भाषायां निपात-शब्दानां यत्स्वरूपं स्वीक्रियते तन्निरूप्यते।

१०९५—घइमित्यादयः। घइं, खाइं इत्यादयोऽनर्थकाः, न विद्यतेऽर्थो यस्य, सोऽनर्थकः, तदेवा-ऽनर्थकः, ते निपात-शब्दाः अपभ्रंशभाषायां प्रयुज्यन्ते। यथा ४८८ सूत्रेण पादपूर्तौ इ, जे, र इत्यादयः अव्यय-शब्दाः प्रयुज्यन्ते, एवमेवाऽपभ्रंश-भाषायामपि प्रस्तुतेन [१०९५] सूत्रेण घइं इत्यादयोऽर्थशून्याः

विविधाः शब्दाः प्रयुज्यन्ते । यथा—

अम्ब ! पश्चात्तापः प्रियः कलहायितः विकाले ।
[घइं] विपरीता बुद्धिः भवति विनाशस्य काले ॥१॥

भावार्थः—विवादाऽनन्तरं काचिद् मुग्धा दुःखानुभूतिं व्यञ्जयति । हे **अम्ब** ! **अद्य विकाले**, विगतः कालः, तस्मिन्-असमये **प्रियः** कान्तः **कलहायितः**—क्लेशं प्रापितः, तेन सह कलहो जातः । इति महान् मे **पश्चात्तापः**-दुःखं वर्तते । सत्यमुक्तम्—**विनाशस्य काले बुद्धिः विपरीता**-प्रतिकूला, लाभालाभ-ज्ञान-विकला भवतीति भावः । **घइं** अयं शब्दोऽत्र निरर्थको बोध्यः ।

अम्ब !। अम्बा+सि । ३५० सू० बकारस्य लोपे, ३६० सू० मकारस्य द्वित्वे, ११०० सू० डड-(अड)-प्रत्यये,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,अज्भीने परेण संयोज्ये,११०२ सू० डी-(ई)-प्रत्यये,डिति परेऽन्त्य-स्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **अम्मडि** ! इति भवति । **पश्चात्तापः** । पश्चात्ताप+सि । इत्यत्र २९२ सू० श्चस्य छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, २६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे,३४८ सू० संयुक्त-तकारलोपे,१७७ सू० तकारलोपे,१८० सू० यकारश्रुतौ,२३१ सू० पकारस्य वकारे, ११०० सू० डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पच्छायावडा** इति भवति । **प्रियः**—पिउ, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । **कलहायितः** । कलहायित+सि । १००० सू० आकारस्य इकारे, इ-कारस्य च अकारे,१७७ सू० यकारस्य तकारस्य च लोपे,१००२ सू० अन्त्यस्य अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **कलहिअउ** इति भवति । **विकाले** । विकाल+ङि । १७७ सू० ककारलोपे, १००५ सू० ङिना अकारस्य इकारे **विआलि** इति भवति । **विआलि** इत्यस्यानन्तरं पादपूर्त्यर्थकः **घइं** इत्यनर्थकः शब्दः प्रयु-ज्यते । **विपरीता** । विपरीता+सि । अपभ्रंशे विपरीताऽर्थे १०९३ सू० विवरीरी-शब्दः प्रयुज्यते,१०१५ सू० सेर्लोपे **विवरीरी** इति भवति । **बुद्धिः** । बुद्धि+सि । ११०० सू० डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्य-स्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये,११०२ सू० डी-(ई)-प्रत्यये,डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,अज्भीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **बुद्धडी** इति भवति । **भवति**=होइ, प्रक्रिया ७३१ सूत्रे ज्ञेया । **विनाशस्य** । विनाश+ङस् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, २६० सूत्रेण शकारस्य सकारे, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणलाघवे **विणासहो** इति भवति । **काले** । काल+ङि । १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **कालि** इति भवति । **घइं** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **आदिग्रहणात्** । १०९५ सूत्रे आदिपदस्य ग्रहणात् **खाइं** इत्यादीनामप्यनर्थकपदानां ग्रहणं करणीयमिति भावः ।

१०९६—तादर्थ्ये केहिं-तेहिं-रेसि-रेसिं-तणेणाः ...

१०९६—तादर्थ्ये द्योत्ये । तस्मै इदं तदर्थम्,तस्य भावः,तादर्थ्यम्,तस्मिन् द्योत्ये-प्रकटिते इत्यर्थः ।

नायक ! एषः परिहासः, अयि ! भण कस्मिन् देशे ? ।
अहं क्षीये तव कृते, प्रिय ! त्वं पुनरन्यस्याः कृते ॥१॥

भावार्थः—अन्याऽऽसक्तं नायकं प्रति नायिकोपालम्भमुखेन प्रतिवक्ति-**अयि नायक ! एषः परि-हासः**-उपहासः, **कस्मिन् देशे** वर्तते ? अथवा **अयि नायक ! एषा परिभाषा**-रीतिः **कस्मिन् देशे** वर्तते ? इति **भण**-कथय । हे **प्रिय ! तव कृतेऽहं क्षीये**—क्षीणा भवामि । **त्वं पुनः अन्यस्याः** कस्याश्चिदन्यायाः प्रेमिकायाः **कृते** क्षीणो भवसि । नोचितमिदमिति भावः ।

नायक ! । नायक+सि । अपभ्रंशे नायकार्थे ढोल्ल-शब्दः प्रयुज्यते, १००१ सू० अकारस्य आ-कारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **ढोल्ला** ! इति भवति । **एषः** । एतद्+सि । विशेषणविशेष्ययोः समानलिङ्ग-

कत्वादत्र परिहासशीशब्दस्य विशेषणत्वात् एतद्-शब्दः स्त्रीलिङ्गे एह आदेशेन. १०३२ सू० एतदः स्थाने एह इत्यादेशे, १०१५ सू० सेर्लोपे **एह** इति भवति। **परिहासः**। परिहास+सि। इत्यत्र ११०० सू० डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये, १११६ सू० स्त्रीत्वे,११०२ सू० डी-(ई)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **परिहासडी** इति भवति। **परिभाषा** इतिच्छायायान्तु १८७ सू० भकारस्य हकारे, २६० सू० षकारस्य सकारे,११०० सू० डड-(अड)-प्रत्यये, पूर्ववदेव **परिहासडी** इति भवति। **अपि**। अव्ययपदमिदम्। १७७ सू० पकारलोपे **अइ** इति भवति। भण-[भण्]-धातुः भणने। भण्+हि। ९१० सू० अकारागमे, ६६२ सू० हि इत्यस्य सु इत्यादेशे, ६६४ सू० सोर्लुकि **भण** इति भवति। **कस्मिन्**। किम्+ङि। इत्यत्र १०३८ सू० किमः स्थाने कवण इत्यादेशे, १०२८ सू० ङि इत्यस्य हिं इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारण-लाघवे **कवणहिं** इति भवति। **देशे**। देश+ङि। २६० सू० शकारस्य सकारे,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **देसि** इति भवति। **अहम्**=हउँ, इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया १००९ सूत्रे ज्ञेया। **क्षीये**। क्षि-धातुः क्षये। क्षि+मिव्। २७४ सू० क्षस्य स्थाने झकारे, ६६७ सू० प्रकृति-प्रत्यययोर्मध्ये ज्ज इत्यस्य प्रयोगे, १०५६ सू० मिवः स्थाने उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **झिज्जउँ** इति भवति। बाहुल्येनाऽत्र ११ सू० स्वरस्य लोपाभावः। **तव**=तउ,प्रक्रिया १०४३ सूत्रे ज्ञेया। **कृते**। अव्ययपदमिदमस्ति,तादर्थ्यद्योतकञ्च। इत्यत्र १०९६ सू० तादर्थ्ये द्योत्ये कृते इत्यस्य पदस्य स्थाने केहिं इत्यस्य प्रयोगे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **केहिँ** इति भवति। **प्रियः**। प्रिय+सि। १०६९ सू० रेफस्य लोपे, १७७ सू० यकारस्य लोपे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पिअ** इति रूपं भवति। **त्वम्**=तुहुँ, इत्यस्य प्रक्रिया १०३९ सूत्रे ज्ञेया। **पुनः**=पुणु, इत्यस्य प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **अन्यस्याः**। अन्यद्+ङस्। ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० नकारद्वित्वे, ११ सू० दकारलोपे, स्त्रीत्वे आदाप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, १०९१ सू० ङसः स्थाने हे इत्यादेशे, १००० सू० आकारस्य अकारे, एकारस्य च इकारे **अन्नहि** इति भवति। **कृते**। अव्ययपदमिदं तादर्थ्यद्योतकम्, अतएव प्रस्तुतसूत्रेण इत्यस्य पदस्य स्थाने रेसि इत्यस्य निपातस्य प्रयोगे **रेसि** इति भवति। **कृते**=केहिँ, **कृते**=रेसि इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। एवं तेहिं रेसिमिति। एवमेव तेहिं, रेसि इत्यनयोः निपातयोरपि उदाहरणानि कल्पनीयानीति भावः। **तणेण** इत्यस्य निपातस्योदाहरणं प्रदीयते—**महत्त्वस्य कृते**=वड्डत्तणहो तणेण, एषां पदानां प्रक्रिया १०३७ सूत्रे ज्ञेया। **कृते**=तणेण इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता।

★ अथ निपातसम्बन्धी विधि ★

निपातशब्द की अर्थ-विचारणा ६२६ वें सूत्र में की जा चुकी है। अपभ्रंशभाषा में निपातों को लेकर जो विधि-विधान होता है, अब सूत्रकार उसका निरूपण कर रहे हैं—

१०९५—अपभ्रंश-भाषा में अनर्थक [अर्थहीन] **घइं** आदि निपातों का प्रयोग किया जाता है। जैसे— **अम्ब! पश्चात्तापः, प्रियः कलहायितः विकाले।**

[घइं] विपरीता बुद्धिः भवति, विनाशस्य काले॥१॥

अर्थात्—हे अम्ब! [हे मातः!] मुझे पश्चात्ताप है, हार्दिक दुःख है कि मैंने विकाल-सन्ध्याकाल के समय प्रीतम से कलह कर लिया। यह सत्य ही है कि विनाश-काल में बुद्धि विपरीत हो जाती है। यहां पर—**विपरीता**=विवरीरी (उलटी) इस शब्द से पूर्व **घइं** इस अर्थहीन निपात का प्रयोग किया गया है। अर्थात्—**घइं** इस पद का अपना कोई अर्थ नहीं है, तथापि इसका प्रयोग कर लिया

जाता है। सूत्र में पठित आदि पद के ग्रहण से खाइं आदि निरर्थक निपातों का भी प्रयोग किया जाता है।

१०९६—अपभ्रंश-भाषा में यदि तादर्थ्य (उसके लिए) अर्थ द्योत्य (व्यक्त) हो तो १—केहिं, २—तेहिं, ३—रेसि, ४—रेसिं, और ५—तणेण इन पांच निपातों का प्रयोग किया जाता है। जैसे—

नायक ! एषः परिहासः, अयि ! भण कस्मिन् देशे ?।

अहं क्षीये तव कृते प्रिय !, त्वं पुनः अन्यस्याः कृते ॥१॥

अर्थात्—हे नायक ! मुझे बतला, यह परिहास [मजाक] किस देश में होता है ? प्रिय ! मैं तो तेरे लिए क्षीण हो रही हूं और तू किसी दूसरी प्रेमिका के लिए मर रहा है। यहां पर पठित तव कृते—तउ केहिं, इन पदों में 'कृते' यह पद तादर्थ्य का द्योतक है, अतः इसके स्थान पर 'केहिं' इस निपात का प्रयोग किया गया है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि इसी प्रकार 'तेहिं' और 'रेसि' इन दोनों निपातों के उदाहरण भी जान लेने चाहिएं। 'तणेण' इस निपात का उदाहरण इस प्रकार है—महत्त्वस्य कृते—वड्डत्तणहो तणेण [महत्त्व के लिए] यहां पर पठित 'कृते' यह पद तादर्थ्य का द्योतक है, अतः इस के स्थान में भी 'तणेण' इस निपात का प्रयोग कर दिया गया है।

★ अथ प्रत्यय-विधिः ★

१०९७—पुनर्विनः स्वार्थे डुः। ८। ४। ४२६। अपभ्रंशे पुनर्विना इत्येताभ्यां परः स्वार्थे डु प्रत्ययो भवति।

सुमरिज्जइ तं वल्लहउं, जं वीसरइ मणाउं।

जहिं पुणु सुमरणु जाउं, गउ तहो नेहहो कइं नाउं ?॥१॥

विणु जुज्झें न वलाहुं (३८६,४)।

१०९८—अवश्यमो डें-डौ। ८। ४। ४२७। अपभ्रंशेऽवश्यमः [स्थाने] स्वार्थे डें, ड इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः।

जिब्भिन्दिउ नायगु वसि करहु जसु अधिन्नइं अन्नइं।

मूलि विणट्ठइ तुंबिणिहे अवसें *सुक्कइं पण्णइं ॥१॥

अवस न सुअहिं सुहच्छिअहिं [३७६.४]।

१०९९—एकशसो डिः। ८। ४। ४२८। अपभ्रंशे एकशशब्दात्स्वार्थे डिर्भवति।

एक्कसि सील-कलंकिअहं, देज्जहिं पच्छित्ताइं।

जो पुणु खण्डइ अणुदिअहु, तसु पच्छित्तें काइं ?॥१॥

११००—अ-डड-डुल्लाः स्वार्थिक-क-लुक् च। ८। ४। ४२९। अपभ्रंशे नाम्नः परतः स्वार्थे अ, डड, डुल्ल इत्येते त्रयः प्रत्यया भवन्ति, तत्संनियोगे स्वार्थे क-प्रत्ययस्य लोपश्च।

विरहाणल-जाल-करालिअउ पहिउ पन्थि जं दिट्ठउ।

तं मेलवि सव्वहिं पन्थिअहिं सो जि किअउ अग्गिट्ठउ ॥१॥

---

*सुक्कहिं इत्यपि पाठान्तरं समुपलभ्यते।

डड। महु कन्तहो बे दोसडा। [३७९.४] डुल्ल। एक्क कुडुल्ली पञ्चहिँ रुद्धी [४२२.४]।

११०१—योगजाश्चैषाम्। ८। ४। ४३०। अपभ्रंशे अ-डड-डुल्लानां योगभेदेभ्यो ये जायन्ते डडअ इत्यादयः प्रत्ययास्तेऽपि स्वार्थे प्रायो भवन्ति। डडअ। फोडेन्ति जे हिअडउं अप्पणउं [३५०.४] अत्र किसलय० [१.२६९] इत्यादिना यलुक्। डुल्लअ। चूडुल्लउ चुन्नीहोइ सइ [३९५.४] डुल्लडउ—

सामि-पसाउ सलज्जु पिउ, सीमा संधिहिँ वासु।
पेक्खिवि बाहु-बलुल्लडा, धण मेल्लइ नीसासु॥१॥

अत्राऽमि "स्यादौ दीर्घह्रस्वौ" [३३०,४] इति दीर्घः। एवं बाहु-बलुल्लडउ। अत्र त्रयाणां योगः।

११०२—स्त्रियां तदन्ताड्डीः। ८। ४। ४३१। अपभ्रंशे स्त्रियां वर्तमानेभ्यः प्राक्तन-सूत्रद्वयोक्त-प्रत्ययान्तेभ्यो डी-प्रत्ययो भवति।

पहिआ! दिट्ठी गोरडी?, दिट्ठी मग्गु निअन्त।
अंसूसासेहिँ कञ्चुआ तितुव्वाण करन्त॥१॥

एक्क कुडुल्ली पञ्चहिँ रुद्धी [४२२.४]।

११०३—आन्तान्ताड्डाः। ८। ४। ४३२। अपभ्रंशे स्त्रियां वर्तमानादप्रत्ययान्त-प्रत्ययान्तात् डा-प्रत्ययो भवति। ड्यपवादः।

पिउ आइउ सुअ वत्तडी झुणि कन्नडइ पइट्ठ।
तहो विरहहो नासन्तअहो धूलडिआ वि न दिट्ठ॥१॥

११०४—अस्येदे। ८। ४। ४३३। अपभ्रंशे स्त्रियां वर्तमानस्य नाम्नो योऽकारस्तस्य आकारे प्रत्यये परे इकारो भवति। धूलडिआ वि न दिट्ठ। [४३२.४] स्त्रियामित्येव। झुणि कन्नडइ पइट्ठु [४३२.४]।

११०५—युष्मदादेरीयस्य डारः। ८। ४। ४३४। अपभ्रंशे युष्मदादिभ्यः परस्य ईय-प्रत्ययस्य डार इत्यादेशो भवति।

संदेसें काइँ तुहारेण, जं सङ्गहो न मिलिज्जइ।
सुइणन्तरि पिएं पाणिएण पिअ! पिआस किं छिज्जइ?॥१॥

दिक्खि अम्हारा कन्तु [३४५.४], बहिणि! महारा कन्तु। [३५१.४]।

११०६—अतोर्डेत्तुलः। ८। ४। ४३५। अपभ्रंशे इदं-कियत्तदेतद्भ्यः परस्य अतोः प्रत्ययस्य डेत्तुल इत्यादेशो भवति। एत्तुलो। केत्तुलो। जेत्तुलो। तेत्तुलो। एत्तुलो।

११०७—अत्र डेत्तहे ।८।४।४३६। अपभ्रंशे सर्वादेः सप्तम्यन्तात्परस्य त्र-प्रत्ययस्य डेत्तहे [एत्तहे] इत्यादेशो भवति ।

एत्तहे तेत्तहे वारि घरि लच्छि विसण्ठुल धाइ ।
पिअ-पब्भट्ठ व गोरडी निच्चल कहिँ वि न ठाइ ॥१॥

११०८—त्व-तलोः प्पणः । ८ ।४। ४३७ । अपभ्रंशे त्व-तलो प्रत्यययोः प्पण इत्यादेशो भवति । वड्डप्पणु परिपाविअइ । [३६६.४] । प्रायोऽधिकारात् । वड्डत्तणहो तणेण । [३६६.४] ।

११०९—तव्यस्य इएव्वउं एव्वउं एवा । ८ । ४ । ४३८ । अपभ्रंशे तव्य-प्रत्ययस्य इएव्वउं, एव्वउं, एवा इत्येते त्रय आदेशा भवन्ति ।

एउ गृण्हेप्पिणु ध्रुं मइं जइ प्रिउ उव्वारिज्जइ ।
महु करिएव्वउँ किं पि ण वि मरिएव्वउँ पर देज्जइ ॥१॥
देसुच्चाडणु सिहि-कढणु घण-कुट्टणु जं लोइ ।
मंजिट्ठए अइरत्तिए सव्वु सहेव्वउँ होइ ॥२॥
सोएवा पर वारिआ पुप्फवईहिँ समाणु ।
जग्गेवा पुणु को धरइ ?, जइ सो वेउ पमाणु ॥३॥

१११०—क्त्व इ-इउ-इवि-अवयः । ८ । ४ । ४३९ । अपभ्रंशे क्त्वा-प्रत्ययस्य इ, इउ, इवि, अवि इत्येते चत्वार आदेशा भवन्ति । इ—

हिअडा ! जइ वेरिअ घणा, तो किं अब्भि चडाहुं ।
अम्हाहिं बे हत्थडा जइ पुणु मारि मराहुं ॥१॥

इउ—गय-घड भज्जिउ जन्ति [३९५.४] इवि ।

रक्खइ सा विस-हारिणी बे कर चुम्बिवि जीउ ।
पडिबिम्बिअ-मुंजालु जलु जेहिँ अडोहिउ पीउ ॥२॥

अवि । बाह विछोडवि जाहि तुहुँ हउं तेवँइ को दोसु ? ।
हिअय-ट्ठिउ जइ नीसरहि जाणउँ मुञ्ज ! सरोसु ॥३॥

११११—एप्प्येप्पिण्वेव्येविणवः । ८ । ४ । ४४० । अपभ्रंशे क्त्वाप्रत्ययस्य एप्पि, एप्पिणु, एवि, एविणु इत्येते चत्वार आदेशा भवन्ति ।

जेप्पि असेसु कसाय-बलु देप्पिणु अभउ जयस्सु ।
लेवि महव्वय सिवु लहहिं झाएविणु तत्तस्सु ॥१॥ पृथग्योग उत्तरार्थः ।

१११२—तुम एवमणाणहमणहिं च । ८ । ४ । ४४१ । अपभ्रंशे तुमः प्रत्ययस्य एवं, अण, अणहं, अणहिं इत्येते चत्वारः, चकारात् एप्पि, एप्पिणु, एवि, एविणु इत्येते, एवं चाऽष्टावादेशा भवन्ति ।

देवं दुक्करु निअय-धणु करण न तउ पडिहाइ ।
एम्वइ सुहु भुञ्जणहँ मणु पर भुञ्जणहिँ न जाइ ॥१॥
जेप्पि चएप्पिणु सयल धर लेविणु तवु पालेवि ।
विणु सन्तें तित्थेसरेण को सक्कइ भुवणे वि ?॥२॥

१११३—गमेरेप्पिण्वेप्प्योरेर्लुग् वा । ८ । ४ । ४४२ । अपभ्रंशे गमेर्धातोः परयोरेप्पिणु, एप्पि इत्यादेशयोरेकारस्य लुग् वा भवति ।

गम्पिणु वाणारसिहिँ नर, अह उज्जेणिहिँ गम्पि ।
मुआ परावहिँ परम-पउ दिव्वन्तरइँ म जम्पि ॥१॥
पक्षे— गङ्ग गमेप्पिणु जो मुअइ जो सिव-तित्थ गमेप्पि ।
कीलदि तिदसावास-गउ सो जम-लोउ जिणेप्पि ॥२॥

१११४—तृनोऽणअः ।८।४।४४३। अपभ्रंशे तृनः प्रत्ययस्य अणअ इत्यादेशो भवति ।

"हत्थि मारणउ । लोउ बोल्लणउ, पडहु वज्जणउ, सुणउ भसणउ ।"

★ अथ प्रत्ययानां विधिः ★

कस्यचिद् धातोः, अथवा कस्यचित् प्रातिपदिकशब्दस्याऽन्ते यत् किमप्यक्षरमथवा कश्चित् शब्दः प्रयुज्यते तत् प्रत्यय-शब्देनाऽभिधीयते । अपभ्रंश-भाषायां प्रत्ययानां यद् विविधविधानं समुपलभ्यते, आचार्य-देवैः श्री-हेमचन्द्रैः तन्निरूप्यते—

१०९७— स्मर्यते तद्-वल्लभकं, यद् विस्मर्यते मनाक् ।
यस्मिन् पुनः स्मरणं जातं, गतं तस्य स्नेहस्य किं नाम ? ॥१॥

भावार्थः—सामान्यतः प्रेमविषयकं कथनमिदम्—**तद् वल्लभकं**—प्रियं वस्तु भवतीति यावत्, यत् **स्मर्यते**, स्मृतिपथे आनीयते । यद् वस्तु **मनाक्** **ईषद्**, प्रेमशून्यं भवति, तद् **विस्मर्यते**-स्मृतिपथाद् भ्रश्यते । तस्य वस्तुन एव स्मरणं क्रियते, येन सह स्नेहसम्बन्धो भवतीति शेषः । **यस्मिन्** वस्तुनि **पुनः स्मरणं जातम्**, यस्य विस्मृतस्य पुनः स्मरणं क्रियते, तत्-तत्सम्बन्धि प्रेम **गतम्**-विनष्टम्, तादृशस्य विस्मरणशीलस्य प्रेम-वस्तुनः न किमपि महत्त्वम् । **तस्य स्नेहस्य** किं महत्त्वं यस्य विस्मरणमपि जायते, यस्य कदाचिदपि विस्मरणं नैव भवेत्तदेव प्रेम वास्तविकं ज्ञेयमिति भावः ।

स्मर्यते । स्मृ-धातुः चिन्तायाम् । स्मृ+क्य+ते । ७४५ सू० स्मृधातोः स्थाने सुमर इत्यादेशे, ६४९ सू० क्यस्य स्थाने इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **सुमरिज्जइ** इति भवति । **तद्** । तद्+सि=तं, प्रक्रिया १०२१ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **वल्ल-**

भकम् । वल्लभक+सि । १८७ सू० भकारस्य हकारे, १७७ सू० ककारलोपे, १०२५ सू० अकारस्य स्थाने उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे, १०१५ सू० सेर्लोपे **वल्लहउँ** इति भवति । **यद्**=जं, प्रक्रिया १०९१ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । **विस्मर्यते** । विपूर्वकः स्मृधातुः विस्मरणे । विस्मृ+क्य+ते । ७४६ सू० विस्मृधातोः वीसर इत्यादेशे, ६४९ सूत्रे बहुलाधिकारात् क्यस्य अभावे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इत्यादेशे **वीसरइ** इति भवति । **मनाक्**=मणाउं, प्रक्रिया १०८९ सूत्रस्य षष्ठे श्लोके ज्ञेया । १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **मणाउँ** इति भवति । **यस्मिन्**=जहिँ, प्रक्रिया १०५७ सूत्रे ज्ञेया । **पुनः** । अव्ययपदमिदम् । २२८ सू० नकारस्य णकारे, प्रस्तुतेन [१०९७] सूत्रेण स्वार्थे डु-[उ]-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **पुणु** इति भवति । **स्मरणम्** । स्मृधातुः चिन्तायाम् । स्मृ+ल्युट्=अन । ७४५ सू० स्मृधातोः स्थाने सुमर इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, २२८ सू० नकारस्य णकारे, सिप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सुमरणु** इति भवति । **जातम्** । जात+सि । १७७ सू० तकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकाराऽनुस्वारे **जाउं** इति भवति । **गतम्** । गत+सि । इत्यत्र १७७ सू० तकारलोपे, अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **गउ** इति भवति । **तस्य** । तद्+ङस् । ११ सू० दकारलोपे, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणलाघवे **तहों** इति भवति । **स्नेहस्य** । स्नेह+ङस् । ३४८ सू० सकारलोपे तहों-वदेव **नेहहों** इति भवति । **किम्** । अव्ययपदमिदम् । १०३८ सू० किमः स्थाने काइँ इत्यादेशे, १००० सू० आकारस्य अकारे **कइँ** इति भवति । **नाम** । अव्ययपदमिदम् । अपभ्रंशे १०९३ सू० नामार्थे नाउं इत्यव्ययस्य प्रयोगे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **नाउँ** इति भवति । **पुनर्**=पुणु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **विना** इत्यस्य पदस्योदाहरणं प्रदीयते । यथा—**विना युद्धेन न वलामहे**=विणु जुज्झें न वलाहुं, प्रक्रिया १०५७ सूत्रे ज्ञेया । **विना**=विणु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । साधना त्वित्थम्—**विना** । अव्ययपदमिदम् । २२८ सू० नकारस्य स्थाने णकारे, प्रस्तुतेन [१०९७] सूत्रेण डु-(उ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **विणु** इति भवति ।

१०९८— **जिब्भिन्दिउ नायगु वसि करहु जसु अधिन्नइँ अन्नइँ ।**
मूलि विणट्ठइ तुंबिणिहे अवसें सुक्कहिँ पण्णइँ ॥१॥

भावार्थः—अयि मानवाः ! यूयं **नायकं**-प्रधानं **जिह्वेन्द्रियं** जिह्वा च तदिन्द्रियं-जिह्वेन्द्रियम्-रसनेन्द्रियं **वशे कुरुत**, यस्य जिह्वेन्द्रियं वशीकृतं भवति **तस्याऽन्यानीन्द्रियाणि अधीनानि** भवन्ति । दृष्टान्तयति-यथा **तुम्बिन्याः**, तुम्बिनीति वृक्षविशेषस्य संज्ञा, तस्याः **मूले विनष्टे** सति **पर्णानि**-पत्राणि **अवश्यमेव शुष्यन्ति** शुष्काणि भवन्ति, एवमेव यस्य पुरुषस्य एकं जिह्वेन्द्रियं स्वाऽधीनं वर्तते, तस्य अन्यानि घ्राणादीनि सर्वाण्यपीन्द्रियाणि वशे सञ्जायन्ते । नाऽत्र सन्देहः कर्त्तव्यः ।

जिह्वेन्द्रियम् । जिह्वेन्द्रिय+अम् । ३२८ सू० ह्वस्य स्थाने भकारे, ३६० सू० भकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०६९ सू० रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **जिब्भिन्दिउ** इति भवति । **नायकम्** । नायक+अम् । १०६७ सू० ककारस्य गकारे, पूर्ववदेव अकारस्य उकारे, अमो लोपे **नायगु** इति भवति । **वशे** । वश+ङि । २६० सू० शकारस्य सकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **वसि** इति भवति । **कुरुत** । डुकृञ्-(कृ)-करणे । कृ+त । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, १०५५ सू० त इत्यस्य स्थाने हु इत्यादेशे **करहु** इति भवति । **यस्य**=जसु, प्रक्रिया १०४१ सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया । **अधीनानि** । अधीन+जस् ।

३७० सू० नकारस्य द्वित्वे,८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे अधिन्नइं इति भवति। बाहुल्येनाऽत्र १८७ सू० धकारस्य हकारो न जातः। **अस्मानि**। अस्मद्+जस्। इत्यत्र ३४९ सू० यकारस्य लोपे, ३६० सू० नकारद्वित्वे, ११ सू० दकारलोपे, अधिन्नइं-वदेव अन्नइं इति भवति। अत्र १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशो जातः। **मूले**। मूल+ङि। १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे मूलि इति भवति। **विनष्टे**। विनष्ट+ङि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, ११०० सू० स्वार्थे अप्रत्यये, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे विणट्ठइ इति भवति। **तुम्बिन्याः**। तुम्बिनी+ङस्। बाहुल्येन २४ सू० मकारस्याऽनुस्वारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, १०२१ सू० ङसः स्थाने हे इत्यादेशे तुंबिणिहे इति भवति। **अवश्यम्**। अव्ययपदमिदम्। ३४९ सू० यकारलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, प्रस्तुतसूत्रेण स्वार्थे डें-(एं)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये अवसें इति भवति। **शुष्काणि**। शुष्क+जस्। २६० सू० शकारस्य सकारे, ३४८ सू० षकारस्य लोपे, ३६० सू० ककारद्वित्वे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे सुक्कइं इति भवति। सुक्कहिँ इत्यपि पाठान्तरं समुपलभ्यते। अत्र शुष्क+जस्=सुक्क+जस् इति पूर्ववदेव जाते, बाहुल्येन १०१८ सू० जसः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे सुक्कहिँ इति भवति। **पर्णानि**। पर्ण+जस्। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० णकारद्वित्वे, पूर्ववदेव पण्णइं इति भवति। **अवश्यम्**=अवसें इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण डें इत्यस्य प्रत्ययस्य प्रवृत्तिर्जाता। ड-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदीयते। यथा—**अवश्यं न स्वपन्ति सुखासिकायाम्**=अवस न सुअहिँ सुहच्छिअहिं, प्रक्रिया १०४७ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **अवश्यम्**=अवस इत्यत्र ड-प्रत्ययो जातः। साधना त्विरथम्-**अवश्यम्**। अव्ययपदमिदम्। २६० सू० शकारस्य सकारे, ३४९ सू० यकारलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण ड-(अ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये अवस इति भवति।

१०९९— एकशः शील-कलङ्कितानां दीयन्ते प्रायश्चित्तानि।

यः पुनः खण्डयति अनुदिवसं तस्य प्रायश्चित्तेन किम्?॥१॥

भावार्थः—एकशः-एकवारं **शीलकलङ्कितानां**,शीलं-सदाचारं कलङ्कितं येषां, ते शीलकलङ्किताः, तेषां कृते **प्रायश्चित्तानि**-दण्डानि आचार्यप्रवरैः **दीयन्ते**, किन्तु यः **पुनः अनुदिवसं**,दिवसं दिवसमिति अनुदिवसं-प्रतिदिनं व्रतं **खण्डयति तस्य प्रायश्चित्तेन किम्**? न किमपीति भावः।

एकशः। अव्ययपदमिदम्। एकशस् इत्यत्र ३७० सू० ककारद्वित्वे,२६० सू० शकारस्य सकारे, १०९९ सू० स्वार्थे डि-(इ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये एक्कसि इति भवति। बाहुल्येनाऽत्र ८४ सू० ह्रस्वो न जातः। **शील-कलङ्कितानाम्**। शील-कलङ्कित+आम्। २६० सू० शकारस्य सकारे, २५ सू० ङकारस्याऽनुस्वारे, १७७ सू० तकारस्य लोपे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे सील-कलंकिअहं इति भवति। **दीयन्ते**। डुदाञ्-[दा]-दाने। दा+क्य+अन्ते। ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे,१० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये,१००० सूत्रेण इकारस्य स्थाने एकारे, १०५३ सू० अन्ते इत्यस्य हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे देज्जहिँ इति भवति। **प्रायश्चित्तानि**। प्रायश्चित्त+जस्। १०६९ सू० रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, ५ सू० दीर्घसन्धौ, २९२ सू० श्चस्य स्थाने छकारे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे पच्छित्ताइं इति भवति।

सः=जो, प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया। **पुनः**=पुणु, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **खण्डयति**। खडि-धातुः खण्डने। संस्कृतनियमेन खण्ड्+णिच्+तिप् इति जाते, ६३८ सू० णिचः स्थाने अकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य आकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ६२८ सू० तिव इचादेशे खण्डइ इति भवति। **अनुदिवसम्**। अनुदिवस+अम्। २२८ सू० नकारस्य णकारे, १७७ सू० वकार-लोपे, २६३ सू० सकारस्य हकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **अणुदिअहु** इति भवति। **तस्य**=तसु, इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया १००९ सूत्रे ज्ञेया। **प्रायश्चित्तेन**। प्रायश्चित्त+टा। १०६९ सू० रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, २९२ सू० श्चस्य छकारे, ३६० सू० छकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, स्था-निवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **पच्छित्तें** इति भवति। **किम्**=काइं, प्रक्रिया १०३८ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। अत्र १०३८ सू० किमः स्थाने काइं इत्यादेशे, १०१५ सू० अमो लोपे **काइं** इति भवति। **एकशः**=एक्कसि इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण डि-प्रत्ययो जातः।

११००—स्वार्थिक-क-प्रत्यय-लोपश्च। प्रस्तुतसूत्रेण अपभ्रंशभाषायां नाम्नः-प्रातिपदिकात् प-रतः स्वार्थे अ, डड [अड], डुल्ल [उल्ल] इत्येते त्रयः प्रत्ययाः प्रतिपादिताः सन्ति, तथा तत्सन्नियोगे यदि स्वार्थिक-क-प्रत्ययो भवेत्तदा तस्य लोपः करणीयः, अन्यथा [क-प्रत्ययाऽभावे] सूत्रोक्ताः प्रत्यया-स्तु भविष्यन्त्येवेत्यपि संसूचितम्।

विरहाऽनल-ज्वाला-करालितः पथिकः पथि यद् दृष्टः।

तद् मिलित्वा सर्वैः पथिकैः स एव कृतः अग्निष्ठः॥१॥

भावार्थः—विरहानल-ज्वाला-करालितः। विरहः-वियोगः, स एव अनलः-वह्निः, विरहाऽनलः, तस्य ज्वालाः, ताभिः करालितः-पीडितः, **पथिकः**-पान्थः **पथि**-मार्गे **यद् दृष्टः**-यदाऽवलोकितः तद्-तदा **सर्वैः पथिकैः मिलित्वा स एव अग्निष्ठः**-अग्निसात् **कृतः**। अयं भावः-कश्चित् पान्थः प्रिया-विरहाऽनलेन न केवलं सन्तप्तः, अपितु तेन दग्धः सन् मृत एव।

विरहानल-ज्वाला-करालितः। विरहानल-ज्वाला-करालित+सि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, ३५० सू० वकारलोपे, ४ सू० ल-स्थस्याऽकारस्य अकारे, १७७ सू० तकारलोपे, ११०० सू० स्वार्थे अ-प्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **विरहाणल-जाल-करालिअउ** इति भवति। **पथिकः**। पथिक+सि=पहिउ, प्रक्रिया १०८६ सूत्रे ज्ञेया। **पथे**। पन्थ+ङि। १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **पन्थि** इति भवति। **यद्**=जं, प्रक्रिया १०९१ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **दृष्टः**। दुष्ट+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, ३०५ सू० ष्टस्य स्थाने ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-ठकारस्य टकारे, ११०० सू० अप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **दिट्ठउ** इति भ-वति। **तद्**=तं, प्रक्रिया १०८५ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **मिलित्वा**। मिल [मिलृ] सम्मिलने। मिल्+क्त्वा। १००० सू० इकारस्य एकारे, १११० सू० क्त्वः स्थाने अवि इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये, **मेलवि** इति भवति। **सर्वैः**। सर्व+भिस्। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **सव्वहिँ** इति भवति। **पान्थैः**। पान्थ+भिस्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००० सू० अन्त्यस्य अकारस्य इकारे, ११०० सू० अप्रत्यये, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे **पन्थिअहिं** इति भवति। **सः**=सो, प्रक्रिया १०७२ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **एव**=जि, प्र-क्रिया १०१२ सूत्रस्य तृतीयश्लोकांशे ज्ञेया। **कृतः**। कृत+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू०

तकारलोपे,११०० सू० अप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **किअउ** इति भवति। **अग्निष्ठः**। अग्निष्ठ+सि। ३४९ सू० नकारलोपे, ३४८ सू० षकारलोपे, ३६० सू० गकारस्य ठकारस्य च द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, ११०० सू० अप्रत्यये,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **अग्गिट्ठउ** इति भवति। **विरहानल-ज्वाला-करालितः**=विरहाणल-जाल-करालिअउ, **दृष्टः**=दिट्ठउ, **पान्थः**=पन्थिअहिं,**कृतः**=किअउ, **अग्निष्ठः**=अग्गिट्ठउ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण अप्रत्ययो जातः। **डड**। डड-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदीयते। यथा-**मम कान्तस्य द्वौ दोषौ**=महु कन्तहों बे दोसडा, प्रक्रिया १०५० सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **दोषौ**=दोसडा इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण डड-प्रत्ययो जातः। **डुल्ल**। डुल्ल-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदर्श्यते। यथा—**एका कुटी पञ्चभिः रुद्धा**=एक्क कुडुल्ली पञ्चहिँ रुद्धी,एषां पदानां प्रक्रिया १०९३ सूत्रस्य द्वादशे श्लोके ज्ञेया। **कुटी**=कुडुल्ली इत्यत्र डुल्ल-प्रत्ययो जातः।

११०१—योगभेदेभ्यः। ११०० सूत्रेण **अ, डड, डुल्ल इत्येते** त्रयः स्वार्थिकाः प्रत्ययाः विहिताः सन्ति। इत्येतेषां त्रयाणां प्रत्ययानां योगभेदात्—भिन्न-भिन्नप्रकारेण योजनाकरणात् ये प्रत्ययाः संजायन्ते, तेऽपि प्रत्ययाः प्रायः प्रस्तुतसूत्रेण स्वाऽर्थे विधीयन्ते। यथा—**डड,अ** इत्यनयोः सम्मीलनेन **डड-अ** इति प्रत्ययो भवति। **डुल्ल, अ,** इत्यनयोः संयोगे जाते **डुल्लअ** इति प्रत्ययोऽजायत। एवमेवाऽन्येषां प्रत्ययानामपि कल्पना करणीया। **डडअ**। डडअ-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदीयते। यथा—**स्फोटयतः यौ हृदयमात्मीयम्**=फोडेन्ति जे हिअडउं अप्पणउं,प्रक्रिया १०२१ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **हृदयम्**=हिअडउं इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण डडअ-प्रत्ययो जातः। प्रायोग्रहणाद् **जे** इत्यत्र १०८१ सूत्रेण उच्चारणस्य लाघवं न जातम्। **हिअडउं**, तथा **अप्पणउं** इत्यत्र चापि १०८२ सूत्रेण उच्चारणस्य लाघवं न जातम्। **अत्र किल**[illegible]। **हृदयम्**=हिअडउं इत्यत्र २६९ सूत्रेण सस्वर-यकारस्य लोपोऽभवद्। **डुल्ल-अ**। डुल्लअ-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदर्श्यते। यथा—**चूडकः चूर्णीभवति स्वयम्**=चूडुल्लउ चुण्णीहोइ सइ, प्रक्रिया १०६६ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **चूडकः**=चूडुल्लउ इत्यत्र प्रस्तुतेन [११०१] सूत्रेण डुल्ल-अ-प्रत्ययो जातः। **डुल्लडड**। डुल्लड-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारो यथा—

स्वामिप्रसादं सलज्जं प्रियं सीमासन्धौ वासम्।
प्रेक्ष्य बाहुबलं धन्या मुञ्चति निःश्वासम्॥१॥

भावार्थः—कस्याश्चन नायिकायाः वियोगजनकं कारण-कलापमाह—**धन्या**-पुण्यवती पतिपरायणत्वात्, काचिन्नायिका **निःश्वासं मुञ्चति**,किं कृत्वा ? तदाह—**स्वामिप्रसादम्**, स्वामिनः प्रसादम्-कृपाभावं **प्रेक्ष्य**-वीक्ष्य, ये खलु सेवकाः स्वामिनः कृपा-पात्रा भवन्ति, तान् स्वामी न कदाचिदपि परित्यजति,निजपार्श्वे एव सदा संरक्षति। एतत्सर्वं वियोग-मूलकमेव भवत्यतएव नायिका निःश्वासान् मुञ्चति। पुनः किं कृत्वा ? **सलज्जम्**, लज्जया सह वर्तमानं **प्रियं** वीक्ष्य। नायकस्येयमेव सलज्जता यदसौ निजस्वामिन आदेशं न कदाचिदप्युल्लंघयति, एतदपि वियोगमूलकं विद्यते, यतः सलज्जतया सः राज्ञः आज्ञा-सान्निध्यं न परित्यजति, अतएव नायिकापार्श्वे न समायाति। पुनः किं कृत्वा ? नायकस्य **सीमासन्धौ**, सीमयोः-विभिन्नप्रदेशयोः पार्थक्य-संसूचकस्यानयोः **वासं**-निवासं वीक्ष्य, देशाऽन्ते वासं वियोगसम्पादकं, मृत्युभयोत्पादकञ्च भवतीति हेतोः, पुनः किं कृत्वा ? **बाहुबलं** बाह्वोः बलं, युद्धकरणक्षमतां च वीक्ष्य, ये खलु युद्धोत्सुकाः नराः भवन्ति, ते खलु न निजगृहे तिष्ठन्ति, प्रत्युत युद्धस्थले एव निवसन्ति, फलतः तेषां सज्जनानां सान्निध्यं परिवार-सदस्यानां कृते न सार्वकालिकं भवति, अतएवाऽसौ नायिका खेदखिन्ना **निःश्वासान् मुञ्चतीति** भावः।

स्वामिप्रसादम् । स्वामि-प्रसाद+अम् । ३५० सू० वकारस्य रेफस्य च लोपे, १७७ सू० दकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **सामि-पसाउ** इति भवति । ११ सूत्रस्य वृत्तिमनुसृत्य पकारस्याऽऽदिभूतत्वादत्र ३६० सूत्रस्याऽप्रवृत्तिः बोध्या । सलज्जम् । सलज्ज+अम् । पूर्ववदेव अकारस्य उकारे, अमो लोपे **सलज्जु** इति भवति । **प्रियम्** । प्रिय+अम् । १०६९ सू० रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, पूर्ववदेव **पिउ** इति भवति । **सीमासन्धौ** । सीमासन्धि+ङि । १०२३ सू० ङि-प्रत्ययस्य हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **सीमासन्धिहिं** इति भवति । **वासम्** । वास+अम् । इत्यत्र १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **वासु** इति भवति । **प्रेक्ष्य** । प्रपूर्वकः ईक्ष्-धातुः प्रेक्षणे-दर्शने । प्रेक्ष्+क्त्वा । १०६९ सू० रेफलोपे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, ११९० सू० क्त्वः स्थाने इवि इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **पेक्खिवि** इति भवति । बाहुल्येनाऽत्र ८४ सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता । **बाहुबलम्** । बाहुबल+अम् । प्रस्तुतसूत्रेण डुल्ल-डड-[उल्ल अड]-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये बाहुबलुल्लअड+अम् इति जाते, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **बाहुबलुल्लडा** इति भवति । **धन्या** । धन्या+सि । ३४९ सू० यकारलोपे, बाहुल्येन ३६० सू० नकारस्य द्वित्वाऽभावे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **धण** इति भवति । **मुञ्चति**=मेल्लइ, इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया ७६२ सूत्रे ज्ञेया । **निःश्वासम्** । निर्श्वास+अम् । १३ सू० रेफलोपे, ४३ सू० इकारस्य स्थाने ईकारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ३५० सू० वकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **नीसासु** इति भवति । **बाहुबलम्**=बाहुबलुल्लडा इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण डुल्ल-डड-प्रत्ययो जातः । अत्राऽमि स्यादौ । बाहुबलुल्लडा इत्यत्र अम्-प्रत्यये परे सति १००१ सू० अन्त्याऽकारस्य आकारो जातः । **एवं बाहु-बलुल्लडउ** । एवमेव **बाहुबलुल्ल-डउ** इत्यत्र **डुल्ल, डड, अ** इत्येतेषां त्रयाणां प्रत्ययानां योगेन-सम्बन्धेन रूपनिष्पत्तिर्दृश्यते । यथा- **बाहुबलः** । बाहुबल+सि । ११०१ सू० स्वार्थिके डुल्ल-डड-अ-[उल्ल-अड-अ]-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १० सू० ल्ल-स्थस्य अकारस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये बाहुबलुल्लड-अ+सि इति जाते, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **बाहुबलुल्लडउ** इति भवति । अत्र त्रयाणां प्रत्ययानां योगः-सम्बन्धो ज्ञेयः । अयं भावः—**हिअडउं** इत्यत्र डडअ-प्रत्ययस्य योगः । **चूडुल्लउ** इत्यत्र डुल्लअ-प्रत्ययस्य सम्बन्धः । **बाहुबलुल्लडा** इत्यत्र डुल्ल-डड-प्रत्ययस्य संयोगः, तथा **बाहुबलुल्लड-उ** इत्यत्र डुल्ल-डड-अ-प्रत्ययस्य स्थितिर्दृश्यते ।

११०२— **पथिक ! दृष्टा गौरी, दृष्टा मार्गं पश्यन्ती ।**
अश्रूच्छ्वासैः कञ्चुकमार्द्रशुष्कं कुर्वन्ती ॥१॥

भावार्थः—हे **पथिक** !—पान्थ !, त्वया **गौरी**-सुन्दरी **दृष्टा** ? तेन पथिकेनोत्तरितम्—मया सा **मार्गं पश्यन्ती**-अवलोकयमाना **दृष्टा**—अवलोकिता । पुनः सा किं कुर्वती ? **अश्रूच्छ्वासैः**-अश्रूणि उच्छ्वासाश्च, अश्रूच्छ्वासाः, तैः **कञ्चुकं**-परिधानविशेषम् **आर्द्रशुष्कम्**, आर्द्रं च शुष्कं चाऽनयोः समाहारः, तं **कुर्वती** । **अयं भावः** त्वद्वियोगेन यदा सा रुदन्ती-अश्रूणि मुञ्चति तदाऽश्रुजलेन कञ्चुकमार्द्रयति, यदा चोच्छ्वासनिःश्वासानादत्ते तदा तज्जनितौष्ण्येन कञ्चुकं शोषयति ।

पथिक ! । पथिक+सि । १८७ सू० थकारस्य हकारे, १७७ सू० ककारलोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पहिआ !** इति भवति । **दृष्टा** । दृष्टा+सि । १२८ सू० ऋकार-

स्य इकारे, ३०५ सू० टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १००१ सू० आकारस्य ईकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे विट्ठी इति भवति। **गौरी**। गौरी+सि। १५९ सू० औकारस्य ओकारे, ११०० सू० स्वार्थे डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, ११०२ सू० डी-(ई)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्भीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे गोरडी इति भवति। **मार्गम्**। मार्ग+अम्। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे मग्गु इति भवति। **पश्यन्ती**। दृशिर्-[दृश्]-धातुः दर्शने। दृश्+शतृ। ८५२ सू० दृशः स्थाने निअ इत्यादेशे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, स्त्रीत्व-विवक्षायामाप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, सि-प्रत्यये, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे निअन्त इति भवति। **अश्रूच्छ्वासैः**। अश्रु-उत्-श्वास+भिस्। २६ सू० आदिस्वरस्याऽनुस्वारागमे, १०६९ सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ३६३ सू० सकारस्य द्वित्वाऽभावे, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ ११ सू० तकारलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ३५० सू० वकारलोपे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, स्थानिवत्त्वात् १००६ सू० अकारस्य एकारे, १०८१ सू० एकारस्य उच्चारणलाघवे, १०८२ सू० हकारगतस्य अनुस्वारस्य उच्चारणलाघवे अंसूसासें हिं इति भवति। **कञ्चुकम्**। कञ्चुक+अम्। १७७ सू० अन्त्यककारस्य लोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० अमो लोपे कञ्चुआ इति भवति। **आर्द्रशुष्कम्**। आर्द्रशुष्क+अम्। अपभ्रंशे आर्द्रशुष्कस्य स्थाने १०९३ सू० तिलुव्वाण इति शब्द-प्रयुक्ते, १०१५ सू० अमो लोपे तिलुव्वाण इति भवति। **कुर्वती**। डुकृञ् [कृ] करणे। कृ+शतृ। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, स्त्रीत्वविवक्षायामाप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घसन्धौ, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे करन्त इति भवति। **गौरी**=गोरडी इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण डीप्रत्ययो विहितः। **एका कुटी पञ्चभिः रुद्धा**=एक्क कुडुल्ली पञ्चहिँ रुद्धी, प्रक्रिया १०९३ सूत्रस्य द्वादश-श्लोके ज्ञेया। **कुटी**=कुडुल्ली इत्यत्राऽपि प्रस्तुतसूत्रेण डी-प्रत्ययः कृतः।

११०३—स्त्रियां वर्तमानादप्रत्ययान्त-प्रत्ययान्तात्। अ-प्रत्ययोऽन्ते यस्य सः, अप्रत्ययान्तः। यथा डड-अ अयं प्रत्ययः अ-प्रत्ययान्तः। एतादृशः अप्रत्ययान्तः प्रत्ययः [डडअ] अन्ते यस्य सोऽप्रत्य-यान्त-प्रत्ययान्तः। यथा **धूलिः**=धूलडअ+सि, अयं शब्दः अप्रत्ययान्त-प्रत्ययान्तो बोध्यः। एतादृशात् शब्दात् डाप्रत्ययो भवतीति भावः। **अपवादः**। ११०२ सूत्रेण डीप्रत्ययो जायते परन्तु ११०३ सूत्रेण अ-प्रत्ययान्त-प्रत्ययान्त-शब्दात् डाप्रत्ययो भवत्यतः तस्य [११०२] सूत्रस्य अपवादसूत्रमिदं बोध्यम्। सम्प्रति डा-प्रत्ययस्योदाहरणं प्रदीयते। यथा—

प्रिय आयातः, श्रुता वार्ता, ध्वनिः कर्णे प्रविष्टा।
तस्य विरहस्य नश्यतः धूलिरपि न नष्टा॥११॥

भावार्थः—विदेशात् प्रत्यागतं निजपतिं प्राप्य नायिकायाः हर्षोद्रेकोक्तिरियम्—**प्रियः**-कान्तः, **आयातः**-समागतः, इति **वार्ता**-वृत्तान्तः **श्रुता**, तस्य समागच्छतः पादयोः **ध्वनिरेव कर्णे-प्रविष्टा**, तदा पत्युरागमनवेलायां **तस्य**-पूर्वोक्तस्य, **विरहस्य**-वियोगस्य, **नश्यतः**-धावतः **धूलिरपि न दृष्टा**, प्रियः समा-यातः इति ज्ञात्वा विरहजन्यं दुःखं तत्क्षणमेव समाप्तमिति भावः।

प्रियः=पिउ, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य द्वितीय-श्लोके ज्ञेया। **आयातः**। आङ्पूर्वकः याधातुः प्राग-मने। आया+क्त=त। १०००० सू० य-स्थस्य आकारस्य इकारे, १७७ सू० यकारस्य तकारस्य च लोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे आइउ इति भवति। **श्रुता**। श्रुता+सि। १०६९

सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, सेर्लोपे **सुअ** इति भवति । **वार्ता** । वार्ता+सि । ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, ११०० सू० डल-(अल)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ११०२ सू० डी-[ई]-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **वत्तडी** इति भवति । **ध्वनिः** । ध्वनि+सि । २८६ सू० ध्वस्य स्थाने भकारे, ५२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, सेर्लोपे **भुणि** इति भवति । **कर्णे** । कर्ण+ङि । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० णकारद्वित्वे, ११०२ सू० डडअ-(अडअ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **कण्णडइ** इति भवति । **प्रविष्टा** । प्रविष्टा+सि । १०६१ सू० रेफलोपे, १७७ सू० वकारलोपे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पइट्ठु** इति सिद्धम् । **तस्य**=तहो॑, प्रक्रिया १०९७ सूत्रे ज्ञेया । **विरहस्य** । विरह+ङस् । १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणलाघवे **विरहहो॑** इति भवति । **नश्यतः** । णश-[नश्]-धातुः नाशे । नश्+शतृ । १००० सू० अकारस्य आकारे, ९१० सू० अकारागमे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, ११०० सू० अप्रत्यये, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणलाघवे **नासन्तअहो॑** इति भवति । **धूलिः** । धूलि+सि । ११०१ सूत्रेण डडअ-(अडअ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ११०२ सू० डी-प्रत्ययस्य प्राप्तिरासीत् किन्तु ११०३ सू० डा-(आ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, बाहुल्येन ५ सू० दीर्घ-सन्ध्यभावे, ११०४ सू० द्वितीयस्य अकारस्य इकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **धूलडिआ** इति भवति । बाहुल्येनाऽत्र १० सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता । **अपि**=वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **दृष्टा** । दृष्टा+सि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **दिट्ठु** इति भवति । **धूलिः**=धूलडिआ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण डा-प्रत्ययो विहितः ।

११०४—धूलिरपि न दृष्टा=धूलडिआ वि न दिट्ठु, प्रक्रिया ११०३ सूत्रे ज्ञेया । **धूलिः**=धूलडिआ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य इकारो जातः । साधना त्वित्थम्-**धूलिः** । धूलि+सि । ११०१ सू० डडअ-(अडअ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ११०३ सू० डा-[आ]-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, बाहुल्येन ५ सू० दीर्घसन्धेरभावे, प्रस्तुतसूत्रेण द्वितीयस्य अकारस्य इकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **धूलडिआ** इति भवति । **स्त्रियामित्येव** । स्त्रीलिङ्गे एव प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जायते, नान्यत्र । यथा—**ध्वनिः कर्णे प्रविष्टा**=भुणि कण्णडइ पइट्ठु,प्रक्रिया ११०३ सूत्रे ज्ञेया । **कण्णडइ** इत्यत्र स्त्रीलिङ्गत्वाऽभावात् प्रस्तुतसूत्रेण अकारस्य इकारो न विहितः । साधना त्वित्थम्—**कर्णे** । कर्ण+ङि । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० णकारद्वित्वे,११०१ सू० डडअ-(अडअ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये कण्णडअ+ङि इति जाते, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **कण्णडइ** इति भवति । वृत्तिकारकथनमनुसृत्य स्त्रीलिङ्गत्वाऽभावादत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता । इदमत्र विचारणीयं यत् स्त्रीलिङ्गेऽपि आकार-प्रत्यय-परवर्तित्वादेव ११०४ सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जायते, नान्यथा । परन्तु **कण्णडइ**-शब्दे आकार-प्रत्यय एव नास्ति, ११०३ सूत्रेण डा-(आ)-प्रत्ययोऽपि स्त्रीलिङ्गे एव भवति, अस्त्रीलिङ्ग-कर्ण-शब्दात् डा-प्रत्ययस्य ११०३ सूत्रेण प्राप्तिरेव न भवितुमर्हति ।

यतः ११०४ सूत्रस्य अनुवृत्तिरेव भवितुं न शक्नोति, तथाऽपि वृत्तिकारेण **कण्णडइ** इत्यस्योदाहरणस्योल्लेखः कथं कृतः ? इति तत्त्वविद्भिः चिन्तनीयम् ।

११०५— सन्देशेन किं युष्मदीयेन, यत्संगाय न मिल्यते ।
स्वप्नाऽन्तरे पीतेन पानीयेन, प्रिय ! पिपासा किं छिद्यते ? ॥१॥

भावार्थः—प्रियवियोगोऽसह्यो भवतीति व्यज्यते । **युष्मदीयेन**, युष्माकमयं युष्मदीयस्तेन त्वदीयेन, **संदेसेन**-समाचारेण **किम्** ? न किमपीति । **यत् संगाय**-सम्भोगाय, कामक्रीडार्थं **न मिल्यते**, अवसरो न प्राप्यते । दृष्टान्तयति, **प्रिय ! स्वप्नाऽन्तरे**, स्वप्नस्यान्तरं स्वप्नान्तरं तस्मिन् स्वप्न-मध्ये **पीतेन पानीयेन**-जलेन **किं पिपासा छिद्यते**, शान्तिमुपयाति ? न कदाचिदपीति भावः ।

सन्देशेन । सन्देश + टा । २५ सू० नकारस्यानुस्वारे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **संदेसें** इति भवति । **किम्**—काइँ, प्रक्रिया १०३८ सूत्रे ज्ञेया । **युष्मदीयेन** । युष्माकमयमिति युष्मदीयः । संस्कृतनियमेन युष्मद्+ईय+टा इति जाते । २४६ सू० यकारस्य तकारे, बाहुल्येन षमस्य हकारे, ११०५ सू० *ईय-प्रत्ययस्य डार (आर) इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, टाप्रत्यये, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **तुहारेण** इति भवति । **यत्**—जं, प्रक्रिया १०९१ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । **सङ्गाय** । सङ्ग+ङे । ६२० सू० चतुर्थ्याः स्थाने षष्ठीविभक्तौ, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे, १०८१ सू० उच्चारणलाघवे **सङ्गहो** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **मिल्यते** । मिल् समागमे । मिल्+क्य+ते । ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **मिलिज्जइ** इति भवति । **स्वप्नाऽन्तरे** । स्वप्नान्तर+ङि । इत्यत्र ३५० सू० वकारस्य लोपे, ४६ सू० आद्यस्य अकारस्य स्थाने उकारे, ३७९ सू० नकारात्पूर्वं इकारागमे, १७७ सू० पकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **सुइणन्तरि** इति भवति । **पीतेन** । पीत+टा । १७७ सू० तकारलोपे, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **पिएं** इति भवति । **पानीयेन** । पानीय+टा । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १०१ सू० ईकारस्य इकारे, १७७ सू० यकारलोपे, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **पाणिएण** इति भवति । **प्रिय !**—पिअ !, इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया १०८९ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया । **पिपासा** । पिपासा+सि । १७७ सू० द्वितीय-पकारलोपे, बाहुल्येनाऽत्र १० सूत्रस्याऽप्रवृत्तौ, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पिआस** इति भवति । **किम्** । किम्+अम् । ५६९ सू० अमा सह किमः स्थाने किं इत्यादेशे **किं** इति भवति । **छिद्यते** । छिदि-[छिद्]-धातुः भेदने । छिद्+ते । ६४९ सूत्रे बहुलाधिकारात् क्यस्य अभावे, ८९५ सू० दकारस्य ज्ज इत्यादेशे, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **छिज्जइ** इति भवति । **युष्मदीयेन**—तुहारेण इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता । **पश्य अस्मदीयं कान्तम्**—दिक्खि अम्हारा कन्तु, एषां पदानां प्रक्रिया १०१६ सूत्रे ज्ञेया । दृश्+हि इत्यत्र ८५२ सू० दृशः देक्ख इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०५८ सू० हि इत्यस्य इकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे **दिक्खि** इति भवति । **अस्मदीयम्**—अम्हारा इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण ईय-प्रत्ययस्य डार इत्यादेशो जातः । साधना त्वित्थम्—**अस्मदीयम्**-अस्मद्+अम् । २४५

***युष्मद्-शब्दात् हैमशब्दानुशासनस्य व्याकरणस्य ६।३।६७। सूत्रेण ईयण्-(ईय)-प्रत्ययो जायते । सिद्धान्तकौमुद्यां युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च ४।३।१। अनेन सूत्रेण छ-(ईय)-प्रत्ययो भवति ।**

सू० स्मस्य म्ह इत्यादेशे, ११०५ सू० ईयस्य डार [आर] इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० अन्त्याकारस्य आकारे, १०१५ सू० अमो लोपे अम्हारा इति भवति। भगिनि! अस्मदीयः कान्तः=बहिणि! म्हारा कन्तु, प्रक्रिया १०२२ सूत्रे ज्ञेया। अस्मदीयः=म्हारा इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। साधना त्वित्थम्-अस्मदीयः। अस्मदीय+सि। बाहुल्येन ६०२ सू० अस्मदः स्थाने म्ह इत्यादेशे, ११०५ सू० ईय-प्रत्ययस्य डार-[आर] इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे म्हारा इति भवति।

११०६—इयान्। इदं परिमाणं यस्य। इदम्+अतु। इत्यत्र [1]मानार्थे ७।१।१४८। इत्यनेन सूत्रेण अतु-(अत्)-प्रत्ययः, इदमः स्थाने इय् इत्यादेशश्च जातः, ११०६ सू० अतुप्रत्ययस्य डेत्तुल [एत्तुल] इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, सि-प्रत्यये, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे एत्तुलो इति भवति। कियान्। किं परिमाणमस्येति। किम्+अतु। ७।१।१४८ सू० अतु-प्रत्यये किमश्च किय् इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण अतु-प्रत्ययस्य डेत्तुल इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, पूर्ववदेव केत्तुलो इति भवति। यावान्। यत् परिमाणमस्येति यावद्। इत्यत्र ७।१।१४९। सूत्रेण [2]मानार्थे डावतु-प्रत्ययो जायते, ततः संस्कृतनियमेन यद्+डावतु इति जाते, २४५ सू० यकारस्य जकारे, **प्रत्ययग्रहणे तदन्तस्याऽपि ग्रहणं भवति,** इति नियमेन अतु-कथनेन डावतु-प्रत्ययस्याऽपि ग्रहणं जायते। ततः प्रस्तुतसूत्रेण डावतु-प्रत्ययस्य डेत्तुल (एत्तुल) इत्यादेशे, पूर्ववदेव जेत्तुलो इति भवति। तावान्। तत्परिमाणमस्येति। तद्+डावतु। **प्रत्ययग्रहणे तदन्तस्याऽपि ग्रहणम्,** इति नियमेन अतु-प्रत्ययस्य ग्रहणेन डावतोरपि ग्रहणं भवति। ततः ११०६ सू० डावतुप्रत्ययस्य स्थाने डेत्तुल इत्यादेशे, पूर्ववदेव तेत्तुलो इति भवति। एतावान्। एतत् परिमाणमस्येति एतावान्। एतत्+डावतु। संस्कृतनियमेन इय्+डावतु इति जाते, प्रस्तुतसूत्रेण डावतुप्रत्ययस्य स्थाने डेत्तुल [एत्तुल] इत्यादेशे, बाहुल्येन ४२७ सू० एतद्-शब्दस्य लुकि, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे एत्तुलो इति भवति।

११०७— अत्र तत्र द्वारे गृहे लक्ष्मीः विसंष्ठुला धावति।
प्रियप्रभ्रष्टेव गौरी निश्चला कस्मिन्नपि न तिष्ठति॥१॥

भावार्थः—लक्ष्म्याः चाञ्चल्यं वर्णयति—**अत्र तत्र द्वारे,** तथा **गृहे, लक्ष्मीः विसंष्ठुला**-चंचला **धावति,** चंचला लक्ष्मीरिति भावः। कविरत्र उदाहरणमाह—**इव**-यथा, **प्रियप्रभ्रष्टा,** प्रियात्-कान्तात् प्रियनायकाद्वा प्रभ्रष्टा-प्रकर्षेण भ्रष्टा, प्रिय-प्रभ्रष्टा **गौरी**-सुन्दरी, **कस्मिन्नपि** स्थाने **निश्चला**-चाञ्चल्य-रहिता, स्थायिरूपेण **न तिष्ठति**। एवमेव लक्ष्म्याः चाञ्चल्यं वर्तते।

अत्र। अस्मिन्निति अत्र। अव्ययपदमिदम्। ११०७ सू० त्रप्रत्ययस्य डेत्तहे [एत्तहे] इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, १०८२ सू० हकारगतस्य एकारस्य उच्चारणलाघवे **एत्तहें** इति भवति। **तत्र।** तस्मिन्निति तत्र। अव्ययपदमिदम्। प्रस्तुतसूत्रेण त्रप्रत्ययस्य स्थाने डेत्तहे [एत्तहे] इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०८२ सू० हकारगतस्य एकारस्य उच्चारणलाघवे तेत्तहें इति भवति। **द्वारे।** द्वार+ङि। ३४८ सू० दकारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे

१. इदं किमोऽतुरिय्-किय् चास्य ।७।१।१४८। आभ्यां मानार्थाभ्यां षष्ठ्यर्थे मेयेऽतुः स्यात्, तद्योगे चानयोर्यथासंख्यमिय्किया स्याताम्। ईयान्। कियान् पटः। —हैमशब्दानुशासने।

२. यत्तदेतदोडावादिः ।७।१।१४९। एभ्यः मानार्थेभ्यः षष्ठ्यर्थे मेयेऽतुर्डावादिः स्यात्। यावान्। तावान्। एतावान्। धान्यराशिः। —हैमशब्दानुशासने।

वारि इति भवति। **गृहे**। गृह+ङि। ४१५ सू० गृह-शब्दस्य घर इत्यादेशे, वारि-वदेव **घरि** इति भवति। **लक्ष्मीः**। लक्ष्मी+सि। ३४९ सू० मकारलोपे, २७४ सू० क्षस्य छकारे, ३६० सू० छकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **लच्छि** इति भवति। **विसंष्ठुला**। विसंष्ठुला+सि। ३४८ सू० षकारलोपे, ३६३ सू० ठकार-द्वित्वाऽभावे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, सेर्लोपे **विसंठुल** इति भवति। **धावति**। धाव्-धातुः धावने। धाव्+तिव्। ८९९ सू० वकार-लोपे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **धाइ** इति भवति। **प्रिय-प्रभ्रष्टा**। प्रियप्रभ्रष्टा+सि। १०६९ सू० सर्वत्रैव रेफलोपे, १७७ सू० यकारलोपे, ३६० सू० भकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारे, ३०५ सू० ष्टस्य ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पिअ-पब्भट्ठ** इति भवति। ११ सूत्रमनुसृत्य समासे वाक्यविभक्त्यपेक्षया भिन्नपदत्वादत्र आदिभूतस्य पकारस्य १७७ सूत्रेण लोपो न जातः; तथा २३१ सू० पकारस्य वकारोऽपि न जातः। **इव**। अव्ययपदमिदम्। ४५३ सू० इवार्थे **व** इति प्रयुज्यते। **गौरी**=गोरडी, प्रक्रिया ११०२ सूत्रे ज्ञेया। **निश्चला**। निश्चला+सि। ३४८ सू० शकारलोपे, ३६० सू० चकारद्वित्वे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **निच्चल** इति भवति। **कस्मिन्**। किम्+ङि। ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे, १०२८ सू० ङिप्रत्ययस्य हि इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **कहिँ** इति भवति। **अपि**=वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया। **तिष्ठति**=ठाइ, प्रक्रिया ६८७ सूत्रे ज्ञेया। **अत्र**=एत्तहे, **तत्र**=तेत्तहे इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण त्र-प्रत्ययस्य डेत्तहे इत्यादेशो जातः।

११०८—**बृहत्त्वं परिप्राप्यते**=वड्डप्पणु परिपाविअइ, प्रक्रिया १०३७ सूत्रे ज्ञेया। **बृहत्त्वम्**=वड्डप्पणु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण त्वप्रत्ययस्य प्पण इत्यादेशो जातः। साधना त्वित्थम्। **बृहत्त्वम्**। बृहत्-त्व+सि। १२६ सू० ऋकारस्य अकारे, बाहुल्येन २३७ सू० बकारस्य वकारे, ४४५ सू० हकारस्य ड्ड इत्यादेशे, ११ सू० तकारलोपे, ११०८ सू० त्वप्रत्ययस्य स्थाने प्पण इत्यादेशे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **वड्डप्पणु** इति भवति। **प्रायोऽधिकारात्**। प्रस्तुतसूत्रे प्रायः इत्यस्य पदस्याऽधिकारात् कस्मिंश्चित् स्थले त्व-प्रत्ययस्य प्पण इत्यादेशो न भवति। यथा—**बृहत्त्वस्य कृते**=वड्डत्तणहों तणेण, प्रक्रिया १०३७ सूत्रे ज्ञेया। प्रायोग्रहणाद् **बृहत्त्वस्य**=वड्डत्तणहों इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता। साधना त्वित्थम्। **बृहत्त्वस्य**। बृहत्त्व+ङस्=वड्ड-त्व+ङस्। ४२५ सू० त्वस्य स्थाने त्तण इत्यादेशे, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारण-लाघवे **वड्डत्तणहों** इति भवति।

११०९— **एतद् गृहीत्वा यन्मया यदि प्रियः उद्वार्यते।**
मम कर्तव्यं किमपि नाऽपि मर्तव्यं परं दीयते ॥१॥

भावार्थ :—पतिव्रता-नारी जीवनस्य पतिरेव सर्वस्वं भवति, न तु धनादिकमिति व्यज्यते। **यत् एतद्** रजत-सुवर्ण-भवनादिकं धनं सम्पत्ति वा **गृहीत्वा यदि मया प्रियः**—कान्तः **उद्वार्यते**—त्यज्यते, ततः पतित्यागाऽनन्तरं **मम कर्तव्यं** करणीयं कार्यं नाऽपि-नैवाऽन्यत् किमपि वर्तते, **परं**—केवलं **मर्तव्यम्**—मरणमेव **दीयते**। पतिवियोगः नारी-जीवने मृत्युरेव भवतीति भावः।

एतद्। एतद्+अम्। १७७ सू० तकारलोपे, ११ सू० दकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **एउ** इति भवति। **गृहीत्वा**=गृण्हेप्पिणु, प्रक्रिया १०६५ सूत्रे ज्ञेया। **यत्**। यद्+सि=ध्रुं, प्रक्रिया १०३१ सूत्रे ज्ञेया। **मया**। अस्मद्+टा। १०४८ सू० टाप्रत्ययेन सह अस्मदः स्थाने मइं इत्यादेशे **मइं** इति भवति। **यदि**=जइ, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **प्रियः**:

प्रिय+सि । १०६९ सूत्रस्य वैकल्पिकत्वाद् रेफलोपाऽभावे, १७७ सू० यकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **प्रिउ** इति भवति । **उद्वार्यते** । उत्पूर्वकः वृधातुः त्यागे । उद्+वृ+क्य+ते । ३४८ सू० दकारलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, १००० सू० आदेश-कारस्य दीर्घे, ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **उव्वारिज्जइ** इति भवति । **मम**=मह्, इत्यस्य प्रक्रिया १०५० सूत्रे ज्ञेया । **कर्त-व्यम्** । डुकृञ् [कृ] करणे । कृ+तव्य । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ११०९ सू० तव्यप्रत्ययस्य इ-एव्वउं इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सिप्रत्यये, १०८२ सू० अनुस्वारस्य उ-च्चारणलाघवे, १०१५ सू० सेर्लोपे **करिएव्वउं** इति भवति । **किम्**=किं, प्रक्रिया ११०५ सूत्रे ज्ञेया । **अपि**=पि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **न** । अव्ययपदमिदम् । २२८ सू० नकारस्य णकारे **ण** इति भ-वति । **अपि** । अव्ययपदमिदम् । ४८९ सू० अप्यर्थे वि इत्यस्य प्रयोगे **वि** इति भवति । **मर्तव्यम्** । मृङ् [मृ] मरणे । मृ+तव्य+सि । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, करिएव्वउं-वदेव **मरिएव्वउं** इति साध्यम् । **परम्**=परं, प्रक्रिया १०८९ सूत्रे ज्ञेया । **दीयते** । डुदाञ्-[दा]-धातुः दाने । दा+क्य+ते । ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, ५ सू० गुण-[अ+इ=ए]-सन्धौ, दा+इज्ज+ते=देज्ज+ते इति जाते, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **देज्जइ** इति भवति । **दिज्जइ** इति पाठे तु दा+इज्ज+ते इत्यत्र १० सू० आकारस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, पूर्ववदेव **दिज्जइ** इति भवति । **कर्तव्यम्**=करिएव्वउं, **मर्तव्यम्**=मरिएव्वउं इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण तव्यप्रत्ययस्य **इएव्वउं** इत्यादेशो जातः ।

देशोच्चाटनं शिखिक्वथनं घनकुट्टनं यद् लोके ।
मञ्जिष्ठया अतिरक्तया सर्वं सोढव्यं भवति ॥२॥

भावार्थः—**देशोच्चाटनं**-देशस्य-जन्मभूमेः उच्चाटनं-त्याजनं, देशपरित्याग इत्यर्थः, **शिखिक्वथनं**, शिखिना-वह्निना क्वथनं (उबालना इति भाषायाम्), **घनकुट्टनम्** घनैः-लोहनिर्मितैः शस्त्रविशेषैः कुट्टनम् नितरां ताडनम्, एतत्सर्वं **यद् लोके** वर्तते तत्सर्वमतिरक्तया-अतिलोहितया **मञ्जिष्ठया सोढव्यं भवति** । अतिरागत्वाद् मञ्जिष्ठा यथा महान्ति दुःखान्यनुभवन्ति एवमेव अत्र लोके यो नरः खलु अतिरागी, धन-जनादिषु महान् आसक्तो भवति, सोऽपि मञ्जिष्ठावद् भूयांसि दुःखान्यनुभविष्यतीति भावः ।

देशोच्चाटनम् । देशोच्चाटन+सि । २६० सू० शकारस्य सकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १९५ सू० टकारस्य डकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **देसुच्चाडणु** इति भवति । **शिखि-क्वथनम्** । शिखि-क्वथन+सि । २६० सू० शकारस्य सकारे, १८७ सू० खकारस्य हकारे, ३५० सू० वकारलोपे, ८९१ सू० थकारस्य ढकारे, बाहुल्येन ढकारस्य ३६० सू० द्वित्वाऽभावे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **सिहिकढणु** इति भ-वति । **घन-कुट्टनम्** । घन-कुट्टन+सि । २२८ सू० उभयत्राऽपि नकारस्य णकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **घणकुट्टणु** इति भवति । **यद्**=जं, प्रक्रिया १०९१ सूत्रस्य द्वितीय-श्लोके ज्ञेया । **लोके** । लोक+ङि । १७७ सू० ककारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **लोइ** इति भवति । **मञ्जिष्ठया** । मञ्जिष्ठा+टा । २५ सू० ञकारस्याऽनुस्वारे, ३४८ सू० षकारलोपे, ३६० सू० ठकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, ५१८ सू० टाप्रत्ययस्य एकारे **मंजिट्ठए** इति भवति । **अतिरक्तया** । अतिरक्त+टा । इत्यत्र १७७ सू० तकारलोपे, ३४८ सू० ककार-लोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे, आप्-(आ)-प्रसंगे ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने

परेण संयोज्ये, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, पूर्ववदेव टास्थाने एकारे **सइरलिए** इति भवति। **सर्वम्**। सर्व+अम्। ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **सव्वु** इति भवति। **सोढव्यम्**। षह-[सह्]-धातुः सहने। सह्+तव्य। ११०९ सू० तव्य-प्रत्ययस्य एव्वउं इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सिप्रत्यये, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सहेव्वउँ** इति भवति। **भवति**=होइ, प्रक्रिया ७३१ सूत्रे ज्ञेया। **सोढव्यम्**=सहेव्वउँ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण तव्यप्रत्ययस्य स्थाने **एव्वउँ** इत्यादेशो जातः।

स्वपितव्यं परं वारितं, पुष्प-वतीभिः समम्।
जागरितव्यं पुनः कः धरति?, यदि स वेदः प्रमाणम् ॥३॥

भावार्थः—ऋतुमती-नारीभिः सह समागमं निषेधयत्याचार्यः। **पुष्पवतीभिः**-ऋतुमतीभिः स्त्रीभिः सह रात्रावपि **स्वपितव्यम्**-शयनं **परम्**-अत्यन्तं **वारितं**-निषिद्धमस्ति। यदि इत्यर्थप्रतिपादकः **सः-वेदः**-श्रुतिः **प्रमाणम्**। तदा **जागरितव्यं कः धरति**? जागृतदशायाम्-दिवसे पुष्पवतीप्रमदया सह संभोगादिकरणं प्रमाणयितुं कः शक्नोति? न कोऽपीति। **अयं भावः**-पुष्पवतीस्त्रिया सह रात्रौ शयनं चेन्निषिद्धं तर्हि दिवसेऽपि तया सार्द्धं विहितं संभोगादिकं सर्वथा निषिद्धमेवाऽवसेयम्।

स्वपितव्यम्। ञिष्वप्-[स्वप्]-धातुः स्वपने। स्वप्+तव्य+सि। इत्यत्र ३५० सू० वकारस्य लोपे, ६४ सू० आदेरकारस्य स्थाने ओकारे, १७७ सू० पकारलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण तव्यप्रत्ययस्य एवा इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **सोएवा** इति भवति। बाहुल्येनाऽत्र १० सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता। **परम्**=पर, प्रक्रिया १०८९ सूत्रे ज्ञेया। **वारितम्**। वारित+सि। १७७ सू० तकार-लोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, सेर्लोपे **वारिआ** इति भवति। **पुष्पवतीभिः**। पुष्पवती+भिस्। २२४ सू० ष्पस्य फकारे, ३६० सू० फकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वफकारस्य पकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **पुप्फवईहिँ** इति भवति। **समम्**=समाणु, प्रक्रिया १०८९ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **जागरितव्यम्**। जागृ-धातुः निद्राक्षये, जागरणे। जागृ+तव्य। ७५१ सू० जागृ-धातोः जग्ग इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण तव्यप्रत्ययस्य एवा इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सिप्रत्यये, १०१५ सू० सेर्लोपे **जग्गेवा** इति भवति। **पुनः**=पुणु, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **कः**=को, प्रक्रिया १०६७ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **धरति**=धरइ, प्रक्रिया ९०५ सूत्रे ज्ञेया। **यदि**=जइ, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **सः**। तद्+सि। ५६५ सू० तकारस्य स्थाने सकारे, ११ सू० दकारलोपे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सो** भवति। **वेदः**। वेद+सि। १७७ सू० दकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **वेउ** इति भवति। **प्रमाणम्**=पमाणु, प्रक्रिया १०७० सूत्रे ज्ञेया। **स्वपितव्यम्**=सोएवा, **जागरितव्यम्**=जग्गेवा इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण तव्य-प्रत्ययस्य स्थाने **एवा** इत्यादेशो जातः।

१११०—इ। प्रस्तुतसूत्रेण क्त्वः स्थाने इ इत्यादेशो भवति। इकारादेशस्योदाहरणं प्रदीयते वृत्तिकारेण। यथा—

हृदय! यदि वैरिणो घनाः, ततः किमभ्रे आरोहामः?।
अस्माकं द्वौ हस्तौ यदि पुनः मारयित्वा म्रियामहे ॥१॥

भावार्थः—हे **हृदय**! **यदि वैरिणः**-शत्रवः, **घनाः**-बहवः सन्ति, **ततः**—तदा **किं वयमभ्रे**—आकाशे, **आरोहामः**-प्रच्छन्ना भवामः, अतः भीतिं मा कुरु इति हार्दम्। यदि **पुनस्ते** बहवः सन्ति, **तदाऽस्माकमपि द्वौ हस्तौ** स्तः, अतः तान् शत्रून् **मारयित्वैव** मरिष्यामः। बहुभ्योऽपि वैरिभ्यो भीत्वा

विवेकिजनैः न पलायितव्यं, प्रत्युत तैः सह स-साहसं योद्धव्यमिति भावः।

प्रिय !—प्रिअ !, प्रक्रिया १०२८ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया। **यदि**—जइ, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **वैरिणः**। वैरिन्+जस्। १४८ सू० ऐकारस्य एकारे, ११ सू० नकारलोपे, ११०० सू० अप्रत्यये, १०१५ सू० जसो लोपे **वेरिअ** इति भवति। **घनाः**। घन+जस्। २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **घणा** इति भवति। **ततः**—तो, प्रक्रिया १०८८ सूत्रे ज्ञेया। **किम्**—किं, प्रक्रिया ११०५ सूत्रे ज्ञेया। **अभ्रे**। अभ्र+ङि। १०६१ सू० रेफलोपे, ३६० सू० भकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-भकारस्य बकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **अब्भि** इति भवति। **आरोहामः**। आङ्-[आ]-पूर्वकः रुह्-धातुः आरोहणे। आरुह्+मस्। ८७७ सू० आरुह् इत्यस्य चड इत्यादेशे, ६४७ सूत्रे **"क्वचिद् आत्वमपि"** इति पाठात् अन्त्यस्य अकारस्य आकारे, १०५७ सू० मसः स्थाने हुं इत्यादेशे **चडाहुं** इति भवति। **अस्माकम्**—अम्हहं, प्रक्रिया १०५१ सूत्रे ज्ञेया। **वे**—वे, प्रक्रिया ६०९ सूत्रे ज्ञेया। बाहुल्येनाऽत्र २३७ सूत्रेण वकारस्य बकारे **बे** इति भवति। **हस्तौ**। हस्त+औ। ३१६ सू० स्तस्य थकारे, ३६० सू० थकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, ११०० सू० डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६११ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **हत्थडा** इति भवति। **पुनः**—पुणु, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **मारयित्वा**। मृङ्-[मृ]-धातुः प्राणत्यागे। मृ+णिग्+क्त्वा। इत्यत्र ९०५ सू० ऋकारस्य स्थाने अर इत्यादेशे, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, ६४२ सू० आदिस्वरस्य दीर्घे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, प्रस्तुतसूत्रेण क्त्वः स्थाने इकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **मारि** इति भवति। **म्रियामहे**। मृङ्-(मृ)-धातुः प्राणत्यागे। मृ+महे—मर+महे। ६४७ सूत्रे **क्वचिद् आत्वमपि** इति विधानाद् अकारस्य आकारे, १०५७ सू० महे इत्यस्य हुं इत्यादेशे **मराहुं** इति भवति। **मारयित्वा**—मारि इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण क्त्वा-प्रत्ययस्य स्थाने इ इत्यादेशो जातः। **इउ**। इउ इत्यादेशस्योदाहरणं प्रदर्शयति वृत्तिकारः। यथा—**गजघटाः भङ्क्त्वा यान्ति**—गयघड भज्जिउ जन्ति, प्रक्रिया १०६६ सूत्रस्य पञ्चमे श्लोके ज्ञेया। **भङ्क्त्वा**—भज्जिउ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण क्त्वाप्रत्ययस्य स्थाने **इउ** इत्यादेशो जातः। **इवि**। इवि इत्यादेशस्योदाहरणं प्रदर्श्यते। यथा—

रक्षति विष-हारिणी द्वौ करौ चुम्बित्वा जीवम्।
प्रतिबिम्बित-मुञ्जालं जलं याभ्यामनवगाहितं पीतम् ॥२॥

भावार्थः—**सा** स्त्री **विषहारिणी** विषस्य-जलस्य हारिणी हर्तुं शीलमस्याः सा विषहारिणी [पनिहारिनी इति लोकभाषायाम्] **द्वौ करौ** सहर्षं **चुम्बित्वा जीवम्**—आत्मानं **रक्षति**, विषहारिण्याः सर्वाणि कार्याणि हस्ताभ्यामेव सिद्ध्यन्ति, अतः सा तौ हस्तौ चुम्बति। चुम्बनस्य कारणमाह—**याभ्यां** हस्ताभ्यामेव जीवन-निर्वाहरूपं **जलं** तया **पीतं** भवति। **किम्भूतं जलम् ? प्रतिबिम्बित-मुञ्जालम्** प्रतिबिम्बं जातमस्येति प्रतिबिम्बितं तानि मुञ्जालानि-तृणानि यस्मिन् तत्। पुनः **किम्भूतम्-अनवगाहितम्**, अवगाहरहितम्, अनवलोडितम्। तत्र केनचित् प्रवेशादिकं, स्नानादिकं वा न कृतं, स्वच्छमित्यर्थः।

रक्षति। रक्ष-[रक्ष्]-धातुः रक्षणे। रक्ष्+तिव्। ९१० सू० अकारागमे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, ९२८ सू० तिवः स्थाने इकारादेशे **रक्खइ** इति भवति। **सा**। तद्+सि। ५७५ सू० तकारस्य सकारे, ११ सू० दकारलोपे, स्त्रीत्वादाप्-(आ)-प्रत्यये, ५ सू० दीर्घ-सन्धौ, १०१५ सू० सेर्लोपे **सा** इति भवति। **विष-हारिणी**। विषहारिणी+सि। २६० सू० षकारस्य

सकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **विसहारिणी** इति भवति । **द्वौ**=बे, प्रक्रिया ६०९ सूत्रे ज्ञेया । अत्र बाहुल्येन २३७ सू० वकारस्य बकारे **बे** इति भवति । **करौ** । कर+औ । ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१५ सू० जस्-प्रत्ययस्य लोपे **कर** इति भवति । **चुम्बित्वा** । चुबिधातुः चुम्बने । संस्कृतनियमेन चुम्ब्+क्त्वा । इति जाते, प्रस्तुतसूत्रेण क्त्वः स्थाने इवि इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये **चुम्बिवि** इति भवति । **जीवम्** । जीव+अम् । १७७ सू० वकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **जीउ** इति भवति । **प्रतिबिम्बित-मुञ्जालम्** । प्रतिबिम्बित-मुञ्जाल+सि । १०६९ सू० रेफलोपे,२०६ सू० तकारस्य डकारे,१७७ सू० तकारलोपे, २५ सू० अकारस्याऽनुस्वारे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पडिबिम्बिअमुंजालु** इति भवति । **जलम्** । जल+सि । १००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **जलु** इति भवति । **याभ्याम्** । यद्+भ्याम् । २४५ सू० यकारस्य जकारे, ११ सू० दकारलोपे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १०१८ सू० भिसः स्थाने हिं इत्यादेशे, स्थानिवत्त्वात् १००६ सू० अकारस्य एकारे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **जेहिँ** इति भवति । **अनवगाहितम्** । अनवगाहित+सि । अपभ्रंशे अनवगाहितार्थे १०९३ सू० अडोहिअ इत्यस्य शब्दस्य प्रयोगे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **अडोहिउ** इति भवति । **पीतम्** । पीत+सि । १७७ सू० तकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पीउ** इति भवति । **चुम्बित्वा**=**चुम्बिवि** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण क्त्वः स्थाने **इवि** इत्यादेशो जातः । **अवि** । अवि इत्यादेशस्योदाहरणं प्रदीयते । यथा—

बाहू त्याजयित्वा याहि त्वं भवतु तथा को दोषः ? ।
हृदय-स्थितः यदि निःसरसि जानामि मुञ्ज ! सरोषः ॥३॥

भावार्थः—काचिन्नायिका प्रियानुरागं प्रदर्शयति । हे प्रिय **मुञ्ज**! मुञ्जनामधेयो नायकः,तत्सम्बोधनम् । त्वं **बाहू**—भुजौ **त्याजयित्वा**—मोचयित्वा **याहि**—गच्छ,को नाम **अत्र दोषः** भवितुं शक्नोति, न कश्चिदित्यर्थः । यतस्त्वं मम **हृदयस्थितः**, हृदये स्थितोऽसि । **यदि हृदयात्त्वं निःसरसि**-निर्गच्छेः, तदा **जानामि**—अवगमिष्यामि, यद् भवान् **सरोषः**-रुष्टः सन् निर्गतः । एतमेवाऽभिप्रायं हिन्दीकविना एवं संसूचितम्—

बांह छुड़ाये जात हो, अबल जानके मोय ।
हृदय से जब जाओगे, सबल बखानूं तोय ॥१॥

बाहू । बाहु+औ । ३६ सू० उकारस्य आकारे, ६१९ सू० द्विवचनस्य बहुवचने, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **बाह** इति भवति । **त्याजयित्वा** । त्यज[त्यज्]त्यागे । त्यज्+णिग्+क्त्वा । अपभ्रंशे त्यज्+णिग् इत्यस्य १०६६ सू० विच्छोड इत्यादेशे, ११११० सू० क्त्वः स्थाने अवि इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **विच्छोडवि** इति भवति । **याहि** । या-धातुः गतौ । या+हि । २४५ सू० यकारस्य जकारे, १०५४ सू० हि इत्यस्य हि इत्यादेशे **जाहि** इति भवति । **त्वम्**=तुहुं,प्रक्रिया १००१ सू० सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । **भवतु** । भूधातुः सत्तायाम् । भू+तुव् । ७२१ सू० भूधातोः स्थाने हो इत्यादेशे, १००० सू० ओकारस्य अकारे, ६६२ सू० तुवः स्थाने दु इत्यादेशे, १७७ सू० दकारलोपे **हउ** इति भवति । **तथा**=तेवँ, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **इ** । अव्ययपदमिदम् । ४८८ सू० पादपूरणार्थे प्रयुज्यते । **कः** । किम्+सि । ५६० सू० किमः स्थाने क इत्यादेशे,१००३ सू० अकारस्य ओकारे,१०१५ सू० सेर्लोपे **को** इति भवति । **दोषः** । दोष+सि । २६० सू० षकारस्य सकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **दोसु** इति भवति । **हृदय-स्थितः** । हृदय-स्थित+सि । १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, १७७ सू० दकारलोपे [ष्ठा-स्था+क्त=त], ६८७

सू० स्थाधातोः ठा इत्यादेशे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे, १००० सू० आकारस्य अकारे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **हिअय-ट्ठिउ** इति भवति। **यदि**—जइ, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **निःसरसि**। निर्-पूर्वकः सृ-धातुः निस्सरणे। निर्सृ+सिव्। १३ सू० रेफलोपे, ९३ सू० इकारस्य दीर्घे, ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६२९ सू० सिवः सि इत्यादेशे **नीसरसि** इति भवति। **जानामि**। ज्ञा अवबोधने। ज्ञा+मिव्। ६७८ सू० ज्ञाधातोः स्थाने जाण इत्यादेशे, १०५६ सू० मिवः स्थाने उं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **जाणउँ** इति भवति। बाहुल्येनाऽत्र १० सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता। **मुञ्ज**!। मुञ्ज+सि। १०१५ सू० सेर्लोपे **मुञ्ज**! इति भवति। **सरोषः**। सरोष+सि। २६० सू० षकारस्य सकारे,१००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सरोसु** इति भवति। **ध्यात्वा**—झिज्झेविणु इत्यत्र प्रस्तुतेन [१११०] सूत्रेण क्त्वः स्थाने अवि इत्यादेशो जातः।

१११— **जित्वाऽशेष-कषायबलं दत्त्वाऽभयं जगतः।**
लात्वा महाव्रतं शिवं लभन्ते ध्यात्वा तत्त्वस्य॥१॥

भावार्थः—मोक्षलाभोपायमाह—**अशेषं**, न विद्यते शेषो यस्मिन् तदशेषं-सम्पूर्णं, **कषायबलं** कषायाणां बलं-सैन्यं शक्तिर्वा तमिति। कषः-जन्ममरणरूप-संसारः तस्य आयः-लाभः कषायः क्रोधमान-माया-लोभरूपः। येन संसारे जन्ममरणवृद्धिर्जायते सः कषायः,तं कषायं **जित्वा जगतः** कृतेऽभयं न विद्यते भयं यस्मिन् तदभयं दयाधर्मं निर्भयतां वा **दत्त्वा**,महाव्रतम्,महच्चेदं व्रतं महाव्रतम्, जैनानां पारिभाषिकोऽयं शब्दः। जैनसाधूनां कृतेऽनुष्ठान-विशेषः, मनसा वचसा कर्मणा च प्राणातिपातविरमण-मृषावादविरमण—चौर्यविरमण-मैथुनविरमण-परिग्रहविरमणरूपः। एनं लात्वा-संगृह्य **तत्त्वस्य**—नवतत्त्वस्य जीव-अजीव-पुण्य-पाप-आश्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध-मोक्ष-स्वरूपस्य **ध्यात्वा**—ध्यानं विधाय,अत्र सम्बन्धे षष्ठी। एतत्सर्वं संगृह्य विवेकवन्तः संयताः **शिवं**—मोक्षं **लभन्ते**-प्राप्नुवन्तीति भावः।

जित्वा। जि-धातुः जये। जि+क्त्वा। ११११ सू० क्त्वः स्थाने एप्पि इत्यादेशे,१० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **जेप्पि** इति भवति। **अशेषम्**। अशेष+अम्। २६० सू० शकारस्य षकारस्य च सकारे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,१०१५ सू० अमो लोपे **असेसु** इति भवति। **कषायबलम्**। कषायबल+अम्। २६० सू० षकारस्य सकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **कसायबलु** इति भवति। **दत्त्वा**। डुदाञ्-[दा]-धातुः दाने। दा+क्त्वा। ११११ सू० क्त्वः स्थाने एप्पिणु इत्यादेशे,१० सू० स्वरस्य लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये **देप्पिणु** इति भवति। **अभयम्**। अभय+अम्। १७७ सू० यकारलोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे,अमो लोपे **अभउ** इति भवति। **जगतः**। जगत्+ङस्। १७७ सू० गकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, ११ सू० तकारलोपे,१००९ सू० ङसः स्थाने स्सु इत्यादेशे **जयस्सु** इति भवति। **लात्वा**। ला-धातुः आदाने। ला+क्त्वा। प्रस्तुतसूत्रेण क्त्वः स्थाने एवि इत्यादेशे,१० सू० स्वरस्य लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये **लेवि** इति भवति। **महाव्रतम्**। महाव्रत+अम्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,१०६९ सू० रेफलोपे,३६० सू० वकारद्वित्वे,१७७ सू० तकारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १०१५ सू० अमो लोपे **महव्वय** इति भवति। **शिवम्**। शिव+अम्। २६० सू० शकारस्य सकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सिवु** इति भवति। **लभन्ते**। डुलभष् [लभ्] लाभे। लभ्+अन्ते। १८७ सू० भकारस्य हकारे,९१० सू० अकाराऽऽगमे,१०५३ सू० अन्ते इत्यस्य हिं इत्यादेशे **लहहिं** इति भवति। **ध्यात्वा**। ध्यै चिन्तायाम्। ध्यै+क्त्वा। ६७७ सू० ध्यै-धातोः स्थाने झा

इत्यादेशे,प्रस्तुतसूत्रेण क्त्वः स्थाने एविणु इत्यादेशे,बाहुल्येन १० सू० स्वरस्य लोपाऽभावे **झाएविणु** इति भवति । **तत्त्वस्य** । तत्त्व+ङस् । ३५० सू० वकारलोपे,१००९ सू० ङसः स्थाने स्सु इत्यादेशे **तत्तस्सु** इति भवति । **जित्वा**=जेप्पि,**दत्त्वा**=देप्पिणु,**लात्वा**=लेवि,**ध्यात्वा**=झाएविणु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण क्रमशः क्त्वः स्थाने **एप्पि, एप्पिणु, एवि, एविणु** इत्यादेशाः संजाताः । **पृथग्योगः उत्तरार्थः** । १११० सूत्रे इ,इउ, इवि, अवि इत्येते चत्वार आदेशाः पठिताः सन्ति । ११११ सूत्रे एप्पि, एप्पिणु, एवि,एविणु इत्येते चत्वार आदेशाः निर्दिष्टाः वर्तन्ते । एते अष्टावपि आदेशाः क्त्वः स्थाने जायन्ते । यदि क्त्वः स्थाने एव एतेऽष्ट आदेशाः क्रियन्ते, तर्हि एकस्मिन्नेव सूत्रे तेषां संग्रहणमुचितमासीत्, किमर्थं सूत्रद्वयस्य निर्माणं विहितमिति प्रश्नः । उत्तरयति वृत्तिकारः—पृथग्योगः । पृथक्-सूत्रकरणमुत्तरार्थः,उत्तरसूत्रमर्थः प्रयोजनं यस्य स उत्तरार्थः । १११२ सूत्रेण तुम्प्रत्ययस्य स्थाने एवं, अण, अणहं, अणहिं, एप्पि, एप्पिणु, एवि, एविणु इत्येतेऽष्ट आदेशाः विधीयन्ते । एप्पिप्रभृतीनां चतुर्णामादेशानां ११११ सूत्रतोऽनुवर्तनं कृतं, यदि सर्वेषां क्त्वास्थानीयादेशानामष्टानाम् एकस्मिन्नेव सूत्रे विधानं सूत्रकारा अकरिष्यन्, तदा ११११ सूत्रतः क्त्वः स्थानीयादेशानामष्टानामेव १११२ सूत्रे ग्रहणमावश्यकमासीत्,इष्टन्तु चतुर्णामेव ग्रहणम्, एतमेवाऽभिप्रायमुपलक्ष्य ११११ सूत्रस्य पृथक् रचना कृता ।

१११२— दातुं दुष्करं निजक-धनं कर्तुं न तपः प्रतिभाति ।
एवमेव सुखं भोक्तुं मनः भोक्तुं न याति ॥१॥

भावार्थः—**निजकधनम्**, निजमेव निजकं, निजकं च तद् धनं **निजकधनम्**-स्वकीयधनं **दातुं दुष्करं**-कठिनम्,निजसम्पत्तेः दानकरणं न सुकरमित्यर्थः । तथा **तपः कर्तुं** मनो **न प्रतिभाति-समुत्सहते** । तथाऽपि मानसमिदं **एवमेव**-दानतपोकर्मं विनैव सुखं **भोक्तुमिच्छति**, परं किन्तु **भोक्तुं न याति-समर्थो** न भवति । सुखन्तु दानेन, तपसा चैव समुपलभ्यते, एतद्विना सुखप्राप्तिर्न न सुलभेति भावः ।

दातुम् । डुदाञ्-[दा]-धातुः दाने । दा+तुम् । १११२ सू० तुमः स्थाने एवं इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **देवं** इति भवति । **दुष्करम्** । दुष्कर+सि । ३४८ सू० षकारलोपे, ३६० सू० ककारद्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **दुक्करु** इति भवति । **निजक-धनम्** । निजक-धन+सि । १७७ सू० जकारस्य ककारस्य च लोपे, १८० सू० द्वितीयाऽकारस्य यकारश्रुतौ, २२८ सू० नकारस्य णकारे, पूर्ववदेव अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **निअय-धणु** इति भवति । ११ सूत्रस्य वृत्तिमनुसृत्य धकारस्याऽऽदिभूतत्वात् १८७ सूत्रेण हकारो न जातः । **कर्तुम्** । डुकृञ् [कृ] करणे । कृ+तुम् । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, प्रस्तुतसूत्रेण तुमः स्थाने अण इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **करण** इति भवति । **न** । अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **तपः** । तपस्+सि । १७७ सू० पकारलोपे, ११ सू० सकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **तउ** इति भवति । **प्रतिभाति** । प्रतिपूर्वकः भा-धातुः रोचने । प्रतिभा+तिव् । १०६९ सू० रेफलोपे, २०६ सू० तकारस्य डकारे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इत्यादेशे **पडिहाइ** इति भवति । **एवमेव**=एम्वइ, प्रक्रिया १०९१ सूत्रे ज्ञेया । **सुखम्**=सुहु, प्रक्रिया १०४१ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया । **भोक्तुम्** । भुज-[भुज्]-धातुः पालनाऽभ्यवहारयोः । भुज्+तुम् । संस्कृतनियमेन भुञ्ज्+तुम् इति जाते, प्रस्तुतसूत्रेण तुमः स्थाने अणहं इत्यादेशे,अज्झीने परेण संयोज्ये, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **भुञ्जणहं** इति भवति । **मनः**=मणु, प्रक्रिया १०२१ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **परम्**=पर, प्रक्रिया १०८९ सूत्रे ज्ञेया । **भोक्तुम्** । भुज-[भुज्]-धातुः पालनाऽभ्यवहारयोः ।

भुज्+तुम्। संस्कृतनियमेन भुञ्ज्+तुम् इति जाते,प्रस्तुतसूत्रेण तुमः स्थाने अणहिं इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये,१०८२ सू० उच्चारणलाघवे **भुञ्जणहिं** इति भवति। **दाति**=आइ,प्रक्रिया १०२१ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **दातुम्**=देवं, **कर्तुम्**-करणं, **भोक्तुम्**=भुञ्जणहं, **भोक्तुम्**=भुञ्जणहिं इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रेण तुम्-प्रत्ययस्य स्थाने एवं, अण, अणहं, अणहिं इत्यादेशाः जाताः।

जेतुं त्यक्तुं सकलां धरां लातुं तपः पालयितुम्।
विना शान्त्या तीर्थेश्वरेण कः शक्नोति भुवनेऽपि ॥२॥

भावार्थः—तीर्थेश्वरेण, तीर्थः-चतुर्विधसंघः, साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका-समुदायरूपः तस्य ईश्वरेण-स्वामिना, तीर्थाधिपतिना **शान्त्या**-शान्तिनाथेन **विना सकलां**-सम्पूर्णां **धराम्**-पृथ्वीं **जेतुं** पुनः **त्यक्तुं**-मोक्तुं, **तपो लातुम्**-ग्रहीतुं पालयितुं वा **त्रिभुवनेऽपि**-त्रिलोकेऽपि **कः शक्नोति** ? न कोऽपि समर्थोऽस्ति। **अयं भावः**-चक्रवर्तिशान्तिनाथेन प्रथमं पृथिवी जिता, पुनः वैराग्य-वासितान्तः-करणेन तस्याः त्यागो विहितः, पुनश्च तपश्चारब्धम्। सतो वस्तुनः त्यागो दुष्कर एव भवति। अत एव श्रीदशवैकालिकाऽऽख्ये जैनागमे जैनाचार्यैः भण्यते—

[1]**जे य कन्ते पिए भोए, लद्धे विपिट्ठि कुव्वइ।**
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चइ॥ [दशवैकालिकसू० अ० २]

भगवान् शान्तिनाथः त्यागशिरोमणिरासीत्। लोकत्रयेऽपि विश्वकल्याणकरैः, अहिंसास्वरूपैः एतैः प्रभुवरैः विना एतादृशमद्वितीयं त्यागं कर्तुं न कोऽपि शक्नोतिस्म। अनेन जिनदेवस्य भगवतः शान्तिनाथस्याऽसाधारणाऽऽत्मशक्तिरासीद्, इदमेव प्रकटितं कविना।

जेतुम्। जि-धातुः जये। जि+तुम्। १११२ सू० तुम्प्रत्ययस्य स्थाने एप्पि इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **जेप्पि** इति भवति। **त्यक्तुम्**। त्यज-[त्यज्]-धातुः त्यागे। त्यज्+तुम्। ७५७ सू० त्यजधातोः स्थाने [2]चय इत्यादेशे, १७७ सू० यकारलोपे, प्रस्तुतसूत्रेण तुमः स्थाने एप्पिणु इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे **चएप्पिणु** इति भवति। **सकलाम्**। सकला+अम्। १७७ सू० ककारलोपे, १८० सू० यकारस्य श्रुतौ, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **सयल** इति भवति। **धराम्**। धरा+अम्। सयलवदेव **धर** इति साध्यम्। **लातुम्**। ला-धातुः आदाने। ला+तुम्। प्रस्तुतसूत्रेण तुमः स्थाने एविणु इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **लेविणु** इति भवति। **तपः**। तपस्+अम्। २३१ सू० पकारस्य वकारे, ११ सू० सकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **तवु** इति भवति। **पालयितुम्**। पाल-[पाल्]-धातुः पालने। पाल्+तुम्। प्रस्तुतसूत्रेण तुम्प्रत्ययस्य एवि इत्यादेशे, अज्झीने परेण संयोज्ये **पालेवि** इति भवति। **विना**=विणु,प्रक्रिया १०९२ सूत्रे ज्ञेया। **शान्त्या**। शान्ति+टा। २६० सू० शकारस्य सकारे, बाहुल्येन २५ सू० नकारस्याऽनुस्वाराऽभावे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०१४ सू० टास्थानेऽनुस्वारे **सन्तिं** १००१ सू० इकारस्य एकारे **सन्तें** इति भवति। **तीर्थेश्वरेण**। तीर्थेश्वर+टा। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,३५० सू० रेफलोपे,३६० सू० थकारद्वित्वे,३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, ३५० सू० वकारलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अका-

1. यश्च कान्तान् प्रियान् भोगान्, लब्धान् विपृष्ठीकुरुते।
स्वाधीनान् त्यजति भोगान्, स हि त्यागी इत्युच्यते ॥१॥
2. ७५७ सूत्रे "एवं त्यजतेरपि" इति पाठात्।

रस्य एकारे **सिरिएसरेण** इति भवति । **कः**—को, प्रक्रिया १०६७ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया । **शक्नोति**—सक्कइ, प्रक्रिया ९०१ सूत्रे ज्ञेया । **भुवने** । भुवन+ङि । २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य एकारे **भुवणे** इति भवति । **अपि**—वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया । **जेतुम्**—जेप्पि, **त्य-क्तुम्**—चएप्पिणु, **लातुम्**—लेविणु, **पालयितुम्**—पालेवि इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण तुम्-प्रत्ययस्य स्थाने एप्पि, एप्पिणु, एविणु, एवि च इत्यादेशाः संजाताः ।

११११— **गत्वा वाराणस्यां नराः, अथ उज्जयिन्यां गत्वा ।**
मृताः प्राप्नुवन्ति परमपदं, दिव्यान्तराणि मा कथय ॥१॥

भावार्थः—वाराणस्या उज्जयिन्याश्च महत्त्वं वर्णयति-ये **नराः वाराणस्यां गत्वा**, अत्र द्वितीयाऽर्थे सप्तमी वर्तते, वाणारसीं गत्वेत्यर्थः । **अथ**-अथवा **उज्जयिन्यां गत्वा** उज्जयनीमधिगम्य **मृताः** पञ्चत्वमुपगताः, ते **परमपदम्**—मोक्षं **प्राप्नुवन्ति** । अतः **दिव्यान्तराणि** । अन्यानि दिव्यानि, तीर्थान्तराणि **मा कथय** । अन्यस्मिन् तीर्थे गमनस्य न काऽप्यावश्यकताऽस्ति, प्रत्युत मरणकाले वाराणस्यामुज्जयिन्यां वा गन्तव्यम् । इति श्लोकार्थः, किन्तु नैतत् सत्यम्, यतः—"**आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः**" "**ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः**" इत्यादिवचनैः सदाचरणशीलः पुरुषः एव स्वर्गार्हः, मोक्षार्हश्च प्रमाणीकृतः । दुराचारिणः पुरुषाः कुत्राऽपि पञ्चत्वमुपगच्छेयुः, परं ते न कदापि मोक्षार्हाः संभवितुं शक्नुवन्ति ।

गत्वा । गम्लृ-[गम्]-धातुः गतौ । गम्+क्त्वा । ११११ सू० क्त्वः स्थाने एप्पिणु इत्यादेशे, १११३ सू० विकल्पेन एकारलोपे **गम्प्पिणु** इति भवति । बाहुल्येन २५ सू० मकारस्याऽनुस्वारो न जातः । **वाराणस्याम्** । वाराणसी+ङि । ३८७ सू० रेफणकारयोः व्यत्यये, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, १०२३ सू० ङि-प्रत्ययस्य स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **वाणारसिहिं** इति भवति । **नराः** । नर+जस् । १०१५ सू० जसो लोपे **नर** इति भवति । **अथ** । अव्ययपदमिदम् । १८७ सू० थकारस्य हकारे **अह** इति भवति । **उज्जयिन्याम्** । उज्जयिनी+ङि । १७७ सू० यकारलोपे, उज्जइनी+ङि इत्यत्र ५ सू० संस्कृतव्याकरणेन गुणसन्धौ [अकारस्य इकारस्य च संगमे सति गुणसन्धौ-एकारे जाते], उज्जेनी+ङि इति स्थिते, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००१ सू० ईकारस्य इकारे, १०२३ सू० ङि-प्रत्ययस्य हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **उज्जेणिहिं** इति भवति । **गत्वा** । गम्लृ-[गम्]-धातुः गतौ । गम्+क्त्वा । ११११ सू० क्त्वः स्थाने विकल्पेन एप्पि इत्यादेशे, १११३ सू० एकारलोपे **गम्प्पि** इति भवति । अत्राऽपि बाहुल्येन २५ सू० मकारस्याऽनुस्वारो न जातः । **मृताः** । मृत+जस् । १३१ सू० ऋकारस्य उकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **मुआ** इति भवति । **प्राप्नुवन्ति** । प्र-पूर्वकः आप्लृ-(आप्)-धातुः प्रापणे । प्र-आप्+अन्ति । अपभ्रंशे 'प्र' इत्यस्य परा इत्यादेशो जायते, ५ सू० दीर्घसन्धौ, पराप्+अन्ति इति जाते, ९१० सू० अकारागमे, २३१ सू० द्वितीय-पकारस्य वकारे, १०५३ सू० अन्तेः स्थाने हिं इत्यादेशे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **परावहिं** इति भवति । **परमपदम्** । परमपद+अम् । १७७ सू० दकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **परमपउ** इति भवति । **दिव्यान्तराणि** । दिव्यान्तर+जस् । ३४९ सू० यकारलोपे, ३६० सू० वकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०२४ सू० जसः स्थाने इं इत्यादेशे **दिव्वन्तरइं** इति भवति । **मा** । अव्ययपदमिदम् । १००० सू० आकारस्य अकारे **म** इति भवति । **कथय** । कथि-[कथ्]-धातुः जल्पने । कथ्+णिग्+हि । ६७३ सू० कथ्धातोः स्थाने जम्प इत्यादेशे, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य आकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे,

१० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०५८ सू० हि इत्यस्य इकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **जिप्पि** इति भवति। **गत्वा**—गम्पिणु, **गत्वा**—गम्पि इत्यत्र एप्पिणु, एप्पि इत्यादेशयोरेकारस्य वैकल्पिको लोपो जातः। **पक्षे**। प्रस्तुतसूत्रस्य प्रवृत्त्यभावपक्ष इत्यर्थः।

गङ्गां गत्वा यः म्रियते यः शिवतीर्थं गत्वा।
क्रीडति त्रिदशाऽऽवासगतः स यमलोकं जित्वा॥२॥

भावार्थः—गङ्गायाः शिवालयस्य च माहात्म्यं व्याकुरुते—यः गङ्गां गत्वा-प्राप्य **म्रियते** तथा **यश्च शिवतीर्थं**, शिवस्य तीर्थं-शिवालयं काशीं वा **गत्वा** म्रियते, **स यम-लोकम्**, यमस्य लोकः नरक-लोकः तं **जित्वा**-विजित्य **त्रिदशावासगतः**, त्रिदशानां-देवानामावासः-स्थानं-स्वर्गः तत्र गतः-सम्प्राप्तः, स त्रिदशाऽऽवासगतः सन् **क्रीडति**, स्वर्गे सानन्दं निवसति। इति श्लोकार्थः, किन्तु नाऽयं वास्तविकोऽर्थः, यतः स्थानविशेषेषु गतानां नराणां न पापविमुक्तिर्जायते, मुक्तिस्तु पापकर्माणि मुक्त्वैव परित्यज्यैव च भवति, नाऽन्यथा। उक्तञ्च जैनागमे—

***उदगेण जे सिद्धिमुदाहरन्ति सायं च पायं उदगं फुसन्ता।**
उदगस्स फासेण सिया य सिद्धी सिज्झिंसु पाणा बहवे दगंसि॥१४॥
मच्छा य कुम्मा य सिरीसिवा य मग्गू य उट्टा दगरक्खसा य।
अट्ठाणमेयं कुसला वयन्ति उदगेण जे सिद्धिमुदाहरन्ति॥१५॥
उदगं जइ कम्ममलं हरेज्जा एवं सुहं इच्छामित्तमेव।
अन्धं व णेयारमणुस्सरित्ता पाणाणि चेवं विणिहन्ति मंदा॥१६॥
पावाइं कम्माइं पकुव्वओ हि सिओदगं तु जइ तं हरेज्जा।
सिज्झिंसु एगे दगसत्तघाई मुसं वयन्ते जलसिद्धिमाहु॥१७॥

—सूत्रकृताङ्गसूत्र अ० ७

गङ्गाम्। गङ्गा+अम्। १००१ सू० आकारस्य स्थाने अकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **गङ्ग** इति भवति। **गत्वा**। गम्लृ-[गम्]-धातुः गतौ। गम्+क्त्वा। ११११ सू० क्त्वः स्थाने एप्पिणु इत्यादेशे, वैकल्पिकत्वात् १११२ सू० एकारस्य लोपाऽभावे, अज्झीने परेण संयोज्ये **गमेप्पिणु** इति भवति। **यः**—जो, प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य चतुर्थश्लोके ज्ञेया। **म्रियते**। मृङ्-[मृ]-धातुः प्राणत्यागे। मृ+ते। १३१ सू० ऋकारस्य उकारे, ४३५ सू० स्वार्थे कप्रत्यये, १७७ सू० ककारस्य लोपे, ९२८ सू० ते इत्यस्य इकारादेशे **मुअइ** इति भवति बाहुल्येनाऽत्र १० सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता। **शिवतीर्थम्**। शिवतीर्थ+अम्। २६० सू० शकारस्य सकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० थकारद्वित्वे,

*उदकेन ये सिद्धिमुदाहरन्ति, सायञ्च प्रातरुदकं स्पृशन्तः।
उदकस्य स्पर्शेन स्याच्चेत्सिद्धिः सिध्येयुः प्राणाः बहव उदके॥१४॥
मत्स्याश्च कूर्माश्च सरीसृपाश्च मद्गवश्चोष्ट्रा उदकराक्षसाश्च।
अस्थानमेतत्कुशला वदन्त्युदकेन ये सिद्धिमुदाहरन्ति॥१५॥
उदकं यदि कर्ममलं हरेदेवं शुभमिच्छामात्रमेव।
अन्धमिव नेतारमनुसृत्य प्राणिनश्चैवं विनिघ्नन्ति मन्दाः॥१६॥
पापानि कर्माणि प्रकुर्वतो हि शीतोदकन्तु यदि तद्धरेत्तु।
सिध्येयुरेके उदकसत्त्वघातिनो मृषा वदन्ति जलसिद्धिमाहुः॥१७॥

३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **निवलित्थ** इति भवति । **गत्वा** । गम्लृ-[गम्]-धातुः गतौ । गम्+क्त्वा । १११९ सू० क्त्वा- स्थाने एप्पि इत्यादेशे, वैकल्पिकत्वात् प्रस्तुतसूत्रेण एकारस्य लोपाऽभावे, अज्झीने परेण संयोज्ये **गमेप्पि** इति भवति । **क्रीडति** । क्रीड्-धातुः क्रीडायाम् । क्रीड्+तिव् । १०६९ सू० रेफलोपे, ९१० सू० अकारागमे, २०२ सू० डकारस्य लकारे, ६२८ सू० तिवः स्थाने इत्यादेशे, ९४५ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **कीलदि** इति भवति । **त्रिदशावास-गतः** । त्रिदशावास-गत+सि । १०६९ सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० अन्त्य-तकारलोपे, बाहुल्येनाऽत्र १८० सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता, ततः १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **तिदसावासगउ** इति भवति । **सः**=सो, प्रक्रिया ११०९ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया । **यमलोकम्** । यमलोक+अम् । इत्यत्र २४५ सू० यकारस्य जकारे, १७७ सू० ककारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जमलोउ** इति भवति । **जित्वा** । जि-धातुः जये । जि+क्त्वा । ९१२ सू० णकारागमे, ११११ सू० क्त्वः स्थाने एप्पि इत्यादेशे, वैकल्पिकत्वात् प्रस्तुतसूत्रस्याऽप्रवृत्तौ, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **जिणेप्पि** इति भवति । **गत्वा**=गमेप्पिणु, **गत्वा**=गम्पि, **जित्वा**=जिणेप्पि इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रस्य वैकल्पिकत्वात् एप्पिणु, एप्पि इत्यादेशयोरेकारस्य लोपो न जातः ।

१११४ - हस्ती मारयिता, लोकः कथयिता, पटहः वादयिता, शुनकः भषिता ।

भावार्थः—हस्त्यादि-स्वभाव-मुखेन कस्यचन दयालुपुरुषस्य स्वभावेन पीडित-जनं प्रति सान्त्वनावाक्यमाह । यदयं दुष्टस्त्वां चेद् दुःखी करोति तथापि त्वया शान्तेः परित्यागो न विधेयः । दुष्टानां स्वभाव एव पर-पीडनमतस्त्वं मा दुष्टमाचर । यथा—**लोकः**-जनसमुदायः, **कथयिता**-कथनशीलो भवति । **पटहः**-वाद्यविशेषः, **वादयिता**-वादनशीलो भवति, एवमेव दुष्टानामपि पर-पीडनस्य स्वभावो बोध्यः । **हस्ती**-गजः **मारयिता**-मारणशीलो भवति, **शुनकः**-कुक्कुरः **भषिता**-भषणशीलो भवति ।

हस्ती । हस्तिन्+सि । ३१६ सू० स्तस्य थकारे, ३६० सू० थकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, ११ सू० नकारलोपे, १०१५ सू० सेर्लोपे **हत्थि** इति भवति । **मारयिता** । मृङ्-[मृ]-धातुः प्राणत्यागे । मृ+णिग्+तृन् । ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६३८ सू० णिगः स्थाने अकारे, ६४२ सू० आदेरकारस्य आकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १११४ सू० तृन्- त्ययस्य अणअ इत्यादेशे मार+अणअ इति जाते, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सिप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **मारणउ** इति भवति । **लोकः**=लोउ, प्रक्रिया १०३७ सूत्रे ज्ञेया । **कथयिता** । कथि-धातुः जल्पने । कथि+तृन् । ६७३ सू० कथिधातोः स्थाने बोल्ल इत्यादेशे, १११४ सू० तृन्-प्रत्ययस्य अणअ इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सिप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **बोल्लणउ** इति भवति । **पटहः** । पटह+सि । १९५ सू० टकारस्य डकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **पडहु** इति भवति । **वादयिता** । वद्-धातुः व्यक्तायां वाचि । वद्+णिग्+तृन् । ८९५ सू० दकारस्य द्विरुक्ते जकारे, ६३८ सू० णिगः अकारे वज्ज+अ+तृन्, इति जाते, ६४२ सू० आदेरकारस्य आकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, प्रस्तुतसूत्रेण तृनः स्थाने अणअ इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये बोल्लणउ-वदेव **वज्जणउ** इति भवति । **शुनकः** । शुनक+सि । २६० सू० शकारस्य सकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १७७ सू० ककारस्य लोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सुणउ** इति भवति । **भषिता** । भष-[भष्]-धातुः भषणे । भष्+तृन् । ९१० सू० अकाराऽऽगमे, २६० सू०

षकारस्य स्थाने सकारे, प्रस्तुत-सूत्रेण तृन्प्रत्ययस्य स्थाने अणअ इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अ-ज्भीने परेण संयोज्ये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे भसणउ इति भवति। मार-यिता=मारणउ, कथयिता=बोल्लणउ, वादयिता=वज्जणउ, भषिता=भसणउ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण-तृन्-प्रत्ययस्य स्थाने अणअ इत्यादेशो जातः।

★ अथ प्रत्ययों से सम्बन्धित विधि ★

वह अक्षर या शब्द जो किसी धातु या शब्द के अन्त में संज्ञापद या क्रियापद आदि पदों के बनाने के लिए जोड़ा जाता है, उस को प्रत्यय कहते हैं। अपभ्रंशभाषा में प्रत्ययों से सम्बन्धित जो विधिविधान पाया जाता है, अब उस का निरूपण किया जा रहा है—

१०९७—अपभ्रंश भाषा में पुनर् और विना इन दोनों अव्ययपदों से आगे 'डु [उ]' यह प्रत्यय होता है। जैसे— स्मर्यते तद् वल्लभकं, यद् विस्मर्यते मनाक्।
यस्मिन् पुनः स्मरणं जातं, गतं तस्य स्नेहस्य किं नाम ?॥१॥

अर्थात्—जो प्रिय वस्तु होती है, उसी का स्मरण किया जाता है, जो कभी विस्मृत हो जाए, वह प्रिय वस्तु नहीं होती ? विस्मृत कर देने के अनन्तर जिसका स्मरण किया जाए उस वस्तु के स्नेह का कोई मूल्य नहीं है। अर्थात् वास्तविक स्नेह वही है जो सदा स्मरण रहे। यहां पर पठित 'पुनर्' इस अव्ययपद से 'डु [उ]' प्रत्यय करके 'पुणु' यह रूप बनाया गया है। विना का उदाहरण इस प्रकार है—विना युद्धेन न वलामहे=विणु जुज्झें न वलाहुं [युद्ध के बिना नहीं लौटते हैं]। यहां पर पठित 'विना' इस अव्ययपद से 'डु [उ]' यह प्रत्यय करके 'विणु' यह रूप बनाया गया है।

१०९८—अपभ्रंश-भाषा में 'अवश्यम्' इस शब्द से आगे डें [एं] और ड [अ] ये दो प्रत्यय किए जाते हैं। जैसे— जिह्वेन्द्रियं नायकं वशे कुरुत यस्य अधीनानि अन्यानि।
मूले विनष्टे तुम्बिन्याः अवश्यं शुष्काणि पर्णानि॥१॥

अर्थात्—जिस व्यक्ति के रसनेन्द्रिय अधीन होती है, उसके अन्य सब इन्द्रियां अधीन हो जाती हैं। अतः सब इन्द्रियों के नायक [प्रधान] जिह्वेन्द्रिय [रसना] को वश में करो। जैसे—तुम्बिनी [तुम्बी] के मूल का नाश हो जाने पर उसके पत्र अवश्य ही सूख जाते हैं, ऐसे ही रसनेन्द्रिय के वश हो जाने पर शेष इन्द्रियें वश में आ जाती हैं। यहां पर प्रस्तुत सूत्र से अवश्यम् =अवसें इस पद से डें [एं] यह प्रत्यय किया गया है। ड-प्रत्यय का उदाहरण इस प्रकार है—अवश्यं न स्वपन्ति सुखासिकायाम्=अवस न सुअहिँ सुहच्छिअहिं [अवश्य ही वे सुखशय्या पर नहीं सोते हैं] यहां पर पठित अवश्यम्=अवस इस पद से ड [अ] यह प्रत्यय किया गया है।

१०९९—अपभ्रंश-भाषा में एकशः इस शब्द से परे स्वार्थ में डि-प्रत्यय होता है। जैसे—
एकशः शील-कलङ्कितानां दीयन्ते प्रायश्चित्तानि।
यः पुनः खण्डयति अनुदिवसं तस्य प्रायश्चित्तेन किम् ?॥१॥

अर्थात्—जिन्होंने एक बार शील को कलङ्कित किया हो, उन्हें प्रायश्चित्त दिये जाते हैं, परन्तु जो प्रतिदिन शील को खण्डित करता है, उसको प्रायश्चित्त देने से क्या लाभ हो सकता है ? यहां पर पठित एकशः=एक्कसि, इस शब्द से डि-[इ]-प्रत्यय किया गया है।

११००—अपभ्रंश-भाषा में नाम [प्रातिपदिक] से परे स्वार्थ में अ, डड (अड) और डुल्ल (उल्ल)

ये तीन प्रत्यय होते हैं, और इन का सन्नियोग [सान्निध्य] होने पर स्वार्थ में किए गए क-प्रत्यय का लोप हो जाता है। ध्यान रहे, यदि क-प्रत्यय की अवस्थिति हो तभी उस का लोप होता है, अन्यथा नहीं। अर्थात् अ और डड आदि प्रत्यय तो कप्रत्यय के अभाव में भी होते हैं। जैसे—

विरहानल-ज्वाला-करालितः पथिकः पथि यद् [यदा] दृष्टः।

तद् [तदा] मिलित्वा सर्वैः पथिकैः स एव कृतः अग्निष्ठः॥१॥

अर्थात्—अन्य पथिकों ने वियोग रूपी अग्नि की ज्वालाओं से दग्ध पथिक को जब पथ (मार्ग) में देखा, तो सब पथिकों ने मिल कर उसका वहीं अग्नि-संस्कार कर दिया। भाव यह है कि विरहाग्नि-जन्य वेदना जब अपनी चरम सीमा पार कर जाती है तब विरही व्यक्ति के प्राणों को भी लूट लेती है। यहां पर पठित १—विरहानल-ज्वाला-करालितः=विरहाणल-जाल-करालिअ-उ, २—दृष्टः=दिट्ठउ, ३—पान्थैः=पन्थिअहिं, ४—कृतः=किअ-उ, ५—अग्निष्ठः=अग्गिट्ठउ इन पदों में करालित आदि शब्दों से स्वार्थ में अ-प्रत्यय किया गया है। डड-प्रत्यय का उदाहरण इस प्रकार है—**मम कान्तस्य द्वौ दोषौ**=महु कन्तहो बे दोसडा [मेरे प्रीतम के दो दोष हैं] यहां पर पठित **दोषौ**=दोसडा, इस दोष-पद में डड-[अड]-प्रत्यय किया गया है। डुल्ल-प्रत्यय का उदाहरण इस प्रकार है—**एका कुटी पञ्चभिः रुद्धा**=एक्क कुडुल्ली पञ्चहिं रुद्धी [एक कुटिया पांच जनों ने रोक रखी है] यहां पर **कुटी**=कुडुल्ली, इस शब्द से डुल्ल-(उल्ल)-प्रत्यय किया गया है।

११०१—अपभ्रंश-भाषा में—१—अ, २—डड (अड), और ३—डुल्ल (उल्ल) इन प्रत्ययों के योगभेद [योग=मेल का भेद=भिन्नता अर्थात् प्रत्ययों का भिन्न-भिन्न प्रकार से मेल करने] से जो '**डडअ**' आदि प्रत्यय बन सकते हैं, वे भी प्रायः स्वार्थ में होते हैं। जैसे—१—**डडअ** का उदाहरण—**स्फोटयतः यौ हृदयमात्मीयम्**=फोडेन्ति जे हिअडउं अप्पणउं [जो अपने हृदय को फोड़ डालते हैं] यहां पर पठित—हृदयम् से डडअ [अडअ] प्रत्यय करके **हिअडउं** [हृदय को] यह रूप बनाया गया है। यहां पर २६९ वें सूत्र के द्वारा हृदय शब्द के स-स्वर यकार का लोप किया गया है। २—**डुल्लअ** [डुल्ल और अ इन दो प्रत्ययों के योग-मिलाप से बना हुआ प्रत्यय] का उदाहरण इस प्रकार है—**चूडकः चूर्णीभवति स्वयम्**=चूडुल्लउ चुन्नीहोइ सइ [चूड़ा स्वयं चूर-चूर हो रहा है] यहां पर पठित **चूडकः** इस शब्द से डुल्लअ [उल्लअ] यह प्रत्यय करके '**चूडुल्लउ**' यह रूप बनाया गया है। **डुल्ल-डड** [डुल्ल-उल्ल और डड-अड इन दो प्रत्ययों के संयोग से बने] प्रत्यय का उदाहरण इस प्रकार है—

स्वामी-प्रसादं सलज्जं प्रियं सीमा-सन्धौ वासम्।

प्रेक्ष्य बाहुबलं धन्या मुञ्चति निःश्वासम्॥१॥

अर्थात्—नायिका के पति पर उस के स्वामी का प्रसाद है, पूर्ण अनुग्रह है, नायिका-पति सलज्ज [लज्जा वाला] भी है, लज्जावश ही अपने स्वामी के आदेश का पालन करने से कभी वह मन नहीं चुराता, वह देश की सीमा पर निवास कर रहा है, उसे देश का पहरेदार बनने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है, उसकी भुजाओं में अदम्य बल है, युद्ध करने की विलक्षण क्षमता है, इसी क्षमता के कारण वह युद्धार्थ सदा उत्सुक भी रहता है, नायिका के पति के भले ही ये [स्वामिप्रसाद आदि] गुण हैं, परन्तु नायिका के लिए ये गुण वियोग का कारण बन रहे हैं। इसी लिए नायिका अपने नायक की यह गुणसम्पदा देखकर निःश्वास ले रही है, आहें भर रही है। यहां पर पठित—'**बाहुबलम्**' इस शब्द से डुल्ल-डड [उल्ल-अड] प्रत्यय करके—'**बाहु-बलुल्लडा**' यह रूप बनाया गया है। यहां पर अम्प्रत्यय

होने पर १००१ सूत्र से अकार को दीर्घ किया गया है। इसी प्रकार **बाहु-बलम्**=बाहु-बलुल्लडउ [भुजा का बल] यह रूप बनता है। यहां पर—१—**डुल्ल** [उल्ल], २—**डड** [अड] और ३ **अ** इन तीन प्रत्ययों का योग [मेल] पाया जाता है। अर्थात् यहां पर **बाहुबल**-शब्द से **डुल्ल-डड-अ** [उल्ल-अड-अ=उल्लडअ] ये तीन प्रत्यय करके **बाहुबलुल्लडउ** इस रूप की निष्पत्ति की गई है।

११०२—अपभ्रंश-भाषा में, स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान-विद्यमान प्राक्तन [पहले] सूत्रद्वयोक्त [दो सूत्रों द्वारा उक्त] प्रत्ययान्त [प्रत्यय है अन्त में जिस के] शब्दों से अर्थात्—११०० वें सूत्र से प्रतिपादित अ, डड, और डुल्ल इन तीन प्रत्ययों वाले तथा ११०१ वें सूत्र से उक्त डडअ, डुल्ल-अ, डुल्ल-डड तथा डुल्ल-डड-अ इन प्रत्ययों वाले शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में डी-प्रत्यय होता है। जैसे—

पथिक ! दृष्टा गोरी ? दृष्टा मार्गं पश्यन्ती।
अश्रूच्छ्वासैः कञ्चुकमार्द्रशुष्कं कुर्वन्ती ॥१॥

अर्थात्—हे पथिक ! तूने गोरी [नायिका] को देखा है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उसने कहा—हां देखा है, वह मार्ग देख रही थी, आंसुओं से अपने कञ्चुक [अंगिया] को आर्द्र बना रही थी और साथ ही गरम उच्छ्वासों [आहों] द्वारा उसे सुखा भी रही थी। यहां पर पठित **गोरी**=गोरड=गोरडी [गौर वर्ण वाली नारी] इस पद में **डड**-प्रत्यय से आगे डी-[ई]-प्रत्यय किया गया है। **डुल्ल**-प्रत्यय से किए गए **डी**-प्रत्यय का उदाहरण इस प्रकार है—**एका कुटी पञ्चभिः रुद्धा**=एक्क कुडुल्ली पञ्चहिं रुद्धी [एक कुटिया पांचों ने रोक रखी है] यहां पर पठित **कुटी**=कुडुल्ल=कुडुल्ली [कुटिया] इस पद में **डुल्ल**-प्रत्यय से **डी**-प्रत्यय किया गया है।

११०३—अपभ्रंश-भाषा में स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान [विद्यमान] *अप्रत्ययान्त वाले प्रत्ययान्त शब्द से परे डा-प्रत्यय होता है। यह ११०२वें सूत्र से होने वाले डी-प्रत्यय का अपवाद सूत्र है। जैसे—

प्रिय आयातः, श्रुता वार्ता, ध्वनिः कर्णे प्रविष्टा।
तस्य विरहस्य नश्यतः धूलिरपि न दृष्टा ॥१॥

अर्थात्—प्रीतम आगए हैं, यह बात सुनी, प्रीतम के आने की ध्वनि [आवाज] जब कानों में पड़ी, तब नष्ट होते हुए विरह की धूलि भी दिखाई नहीं दी। यहां पर पठित **धूलिः**=धूलडअ=धूलडिआ [धूलि] इस पद में अ-प्रत्ययान्त [अड-अ] वाले प्रत्ययान्त [जिस के अन्त में प्रत्यय हो] धूलडअ इस शब्द से डा-प्रत्यय करके **धूलडिआ** यह रूप बनाया गया है।

११०४—अपभ्रंश-भाषा में, स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान नाम-प्रातिपदिक का जो अकार है, उसको आकार-प्रत्यय परे होने पर इकार होता है। जैसे—**धूलिरपि न दृष्टा**=धूलडिआ वि न दिट्ठ [धूलि भी दिखाई नहीं दी] यहां पर आकार [डा] प्रत्यय परे होने पर **धूलडअ**=धूलड+आ+सि इस पद में अकार के स्थान में इकार करके "**धूलडिआ**" यह रूप बनाया गया है। ध्यान रहे कि यह अकार के स्थान में होने वाला इकारादेश स्त्रीलिङ्ग में ही होता है, अन्यत्र नहीं। जैसे—**ध्वनिः कर्णे प्रविष्टः**=झुणि

*जिस प्रत्यय के अन्त में अ-प्रत्यय हो उसे अ-प्रत्ययान्त प्रत्यय कहते कहते हैं। जैसे—अड-अ यह प्रत्यय है, इसके अन्त में अ-प्रत्यय है, अतः यह अप्रत्ययान्त प्रत्यय समझना चाहिए। तथा जिस शब्द के अन्त में अप्रत्ययान्त वाला प्रत्यय हो वह शब्द अ प्रत्ययान्त-प्रत्ययान्त कहलाता है। जैसे—धूलिः=धूलडअ+आ+सि इस प्रक्रिया से धूलडि-आ यह शब्द बनता है। धूलि शब्द के अन्त में अ-प्रत्ययान्त वाला प्रत्यय [अड-अ] दृष्टिगोचर हो रहा है, अतः धूलडि-आ यह शब्द अ-प्रत्ययान्त-प्रत्ययान्त जानना चाहिए।

कण्णडइ पइट्ठ [ध्वनि कानों में प्रविष्ट हुई] यहां पर स्त्री-लिङ्गी शब्द न होने से कर्णे=कण्णडम+ङि, इस पद में अकार को इकारादेश नहीं हो सका। कण्णडइ शब्द की प्रक्रिया इस प्रकार है—कर्णे। कर्ण+ङि। यहां पर ३५० वें सूत्र से रेफलोप, ३६० वें सूत्र से णकारद्वित्व, ११०१ वें सूत्र से डडअ-[अडअ]-प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् डित्-प्रत्यय परवर्ती होने से अन्त्यस्वरादि वर्ण [णकारगत अकार] का लोप, अज्झीन व्यञ्जन में स्वर का संगम तथा १००५ वें सूत्र से ङि-प्रत्यय के साथ अकार को इकारादेश हो जाने पर कण्णडइ यह रूप सिद्ध होता है। वैसे कण्णडअ+ङि यहां पर अकार से परे आकार-प्रत्यय का अभाव होने से प्रस्तुत सूत्र की प्राप्ति ही नहीं है। तथापि वृत्तिकार ने इस उदाहरण का क्यों उल्लेख किया है? यह विचारकों को विचार करना चाहिए।

११०५—अपभ्रंश-भाषा में युष्मद् आदि शब्दों से परे आए ईय-प्रत्यय के स्थान में डार (आर)यह आदेश होता है। जैसे—

सन्देशेन किं युष्मदीयेन, यत्संगाय न मिल्यते?।

स्वप्नाऽन्तरे पीतेन पानीयेन, प्रिय! पिपासा किं छिद्यते ॥१॥

अर्थात्—हे प्रिय पतिदेव!-तुम्हारे सन्देश से क्या लाभ? क्योंकि तुम संगमार्थ तो कभी मिलते ही नहीं हो। भला स्वप्न में किए जाने वाले जल-पान से क्या पिपासा [प्यास] शान्त हो सकती है? यहां पर पठित युष्मदीयेन=तुहारेण [तुम्हारे] इस पद में युष्मद्-शब्द सम्बन्धी 'ईय'—प्रत्यय के स्थान 'डार' यह आदेश किया गया है। २—पश्य अस्मदीयं कान्तम्=दिक्खि अम्हारा कन्तु [हमारे कान्त [प्रिय] को देखो] यहां पर पठित—अस्मदीयम्=अम्हारा [हमारे] इस पद में अस्मद्-शब्द के ईय-प्रत्यय के स्थान में 'डार' यह आदेश किया गया है। ३—भगिनि! अस्मदीयः कान्तः=बहिणि! महारा कन्तु [बहिन! हमारा कान्त-प्रीतम] यहां पर पठित अस्मदीयः=महारा [हमारा] इस पद में अस्मद्-शब्द के ईय-प्रत्यय को 'डार' यह आदेश किया गया है।

११०६—अपभ्रंश-भाषा में इदम्, किम्, यद्, तद् और एतद् इन पांच शब्दों से आए अतु-प्रत्यय के स्थान में डेत्तुल [एत्तुल] यह आदेश होता है। जैसे—१—इयान्=एत्तुलो [इतना], २—कियान्=केत्तुलो [कितना], ३—यावान्=जेत्तुलो [जितना], ४—तावान्=तेत्तुलो [उतना], ५—एतावान्=एत्तुलो [इतना] यहां पर पठित १—इदम्+अतु=एत्तुलो, २-किम्+अतु=केत्तुलो, ३—यद्+डावतु=जेत्तुलो, ४—तद्+डावतु=तेत्तुलो, और ५—एतद्+डावतु=एत्तुलो इन पदों में अतु प्रत्यय के स्थान में प्रस्तुतसूत्र से डेत्तुल आदेश किया गया है। प्रत्यय-ग्रहणे तदन्तस्याऽपि ग्रहणम् [प्रत्यय का ग्रहण करने पर, वह प्रत्यय जिस के अन्त में हो उस प्रत्यय का भी ग्रहण कर लिया जाता है] इस परिभाषा के आधार पर अतु-प्रत्यय कहने से डावतु इस प्रत्यय का भी ग्रहण कर लिया जाता है। इसी लिए यावान्,तावान् तथा एतावान् इन शब्दों के डावतु-प्रत्यय को भी प्रस्तुत सूत्र से डेत्तुल यह आदेश किया गया है।

११०७—अपभ्रंश—भाषा में सर्व आदि शब्दों से सप्तम्यन्त अर्थ में विहित त्र-प्रत्यय के स्थान में डेत्तहे [एत्तहे] यह आदेश होता है। जैसे—

अत्र तत्र द्वारे गृहे लक्ष्मीः विसंष्ठुला धावति।

प्रिय-प्रभ्रष्टेव गौरी निश्चला कस्मिन्नपि न तिष्ठति ॥१॥

अर्थात्—विसंष्ठुल-चंचल लक्ष्मी यहां, वहां,द्वारों और घरों में भ्रमण करती रहती है। जैसे—

प्रिय [प्रीतम] से भ्रष्ट [च्युत या परित्यक्त] गोरी [गोरे वर्ण वाली नारी] कहीं भी स्थिर होकर नहीं रहती, वैसी ही स्थिति लक्ष्मी की दृष्टिगोचर हो रही है। यहां पर पठित—**अत्र**=एत्तहे [यहां पर] तथा **तत्र**=तेत्तहे [वहां पर], इन पदों में सप्तम्यन्तार्थ [सप्तम्यन्त है अर्थ जिस का] **त्र**-प्रत्यय के स्थान में **डे**त्तहे [एत्तहे] यह आदेश किया गया है।

११०८—अपभ्रंश-भाषा में त्व और तल् इन प्रत्ययों के स्थान में **'प्पण'** यह आदेश होता है। जैसे—**बृहत्त्वं परिप्राप्यते**=वड्डप्पणु परिपाविअइ [उस से महत्त्व प्राप्त किया जाता है] यहां पर पठित **बृहत्त्वम्**=वड्डप्पणु [महत्त्वम्] इस पद में **त्व**-प्रत्यय के स्थान में **'प्पण'** यह आदेश किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में १००० वें सूत्र से **'प्रायः'** इस पद का अधिकार आ रहा है। प्रायः का अर्थ है—***बहुल**। अतः कहीं-कहीं पर त्व-प्रत्यय को **'प्पण'** यह आदेश नहीं भी होता। जैसे—**बृहत्त्वस्य कृते**=वड्डत्तणहो तणेण [महत्त्व के लिए] यहां पर पठित **त्व**—प्रत्यय को **'प्पण'** यह आदेश नहीं हो सका।

११०९—अपभ्रंश-भाषा में **तव्य**-प्रत्यय के स्थान में **इएव्वउं**, **एव्वउं** और **एवा** ये तीन आदेश होते हैं। जैसे—

एतद् गृहीत्वा यन्मया यदि प्रियः उद्वार्यते।
मम कर्तव्यं किमपि नाऽपि मर्तव्यं परं दीयते ॥१॥

अर्थात्—रजत और सुवर्ण आदि धन सम्पदा ले कर यदि मैं प्रिय का त्याग कर दूं, तो मरने के अतिरिक्त, मेरा कोई भी कर्तव्य शेष नहीं रह जाता क्योंकि नारीजीवन में पति ही सर्वस्व होता है। पतिविहीन जीवन सर्वथा निस्सार होता है। यहां पर पठित १—**कर्तव्यम्**=करिएव्वउं [करने योग्य कार्य], २—**मर्तव्यम्**=मरिएव्वउं [मरना चाहिए, मरण] इन पदों में **तव्यत्**—प्रत्यय के स्थान में **'इएव्वउं'** यह आदेश किया गया है **'एव्वउं'** का उदाहरण इस प्रकार है—

देशोच्चाटनं शिखिक्वथनं घनकुट्टनं यत् लोके।
मञ्जिष्ठया अतिरक्तया सर्वं सोढव्यं भवति ॥२॥

अर्थात्—देश से उच्चाटन-पृथक् होना, जड़मूल से उखाड़ा जाना, तत्पश्चात् क्वाथ के रूप में अग्नि पर उबाला जाना तथा हथौड़ों से कूटा जाना, ये सब के सब संकट संसार में अत्यधिक राग—रंगवाली मजीठ [एक लता जिस की जड़ों और डंठलों को उबाल कर तथा कूट कर लाल रंग निकाला जाता है] को सहन करने पड़ते हैं। राग [रंग] की अधिकता जैसे मञ्जिष्ठ के लिए संकटदायिका होती है, वैसे अति-राग [मोह: विषय] करने वाले मनुष्य को भी भीषण संकट सहन करने पड़ते हैं। यहां पर पठित **सोढव्यम्**=सहेव्वउं [सहन करने योग्य], इस पद में **तव्यत्**-प्रत्यय के स्थान में **'एव्वउं'** यह आदेश किया गया है। **'एवा'** का उदाहरण—

स्वपितव्यं परं वारितं पुष्पवतीभिः समम्।
जागरितव्यं पुनः को धरति यदि स वेदः प्रमाणम् ॥३॥

अर्थात्—ऋतुमती-रजस्वला नारियों के साथ रात्रि को शयन-संगम करना निषिद्ध है। यह बात यदि वेदशास्त्र-धर्मशास्त्र से प्रमाणित मानते हैं तो जागृत-दशा [दिन] में रजस्वला नारी के साथ किए जाने वाले संगम को कैसे शास्त्र-सम्मत माना जा सकता है? यहां पर पठित—१—**स्वपितव्यम्**=सोएवा [शयन करना चाहिए, या शयन] तथा २—**जागरितव्यम्**=जग्गेवा [जागना चाहिए, जागृत दशा में] इन पदों के **तव्यत्**-प्रत्यय के स्थान में **'एवा'** यह आदेश किया गया है।

*बहुल शब्द के अर्थ के लिए देखो प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम खण्ड का चतुर्थ पृष्ठ

१११०—अपभ्रंश-भाषा में क्त्वा-प्रत्यय के स्थान में—इ, इउ, इवि और अवि ये चार आदेश किए जाते हैं। इ इस आदेश का उदाहरण इस प्रकार है—

हृदय ! यदि वैरिणो घनाः, ततः किमभ्रे आरोहामः ?।
अस्माकं द्वौ हस्तौ यदि पुनः मारयित्वा म्रियामहे ॥१॥

अर्थात्—हे हृदय ! यदि वैरी [शत्रु] अधिक हैं, बहुत ज्यादा हैं तो क्या हम आकाश पर चढ़ जाएं, हमारे भी तो दो हाथ हैं, अतः हम उन को मार कर ही मरेंगे। यहां पर पठित—**मारयित्वा**=मारि [मार कर] इस पद में **क्त्वा**-प्रत्यय के स्थान में 'इ' का आदेश किया गया है। 'इउ' का उदाहरण इस प्रकार है—**गजघटाः भङ्क्त्वा यान्ति**=गयघड भज्जिउ जन्ति [हाथियों के समूह को भेद करके जाते हैं] यहां पर पठित **भङ्क्त्वा**=भज्जिउ [भेद करके] इस में **क्त्वा**-प्रत्यय के स्थान में 'इउ' यह आदेश किया किया गया है। 'इवि' का उदाहरण इस प्रकार है—

रक्षति सा विषहारिणी द्वौ करौ चुम्बित्वा जीवम्।
प्रतिबिम्बित-मुञ्जालं जलं याभ्यामनवगाहितं पीतम् ॥२॥

अर्थात्—विषहारिणी [पनिहारिणी] महिला अपने हाथों को चूम-चूम कर अपने जीवन का संरक्षण कर रही है। हाथों से ही वह उस जल का पान करती है, जिस में किसी ने स्नान नहीं किया तथा जिस में मुञ्ज प्रतिबिम्बित हो रही है। इस तरह हाथों द्वारा अपने जीवन की समस्त समस्याओं को समाहित कर लेने के कारण ही वह अपने हाथों को चूमती रहती है, हाथों की उपकारिता के लिए उन को स्नेह प्रदान करती है। यहां पर पठित **चुम्बित्वा**=चुम्बिवि [चूम कर, चुम्बन लेकर] इस पद में **क्त्वा**-प्रत्यय के स्थान में 'इवि' यह आदेश किया गया है। **अवि** का उदाहरण इस प्रकार है—

बाहू त्याजयित्वा याहि त्वं भवतु तथा को दोषः ?।
हृदये स्थितः यदि निःसरसि जानामि मुञ्ज ! सरोषः ॥३॥

अर्थात्—हे मुञ्ज ! यदि तू बाहू [भुजा] छुड़ा कर जाता है, तो भले ही चला जा, परन्तु यदि हृदय से भी तू निकल जाए तो मैं समझूं कि तू सरोष है, रोषयुक्त है। यहां पर पठित—**त्याजयित्वा**=विच्छोडवि [छुड़ा करके] इस पद में **क्त्वा** के स्थान में **अवि** यह आदेश किया गया है।

१११—अपभ्रंश—भाषा में **क्त्वा**-प्रत्यय के स्थान में **एप्पि, एप्पिणु, एवि** और **एविणु** ये चार आदेश होते हैं। जैसे—

जित्वा अशेषं कषायबलं दत्त्वा अभयं जगतः।
लात्वा महाव्रतं शिवं लभन्ते ध्यात्वा तत्त्वम् ॥१॥

अर्थात्—सम्पूर्ण कषाय [जिस से कष-जन्म-मरणरूप संसार की आय=आमदनी, लाभ हो, क्रोध मान, माया और लोभ ये चार महादोष] के बल को जीतकर, संसार को अभयदान देकर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह इन पांच महाव्रतों को धारण करके तथा जीव और अजीव आदि तत्त्वों का चिन्तन करके संयत प्राणी मोक्ष को प्राप्त करते हैं। यहां पर पठित १—**जित्वा**=जेप्पि [जीत कर], इस पद में **क्त्वा**-प्रत्यय को **एप्पि**, २—**दत्त्वा**=देप्पिणु [दे कर] इस पद में **क्त्वा**-प्रत्यय को **एप्पिणु**, ३—**लात्वा**=लेवि [ले कर] इस पद में **क्त्वा**-प्रत्यय को **एवि** और ४—**ध्यात्वा**=झाएविणु [चिन्तन करके] इस पद में **क्त्वा**-प्रत्यय के स्थान में **एविणु** यह आदेश किया गया है। यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि १११० वां सूत्र **क्त्वा**-प्रत्यय के स्थान में **इ, इउ** आदि चार आदेश करता है और

प्रस्तुत सूत्र भी क्त्वा के स्थान में ही एप्पि आदि चार आदेशों का विधान करता है, इस तरह ये आठ
आदेश क्त्वा के स्थान में किए गए हैं, इन आदेशों का एक ही सूत्र से विधान किया जा सकता था,
फिर सूत्रकार ने दो सूत्र बना कर ग्रन्थ-गौरव क्यों किया ? उत्तर में निवेदन है कि क्त्वा-प्रत्यय को
विहित आठ आदेशों का निर्देश एक ही सूत्र द्वारा हो सकता था, यह सत्य है किन्तु इस सूत्र का जो
योग [रचना] किया गया है, यह वह केवल उत्तर [अगले] सूत्र के निमित्त किया गया है, १११२ वां
सूत्र तुम् प्रत्यय के स्थान में १—एवं, २—अण, ३—अणहं, ४—अणहिं, ५—एप्पि, ६—एप्पिणु,
७—एवि और ८—एविणु, इन आठ आदेशों का विधान करता है। इन आठ आदेशों में से एप्पि,
एप्पिणु, एवि और एविणु इन चार आदेशों की अनुवृत्ति १११२ वें सूत्र से ग्रहण की गई है। यदि
क्त्वा के स्थान में होने वाले इ, इउ, इवि, अवि तथा एप्पि, एप्पिणु, एवि और एविणु इन सभी आठ
आदेशों को एक ही सूत्र में संकलित कर लेते तो १११२ वें सूत्र में इन सभी आठों आदेशों की अनु-
वृत्ति हो जाती, परन्तु १११२ वें सूत्र को क्त्वास्थानीय समस्त आदेशों का ग्रहण करना इष्ट नहीं
है, उसे तो केवल एप्पि, एप्पिणु, एवि और एविणु ये चार आदेश ही अपेक्षित हैं। अतएव सूत्र-
कार ने १११० तथा ११११ इन सूत्रों का पृथक् योग [निर्माण] किया है। इस पृथक् योग से
१११० वें सूत्र में पठित इ, इउ, इवि और अवि इन चार आदेशों की अनुवृत्ति की १११२ वें सूत्र में
निवृत्ति हो जाती है :

१११२—अपभ्रंश-भाषा में तुम्-प्रत्यय के स्थान में, १—एवं, २—अण, और ३—अणहं, ४—अणहिं ये चार तथा सूत्रोक्त चकार के कारण १—एप्पि, २—एप्पिणु, ३—एवि—और ४—एविणु ये चार, इस तरह समस्त आठ आदेश होते हैं। जैसे—

दातुं दुष्करं निजकधनं, कर्तुं न तपः प्रतिभाति।
एवमेव सुखं भोक्तुं मनः, परं भोक्तुं न याति ॥१॥

अर्थात्—अपने धन का दान करना कठिन है, तथा तप करना भी अच्छा नहीं लगता है। ऐसे ही [दान और तप के बिना ही] यह मन सुख का उपभोग करना चाहता है, किन्तु इस तरह ऐसे सुख का उपभोग कैसे हो सकता है ? । यहां पर पठित—१ **दातुम्**=देवं [देने को] इस पद में तुम्-प्रत्यय को एवं, २—**कर्तुम्**=करण [करने को] इस पद में तुम्-प्रत्यय को अण, ३—**भोक्तुम्**=भुञ्जणहं [भोगने को] इस पद में तुम्-प्रत्यय को अणहं और ४—**भोक्तुम्**=भुञ्जणहिं [भोगने को] इस पद में तुम्-प्रत्यय के स्थान में अणहिं यह आदेश किया है। एक ही श्लोक में वृत्तिकार ने उक्त चारों आदेशों का निर्देश करने की कृपालुता की है।

जेतुं त्यक्तुं सकलां धरां लातुं तपः पालयितुम्।
विना शान्त्या तीर्थेश्वरेण कः शक्नोति भुवनेऽपि ? ॥२॥

अर्थात्—सम्पूर्ण पृथ्वी को पहले तो जीतना, फिर उस का परित्याग करना, फिर तप का ग्रहण करना और फिर उस की परिपालना करना, त्रिभुवन [तीन लोक] में ये सब बातें तीर्थंकर श्री शान्ति नाथ के बिना और कौन कर सकता है ? यहां पर—पठित—१—**जेतुम्**=जेप्पि [जीतने को] इस पद में तुम्-प्रत्यय के स्थान में एप्पि, २—**त्यक्तुम्**=चएप्पिणु [छोड़ने को] इस पद में तुम् प्रत्यय के स्थान में एप्पिणु, ३—**लातुम्**=लेविणु [लाने को, धारण करने को] इस पद में तुम्-प्रत्यय के स्थान में एविणु और ४—**पालयितुम्**=पालेवि [पालन करने को] इस पद में तुम्-प्रत्यय को एवि यह

आदेश किया गया है। यहां पर भी वृत्तिकार ने तुम्-प्रत्यय के स्थान में होने वाले **एप्पि** आदि चारों आदेशों का एक ही श्लोक में उल्लेख कर दिया है।

१११३—अपभ्रंश-भाषा में गम्लृ [गम्] धातु से परे आए **एप्पिणु** और **एप्पि** इन आदेशों के एकार का विकल्प से लोप हो जाता है।

गत्वा वाराणस्यां नराः अथ उज्जयिन्यां गत्वा।
मृताः प्राप्नुवन्ति परमपदं दिव्याऽन्तराणि मा कथय ॥१॥

अर्थात्—वाराणसी अथवा उज्जयनी में जा कर मरने वाले व्यक्ति परमपद को प्राप्त कर लेते हैं, अतः अन्य तीर्थों की चर्चा मत कर। अर्थात् अन्य तीर्थों में जाने की आवश्यकता नहीं। यहां पर पठित १—**गत्वा**। गम्लृ-गम्+क्त्वा=गम्+एप्पिणु=गम्+प्पिणु=गम्प्पिणु [जा कर] इस पद में **'एप्पिणु'** के एकार का विकल्प से लोप किया गया है। २—**गत्वा**। गम्लृ-गम्+क्त्वा=गम्+एप्पि=गम्+प्पि=गम्प्पि [जा कर] इसमें **'एप्पि'** के एकार का विकल्प से लोप किया गया है। लोप के अभावपक्ष में **एप्पिणु** तथा **एप्पि** के एकार का लोप नहीं होता। जैसे—

गङ्गां गत्वा यः म्रियते यः शिवतीर्थं गत्वा।
क्रीडति त्रिदशावासगतः स यमलोकं जित्वा ॥२॥

अर्थात्—गङ्गा अथवा शिव-तीर्थ पर जा कर जो मरता है, वह यमलोक को जीत कर स्वर्गीय आवासों को प्राप्त करके सानन्द उन में क्रीडाएं करता है। यहां पर पठित **गत्वा**। गम्लृ-गम्+क्त्वा=गम्+एप्पिणु=गमेप्पिणु [जाकर] इस पद में **एप्पिणु** के एकार का लोप नहीं हो सका। तथा-**गत्वा**। गम्लृ-गम्+क्त्वा=गम्+एप्पि=गमेप्पि [जा कर] और **जित्वा**। जि+क्त्वा=जिण+एप्पि=जिणेप्पि [जीत कर] इन पदों में 'एप्पि' के एकार का लोप नहीं किया गया।

१११४—अपभ्रंश-भाषा में तृन्-प्रत्यय के स्थान में **अणअ** यह आदेश होता है। जैसे—**हस्ती मारयिता, लोकः कथयिता, पटहः वादयिता, शुनकः भषिता**=हत्थि मारणउ, लोउ बोल्लणउ, पडहु वज्जणउ, सुणउ भसणउ [हाथी मारने की वृत्ति वाला होता है, लोक-प्राणिवर्ग बोलने का स्वभाव रखता है, पटह [ढोल] का स्वभाव बजना और कुत्ते का स्वभाव भौंकना होता है] यहां पर पठित १—**मारयिता**=मारणउ [मारने के स्वभाव वाला], २—**कथयिता**=बोल्लणउ [बोलने के स्वभाव वाला], ३—**वादयिता**=वज्जणउ [बजने के स्वभाव वाला], ४—**भषिता**=भसणउ [भौंकने के स्वभाव वाला] इन समस्त पदों में तृन्-प्रत्यय के स्थान में **'अणअ'** यह आदेश किया गया है।

★ अथ इवार्थाऽऽदेश-विधिः ★

१११५—इवार्थे नं-नउ-नाइ-नावइ-जणि-जणवः। ८। ४। ४४४। अपभ्रंशे इव-शब्दस्यार्थे नं, नउ, नाइ, नावइ जणि, जणु इत्येते षड् आदेशा भवन्ति। नं। **नं मल्ल-जुज्झु ससि-राहु करहिं** [४,३८२] नउ।

रवि-अत्थमणि समाउलेण कण्ठि विइण्णु न छिन्नु।
चक्कें खण्डु मुणालिअहे नउ जीवग्गलु दिण्णु ॥१॥

नाइ— **वलयावलि-निवडण-भएण धण उद्धब्भुअ जाइ।**
वल्लह-विरह-महादहहो थाह गवेसइ नाइ ॥२॥

नावइ— पेक्खेविणु मुहु जिण-वरहो दीहर-नयण सलोणु।
नावइ गुरु-मच्छर-भरिउ जलणि पवीसइ लोणु ॥३॥

जणि— चम्पय-कुसुमहों मज्झि सहि! भसलु पइट्ठउ।
सोहइ इन्दनीलु जणि कणइ बइट्ठउ ॥४॥

जणु। निरुवम-रसु पिएं पिएवि जणु [४,४०१]।

★ अथ इवार्थाऽऽदेश-विधिः ★

अपभ्रंश-भाषायाम् इव इत्यव्यय-पदस्याऽर्थे नं, नउ, नाइ, नावइ इत्यादयः ये आदेशाः संभवन्ति, सम्प्रति तान् प्रदर्शयत्याचार्यः। यथा—

१११५—नं। नं इत्यादेशस्योदाहरणं प्रदीयते वृत्तिकारेण। यथा—इव मल्लयुद्धं शशिराहू कुरुतः—नं मल्लजुज्झु ससिराहु करहिं, प्रक्रिया १०५३ सूत्रे ज्ञेया। इव—नं, इत्यत्र प्रस्तुत-सूत्रेण इव इत्यव्ययस्य स्थाने नं इत्यादेशो विहितः। नउ। नउ इत्यादेशस्योदाहरणं प्रदर्श्यते। यथा—

रव्यस्तमने समाकुलेन कण्ठे वितीर्णः न छिन्नः।
चक्रेण खण्डः मृणालिकायाः इव जीवार्गलः दत्तः ॥१॥

भावार्थः—चक्रवाकयोः स्नेहाऽतिशयो व्यज्यते। रव्यस्तमने, रवेः-सूर्यस्य अस्तमने-तिरोधाने-सूर्यास्तसमये, समाकुलेन-व्याकुलेन, चक्रेण-चक्रवाकेण, रात्रौ चक्रवाकी-चक्रवाकयोः वियोगो भवति, अतः प्रिया-वियोगजनकं सूर्यास्तमनं समालोक्य चक्रवाकः [चकवा इति भाषायाम्] व्याकुलो जातः, व्याकुलेन तेन चक्रवाकेण कण्ठे वितीर्णः-स्थापितः सन् मृणालिकायाः-कमलिन्याः खण्डः न छिन्नः-भक्षितः। उत्प्रेक्ष्यते। इव-यथा चक्रवाकेण जीवार्गलो दत्तः। तेन चक्रवाकेण कमलिन्याः खण्डः एतदर्थं न भक्षितः, यद् रात्रौ चक्रवाकी-वियोगेन ममाऽऽत्मा न निर्यच्छेद्, सः कमलिन्याः खण्डो जीवार्गलत्वेनोपात्तः। जीवस्य अर्गलः, जीवार्गलः। यथा कपाटयोः पृष्ठे अर्गलो दीयते तेन न कोऽपि बहिर्गन्तुं शक्नोति। एवमेव मृणालिकायाः खण्डोऽपि मुखेऽर्गलः इव स्थापितः।

रवि-अस्तमने। रवि-अस्तमन+ङि। ३१६ सू० स्तस्य थकारे, ३६० सू० थकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे रवि-अत्थमणि इति भवति। वैकल्पिकत्वात् ५ सूत्रेणाऽत्र यण्-सन्धिर्न जाता। समाकुलेन। समाकुल+टा। १७७ सू० ककारलोपे, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे समाउलेण इति भवति। कण्ठे—कण्ठि, प्रक्रिया १०९१ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया। वितीर्णः। वितीर्ण+सि। १७७ सू० तकारलोपे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे विइण्णु इति भवति। न। अव्ययपदमिदं संस्कृत-वदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। छिन्नः। छिन्न+सि। १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे छिन्नु इति भवति। चक्रेण। चक्र+टा। १०६९ सू० रेफलोपे, ३६० सू० ककारद्वित्वे, १०१३ सू० टास्थानेऽनुस्वारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे चक्कें इति भवति। खण्डः। खण्ड+सि। १००२ सू० अकारस्य उकारे, छिन्नुवदेव खण्डु इति साध्यम्। मृणालिकायाः। मृणालिका+ङस्। १२१ सू० ऋकारस्य उकारे, १७७ सू० ककारलोपे, १००१ सू० अन्त्यस्य आकारस्य अकारे, १०२१ सू० ङसः स्थाने हे

इत्यादेशे **मुणालिअहे** इति भवति । **इव** । अव्ययपदमिदम् । प्रस्तुतसूत्रेण इवार्थे नउ इति पदं प्रयुज्यते । **जीवार्गलः** । जीवार्गल+सि । ३५० सू० रेफलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **जीवग्गलु** इति भवति । **दत्तः** । दत्त+सि । ४६ सू० आदेरकारस्य इकारे, २१४ सू० तस्य णकारे, ३६० सू० णकारस्य द्वित्वे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सेर्लोपे **दिण्णु** इति भवति । **इव**=नउ, अत्र प्रस्तुत-सूत्रेण इव-शब्दस्य स्थाने नउ इत्यादेशो जातः । **नाइ** । नाइ इत्यादेशस्योदाहरणं प्रदर्श्यते । यथा—

वलयावलि-निपतन-भयेन धन्या ऊर्ध्व-भुजा याति ।
वल्लभ-विरह-महा-ह्रदस्य स्ताघं गवेषयतीव ॥२॥

भावार्थः—नायिकायाः पतिवियोग-जनितं दैन्यं वर्णयति । काचिद् **धन्या**-नायिका, सुकृतिनीति यावत्, पतिविरह-दुःखेन अतीव कृशाङ्गी जाता । अतएव सा **वलयावलि-निपतन-भयेन**, वलयो हस्ताऽलङ्कारविशेषः, तेषामावलिः पंक्तिः, तस्याः निपतनं,तस्य भयेन, **ऊर्ध्वभुजा**, ऊर्ध्वौ भुजौ यस्याः,सा **याति**-गच्छति । उत्प्रेक्ष्यते ! सा अनया रीत्या व्यर्थमेव न गच्छति, किन्तु **वल्लभ-विरह-ह्रदस्य** वल्लभस्य प्रियस्य, विरहः-वियोगः स एव महा-ह्रदः, महांश्चासौ ह्रदः-तडागः, तस्य **स्ताघं**-गाम्भीर्यं **गवेषयतीव**-अन्वेषयतीव । कियान् विरहस्य-महा-ह्रदः ?, एतस्य अन्तस्तलं कियदस्ति ? एतदर्थमेव सा भुजौ ऊर्ध्वौ कृत्य यातीति कल्प्यत इति भावः ।

वलयावलि-निपतन-भयेन । वलयावलि-निपतन-भय-टा । २३१ सू० पकारस्य वकारे, ८९० सू० तकारस्य डकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १७७ सू० अन्त्य-यकारलोपे, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे, स्थानिवत्त्वात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **वलयावलि-निवडण-भएण** इति भवति । **धन्या**=धण, इत्यस्य पदस्य प्रक्रिया ११०१ सूत्रे ज्ञेया । **ऊर्ध्वभुजा** । ऊर्ध्वभुजा+सि । ३५० सू० रेफस्य वकारस्य च लोपे, ३६० सू० धकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वधकारस्य दकारे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, ३६८ सूत्रे "बहुलाऽधिकाराद् अशेषाऽऽदेशयोरपि" इति पाठाद् भकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारे, १७७ सू० जकारलोपे, १००१ सू० आकारस्य अकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **उद्ध-ब्भुअ** इति भवति । **याति**=जाइ, प्रक्रिया इत्यस्य पदस्य १०२१ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया । **वल्लभ-विरह-महा-ह्रदस्य** । वल्लभ-विरह-महा-ह्रद+ङस् । १८७ सू० भकारस्य स्थाने हकारे, ३११ सू० ह्रकार-दकारयोर्व्यत्यये, ३५० सू० संयुक्तरेफलोपे, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे **वल्लह-विरह-महादहहो** इति भवति । **स्ताघम्** । स्ताघ+अम् । ३१६ सू० स्तस्य थकारे, १८७ सू० घकारस्य हकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **थाह** इति भवति । **गवेषयति** । गवेष-[गवेष्]-धातुः गवेषणायाम् । गवेष्+णिग्+तिव् । ९१० सू० अकारागमे, २६० सू० षकारस्य सकारे, ६३८ सू० णिग अकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये,६४२ सू० आद्याऽकारस्य आकारे, १००० सू० आद्याकारस्य अकारे, ६२८ सू० तिव इचादेशे **गवेसइ** इति भवति । **इव** । अव्ययपदमिदम् । प्रस्तुतसूत्रेण इवार्थे **नाइ** इति प्रयुज्यते । **इव**=नाइ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण इवशब्दस्य स्थाने **नाइ** इत्यादेशो जातः । **नावइ** । नावइ इत्यादेशस्योदाहरणं प्रदर्शयत्याचार्यः । यथा—

प्रेक्ष्य मुखं जिनवरस्य दीर्घनयनं सलावण्यम् ।
इव गुरु-मत्सर-भरितं ज्वलने प्रविशति लवणम् ॥३॥

भावार्थः—जिनवरस्य परमपावनं सौन्दर्याऽऽधिक्यं व्यञ्जयति । **जिनवरस्य**, राग-द्वेषौ जयतीति

जिनः, जिनश्चासौ वरः जिनवरः,तस्य अर्हतो भगवतः **मुखं प्रेक्ष्य**-समीक्ष्य,किम्भूतं मुखम् ? **दीर्घनयनम्**, दीर्घे लम्बायमाने नयने-नेत्रे यस्मिन् तत्, पुनः **किम्भूतं मुखम् ? सलावण्यम्**, लावण्यसहितम्, सौन्दर्याधिक्योपेतमित्यर्थः । एतादृशं परम-विलक्षण-सुषमा-ललितं मुखं वीक्ष्य । लावण्यशब्दस्य सुन्दरार्थकतार्थोऽपि गृह्यते, अतः **लवणं**-लावण्यं, सौन्दर्यं **ज्वलने**-वन्हौ **प्रविशतीव** प्रतीयते । कीदृशं लावण्यम् ? **गुरु-मत्सर-भरितम्**, गुरुश्चासौ मत्सरः-ईर्षा, तेन भरितम्-परिपूर्णम् । जिनवर-सौन्दर्यातिशयं वीक्ष्य लावण्यं भस्मसादिव जातमिति भावः ।

प्रेक्ष्य । प्रपूर्वकः ईक्षधातुः प्रेक्षणे । प्रेक्ष्+क्त्वा । इत्यत्र १०६९ सू० रेफस्य लोपे, २७४ सू० क्षस्य खकारे, ३६० सू० खकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वखकारस्य ककारे, ११११ सू० क्त्वः स्थाने एविणु इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **पेक्खेविणु** इति भवति । **मुखम्** । मुख+अम् । १८७ सू० खकारस्य हकारे, १००२ सू० अकारस्य स्थाने उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **मुहु** इति भवति । **जिनवरस्य** । जिनवर+ङस् । इत्यत्र २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे **जिणवरहो** इति भवति । **दीर्घनयनम्** । दीर्घनयन+अम् । ३५० सू० रेफलोपे, ३६३ सू० घकारस्य द्वित्वनिषेधे, १८७ सू० घकारस्य हकारे, ४४२ सू० स्वार्थिके रेफे, २२८ सू० अन्त्य-नकारस्य णकारे, अमो लोपे **दीहरनयण** इति भवति । ११ सूत्रमनुसृत्य समासे तु वाक्य-विभक्त्यपेक्षायामन्त्यत्वमनन्त्यत्वञ्च भवति, अतः नकारस्याऽऽदिभूतत्वात् २२९ सूत्रेण नकारस्य णकार-प्राप्तिर्वर्तते, परन्तु अस्य वैकल्पिकत्वादत्र नयन-गत-प्रथम-नकारस्य णकारो न जातः । **सलावण्यम्** । सलावण्य+अम् । १७१ सू० वकारेण अन्त्यव्यञ्जनेन सह आदेः स्वरस्य स्थाने ओकारे सलोण्य+अम् इति जाते, बाहुल्येनाऽत्र ८४ सूत्रस्य प्रवृत्तिर्न जाता, ३४९ सू० यकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **सलोणु** इति भवति । **इव** । अव्ययपदमिदम् । प्रस्तुतसूत्रेण इवार्थे **नावइ** इति प्रयुज्यते । **गुरु-मत्सर-भरितम्** । गुरु-मत्सर-भरित+अम् । २९२ सू० त्सस्य छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **गुरु-मच्छर-भरिउ** इति भवति । **ज्वलने** । ज्वलन+ङि । ३५० सू० वकारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **जलणि** इति भवति । **प्रविशति** । प्रपूर्वकः विश्-धातुः प्रवेशे । प्रविश्+तिव् । १०६९ सू० रेफलोपे, १००० सू० इकारस्य ईकारे, ९१० सू० अकारागमे, २६० सू० शकारस्य सकारे,६२८ सू० तिव इत्यादेशे **पवीसइ** इति भवति । **लवणम्**—लोणु, प्रक्रिया १०८९ सूत्रस्य पञ्चमे श्लोके ज्ञेया । **इव**—नावइ इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण इवशब्दस्य **नावइ** इत्यादेशो जातः । **जणि** । जणि इत्यादेशस्योदाहरणं प्रदर्श्यते । यथा—

> **चम्पक-कुसुमस्य मध्ये सखि ! भ्रमरः प्रविष्टः ।**
> **शोभते इन्द्रनील इव कनके उपविष्टः ॥४॥**

भावार्थः— हे **सखि** ! चम्पक-कुसुमस्य-चम्पकनाम्नः कुसुमस्य-पुष्पस्य **मध्ये भ्रमरः**-द्विरेफः **प्रविष्टः** । भ्रमरेण तत्र प्रवेशः कृतः, स तत्र एवं **शोभते**, शोभां ददाति, **इव**-यथा **कनके**-सुवर्णे **इन्द्रनीलः**-कृष्णवर्णो मणिविशेषः **उपविष्टः**-स्थितोऽस्तीति उत्प्रेक्ष्यते । कनकवर्ण-समानवर्णवत् चम्पक-कुसुमम्, इन्द्रनील-समान-वर्णवांश्च भ्रमरो भवतीति भावः ।

चम्पक-कुसुमस्य । चम्पक-कुसुम+ङस् । १७७ सू० प्रथम-ककारलोपे, १८० सू० यकारश्रुतौ, १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे, १००१ सू० उच्चारणलाघवे **चम्पय-कुसुमहो** इति भवति । ११

सूत्रस्य वृत्तिमनुसृत्य ककारस्य आदिभूतत्वादत्र १७७ सू० ककारस्य लोपो न जातः। **मज्झे**। मध्य+ङि। २९७ सू० ध्यस्य झकारे,३६० सू० झकारद्वित्वे,३६१ सू० पूर्वझकारस्य जकारे,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **मज्झि** इति भवति। **सहि** [=सहि], प्रक्रिया १००३ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **भ्रमरः**। भ्रमर+सि। १०६९ सू० रेफलोपे, २४४ सू०मकारस्य सकारे, २५४ सू० सू० रेफस्य लकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **भसलु** इति भवति। **प्रविष्टः**। प्रविष्ट+सि। १०६९ सू० रेफलोपे, १७७ सू० वकारलोपे, ३०५ सू० ष्टस्य स्थाने ठकारे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्व-ठकारस्य टकारे, ११०७ सू० अप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **पइट्ठउ** इति भवति। **शोभते**। शुभ-धातुः शोभायाम्। शुभ+ते। संस्कृतनियमेन शोभ्+ते इति जाते, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९१० सू० अकारागमे, १८७ सू० भकारस्य हकारे, ६२८ सू० ते इचादेशे **सोहइ** इति भवति। **इन्द्रनीलः**। इन्द्रनील+सि। १०६९ सू० रेफस्य लोपे,१००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **इन्दनीलु** इति भवति। इव। अव्ययपदमिदम्। प्रस्तुतसूत्रेण इवाऽर्थे **जणि** इति प्रयुज्यते। **कनके**। कनक+ङि। २२८ सू० नकारस्य णकारे, १७७ सू० द्वितीय-ककारस्य लोपे,१००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **कणइ** इति भवति। **उपविष्टः**। उपविष्ट+सि। अपभ्रंशे १०९३ सू० उपविष्ट इत्यस्य शब्दस्य स्थाने बइट्ठ इति प्रयुज्यते, ११०० सू० अ-प्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **बइट्ठउ** इति भवति। **इव**=जणि इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण इव-शब्दस्य जणि इत्यादेशो जातः। **जणु**। जणु इत्यादेशस्योदाहरणं प्रदर्श्यते। यथा—**निरुपमरसं प्रियेण पीत्वेव**=निरुवमरसु पिएं पिएवि जणु, प्रक्रिया १०७२ सूत्रस्य तृतीय-श्लोके ज्ञेया। **पीत्वा**। पाधातुः पाने। पा+क्त्वा। इत्यत्र तु ११११ सू० क्त्वः स्थाने एवि इत्यादेशे,१००० सू० आकारस्य इकारे **पिएवि** भवति। बाहुल्येनाऽत्र १० सू० स्वरस्य लोपाऽभावः। **इव**=जणु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रेण इव-शब्दस्य स्थाने **जणु** इत्यादेशो विहितः।

★ अथ इव शब्द के अर्थ को बताने वाली आदेशविधि ★

अपभ्रंश-भाषा में इव इस अव्ययपद के स्थान में नं, नउ, नाइ और नावइ आदि जो छः आदेश होते हैं। अब सूत्रकार उन का निर्देश कर रहे हैं—

१११५—अपभ्रंश-भाषा में **इव** इस अव्ययपद के अर्थ में १—नं, २—नउ, ३—नाइ, ४—**नावइ**, ५—**जणि** और ६—**जणु** ये छः आदेश होते हैं। **नं** का उदाहरण इस प्रकार है—**इव मल्ल-युद्धं शशि-राहू कुरुतः**=नं मल्लजुज्झु ससि-राहु करहिं [मानों चन्द्रमा और राहु मल्ल-युद्ध करते हैं] यहां पर पठित '**इव**' इस शब्द के अर्थ में '**नं**' इस शब्द का आदेश किया गया है। **नउ** का उदाहरण—

रव्यस्तमने समाकुलेन कण्ठे वितीर्णः न छिन्नः।
चक्रेण खण्डः मृणालिकायाः इव जीवाऽर्गलः दत्तः ॥१॥

अर्थात्—सूर्यास्त के समय व्याकुल हुए चक्रवाक ने कमल-नाल के खण्ड को गले में ही धारण कर रखा था, उसने उस का छेदन नहीं किया, मानों जीवन [प्राणधारण] के लिए उसने वह अर्गल दे रक्खी हो। यहां पर पठित '**इव**' इस पद के अर्थ में **नउ** इस पद का आदेश किया गया है। **नाइ** इस पद का उदाहरण इस प्रकार है—

वलयावलि-निपतन-भयेन धन्या ऊर्ध्व-भुजा याति।
वल्लभ-विरह-महाह्रदस्य स्ताघं गवेषयतीव ॥२॥

अर्थात्—वलयावलि [कंकणावलि-कंगनों की श्रेणी] को गिरने के भय से नायिका ऊंची भुजा करके चल रही है, मानों वह वल्लभ [प्रीतम] के विरह-[वियोग]-रूप महा-ह्रद [महान् तालाब] के अन्तस्तल की गवेषणा कर रही हो। यहां पर पठित 'इव' इस पद के अर्थ में 'नाइ' इस शब्द का आदेश किया गया है। नावइ का उदाहरण इस प्रकार है—

प्रेक्ष्य मुखं जिनवरस्य दीर्घनयनं सलावण्यम्।
इव गुरुमत्सर-भरितं ज्वलने प्रविशति लवणम्॥३॥

अर्थात्—जिनवर के विशाल नेत्रों वाले और लावण्य [सौन्दर्य] से युक्त मुख को देख कर अत्यन्त ईर्ष्या से भरा हुआ लवण [लावण्य-सौन्दर्य] मानों अग्नि में प्रवेश कर रहा है। यहां पर पठित 'इव' इस अव्ययपद के अर्थ में 'नावइ' इस शब्द का आदेश किया गया है। जणि इस अव्यय-पद का उदाहरण इस प्रकार है—

चम्पक-कुसुममध्ये सखि! भ्रमरः प्रविष्टः।
शोभते इन्द्र-नील इव कनके उपविष्टः॥४॥

अर्थात्—हे सखि! चम्पलता के पुष्प के मध्य में भ्रमर प्रविष्ट क्या हो गया, मानों इन्द्रनील मणि [कृष्ण वर्ण वाली मरकत मणि, पन्ना] कनक [स्वर्ण] के ऊपर शोभा पा रही है। यहां पर पठित 'इव' इस पद के अर्थ में 'जणि' इस पद का आदेश किया गया है। जणु का उदाहरण इस प्रकार है—निरुपम-रसं प्रियेण पीत्वेव=निरुवम-रसु पिएं पीएवि जणु [मानों अनुपम रस पीकर प्रीतम ने] यहां पर पठित 'इव' पद के अर्थ में 'जणु' इस शब्द का आदेश किया गया है।

★ अथ लिङ्ग-प्रकरणम् ★

११९६—लिङ्गमतन्त्रम्। ८। ४। ४४५। अपभ्रंशे लिङ्गमतन्त्रं-व्यभिचारि प्रायो भवति। गय-कुम्भइं दारन्तु [४,३४५]। अत्र पुल्लिङ्गस्य नपुंसकत्वम्।

अब्भा लग्गा डुङ्गरिहिं पहिउ रडन्तउ जाइ।
जो एहो गिरि-गिलण-मणु सो किं धणहें धणाइ?॥१॥

अत्र 'अब्भा' इति नपुंसकस्य पुंस्त्वम्।

पाइ विलग्गी अन्त्रडी सिरु ल्हसिउं खन्धस्सु।
तो वि कटारइ हत्थडउ बलि किज्जउं कन्तस्सु॥२॥

अत्र 'अन्त्रडी' इति नपुंसकस्य स्त्रीत्वम्।

सिरि चडिआ खन्ति प्फलइं पुणु डालइं मोडन्ति।
तो वि महद्दुम सउणाहं अवराहिउ न करन्ति॥३॥

अत्र 'डालइं' इत्यत्र स्त्रीलिङ्गस्य नपुंसकत्वम्।

★ अथ लिङ्ग-प्रकरणम् ★

लिङ्गत्वं प्राकृत-गुण-गतावस्थात्मको धर्म एव भवति। तद्विशेषश्च पुं-नपुंसक-

त्वादिः। त्रिकुल-सत्त्वादीनां तुल्यरूपेण अवस्थानात् नपुंसकत्वम्। सत्त्वस्याऽऽधिक्ये पुंस्त्वम्। सत्त्वस्य अल्पत्वे, रजसश्च आधिक्ये स्त्रीत्वम्। सर्वेषां त्रिगुणात्मक-प्रकृतिकार्यतया शब्दानामपि तथात्वेन गुण-गत-विशेषात् शब्देषु लिङ्गविशेष इति कल्प्यते। सोऽपि च पुंस्त्वादिभेदेन त्रिविधो भवति। अपभ्रंश-भाषायां लिङ्ग-सम्बन्धि यद् विधि-विधानं भवति, तत् प्रतिपादयत्याचार्यः। यथा—

११९६—लिङ्गमतन्त्रम्। अतन्त्रं व्यभिचारि प्रायो भवति। अत्र अतन्त्रपदस्य पर्यायवाचिपदं व्यभिचारि इति वर्तते। व्यभिचारि-अनियतमित्यर्थः। संस्कृतभाषायां यथा रामादिशब्दाः नियतत्वेन पुल्लिङ्गाः, रमादिशब्दाः स्त्रीलिङ्गाः, तथा ज्ञानादिशब्दाश्च नपुंसकलिङ्गा वर्तन्ते, अपभ्रंश-भाषायां तादृशी स्थितिर्न वर्तते, अत्र रामादिशब्दानां लिङ्ग-गत-नियतत्वं प्रायो न विद्यते। यथा—**गजानां कुम्भान् दारयन्तम्**—गय-कुम्भइं दारन्तु, प्रक्रिया १०१६ सूत्रे ज्ञेया। कुम्भशब्दः पुल्लिङ्गः, किन्त्वपभ्रंश-भाषायां तस्य क्लीबत्वं जातम्। तदैवाऽत्र १०२४ सूत्रेण जसः स्थाने इं इत्यादेशो जातः।

अभ्राणि लग्नानि पर्वतेषु पथिकः रटन् याति।
यः एष गिरि-गिलन-मनाः स किं धन्याया घृणायते ?॥१॥

भावार्थ—**अभ्राणि**-मेघाः **पर्वतेषु**-महीधरेषु **लग्नानि** एतद् दृष्ट्वा **पथिकः**-पान्थः **रटन्**-शब्दायमानो **याति**-गच्छति। आचार्यः उत्तरार्धेन शब्द-करण-कारणमाह-**एष यो मेघः गिरिगिलन-मनाः**, गिरेः-पर्वतस्य गिलनं-ग्रसनं भक्षणं वा तस्मिन् मनो यस्य, सः, एतादृशः **स किं** [वितर्के] **धन्यायाः** नायिकायाः **घृणायते**। अत्र द्वितीयार्थे षष्ठी, धन्या कथमनुकम्प्यते ? नाऽनुकम्पिष्यते, धन्याया गिलनमवश्यमेव करिष्यति, तां कामविह्वलां विधाय निःसन्देहं मारयिष्यतीति भावः।

अब्भाइं। अभ्र+जस्। प्रस्तुतेन [११९६] सूत्रेण नपुंसकलिङ्गोऽभ्रशब्दः पुल्लिङ्गे प्रयुज्यते, १०६९ सू० रेफलोपे, ३६० सू० भकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वभकारस्य बकारे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **अब्भा** इति भवति। नपुंसकत्वाभावेनाऽत्र १०२४ सूत्रेण जसः स्थाने इं इत्यादेशो न जातः। **लग्गाइं**। लग्न+जस्। **विशेषण-विशेष्ययोः समानलिङ्गकत्वमिति** न्यायेन अभ्रशब्दस्य पुल्लिङ्गत्वात्तस्य विशेषणस्याऽपि पुल्लिङ्गत्वे जाते, ३४९ सू० नकारलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **लग्गा** इति भवति। **पर्वतेषु**। पर्वत+सुप्। अपभ्रंशे पर्वतार्थे १०९३ सूत्रेण डुङ्गरिशब्दः प्रयुज्यते, १०१८ सू० सुपः स्थाने हिं इत्यादेशे **डुङ्गरिहिं** इति भवति। **पथिकः**—पहिउ, इत्यस्य प्रक्रिया १०८६ सूत्रे ज्ञेया। **रटन्**। रट्धातुः शब्दकरणे। रट्+शतृ। ९१० सू० अकारागमे, १९५ सू० टकारस्य डकारे, ६७० सू० शतुः न्त इत्यादेशे, ११०० सू० अप्रत्यये, सिप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **रडन्तउ** इति भवति। **याति**—जाइ, प्रक्रिया १०२१ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **यः**—जो, प्रक्रिया १००१ सूत्रस्य चतुर्थे श्लोके ज्ञेया। **एषः**। एतद्+सि। १०६३ सू० एतदः स्थाने एह इत्यादेशे, १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **एहो** इति भवति। **गिरि-गिलन-मनाः**। गिरि-गिलन-मनस्+सि। २२८ सू० उभयत्राऽपि नकारस्य णकारे, ११ सू० सकारलोपे १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **गिरि-गिलण-मणु** इति भवति। **सः**—सो, प्रक्रिया ११०९ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया। **किम्**—किं, प्रक्रिया ११०५ सूत्रे ज्ञेया। **धन्यायाः**—धणहे, प्रक्रिया १०२१ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। अत्र १०८१ सूत्रेण उच्चारणस्य लाघवे जाते **धणहें** इति

भवति। **घृणायते**। घृणां करोतीति, घृणायधातुः घृणाकरणे। घृणाय+ते। १२६ सू० **ऋकारस्य** अकारे, १७७ सू० यकारलोपे, ५ सू० दीर्घसन्धौ, ६२८ सू० ते इत्यस्य इचादेशे **घणाइ** इति भवति। **अत्र अब्भा इति**। अत्र श्लोके पठितः अभ्र-शब्दः नपुंसकलिङ्गकोऽस्ति परन्तु प्रस्तुतसूत्रेणाऽसौ पुल्लिङ्गको जातः।

पादे विलग्नमन्त्रं शिरः स्रस्तं स्कन्धस्य।
ततोऽपि कटारिकायां हस्तः बलिक्रिये कान्तस्य ॥२॥

भावार्थः—काचिन्नायिका निजकान्तस्याद्भुतं वीरत्वमुपदर्शयति। हे **सखि**! मम पत्युः **पादे**-चरणे, **अन्त्रं** [आंत, आँतड़ी इति भाषायाम्] **विलग्नम्**, तस्य **शिरः**-शीर्षं **स्कन्धस्य**, अत्र पञ्चम्यर्थे षष्ठी, **स्कन्धात्** इत्यर्थः। **स्रस्तं**-पतितम्, **ततोऽपि**—तथापि एतादृश्यामवस्थायामपि **तस्य** मम **कान्तस्य हस्तः**-करः **कटारिकायां**-छुरिकायामेव वर्तते, एवंविधस्य अति-बलवतः कान्तस्य कृतेऽहमात्मानं **बलिं क्रिये**-तदुपरि बलिहारं गच्छामि, तस्य पूजां करोमि। शौर्ययुतो दयितस्यावलोकिन्या स्वस्य महाभाग्यत्वं व्यञ्जितम्।

पादे। पाद+ङि। १७७ सू० दकारलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **पाइ** इति भवति। **विलग्नम्**। विलग्न+सि। १११२ सू० क्लीबस्य अन्त्र इत्यस्य शब्दस्य स्त्रीत्वे, विशेषणस्य विलग्न इत्यस्याऽपि **विशेषण-विशेष्ययोः समानलिङ्गकत्वे** ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, ३४९ सू० नकारलोपे, ३६० सू० गकारद्वित्वे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीनं परेण संयोज्ये, सिप्रत्यये, १०१५ सू० सेर्लोपे **विलग्गी** इति भवति। **अन्त्रम्**। अन्त्र+सि। १०६९ सू० वैकल्पिकत्वाद् रेफस्य लोपाऽभावे, ११०० सू० डड-(अड)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, प्रस्तुतसूत्रेण अस्य नपुंसकलिङ्ग-शब्दस्य स्त्रीलिङ्गत्वे, ११०२ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सि-प्रत्यये, १०१५ सू० सेर्लोपे **अन्त्रडी** इति भवति। **शिरः**। शिरस्+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, ११ सू० सकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, सेर्लोपे **सिरु** इति भवति। **स्रस्तम्**। स्रंसु-[स्रंस्]-धातुः विस्रंसे। स्रंस्+क्त-त। ८६८ सू० स्रंस्-धातोः स्थाने ल्हस इत्यादेशे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, १७७ सू० तकारलोपे, सिप्रत्यये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, ५१४ सू० सेर्मकारे, २३ सू० मकारस्याऽनुस्वारे **ल्हसिउं** इति भवति। **स्कन्धस्य**। स्कन्ध+ङस्। २७५ सू० स्कस्य स्थाने खकारे, १००९ सू० ङसः स्थाने स्सु इत्यादेशे **खन्धस्सु** इति भवति। **ततः**—तो, प्रक्रिया १०८८ सूत्रे ज्ञेया। **अपि**—वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया। **कटारिकायाम्**। कटारिका+ङि। अपभ्रंश-भाषायां कटारिकायाः स्थाने १०९३ सू० कटार-शब्दः प्रयुज्यते, ११०० सू० अप्रत्यये, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **कटारइ** इति भवति। **हस्तः**। हस्त+सि। ३१६ सू० स्तस्य स्थाने थकारे, ३६० सू० थकार-द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वथकारस्य तकारे, ११०१ सू० डडअ-(अडअ)-प्रत्यये, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **हत्थडउ** इति भवति। **बलिम्**। बलि+अम्। १०१५ सू० अमो लोपे **बलि** इति भवति। **क्रिये**। डुकृञ्-[कृ]-धातुः करणे। कृ+क्य+ए। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, ६४९ सू० क्यस्य इज्ज इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०५६ सू० ए इत्यस्य उं इत्यादेशे, बाहुल्येनाऽत्र १० सू० अन्त्यस्वरस्य लोपाभावे, १०८२ सू० उच्चारणलाघवे **किज्जउँ** इति भवति। **कान्तस्य**। कान्त+ङस्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १००९ सू० ङसः स्थाने स्सु इत्यादेशे **कन्तस्सु** इति भवति। **अत्र अन्त्रडी इति**। अस्मिन् श्लोके पठितः अन्त्र-शब्दः नपुंसकलिङ्गी वर्तते, परन्तु प्रस्तुतसूत्रेणाऽसौ शब्दः स्त्री-लिङ्गको जातः,

तेन ५२१ सूत्रेण ङी-प्रत्ययो जातः।

सिरसि आरूढाः खादन्ति फलानि, पुनः शाखाः मोटयन्ति।
ततोऽपि महाद्रुमाः शकुनानामपराधितं न कुर्वन्ति ॥३॥

भावार्थः- उपद्रूयमाणेनाऽपि धैर्यं न हातव्यमिति फलवद्-वृक्ष-दृष्टान्तेनोपदिशति। **शिरसि**-शीर्षे, **आरूढाः** खगाः **फलानि खादन्ति**-भक्षयन्ति, **पुनस्ते शाखाः मोटयन्ति**-त्रोटयन्ति, **ततोऽपि**—तथापि **महाद्रुमाः** महांश्चासौ द्रुमः महाद्रुमः, ते महान्तो द्रुमाः, **शकुनानाम्**-पक्षिणां कृतेऽपराधितम्-अपराधम्-अनिष्टं वा **नैव कुर्वन्ति**। यथा वृक्षाः सर्वेषामुपकारका भवन्ति, तथैव सर्वैर्भाव्यमिति भावः।

सिरसि। शिरस्+ङि। २६० सू० शकारस्य स्थाने सकारे, ११ सू० सकारस्य लोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य इकारे **सिरि** इति भवति। **आरूढाः**। आङ्-पूर्वकः रुह्-धातुः आरोहणे। आ-रुह्+क्त। ८७७ सू० आरुह् इत्यस्य स्थाने चड इत्यादेशे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे, जस्प्रत्यये, १७७ सू० तकारलोपे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१५ सू० जसो लोपे **चडिआ** इति भवति। **खादन्ति**। खादृ-[खाद्]-धातुः भोजने। खाद्+अन्ति। ८९९ सू० दकारलोपे, ६३१ सू० अन्ति इत्यस्य न्ति इत्यादेशे, ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे **खन्ति** इति भवति। **फलानि**। फल+शस्। बाहुल्येन २७० सू० फकारस्य द्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वफकारस्य पकारे, १०२४ सू० शसः स्थाने इं इत्यादेशे **फलइं** इति भवति। **पुनः**—पुणु, प्रक्रिया १०१४ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **शाखाः**। शाखा+शस्। अपभ्रंशे शाखाऽर्थे १०९३ सू० डालशब्दः प्रयुज्यते, प्रस्तुत-सूत्रेण डालशब्दस्य क्लीबत्वे, १०२४ सू० शसः स्थाने इं इत्यादेशे **डालइं** इति भवति। **मोटयन्ति**। मोट्-धातुः मोटने-त्रोटने। मोट्+णिग्+अन्ति। ९१० सू० अकारस्याऽऽगमे, १९५ सू० टकारस्य डकारे, ६३८ सू० णिग अकारे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **मोडन्ति** इति भवति। **ततः**—तो, प्रक्रिया १००७ सूत्रे ज्ञेया। **अपि**—वि, प्रक्रिया ४८९ सूत्रे ज्ञेया। **महाद्रुमाः**। महाद्रुम+जस्। ८४ सू० संयोगे परे ह्रस्वे, १०६१ सू० रेफलोपे, ३६० सू० दकारस्य द्वित्वे, १०१५ सू० जसो लोपे **महद्दुम** इति भवति। ११ सूत्रस्य वृत्तिमनुसृत्य दकारस्याऽऽदिभूतत्वाद् यत्र ३६० सूत्रेण दकारद्वित्वं न जातं तत्र **महदुम** इति भवति। **शकुनानाम्**। शकुन+आम्। २६० सू० शकारस्य सकारे, १७७ सू० ककारलोपे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १००१ सू० अकारस्य आकारे, १०१० सू० आमः स्थाने हं इत्यादेशे **सउणाहं** इति भवति। **अपराधितम्**। अपराधित+अम्। २३१ सू० पकारस्य वकारे, १८७ सू० धकारस्य हकारे, १७७ सू० तकारलोपे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **अवराहिउ** इति भवति। **न**। अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते। **कुर्वन्ति**। डुकृञ्-[कृ]-धातुः करणे। कृ+अन्ति। ९०५ सू० ऋकारस्य अर इत्यादेशे, ६३१ सू० अन्तेः स्थाने न्ति इत्यादेशे **करन्ति** इति भवति। **अत्र डालइं इत्यत्र स्त्रीलिङ्गस्य**। अत्र श्लोके पठितः शाखा-शब्दः स्त्रीलिङ्गी वर्तते परन्तु प्रस्तुतसूत्रेणाऽसौ नपुंसकलिङ्गी विहितः। तेन **डालइं** इत्यत्र १०२४ सूत्रेण जसः स्थाने इं इत्यादेशो जातः।

★ अथ लिङ्गसम्बन्धी प्रकरण ★

लिङ्ग शब्द की अर्थविचारणा प्रस्तुत प्राकृत-व्याकरण के प्रथम खण्ड के ४२ वें पृष्ठ पर की जा चुकी है। अपभ्रंश भाषा में लिङ्गसम्बन्धी जो विधि-विधान पाया जाता है। अब सूत्रकार उस का निर्देश करने लगे हैं—

१११६ अपभ्रंश-भाषा में लिङ्ग प्रायः अतन्त्र [व्यभिचारी] अर्थात् अनियत होता है। संस्कृत भाषा में जैसे रामः यह शब्द है। इस शब्द का नियतरूप से पुल्लिङ्ग में प्रयोग होता है। रमा शब्द का स्त्रीलिङ्ग में और जलम् शब्द का नियतरूप से नपुंसकलिङ्ग में प्रयोग किया जाता है, वैसे अपभ्रंश-भाषा में राम आदि सभी शब्द प्रायः अनियतलिङ्ग वाले होते हैं, इन का कोई निश्चित लिङ्ग नहीं होता है। इस तरह अपभ्रंश-भाषा-गत शब्दों का प्रायः सभी लिङ्गों में प्रयोग हो जाता है। जैसे—**गजानां कुम्भान् दारयन्तम्**=गयकुम्भइं दारन्तु [हाथियों के कुम्भों-मस्तकों को विदीर्ण करते हुए को] यहां पर पठित **पुल्लिङ्गी कुम्भ** शब्द का **नपुंसकलिङ्ग** में प्रयोग किया गया है।

अभ्राणि लग्नानि पर्वतेषु पथिकः रटन् याति।
य एष गिरिगिलन-मनाः स किं धन्यायाः घृणायते ? ।।१।।

अर्थात्—पर्वतों के साथ लगे हुए बादलों को देखकर कोई पथिक आक्रन्दन करता हुआ जा रहा है, और यह कह रहा है कि जब ये बादल पर्वतों को ही निगल जाना चाहते हैं तो ये मेरी नायिका पर क्या अनुकम्पा करेंगे ? यहां पर पठित **नपुंसकलिङ्गी-अभ्रम्** इस शब्द का **पुल्लिङ्ग** में प्रयोग किया गया है।

पादे विलग्नमन्त्रं, शिरः स्रस्तं स्कन्धस्य।
ततोऽपि कटारिकायां हस्तः, बलिः क्रिये कान्तस्य ।।२।।

अर्थात्—आँतें पांव पर आ लगी हैं, और सिर कन्धे से लुढ़क गया है, तथापि इस का हाथ कटारी [तलवार] पर है, ऐसे कान्त के मैं बलिहार जाती हूं। यहां पर पठित **अन्त्रम्**=**अन्त्रडी** [आँत] इस **नपुंसलिङ्गी** शब्द का **स्त्रीलिङ्ग** में प्रयोग किया गया है।

शिरसि आरूढाः खादन्ति फलानि पुनः शाखाः मोटयन्ति।
ततोऽपि महाद्रुमाः शकुनानामपराधितं न कुर्वन्ति।।३।।

अर्थात्—पक्षी सिर [शिखर] पर चढ़ कर फलों को खा रहे हैं, और शाखाओं को तोड़-मरोड़ रहे हैं। तथापि महान वृक्ष इन पक्षियों को दण्ड नहीं देते हैं। परोपकारी होने से वृक्ष उद्दण्ड पक्षियों का भी बुरा नहीं करते। यहां पर पठित **शाखाः**=डालइं [टहनियों का] यह **स्त्री-लिङ्गी शब्द नपुंसक लिङ्ग में प्रयुक्त** किया गया है।

★ अथ शौरसेनी-भाषा-सम्बन्धि-विधिः ★

१११७—शौरसेनीवत् ।८।४।४४६। अपभ्रंशे प्रायः शौरसेनीवत् कार्यं भवति।

सीसि सेहरु खणु विणिम्मविदु, खणु कण्ठि पालंबु किदु रदिए।
विहिदु खणु मुण्ड-मालिए जं पणएण, तं नमहु कुसुम-दाम-कोदण्डु कामहो ।।१।।

★ अथ शौरसेनी-भाषा-सम्बन्धि-विधिः ★

शौरसेनी-भाषायाः नियमाः ९३१ सूत्रादारभ्य ९५६ सूत्रपर्यन्तं पूर्वं भणिताः सन्ति। तेषां शौरसेनीभाषा-नियमानामपभ्रंशभाषायामपि प्रवृत्तिर्जायते। अपभ्रंशभाषायां शौरसेनी-भाषातुल्यमपि कार्यं भवतीति भावः। प्रस्तुते प्रकरणे इयमेव शौरसेनी-भाषायाः तुल्यता निरूप्यते वृत्तिकारेण। यथा—

१११७—शौरसेनीवत्। अपभ्रंशभाषायां प्रायः शौरसेनी-भाषा-तुल्यं कार्यं जायते, शौरसेनी-

भाषाया ये नियमाः सन्ति, तेषां प्रवृत्तिरपभ्रंश-भाषायामपि जायते। यथा—

शीर्षे शेखरः क्षणं विनिर्मापितम्, क्षणं कण्ठे प्रालम्बं कृतं रत्या।
विहितं क्षणं मुण्डमालिकायां यत्प्रणयेन, तन्नमत कुसुम-दाम-कोदण्डं कामस्य ॥१॥

भावार्थः—कामदेवप्रभावं विनिर्दिशति। **कामस्य**-कामदेवस्य, **तत् कुसुम-दाम-कोदण्डम्**, कुसुमानां-पुष्पाणां दाम-माला तदेव कोदण्डः-धनुः यस्य तं **नमत** नमस्कारं कुरुत। **कीदृशं तद् धनुः?** भगवत्या **रत्या**-कामदेवपत्न्या **क्षणं**-क्षणं यावत् **शीर्षे**-शिरसि, **शेखरः**-शिरोभूषणं **विनिर्मापितम्**-विहितम्। **पुनः किम्भूतं तद् धनुः?** **रत्या कण्ठे क्षणं यावत् प्रालम्बं**-कण्ठाभरणं **कृतम्**-ग्रीवा-हारतया स्थापितम्। **पुनः किम्भूतम् तद् धनुः? यत्क्षणं प्रणयेन**-स्नेहेन *निजकण्ठगभिवर्त्यां **मुण्ड-मालिकायाम्**-माला एव मालिका, मुण्डानां-नरमुण्डानां मालिका, तस्यां **विहितं**-संयोजितम्।

शीर्षे। शीर्ष+ङि। २६० सू० शकारस्य षकारस्य च सकारे, ३५० सू० रेफलोपे, १००५ सू० ङिना सह अकारस्य स्थाने इकारे **सीसि** इति भवति। अत्र ३६३ सू० द्वितीय-सकारस्य द्वित्वं न जातम्। **शेखरः**। शेखर+सि। २६० सू० शकारस्य सकारे, १८७ सू० खकारस्य हकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **सेहरु** इति भवति। **क्षणम्**। क्षण+अम्। २७४ सू० क्षस्य खकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **खणु** इति भवति। **विनिर्मापितम्**। वि-निर्-पूर्वकः माधातुः विनिर्माणे। विनिर्मा+णिग्+क्त-त। २२८ सू० नकारस्य णकारे, ३५० सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० मकारद्वित्वे, ६३९ सू० णिगः स्थाने अवि इत्यादेशे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, सि-प्रत्यये, प्रस्तुतसूत्रस्य—"**प्रायः शेषेऽपि शौरसेनीवत् कार्यं भवति**" इति कथनेन ९३१ सू० तकारस्य दकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **विणिम्मविदु** इति भवति। **कण्ठे**=कण्ठि, प्रक्रिया १०९१ सूत्रस्य तृतीयश्लोके ज्ञेया। **प्रालम्बम्**। प्रालम्ब+सि। १०६९ सू० रेफस्य लोपे, २३ सूत्रे "**बच्चि-दिह् अनन्त्यस्याऽपि**" इति कथनेन मकारस्याऽनुस्वारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **पालंबु** इति भवति। **कृतम्**। कृत+सि। १२८ सू० ऋकारस्य इकारे, प्रस्तुतसूत्रस्य बलेन ९३१ सू० तकारस्य दकारे, १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे **किदु** इति भवति। **रत्या**। रति+टा। प्रस्तुतसूत्रस्य बलेन ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ५१८ सू० टाप्रत्ययस्य एकारे **रदिए** इति भवति। **विहितम्**। विहित+सि। किदु-वदेव **विहिदु** इति साध्यम्। **मुण्ड-मालिकायाम्**। मुण्ड-मालिका+ङि। १७७ सू० ककारलोपे, १० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १००१ सू० लकारस्थस्य आकारस्य इकारे, ५१८ सू० ङिप्रत्ययस्य एकारे **मुण्डमालिए** इति भवति। **यत्**=जं, प्रक्रिया १०९१ सूत्रस्य द्वितीयश्लोके ज्ञेया। **प्रणयेन**। प्रणय+टा। १०६९ सू० रेफस्य लोपे, १७७ सू० यकारलोपे, १०१३ सू० टाप्रत्ययस्य णकारे, स्थानिवद्भावात् १००४ सू० अकारस्य एकारे **पणएण** इति भवति। **तत्**=तं, प्रक्रिया १०२१ सूत्रस्य प्रथमश्लोके ज्ञेया। **नमत**। णम-[नम्]-धातुः नमने। नम्+त। ९१० सू० अकारागमे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १०५५ सू० त इत्यस्य हु इत्यादेशे **नमहु** इति भवति। **कुसुम-दाम-कोदण्डम्**। कुसुम-दाम-कोदण्ड+अम्। १००२ सू० अकारस्य उकारे, १०१५ सू० अमो लोपे **कुसुम-दाम-कोदण्डु** इति भवति। **कामस्य**। काम+ङस्। १००९ सू० ङसः स्थाने हो इत्यादेशे **कामहो** इति भवति। **विनिर्मापितम्**=विणिम्मविदु, **कृतम्**=किदु, **रत्या**=रदिए, **विहितम्**=विहिदु इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रबलेन शौरसेनी-भाषा-वत्त्वात् ९३१ सूत्रेण तकारस्य दकारो जातः।

*मुण्डमालिका कालिकया देव्येव धार्यते, इति पौराणिकी-प्रक्रिया।

★ अथ शौरसेनी-भाषा के समान विधि ★

शौरसेनी भाषा के विधि-विधान का वर्णन पीछे ९३१ वें सूत्र से ले कर ९५६ वें सूत्र तक किया जा चुका है। अपभ्रंश-भाषा में भी शौरसेनी भाषा के विधिविधान का आश्रयण किया जाता है। इसी तथ्य को प्रस्तुत प्रकरण में सूत्रकार बतलाने लगे हैं—

१११७—अपभ्रंश-भाषा में प्रायः शौरसेनी-भाषा के समान कार्य होता है। जैसे—

शीर्षे शेखरः क्षणं विनिर्मापितम्, क्षणं कण्ठे प्रालम्बं कृतं रत्या।
विहितं क्षणं मुण्डमालिकायां यत् प्रणयेन, तन्नमत कुसुम-दाम-कोदण्डं कामस्य ॥१॥

अर्थात्—कामदेव के उस पुष्प-माला-रूप धनुष को प्रेम के साथ नमस्कार करो, जिसे रति [कामदेव की पत्नी] ने एक क्षण में तो सिर का आभूषण बना लिया है, और क्षण भर में उसे अपना प्रालम्ब हार [वह हार जो कुचों तक लम्बा हो] बना डाला है और क्षणभर में मुण्डमालिका [खोपड़ियों की माला] के ऊपर रख दिया है। यहां अपभ्रंशभाषा में १—**विनिर्मापितम्**=विणिम्मविदु [बना दिया है], २—**कृतम्**=किदु [किया], ३—**रत्या**=रदिए [रति ने], ४—**विहितम्**=विहिदु [किया] इन पदों में शौरसेनी भाषा के ९३१ वें सूत्र से तकार को दकार किया गया है।

★ अथ व्यत्यय-विधिः ★

१११८—व्यत्ययश्च । ८ । ४ । ४४७ । प्राकृतादि-भाषा-लक्षणानां व्यत्ययश्च भवति। यथा मागध्यां तिष्ठश्चिष्ठः [४,२९८] इत्युक्तं तथा प्राकृत-पैशाची-शौरसेनीष्वपि भवति। चिष्ठदि। अपभ्रंशे रेफस्याधो वा लुगुक्तो मागध्यामपि भवति। शद-माणुश-मंश-भालके कुम्भ-शहश्र-वशाहे शंचिदे इत्याद्यन्यदपि द्रष्टव्यम्। न केवलं भाषा-लक्षणानां त्याद्यादेशानामपि व्यत्ययो भवति। ये वर्तमाने काले प्रसिद्धास्ते भूतेऽपि भवन्ति। अह पेच्छइ रहु-तणओ। अथ प्रेक्षाञ्चक्रे इत्यर्थः। आभासइ रयणीअरे। आबभाषे रजनीचरानित्यर्थः। भूते प्रसिद्धा वर्तमानेऽपि। सोहीअ एस वण्ठो। शृणोत्येष वण्ठ इत्यर्थः।

★ अथ व्यत्यय-विधिः ★

व्यत्यय-शब्दः परिवर्तनार्थको विद्यते। प्राकृत-शौरसेनी-प्रभृति-भाषा-नियमानामपभ्रंश-भाषायां व्यत्ययो जायते। अयं भावो यत् प्राकृतादि-भाषाणां नियमा अपभ्रंश-भाषायामपि आद्रियन्ते। प्रस्तुत-प्रकरणेऽयमेव व्यत्ययो निरूप्यते। यथा—

१११८—प्राकृतादि-भाषा-लक्षणानाम्। प्राकृत-शौरसेनी-प्रभृतिभाषासु यानि लक्षणानि-नियमाः सन्ति, तेषां व्यत्ययः-परिवर्तनं जायते। प्राकृतभाषानियमाः शौरसेन्यादिभाषासु समाश्रिता भवन्ति, शौरसेन्यादिभाषा-नियमाश्च प्राकृतभाषायां प्रयुज्यन्ते। यथा—**मागधी**-भाषायां ९६९ सूत्रेण स्थाधातु-निष्पन्नस्य **तिष्ठ** इत्यस्य पदस्य **चिष्ठ** इत्यादेशो जायते, तथैव **प्राकृत-पैशाची-शौरसेनी**-भाषास्वपि संजायते। यथा-**तिष्ठति**। ष्ठा-[स्था]-धातुः गतिनिवृत्तौ। स्था+तिप्। संस्कृतनियमेन तिष्ठ+तिप् इति जाते, १११८ सू० भाषाव्यत्यये जाते, ९६९ सू० तिष्ठ इत्यस्य चिष्ठ इत्यादेशे, ६२८ सू० तिप इचादेशे, ९४५ सू० इचः स्थाने दि इत्यादेशे **चिष्ठदि** इति भवति। **चिष्ठदि** इत्यत्र प्रस्तुतसूत्रबलेन ९६९ इत्यस्य

मागधीभाषा-नियामकस्य सूत्रस्य मागधीभिन्नभाषायां प्रवृत्तिर्जाता। **अपभ्रंशे रेफस्याऽधो वा।** अपभ्रंशभाषायां १०६९ सू० अधोवर्तिनः-पश्चाद्वर्तिनः रेफस्य लोपो विधीयते, स च मागध्यामपि भवति। यथा—**शतमानुष-मांस-भारकः। कुम्भसहस्र-वसाया: सञ्चितः।** शतानि मानुषाः, शतमानुषाः, तेषां मांसानि,शतमानुषमांसानि,तेषां भारकः-भारवाहकः, सः। कुम्भानाम्-घटानां सहस्राणि,तेषु वसा [चरबी इति भाषायाम्] कुम्भसहस्रवसा, तस्याः-तया अत्र तृतीयाऽर्थे षष्ठी वर्तते, संचितः-पूर्णः। **शत-मानुष-मांसभारकः।** शतमानुष-मांस-भारक+सि। २६० सू० शकारस्य षकारस्य च सकारे,९५९ सू० उभयत्राऽपि सकारस्य शकारे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे,२२८ सू० नकारस्य णकारे,७० सू० मांस-स्थस्याऽऽकारस्य अकारे, ९५९ सू० मांसस्थस्य सकारस्य शकारे,९५९ सू० रेफस्य लकारे,९५८ सू० अकारस्य एकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **शद-माणुश-मंश-भालके** इति भवति। **कुम्भसहस्र-वसाया:।** कुम्भ-सहस्र-वसा+ङसि। ९५९ सू० सर्वत्रैव सकारस्य शकारे,वैकल्पिकत्वात् १०६९ सू० रेफस्य लोपाऽभावे, १०२१ सू० ङसेः स्थाने हे इत्यादेशे **कुम्भ-शहश्र-वशाहे** इति भवति। प्रस्तुतसूत्रबलेन **शहश्र** इत्यत्र मागधी-भाषा-शब्दे अपभ्रंश-भाषा-नियामकस्य १०६९ सूत्रस्य प्रवृत्तिर्जाता। **संचितः।** संचित+सि। ९५९ सू० सकारस्य शकारे, ९३१ सू० तकारस्य दकारे, ९५८ सू० अकारस्य एकारे, १।१।३७। सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारलोपे **शंचिदे** इति भवति। **इत्याद्यन्यदपि द्रष्टव्यम्।** इत्यादीनि अन्यान्यपि शब्दानि द्रष्टव्यानि, मागध्यां संभवितुमर्हन्ति। **न केवलं भाषा-लक्षणानाम्।** भाषाणाम्-प्राकृतादि-भाषाणां लक्षणानि-नियमाः, भाषालक्षणानि, तेषामेव केवलं व्यत्ययो न भवति, प्रत्युत त्याद्यादेशानामपि व्यत्ययो भवति। ति आदिर्येषां ते त्यादयः, तेषामादेशानां त्याद्यादेशानाम्। प्राकृतादिभाषासु ये त्याद्यादेशाः वर्तमानकाले प्रसिद्धाः, ते भूतकालेऽपि भवन्ति। यथा—**अथ प्रेक्षांचक्रे रघुतनयः।** **अथ।** अव्ययपदमिदम्। १८७ सू० थकारस्य स्थाने हकारे **अह** इति भवति। **प्रेक्षांचक्रे।** प्रपूर्वकः ईक्ष्-धातुः प्रेक्षणे। प्रेक्ष्+णव्। १०६९ सू० रेफलोपे, ९१० सू० धातोरन्तेऽकारागमे, २७४ सू० क्षस्य छकारे, ३६० सू० छकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वछकारस्य चकारे, प्रस्तुतसूत्रेण त्याद्यादेश-व्यत्ययो जातः, अतएवाऽत्र भूतेऽर्थे वर्तमानकालिके तिव्-प्रत्यये कृते, ६२८ सू० तिवः स्थाने इचादेशे **पेच्छइ** इति भवति। **रघुतनयः।** रघोः तनयः रघुतनयः। रघुतनय+सि। १८७ सू० घकारस्य हकारे, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १७७सू० यकारलोपे, ४९१ सू० सेर्डोः, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **रहुतणओ** इति भवति। **आभाषे।** आङ्-पूर्वकः भाष्-धातुः आभाषणे। आभाष्+णव्। ९१० सू० अकारागमे, २६० सू० षकारस्य सकारे, [**आबभाषे** इत्ययं प्रयोगः भूतकालिको वर्तते, किन्तु प्रस्तुतसूत्रेण भूतकालिकस्य प्रत्ययस्य स्थाने वर्तमानिकालिके तिव्-प्रत्यये जाते] ६२८ सू० तिव इचादेशे **आभासइ** इति भवति। **रजनीचरान्।** रजनीं चरन्तीति, तान्। रजनीचर+शस्। १७७ सू० जकारलोपे, १८० सू० अकारश्रुती, २२८ सू० नकारस्य णकारे, १७७ सू० चकारलोपे, ४९३ सू० जसो लोपे, स्थानिवत्त्वात् ५०३ सू० अकारस्य एकारे **रयणी-अरे** इति भवति। **भूते प्रसिद्धो वर्तमानेऽपि।** भूतकाले प्रसिद्धाः-इष्टाः ये प्रत्ययाः भवन्ति ते वर्तमानेऽपि सञ्जायन्ते। यथा—**शृणोति।** श्रु-धातुः श्रवणे। श्रु+तिव्। १०६९ सू० रेफलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९०८ सू० उकारस्य ओकारे, **शृणोति** इति वर्तमानकालिकः प्रयोगः,प्रस्तुतसूत्रस्य बलेन भूतकाले ये इष्टाः प्रत्ययास्ते वर्तमानकालेऽपि भवन्ति, अतएवाऽत्र वर्तमानकालिक-तिव्-प्रत्ययस्य स्थाने ६५१ सू० भूतकालिके हीअ इत्यादेशे **सोहीअ** इति भवति। **एषः।** एतद्+सि। ५७४ सू० सिना एह एतदः स्थाने एस इत्यादेशे **एस** इति भवति।

षण्ढः। षण्ढ+सि। १००३ सू० अकारस्य ओकारे, १०१५ सू० सेर्लोपे षण्ठो इति भवति। षण्ढः अविवाहितः पुरुषः भृत्यो वा भवति। शृणोति=सोहीअ इत्यस्मिन् वर्तमानकालिके प्रयोगे प्रस्तुतसूत्रस्य बलेन वर्तमानकालिक-तिव्-प्रत्ययस्य स्थाने ६५१ सूत्रेण भूतकालिकः हीअ इत्यादेशो जातः।

★ अथ व्यत्यय से सम्बन्धित विधि ★

व्यत्यय परिवर्तन का नाम है। प्राकृत और शौरसेनी आदि समस्त भाषाओं के नियम अपभ्रंश-भाषा में भी परिवर्तित किए जा सकते हैं। प्रस्तुत प्रकरण में इसी परिवर्तन [व्यत्यय] का निर्देश किया जा रहा है—

१११८—प्राकृत आदि भाषाओं के लक्षणों [नियमों] का व्यत्यय हो जाता है। अर्थात् एक भाषा के नियम दूसरी भाषा में भी लागू हो जाते हैं। जैसे—मागधीभाषा में ९६९ सूत्र से **स्थाधातु** से सम्बन्धित **तिष्ठ** के स्थान में **चिष्ठ** यह आदेश होता है,परन्तु यही आदेश **प्राकृत, पैशाची और शौरसेनी** भाषा में भी हो जाता है। जैसे—'**तिष्ठति**' इस पद का **चिष्ठदि** [वह ठहरता है] यह रूप **मागधी**-भाषागत होने पर भी **प्राकृत** आदि सभी भाषाओं में प्रयुक्त किया जा सकता है। **अपभ्रंश**-भाषा में **अधो-रेफ** [संयुक्त वर्ण में दूसरा रेफ] का १०६९ वें सूत्र द्वारा विकल्प से लोप किया जाता है, परन्तु यही नियम **मागधी** भाषा में भी ग्रहण हो जाता है। जैसे—

१ **शतमानुष-मांस-भारकः। कुम्भ-सहस्र-वसायाः सञ्चितः**=शद-माणुश-मंश-भाल-के। कुम्भ-शहस्र-वशाहे शंचिदे [सैंकड़ों मनुष्यों के मांस को उठाने वाला, हजारों घड़ों की चरबी से पूर्ण] यहां **कुम्भ-सहस्र-वसायाः**=कुम्भ-शहस्र-वशाहे [हजारों घड़ों में विद्यमान चरबी का] इस पद में पठित **शहस्र** इस शब्द में अपभ्रंश भाषा के १०६९ वें सूत्र द्वारा वैकल्पिक रेफ-लोप नहीं हो सका। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझ लेने चाहियें।

इस के अतिरिक्त, यह भी समझ लेना चाहिए कि केवल **प्राकृत, शौरसेनी** आदि भाषा के नियमों का तथा ति आदि प्रत्ययों के स्थान में होने वाले इचादि आदेशों का ही व्यत्यय [परिवर्तन] नहीं होता,प्रत्युत जो प्रत्यय वर्तमान काल में प्रसिद्ध हैं। अर्थात् वर्तमान काल में होते हैं,वे भूतकाल में भी हो जाते हैं। जैसे—१—**अथ प्रेक्षांचक्रे रघुतनयः**=अह पेच्छइ रहु-तणओ [इस के अनन्तर रघु के तनय-लड़के ने देखा], २—**आबभाषे रजनीचरान्**=आभासइ रयणीअरे [राक्षसों को कहा] यहां पर पठित १—**प्रेक्षांचक्रे** तथा २—**आबभाषे** ये भूतकालीन क्रिया-पद प्रसिद्ध हैं किन्तु व्यत्यय-विधायक प्रस्तुत सूत्र ने भूतकाल में वर्तमानकालिक प्रत्यय करके **प्रेक्षांचक्रे** का **पेच्छइ** [उस ने देखा] तथा **आबभाषे** का **आभासइ** [उस ने कहा] यह रूप बना दिया है। यहां प्रत्यय वर्तमानकालिक है, किन्तु अर्थ भूतकालीन किया जाता है। कहीं पर प्रत्यय भूतकाल का रहता है परन्तु अर्थ वर्तमान काल का किया जाता है। जैसे—**शृणोत्येष षण्ढः**=सोहीअ एस वण्ठो [यह षण्ढ [अविवाहित पुरुष, नौकर] सुनता है] यहां भूतकालिक प्रत्यय होने पर भी अर्थ वर्तमानकालिक है।

★ अथ संस्कृत-भाषा-सम्बन्ध-विधिः ★

१११९—शेषं संस्कृतवत् सिद्धम्। ८। ४। ४४८। शेषं यदत्र प्राकृत-भाषासु अष्टमे नोक्तं तत्सप्ताऽध्यायी-निबद्ध-संस्कृत-वदेव सिद्धम्।

हेट्ठ-ट्ठिय-सूर-निवारणाय छत्तं अहो इव वहन्ती ।
जयइ ससेसा वराह-सास-दूरुक्खुया पुहवी ॥१॥

अत्र चतुर्थ्याः आदेशो नोक्तः । स च संस्कृतवदेव सिद्धः । उक्तमपि क्वचित् संस्कृत-वदेव भवति । यथा प्राकृते उरस्-शब्दस्य सप्तम्येक-वचनान्तस्य उरे, उरम्मि इति प्रयोगौ भवतस्तथा क्वचिदुरसि इत्यपि भवति । एवं सिरे, सिरम्मि, सिरसि । सरे, सरम्मि, सरसि । सिद्ध-ग्रहणं मङ्गलार्थम् । ततो ह्यायुष्मच्छ्रोतृकताऽभ्युदयश्चेति ।

इत्याचार्य-श्री-हेमचन्द्र-विरचितायां सिद्धहेम-चन्द्राभिधान-स्वोपज्ञ-शब्दानुशासन-वृत्ता-वष्टमस्याऽध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ।

समाप्ता चेयं सिद्ध-हेमचन्द्र-शब्दानुशासन-वृत्तिः प्रकाशिका नामेति ।

※ चतुर्थः पादः समाप्तः ※

★ अथ संस्कृत-भाषा-सम्बन्ध-विधिः ★

हैमशब्दानुशासनस्य व्याकरणस्य अष्टाध्यायाः सन्ति । आदिम-सप्ताऽध्यायेषु संस्कृत-भाषायाः विवेचनं विहितम्, अन्तिमेऽष्टमाऽध्याये च प्राकृत-शौरसेनी-प्रभृति-षड्-भाषाणां विधि-विधानं निरूपितमस्ति । संस्कृतभाषायाः नियमाः प्राकृतादिभाषास्वपि समाश्रिताः भवन्ति । अतएव प्रस्तुतप्रकरणे सूत्रकारेण संसूच्यते यत् प्राकृतादिभाषासु ये नियमाः न प्रतिपादिताः सन्ति ते सर्वे नियमाः सप्ताध्यायी-निबद्धस्य संस्कृतभाषा-व्याकरणस्य तुल्यमेव प्राकृतादि-भाषास्वपि संगृहीतव्याः भवन्ति । यथा—

१११९—शेषं संस्कृतवत् सिद्धम् । हैमशब्दानुशासनस्य अष्टमाऽध्याये वर्णितासु प्राकृत-शौरसेनी-मागधी-पैशाची-चूलिकापैशाची—अपभ्रंश-भाषासु यद् विधिविधानं नोक्तं तत्सर्वं सप्ताध्यायी-निबद्ध-संस्कृत-भाषा-वदेव ज्ञेयम् । सप्तानामध्यायानां समाहारः इति सप्ताध्यायी, तस्यां निबद्धम्-विनिर्मितं यत् सं-स्कृतम्-संस्कृतव्याकरणम्, तत् सप्ताध्यायी-निबद्धसंस्कृतम्, तेन तुल्यमिति सप्ताध्यायी-निबद्ध-संस्कृतव-दिति । संस्कृत-भाषाया ये नियमास्ते प्राकृतादिभाषास्वपि समाश्रियन्त इति भावः । यथा—

अधःस्थित-सूर-निवारणाय छत्रं अधः इव वहन्ती ।
जयति सशेषा वराह-श्वास-दूरोत्क्षिप्ता पृथिवी ॥१॥

भावार्थः—पौराणिक-मतानुसारेण यदा हिरण्य-राक्षसेन सर्वमेव ब्रह्माण्डजालं न्युब्जीकृतमा-सीत्तदा भगवता नारायणेन तत्समीकरणाय वराहस्याऽवतारो गृहीतः, तमेव वर्णयति—**अधःस्थित-सूर-निवारणाय ।** अयं भावः—पृथ्व्याः न्युब्जीकरणदशायां पातालस्थितानां प्राणिनामातपनिवारणाय भ-गवता नारायणेन पृथ्व्याः पूर्वावस्थासम्पादनं कृतमतएव पातालस्थितानां प्राणिनां कृते छत्रत्वमुप-पन्नं पृथ्व्याः, फलतः अधःस्थित-सूर-निवारणायेत्युक्तम् । **पृथिवी**-भूमिः, **किम्भूता पृथिवी ? अधःछत्रमिव वहन्ती**—अधःस्थितानां प्राणिनां कृते छत्रमिव जायमाना, पुनः **किम्भूता ? वराह-श्वास-दूरोत्क्षिप्ता,** वराहस्य-शूकरस्य श्वासः, तेन दूरोत्क्षिप्ता, दूरे उत्क्षिप्ता, इति दूरोत्क्षिप्ता, **पुनः किम्भूता पृथिवी ? सशेषा ।** शेषेण—शेषनागेन सह वर्तमाना, **जयति**—सर्वोत्कृष्टा दृश्यते, अग्रणीता वर्तते ।

अधःस्थित-सूर-निवारणाय । अधःस्थित-सूर-निवारण+ङे । ४१२ सू० अधस्शब्दस्य हेट्ठ इत्यादेशे, **स्थित**—इत्यत्र ष्ठा [स्था]+क्त-त इति जाते, ६८७ सू० स्थाधातोः स्थाने ठा इत्यादेशे, ३६० सू० ठकारद्वित्वे, ३६१ सू० पूर्वठकारस्य टकारे,१००० सू० आकारस्य अकारे, ६४५ सू० अकारस्य इकारे,१७७ सू० तकारलोपे,बाहुल्येन १८० सू० यकारश्रुतौ,संस्कृत-नियमेन ङे इत्यस्य प्रत्ययस्य यकारे, पूर्वदीर्घे च **हेट्ठ-ट्ठिय-सूरनिवारणाय** इति भवति । **छत्रम्** । छत्र+अम् । १०६९ सू० रेफस्य लोपे, ३६० सू० तकारद्वित्वे,४९४ सू० अमोऽकारलोपे, २३ सू० मकारानुस्वारे **छत्तं** इति भवति । **अधः** । अव्ययपदमिदम् । १८७ सू० धकारस्य हकारे, ३७ सू० विसर्गस्य डो इत्यादेशे, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये **अहो** इति भवति । **इव** । अव्ययपदमिदं संस्कृतवदेवाऽपभ्रंशे प्रयुज्यते । **वहन्ती** । वह प्रापणे । वह्+शतृ । ९१० सू० अकारागमे, ६७० सू० शतुः स्थाने न्त इत्यादेशे, स्त्रीत्वविवक्षायां ५२१ सू० ङी-(ई)-प्रत्यये,१० सू० स्वरस्य लोपे,अज्झीने परेण संयोज्ये, १०१५ सू० सेर्लोपे **वहन्ती** इति भवति । **जयति** । जि जये । जि+तिव् । संस्कृतनियमेन जय+तिव् इति जाते, ६२८ सू० तिवः स्थाने इत्यादेशे **जयइ** इति भवति । **सशेषा** । सशेषा+सि । २६० सू० शकारस्य षकारस्य च सकारे, १।१।२७ सू० सेरिकारलोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **ससेसा** इति भवति । **वराह-श्वास-दूरोत्क्षिप्ता** । वराह-श्वास-दूरोत्क्षिप्ता+सि । ३५० सू० संयुक्त-वकारलोपे, २६० सू० शकारस्य सकारे, ९२९ सू० उत्क्षिप्ता-शब्दस्य उवखुया इत्यस्य प्रयोगे वराह-सास-दूर+उवखुया+सि इति जाते,१० सू० स्वरस्य लोपे, अज्झीने परेण संयोज्ये, १।१।३७ सू० सेरिकारस्य लोपे, ११ सू० सकारस्य लोपे **वराह-सास-दूरुवखुया** इति भवति । **पृथिवी** । पृथिवी+सि । १३१ सू० ऋकारस्य उकारे, १८७ सू० थकारस्य हकारे, ८८ सू० आदेरिकारस्य अकारे, पूर्ववदेव सेर्लोपे **पुहवी** इति भवति । **अत्र चतुर्थ्याः आदेशो नोक्तः** । प्राकृतादिभाषासु चतुर्थीविभक्तेः स्थाने न कोऽप्यादेशो विहितः । स चाऽत्र संस्कृत-भाषातुल्य एव बोध्यः । यथा संस्कृते ङेप्रत्ययस्य स्थाने यकारः पूर्वदीर्घश्च भवति, तथैव प्राकृतादि-भाषास्वपि भवति । यथा—**हेट्ठ-ट्ठिय-सूर-निवारणाय** इत्यस्य प्राकृतादि-भाषा-शब्दस्य प्रस्तुतसूत्रबलेन संस्कृत-भाषावदेव ङेप्रत्ययस्य स्थाने यकारादेशः पूर्वदीर्घश्च जातः । **उक्तमपि-क्वचित्** । प्राकृतादि-भाषासु क्वचित्-कस्मिंश्चित् स्थाने उक्तम्-भणितमपि संस्कृतवदेव भवति । यस्य शब्दस्य विधिविधानं प्राकृत-भाषायां भणितमपि वर्तते तथापि कुत्रचित्तस्य शब्दस्य संस्कृतभाषानिष्पन्नमपि रूपं प्राकृत-भाषायां आद्रियते । यथा—प्राकृतभाषायाम् उरस्-शब्दस्य सप्तम्येक-वचनान्तस्य **उरे**, **उरम्मि** इति द्वे रूपे भवतः, संस्कृत-भाषायामस्य शब्दस्य सप्तम्येकवचनान्तस्य **उरसि** इति रूपं भवति । प्रस्तुतसूत्रस्य बलेन **उरसि** इति संस्कृत-भाषा-निष्पन्नमपि रूपं कस्मिंश्चित् स्थले प्राकृत-भाषायां संगृह्यते । **उरे**, **उरम्मि** इत्यनयोः साधना त्वित्थम्—**उरसि** । उरस्+ङि । ५०० सू० ङिप्रत्ययस्य स्थाने डे [ए],म्मि इत्यादेशौ भवतः, यत्र डे [ए] इत्यादेशो जातस्तत्र उरस्+ए इति जाते, डिति परेऽन्त्यस्वरादेर्लोपे **उरे**, म्मि इत्यादेशे तु उरस्+म्मि इति जाते,११ सू० सकारलोपे **उरम्मि** इति भवति । **एवम्** । एवमेव-अनयैव रीत्या **सिरसि** इत्यादीनि संस्कृतभाषानिष्पन्नानि रूपाण्यपि प्राकृतभाषायां कुत्रचित् संगृह्यन्ते । यथा—**शिरसि** । शिरस्+ङि । २६० सू० शकारस्य सकारे, ५०० सू० ङेः स्थाने डे [ए], म्मि इत्यादेशौ, पूर्ववदेव **सिरे**, **सिरम्मि** इति भवति । किन्तु संस्कृतभाषासिद्धं **सिरसि** इति रूपमपि प्राकृते क्वचिद् आद्रियते । **सरसि** । सरस्+ङि । पूर्ववदेव **सरे, सरम्मि** इति भवति । किन्तु प्रस्तुतसूत्रेण प्राकृते क्वचित् **सरसि** इति संस्कृतसिद्धरूपमपि गृह्यते । **सिद्धग्रहणं मङ्गलार्थम्** । १११९ सूत्रे "**शेषं संस्कृतवत्**" इति कथनेनाऽऽसी-

ऽकार्यसिद्धिः, तर्हि किमर्थं सिद्धपदस्य ग्रहणम् ? उत्तरयति वृत्तिकारो यदत्र सिद्धपदग्रहणं मङ्गलार्थं सम्बोध्यम् । मङ्गलम् अर्थः-प्रयोजनमस्य तद् मङ्गलार्थम् । मङ्गलशब्दस्यैतेऽर्थाः बोध्याः १—मङ्ग्यते—अधिगम्यते हितमनेनेति मङ्गलम् । २—मां गालयति भवात्, संसारादपनयतीति मङ्गलम्, ३—मङ्ग्यते अलंक्रियते आत्मा येनेति मङ्गलम्,४ मह्यन्ते—पूज्यन्तेऽनेनेति मङ्गलम्,५—मोदन्तेऽनेनेति मङ्गलम्,६—मङ्ग्यते—हितार्थं समर्थ्यतेऽनेन मङ्गलम् । सिद्धपदं माङ्गलिकमिति सारांशः । ततो ह्यायुष्मच्छ्रोतृकताऽभ्युदयश्च । सिद्ध-शब्दस्य मङ्गल-जनकत्वं भवतीति सर्वविदितं वर्तते,तेन मङ्गलेन कार्यद्वयं सिध्यति । यथा—श्रोतृणामध्येतृणाञ्चाध्ययनकर्तृत्वं चिरस्थायि भूयात्, तथा तेषामभ्युदयश्च भवेदिति । अभ्युदयः लौकिकी प्रतिष्ठा उन्नतिश्च । विग्रहस्त्वित्थम्-श्रोता एव श्रोतृकः, तस्य भावः श्रोतृकता, आयुरस्ति अस्यामिति आयुष्मती, आयुष्मती चासौ श्रोतृकता इति आयुष्मच्छ्रोतृकता ।

इत्याचार्य-श्री-हेमचन्द्रः । इति शब्दोऽत्र पूर्वसन्दर्भस्य संसूचकः । आचार्यश्चासौ श्री-हेमचन्द्रः आचार्य-श्री-हेमचन्द्रः, तेन विरचितायाम्-निर्मितायाम्, इत्याचार्य-श्री-हेमचन्द्र-विरचितायाम् । सिद्ध-हेमचन्द्रः अभिधानं-नाम यस्य तत् सिद्धहेमचन्द्राऽभिधानम् । स्वस्य उपज्ञा-स्वयं प्राप्तं ज्ञानं,यत्परम्परया नोपलब्धं तत् स्वोपज्ञं, स्वोपज्ञं च तत् शब्दानुशासनम् [व्याकरणम्] स्वोपज्ञ-शब्दानुशासनम् । सिद्ध-हेमचन्द्राऽभिधानं च तत् स्वोपज्ञ-शब्दानुशासनम्, सिद्ध-हेमचन्द्राऽभिधानस्वोपज्ञशब्दानुशासनम्, तस्य वृत्तौ-सूत्रार्थे, सिद्ध-हेमचन्द्राभिधानस्वोपज्ञ-शब्दानुशासनवृत्तौ अष्टमस्य अध्यायस्य [प्रस्तुतस्य प्राकृत-व्याकरणस्य] चतुर्थः पादः समाप्तः-समाप्तिं गतः ।

समाप्ता चेयम् । इयं प्रकाशिका नामधेया सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनस्य [हैमशब्दानुशासनस्य] वृत्तिः-टीका व्याख्या समाप्ता-समाप्तिं गता । यदा मूलग्रन्थे सिद्ध-हेमचन्द्र-शब्दानुशासन-वृत्तिः समाप्तिं गता तदाऽस्मदीया तद्-व्याख्याऽपि बालमनोरमाऽऽख्या संस्कृतव्याख्याऽपि समाप्तिमेति ।

अपभ्रंश-गिरायाः हि, टीका बालमनोरमा ।
आत्मगुरोः प्रसादेन, पूर्णा ज्ञानेन्दुनिर्मिता ॥१॥
*चतुर्थपादोऽयं विपुलतर-सज्ज्ञान-भरितः,
सहायो व्युत्पित्सोर्भवतु नितरां कण्ठकलितः ।
क्वचित् स्यात् तद्बोधे यदि कठिनता कस्यचिदपि,
तदेयं टीका स्याद् सु-सुहृदिव साहाय्यकरणी ॥२॥
इदं हैमं सद्-व्याकरणमभितः प्राकृतगिराम्,
समग्रं व्याख्यातुं पुनरपि तदर्थाऽवगतये ।

*विपुलतर-श्रेष्ठ-ज्ञानेन भरितः-पूरितोऽयं चतुर्थपादः व्युत्पित्सोः-व्युत्पत्तिमिच्छतो जनस्य नितरामतिशयेन कण्ठकलितः कण्ठ-स्मृतौ धारितः सन् सहायः-सहायको भवतु । यदि कुत्रचित् कस्मिंश्चित् स्थले तद्बोधे, व्याकरण-मूल-सूत्राणां ज्ञाने विज्ञजने कस्यचिदपि कठिनता भवेत्तदा इयं प्रस्तुता बालमनोरमा संस्कृत-टीका सु-सुहृत्-मित्रमिव इव साहाय्यकरणी-सहायताकारिणी भवेदिति तात्पर्यम् । शिखरिणी छन्दः ।

हैमम्-हेमचन्द्रसूरिभिर्निर्मितं सद्-श्रेष्ठमपभ्रंशादि प्राकृतव्याकरणेभ्यः, व्याकरणम्-शब्दानुशासनम् प्राकृतगिराम् अपभ्रंशादि प्राकृतभाषाणाम्, अभितः-सर्वतोभावेन व्याख्यातुं समग्रं प्रकटयितुं यावत् । पुनरपि ग्रन्थितोऽधिकं तदर्थाऽवगतये-व्याकरणसूत्राणामर्थ-विबोधाय प्रचलित-गिरायां संस्कृते हिन्दीभाषायाञ्च सुसरला-सरलतमा टीकाऽस्माभिरकारि तस्माद् हेतोरयं प्रयासो मया मुनिज्ञानेन्दुना कृतः । इति सूक्ष्मबुद्धयः सुधियो विचारयन्तु । अत्राऽपि शिखरिणी-छन्दः ।

अपेक्ष्या टीकाऽऽसीत् प्रचलित-गिरायां सुसरला,
प्रमत्तोऽयं तस्मात् कृत इति विभान्तु सुधियः ॥३॥

❋ चतुर्थः पादः संपूर्णः ❋

★ अथ संस्कृत-भाषा के समान होने वाली विधि ★

प्राकृत और शौरसेनी आदि षड्विध भाषाओं का विधि-विधान हैमशब्दानुशासन नामक व्याकरण के अष्टमाध्याय के १११८ सूत्रों में निरूपित किया गया है। प्राकृत आदि समस्त भाषाओं के कुछ एक नियम ऐसे भी हैं जो उक्त १११८ सूत्रों में वर्णित नहीं किए जा सके हैं। अतः उन नियमों को हैमशब्दानुशासन के सप्ताध्यायीरूप संस्कृत-व्याकरण से ग्रहण कर लेना चाहिए। प्रस्तुत प्रकरण में इसी बात का वर्णन किया जा रहा है।

१११९—इस अष्टम अध्याय में १—प्राकृत, २—शौरसेनी, ३—मागधी, ४—पैशाची, ५—चूलिकापैशाची और ६—अपभ्रंश इन ६ भाषाओं के जो नियम नहीं बताए गए हैं, वे सप्ताध्यायी में दिए गए संस्कृत-भाषा के नियमों के समान ही जानने चाहिएं। हैमशब्दानुशासन व्याकरण के आठ अध्याय हैं। पहले के सात अध्यायों में संस्कृत-भाषा के विधि-विधान का वर्णन किया गया है और आठवें अध्याय में प्राकृत आदि छह भाषाओं का निरूपण कर रखा है। सूत्रकार फरमाते हैं कि प्रस्तुत अष्टमाध्याय में प्राकृत आदि भाषाओं का जो विधिविधान नहीं कहा गया, वह सब पहले सात अध्यायों में वर्णित संस्कृत-भाषा की भांति ही सिद्ध है। अर्थात् उसी के समान समझ लेना चाहिए। जैसे—

अधःस्थित-सूर्य-निवारणाय, छत्रं अधः इव बध्नती।
जयति सशेषा वराह-श्वास-दूरोत्क्षिप्ता पृथिवी। १।

अर्थात्—वराह के श्वास द्वारा दूर तक ऊपर को उठाई गई तथा शेष नाग से युक्त पृथ्वी मानों अधःस्थित सूर्य के आतप का निवारण करने के लिये छत्र का रूप धारण कर रही है। ऐसी पृथ्वी की विजय हो। पौराणिक मान्यता है कि हिरण्याक्ष राक्षस ने समस्त ब्रह्माण्ड को उलटा दिया था। ब्रह्माण्ड को उलटा देने पर सूर्य देव भूतल के नीचे आ गए। अधःस्थित सूर्य के भयंकर परिताप को सहन न कर सकने के कारण पाताल-निवासी जनजीवन को सूर्यजन्य परिताप से सुरक्षित करने के लिये भगवान विष्णु ने वराह [सूअर] का अवतार धारण किया। तदनन्तर वराह रूप धारी भगवान ने अपने प्रबल उच्छ्वासों से ब्रह्माण्ड को सीधा किया। ब्रह्माण्ड के अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाने पर पृथ्वी ने पाताल-निवासियों को छत्र की भांति सूर्यजन्य परिताप से सुरक्षित कर दिया। यहां पर पठित अधः-स्थित-सूर-निवारणाय—हेट्ठ-ट्ठिय-सूर-निवारणाय [नीचे विद्यमान सूर्य को रोकने के लिए] इस पद के निवारणाय इस शब्द में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग किया गया है, परन्तु प्राकृत आदि भाषाओं में चतुर्थी विभक्ति के प्रत्यय के स्थान में किसी प्रकार के आदेश का विधान नहीं किया गया है। अतः सूत्रकार फरमाते हैं कि प्राकृत आदि भाषाओं में जिस नियम का विधान नहीं किया गया, वह विधान संस्कृत-भाषा के समान ही प्राकृतादि भाषा में ग्रहण कर लेना चाहिये। फलतः चतुर्थी-विभक्ति के ङे-प्रत्यय के स्थान में संस्कृत-व्याकरण से यकार का आदेश करके निवारणाय यह रूप बनता है। इस तरह संस्कृतभाषा के नियम का प्राकृत आदि भाषाओं में भी आश्रयण कर लिया जाता है।

इसके अतिरिक्त, प्राकृत आदि भाषाओं में जिस शब्द का विधिविधान बताया जा चुका है, उसी शब्द का संस्कृत-व्याकरण के आधार पर संस्कृत-भाषा में जो विधिविधान बतलाया गया है, कहीं-कहीं पर संस्कृत-भाषा के उस विधिविधान को भी प्राकृत-भाषा में ग्रहण कर लिया जाता है। जैसे—**उरस्** शब्द के सप्तमी के एक वचन में प्राकृत-भाषा में **उरे** और **उरम्मि** [छाती में] ये दो रूप बनते हैं, और संस्कृत भाषा में इस शब्द का **उरसि** यह रूप होता है। वृत्तिकार फरमाते हैं कि प्राकृत भाषा में भी कहीं-कहीं पर संस्कृत-भाषा-निष्पन्न '**उरसि**' इस रूप का आश्रयण कर लिया जाता है। इसी प्रकार **शिरस्** शब्द के सप्तमी के एक वचन में जहां **सिरे,सिरम्मि** इन रूपों के प्रयोग प्राकृत आदि भाषाओं में चलते हैं, वहां संस्कृत भाषा-निष्पन्न **सिरसि** [सिर में] इस रूप का भी प्राकृतादि भाषाओं में उपयोग होता है। शिरस् शब्द की भांति **सरस्** शब्द के—**सरे,सरम्मि** और **सरसि** [तालाब में] इन तीनों रूपों का भी प्राकृत आदि भाषाओं में उपयोग कर लिया जाता है। भाव यह है कि प्राकृत आदि भाषाओं में, प्राकृत आदि भाषाओं के नियमों से निष्पन्न शब्दों का तो प्रयोग होता ही है किन्तु कहीं-कहीं पर संस्कृत-भाषा-निष्पन्न शब्दों का भी प्रयोग हो जाता है।

प्रस्तुत सूत्र में पठित '**सिद्धम्**" यह शब्द मङ्गल-सूचक है। मंगल का अर्थ है—१—**जिस से हित की प्राप्ति हो,२—जो आत्मा को जन्म-मरण रूप संसार से अलग करता हो,३—जिस से आत्मा शोभायमान हो, ४—जिस से आनन्द तथा हर्ष की उपलब्धि होती हो, तथा ५—जिस के द्वारा आत्मा विश्वपूज्य, लोकवन्द्य** तथा **लोक-प्रिय बन जाता हो**। मंगल से अध्येता [विद्यार्थी] और अध्यापक [पढाने वाला] सब दीर्घायु होते हैं और अभ्युदय [उन्नति, वृद्धि] को प्राप्त करते हैं।

इस तरह आचार्य श्री हेमचन्द्र जी महाराज द्वारा अपनी उपज्ञा [स्वयं प्राप्त बोध] से विरचित **हैम-शब्दानुशासन** की '**सिद्ध-हेमचन्द्र**' नामक वृत्ति [व्याख्या] में अष्टमाध्याय का चतुर्थ पाद पूर्ण होता है। अर्थात् आचार्य हेमचन्द्र द्वारा रचित **हैमशब्दानुशासन** नामक व्याकरण के अष्टमाध्याय [प्राकृत-व्याकरण] की **प्रकाशिका** नाम वाली वृत्ति [व्याख्या] समाप्त होती है। मूल ग्रन्थ में प्राकृत-व्याकरण के **चतुर्थपाद** तथा उस की **प्रकाशिका** व्याख्या के समाप्त हो जाने पर इस पर लिखी हमारी **"आत्मगुण-प्रकाशिका"** हिन्दी-टीका भी समाप्त हो रही है।

मुनिवर आत्माराम हैं, गुरु मेरे भगवान।
धर्मदिवाकर संयमी, पावन ज्ञान-निधान ॥१॥

गुरुचरणों की हो कृपा, हिन्दी में मुनि ज्ञान।
तुर्य पाद का है हुआ, परिपूरण व्याख्यान ॥२॥

※ चतुर्थपाद का विवरण समाप्त ※

★ अथ ग्रन्थकृत्-प्रशस्तिः ★

आसीद्विशां पतिरमुद्रचतुःसमुद्र-
मुद्राङ्कित-क्षितिभर-क्षम-बाहुदण्डः।
श्रीमूलराज इति दुर्धर-वैरि-कुम्भि-
कण्ठीरवः शुचि-चुलुक्य-कुलावतंसः ॥१॥

तस्यान्वये समजनि प्रबल-प्रताप-
तिग्म-द्युतिः क्षिति-पतिर्जयसिंहदेवः ।
येन स्ववंश-सवितर्यपरं सुधांशौ,
श्रीसिद्धराज इतिनाम निजं व्यलेखि ॥२॥
सम्यग् निषेव्य चतुरश्चतुरोऽप्युपायान्,
जित्वोपभुज्य च भुवं चतुरब्धि-काञ्चीम् ।
विद्या-चतुष्टय-विनीत-मतिर्जितात्मा,
काष्ठामवाप पुरुषार्थ-चतुष्टये यः ॥३॥
तेनाऽति-विस्तृत-दुरागम-विप्रकीर्ण—
शब्दानुशासन - समूह - कदर्थितेन ।
अभ्यर्थितो निरवमं विधिवद् व्यधत्त,
शब्दानुशासनमिदं मुनि-हेमचन्द्रः ॥४॥
ग्रन्थाग्रं ११८५ श्लोकाः ।

*** प्राकृतव्याकरणं समाप्तम् ***

★ अथ ग्रन्थकृत्-प्रशस्तेः व्याख्या ★

ग्रन्थकृत्-प्रशस्तिः । ग्रन्थं-शास्त्रं करोतीति ग्रन्थकृत्, तेन कृता प्रशस्तिः-प्रशंसायां निर्मिता पद्यमयी रचना, विरुदावली इति ग्रन्थकृत्-प्रशस्तिः । **आसीद्विशाम्** । श्री-मूलराज इति नामधेय, विशाम्-वैश्यानां पतिः-स्वामी आसीत् । मूलराजं विशिनष्टि-अमुद्र-चतुः-समुद्र-मुद्राऽङ्कित-क्षिति-भर-क्षम-बाहुदण्डः । अविद्यमाना मुद्रा [मोहर इति भाषायाम्] येषां ते अमुद्राः-स्वामिरहिता इत्यर्थः । चत्वारश्च ते समुद्राः इति चतुःसमुद्राः, अमुद्राश्चाऽसौ चतुःसमुद्राः अमुद्रचतुःसमुद्राः, तेषु या मुद्रा तया अङ्किता-चिन्हीकृता या क्षितिः-पृथिवी इति अमुद्र-चतुःसमुद्र-मुद्राङ्कितक्षितिः, तस्याः यो भरः-भारः, संरक्षणादिक-दायित्वं तस्मिन् क्षमौ समर्थौ, अमुद्र-चतुःसमुद्र-मुद्राङ्कित-क्षितिभर-क्षमौ बाहुदण्डौ भुजदण्डौ यस्य सः । पुनः किम्भूतः ? **दुर्धर-वैरि-कुम्भि-कण्ठीरवः**, वैरिण एव कुम्भिनः-हस्तिनः, वैरिकुम्भिनः, दुर्धराश्च [दुःखेन वशीकर्तुं शक्याः] ते वैरि-कुम्भिनः दुर्धरवैरिकुम्भिनः, तेभ्यः कृते कण्ठीरवः-सिंहः इव दुर्धर-वैरि-कुम्भि-कण्ठीरवः । पुनः किम्भूतः **शुचि-चुलुक्य-कुलावतंसः**, चुलुक्यानां प्रधानं कुलं, चुलुक्य कुलं शुचि-पावनं तत् चुलुक्यकुलं, शुचि-चुलुक्य-कुलं तस्य अवतंसः-आभूषणमिव शुचि-चुलुक्य-कुलावतंसः ॥१॥

तस्य विशां वन्धुः श्री मूलराजस्याऽन्वये-वंशे **जयसिंहदेवः** क्षितिपतिः **समजनि**-अभूत् । किम्भूतः जयसिंहदेवः ?, **प्रबल-प्रताप-तिग्मद्युतिः**, प्रकृष्टं बलं प्रबलम्, प्रतापशब्दः पुल्लिङ्गः, प्रतापशब्दस्य विशेषणत्वात् प्रबलशब्दोऽपि पुल्लिङ्गः एव संगृह्यः, ततः प्रबलश्चासौ प्रतापः, प्रबलप्रतापः, तिग्माः-तीक्ष्णाः द्युतयः-किरणाः यस्य सः तिग्मद्युतिः । **पुनः किम्भूतः** जयसिंहदेवः ? येन जयसिंहदेवेन स्ववंश-सवितरि, स्वस्य वंशः स्ववंशः, स्ववंशस्य कृते यः सविता-दिवाकरः, स्ववंशसविता, तस्मिन् **अपरम्**-अथवा **सुधांशौ**, सुधा-अमृतमिव अंशवः-किरणाः यस्य सः सुधांशुः, तस्मिन्-चन्द्रविद्याकरतुल्ये स्ववंशे, **श्रीसिद्धराज इति नाम निजं**-स्वकीयं नाम **व्यलेखि** । पूर्वं तु श्री मूलराजस्य वंशजस्य नाम श्री जयसिंहदेव आसीत्

किन्त्वग्रे तस्य श्रीसिद्धराज इति नाम जगत्प्रसिद्धं जातमिति भावः ॥२॥

चतुरः-प्रतिभासम्पन्नः। **विद्या-चतुष्टय-विनीतमतिः**। चत्वारोऽवयवा यस्य तत् चतुष्टयं विद्यानां चतुष्टयं विद्या-चतुष्टयं, तेन विनीता-विनम्रा मतिर्यस्य सः विद्या-चतुष्टय-विनीत-मतिः। विद्यानां चतुष्टयन्तु बोध्यमित्थम् --१-- **आन्वीक्षिकी**,२—**त्रयी**, ३—**वार्त्ता**, ४—**दण्डनीतिः**। अनु-शास्त्रश्रवणानन्तरम् ईक्षा-परीक्षणम्, अन्वीक्षा, सा प्रयोजनमस्याः तत्र साधुः वा इति **आन्वीक्षिकी**---अध्यात्मविद्या, न्यायदर्शनं, तर्कशास्त्रं वा। त्रयोऽवयवाः यस्याः सा **त्रयी**,त्रयी पुनः ऋग्-यजुः-साम-वेदाः स्युः। **वार्त्ता**-प्रवृत्तिः,वृत्तान्तः, उदन्तः। वृत्तिः-लोकवृत्तमस्ति यस्यां सा **वार्त्ता**। अथवा-आजीविकासाधनोपायप्रधानं शास्त्रं **वार्त्ता**। दण्ड्यतेऽनेनेति दण्डः, दण्ड एव नीतिः दण्डनीतिः। यस्मिन् शास्त्रे नागरिकी शासनपद्धतिः, सैनिकशासनपद्धतिश्च वर्ण्यते तच्छास्त्रं **दण्डनीति**-नाम्ना बोध्यते। एताः चतस्रः विद्याः वर्तन्ते, एतासु श्रीसिद्धराजस्य निर्बाधगतिरासीत्। जित आत्मा येन स **जितात्मा**। यः **चतुरोऽपि उपायान्**। उपैति-कार्यं सिद्धिं प्राप्नोति एभिरिति **उपायाः**। **साम-दाम-भेद-दण्डाः** उपायाः। साम सान्त्वनम्। स्यति-विनश्यति वैरमनेनेति साम प्रियवचनादि। प्राभृतं, ढौकनमिति दाम, सुवर्णादिद्रव्य-प्रदानेन शत्रुजनस्य निजपक्षे करणमित्यर्थः। *उपजापः पुनर्भेदः। दण्डः-साहसम्। एतान् उपायान् **सम्यग् नियोज्य चतुरब्धि-काञ्चीम्** चत्वारः अब्धयः चतुरब्धयः, चतुरब्धय एव काञ्ची [तडागी इति भाषायाम्] यस्याः सा चतुरब्धिकाञ्ची, ताम्, **भुवं**-पृथ्वीं **जित्वा** उपभुज्य **पुरुषार्थचतुष्टये**, पुरुषार्थानाम्-धर्मार्थकाममोक्षरूपाणां चतुष्टयं पुरुषार्थ-चतुष्टयम्, तस्मिन् **काष्ठां**-परमसीमाम् **अवाप**-प्राप्तः इत्यर्थः ॥३॥

तेन श्रीसिद्धराजेन **निरवमं-विनम्रमभ्यर्थितः**-प्रार्थितः, **मुनिहेमचन्द्रः**, कलिकाल-सर्वज्ञ आचार्य-श्रीहेमचन्द्रः **इदं**, सन्निकृष्टे एव [**इदमस्तु सन्निकृष्टे, समीपतर-वर्ति चैतदो रूपम्। अदसस्तु विप्रकृष्टे, तदिति परोक्षे विजानीयात्**],प्रस्तुतमित्यर्थः। **शब्दानुशासनं**-शब्दानामनुशासनं-व्याकरणं शब्दानुशासनम्, **विधिवत्**-विधिसहितम्, **व्यधत्त**-कृतवान्। **किम्भूतेन श्रीसिद्धराजेन ? अतिविस्तृत-दुरागम-विप्रकीर्ण-शब्दानुशासन-समूह-कदर्थितेन**, अतिविस्तृतम्-अतिविशालं च तद् दुरागमम्-दुरधिगमम् [दुःखेन बोध्यम्], अतिविस्तृत-दुरागमम्,अतिविस्तृतं-दुरागमञ्च तत् विप्रकीर्णम्-यत्र तत्र प्रसृतम्, अति-विस्तृत-दुरागम-विप्रकीर्णम्, अतिविस्तृतविप्रकीर्णञ्च तत् शब्दानुशासनं-व्याकरणं, तेषां समूहः,तेन कदर्थितेन—दुःखितेन, अतिविस्तृत-दुरागम-विप्रकीर्ण-शब्दानुशासन-समूह-कदर्थितेनेति भावः ॥४॥

ग्रन्थाग्रं ११८५ श्लोकाः। ग्रन्थस्य-प्राकृतव्याकरणस्य अग्रम्-समूहः, परिमाणं वा ११८५ श्लोक-परिमितं भवति। निखिलस्य प्राकृतव्याकरणस्य १११९ सूत्रेषु यावान् पाठो वर्तते, तस्य पद्यरूपेण गणना इष्टा भवेच्चेत्तदा सा ११८५ श्लोक-परिमिता संभवितुं शक्नोतीति भावः। एकस्मिन् पुस्तके ग्रन्थाग्रं २१८५ इत्यपि समुल्लिखितं दृश्यते। किं सत्यम् ? इति तु तत्त्वविद्भिः चिन्तनीयम्। **समाप्तोऽयं ग्रन्थः**। प्राकृतव्याकरण-नामधेयोऽयं ग्रन्थः, समाप्तः-सम्पूर्णतां गतः। प्राकृतव्याकरणस्य समाप्तौ सत्यामस्मदीयाऽऽराध्यानां जैनधर्म-दिवाकराणाम्, **आचार्यसम्राट्-पूज्य-वर-श्रीमदात्मारामजीमहाराजानां** वन्दनीय-गुरु-चरणानामनुग्रहेण अस्मदीया बालमनोरमाऽऽख्या संस्कृत-व्याख्याऽपि समाप्तिं गच्छति।

रम्या-प्राकृत-भाषायाः, शब्दानुशासनस्य हि।
बालमनोरमा व्याख्या, पूर्णा ज्ञानेन्दु-निर्मिता ॥१॥

※ समाप्तं प्राकृत-व्याकरणम् ※

---

*उपजापस्तु-भाववरेण अपरपक्ष-कर्मचारिभेदकरणम्, कर्णेजपता, विद्वेषोत्पादनमित्यर्थः।

★ अथ ग्रन्थकार द्वारा की गई प्रशस्ति ★

ग्रन्थ के निर्माता को ग्रन्थ-कृत् कहते हैं। उसके द्वारा की गई प्रशस्ति को ग्रन्थकृत्-प्रशस्ति कहा जाता है। प्रशस्ति शब्द "विरुदावली, विस्तृत यशोगान, प्रशंसा, किसी की प्रशंसा में लिखी गई कविता, प्राचीन ग्रन्थ या पुस्तक का आदि और अन्त वाला वह अंश जिस से उस के रचयिता, काल, विषय आदि का ज्ञान होता है" आदि अर्थ होते हैं।

प्रश्न हो सकता है कि आचार्य श्री हेमचन्द्र जी को हेमशब्दानुशासन नामक व्याकरण के निर्माण करने की क्या आवश्यकता थी? इस को इन्होंने अपनी इच्छा से ही लिखा है या इसके लिखने में किसी अन्य व्यक्ति की प्रेरणा रही है? आदि बातों का बोध कराते हुए आचार्य श्री हेमचन्द्र ग्रन्थ-कृत्-प्रशस्ति में महाराजा जयसिंह देव "सिद्धराज" का प्रशंसा-प्रधान परिचय कराते हुए फरमाते हैं—

व्यापारियों के नायक, चार समुद्रों की भूमि के शासन-गत भार को उठाने में समर्थ भुजादण्ड वाले, दुर्धर [जिन्हें बड़ी कठिनता से वश में लाया जा सके] शत्रु रूपी हाथियों के लिये कण्ठीरव-सिंह के समान और परम पवित्र चुलुक्य वंश के भूषण श्री मूलराज नाम के भूपति थे ॥१॥

भूपति मूलराज के वंश में जयसिंह देव के एक राजा हुए हैं। ये सूर्य के समान तेजस्वी थे। इनका वंश सूर्य की भांति प्रकाशमान तथा चन्द्रमा की भांति सौम्य एवं शान्त था। ये सूर्य तथा चन्द्र तुल्य वंश में 'सिद्धराज' इस उपाधि से विभूषित हो रहे थे ॥२॥

नरेश सिद्धराज चतुर [प्रतिभा-सम्पन्न] व्यक्ति थे। १—आन्वीक्षिकी [तर्कशास्त्र, अध्यात्म-विद्या], २—त्रयी [जिस विद्या के १—ऋग्वेद, २—यजुर्वेद और ३—सामवेद ये तीन अवयव हों], ३—वार्ता [जिस विद्या में कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और कुसीद के धंधे का वर्णन हो अथवा जिस में आजीविका के उपायों का वर्णन हो] और ४—दण्डनीति [जिस विद्या में न्यायविधान, नागरिक और सैनिक शासनपद्धति, राजनीति और शासन-व्यवस्था का पर्याप्त वर्णन हो] इन चार विद्याओं के ज्ञान-भण्डार थे, तथापि वे विनीत मति वाले थे। १—साम [शान्तिकरण, राजाओं के लिए शत्रु को वश में करने का साधन-विशेष], २—दान [घूस, भेंट जिस से शत्रु को अपने में मिलाया जाता है], ३—भेद [जिस के द्वारा शत्रु और उस के मित्रों में परस्पर झगड़ा उत्पन्न कर दिया जाता है] और ४—दण्ड [सजा, जुर्माना, आक्रमण, कारागृह-वास, शारीरिक दण्ड] इन चार उपायों का अच्छी तरह सेवन करके इन्होंने चार समुद्र ही जिस की काञ्ची [तड़ागी] हो, ऐसी भूमि पर विजय प्राप्त की और उस का सानन्द उपभोग किया। अन्त में, ये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की साधना में चरम सीमा प्राप्त करके जितात्मा [जितेन्द्रिय] बन गए ॥३॥

अति विस्तृत, दुरागम [दुर्बोध] और विप्रकीर्ण [बिखरे हुए, अस्तव्यस्त] शब्दानुशासनों [व्याकरण ग्रन्थों, शास्त्रों] के समूह से कदर्थित [खेदखिन्न] श्री सिद्धराज जयसिंह देव ने विस्तार-रहित, सुबोध और सुव्यवस्थित नूतन व्याकरण की रचना के लिए मुनि हेमचन्द्र [कलिकालसर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्र] से विनयपूर्वक प्रार्थना की। श्री सिद्धराज की इस प्रार्थना के कारण ही आचार्य श्री हेमचन्द्र ने इस शब्दानुशासन [व्याकरण] की विधिपूर्वक [अच्छी प्रणाली के साथ] रचना सम्पन्न की।

ग्रन्थाग्र शब्द का अर्थ है—ग्रन्थ का परिमाण। हेमशब्दानुशासन में जो कुछ भी लिखा गया है, इसकी यदि पद्य रचना करने लगें तो इसका परिमाण लगभग ११८५ श्लोक बन सकते हैं। भाव

यह है कि हैमशब्दानुशासन का परिमाण ११८५ श्लोक जितना समझना चाहिए। एक पुस्तक में ग्रन्थाग्र २१८५ भी लिखा है। अर्थात् किसी विद्वान के मत में प्राकृत-व्याकरण का श्लोक-परिमाण २१८५ भी स्वीकार किया गया है। वस्तुस्थिति क्या है? यह व्याकरण शास्त्र के मनीषी विद्वानों को स्वयं विचार करना चाहिए।

※ प्राकृत-व्याकरण समाप्त ※

★ हमारा अपना निवेदन ★

आचार्य श्री हेमचन्द्र को "हैम-शब्दानुशासन" की रचना क्यों करनी पड़ी? इस प्रश्न का समाधान उन्होंने ग्रन्थ-कृत्-प्रशस्ति में कर दिया है। इस हैमशब्दानुशासन व्याकरण पर "आत्म-गुण-प्रकाशिका हिन्दी-टीका" लिखने का क्या उद्देश्य रहा है? यह प्रकट कर देना भी अनावश्यक नहीं है। अतः दोहों की भाषा में "हमारा अपना निवेदन" द्वारा हम यह अंकित करने लगे हैं -

महावीर भगवान के, हुए सपूत अनेक। अमरसिंह मुनिराज जी, उन में से थे एक ॥१॥
दया-सदन आचार्य थे, क्षमा तपी गुणवान। मङ्गलमय आदर्श थे, संयम शिव निधान ॥२॥
मूलपुरुष[1] पंजाब के, शासन के शृंगार। अनुपम इनका तेज था, महिमा अपरम्पार ॥३॥
शासन इनका आज भी, हरा भरा गुलजार। गौरव है पंजाब का, माने यह संसार ॥४॥
अन्तेवासी[2] पाँचवें, इनके एक श्रीमान। ज्ञानी ध्यानी संयमी, क्षमा दया की खान ॥५॥
विद्या के भण्डार थे, जीवन एक उद्यान। गुणसौरभ से था हुआ, सुरभित सकल जहान ॥६॥
सुखदायक शुभ नाम था, मुनिवर मोती राम। तप, संयम, वैराग्य के, मानों थे [3]आराम ॥७॥
पूज्यपाद आचार्य थे, नय्या के पतवार। बड़े प्रतापी सन्त थे, तेजस्वी अविकार ॥८॥
गणपतिराय शिष्य थे, इनके परम उदार। शान्त, दान्त थी जीवनी, जाते सब बलिहार ॥९॥
धुनधुन के थे धनी, पावन शुद्ध विचार। रंग त्याग का था चढ़ा, पाया जीवन-सार ॥१०॥
जयरामदास जी हुए, इनके शिष्य महान। "बाबा जी" के नाम से, जाने इन्हें जहान ॥११॥
बड़े निराले सन्त थे, जरा नहीं अभिमान। सहनशील मन स्वच्छ था, कोमल दया-निधान ॥१२॥
अन्तेवासी थे गुणी, इनके शालिग्राम। सेवाभावी ज्योतिषी, हर्षित आठों याम ॥१३॥
विनय-धर्म के पारखी, ऊंचा था आचार। मोक्ष-साधना लक्ष्य था, जीते सभी विकार ॥१४॥
शिष्य आपके थे बड़े, गुरुवर [4]आत्मा राम। दिनकर थे जिनधर्म के, भाग्यवान गुणधाम ॥१५॥
स्रष्टा थे साहित्य के, क्या धर्म अवतार। इनके आत्म ज्ञान पर, जन-गण-मन बलिहार ॥१६॥
श्रमणसंघ के नाथ थे, थे आचार्य प्रधान। रत्नाकर थे ज्ञान के, क्षमावीर बलवान ॥१७॥
चमत्कारमय जीवनी, जीत लिया था [5]काम। कल्पवृक्ष, युगपुरुष थे, जीवन था अभिराम ॥१८॥

---

१. पंजाब की स्थानकवासी परम्परा में आज जो साधु-साध्वी-वर्ग उपलब्ध हो रहा है, इस के आदिगुरु पूज्य श्री अमर सिंह जी महाराज थे, अतएव ये पंजाब के मूलपुरुष कहे गए हैं।

२. पूज्य श्री अमर सिंह जी महाराज के पांचवें शिष्य पूज्य श्री मोती राम जी महाराज थे।

३. उपवन।

४. जैनधर्म-दिवाकर, साहित्यरत्न, जैनागम-रत्नाकर, श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के आचार्य-सम्राट् गुरुदेव पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज।

५. कामदेव।

मेरे ये गुरुदेव हैं, इन का ही आधार । मेरी जीवन-नाव के, बने यही पतवार ॥१९॥
आज्ञा इन की थी हुई, मुझ को यह इक बार । प्राकृत भाषा को पढ़ो, इसका करो प्रचार ॥२०॥
आज्ञा पा गुरुदेव की, चरणों का कर ध्यान । प्राप्त किया फिर यत्न से, प्राकृत-भाषा ज्ञान ॥२१॥
हेमचन्द्र गुरुभ्रात हैं, ज्येष्ठ बड़े विद्वान । प्राकृत, संस्कृत आदि का, इन को ज्ञान महान ॥२२॥
पण्डित मेधावान हैं, करते विद्यादान । नम्र, सरल, गंभीर हैं, मिलनसार गुणवान ॥२३॥
ज्ञान बड़ा गम्भीर है, करते पूरी शोध । मैं भी इन से हूं पढ़ा, पाया है कुछ बोध ॥२४॥
शब्दशास्त्र सब कठिन हैं, कहते ये विद्वान । प्रतिभा-शाली छात्र भी, हो जाते हैरान ॥२५॥
प्राकृत-भाषा-व्याकरण, यह भी कठिन महान । बिना सामग्री हो भला, कैसे इसका ज्ञान ॥२६॥
मन में यह संकल्प था, इस का हो अनुवाद । बिना कष्ट के हो सके, छात्रों को यह याद ॥२७॥
वर्ष सहस्र दो, पांच[२००५]था, विक्रम का सुखकार । लुधियाना में कर रहे, गुरुवर थे उपकार ॥२८॥
गुरु-चरणों में बैठ के, ले इन का आधार । व्याख्या फिर आरम्भ की, दिल में हर्ष अपार ॥२९॥
एक वर्ष के मध्य में, हुआ ग्रन्थ तैयार । शोधन फिर होता रहा, जैसे मिले विचार ॥३०॥
टीकाएं हैं दो लिखीं, किया बहुत विस्तार । संस्कृत-टीका है बड़ी, हिन्दी में है सार ॥३१॥
मूलसूत्र के भाव का, हिन्दी से हो ज्ञान । शब्द-साधना इष्ट हो, संस्कृत से लो जान ॥३२॥
टीका में जो है लिखा, और किया अनुवाद । वन्दनीय गुरुदेव का, है यह सकल प्रसाद ॥३३॥
मुद्रण इसका शीघ्र हो, सबका था अरमान । किन्तु हुई ना कामना, पूर्ण हुआ [1]व्यवधान ॥३४॥
दुष्कर्मों ने आन के, पाया ऐसा जाल । स्वर्ग-पुरी गुरु चल दिए, काल बड़ा विकराल ॥३५॥
गुरुवियोग के दुःख से, हुआ पूर्ण व्यवधान । अतः ग्रन्थ न छप सका, समय बड़ा बलवान ॥३६॥
बीस वर्ष अब हो गए, किया प्रयत्न महान । तब [2]अम्बाला में किया, पूरण [3]अनुसन्धान ॥३७॥
यही विनति है अन्त में, करो दोषपरिहार । हंस-तुल्य मानस करो, प्राकृत-भाषा-प्यार ॥३८॥
कार्य बड़ा यह कठिन था, समझो न आसान । कृपा हुई गुरुदेव की, सफल हुआ मुनिज्ञान ॥३९॥

॥ आत्मगुरवे नमः ॥

★ गुर्वावली-विषये[4] किञ्चिदैतिह्यम् ★

सौधर्मोऽयम्[5] ऋषिलवजितः स्वच्छतां प्राप्य गच्छः, प्राज्ञाऽवध्या प्रचलिततरामुत्तरे भारतेऽस्मिन् ।
तस्याऽऽचार्यो गुरुरमरसिंहः स पञ्जाबसिंहः, गच्छाऽध्यक्षस्तदनु च मुनी रामबक्षा बभूव ॥१॥

---

१. बाधा, विघ्न ।
२. अम्बाला शहर (हरियाणा प्रान्त) ।
३. आयोजन ।
४. गुर्वावली-विषये । गुरूणाम्-अज्ञानतिमिर-परिहन्तॄणां महापुरुषाणाम्, आवली-परम्परा, तद्विषये किञ्चिद् ऐतिह्यम्-पौराणिकवृत्तान्त इत्यर्थः ।
५. अयं सौधर्मो गच्छः पूर्वं कालिकमलिनतां गतोऽपि लवजीऋषितः स्वच्छतां प्राप्य वा प्रज्ञावधिः-प्रज्ञावधि यावत्, प्रचलिततरामतिशयेन प्रचलतीत्यर्थः । अस्मिन्नुत्तरे भारते पञ्जाब-दिल्ली-हरियाणादिप्रान्तेषु, तस्यैव गच्छस्याऽऽचार्यः पञ्जाबसिंहः-पञ्जाबकेसरी इत्यभिधानः अमरसिंहेति नाम्ना गुरुरासीत् । तदनु च तेषाम्-अनन्तरं च गच्छाऽधिपतिः रामबक्षनामधेयो मुनिः समभवत् । मुनी इत्यत्र दीर्घः, ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ६।३।१११। इति सिद्धान्तकौमुदी-सूत्रेण ॥१॥

मोतीरामो[1] गुण-गण-युतः शासनेऽथाऽऽरोह, सर्वं संघं खलु नियमयन् संयमाऽऽराधनायाम् ।
तस्यैवाऽऽसीच्च गणपतिराय-नामधेयो विनेयः, शान्तो दान्तो विविध-विषयेष्वाप्त-प्रज्ञा-प्रचारः ॥२॥
बाबोपाह्वः[2] तदनु जयरामेति नाम्ना तदीयः, शिष्यो भिक्षुः सुमधुर-मना इक्षुतुल्यस्तितिक्षुः ।
शालिग्रामस्तदनुचरकः सद्-गुण-ग्रामधारी, सोऽभूज्ज्योतिर्विदिति कथया प्रोद्गतं यत्र तत्र ॥३॥
अन्तेवासी[3] यमिह सुजनाः संस्तुवन्ते च तस्य, आत्मारामोऽति-लघुवयसि त्यक्तकामो निकामम् ।
अध्येताऽऽसीत् श्रुत-गतगिरां शुद्धचेता मनस्वी, सोपाध्यायो महति शुशुभे शुभ्र-स्वाध्याय-सौधे ॥४॥
शास्त्राऽब्धिमब्ध[4] परान् गाहयन् गाढवान् सः, टीकाः शोधाऽनुसरण-सरणीतः सुबोधाः व्यधत्त ।
सत्कार्येऽस्मिन्नथ कलितवान् भारतीं भारतीयाम्, देशे देशे प्रथितसुयशाः तेन रूपेण चाऽभूत् ॥५॥
जङ्घा[5] जङ्घाबल-विरहितः साधु-संघाग्रयायी, आचार्यत्वं स्वयमपि यो यद्गतं स्मार्य-शोभम् ।
पुण्यारामो विकसित-तरः शश्वदुद्दाम-धामा, स्वर्यातोऽपि सुरभिरभितः स्तूयमानो जनौघैः ॥६॥
तस्यैवाऽहं[6] सुकृतवशतः शिष्य-संज्ञामवापं, नाम्नाऽवैति स्वजन-निवहो ज्ञानचन्द्रेति यं माम् ।
तेन श्रित्वा मुनिमथ गुरु-भ्रातरं हेमचन्द्रम्, टीकाऽकारि प्रमद-मनसा पूर्णतां प्रापिता च ॥७॥

❀ आत्मगुरवे नमः ❀

---

१. अथ-अनन्तरे गुणगणयुतो मोतीरामो मुनिप्रवरः शासने आचार्यपदव्यामारूढवान् । स च सर्वं संघं संयमाऽऽराधनायां नियमयन्-वर्तयन्नासीत् । तेषां च विनेयः-शिष्यः, गणपतिदास (गणपतिराय) इति नामधेयः शान्तो दान्तो विविधशास्त्राधिविषयेषु आप्तप्रज्ञाप्रचारः-गृहीतबुद्धिगतिकः प्राप्तमतिप्रसारो वाऽऽसीत् ॥२॥

२. तदनु-तदनन्तरं तदीयः गणपतिरायमुनेः शिष्यः सुमधुरमनाः साम्ये चेक्षुतुल्यो भिक्षुः कर्मभेदनशीलः, तितिक्षुश्च सहनशीलः क्षमावांस्तपस्वी बाबा इति उपाह्वा संज्ञा यस्य, बाबा श्री महाराज इत्युपनामधारी चाऽऽसीत् । तदनुचरकस्तेषां गुरूणामन्तेवासी, सद्गुणानां ग्रामं धारयन् शालिग्रामनामा बभूव । स ज्योतिर्विद् अभूद् इति कथया-वार्तया यत्र तत्र देशे देशे प्रोद्गतम्-प्रसृतमिति भावः ॥३॥

३. तस्य शालिग्रामगुरोरन्तेवासी, यमिह भारते सुजनाः संस्तुवन्ति, स आत्माराम-नाम्ना प्रथामलभत । स चाऽति-लघुवयसि-शिशवस्थायामेव निकामम्-अत्यन्तं त्यक्तकामो-नाशिताशेषवासनः, श्रुतगत-गिराम् आगमवाण्या अध्ययनशीलः, शुद्धचेताः-मनस्वी, मनोबलसम्पन्नः, स उपाध्याय-पदवीं बिभ्रद् महति स्वाध्यायरूपे सौधे महाभवने शुशुभे-शोभां कलितवान् ॥४॥

४. स उपाध्यायप्रवरः शास्त्रसागरं स्वयं गाढवान्, अवगाहयामास, परांश्चावगाहयन्नासीत् । शोधानुसरण-सरणीतः research अनुरूपशैल्या सुबोधाः टीकाः व्यधत्त-अकार्षीत्, अस्मिँश्च सत्कार्ये टीकासम्पादनरूपे भारतीयां भारतीं हिन्दीभाषां कलितवान्-स्वीचकार, तेन रूपेण आगमटीकाकार-रूपेण देशे देशे-भारतेऽन्यत्राऽपि च प्रथितं सुयशो यस्य स प्रथितसुयशा अभूत् ॥५॥

५. स मुनिप्रवरः जंघाबल-विरहितः, क्षीण-गमन-शक्तिर्जातोऽजायत, तथाऽपि साधुसंघस्य अग्रे यातुं शीलं यस्य ईदृश आसीत्, यानरूपाऽत्र न चरणाभ्यामपितु श्रुतचारित्राभ्यामिति ज्ञेयम् । यद्गतं-यत् सविधे समागतम्, आचार्यत्वं स्वयमपि यो-शोभां वितेने, स्मार्यशोभम्, अधुनाऽपि स्मार्या शोभा यस्य स आत्माराम ईदृक् पुण्यारामः शुभोद्यानमासीद्, योऽतिशयेन विकसितः, शश्वन्निरन्तरम्, उद्दामधामा:-अखण्डप्रभावः, सुरभिश्च शोभनगन्धेन युतः, यत् स्वर्गं गतोऽपि जनौघैः स्तूयमानोऽधुना स्तुतिविषयोऽस्ति ॥६॥

६. सुकृतवशतः-पुण्योदयेनाऽहं तस्यैवाऽऽचार्यप्रवरस्य शिष्यसंज्ञामवापम्- प्राप्तवान्, यं मां स्वजन-निवहः-परिचितजनसमूहो ज्ञानचन्द्र (ज्ञानमुनि) इति नाम्ना अवैति-जानाति, तेन-मया गुरुभ्रातरं हेमचन्द्रं मुनिं पण्डितप्रवरं सहकृतं श्रित्वा-चरणसेवां विधाय इयं टीकाऽकारि-कृता । प्रमदमनसा-प्रसन्नचेतसा च पूर्णतां-समाप्तिं प्रापिता ॥७॥

प्राकृतधातूनामनुक्रमणिका

धातुपाठः

*प्राकृतधातुः	सूत्रांकः
अइच्छ (गम्)	४/१६२
अई (गम्)	४/१६२
अक्कुस (गम्)	४/१६२
अक्खोड (कृष्)	४/१८८
अक्ख (दृश्)	४/१८१
अग्घ (राज्)	४/१००
अङ्गुम (पूर्)	४/१६९
अग्घव (")	" "
अग्घाड (")	" "
अच्छ (आस्)	४/२१५
अञ्च (कृष्)	४/१८७
अड्ड (कष्)	४/११९
अड्ड (भट्)	४/२३०
अड्डक्ख (क्षिप्)	४/१४३
अणच्छ (कृष्)	४/१८७
अणुवज्ज (गम्)	४/१६२
अण्ह (भुज्)	४/११०
अप्पाह (सं दिश्)	४/१८०
अब्भिड (सं गम्)	४/१६४
अब्भुत्त (प्र दीप्)	४/१५२
अब्भुत्त (स्ना)	४/१४
अयञ्छ (कृष्)	४/१८७
अल्लत्थ (उत् क्षिप्)	४/१४४
अल्लिअ (उप सृप्)	४/१३९
अल्लिव (अर्पि)	४/३९
अल्ली (आङ् लीङ्)	४/५४
अवअक्ख (दृश्)	४/१८१
अवअच्छ (ह्लाद्)	४/१२२
अवआस (दृश्)	४/१८१
अवक्ख (")	" "
अवज्जस (गम्)	४/१६२
अवयच्छ (दृश्)	४/१८१
अवयज्झ (दृश्)	४/१८१
अवयास (श्लिष्)	४/१९०
अवसेह (गम्)	४/१६२
अवसेह (नश्)	४/१७८
अवह (रच्)	४/९४
अवहर (गम्)	४/१६२
अवहर (नश्)	४/१७८
अवहाव (कृप्)	४/१५१
अवहेड (मुच्)	४/९१
अवुक्क (वि ज्ञप्)	४/३८
अहिऊल (दह्)	४/२०८
अहिपच्चुअ (आङ् गम्)	४/१६३
अहिपच्चुअ (ग्रह्)	४/२०९
अहिरेम (पूर्)	४/१६९
अहिलङ्घ (काङ्क्ष्)	४/१९२
अहिलङ्ख (")	" "
आअड्ड (व्या पृ)	४/८१
आइग्घ (आङ् घ्रा)	४/१३
आइञ्छ (कृष्)	४/१८७
आउड्ड (मस्ज्)	४/१०१
आचक्क (आङ् चक्ष्)	४/२२७
आढप्प (" रभ्)	४/२५४
आयज्झ (वेप्)	४/१४७
आयम्ब (")	" "
आरोअ (उद् लस्)	४/२०२
आरोल (पुञ्ज्)	४/१०२
आलिह (स्पृश्)	४/१८२
आलुङ्ख (स्पृश्)	४/१८२
आलुङ्ख (दह्)	४/२०८
आवुक्क (वि ज्ञप्)	४/३८
आसङ्घ (सं भावि)	४/३५
आह (काङ्क्ष्)	४/१९२
आहोड (तड्)	४/२७
इच्छ (इष्)	४/२१५
उक्कुस (गम्)	४/१६२
उक्खुड (तुड्)	४/११६
उग्ग (उद् घट्)	४/३३
उग्गाह (रच्)	४/९४
उग्घुस (मृज्)	४/१०५
उङ्घ (नि, द्रा)	४/१२
उत्थङ्घ (उद् नम्)	४/३६
उत्थङ्घ (" क्षिप्)	४/१४४
उत्थङ्घ (रुध्)	४/१३३
उत्थार (आङ् क्रम्)	४/१६०
उत्थल्ल (उत् शल्)	४/१७४
उद्दाल (आङ् छिद्)	४/१२५
उद्धुमा (पूर्)	४/१६९
उप्फाल (कथ्)	४/२
उप्पेल (उद् नम्)	४/३६
उब्भाव (रम्)	४/१६८
उब्भुत्त (उद् क्षिप्)	४/१४४
उम्मच्छ (वञ्च्)	४/९३
उम्मत्थ (अभ्याङ् गम्)	४/१६५
उल्लाल (उद् नम्)	४/३६
उल्लुक्क (तुड्)	४/११६
उल्लुण्ड (वि रिच्)	४/२६
उल्लूर (तुड्)	४/११६
उवहत्थ (समा रच्)	४/९५

*यह धातुपाठ भावनगर से प्रकाशित प्राकृत-व्याकरण [अष्टमाध्यायसूत्रपाठ] से साभार उद्धृत किया गया है।

उव्विव (उद् विज्) ४/२२७
उव्वेढ (,, वेष्ट) ४/२२३
उव्वेल्ल (,, ,,) ४/२२३
उव्वेल्ल (प्र सृ) ४/७७
उस्सिक्क (उद् क्षिप्) ४/१४४
उस्सिक्क (मुच्) ९१
ऊसल (उद् लस्) ४/२०२
ऊसुम्भ (,, ,,) ४/२०२
ओअक्ख (दृश्) ४/१८१
ओअग्ग (वि आप्) ४/१४१
ओअन्द (आङ् छिद्) ४/१२५
ओग्गाल (रोमन्थ) ४/४३
ओम्बाल (छद्) ४/२१
ओम्बाल (प्लावि) ४/४१
ओरस (अव तृ) ४/८५
ओरुम्मा (उद् वा) ४/११
ओलुण्ड (वि रिच्) ४/२६
ओसुक्क (तिज्) ४/१०४
ओह (अव तृ) ४/८५
ओहाम (तुल्) ४/२५
ओहाव (आङ् क्रम्) ४/१६०
ओहीर (नि द्रा) ४/१२
कड्ढ (कृष्) ४/१८७
कह (कथ्) ४/२२०
कत्थ (कथ्) ४/२४९
कमवस (स्वप्) ४/१४६
कम्म (क्षु) ४/७२
कम्म (भुज्) ४/११०
कम्मव (उप भुज्) ४/१११
करञ्ज (भञ्ज्) ४/१०६
का (कृ) ४/२१४
किण (क्री) ४/५२
किलिकिञ्च (रम्) ४/१६८
कीर (कृ) ४/२५०
कुक्कुर (उद् ष्ठा) ४/१७
कुज्झ (क्रुध्) ४/२१७
कुण (कृ) ४/६५
कुप्प (कुप्) ४/२३०
केलाय (समा रच्) ४/९५
कोआस (वि कस्) ४/१९५
कोक्क (व्या हृ) ४/७६
कोट्टुम (रम्) ४/१६८
खउर (क्षुभ्) ४/१५४
खड्ड (मृद्) ४/१२६
खम्म (खञ्ज्) ४/२४४
खा (सं स्त्यै) ४/१५
खा (खाद्) ४/२२८
खिज्ज (खिद्) ४/२२४
खिर (क्षर्) ४/१७३
खुट्ट (तुड्) ४/११६
खुड (,,) ,, ,,
खुप्प (मस्ज्) ४/१०१
खेड्ड (रम्) ४/१६८
गच्छ (गम्) ४/२१५
गच्छं (गम्) ३/१७१
गढ (घट्) ४/११२
गण्ठ (ग्रन्थ्) ४/१२०
गम्म (गम्) ४/२४९
गमेस (गवेष्) ४/१८९
गल (सं घट्) ४/११३
गलत्थ (क्षिप्) ४/१४३
गा (गै) ४/६
गिज्झ (गृध्) ४/२१७
गुञ्ज (हस्) ४/१९६
गुञ्जोल्ल (उत् लस्) ४/२०२
गुण्ठ (उद् धूल्) ४/२९
गुम (भ्रम्) ४/१६१
गुम्म (मुह्) ४/२०७
गुम्मड (,,) ,, ,,
गुलल (क्रु) ४/७३
गुलगुञ्छ (उत् क्षिप्) ४/१४४
गुलुगुञ्छ (उद् नम्) ४/३६
गुण्ह (ग्रह्) ४/३९४
गेण्ह (,,) ४/२०९
घत्त (क्षिप्) ४/१४३
घत्त (गवेष्) ४/१८९
घिस (ग्रस्) ४/२०४
घुम्म (घूर्ण्) ४/११७
घुल (,,) ,, ,,
घुसल (मन्थ्) ४/१२१
घेप्प (ग्रह्) ४/२५६
घोट्ट (पिब्) ४/१०
घोल (घूर्ण्) ४/११७
चक्कम्म (भ्रम्) ४/१६१
चच्चुप्प (अर्पि) ४/३९
चच्छ (तक्ष्) ४/१९४
चड (आङ् रुह्) ४/२०६
चड्ड (मृद्) ४/१२६
चड्ड (पिष्) ४/१८५
चड्ड (भुज्) ४/११०
चमढ (,,) ,, ,,
चय (शक्) ४/८६
चल्ल (चल्) ४/२३१
चव (कथ्) ४/२
चिञ्च (मण्डय्) ४/११५
चिञ्चअ (,,) ,, ,,
चिञ्चिल्ल(,,) ,, ,,
चिट्ठ (स्था) ४/१६
चिण (चि) ४/२४१
चिम्म (चि) ४/२४३
चिव्व (चि) ४/२४२
चुक्क (भ्रंश्) ४/१७७
चुलुचुल (स्पन्द्) ४/१२७
चोप्पड (म्रक्ष्) ४/१९१
छज्ज (राज्) ४/१००
छड्ड (मुच्) ४/९१

छिन्द (छिद्) ४/२१६
छिप्प (स्पृश्) ४/२५७
छिव (,,) ४/१८२
छिह (स्पृश्) ४/१८२
छुन्द (आङ्० क्रम्) ४/१६०
छुप्प (छुप्) ४/२४९
छुह (क्षिप्) ४/१४३
छेच्छं (छिद्) ३/१७१
जअड (त्वर्) ४/१७०
जग्ग (जागृ) ४/८०
जच्छ (यम्) ४/२१५
जम्प (कथ्) ४/२
जम्भा (अव० जृम्भ्) ४/१५७
जम्म (जन्) ४/१३६
जव (यापि) ४/४०
जा (जन्) ४/१३६
जाण (ज्ञा) ४/७
जिण (जि) ४/२४१
जिम (भुज्) ४/११०
जिम्म (,,) ४/२३०
जिव्व (जि) ४/२४२
जीर (जृ) ४/२५०
जीह (लज्ज्) ४/१०३
जुञ्ज (युज्) ४/१०९
जुज्झ (युध्) ४/२१७
जुज्ज (युज्) ४/१०९
जुप्प (युज्) ४/१०९
जूर (खिद्) ४/१३२
जूर (क्रुध्) ४/१३५
जूरव (वञ्च्) ४/९३
जेम (भुज्) ४/११०
झड (शद्) ४/१३०
झम्प (भ्रम्) ४/१६१
झर (स्मृ) ४/७४
झर (क्षर्) ४/१७३
झङ्ख (सं तप्) ४/१४०
झङ्ख (वि० लप्) ४/१४८
झङ्ख (उपा० लम्भ) ४/१५६
झङ्ख (निः श्वस) ४/२०१
झण्ट (भ्रम्) ४/१६१
झा (ध्यै) ४/६
झुण (जुगुप्स्) ४/४
झूर (स्मृ) ४/७४
टिरिटिल्ल (भ्रम्) ४/१६१
टिविडिक्क (मण्ड्) ४/११५
ठ (उद्० स्था) ४/१७
ठा (स्था) ४/१६
डज्झ (दह्) ४/२४६
डर (त्रस्) ४/१९८
डल्ल (पिब्) ४/१०
डिम्भ (स्रंस्) ४/१९७
ढक्क (छद्) ४/२१
ढण्ढल्ल (भ्रम्) ४/१६१
ढण्ढोल (गवेष्) ४/१८९
ढव (रम्) ४/१५५
ढंस (वि० वृत्) ४/११८
ढिक्क (गर्ज्) ४/९९
ढुण्ढुल्ल (गवेष्) ४/१८९
ढुण्ढुल्ल (भ्रम्) ४/१६१
ढुम (भ्रम्) ,, ,,
ढुस (,,) ,, ,,
णज्ज (ज्ञा) ४/२५२
णड (गुप्) ४/१५०
णव्व (ज्ञा) ४/२५२
णिआर (कृ) ४/६६
णिउड्ड (मज्ज्) ४/१०१
णिच्चल (क्षर्) ४/१७३
णिच्छल्ल (छिद्) ४/१२४
णिज्झर (क्षि) ४/२०
णिज्झोड (छिद्) ४/१२४
णिट्टुअ (क्षर्) ४/१७३
णिट्टुह (वि० गल्) ४/१७५
णिट्टुह (कृ) ४/६७
णिम (नि० अस्) ४/१९९
णिम्मह (गम्) ४/१६२
णिरणास (नश्) ४/१७८
णिरिणज्ज (पिष्) ४/१८५
णिरिग्घ (नि० लीङ्) ४/५५
णिरिणास (गम्) ४/१६२
णिरिणास (पिष्) ४/१८५
णिल्लस (उद्० लस्) ४/२०२
णिलीअ (नि० लीङ्) ४/५५
णिलुक्क (,, ,,) ,, ,,
णिलुक्क (तुड्) ४/११६
णिल्लुञ्छ (मुच्) ४/९१
णिल्लूर (छिद्) ४/१२४
णिवह (गम्) ४/१६२
णिवह (नश्) ४/१७८
णिवह (पिष्) ४/१८५
णिव्वड (भू) ४/६२
णिव्वर (कथ्) ४/३
णिव्वर (छिद्) ४/१२४
णिव्वल (मुच्) ४/९२
णिव्वा (वि० श्रम्) ४/१५९
णिव्वोल (कृ) ४/९९
णिहुव (कम्) ४/४४
णिहोड (निर्० घृ० पत्) ४/२२
णिसुढ (नम्) ४/१५८
णी (गम्) ४/१६२
णीण (,,) ,, ,,
णीरव (बुभुक्ष्) ४/५
णीरव (आङ्० क्षिप्) ४/१४५
णीलुक्क (गम्) ४/१६२
णोलुञ्छ (कृ) ४/७१
णोसर (रम्) ४/१६८

णीहर (निर्० सृ) ४/७९
णीहर (आङ्० क्रन्द्) ४/१३१
णुम (छद्) ४/२१
णुम (नि० अस्) ४/१९९
णुव्व (प्र० काश्) ४/४५
णोल्ल (क्षिप्) ४/१४३
तच्छ (तक्ष्) ४/१९४
तड (तन्) ४/१३७
तड्ड (,,) ,, ,,
तड्डव(,,) ,, ,,
तमाड (भ्रम्) ४/३०
तर (शक्) ४/८६
तलअण्ट (भ्रम्) ४/१६१
तालिअण्ट (भ्रम्) ४/३०
तीर (शक्) ४/८६
तीर (तॄ) ४/२५०
तुड्ड (तुड्) ४/११६
तुट्ट (तुट्) ४/२३०
तुर (त्वर्) ४/१७२
तुवर (,,) ४/१७०
तूर (,,) ४/१७१
तेअव (प्र० दीप्) ४/१५२
तोड (तुड्) ४/११६
थक्क (स्था) ४/१६
थक्क (फक्क) ४/८७
थिप्प (तृप्) ४/१३८
थिप्प (वि० गल्) ४/१७५
थुण (स्तु) ४/२४१
थुव्व (,,) ४/२४२
दक्खव (दृश्) ४/३२
दडभ (दह्) ४/२४६
दह (धा) ४/९
दंस (दृश्) ४/३२
दाव (,,) ४/३२
दुगुच्छ (जुगुप्स्) ४/४
दुगुञ्छ (जुगुप्स्) ४/४
दुब्भ (दुह्) ४/२४५
दुम (धवल्) ४/२४
दुहाव (छिद्) ४/१२४
दूम (दू) ४/२३
देक्ख (दृश्) ४/१८१
धंसाड (मुच्) ४/९१
धा (धाव्) ४/२२८
धाड (निर्० सृ) ४/७९
धुण (धू) ४/२४१
धुमा (उद्० ध्मा) ४/८
धुव (धू) ४/५९
धुव्व (,,) ४/२४२
नच्च (नृत्) ४/२२५
नड्ड (नड्) ४/२३०
नव (नम्) ४/२२६
नस्स (नश्) ४/२३०
नासव (,,) ४/३१
निअ (दृश्) ४/१८१
निअच्छ (,,) ,, ,,
निम्मव (निर्० मा) ४/१९
निम्माण (,,) ,, ,,
निरप्प (स्था) ४/१६
निरवार (ग्रह्) ४/२०९
नीरञ्ज (भञ्ज्) ४/१०६
नील (निर्० सृ) ४/७९
नूम (छद्) ४/२१
पअल्ल (पच्) ४/९०
पक्खोड (वि० कोश्) ४/४२
पक्खोड (शद्) ४/१३०
पच्चड (क्षर्) ४/१७३
पच्चड्ड (गम्) ४/१६२
पच्चार (उपा० लम्भ्) ४/१५६
पच्छन्द (गम्) ४/१६२
पज्ज (पद्) ४/२२४
पज्झर (कथ्) ४/२
पज्झर (क्षर्) ४/१७३
पड्ड (पिष्) ४/१०
पट्ठव (प्र० स्थापय) ४/३७
पड (पत्) ४/२१९
पडिअग्ग (अनु० व्रज्) ४/१०७
पडिसा (शम्) ४/१६७
पडिसा (नश्) ४/१७८
पडुहुह (क्षुभ्) ४/१५४
पणाम (अर्पि) ४/३९
पदअ (गम्) ४/१६२
पन्नाड (मृद्) ४/१२६
पम्हुस (वि० स्मृ) ४/७५
पम्हह (स्मृ) ४/७४
पड्डुग (ग्रग्) ४/२०९
पयर (स्मृ) ४/७४
पयल्ल (कृ) ४/७०
पयल्ल (प्र० सृ) ४/७७
पर (भ्रम्) ४/१६१
परिअन्त (श्लिष्) ४/१९०
परिअल (गम्) ४/१६२
परिअल्ल (,,) ,, ,,
परिआल (वेष्ट्) ४/५१
परिवाड (घट्) ४/५०
परिसाम (शम्) ४/१६७
परिहट्ट (मृद्) ४/१२६
परी (क्षिप्) ४/१४३
परी (भ्रम्) ४/१६१
पलाव (नश्) ४/३१
पल्लट्ट (परि० अस्) ४/२००
पल्लत्थ (परि० अस्) ४/२००
पल्हत्थ (वि० रिच्) ४/२६
पलोट्ट (प्रत्याङ्० गम्) ४/१६६
पलोट्ट (परि० अस्) ४/२००
पव्वाय (म्लै) ४/१८

पच्चाल (छद्) ४/२१
पच्चाल (प्लावि) ४/४१
पविरञ्ज (भञ्ज्) ४/१०६
पहुल्ल (घूर्ण्) ४/११७
पार (शक्) ४/८६
पास (दृश्) ४/१८१
पिज्ज (पिब्) ४/१०
पिसुण (कथ्) ४/२
पुच्छ (प्रच्छ्) ४/९७
पुञ्छ (मृज्) ४/१०५
पुण (पू) ४/२४१
पुलअ (दृश्) ४/१८१
पुलआअ (उत्० लस) ४/२०२
पुलोअ (दृश्) ४/१८१
पुव्व (पू) ४/२४२
पुस (मृज्) ४/१०५
पुंस (,,) ,, ,,
पोक्क (व्या० हृ) ४/७६
पेच्छ (दृश्) ४/१८१
पेण्डव (प्र० स्थापय्) ४/३७
पेल्ल (क्षिप्) ४/१४३
फंस (विसं० वद्) ४/१२९
फंस (स्पृश्) ४/१८२
फरिस (,,) ,, ,,
फास (स्पृश्) ४/१८२
फिट्ट (भ्रंश्) ४/१७७
फिड (,,) ,, ,,
फुट्ट (,,) ,, ,,
फुट्ट (स्फुट्) ४/२३१
फुड (भ्रंश्) ४/१७७
फुड (स्फुट्) ४/२३१
फुम (भ्रम्) ४/१६१
फुस (,,) ,, ,,
फुस (मृज्) ४/१०५
बज्झ (बन्ध्) ४/२४७
बीह (भी) ४/५३
बुक्क (गर्ज्) ४/९८
बुज्झ (बुध्) ४/२१७
बुड्ड (मज्ज्) ४/१०१
बोज्ज (त्रस्) ४/१९८
बोल्ल (कथ्) ४/२
भण्ण (भण्) ४/२४९
भमड (भ्रम्) ४/१६१
भम्माड (,,) ,, ,,
भमाड (,,) ,, ,,
भर (स्मृ) ४/७४
भल (,,) ,, ,,
भा (भी) ४/५३
भिन्द (भिद्) ४/२१६
भिस (भास्) ४/२०३
भुक्क (भष्) ४/१८६
भुज्ज (भुज्) ४/२४९
भुञ्ज (,,) ४/११०
भुम (भ्रम्) ४/१६१
भुल्ल (भ्रंश्) ४/१७७
भेच्छं (भिद्) ३/१७१
भोच्छं (भुज्) ३/१७१
मग्ग (मग्) ४/२३०
मच्च (मद्) ४/२२५
मज्ज (निर्० सद्) ४/१२३
मड्ड (मृ) ४/१२६
मढ (,,) ,, ,,
मल (मृद्) ४/१२६
मह (काङ्क्ष्) ४/१९२
महमह (प्र० सृ) ४/७८
मिल्ल (मील्) ४/२३२
मुज्झ (मुह्) ४/२१७
मुण (ज्ञा) ४/७
मुर (घट्) ४/११४
मुसुमूर (भञ्ज्) ४/१०६
मूस (प्र० मृश्-मुष्) ४/१८४
मूर (भञ्ज्) ४/१०६
मोच्छं (मुच्) ३/१७१
मोट्टाय (रम्) ४/१६८
मेलव (मिश्र्) ४/२८
मेल्ल (मुच्) ४/९१
रम्प (तक्ष्) ४/१९४
रम्फ (,,) ,, ,,
रम्भ (आङ्० रभ्) ४/१५५
रम्भ (गम्) ४/१६२
रङ्खोल (दोल्) ४/४८
राअ (रञ्ज्) ४/४९
रिग्ग (प्र० विश्) ४/१८३
रीड (मण्ड्) ४/११५
रीर (राज्) ४/१००
रुज्झ (रुध्) ४/२१८
रुञ्ज (रुत) ४/५७
रुण्ट (,,) ,, ,,
रुन्ध (रुध्) ४/२१८
रुब्भ (,,) ४/२४५
रुम्भ (,,) ४/२१८
रुव (रुद्) ४/२२६
रोच्छं (,,) ३/१७१
रोञ्च (पिष्) ४/१८५
रोअ (रुद्) ४/२२६
रोसाण (मृज्) ४/१०५
रेअव (मुच्) ४/९१
रेह (राज) ४/१००
लग्ग (लग्) ४/२३०
लढ (स्मृ) ४/७४
लब्भ (लभ्) ४/२४९
ल्हस (स्रंस्) ४/१९७
लिक्क (नि० लीङ्) ४/५५
लिहुक्क (,, ,,) ,, ,,
लिम्प (लिप्) ४/१४९

लिब्भ (लिह्) ४/२४५
लिस (स्वप्) ४/१४६
लुक्क (नि० लीङ्) ४/५५
लुक्क (तुड्) ४/११६
लुञ्छ (मृज्) ४/१०५
लुण (लू) ४/२४१
लुब्ब (,,) ४/२४२
लुह (मृज्) ४/१०५
लूर (छिद्) ४/१२४
लोट्ट (स्वप्) ४/१४६
लोट्ट (लुट्) ४/२३०
वग्गोल (रोमन्थ्) ४/४३
वच्च (काङ्क्ष्) ४/१९२
वच्च (व्रज्) ४/२२५
वज्ज (त्रस्) ४/१९८
वज्ज (दृश्) ४/१८१
वज्जर (कथ्) ४/२
वड्डवड (वि० लप्) ४/१४८
वड्ढ (वृध्) ४/२२०
वमाल (पुञ्ज्) ४/१०२
वम्फ (वल्) ४/१७६
वम्फ (काङ्क्ष्) ४/१९२
वरहाड (निर्० सृ) ४/७९
वल (आङ्० रोपि) ४/४७
वल (निर् पद्) ४/१२८
वल (ग्रह्) ४/२०९
वलग्ग (आङ्० रुह्) ४/२०६
वसुआ (उद्० वा) ४/११
वा (म्लै) ४/१८
वावम्फ (कृ) ४/६८
वास (अव० काश्) ४/१७९
वाह (,, गाह्) ४/२०५
वाहिप्प (व्या० हृ) ४/२५३
विअट्ट (विसं० वद्) ४/१२९
विउड (नश्) ४/३१
विढक (नि० कृ) ४/५२
विच्छोल (कम्पि) ४/४६
विडविड्ड (रच्) ४/९४
विढप्प (अर्ज्) ४/२५१
विढव (,,) ४/१०८
विप्पाल (नश्) ४/३१
विम्हर (वि० स्मृ) ४/७५
विम्हर (,,) ४/७४
विर (भञ्ज्) ४/१०६
विर (गुप्) ४/१५०
विरमाल (प्रति० ईक्ष्) ४/१९३
विरल्ल (तन्) ४/१६७
विरा (वि० लीङ्) ४/५६
विरोल (मन्थ्) ४/१२१
विलुम्प (काङ्क्ष्) ४/१९२
विलोट्ट (विसं० वद्) ४/१२९
विसट्ट (दल्) ४/१७६
विसूर (खिद्) ४/१३२
विहीर (प्रति० ईक्ष्) ४/१९३
विहोड (ताड्) ४/२७
वीसर (वि० स्मृ) ४/७५
वीसाल (मिश्र्) ४/२८
वुब्भ (वह्) ४/२४५
वेअड (खच्) ४/८९
वेढ (वेष्ट्) ४/२२१
वेमय (भञ्ज्) ४/१०६
वेलव (उपा० लम्भ्) ४/१५६
वेलव (वञ्च्) ४/९३
वेल्ल (रम्) ४/१६८
वेहव (वञ्च्) ४/९३
वोक्क (वि० ज्ञप्) ४/३८
वोच्छं (वच्) ३/१७१
वोज्ज (वीज्) ४/५
वोत्तु (वच्) ४/२११
वोल (गम्) ४/१६२
वोसट्ट (वि० कस्) ४/१९५
वोसिर (सृज्) ४/२२९
सक्क (शक्) ४/२३०
सङ्खुड्ड (रम्) ४/१६८
सङ्घ (कथ्) ४/२
सड (सद्) ४/२१९
सन्दाण (कृ) ४/६७
सन्दुम (प्र० दीप्) ४/१५२
सन्धुक्क (प्र० दीप्) ४/१५२
सन्नाम (आङ्० दृङ्) ४/८३
सन्नुम (छद्) ४/२१
समाण (भुज्) ४/११०
समाण (सम्० आप् ४/१४२
समार (समा० रच्) ४/९५
संभाव (लुभ्) ४/१५३
संवेल्ल (सं० वेष्ट्) ४/२२२
सलह (श्लाघ्) ४/८८
सच्चव (दृश्) ४/१८१
सह (राज्) ४/१००
साअड्ढ (कृष्) ४/१८७
सामग्ग (श्लिष्) ४/१९०
सामय (प्रति० ईक्ष्) ४/१९३
सार (प्र० हृ) ४/८४
सारव (समा० रच्) ४/९५
साह (कथ्) ४/२
साहट्ट (सं० वृ) ४/८२
साहर (,, ,,) ४/८२
सिज्ज (खिद्) ४/२२४
सिज्झ (सिध्) ४/२१७
सिञ्च (सिच्) ४/९६
सिप्प (स्नेह० सिच्) ४/२५५
सिम्प (सिच्) ४/९६
सिव्व (सिव्) ४/२३०
सिह (स्पृह्) ४/३४
सिह (काङ्क्ष्) ४/१९२

सीस (कथ्) ४/२
सुण (श्रु) ४/२४२
सुमर (स्मृ) ४/७४
सुव्व (श्रु) ४/२४१
सूड (भञ्ज्) ४/१०६
सूर (,,) ,, ,,
सेह (नश्) ४/१७८
सोल्ल (पच्) ४/९०
सोल्ल (क्षिप्) ४/१४३
हक्क (नि० सिध्) ४/१३४
हक्खुव (उद्० क्षिप्) ४/१४३
हण (श्रु) ४/५८
हम्म (हन्) ४/२४४
हर (ग्रह्) ४/२०९
हुव (भू) ४/६०
हस्स (हस्) ४/२४९
हारव (नश्) ४/३१
हीर (हृ) ४/२५.
हु (भू) ४/६१
हुण (हु) ४/२४१
हुप्प (भू) ४/६३
हुल (मृज्) ४/१०५
हुल (क्षिप्) ४/१४३
हुव (भू) ४/६०
हुव्व (हु) ४/२४२
हू (भू) ४/६४
हो (भू) ४/६०

अकारादिक्रमेण-प्राकृत-व्याकरणस्य

सूत्र-सूची

[अ]

अइर्दैत्यादौ च १, १५१
अइ सम्भावने २, २०५
अउः पौरादौ च १, १६२
अक्लीबे सौ ३, १९
अङ्कोठे ल्लः १, २००
अचलपुरे च-लोः २, ११८
अजातेः पुंसः ३, ३२
अ-डड-डुल्लाः स्वार्थिक ४, ४२९
अण णाइं नञर्थे २, १९०
अत इज्जस्विज्जहीज्जे ३, १७५
अत एत्सौ पुंसि ४, २८७
अत एवैच् से ३, १४५
अतसी-सातवाहने १, २११
अतां डसः ४, ४०३
अतो डसेर्डातो ४, ३२१
अतो डसेर्डादो ४, २७६
अतो डसेर्डातो-डातु ४, ३२१
अतोर्डेत्तुलः ४, ४३५
अतो डो विसर्गस्य १, ३७
अतो देश्च ४, २७४
अतो रिआर-रिज्ज २, ६७
अतः समृद्ध्यादौ १, ४४
अतः सर्वादेर्डेर्जसः ३, ५८
अतः सेर्डोः ३, २
अथ प्राकृतम् १, १
अस्थिस्त्यादिना ३, १४८
अदस ओइ ४, ३६४
अदूतः सूक्ष्मे वा १, ११८
अदेल्लुक्यादेरत ३, १५३
अधः क्वचित् ४, २६१
अधसो हेट्ठं २, १४१
अधो म-न-याम् २, ७८
अनङ्कोठात् तैलस्य २, १५५
अनादौ स्वरादसंयुक्तानां ४, ३९६
अनादौ शेषादेश २, ८९
अनुत्साहोत्सन्ने १, ११४
अनुव्रजेः पडिअग्गः ४, १०७
अन्त्य-त्रयस्याद्यस्य ४, ३८५
अन्त्यव्यञ्जनस्य १, ११
अन्यादृशोन्नाइस ४, ४१३
अभिमन्यौ जञ्जौ २, २५
अभूतोऽपि क्वचित् ४, ३९९
अभ्याङोम्मत्थः ४, १६५
अमेणम् ३, ७८
अम्महे हर्षे ४, २८४
अमोऽस्य ३, ५
अम्मो आश्चर्ये २, २०८
अम्ह अम्हे अम्हो ३, १०६
अम्ह-मम-मह ३, ११६
अम्हहं भ्यसाम्भ्याम् ४, ३८०
अम्हे अम्हो अम्ह ३, १०८
अम्हेहि अम्हाहि ३, ११०
अम्हेहिं भिसा ४, ३७८
अयौ वैत् १, १६९
अरिहन्ते १, १४४
अर्जेर्विढवः ४, १०८
अर्जेर्विढप्पः ४, २५१
अर्पेरल्लिव-चच्चुप ४, ३९
अलाहि निवारणे २, १८९
अवर्णाद्वा ङसो ४, २९९
अवर्णो य-श्रुतिः १, १८०
अवतरेरोह-ओरसौ ४, ८५

अवश्यमो डें-डौ ४, ४२७
अवात्काशो ४, १७९
अवाद् गाहेर्वाहः ४, २०५
अवापोते १, १७२
अविति हुः ४, ६१
अवेर्जृम्भो ४, १५७
अव्ययम् २, १७५
अव्वो सूचना-दुःख २, २०४
असावक्खोडः ४, १८८
अस्मदो म्मि ३, १०५
अस्येदे ४, ४२३
अहं वयमोर्हगे ४, ३०१

[आ]

आ अरा मातुः ३, ४६
आ आमन्त्र्ये ४, २६३
आ कृगो ४, २१४
आक्रमेरोहा ४, १६०
आक्रन्देर्णीहरः ४, १३१
आक्षिपेर्णीरवः ४, १४५
आघ्रेराइग्घः ४, १३
आङा अहिपच्चुअः ४, १६३
आङा ओअन्दो ४, १२५
आङो रभे ४, १५५
आचार्ये चोऽच्च १, ७३
आच्च गौरवे १, १६३
आजस्य टा-ङसि ३, ५५
आट्टो णानुस्वारौ ४, ३४२
आत् कश्मीरे १, १००
आत्कृशा-मृदुक- १, १२७
आत्ते च्च ४, ३१९
आत्मनष्टो णिआ ३, ५७
आदृङः सम्मामः ४, ८३
आदेर्यो जः १, २४५
आदेः १, २९
आदेः श्मश्रु २, ८६
आदृते ढिः १, १४३
आनन्तर्ये णवरि २, १८८
आन्तान्ताड्डाः ४, ४३२
आपद्-विपत् ४, ४००
आम अभ्युपगमे २, १७७
आमन्त्र्ये जसो ४, ३४६
आमो आहँ वा ४, ३००
आमो डेसिं ३, ६१
आमो हं ४, ३३९
आर्यायां र्यः १, ७७
आयुरप्सरसोर्वा १, २०
आरः स्यादौ ३, ४५
आरभेराढप्पः ४, २५४
आरुहेश्चड-वलग्गौ ४, २०६
आरोपेर्वलः ४, ४७
आर्षम् १, ३
आलाने लनोः २, ११७
आलीङोऽल्ली ४, ५४
आल्विल्लोल्लाल- २, १५९
आश्चर्ये २, ६६
आश्लिष्टे ल-धौ २, ४९
आ सौ न वा ३, ४८

[इ]

इच्चेचः ४, ३१८
इच्च मो-मु-मे ३, १५५
इ-जे-राः पादपूरणे २, २१७
इणममामा ३, ५३
इत एद्वा १, ८५
इतेः स्वरात् १, ४२
इतौ तो वाक्यादौ १, ९१
इत्कृपादौ १, १२८
इत्वे वेतसे १, २०७
इत्सैन्धव- १, १४९
इदंकिमश्च डेत्तिअ २, १५७
इदम आयः ४, ३६५
इदम इमः ३, ७२
इदम इमुः ४, ३६१
इदमर्थस्य केरः २, १४७
इदमेतत्किं-यत्तद् ३, ६९
इदानीमो दाणिं ४, २७७
इदितो वा ४, १
इदुतो दीर्घः ३, १६
इदुतौ वृष्ट-वृष्टि १, १३७
इदेतौ नूपुरे १, १२३
इदेदोद्वृन्ते १, १३९
इदंकिमश्च २, १५७
इन्धौ झा २, २८
इर्जस्य णो-णा-ङौ ३, ५२
इर्भृकुटौ १, ११०
इवार्थे नं-नउ ४, ४४४
इहरा इतरथा २, २१२
इह-हचोर्हस्य ४, २६८
इः स्वप्नादौ १, ४६
इः सदादौ वा १, ७२

[ई]

ईअ-इज्जौ ३, १६०
ई च स्त्रियाम् ३, १८२
ईतः सेश्चा ३, २८
ईद्-धैर्ये १, १५५
ईद् भिस्-भ्यसा ३, ५४
ईदूतोर्ह्रस्वः ३, ४२
ईद्भ्यः स्सा ३, ६४
ईयस्याऽऽत्मनो २, १५३
ईर्जिह्वा-सिंह- १, ९२
ईर्वोद्व्यूढे १, १२०
ईर्हरे वा १, ५१
ईः क्षुते १, ११२
ईः स्त्यान-खल्वाटे १, ७४

[उ]

उअ पश्य २, २११

उत्क्षिपेर्गुल ४, १४४
उच्चार्हति २, १११
उच्चैर्नीचैस्यअः १, १५४
उच्छल उत्थल्लः ४, १७४
उज्जीर्णे १, १०२
उत्-सौन्दर्यादौ १, १६०
उतो मुकुलादिष्वत् १, १०७
उद्-ऋत्वादौ १, १३१
उदष्ठ-कुक्कुरौ ४, १७
उदूदोन्मृषि १, १३६
उदोद्-वाऽऽर्द्रे १, ८२
उदो ध्मो ४, ८
उद्घटेरुग्गः ४, ३३
उद्धूलेर्गुण्ठः ४, २९
उद्वातेरोरुम्मा-वसुआ ४, ११
उद्विजः ४, २२७
उन्नमेरुत्थङ्घोल्लाल- ४, ३६
उपरेः संव्याने २, १६६
उपसर्पेरल्लिअः ४, १३९
उपालम्भेर्झङ्ख ४, १५६
उमो निषण्णे १, १७४
उर्भ्रू-हनूमत् १, १२१
उल्लसेरूसलोसुम्भ- ४, २०२
उवर्णस्याऽवः ४, २३३
उः सास्ना- १, ७५

[ऊ]

ऊ गर्हाक्षेप २, १९९
ऊच्चोपे १, १७३
ऊत्-सुभग- १, ११३
ऊत्-सोच्छ्वासे १, १५७
ऊत्वे दुर्भग- १, १९२
ऊद्वाऽऽसारे १, ७६
ऊर्हीन-विहीने १, १०३
ऊः स्तेने वा १, १४७

[ऋ]

ऋक्षे वा २, १९
ऋणर्ज्वृषभ १, १४१
ऋतामुदस्य ३, ४४
ऋतोऽत् १, १२६
ऋतोऽद्वा ३, ३९
ऋवर्णस्याऽरः ४, २३४

[लृ]

लृत इलिः १, १४५

[ए]

एद्दसस्-ङसोः ४, ३६३
एकशसोः ४, ४२८
एक-स्वरे २, ११४
एक्कसरिअं २, २१३
एच्च क्त्वा-तुम् ३, १५७
एच्च दैवे १, १५३
एच्छय्यादौ १, ५७
एट्टि ४, ३३३
एण्हिं एत्ताहे २, १३४
एत् ३, १२९
एत इद्वा वेदना १, १४६
एतः पर्यन्ते २, ६५
एत्त्रयोदशादौ १, १६५
एतदः स्त्री ४, ३६२
एत्थु कुत्रात्रे ४, ४०५
एत् पीयूषापीड- १, १०५
एद् ग्राह्ये १, ७८
एदोतोः स्वरे १, ७
एप्प्येप्पिण्वे- ४, ४४०
एरदीतौ ३, ८४
एवं-परं-समं- ४, ४१८
एवार्थे य्येव ४, २८०
एं चेदुतः ४, ३४३

[ऐ]

ऐत एत् १, १४८

[ओ]

ओच्च द्विधा १, ९७
ओत् कूष्माण्डी- १, १२४
ओत् पद्मे १, ६१
ओत् पूतर-बदर- १, १७०
ओत् संयोगे १, ११६
ओतोऽद्वान्योन्य- १, १५६
ओदाल्यां १, ८३
ओ सूचना- २, २०३

[औ]

औत ओत् १, १५९

[क]

ककुदे हः १, २२५
ककुभो हः १, २१
क-ग-च-ज- १, १७७
क-ग-ट-ड-त-द- २, ७७
कथेर्वज्जर- ४, २
कथं-यथा-तथां ४, ४०१
कदम्बे वा १, २२२
कदर्थिते वः १, २२४
कदल्यामद्रुमे १, २२०
कन्दरिका-भिन्दि- २, ३८
कबन्धे म-यौ १, २३९
कमेर्णिहुवः ४, ४४
कम्पेर्विच्छोलः ४, ४६
करवीरे णः १, २५३
करेणू-वाराणस्योः २, ११६
कर्णिकारे वा २, ९५
कश्मीरे म्भो वा २, ६०
काङ्क्षेराहाऽहि- ४, १९२
काणेक्षिते णिआरः ४, ६६
कादि-स्थैदोतो ४, ४१०
कान्तस्याऽत ४, ३५४
कार्षापणे २, ७१
किणो प्रश्ने २, २१६
किमः कस्त्र-तसोश्च ३, ७१

किमः किं ३, ८०
किमः काइं- ४, ३६७
किमो डिहे ४, ३५६
किमो डिणो-डीसौ ३, ६८
किराते चः १, १८३
किरि-भेरे रो डः १, २५१
किरेर हिर किलार्थे २, १८६
किलाऽथवा- ४, ४१९
किसलय-कालायस- १, २६९
कि-तद्भ्यां डासः ३, ६२
किंयत्तदोऽस्य- ३, ३३
किं-यत्तद्भ्यो ३, ६३
किंशुके वा १, ८६
कुतसः कउ ४, ४१६
कुतूहले वा १, ११७
कुब्ज-कर्पर- १, १८१
कूष्माण्ड्यां ष्मो २, ७३
कृ-गमो डुडुअः ४, २७२
कृगेः कुणः ४, ६५
कृगो डीरः ४, ३१६
कृत्ति-चत्वरे चः २, १२
कृत्वसो हुत्तं २, १५८
कृ-दो हं ३, १७०
कृषेः कड्ढ-सा- ४, १८७
कृष्णे वर्णे वा २, ११०
कैटभे भो वः १, २४०
कौक्षेयके वा १, १६१
क्ते ३, १५६
क्तेनाऽप्फुण्णादयः ४, २५८
क्ते हूः ४, ६४
क्त्व इ-इउ- ४, ४३९
क्त्व इय-दूणौ ४, २७१
क्त्वस्तुमत्तूण- २, १४६
क्त्वस्तूनः ४, ३१२
क्त्वा-तुम्-तव्येषु ४, २१०
क्त्वा-स्यादेर्ण- १, २७
क्यङोर्यलुक् ३, १३८
क्यस्येय्यः ४, ३१५
क्रपोऽवहो ४, १५१
क्रियः किणो ४, ५२
क्रियातिपत्तेः ३, १७९
क्रियेः कीसु ४, ३८९
क्रुधेर्जूरः ४, १३५
क्लीबे जस्-शसो र्इं ४, ३५३
क्लीबे स्यमेद- ३, ७९
क्लीबे स्वरान्म् सेः ३, २५
क्वचिद् द्वितीयादेः ३, १३४
क्वथवर्धां ढः ४, २२०
क्वथेरड्डः ४, ११९
क्विपः ३, ४३
क्षः खः क्वचित्तु २, ३
क्षण उत्सवे २, २०
क्षमायां कौ २, १८
क्षरः खिर-झर- ४, १७३
क्षस्य ङ्कः ४, २९६
क्षिपेर्गलत्था- ४, १४३
क्षुधो हा १, १७
क्षुभेः खउर- ४, १५४
क्षुरे कम्मः ४, ७२
क्षेर्णिज्झरो वा ४, २०
क्ष्मा-श्लाघा- २, १०१
क्ष्वेटकादौ २, ६

[ख]

ख-घ-थ-ध-भाम् १, १८७
खचित-पिशाचयो १, १९३
खचेर्वेअडः ४, ८९
खाद्-धावोर्लुक् ४, २२८
खिदेर्जूर-विसूरौ ४, १३२

[ग]

गमेरई-अइच्छ ४, १६२
गमादीनां द्वित्वम् ४, २४९
गमिष्यमासां ४, २१५
गमेरेप्पिण्वेप्प्योरेर्लुग् ४, ४४२
गर्जेर्बुक्कः ४, ९८
गर्ते डः २, ३५
गर्दभे वा २, ३७
गर्भिताऽतिमुक्तके १, २०८
गवये वः १, ५४
गवेषेर्ढुण्ढुल्ल- ४, १८९
गव्यउ-आअः १, १५८
गुणाद्याः क्लीबे १, ३४
गुप्यर्विर-णडौ ४, १५०
गुरौ के वा १, १०९
गुर्वादेरविर्वा ३, १५०
गृहस्य घरो- २, १४४
गोणादयः २, १७४
गौणस्येषतः २, १२९
गौणान्त्यस्य १, १३४
ग्मो वा २, ६२
ग्रन्थो गण्ठः ४, १२०
ग्रसेर्घिसः ४, २०४
ग्रहेर्गृण्हः ४, ३९४
ग्रहेर्घेप्पः ४, २५६
ग्रहो वल-गेण्ह ४, २०९

[घ]

घइमादयो ४, ४२४
घञ्-वृद्धेर्वा १, ६८
घटेः परिवाडः ४, ५०
घटेर्गढः ४, ११२
घूर्णो घुल-घोल- ४, ११७

[ङ]

ङ-ञ-ण-नो १, २५
ङसः स्सः ३, १०
ङसः सु-हो-स्सवः ४, ३३८
ङस्-ङस्योर्हे ४, ३५०

ङसि-ङसो पुंक्लीबे ३, २३
ङसिभ्यस्-ङीनां ४, ३४१
ङसि-ङस्भ्यां तउ ४, ३७२
ङसेर्लुंक् ३, १२६
ङसेर्म्हा ३, ६६
ङसेर्हू ४, ३३६
ङसेस्त्तो-दो-दु- ३, ८
ङिनेच्च ४, ३३४
ङेः स्सिं-म्मि ३, ५९
ङेर्डे: ३, १२८
ङेर्हि डाला इआ ३, ६५
ङेर्मेन हः ३, ७५
ङेर्हि ४, ३५२
ङेर्हि ४, ३५७

[च]

चतुरो वा ३, १७
चतुरश्चत्तारो ३, १२२
चतुर्थ्याः षष्ठी ३, १३१
चन्द्रिकायां मः १, १८५
चपेटा-पाटौ वा १, १९८
चाटौ गुललः ४, ७३
चि-जि-श्रु-हु- ४, २४१
चिह्ने न्धो वा २, ५०
चूलिका-पैशाचिके ४, ३२५

[छ]

छदेर्णेर्णुम- ४, २१
छस्य श्चोऽनादौ ४, २९५
छागे लः १, १९१
छायायां हो- १, २४९
छाया-हरिद्रयोः ३, ३४
छिदि-भिदो न्दः ४, २१६
छिदेर्दुहाव- ४, १२४
छोऽक्ष्यादौ २, १७

[ज]

जटिले जो झो १, १९४
ज-द्य-यां यः ४, २९२
जनो जा-जम्मौ ४, १३६
जस्-शस इँ-इं-णयः ३, २६
जस्-शस्-ङसि-ङसां ३, ५०
जस्-शस्-ङसि-त्तो- ३, १२
जस्-शसोर्णो वा ३, २२
जस्-शसोर्लुंक् ३, ४
जस्-शसोरम्हे ४, ३७६
जस्-शसोस्तुम्हे ४, ३६९
जाग्रेर्जग्गः ४, ८०
जुगुप्सेर्झुण— ४, ४
जेण तेण लक्षणे २, १८३
ज्जा-ज्जे ३, १५९
ज्जात् सप्तम्या ३, १६५
ज्ञो जाणमुणौ ४, ७
ज्ञो ञः २, ८३
ज्ञो ञ्ञः ४, ३०३
ज्ञो णत्वेऽभिज्ञादौ १, ५६
ज्ञो णव्व-णज्जौ ४, २५२
ज्यायामीत् २, ११५

[ट]

ट ए ४, ३४९
टा-आमोर्णः ३, ६
टाणशस्येत् ३, १४
टा-ङस्-ङेरदादि- ३, २९
टा-ङ्यमा पइँ तइँ ४, ३७०
टा-ङ्यमा मइँ ४, ३७७
टो डः १, १९५
टो णा ३, २४
टो णा ३, ५१
टोस्तुर्वा ४, ३११
ट्ट-ष्टयोः स्टः ४, २९०

[ठ]

ठोऽस्थि-विसंस्थुले २, ३२
ठो ढः १, १९९

[ड]

डाह-वौ कतिपये १, २५०
डिल्ल-डुल्लौ भवे २, १६३
डे म्मि ङेः ३, ११
डो दीर्घो वा ३, ३८
डो लः १, २०२
ड्म-क्मोः २, ५२

[ण]

णइ चेअ चिअ २, १८४
णवर केवले २, १८७
णवि वैपरीत्ये २, १७८
णे णं मि ३, १०७
णे णो मज्झ ३, ११४
णेरदेदावावे ३, १४९
णोऽम्-शस्-टा ३, ७७
णो नः ४, ३०६
णं नन्वर्थे ४, २८३

[त]

तइ तु ते ३, ९९
तइ-तुव-तुम ३, ९६
तक्षेस्तच्छ-चच्छ- ४, १९४
तक्ष्यादीनां छोल्लादयः ४, ३९५
तगर-त्रसर- १, २०५
तडेराहोड ४, २७
ततस्तदोस्तोः ४, ४१७
तदिदमोष्टा नेन ४, ३२२
तदश्च तः ३, ८६
तदो डोः ३, ६७
तदो णः स्यादौ ३, ७०
तदोस्तः ४, ३०७
तनेस्तड-तड्ड- ४, १३७
तन्वीतुल्येषु २, ११३
तव्यस्य इएव्वउं ४, ४३८
तस्मात् ताः ४, २७८
तं तुं तुमं तुवं ३, ९२

तं वाक्योपन्यासे २, १७६
तादर्थ्ये ङेर्वा ३, १३२
तादर्थ्ये केहिं ४, ४२५
ताम्राम्रे म्बः २, ५६
तिजेरोसुक्कः ४, १०४
तित्तिरौ रः १, ९०
तिर्यचस्तिरिच्छिः २, १४३
तिष्ठश्चिष्ठः ४, २९८
तीक्ष्णे णः २, ८२
तीर्थे हे १, १०४
तुच्छे तश्च- १, २०४
तुडेस्तोड-तुट्ट- ४, ११६
तु-तुव-तुम- ३, १०२
तुब्भ-तुय्होय्हो- ३, ९८
तुम एवमणाण- ४, ४४१
तुमे तुमए तुमाइ ३, १०१
तुम्हासु सुपा ४, ३७४
तुय्ह तुब्भ तहिन्तो ३, ९७
तुरोऽत्यादौ ४, १७२
तुलेरोहामः ४, २५
तु वो भे तुब्भ ३, १००
तृतीयस्य मिः ३, १४१
तृतीयस्य मो- ३, १४४
तृणोऽणअः ४, ४४३
तृपस्थिप्पः ४, १३८
तेनास्तेरास्यहेसी ३, १६४
तैलादौ २, ९८
तोऽन्तरि १, ६०
तो दोऽनादौ शौर- ४, २६०
तो दो तसो २, १६०
त्थे च तस्य ३, ८३
त्यदाद्यव्ययात् १, ४०
त्यादिशत्रोस्तूरः ४, १७१
त्यादीनामाद्यत्रयस्या- ३, १३९
त्यादेराद्यत्रयस्य ४, ३८२
त्यादेः १ ९
त्योऽचैत्ये २, १३
त्रपो हि-ह-त्थाः २, १६१
त्रसेर्डर-वोज्ज- ४, १९८
त्रस्तस्य हित्थ- २, १३६
त्रस्य डेत्तहे ४, ४३६
त्रेस्तिण्णिः ३, १२१
त्रेस्ती तृतीयादौ ३, ११८
त्वतलोः प्पणः ४, ४३७
त्व-थ्व-द्व-ध्वां २ १५
त्वरस्तुवर-जअडौ ४, १७०
त्वस्य डिमा-त्तणौ २, १५४
त्वादेः सः २, १७२

[थ]

थ-ठावस्पन्दे २, ९
थू कुत्सायाम् २, २००
थो धः ४, २६७

[द]

दक्षिणे हे १, ४५
दग्ध-विदग्ध-वृद्धि- २, ४०
दरार्धाल्पे २, २१५
दलि-वल्योर्विसट्ट- ४, १७६
दशन-दष्ट-दग्ध- १, २१७
दश-पाषाणे हः १, २६२
दशार्हे २, ८५
दहेरहिऊलाऽऽलुङ्खौ ४, २०८
दहो ज्झः ४, २४६
दिक्-प्रावृषोः १, १९
दिरिचेचोः ४, २७३
दिवसे सः १, २६३
दीपौ धो वा १, २२३
दीर्घ-ह्रस्वौ मिथो १, ४
दीर्घे वा २, ९१
दुकूले वा लश्च १, ११९
दुर्गादेव्युदुम्बर १, २७०
दुवे दोण्णि वेण्णि ३, १२०
दु सु मु विध्यादि ३, १७३
दुहितृ-भगिन्योर्धूआ २, १२६
दुःख-दक्षिण २, ७२
दुःखे णिव्वलः ४, ९२
दुःखे णिव्वरः ४, ३
दूङो दूमः ४, २३
दृप्ते २, ९६
दृशस्तेन ट्ठः ४, ३१३
दृशः क्विप्-टक्— १, १४२
दृशि-वचेर्डीस— ३, १६१
दृशेः प्रस्सः ४, ३९३
दृशेर्दाव-दंस— ४, ३२
दृशो निअच्छ-पेच्छा— ४, १८१
दे संमुखीकरणे २, १९६
दोले रङ्खोलः ४, ४८
दंश-दहोः १, २१८
दंष्ट्राया दाढा २, १३९
द्युत्-स्पृशौ ४, ३१२
द्य-य्य-र्यां जः २, २४
द्वे रो न वा २, ८०
द्वारे वा १, ७९
द्वितीय-तुर्ययो— २, ९०
द्वितीयस्य सि ३ १४०
द्वितीया-तृतीययोः ३, १३५
द्विन्योरुत् १, ९४
द्विवचनस्य बहुवचनम् ३, १३०
द्वेर्दो वे ३, ११९

[ध]

धनुषो वा १, २२
धवलेर्दुमः ४, २४
धात्र्याम् २, ८१
धातवोऽर्थान्तरेऽपि ४, २५९
धूगेर्धुवः ४, ५९
धृतेर्दिहिः २, १३१

धृष्टद्युम्ने णः २, ९४
धैर्ये वा २; ६४
ध्या-गोर्झा-गौ ४, ६
ध्वजे वा २, २७
ध्वनि-विष्वचोरुः १, ५२

[न]

न क-ग-च-जादि- ४, ३२४
न स्यः ३, ७६
न दीर्घाऽनुस्वारात् २, ९२
न दीर्घो णो ३, १२५
नमस्कारपरस्परे १, ६२
न युवर्णस्याऽस्वे १, ६
न वा कर्म-भावे— ४, २४२
न वानिदमेतदो ३, ६०
न वा मयूख-लवण- १, १७१
न वा र्यो य्यः ४, २६६
न श्रदुदोः १, १२
नशेर्णिरणास-णिवह— ४, १७८
नशेर्विउड-नासव— ४, ३१
नाऽवर्णात् पः १, १७९
नात् पुनर्यादाई १, ६५
नात् आत् ३, ३०
नादि युज्योरन्येषाम् ४, ३२७
नामन्त्र्यात् सौ ३, ३७
नाम्न्यरं वा ३, ४०
नाम्न्यरः ३, ४७
नाव्यावः १, १६४
निकष-स्फटिकः १, १८६
निद्रातेरोहीरोङ्घौ ४, १२
निम्ब-नापिते १, २३०
निरः पदेर्वलः ४, १२८
निर्दुरोर्वा १, १३
निर्मो निम्माण- ४, १९
निलीङेर्णिलीअ- ४, ५५
निविपत्योर्णि- ४, २२
निवृत्तवृन्दारके १, १३२
निशीथ-पृथिव्योर्वा १, २१६
निषधे धो ढः १, २२६
निषेधेर्हक्कः ४, १३४
निष्प्रती ओत्परी १, ३८
निष्पुंसाऽऽपुङ्के ४, ६७
निष्पाताच्छोटे ४, ७१
निस्सरेर्णीहर-नील- ४, ७९
निःश्वसेर्झङ्खः ४, २०१
नीड-पीठे वा १, १०६
नीपाऽऽपीडे मो वा १, २३४
नेः सदो मज्जः ४, १२३
नो णः १, २२८
न्त-माणौ ३, १८०
न्मो मः २, ६१
न्य-ण्य-ज्ञ-ञ्जां ४, २९३
न्य-ण्योर्ञ्ञः ४, ३०५
न्यसो णिम-णुमौ ४, १९९

[प]

पक्वाङ्गार-ललाटे १, ४७
पक्ष्म-श्म-ष्म-स्म-ह्मां २, ७४
पचेः सोल्ल-पउलौ ४, ९०
पञ्चाशत्-पञ्चदश- २, ४३
पञ्चम्यास्तृतीया च ३, १३६
पथि-पृथिवी-प्रतिश्रुत्- १, ८८
पथो णस्येकट् २, १५२
पदयोः सन्धिर्वा १, ५
पदादपेर्वा १, ४१
पदान्ते उं-हुं-हिं- ४, ४११
पद्म-छद्म-मूर्ख— २, ११२
पर-राजभ्यां क्क— २, १४८
परस्परस्यादिरः ४, ४०९
पर्यसः पलोट्ट- ४, २००
पर्यस्त-पर्याण- २, ६८
पर्यस्ते थ-टौ २, ४७
पर्याणे डा वा १, २५२
पलिते वा १, २१२
पश्चादेवमेवैवेदानीं ४, ४२०
पाटि-परुष-परिघ- १, २३२
पानीयादिष्वित् १, १०१
पापर्द्धौ रः १, २३५
पारापते रो वा १, ८०
पिठरे हो वा १, २०१
पिबेः पिज्ज-डल्ल— ४, १०
पिषेर्णिवह-णिरिणास- ४, १८५
पीते वो ले वा १, २१३
पुञ्जेरारोल-वमालौ ४, १०२
पुराणकं कुलकरणे २, १७२
पुनर्विनः स्वार्थे डुः ४, ४२६
पुन्नाग-भागिन्योः १, १९०
पुरुषे रोः १, १११
पुंस्यन आणो राज— ३, ५६
पुंस्त्रियोर्न वाऽयम् ३, ७३
पुंसि जसो डउ ३, २०
पूरेरग्घाडाग्घव— ४, १६९
पूर्वस्य पुरवः ४, २७०
पूर्वस्य पुरिमः २, १३५
पृथक् स्पष्टे णिव्वडः ४, ६२
पृथकि धो वा १, १८८
पृष्ठे वाऽनुत्तरपदे १, १२९
पो वः १, २३१
प्याइय- २, २१८
प्रकाशेर्णुव्वः ४, ४५
प्रच्छः पुच्छः ४, ९७
प्रतीक्षेः सामय— ४, १९३
प्रत्यये ङीर्न वा ३, ३१
प्रत्यादौ डः १, २०६
प्रत्याङा पलोट्टः ४, १६६
प्रत्यूषे षश्च हो वा २, १४
प्रत्येकमः पाडिक्कं २, २१०

प्रथमे प-थोर्वा १, ५५
प्रदीपि-दोहदे लः १, २२१
प्रदीपेस्तेअव-सन्दुम — ४, १५२
प्रभूते वः १, २३३
प्रभौ हुप्पो वा ४, ६३
प्रवासीक्षौ १, ९५
प्रविशे रिअः ४, १८३
प्रसरेः पयल्लोवेल्लौ ४, ७७
प्रस्थापेः पट्ठव- ४, ३७
प्रहृगेः सारः ४, ८४
प्रादेर्मीलेः ४, २३२
प्राग्भुवा-भुवोम्हुसः ४, १८४
प्रायसः प्राउ-प्राइव ४, ४१४
प्रावरणे अङ्ग्वाऊ १, १७५
प्रावृट्शरत्-तरणयः १, ३१
प्लक्षे लात् २, १०३
प्लावेरोम्बाल-पव्वालौ ४, ४१

[फ]

फक्कस्थक्कः ४, ८७
फो भ-हौ १, २३६

[ब]

बन्धो न्धः ४, २४७
बले निर्धारण- २, १८५
बहिसो बाहिं २, १४०
बहुलम् १, २
बहुत्वे हुः ४, ३८४
बहुत्वे हुं ४, ३८६
बहुषु न्तु ह मो ३, १७६
बहुष्वाद्यस्य न्ति ३, १४२
बाहोरात् १, ३६
बाष्पे होऽश्रुणि २, ७०
बिसिन्यां भः १, २३८
बुभुक्षि-वीज्योर्णीरव- ४, ५
बृहस्पति-वनस्पत्योः २, ६९
बृहस्पतौ बहो भयः २, १३७
बो वः १, २३७
ब्भो म्ह-ज्झौ ३, १०४
ब्भो दुह-लिह-वह- ४, २४५
ब्रूगो ब्रुवो वा ४, ३९१
ब्रह्मचर्ये चः १, ५९
ब्रह्मचर्य-तूर्य-सौन्दर्य- २, ६३

[भ]

भञ्जेर्वेमय-मुसुमूर- ४, १०६
भवद्-भगवतोः ४, २६५
भविष्यति स्सिः ४, २७५
भविष्यति हिरादिः ३, १६६
भविष्यत्येय्य एव ४, ३२०
भस्मात्मनोः पो वा २, ५१
भषेर्भुक्कः ४, १८६
भाराक्रान्ते नमेर्णिसुढः ४, १५८
भासेर्भिसः ४, २०३
भियो भा-बीहौ ४, ५३
भिस्भ्यस्-सुपि ३, १५
भिस्येद् वा ४, ३३५
भिस्-सुपोर्हि ४, ३४७
भिसा तुम्हेहिं ४, ३७१
भिसो हि हिँ हिं ३, ७
भीष्मे ष्मः २, ५४
भुजो भुञ्ज-जिम- ४, ११०
भुवः पर्याप्तौ हुच्चः ४, ३९०
भुवेर्हो-हुव-हवाः ४, ६०
भुवो भः ४, २६९
भे तुब्भे तुज्झ तुम्ह ३, ९१
भे तुब्भेहिं उज्झेहिं ३, ९५
भे दि दे ते तइ ३, ९४
भ्यसस्तो-दो-दु- ३, ९
भ्यसश्च हिः ३, १२७
भ्यसाम्भ्यां तुम्हहं ४, ३७३
भ्यसामोर्हुं ४, ३५१
भ्यसि वा ३, १३
भ्यसो हुं ४, ३३७
भ्रमरे सो वा १, २४४
भ्रमेराडो वा ३, १५१
भ्रमेष्टिरिटिल्ल- ४, १६१
भ्रमेस्तालिअण्ट- ४, ३०
भ्रंशेः फिड-फिट्ट- ४, १७७
भ्रुवो मया डमया २, १६७

[म]

मइ-मम-मह- ३, १११
मणे विमर्शे २, २०७
मधूके वा १, १२२
मण्डेश्चिञ्च-चिञ्चअ- ४, ११५
मध्यमकतमे १, ४८
मध्यत्रयस्याऽऽद्यस्य ४, ३८३
मध्यमस्येत्था-हचौ ३, १४३
मध्याह्ने हः २, ८४
मध्ये च स्वरान्ताद्वा ३, १७८
मनाको न वा २, १६९
मन्थेर्घुसल-विरोलौ ४, १२१
मन्मथे वः १, २४२
मन्युनोष्ठ-मालिन्ये ४, ६९
मन्यौ न्तो वा २, ४४
ममाऽम्हौ भ्यसि ३, ११२
मयट्यइर्वा १, ५०
मरकत-मदकले गः १, १८२
मलिनोभय-शुक्ति- २, १३८
मसृण-मृगाङ्क-मृत्यु १, १३०
मस्जेराउड्ड-णिउड्ड- ४, १०१
महमहो गन्धे ४, ७८
महाराष्ट्रे १, ६९
महाराष्ट्रे ह-रोः २, ११९
मह मज्झु ङसि-ङस्भ्याम् ४, ३७९
माइं मार्थे २, १९१
मार्जारस्य मञ्जर- २, १३२
मातुरिद्वा १, १३५

मातृ-पितुः स्वसुः २, १४२
मात्रटि वा १, ८१
मामि हला-हले २, १९५
मांसादिष्वनुस्वारे १, ७०
मांसादेर्वा १, २९
मि मइ ममाइ ३, ११५
मि मे ममं ममए ३, १०९
मि-मो-मु-मे ३, १६७
मि-मो-मर्म्हि-म्हो- ३, १४७
मिरायाम् १, ८७
मिव पिव विव २, १८२
मिश्राड्डालिअः २, १७०
मिश्रेर्वीसाल-मेलवौ ४, २८
मुचेश्छड्डावहेड- ४, ९१
मुः स्यादौ ३, ८८
मुहेर्गुम्म-गुम्मडौ ४, २०७
मृजेरुग्घुस-लुञ्छ- ४, १०५
मृदो मल-मढ-परिहट्ट- ४, १२६
मेथि-शिथिर-शिथिल- १, २१५
मे मइ मम मह ३, ११३
मेः स्सं ३, १६९
मोऽनुस्वारः १, २३
मोऽन्त्यण्णो वेदेतोः ४, २७१
मोऽनुनासिको वो वा ४, ३९७
मो-मु-मानां ३, १६८
मोरउल्ला मुधा २, २१४
मो वा ४, २६४
म्मो वा ३, १५४
म्नज्ञोर्णः २, ४२
म्नश्चेः ४, २४३
म्मावयेऔ वा ३, ८९
म्रक्षेश्चोप्पडः ४, १९१
म्लेर्वा-पव्वायौ ४, १८
म्हो म्भो वा ४, ४१२

[य]

यत्-तत्-किम्भ्यो ४, ३५८
यत्-तदः स्यमोर्ध्रुं ४, ३६०
यत्तदेतदोऽतोरित्तिअ- २, १५६
यत्र-तत्रयोस्त्रस्य ४, ४०४
यमुना-चामुण्डा- १, १७८
यष्ट्यां लः १, २४७
यादृक्-तादृक्-कीदृगी- ४, ४०२
यादृशादेर्दुस्तिः ४, ३१७
यापेर्जवः ४, ४०
यावत्तावज्जीविता १, २७१
यावत्तावतोर्वादेर्मं ४, ४०६
युजो जुञ्ज-जुज्ज- ४, १०९
युध-बुध-गृध- ४, २१७
युधिष्ठिरे वा १, ९६
युवर्णस्य गुणः ४, २३७
युष्मद्यर्थपरे तः १, २४६
युष्मदः सौ तुहुं ४, ३६८
युष्मदस्तं तुं तुवं ३, ९०
युष्मदस्मदोऽञ- २, १४९
युष्मदादेरीयस्य डारः ४, ४३४
योगजाश्चैषाम् ४, ४३०
र्यँ-स्न-ष्टां रिय- ४, ३१४

[र]

रक्ते गो वा २, १०
रचेरुग्गहावह- ४, ९४
रञ्जे रावः ४, ४९
रमेः संखुड्ड-खेड्डो ४, १६८
रस्य लो वा ४, ३२६
र-सोर्ल-शौ ४, २८८
र-ह्रोः २, ९३
राजेरग्घ-छज्ज- ४, १००
राज्ञः ३, ४९
राज्ञो वा चिञ् ४, ३०४
रात्रौ वा २, ८८
रिः केवलस्य १, १४०
रुते रुञ्ज-रुण्टौ ४, ५७
रुध-भुज-मुचां तो ४, २१२
रुद्-नमोर्वः ४, २२६
रुदिते दिना ण्णः १, २०९
रुधेरुत्थङ्घः ४, १३३
रुधो न्ध-म्भौ च ४, २१८
रुषादीनां दीर्घः ४, २३६
रे अरे संभाषणे २, २०१
रो दीर्घात् २, १७१
रोमन्थे रोग्गाल- ४, ४३
रो रा १, १६
र्तस्याऽधूर्तादौ २, ३०
र्यं-स्न-ष्टां ४, ३१४
र्लुकि दुरो वा १, ११५
र्लुकि निरः १, ९३
र्श-र्ष-तप्त-वज्रे २, १०५
र्ह-श्री-ह्री-कृत्स्न- २, १०४

[ल]

लघुके ल-होः २, १२२
ललाटे च १, २५७
ललाटे ल-डोः २, १२३
लस्जेर्जीहः ४, १०३
लात् २, १०६
लाहल-लाङ्गल- १, २५६
लिङ्गमतन्त्रम् ४, ४४५
लिपो लिम्पः ४, १४९
लुक् १, १०
लुग्-भाजन-दनुज- १, २६७
लुगावी क्त-भाव- ३, १५२
लुप्त-य-र-व-श-ष- १, ४३
लुप्ते शसि ३, १८
लुभेः सम्भावः ४, १५३
लो लः ४, ३०८
ल्लो नवैकाद्वा २, १६५

[व]

वक्रादावन्तः १, २६
वचो वोत् ४, २११
वञ्चेर्वेहव-वेलव- ४, ९३
वले निश्चय-विकल्प- २, २०६
वलेर्व्वः २. १५०
वधाड्डाइश्च वा ३, १३३
वन्द्र-खण्डिते णा वा १, ५३
वनिताया विलया २, १२८
वर्गेऽन्त्यो वा १, ३०
वर्तमाना-पञ्चमी- ३, १५८
वर्तमाना-भविष्यन्त्योश्च ३, १७७
वर्त्स्यति-स्यस्य सः ४, ३८८
वल्ल्युत्कर-पर्यन्त- १, ५८
वाऽदसो दस्य ३, ८७
वाऽधो रो लुक् ४, ३९८
वाऽन्यथोऽनुः ४, ४१५
वाऽभिमन्यौ १, २४३
वाऽव्ययोत्खातादावदात- १, ६७
वाऽऽदौ १, २२९
वाऽऽप ए ३, ४१
वा कदले १, १६७
वाक्यर्थ-वचनाद्याः १, ३३
वादेस्तावति ४, २६२
वा निर्झरे ना १, ९८
वा बृहस्पतौ १, १३८
वा यत्तदोऽतोः ४, ४०७
वार्पौ १, ६३
वाव्ययोत्खातादावदातः १, ६७
वालाब्वरण्ये लुक् १, ६६
वा विह्वले वौ २, ५८
वा स्वरे मश्च १, २४
विकसेः कोआस- ४, १९५
विकोशेः पक्खोडः ४, ४२
विगलेस्थिप्प- ४, १७५
विज्ञपेर्वोक्काऽवुक्कौ ४, ३८
वितस्ति-वसति-भरत- १, २१४
विद्युत्-पत्र- २, १७३
विरिचेरोलुण्डो- ४, २६
विलपेर्झङ्ख-वडवडौ ४, १४८
विलीङेर्विरा ४, ५६
विवृतेर्ढंसः ४, ११८
विषमे मो ढो वा १, २४१
विषण्णोक्त-वर्त्मनो ४, ४२१
विसंवदेर्विअट्ट- ४, १२९
विस्मुः पम्हुस-विम्हर- ४, ७५
विश्रमेर्णिव्वा ४, १५९
विंशत्यादेर्लुक् १, २८
वीप्स्यात् स्यादेः ३, १
वृक्ष-क्षिप्तयोः २, १२७
वृत्त-प्रवृत्त-मृत्तिका- २, २९
वृन्ते ण्टः २, ३१
वृश्चिके श्चेञ्चुर्वा २, १६
वृषभे वा वा १, १३३
वृषादीनामरिः ४, २३५
वृषे ढिक्कः ४, ९९
वेणौ णो वा १, २०३
वेतः कर्णिकारे १, १६८
वेदं-किमोर्यादेः ४, ४०८
वेदं तदेतदो ३, ८१
वेपेरायम्बाऽऽयज्झौ ४, १४७
वेमाञ्जल्याद्याः १, ३५
वेव्व च आमन्त्रणे २, १९४
वेव्वे भय-वारण- २, १९३
वेष्टः ४, २२१
वेष्टः परिआलः ४, ५१
वैकाद्: सि सिअं २, १६२
वैडूर्यस्य वेरुलिअं २, १३३
वैतत्तदः ३, ३
वैतदो ङसेस्त्तो ३, ८२
वैरादौ वा १, १५२
वैसेणमिणमो सिना ३, ८५
वोत्तरीयाऽनीय-तीय- १, २४८
वो तुज्झ तुब्भे ३, ९३
वोतो डवो ३, २१
वोत्साहे थो २, ४८
वोदः ४, २२३
वोर्ध्वे २, ५९
वोपरौ १, १०८
वोपेन कम्मवः ४, १११
वौषधे १, २२७
व्यञ्जनाददन्ते ४, २३९
व्यञ्जनादीअः ३, १६३
व्यत्ययश्च ४, ४४७
व्याकरणप्राकाराऽऽगते १, २६८
व्यापेरोअग्गः ४, १४१
व्याप्रेराअड्डः ४, ८१
व्याहृगेः कोक्क- ४, ७६
व्याहृगेर्वाहिप्पः ४, २५३
व्रज-नृत-मदां ४, २२५
व्रजेर्वुञः ४, ३९२
व्रजो जः ४, २९४

[श]

शक्त-मुक्त-दष्ट- २, २
शकादीनां द्वित्वम् ४, २३०
शकेश्चय-तर-तीर- ४, ८६
शत्रानशः ३, १८१
शदो झड-पक्खोडौ ४, १३०
शनैसो डिअम् २, १६८
शबरे बो मः १, २५८
शमेः पडिसा-परिसामौ ४, १६७
शरदादेरत् १, १८
श-षोः सः १, २६०
श-षोः सः ४, ३०९
शार्ङ्गे ङात्पूर्वोऽत् २, १००
शिथिलेङ्गुदे वा १, ८९

शिरायां वा १, २६६
शीकरे भ-हौ वा १, १८४
शीघ्रादीनां वहिल्लादयः ४, ४२२
शीलाद्यर्थस्येरः २, १४५
शुल्के ङ्गो वा २, ११
शुष्क-स्कन्दे वा २, ५
शृङ्खले खः कः १, १८९
शेषेऽदन्तवत् ३, १२४
शेषं प्राकृतवत् ४, २८६
शेषं प्राग्वत् ४, ३२८
शेषं शौरसेनीवत् ४, ३०२
शेषं शौरसेनीवत् ४, ३२३
शेषं संस्कृतवत् ४, ४४८
शैथिल्य-लम्बने ४, ७०
शौरसेनीवत् ४, ४४६
श्यामाके मः १, ७१
श्रदो धो दहः ४, ९
श्रद्धर्द्धि-मूर्धार्धेऽन्ते २, ४१
श्रमे वावम्फः ४, ६८
श्रु-गमि-रुदि-विदि ३, १७१
श्रुटेर्हणः ४, ५८
श्रो हरिश्चन्द्रे २, ८७
श्लाघः सलहः ४, ८८
श्लिषेः सामग्गावयास- ४, १९०
श्लेष्मणि वा २, ५५

[ष]

षट्-शमी-शाव १, २६५
षष्ठ्याः ४, ३४५
ष्क-स्कयोर्नाम्नि २, ४
ष्टस्याऽनुष्ट्रेष्टासंदष्टे २, ३४
ष्प-स्पयोः फः २, ५३

[स]

सङ्ख्या-गद्गदे १, २१९
सङ्ख्याया आमो ३, १२३
सटा-शकट-कैटभे १, १९६
सदृ-पतोर्ढः ४, २१९
सप्ततौ रः १, २१०
सप्त-पर्णे वा १, ४९
सप्तम्या द्वितीया ३, १३७
समनूपाद्रुधेः ४, २४८
समा अब्भिडः ४, १६४
समापेः समाणः ४, १४२
समारचेरुवहत्थ- ४, ९५
समासे वा २, ९७
समो गलः ४, ११३
समो ल्लः ४, २२२
समः स्त्यः खा ४, १५
सम्भावेरासङ्घः ४, ३५
संमर्द-वितर्दि २, ३६
सर्वत्र लवराम् २, ७९
सर्वस्य साहो वा ४, ३६६
सर्वाङ्गादीनस्येकः २, १५१
सर्वादेर्ङसेर्हां ४, ३५५
स-षोः संयोगे ४, २८९
संतपेर्झङ्खः ४, १४०
संदिशेरप्पाहः ४, १८०
संयुक्तस्य २, १
संवृगेः साहर-साहट्टौ ४, ८२
साध्वस-ध्य-ह्यां २, २६
सामर्थ्योत्सुकोत्सवे २, २२
सावस्मदो हउं ४, ३७५
सिचेः सिञ्च-सिम्पौ ४, ९६
सिनास्ते सिः ३, १४६
सी ही हीअ भूतार्थस्य ३, १६२
सुपा अम्हासु ४, ३८१
सुपि ३, १०३
सुपि ३, ११७
सूक्ष्म-श्न-ष्ण- २, ७५
सृजो रः ४, २२९
सेवादौ वा २, ९९
स्तवे वा २, ४६
स्तस्य थोऽसम- २, ४५
स्तोकस्य थोक्क- २, १२५
स्त्यान-चतुर्थार्थे २, ३३
स्त्रिया इत्थी २, १३०
स्त्रियां जस्-शसोः ४, ३४८
स्त्रियां डहे ४, ३५९
स्त्रियां तदन्ताड्डीः ४, ४३१
स्त्रियामादविद्युतः १, १५
स्त्रियामुदोतौ ३, २७
स्थ-र्थयोस्तः ४, २९१
स्थविर-विचकिला- १, १६६
स्थष्ठा-थक्क- ४, १६
स्थाणावहरे २, ७
स्थूणा-तूणे वा १, १२५
स्थूले लो रः १, २५५
स्नमदामशिरो १, ३२
स्नातेरब्भुत्तः ४, १४
स्निग्धे वादितौ २, १०९
स्निहू-सिचोः ४, २५५
स्नुषायां ण्हो १, २६१
स्नेहाग्न्योर्वा २, १०२
स्पन्देश्चुलुचुलः ४, १२७
स्पृशः फास-फंस ४, १८२
स्पृशेश्छिप्पः ४, २५७
स्पृहः सिहः ४, ३४
स्पृहायाम् २, २३
स्फटिके लः १, १९७
स्फुटि-चलेः ४, २३१
स्मरेर्झर-झूर-भर- ४, ७४
स्यम्-जस्-शसां ४, ३४४
स्यमोरस्योत् ४, ३३१
स्यादौ दीर्घ-ह्रस्वौ ४, ३३०
स्याद्-भव्य-चैत्य- २, १०७
स्रंसेर्ल्हस-डिम्भौ ४, १९७

सैन्ये वा १, १५०
सोच्चादयः ३, १७२
सोर्हिर्वा ३, १७४
सौ पुंस्योद् वा ४, ३३२
स्कः प्रेक्षाचक्षोः ४, २९७
स्तब्धे ठ-ढौ २, ३९
स्तम्भे स्तो वा २, ८
स्वपावुच्च १, ६४
स्वपेः कमवस ४, १४६
स्वप्ने नात् २, १०८
स्वप्न-नीव्योर्वा १, २५९
स्वयमोऽर्थे अप्पणो २, २०९
स्वरस्योद्वृत्ते १, ८
स्वराणां स्वराः ४, २३८
स्वराणां स्वराः प्रायो ४, ३२९
स्वरादनतो वा ४, २४०
स्वरादसंयुक्तस्यानादेः १, १७६
स्वरेऽन्तरश्च १, १४
स्वस्रादेर्डा ३, ३५
स्वार्थे कश्च वा २, १६४
स्विदां ज्जः ४, २२४
स्सिं-स्सयोरत् ३, ७४

[ह]

हञ्जे चेट्याह्वाने ४, २८१
हद्धी निर्वेदे २, १९२
हन्-खनोऽन्त्यस्य ४, २४४
हन्द च गृहाणार्थे २, १८१
हरि विषाद-विकल्प— २, १८०
हरिताले र-लोर्न वा २, १२१
हरिद्रादौ लः १, २५४
हरीतक्यामीतोऽत् १, ९९
हरे क्षेपे च २, २०२
हसेर्गुञ्जः ४, १९६
हासेन स्फुटेर्मुरः ४, ११४
हि-स्वयोरिदुदेत् ४, ३८७
हीमाणहे विस्मय— ४, २८२
ही-ही विदूषकस्य ४, २८५
हुं खु निश्चय— २, १९८
हुं चेदुद्भ्याम् ४, ३४०
हुं दानपृच्छा-निवारणे २, १९७
हुहुरु-घुग्घादयः ४, ४२३
हु-कु-सु-आभीरः ४, २५०
हृदये यस्य पः ४, ३१०
हो घोऽनुस्वारात् १, २६४
ह्ये ह्योः २, १२४
ह्वे ह्-वोः २, १२०
ह्रस्वः संयोगे १, ८४
ह्रस्वात् थ्य-श्च-त्स— २, २१
ह्रस्वोऽमि ३, ३६
ह्लादेरवअच्छः ४, १२२
ह्नो ल्हः २, ७६
ह्वो भो वा २, ५७
[आत्मगुरवे नमः]

प्राकृत-व्याकरणस्य चतुर्थ-पादस्य

शब्दसूची

[अ]

अइ (अति) ४, ४२५
अइच्छइ (गच्छति) ४, १६२
अइ-तुङ्गत्तणु (अति-तुङ्गत्वम्)४, ३९०
अइमत्तहं (अतिमत्तानाम्) ४, ३४५
अइरत्तिए (अतिरक्तया) ४, ४३८
अइसो (ईदृशः) ४, ४०३
अईइ (गच्छति) ४, १६२
अंगुलिउ (अङ्गुल्यः) ४, ३५८
अंसु (अश्रु) ४, ४१४, ४३१
अंह्रि (अंघ्रि) ४, २८८,
अक्कन्दइ (आक्रन्दति) ४, १३१
अक्कमइ (आक्रमते) ४, १६०
अक्कुसइ (गच्छति) ४, १६२
अक्खणउं (आख्यातुम्) ४, ३५०
अक्खिवइ (आक्षिपति) ४, १४५
अक्खिहिं (अक्षिभिः) ४, ३५७, ३९६
अक्खोडेइ (कर्षति) ४, १८८
अक्खइ (अक्षये) ४, ४१४
अग्ग (अग्र) ४, ३२६
अग्गओ (अग्रतः) ४, २८३
अग्गइ (अग्रतः) ४, ३९१, ४२२
अग्गलउ (अग्र+ल+कः) ४, ३४१
अग्गलु (अर्गलः) ४, ४४४
अग्गिट्ठउ (अग्निष्ठः) ४, ४२९
अग्गी (अग्निः) ४, ३४३
अग्घइ (अर्हति) ४, ३८५, ४२२
अग्घइ (राजते) ४, १००
अग्घवइ (पूरयति) ४, १६९
अग्घाअइ (आजिघ्रति) ४, १३
अग्घाडइ (पूरयति) ४, १६९
अङ्कुसहं (अङ्कुशानाम्) ४, ३४५, ३८३
अङ्ग, अङ्गु (अङ्ग) ४, ३३२
अङ्गहिं (अङ्गैः) ४, ३३२, ३५७
अङ्गे (अङ्गे) ४, ६३
अङ्गुमइ (पूरयति) ४, १६९
अङ्गुलिउ (अङ्गुल्यः) ४, ३३३

अङ्गुलिओ (अङ्गुल्यः) ४, ३४८
अच्चिन्तिअ (अचिन्तिता) ४, ४२३
अच्छ, अच्छइ (आस्ते) ४, २१५
३८८; अच्छते अच्छति ४, ३१९;
अच्छदे अच्छदि ४, २७४; अच्छउ
४, ४०६
अच्छ (अच्छ) ४, ३५०
अच्छि (आस्त्र) ४, ३८८
अच्छिन्दइ (आच्छिनत्ति) ४, १२५
अज्ज (अद्य) ४, ४१४, ४२३
अज्जु (अद्य) ४, ३४३, ४१८
अज्जो (आर्यः) ४, २६६
अञ्छइ (कर्षति) ४, १८७
अन्नइसिं (अन्यादृशं) ४, २९३
अञ्जली (अञ्जलिः) ४, २९३
अन्नातिसो (अन्यादृशः) ४, २९३
अट्, परिअट्टइ (पर्यटति) ४, २३०
अट्टइ (क्वथ्यते) ४, ११९
अणोहिउं (अनवगाहितम्) ४,
४३९
अणुवज्जइ (क्षिपति) ४, १४३
अणच्छइ (कर्षति) ४, १८७
अणन्तर (अनन्तर) ४, २७७
अणल (अनल) ४, ३९५, ४१५,
४२९
अणाइज्जइ (न ज्ञायते) ४, २५२
अणुत्तर (अनुत्तर) ४, ३७२
अणुदिअहु (अनुदिवसम्) ४, ४२८
अणुरत्ताउ (अनुरक्ताः) ४, ४२२
अणुवच्चइ (अनुव्रजति) ४, १०७
अणुवज्जइ (गच्छति) ४, १६२
अण्हइ (भुनक्ति) ४, ११०
अदिट्ठ (अदृष्ट) ४, ३२३
अत्ता (आत्मा) ४, १२३
अत्थं (मर्थम्) ४, ३१०
अत्थमणि (अस्तमने) ४, ४४४
अत्थहिं (अस्त्रैः) ४, ३५८.
अद्धा (अर्धानि ४, ३५२
अद्धमागह (अर्धमागध) ४, २८७
अध (अथ) ४, ३२३
अधम (अधन्य) ४, ३६७
अधिन्नइ (अधीनाति) ४, ४२७
अनय (अनयः) ४. ४००
अनु (अ यथा) ४, ४१५
अन्तरु (अन्तरम्) ४, ३५०, ४०६,
४०७, ४०८
अन्तेआरि (अन्तश्चारिन्) ४,
२६४
अन्त्रडी (अन्त्र) ४, ४४५
अन्तावेदी (अन्तर्वेदिः) ४, २८६
अन्तेउरं (अन्तःपुरम्) ४, २६१
अन्धारइ (अन्धकारे) ४, ३४९
अन्न (अन्यः) ४, ३७२, अन्नु ४,
३३७, ३५०, ३५४, ४०१,
४११, ४१४, ४१८, ४२२, अन्नं
४, २७७, अन्नें ४, ३७० अन्नहे
४, ४२५, अन्नहिं ४, ३५७,
३८३, ४२२, अन्ने ४, ४९४,
अन्नइं ४, ४२७, अन्नहुँ ४, ४२२
अन्नहु (अन्यत्र) ४, ४१५
अन्नाइसो (अन्यादृशः) ४, ४१३
अपुरव (अपूर्व) ४, २७०
अपुरव, अपुरवं (अपूर्वम्) ४,
२७०, अपुरवे ४, ३०२
अपूरइ (अपूर्णे) ४, ४२२
अप्पणउं (आत्मानम्) ४, ३५०,
३६७, ४२२, ४३० अप्पउ ४,
४२२, अप्पणा ४, ३३८, ३५०,
३६७, अप्पणों ४, ४१६, अप्पण
४, ४२२, अप्पणु ४, ३३७
अप्पणो ४, ३०२, अप्पही ४,
३४६, अप्पाणु ४, ३९६
अप्पाहइ (संदिशति) ४, १८०
अप्पिए (अप्रिये) ४, ३६५
अप्फुण्णा (आक्रान्ताः) ४, २५८
अफलोदया (अफलोदया) ४, २८३
अबह्मञ्ञं (अब्रह्मण्यम्) ४, २९३
अब्भड (अनुगम्य) ४, ३९५
अब्भत्थणि (अभ्यर्थने) ४, ३८४
अब्भा (अभ्राणि) ४, ४४५
अब्भिडइ (संगच्छति) ४, ३८३
अब्भुद्धरणु (अभ्युद्धरणम्) ४,
३६४
अभउ (अभयम्) ४, ४४०
अभग्गु (अभग्नम्) ४, ३८७
अभिमञ्ञु (अभिमन्युः) ४, ३०५
अमच्च (अमात्य) ४, ३०२
अमुं (अमुम्) ४, ४३९
अम्बणु (अम्लत्वम्) ४, ३७६
अम्मडि ! (अम्ब !) ४, ४२४
अम्महे (हर्षे निपातः) ४, २८४,
३०२
अम्मि ! (अम्ब !) ४, ३९५, अ-
म्मीए ४, ३९६
अम्हइं (वयम्, अस्मान्) ४, ३७६,
अम्हहं ४, ३७९, ३८०, ४१७,
४२२, ४३९, अम्हासु ४, ३८१,
अम्हाहँ ४, ३००, अम्हे ४, ३७६,
४२२, अम्हेहिं ४, ७३१, ३७८,
४२२
अम्हातिसो (अस्मादृशः) ४, ३१७
अम्हारा (अस्मदीयः) ४, ३४५,
४३४
अयं (अयम्) ४, ३०२.
अयञ्छइ (कर्षति) ४, १८७

अय्य (अद्य) ४, २९२
अय्य (आर्य) ४, ३०२, अय्यो ४, २७७
अय्यउत्त (आर्यपुत्र) ४, २६६, अय्यउत्तो ४, २६०
अय्यमिस्सेहिं (आर्यमिश्रैः) ४, २८३
अय्या (आर्या) ४, ३०२
अय्युणे (अर्जुनः) ४, २९२
अर्प्, अप्पेइ (अर्पयति) ४, ३९
अरे (अरे) ४, ४१८
अर्ज्, अज्जइ (अर्जति) ४, १०८, अज्जिज्जइ ४, २५२
अलं (अलम्) ४, २७८
अलहन्तिअहे (अलभमानायाः) ४, ३५०
अलिउलइं (अलिकुलानि) ४, ३५३
अले! (अरे!) ४, ३०२
अल्लत्थइ (उत्क्षिपति) ४, १४४
अल्लिअइ (उपसर्पति) ४, १३९
अल्लिवइ (अर्पयति) ४, ३९
अल्लीअइ (आलीयते) ४, ५४
अल्लीणो (आलीनः) ४, ५४
अवअंक्खइ (पश्यति) ४, १८१
अवअच्छइ (ह्लादयति) ४, १२२
अवआसइ (पश्यति) ४, १८१
अवक्खइ (पश्यति) ४, १८१
अवगुणु (अवगुण) ४, ३९५
अवज्जसइ (गच्छति) ४, १६२
अवञ्ञा (अवज्ञा) ४, २९३
अवडयडि (अवटतटे) ४, ३३९
°अवत्थहं (°अवस्थानाम्) ४, ४२२, अवत्थे ४, ३९६
अवयच्छइ (पश्यति) ४, १८१
अवयज्झइ (पश्यति) ४, १८१
अवयासइ (श्लिष्यति) ४, १९०
अवय्य (अवद्य) ४, २८८
अवराइसो (अन्यादृशः) ४, ४१३
अवराहिउ (अपराधितम्) ४, ४४५
अवरि (उपरि) ४, ३३१
अवरेण (अपरेण) ४, ३१५
अवरोप्पर (परस्परम्) ४, ४०९
अवशल (अपसर) ४, ३०२
अवस (अवश) ४, ३७६, ४२७
अवसर (अवसर) ४, ३५८
अवसें (अवश्यम्) ४, ४२७
अवसेहइ (गच्छति) ४, १६२, १७८
अवहइ (रचयति) ४, ९४
अवहरइ (नश्यति) ४, १६३, १७८
अवहावेइ (कृपां करोति) ४, १५१
अवहेडइ (मुञ्चति) ४, ९१
अवुक्कइ (विज्ञापयति) ४, ३८
अस्, म्हि ४, २६६, शि ४, ३०२, त्थु ४, २८३, सन्ता ४, ३८१
असइहिं (असतीभिः) ४, ३९६
असड्ढलु (असाधारणः) ४, ४२२
असणु (अशनम्) ४, ३४१
असार (असारः) ४, ३९५
असुलहु (असुलभ) ४, ३५३
असेसु (अशेषम्) ४, ४४०
अस्तवदी (अर्थपतिः) ४, २९१
अह (अथ) ४, ३३९, ३४१, ३६५, ३६७, ३७९, ३८०, ३९०, ४१६, ४१७, ४२२, ४४२, ४४७
अहं (अहम्) ४, ३०२
अहरु (अधरः) ४, ३३२
अहवइ (अथवा) ४, ४१९
अहवा (अथवा) ४, ४१९
अहिऊलइ (दहति) ४, २०८
अहिपच्चुअइ (आगच्छति) ४, १६३, २०९
अहिमञ्जू (अभिमन्युः) ४, २९३
अहिरेमइ (पूरयति) ४, १६९
अहिलंखइ (काङ्क्षति) ४, १९२
अहिलंघइ (काङ्क्षति) ४, १९२
अहो (अधः) ४, ३६७

[आ]

आअड्डेइ (व्याप्रियते) ४, ८१
आइउ (आयातः) ४, ४३२
आइग्घइ (आजिघ्रति) ४, १३
आइञ्छइ (कर्षति) ४, १८७
आउड्डइ (मज्जति) ४, १०१
आउत्ते (आवुत्तः) ४, ३०२
आएण (एतेन) ४, ३६५
आगमे (आगमः) ४, ३०२
आचस्कदि (आचष्टे) ४, २९७
आढप्पइ (आरभ्यते) ४, २५४
आढवइ (आरभते) ४, १५५
आढवीअइ (आरभ्यते) ४, २५४
आणन्दु (आनन्दः) ४, ४०१
आणहु (आनय) ४, ३४३
आदन्नहं (व्याकुलानाम्) ४, ४२२
आवरइ (आद्रियते) ४, ८४
आप् (परि-उपसर्गपूर्वकम्) पज्जत्तं (पर्याप्तम्) ४, ३६५ पावेमि ४, ३०२, पावइ ४, २३९, पावीसु ४, ३९६, ३९८, पाविअइ ४, ३६६, ४३७, पत्तु (प्राप्तम्) ४, ३३२, पाविअ (प्रापित) ४, ३८७ (सम्-प्र-उपसर्ग-पूर्वकम्) संपत्ता ४, ३०१ (वि-उपसर्ग-पूर्वकम्) वावेइ ४, १४१ (सम्-उपसर्ग-पूर्वकम्)

समावेइ ४, १४२, समप्पइ, ४, ४२२, समप्पउ ४, ४०१, समत्तु ४, ३२२, ४२०

आभासइ (आभाषते) ४, ४४७

आयइँ (इमानि) ४, ३६५ आयहों ४, ३६५ आएण ४, ३६५ आयहिँ ४, ३८३

आयज्झइ (वेपते) ४, १४७

आयम्बइ (वेपते) ४, १४७

आयर (आदरः) ४, ३४१, आयरेण ४, ४२२

आयुधं (आयुधम्) ४, ३२४

आरभइ (आरभते) ४, १५५

आरम्भइ (आरभते) ४, १५५

आरुहइ (आरोहति) ४, २०६

आरोअइ (उल्लसति) ४, २०२

आरोलइ (पुञ्जति) ४, १०२

आलवणु (आलपनम्) ४, ४२२

आलिहइ (स्पृशति) ४, १८२

आलु (अलीकम्) ४, ३७९, ४२२

आलुंखइ (स्पृशति) ४, १८२, २०८

आवइ (आपद्) ४, ४००, ४१९

आवइ (आयाति) ४, ३६७, आवहि ४, ४२२

आवट्टइ (आवर्तते) ४, ४१९

आवलि (आवलिः) ४, ४४४

आवास (आवास) ४, ४४२

आवासिउ (आवासितः) ४, ३५७

आस (आशा) ४, ३८३

आसंघइ (संभावयति) ४, ३५

आहइ (काङ्क्षति) ४, १९२

आहम्मइ (आहन्यते) ४, १६२

आहोडइ (ताडयति) ४, २७

[इ]

इ (अपि) ४, ३८३, ३८४, ३९०, ४३९

इ. एइ (एति) ४, ४०६, एसी ४, ४१४, एन्तु ४, ३५१ (आ-उपसर्ग-पूर्वकम्) एहु ४, २६५, ३०२

इअर (इतरः) ४, ४०६

इणं (इदम्) ४, २७९

इत्तउं (इयत्) ४, ३९१

इत्थ (अत्र) ४, ३२३

इदो (इतः) ४, ३०२

इध (इह) ४, २६८

इन्दनीलउ (इन्द्रनीलः) ४, ४४४

इमु (इदम्) ४, ३६१

इयर (इतरः) ४, ४०६

इष्, इच्छइ (इच्छति) ४, २१५, इच्छहु ४, ३८४, इच्छहु ४, ३८४, एच्छण ४, ३५३ इट्ठो ४, ३५८ (सम्-प्र-उपसर्गपूर्वकम्) संपेसिया ४, ४२४

इह (इह) ४, २६८, ४१९

[ई]

ईक्ष् (प्रति-उपसर्गपूर्वकम्) पडिक्खइ (प्रतीक्षते) ४, १९३

ईदिसाहं (ईदृशानाम्) ४, २९९

[उ]

उअ (पश्य) ४, ३०६

उअही (उदधिः) ४, ३९५

उक्कुक्कुरइ (उत्तिष्ठति) ४, १७

उक्कुसइ (गच्छति) ४, १६२

उक्कोसं (उत्कृष्टम्) ४, २५८

उक्खिवइ (उत्क्षिपति) ४, १४४

उखुडइ (तुडति) ४, ११६

उग्गइ (उद्घाटयति) ४, ३३

उग्गहइ (रचयति) ४, ९४

उग्घुसइ (मार्ष्टि) ४, १०५

उङ्घइ (निद्राति) ४, १२

उच्चुपइ (चटति) ४, २५९

उच्छङ्गे (उत्सङ्गे) ४, ३३६

उच्छल्लन्ति (उच्चलन्ति) ४, ३२६

उज्जाण (उद्यान) ४, ४२२

उज्जुअ (ऋजुक) ४, ४१२

उज्जेणिहि (उज्जयिनीम्) ४, ४४२

उज्झ्, उज्झिअ (उज्झित) ४, ३०२

उट्ठइ (उत्तिष्ठति) ४, १७

उट्ठुभइ (उत्स्तभ्नाति) ४, ३६५

उट्ठुवईस (उत्तिष्ठोपविश) ४, ४२३

उड्डावन्तिअए (उड्डापयन्त्या) ४, ३५२

उड्डीणो (उड्डीनः) ४, २३७

उड्डेइ (उड्डयते) ४, २३७ उड्डेन्ति ४, २३७

उण्हउ (उष्णम्) ४, ३४३

उण्हत्तणु (उष्णत्वम्) ४, ३४३

उत्थंघइ (रुणद्धि) ४, १३३

उत्थंघइ (उत्क्षिपति) ४, ३६, १४४

उत्थल्लइ (उच्छलति) ४, १७४

उत्थारइ (आक्रमते) ४ १६०

उद्दालइ (उद्दालयति) ४, १२५

उद्धब्भुअ (ऊर्ध्वभुजा) ४, ४४४

उद्धुमाइ (उद्धमति) ४, ८, १६९

उद्धूलेइ (उद्धूलयति) ४, २९

उप्पासं (उत्पाशम्) ४, ३७२

उप्परि (उपरि) ४, ३३४

उप्फालइ (कथयति) ४, २

उप्पेलइ (उन्नामयति) ४, ३६

उब्बुक्कइ (उद्बुक्कति) ४, २

उम्मावइ (रमते) ४, १६८
उब्भुअइ (उद्भवति) ४, ६०
उम्मुसइ (उत्क्षिपति) ४, १४४
उमच्छइ (वञ्चयति) ४, ९३
उम्मत्थइ (अभ्यागच्छति) ४, १६५
उम्मिल्लइ (उन्मीलयति) ४,३५४
उरे, उरम्मि, उरसि (उरसि) ४, ४४८
उल्लसइ (उल्लसति) ४, २०२
उल्लालइ (उन्नामयति) ४, ३६
उल्लालिउ (उल्लालितः) ४, ४२२
उल्लुक्कइ (त्रुट्यति) ४, ११६
उल्लुण्डइ (विरिणक्ति) ४, २६
उल्लुहइ (निःसरति) ४, २५९
उल्लूरइ (त्रुट्यति) ४, ११६
उल्हवइ (निर्वापयति) ४, ४१६
उवमिअइ (उपमीयते) ४, ४१८
उवालम्भइ (उपालभते) ४, १५६
उवेल्लइ (प्रसरति) ४, ७७
उव्वत्ता (उद्वृत्ते) ४, ४१४
उव्वरिअ (उर्वरित) ४, ३७९
उव्वामइ (उद्वाति) ४, २४०
उव्वाइ (उद्वाति) ४, ११, २४०
उव्वारिज्जइ (उद्वार्यते) ४, ४३८
उव्विवइ (उद्विजति) ४, २२७
उव्वेढइ (उद्वेष्टयति) ४, २२३
उव्वेल्लइ (उद्वेष्टयति) ४, २२३
उव्वेवो (उद्वेग.) ४, २२७
उसुम्भइ (उद्धूनति) ४, २९५
उस्मा (उष्मा) ४, २८९
उस्सिक्कइ (मुञ्चति,उत्क्षिपति) ४, ९१, १४४

[ऊ]

ऊसलइ (उल्लसति) ४, २०२
ऊसासेहिं (उच्छ्वासैः) ४, ४३१
ऊसुम्भइ (उल्लसति) ४, २०२

[ए]

एउ (एतत्) ४, ४३८, **एइ** ४, ३३०, ३४४, ३६३, ४१४, **एआए** ४, २८४, ३०२
एकातस (एकादश) ४, ३२६
एक्क (एक) ४,३७१, ३८३, ४१९, ४२२, ४२९, ४३१ ; **एक्कु** ४, ४२२ ; **एक्कसि** ४, ४२८ ; **एक्कहिं** ४, ३३१, ३५७, ३९६, ४२२
एक्कमेक्कउं (एकैकम्) ४, ४४२
एक्कसि (एकदा) ४, ४२८
एच्चुण (एवमुस्) ४, ३५३
एतिसो (ईदृशः) ४, ३१७, **एतिसं** ४, ३२३
एत्तहे (अत्र) ४, ४१९, ४२०, ४३६
एत्तिउ (इयत्) ४, ३४१
एत्तुलो (इयान्) ४, ४०८, ४३५
एत्थ (अत्र) ४, १२३, २६५
एत्थु (अत्र) ४, ३३०, ३८७, ४०४, ४०५
एदं (एतत्) ४, २६१ **एदेण** ४, २८२, ३०२ **एदिणा** ४, २७८, **एदाओ, एदाहि** ४, २६०
एम्व (एवम्) ४, ३७६, ४१८
एम्वइ (एवम्) ४, ३२२, ४२०, ४४१
एम्वइँ (एवम्) ४, ४२१, ४२३
एम्वहिं (इदानीम्) ४, ३८७, ४२०
एलिसाहं (ईदृक्षाणाम्) ४, ३२९
एवडु (इयत्) ४, ४०८
एवं (एवम्) ४, २७९, ३२२
एवंविधाए (एवंविधया) ४, ३२३
एशे (एषः) ४, २८७, ३०२
एस (एषः) ४, ४४७, **एसो** ४, २८० **एसा** ४, ३२०
एहु (एषः) ४, ३३०, ३४४, ३६२, ३६३, ४१९, ४२५, **एहु** ४, ३६२, ३९५, ४०२, ४२२ **एही** ४. ३६२, ३९१, **एहा** ४, ४४५
एहउं (एतद्) ४, ३६२

[ओ]

ओ (अव, अप, उत) ४, ४०१
ओअक्खइ (पश्यति) ४, १८१
ओअग्गइ (व्याप्नोति) ४, १४१
ओअन्दइ (आच्छिनत्ति) ४, १२५
ओअरइ (अवतरति) ४, ८५
ओइ (अमूनि) ४, ३६४
ओगाहइ (अवगाहयति) ४, २०५
ओग्गालइ (रोमन्थयति) ४, ४३
ओम्वालइ (छादयति) ४,२१,४१
ओरसइ (अवतरति) ४, ८५
ओहम्माइ (उद्वाति) ४, ११
ओलुण्डइ (विरेचयति) ४, २६
ओवासइ (अवकाशति) ४, १७९
ओवाहइ (अवगाहयति) ४, २०५
ओशलध (अपसरत) ४, ३०२
ओसुक्कइ (तिजति) ४, १०४
ओहइ (अवतरति) ४, ८५
ओहट्टइ (अपक्रमते) ४, ४१९
ओहामइ (तुलयति) ४, २५
ओहावइ (आक्रमते) ४, १६०
ओहीरइ (निद्राति) ४, १२

[क]

क (किम्) ४, ३५०, ४२२, ४४५,

क वि ४, ३७७, ४०१, ४२०, ४२२, को ४,३७०,३९६, ४२२, ४३८, ४३९, ४४१, को इ ४, ३८४, को वि ४, ४२२, का ४, ३२० का वि ४. ३९५, कि ४, ३४०, किं ४,२६५, २७९,३०२, ३६५, ३६७,४२२,४३४,४३९, ४४५, कि पि ४, ३१०, ३९१, ४१८, ४३८, कइँ ४, ४२६ के ४, ३७६ के वि ४, ३८७, ४१२, कस्सु ४, ४४२, कासु ४, ३५८, कहे ४, ३५९, कहिँ ४, ४३६
कइ (कति) ४, ४२०
कइलो (कीदृशः) ४, ४०३
कउ (कुलः) ४, ४१६, ४१८
कंखइ (काङ्क्षति) ४, १९२
कङ्गुहे (कङ्गोः) ४, ३६७
कच्चु (कच्चित्) ४, ३२९
कज्ज (कार्यं) ४, २६६, ४०६, कज्जु ४, ३४३, कज्जें ४, ३६७
कञ्चण (काञ्चन) ४, ३९६
कञ्चुइआ ! (कञ्चुकिन् !) ४, २६३, ३०२
कञ्चुआ (कञ्चुकम्) ४, ४३१
कञ्ञका (कन्यका) ४, २९३, ३०५
कटरि (आश्चर्यम्) ४, ३५०
कटारइ (कटारिकायाम्) ४,४४५
कडु (कटु) ४, ३३६
कढइ (क्वथ्यते) ४, ११९, २२०
कड्डइ (कर्षति) ४, १८७
कड्ढउ (कर्षामि) ४, ३८५
कणइ (कणके) ४, ४४४
कणइ (कणति) ४, २३९
कणिआ (कणिका) ४, ४१९
कणिआरो (कर्णिकारः) ४, ३९६
कण्ठि (कण्ठे) ४, ४२०, ४४४, ४४६
कण्णडइ (कर्णे) ४, ४३२, ४३३, कण्णहिं ४, ३४०
कत-सिनानेन (कृत-स्नानेन) ४, ३२२
कथ्, कहइ (कथयति) ४, २ कधेदि कहेदि ४, २६७, कधेहि ४, ३०२, कधिदु ४, ३९६ कधितून ४, ३१२ कत्थइ ४, २४९, कहि, कहिँ ४, ४२२, कहिज्जइ ४, २४९
कधं (कथम्) ४, २६७, ३२३
कन्दप्पो (कन्दर्पः) ४, ३२५
कन्ति (कान्ति) ४, ३९६, कन्तिए ४, ३४९
कन्तु (कान्तः) ४, ३४५, ३५१, ३५७,३५८, ३६४, ३८३,४१८, ४३४, कन्तस्सु ४, ४४५,कन्तहा ४, ३७९, ३८९, ३९५, ४१६, ४२९
कप्पिज्जइ (कल्प्यते) ४, ३५७
कमल (कमलम्, ४, ३०८, ३३२, ३९७, ४१४, कमलइं ४, ३५३
कमवसइ (स्वपिति) ४, १४६
कम्प् (धातुः) कम्पेइ (कम्पते) ४, ४६, कम्पिता ४, ३२६, (अनु-उपसर्ग-पूर्वकम्) अणुकम्पणीआ ४, २६०
कम्मइ (क्षुरं करोति) ४, ७२
कम्मवइ (उपभुनक्ति) ४, १११
कम्माहं (कर्मणाम्) ४, २९९ कम्माहं ४, ३००
कम्मेइ (भुनक्ति) ४, ११०
कयन्ते (कृतान्तः) ४, ३०२
कयम्बो (कदम्बः) ४, ३८७ कयम्बु ४, ३८७
कयरो (कतरः) ४, २८७
कर्, करेमि (करोमि) ४, २६५, कलेमि ४,२८७, करेइ ४, ३३७, ४१४, ४२०, ४२२, करइ ४, ६५, २३४, २३९, ३३८, करदि ४, ३६०, करन्ति ४,३७६,४४५, करहि ४, ३८९, ४१४, करु ४, ३३०,करहि ४,३८५,४१८, करे ४, ३८७, करहु ४, ३४६,४२७, करेध ४, २६०, करिस्सदि ४, २७५, करीसु ४, ३९६, कीसु ४, ३८९, कड्डउं ४, ३८५, काहं ४, २६५, काहिइ ४, २१४, कासी, काही, काहीअ ४, २१४, किज्जदि, किज्जदे ४, २७४, करिज्जइ ४,२५०, कीरइ ४, २५०, कीरते ४,३१६,किज्जउं ४,३३८, ३८५, ३८९, ४११, ४४५, काउं ४, २१४, करउं ४, ३७०, करण ४, ४४१, करि ४,३५७, करिअ ४, २७२, कडुअ ४, २७२, ३०२ कारदूण ४, २७२, काऊण ४, २१४, कलिअ ४, ३०२, करेवि ४, ३४०, करेप्पिणु ४, ३९६, कायव्व ४, २६५, कयउ ४,४२९, कय ४, ४२२, कत ४, ३२३, कदं ४, २९०, किदु ४, ४४६, किअउ ४, ३७१, ३७८, अकिआ ४, ३९६, करणीअं ४, २७७, कायव्व ४, २१४, करिएव्वउं ४, ४३८, करन्त ४, ४३१, करतु ४, ३८८, करन्तहो ४,

४००, कराविधा ४, ४२३
कर (कर) ४, ४१८, ४३९, ३९५, करि ४, ३५४, ३८७, करहिं ४, ३४९
करग्ग (कराग्र) ४, ४२२
करञ्जइ (भनक्ति) ४, १०६
करवालु (करवालः) ४, ३५४, ३७९, ३८७
करालिअउ (करालितः) ४, ४१५, ४२९
करि (करि) ४, ३५३
करिसइ (कर्षति) ४, १८७, २३५
कलइ (जानाति) ४, २, ५९
कलाङ्कुअहं (कलाङ्कुरानाम्) ४, ४२८
कलयलो (कलकलः) ४, २२०, कलयले ४, ३०२
कलहिअउ (कलहायितः) ४, ४२४
कलिहि (कलौ) ४, ३४१
कलिजुगि (कलियुगे) ४, ३३८, ३७५, ४१०
कली (करी) ४, २८७
कवे (करः) ४, २८८
कलेवरहो (कलेवरस्य) ४, ३६५
कवइ (कवति) ४, २३३
कवण (किम्) ४, ३५०, ३६७, कवणु ४, ३९५, कवणेण ४, ३६७, कवणहिँ ४, ४२५
कवरि (कवरी) ४, ३८२
कवल (कवल) ४, ३८७, कवले ४, २८९
कवँलु (कमलम्) ४, ३९७ कँवलि ४, ३९५
कवालु (कपालम्) ४, ३८७
कवोलि (कपोले) ४, ३९५
कस् (वि-उपसर्ग-पूर्वकस्य कस्-धातोः रूपमिदम्) विअसइ (विकसति) ४, १९५, विहसन्ति (विकसन्ति) ४, ३६५
कसट्टं (कष्टम्) ४, ३१४
कसरक्केहिं (कसरक्कशब्दं कृत्वा) ४, ४२३
कसवट्टइ (कषपट्टके) ४, ३३०
कसाय-य (कषाय) ४, ४४०
कस्टं (कष्टम्) ४, २८९
कह वि (कथमपि) ४, ३७०, ४३६
कहं (कथम्) ४, २६७
कहन्तिहु (कुतः) ४, ४१५, ४१६
कहां (कस्मात्) ४, ३५५
कहिं (कुत्र) ४, ३०२, ३५७, ४२२, कहिं पि ४, ४२२
काइँ (किम्) ४, ३४९, ३५७, ३६७, ३७०, ३८३, ४१८, ४२१, ४२२, ४२८, ४३४
काकच (कश्चित्) ४, ३२९
काढं (गाढम्) ४, ३२५
कामहो (कामस्य) ४, ४४६
कामेइ (कामयते) ४, ४४
काय (काय) ४, ३५०
कायर (कातर) ४, ३७६
कालक्खेवें (कालक्षेपेण) ४, ३५७
कालि (काले) ४, ४१५, ४२२, ४२४
काली (कारी) ४, २९९
कावालिय (कापालिक) ४, ३८७
किणइ (कीणाति) ४, ५२
कित्ति (कीर्ति) ४, ३३५, ३४७, ४००, ४१८
किलिउ (कियत्कालम्) ४, ३८३
किदु (कृतम्) ४, ४४६
किध (कथम्) ४, ४०१
किन्नओ (किलन्नम्) ४, ३२९
किर (किल) ४, ४१९
किरितटं (गिरितटम्) ४, ३२५
किल (किल) ४, २९२
किलिकिञ्चइ (रमते) ४, १६८
किलिन्नओ (किलिन्नकः) ४, ३२९
किवँ (कथम्) ४, ४०१, ४२२
किवणु (कृपणः) ४, ४१९
किह (कथम्) ४, ४०१
किहे (कस्मात्) ४, ३५६
कीलदि (क्रीडति) ४, ४४२
कुक्कइ (व्याहरति) ४, ७६
कुज्झइ (कुध्यति) ४, १३५ २१७
कुञ्जर (कुञ्जर) ४, ३८७, कुञ्जरु ४, ४२२
कुटुम्बकं (कुटुम्बम्) ४, ३११
कुट्टणु (कुट्टनम्) ४, ४३८
कुडीरइ (कुटीरके) ४, ३६४
कुडुम्बउ (कुटुम्बकम्) ४ ४२२
कुडुल्ली (कुटी) ४, ४२२, ४२९, ४३१
कुड्ड (कुतूहल) ४, ३९६
कुणइ (करोति) ४, ६५
कुतुम्बकं (कुटुम्बकम्) ४, ३११
कुमारी (कुमारी) ४, ३६२
कुमाले (कुमारः) ४, २९३, ३०२
कुम्भ (कुम्भ) ४, ४४७, कुम्भे ४, २९९, कुम्भइँ ४ ३४५, ४४५
कुम्भयडि (कुम्भतटे) ४, ४०६
कुम्भिला (कुम्भिल) ४, ३०२
कुरल (कुरल) ४, ३८२
कुलं (कुलम्) ४, ३०८, कुलु, ३६१
कुसुम (कुसुम) ४, ३२२, ४४४
कुसुमदाम (कुसुमदाम) ४, ४४६

कुसुमाउह ! (कुसुमायुध!) ४,२६४
कुहइ (कुथ्यति) ४, ३६५
कुदन्तहो (कृतान्तस्य) ४, ३७०
केत्तिअं (कियत्) ४, ३८३
केत्तुलो (कियत्) ४, ४०८, ४३५
केत्थु (कुत्र) ४, ४०५
केम्व (कथम्) ४, ४१८
केरउ (सम्बन्धी) ४, ३५९, केरउँ ४, ३७३, केरए ४, ४२२
केलायइ (समारचयति) ४, ९५
केलि (केलि) ४, १५७
केवँ (कथम्) ४, ३४३
केवँइ (कथंचित्) ४, ३९०, ३९६, ३९८
केवडु (कियत्) ४, ४०८
केसकलाउ (केशकलापः) ४, ४१४
केसरि (केसरी) ४, ३३५, ४२०
केसहिँ (केशैः) ४, ३७०
केहउ (कीदृक्) ४, ४०२
केहिं (तादर्थ्ये) ४, ४२५
कोआसइ (विकसति) ४, १९५
कोक्कइ (व्याहरति) ४, ७६
कोट्टरइं (कोटराणि) ४, ४२२
कोट्टुमइ (रमते) ४, १६८
कोड्डेण (कौतुकेन) ४, ४२२
कोदण्डु (कोदण्डम्) ४, ४४६
कोन्तु (कुन्तः) ४, ४२२
कोट्टागारं (कोष्ठागारम्) ४, २१०

[ख]

खउरइ (क्षुभ्यति) ४, १५४
खग्ग, (खड्ग) ४, ३३०, ३८६, ४११, खग्गु ४, ३५७, खग्गें ४, ३५७
खचइ (खचति) ४, ८९
खड्डइ (मृद्नाति) ४, १२६
खणिज्जइ, खम्मिहिइ (खनिष्यति) ४, २४४
खणु (क्षणः) ४, ४४६, खणेण ४, ३७१, खणें ४, ४१९
खण्डइ (खण्डयति) ४, ३६७, ४२८, खण्डिउ ४, ४१८
खण्डु (खण्डम्) ४, ४४४, खण्डइँ ३४०
खण्डी (खण्डम्) ४, ४२३
खन्ति (क्षान्तिः) ४, ३७२, ४४५
खन्धस्सु (स्कन्धात्) ४, ४४५
खम्भि (स्तम्भे) ४, ३९९
खम्मइ (खन्यते) ४, २४४
खम्मिहिइ (खनिष्यते) ४, २४४
खम्मो (धर्मः) ४, ३२५
खय (क्षय) ४, २९६
खयगालि (क्षयकाले) ४, ३७७, ४०१
खर (खर) ४, ३४४
खल (खल) ४, ३४०, ३६७, ४०६, ४१८, खलाइं ४, ३३४, खलु ४, ३३७, ४२२
खल्लिहडउं (खल्वाटम्) ४, ३८९
खसफसिहूअउ (व्याकुलीभूतः) ४, ४२२
खाअइ (खादति) ४, २२८, खाइ ४, २२८, ४१९, खादन्ति ४, २२८, खन्ति ४, ४४५, खाहि ४, ४२२, खाहिइ ४, २२८, खज्जइ ४,४२३, खाओ ४,२२८
खाइं (अनर्थको निपातः) ४,४२४
खिज्जइ (खिद्यति) ४,१३२, २२४
खिरइ (क्षरति) ४, १७३
खिवइ (क्षिपति) ४, १४३
खु (खलु) ४, ३०२
खुट्टइ (तुडति) ४, ११६
खुडइ (तुडति) ४, ११६
खुडुक्कइ (शल्यायते) ४, ३९५
खुप्पइ (मज्जति) ४, १०१
खुब्भइ (क्षुभ्यति) ४, १५४
खेड्डइ (रमते) ४, १६८
खेड्डयं (क्रीडा) ४, ४२२
खेल्लन्ति (क्रीडन्ति) ४, ३८२
खोडि (दोषः) ४, ४१९

[ग]

गइ (गति) ४, ३६७, ४०६
गङ्ग (गङ्गा) ४, ४४२, गङ्गा ४, ३९९, ४१९
गज्जइ (गर्जति) ४, ९८; गज्जहिं ३६७, गज्जु ४, ४१८
गड्डिअउ (पीडितः) ४, ४०९
गडुअ (गरवा) ४, २७२, ३०२
गढइ (घटति) ४, ११२
गणइ (गणयति) ४, ३५८, गणन्ति ४, ४१४, ३५३, गणन्तिए ४, ३३३
गण्ठइ (ग्रथ्नाति) ४, १२०
गण्ठी (ग्रन्थिः) ४, १२०
गण्डत्थलि (गण्डस्थले) ४, ३५७
गण्डाइं (गण्डान्) ४, ३५३
गती (गतिः) ४, ३२७
गन (गण) ४, ३०६
गम्, गच्छइ (गच्छति) ४, १६२, २१५, गच्छति, गच्छते ४,३१९, गच्छदि, गच्छदे ४, २७४, गच्छ ४, २९५, गच्छिस्सिदि ४, २७५, गमिही ४, ३३०, गम्मइ, गमिज्जइ ४,२४९, गमिस्सिदि, गमिहिइ ४, २४९, गच्छिय, गच्छिऊण ४, २७२, गन्तुनं ४, ३१२,

गच्छ ४,२७२, ३०२, गच्छिएग्गु, गम्मिष, गमेप्पि, गमेप्पिणु ४, ४४२, गउ ४, ४४२, गउं ४, ४२६, गय ४, ३५२, गय त ४, ४२२, गया ४, ३७६, गयहिं ४, ३७०, ३७७, गलो ४, ३२२, गदे ४, ३०२, गदो ४, ३८९, ३९० (आङ्-उपसर्गपूर्वकः गम्धातुः) आगच्छइ ४, १६३,२८७,आगच्छदि ४, ३०२, आगच्छमानो ४,३२३,आगदो ४,३५५, ३७२, ३७३, आगदे ४, २९२, आगदं ४, २७०, (प्रत्याङ्-उपसर्ग-पूर्वकः गम्धातुः) पच्चागच्छइ ४,१६५ (प्रत्याङ्-उपसर्ग-पूर्वकः गम्धातुः) पच्चागच्छइ ४,१६६ (निस्-उपसर्ग-पूर्वकः गम्धातुः) णिग्गउ ४, ३३१ (सम्-उपसर्ग-पूर्वकः गम्धातुः) संगच्छइ ४, १६४
गमेलइ (गवेषयति) ४, १८९
गय (गज) ४ ३३५, ३४५, ३८३, ३९५, ४१८, ४३९, ४४५
गयणि (गगने) ४, ३९५
गयणयलु (गगनतलम्) ४, ३७६
गज्जदि (गर्जति) ४, २९२
गरुआ (गुरुका) ४, ३४०
गल्, गलइ (गलति) ४, ४१८, गलन्ति ४, ४०६, (नञ्-पूर्वकः गल्धातुः) अगलिअ ४, ३३२, (वि-उपसर्ग-पूर्वकः गल्धातुः) विगलइ ४, १७५
गलत्थइ (क्षिपति) ४, १४३
गलि (गले) ४, ४२३
गवक्खेहिं (गवाक्षेषु) ४, ४२३
गवेसइ (गवेषयति) ४,१८९,४४४
गसइ (ग्रसति) ४, २०४
गह (ग्रह) ४, ३८५
गहनं (गहनम्) ४, ३२३
गहीरिम (गभीरिमाणम्) ४, ४१९
गा, गाइ, गायइ (गायति) ४, ६, गिज्जते ४, ३१५
गाणं (गानम्) ४, ६
गामहं (ग्रामाणाम्) ४, ४०७
गिज्झइ (गृध्यति) ४, २१७
गिम्हो ४, (ग्रीष्मः) ४, ४१२
गिम्हु (ग्रीष्मः) ४, २८९, गिम्हु ४, ३५७
गिय्यते (गीयते) ४, ३१५
गिरि (गिरि) ४, ३३७, ४४५, गिरिहे ४, ३४१
गिलणमणु (गिलनमनाः) ४,४४५
गिलि गिलि (गिल गिल) ४,३९६
गिलिज्जइ (गिल्यते) ४, ३७०
गिली (गिरिः) ४, २८७
गुञ्जइ (हसति) ४, १९६
गुञ्जल्लइ (उल्लसति) ४, २०२
गुञ्जोल्लइ (उल्लसति) ४, २०२
गुट्ठ (गोष्ठी) ४, ४१६
गुण (गुण) ४, २९२,३३८, ३७२, ४१४, गुणु ४, ३९५, गुणहिं ४, ३३५, ३४७, ४००, ४१८
गुणइ (गुणयति) ४, ४२२
गुण्ठइ (उद्धूलयति) ४, २९
गुन (गुण) ४, ३०६ गुनेन ४, ३०६
गुप्, गोवइ (गोपायते) ४, ३३८, गुप्पइ ४, १५०, जुउच्छइ, जुगुच्छइ (जुगुप्सते) ४, ४ (वि-उपसर्ग-पूर्वकः गुप्धातुः) विगुत्ताइं ४, ४२१
गुम्मइ (मुह्यति) ४, २०७
गुम्मडइ (मुह्यति) ४, २०७
गुरु (गुरु) ४, ४४४
गुलगुञ्छइ (उन्नामयति) ४, ३६, १४४
गुललइ (चाटुकरोति) ४, ७३
गोट्ठा (गोष्ठस्थाः) ४, ४२३
गोरडी (गौरी) ४, ३९५, ४२०, ४३१, ४३९
गोरि (गौरी) ४,३२९,३८३, गोरी (गौरी) ४, ३९६, ४०१, ४१८, गोरिहे ४, ३९५, गोरीअहिं ४, ४१४
गोली (गौरी) ४, ३२६
ग्रह्, गेण्हइ (गृह्णाति) ४, २०९, गुण्हइ ४, ३३६, गृह्णन्ति ४, ३४१, घेप्पइ ४, २५६, ३४१, घेप्पन्ति ४, ३३५, गेण्हिज्जइ ४, २५६, गेण्हिअ ४, २१०, घेत्तूण, ४, २१०, गृण्हेप्पिणु ४, ३९४, ४३८, घेत्तुं, घेत्तूण, घेत्तव्वं ४, २१०

[घ]

घइं (अनर्थको निपातः) ४, ४२४
घंघलइ (क्लेशः) ४, ४२२
घट्, घडइ (घटति) ४, ११२, घडदि ४, ४०४, घडेइ ४, ५०, घडावइ ४, ३४०,४११, घडिअ ४,४१४,घडिअउ ४,३३१ (उद्-उपसर्ग-पूर्वकः घट्धातुः) उग्घाडइ ४, ३३ (सम्-उपसर्ग-पूर्वकः घट्धातुः) संघडइ ४, ११३
घड (घटाः) ४, ३५७,३९५, ४३९
घडुक्कच (घटोत्कच) ४, २९९
घण (घन) ४, ३८७, ४१४,४३८,

घणा ४, ४२२, ४३९
घणाइ (घृणायते) ४, ४४५
घत्त (घातम्) ४, ४१४
घत्तइ (क्षिपति) ४, १४३, **घत्तइ** (गवेषयति) ४, १८९
घम्मो (घर्मः) ४, ३२८
घर (गृहम्) ४, ३६४, घरु ४, ३४१, ३४३, ३५१, ३६७, ४२२, घरि ४, ४२३, ४३६, घरहिं ४, ४२२
घरिणि (गृहिणी) ४, ३७०
घल्लइ (क्षिपति) ४, ३३४, ४२२, घल्लन्ति ४, ४२२
घाउ (घातः) ४, ३४६
घुग्घिउ (चेष्टाम्) ४, ४२३
घुडुक्कइ (गल्यायते) ४, ३९५
घुण्टेहिं (घुट्शब्दं कृत्वा) ४, ४२३
घुम्मइ (घूर्णते) ४, ११७
घुलइ (घूर्णते) ४, ११७
घुसलइ (मथ्नाति) ४, १२१
घोट्टइ (पिबति) ४, १०
घोडा (अश्वाः) ४, ३३०, ३४४, ३६३
घोलइ (घूर्णते) ४, ११७

[च]

च (च) ४, २६५, ३२१, ३२२, ३२३
चउ (चतुर्) ४, ३३१
चउमुहु (चतुर्मुखः) ४, ३३१
चक्कें (चक्रेण) ४, ४४४
चक्खिअं (आस्वादितम्) ४, २५८
चच्चरं (जर्जरम्) ४, ३२५
चच्छिक्कं (स्थासकम्) ४, १७४
चच्चुप्पइ (अर्पयति) ४, ३९
चच्छइ (तक्ष्णोति) ४, १९४
चञ्चलु (चञ्चलम्) ४, ४१८
चडइ (आरोहति) ४, २०६, ४१०, चडिअउ ४, ३३१ चडिआ ४, ४४५
चडक्क (चटात्कारः) ४, ४०६
चडाहुं (आरोहामः) ४, ४३९
चडुप्फइ (भुनक्ति) ४, ११०, चड्डइ (मृद्नाति) ४, १२६
चड्डइ (पिनष्टि) ४, १८५
चतुरिके ! (चतुरिके !) ४, २८१
चतुलिके ! (चतुरिके !) ४, ३०२
चन्दिमए (चन्द्रिकया) ४, ३४९
चमढइ (भुनक्ति) ४, ११०
चम्पय (चम्पक) ४, ४४४
चम्पावण्णी (चम्पकवर्णी) ४, ३३०
चम्पिज्जइ (आक्रम्यते) ४, ३९५
चयइ (त्यजति) ४, ८६, चय ४, ४२२, चएप्पिणु ४, ४१८, चएप्पिणु ४, ४४१, चत्त ४, ३४५, ३८३, चयइ (शक्नोति) ४, ८६
चरि (चर) ४, ३८७
चलइ (चलति) ४, २३१
चलण (चरण) ४, ३९९
चलदि (चलति) ४, २८३
चलन (चरण) ४, ३२६
चलेहिं (चलाभ्याम्) ४, ४२२
चल्लइ (चलति) ४, २३१
चवइ (कथयति) ४, २
चवइ (च्यवति) ४, २३३
चवेड (चपेटा) ४, ४०६
चाउ (त्यागः) ४, ३९६
चारहडी (च आरभटी) ४, ३९६,
चि, चिणइ (चिनोति) ४, २३८, २४१, चुणइ ४, २३८, चिणिज्जइ ४, २४२, २४३, चिम्मइ ४, २४३, चिणिहिइ, चिम्मिहिइ ४, २४३, चिव्वइ, चिव्विहिइ ४, २४२, २४३ [उद्-उपसर्ग-पूर्वकः चि-धातुः] उच्चिणइ, उच्चेइ ४, २४१
चिइच्छइ (चिकित्सति) ४, २४०
चिञ्चअइ, चिञ्चइ, चिञ्चिल्लइ (मण्डयति) ४, ११५
चिन्त् (धातुः) चिन्तइ (चिन्तयति) ४, ४२२, चिन्तेदि ४, २६५; चिन्तयन्तो ४, ३२२, चिन्तयमाणी ४, ३१०, चिन्तन्ताहं ४, ३६२; चिन्तिज्जइ ४, ३९६, ४१०; चिन्तितं ४, ३२०
चीमूतो (जीमूतः) ४, ३२५
चुक्कइ (भ्रश्यते) ४, १७७
चुणइ (चिनोति) ४, २३८
चुण्णीहोइ (चूर्णीभवति) ४, ३९५, ४२०
चुम्बइ (चुम्बति) ४, २३९, चुम्बिवि ४, ४३९
चुलुचुलइ (स्पन्दति) ४, १२७
चुडुल्लउ (कङ्कणम्) ४, ३९५, ४३०
चुन्नकरेइ (चूर्णीकरोति) ४, ३३७
चेअइ (चेतयति) ४, ३९६
चोप्पडइ (म्रक्षति) ४, १९१
च्चिअ (एव) ४, ६३, ३६५

[छ]

छइल्ल (विदग्ध) ४, ४१२
छप्पहरो (झर्झरः) ४, ३२५
छज्जइ (राजते) ४, १००
छड्डहि (मुञ्चति) ४, ९१, छड्डहि ४, ३८७, छड्डेविणु ४, ४२२
छन्दउ (छन्दकः) ४, ४२२

छम्मुहु (षण्मुखः) ४, ३३१
छायइ (छादयति) ४, २१
छाया (छाया) ४, ३७०, ३८७
छार (क्षारः) ४, ३६५
छाले (छागः) ४, २९५
छित्तं (स्पृष्टम्) ४, २५८
छिद्, छिन्दइ (छिनत्ति) ४, १२४, २१६, छिज्जइ ४, ३५७, ४३४, छिण्णु ४, ४४४ (आङ्-उपसर्ग-पूर्वकः छिद्धातुः) आच्छिन्दइ ४, १२५
छिप्पइ (स्पृशति) ४, २५७
छिवइ (स्पृशति) ४, १८२, छिविज्जइ ४, २५७
छिहइ (स्पृशति) ४, १८२
छुडु (यदि) ४, ३८५, ४०१, ४२२
छुम्मइ (आक्रमते) ४, १६०
छुप्पइ (क्षुपति) ४, २४९
छुविज्जइ (स्पृश्यते) ४, २४९
छुहइ (क्षिपति) ४, १४३
छेयउ (छेदकः) ४, ३९०
छोल्लिज्जन्तु (अतक्ष्यत) ४, ३९५

[ज]

जअडइ (त्वरयते) ४, १७०
जअडन्तो ४, १७०
जइ (यदि) ४, ३४३, ३५१, ३५६, ३६४, ३६५, ३६७, ३७०, ३७१, ३७९, ३८४, ३९०, ३९१, ३९५, ३९६, ३९८, ३९९, ४०१, ४१७, ४१८, ४१९, ४२२, ४३८, ४३९
जइसो (यादृशः) ४, ४०३
जओ (यतः) ४, ४१९
जगु (जगत्) ४, ३४३, जगि ४, ४०४, ४०५
जग्गइ (जागर्ति) ४, ८०, जग्गेवा ४, ४३८
जज्जरियाउ (जर्जरिताः) ४, ३३३, ३४८
जढं (त्यक्तम्) ४, २५८
जण (जनः) ४, ३६४, ३७२, ३७६, जणु ४, ३३६, ३३७, ३३९, ४०६, ४१८, जणा ४, ३७२, जणेण ४, ३७१, जणस्सु (सुजनस्य) ४, ३३८
जणणी (जननी) ४, २८२, ३०२
जणि (इव) ४, ४४४
जणु (इव) ४, ४०१, ४४४
जत्तु (यत्र) ४, ४०४
जधा (यथा) ४, २६०
जन्तउ (यातु) ४, ४२०
जम (यमः) ४, ३७०, ४४२, जमहो ४, ४१९
जम्पइ (कथयति) ४, २, जम्पि ४, ४४२
जम्पिरहे (जल्पनशीलायाः) ४, ३५०
जम्भाअइ, जम्भाइ (जृम्भति) ४, २४०
जम्मइ (जायते) ४, १३६
जम्मु (जन्म) ४, ३९६, ३९७, ४२२
जय (जग) ४, ३७०
जयस्सु (जगतः) ४, ४४०
जया (यदा) ४, २८३
जर (जरा) ४, ४२३
जरइ (जरति) ४, २३४, जरिज्जइ, जीरइ ४, २५०
जलं (जलम्) ४, २८७, ३०८, जलु ४, ३९५, ४१९, ४२०, ४२२, जलि ४, ३८३, ४१४, जले ४, ३६५, जलहुँ ४, ४१५
जलइ (ज्वलति) ४, ३६५
जलणो (ज्वलनः) ४, ३६५, जलणि ४, ४४४
जवइ (यापयति) ४, ४०
जह (यथा) ४, ४१९
जहां (यस्मात्) ४, ३५५
जहि (यत्र) ४, ३४९, ३५७, ४२२
जाअइ (जायते) ४, १३६
जाइ (याति) ४, ३५०, ४४१, ४४४
जाइट्ठिए (यद्दृष्टं तदद्) ४, ४२२
जाइं (जातिम्) ४, ३६५
जाउ (यातु) ४, ३३२, ४२०, ४२६
जाउं (यावत्) ४, ४०६
जागरइ (जागर्ति) ४, ८०
जाणणं (ज्ञानम्) ४, ७
जाणिमइ (ज्ञायते) ४, ३३०
जाम (यावत्) ४, ३८७, ४०६
जामहिं (यावत्) ४, ४०६
जाया (जातौ) ४, ३५०, ३६७
जाल (जाल) ४, ३९५, ४१५, ४२९ जालु ४, ४३९
जाव (यावत्) ४, २७८
जावँ (यावत्) ४, ३९५
जावेइ (यापयति) ४, ४०
जि (एव) ४, ३४१, ३८७, ४०६, ४१४, ४१९, ४२०, ४२२, ४२३, ४२९
जि, जयइ (जयति) ४, २४१, जिणइ ४, २४१, जिणिज्जइ ४, २४२, जिव्वइ ४, २४२, जेप्पि ४, ४४०, ४४१, जिणेप्पि ४,

४४२, जेऊण ४, २३७, २४१; जणिऊण ४, २४१ (निस्-उपसर्ग-पूर्वकः जिधातुः) निज्जिअउ ४,४०१, (विनिस्-उपसर्ग-पूर्वकः जिधातुः) विणिज्जिअउ ४,३९६
जिइन्दिए (जितेन्द्रियः) ४, २८७
जिण (जिन) ४, ४४४
जिब्भिन्दिउ (जिह्वेन्द्रियम्) ४, ४२७
जिम्, जिमइ, जेमइ (भुनक्ति) ४, ११०, जिम्मइ ४, २३०
जिवँ (यथा) ४,३३०,३३६, ३४७, ३५४, ३७६, ३८५,३९५,३९६, ३९७, ४२२, जिवँ जिवँ (यथा यथा) ४, ३४४, ३६७, ४०१
जिह (यथा) ४, ३७७, ४०१
जिहं (यथा) ४, ३३७
जीउ (जीवः) ४, ४३९
जीमूतो (जीमूतः) ४, ३२५
जीव्, जीवइ (जीवति) ४, ३६७, जीवन्त ४, २८२, ३०२, जीव ४, ४४४, जीवो ४, ९, जीवहं ४, ४०६
जीविउ (जीवितम्) ४,३५८,४१८
जीहइ (लज्जति) ४, १०३
जुअंजुअ (पृथक्-पृथक्) ४, ४२२
जुअलु (युगलम्) ४, ४१४
जुउच्छइ (जुगुप्सति) ४, ४
जुगुच्छइ (जुगुप्सति) ४ ४
जुज्जइ (युज्यते) ४, १०९
जुज्झइ (युध्यते) ४, २१७
जुज्झन्तहो (युध्यमानस्य) ४,३७९
जुज्झें (युद्धेन) ४, ३८६, ४२६
जुञ्जइ (युज्यते) ४, १०९
जुत्तो (युक्तः) ४, ३०६, जुत्तउ ४, ३४०, जुत्तं ४, २७९
जुप्पइ (युज्यते) ४, १०९
जुवइजणो (युवतिजनः) ४, २८६
जूरइ (खिद्यते) ४, १३२, १३५
जूरवइ (वञ्चयति) ४ ९३
जेत्तुलो (यावत्) ४, ४०७, ४३५
जेत्थु (यत्र) ४, ४२२
जेत्थु वि (यत्रापि) ४, ४०४, ४०५
जेवँ (यथा) ४, ३९७, ४०१
जेवडु (यावत्) ४, ४०७
जेहउ (यावत्) ४, ४२२
जेहु (यादृक्) ४, ४०२
जो (यः) ४, ३३०, ३३२, ३३८, ३४३, ३७०, ३८३,४०१,४२२, ४२८, ४४२, ४४५, जु ४, ३४५, ३५०, ३५१, ३५४, ३६०,३६७, ३८९, ४११, ४१८ जा ४,३९५, जं ४, ३६५, ३७१,३७८, ३८८, ३९०,३९६, ४२०,४२६, ४२९, ४३४ ४४६, जेण ४, ४१४, ४२२, जें ४, ३५०, ४२१, जसु ४, ३६८, ३७०, ३८९, ४२२, ४२७, जासु ४, ३५८, ३९६, ४२०, जहे ४, ३५९, जहिं ४, ३८६, ४११, ४२६, जेहिं ४, ४३९, जो ४, ३३३,३५०, ३६७, ३७६,३८७,३९५, ४०९, ४१२, ४२२,४३०,जाहं ४,३५३, ४०९
जोअण (योजन) ४, ३३२
जोएवि (पश्यति) ४, ४२२, जोइ ४, ३६४, ३६८, जोइज्जउं ४, ३५६, जोअन्तिहे ४, ३३२, जोअन्ताहं ४, ४०९
जोण्ह (ज्योत्स्ना) ४, ३७६
जोव्वणि (यौवने) ४, ४२२
जि (एव) ४, ४२३
जा,जाणइ (जानाति) ४,७,४०१, ४१९, याणदि ४, २९२, जाणइ ४, ३६९, णव्वइ, णज्जइ, जाणिज्जइ, मुणिज्जइ, णाइज्जइ, अणाइज्जइ ४, २५२, जाणिउं ४,३९१,४३९,जाणिउ ४,३७७, ४०१, ४२३, जाणिऊण, णाऊण ४, ७, जाणिअं, णायं ४, ७ (आङ्-उपसर्ग-पूर्वकः ज्ञाधातुः) आणवेदु ४, २७७, आणत्तं ४, २८३ (वि-उपसर्ग-पूर्वक. ज्ञाधातुः) विण्णवइ ४, ३८

झ]

झंखइ (विलपति) ४,१४०, १४८, १५६, २०१, २४९, झङ्खहिं ४, ३७९, ४२२
झज्झरो (झर्झरः) ४, ३२७
झडइ (शीयते) ४, १३०
झडप्पडहिं (शीघ्रम्) ४, ३८८
झण्टइ (भ्रमति) ४, १६१
झम्पइ (भ्रमति) ४, १६१
झरइ (क्षरति) ४, ७४, १७३
झलक्किअउ (संतप्तम्) ४, ३९५
झाअइ (ध्यायति) ४, ६, २४०, झाइ ४, ६, २४०, झाइवि ४, ३३१
झाएविणु (ध्यात्वा) ४, ४४०
झाणं (ध्यानम्) ४, ६
झिज्जइ (क्षीयते) ४,२०,झिज्जउं ४, ४२५
झुणइ (जुगुप्सति) ४, ४
झुणि (ध्वनिः) ४, ४३२, ४३३
झुम्पडा (कुटी) ४, ४१६, ४१८
झूरइ (स्मरति) ४, ७४

झोसिअं (क्षिप्तम्) ४, २५८

[ञ]

ञानं (ज्ञानम्) ४, ३०३

[ट]

टमरुको (डमरुकः) ४, ३२५
टिरिटिल्लइ (भ्रमति) ४, १६१
टिविडिक्कइ (मण्डयति) ४, ११५

[ठ]

ठक्का (ढक्का) ३२५
ठवइ (स्थापयति) ४, ३५७
ठाव (स्थानम्) ४, ३५८
ठाणं (स्थानम्) ४, १६, ठाणु ४, ३६२

[ड]

डमरुको (डमरुकः) ४, ३२७
डम्बरइं (डम्बराणि) ४, ४२०
डरइ (त्रस्यति) ४, १९८
डल्लइ (पिबति) ४, १०
डहइ (दहति) ४, २०८, डहिहिइ ४, २४६, डज्झइ ४, २४६, ३६५ डज्झिहिइ ४, २४६
डालइं (शाखाः) ४, ४४५
डिम्भ (डिम्भ) ४, ३८२
डिम्भइ (स्रंसते) ४, १९७
डुङ्गरिहिं (पर्वतेषु) ४, ४४५
डोङ्गर (गिरिः) ४, ४२२

[ढ]

ढंसइ (विवर्तते) ४, ११८
ढक्क (ढक्का) ४ ४०६
ढक्का (ढक्क) ४, ३२७
ढक्कइ (छादयति) ४, २१
ढक्करि (अद्भुत) ४, ४२२
ढुण्ढुल्लइ (भ्रमति) ४, १६१
ढण्ढोलइ (गवेषयति) ४, १८९
ढिक्कइ (वृषभो गर्जति) ४, ९९
ढुमइ (भ्रमति) ४, १६१
ढुण्ढुल्लइ (भ्रमति) ४, १६१, १८९
ढुसइ (भ्रमति) ४, १६१
ढोल्ला ! (नायक !) ४, ३३०, ४२५

[ण]

ण (न) ४, २९९
णडइ (गुप्यते) ४, १५०
णं (इव) ४, ३८२
णं (ननु) ४, ३०२
णवइ (भाराक्रान्तो नमति) ४, १५८, २२६
णवि (वैपरीत्ये) ४, ३४०, ३५३, ४३८
णाणं (ज्ञानम्) ४, ७
णाधो (नाथः) ४, २६७
णावइ (इव) ४, ३३१
णाहो (नाथः) ४, २६७
णिअम्बिणि (नितम्बिनी) ४, ४१४
णिआरइ (काणेक्षितं करोति) ४, ६६
णिउड्डइ (मज्जति) ४, १०१
णिग्गउ (निर्गतः) ४, ३३१
णिच्चलइ (क्षरति) ४, १७३
णिच्छल्लइ (छिनत्ति) ४, १२४
णिज्झरइ (क्षयति) ४, २०
णिज्झाइ (ध्यायति) ४, ६
णिज्झोडइ (छिनत्ति) ४, १२४
णिट्टुअइ (क्षरति) ४, १७३
णिट्टुहइ (विगलति) ४, १७५
णिट्ठुहइ (अवष्टम्भं करोति) ४, ६७
णिमइ (न्यस्यति) ४, १९९
*णिमं (इदम्) ४, २७९, ३०२
णिम्महइ (गच्छति) ४, १६२
णिरणासइ (नश्यति) ४, १७८
णिरिग्घइ (निलीयते) ४, ५५
णिरिणज्जइ (पिनष्टि) ४, १८५
णिरिणासइ (गच्छति) ४, १६२
णिरिणासइ (पिनष्टि) ४, १८५
णिरु (नितराम्) ४, ३४४
णिलिज्जइ, णिलीअइ (निलीयते) ४, ५५
णिलुक्कइ (निलीयते) ४, ५५
णिलुक्कइ (तुडति) ४, ११६
णिल्लसइ (उल्लसति) ४, २०२
णिल्लुञ्छइ (मुञ्चति) ४, ९१
णिल्लूरइ (छिनत्ति) ४, १२४
णिवहइ (गच्छति) ४, १६२
णिवहइ (नश्यति) ४, १७८
णिवहइ (पिनष्टि) ४, १८५
°णिवासी (°निवासी) ४, ३०१ ३०२
णिव्वडइ (पृथग्भवति, स्पष्टं भवति) ४, ६२
णिव्वरइ (दुःखं कथयति) ४, ३
णिव्वरइ (छिनत्ति) ४, १२४
णिव्वलेइ (दुःखं मुञ्चति) ४, ९२
णिव्वाइ (विश्राम्यति) ४, १५९
णिव्वोलइ (मन्युना ओष्ठमालिन्यं करोति) ४, ९९
णिसुढइ (भाराक्रान्तो नमति) ४, १५८
णिहम्मइ (गच्छति) ४, १६२
णिहालहि (निभालय) ४, ३७६
णिहि (निधिः) ४, ४१४, णिही ४, २८७
णिहुवइ (कामयते) ४, ४४

*युक्तम् ; इदम्, जुत्तमिणं इत्यत्र ९५० सूत्रेण णकारस्यागमो जातः।

णिहोडइ निवारयति, निपातयति ४, २२
णीइ (गच्छति) ४, १६२
णीणइ (गच्छति) ४, १६२
णीरवइ (बुभुक्षति) ४, ५
णीरवइ (आक्षिपति) ४, १४५
णीलुक्कइ (गच्छति) ४, १६२
णीलुञ्छइ (निष्पतति, आच्छोटयति) ४, ७१
णीसरइ (रमते) ४, १६८
णीहम्मइ (गच्छति) ४, १६२
णीहरइ (निःसरति) ४, ७९
णीहरइ (आक्रन्दति) ४, १३१
णुमइ (छादयति) ४, २१
णुमइ (न्यस्यति) ४, १९९
णुमज्जइ (निमज्जति ४, १२३
णुल्लइ (क्षिपति) ४, १४३
णुव्वइ (प्रकाशयति) ४, ४५
णूमइ (छादयति) ४, २१
णेदं (इदम्) ४, २७९
णोल्लइ (क्षिपति) ४, १४३
ण्हाइ (स्नाति) ४, १४
ण्हाणु (स्नानम्) ४, ३९९, ४१९

[त]

त-त्रं ४, ३६
तं (तम्) ४, ३२०, ३२६, ३४३, ३५०,३५६,३६०, ३६५, ३७१, ३८८, ३९५, ४१४,४१८,४१९, ४२०, ४२२, ४२६, ४२९, ४४६, तेण ४, ३६५, तें ४, ३३९,३४३,३७९ ४१४,४१७, तया ४, २८३, ताए ४ ३७०, तीए, ४, ३२१, ३२३, तस्स ४, २६०, तस्सु ४, ४१९, तसु ४, ३३८, ३४३,३७५,३८९, ३९६, ३९७, ४१०, ४२८, तासु ४, ३५८, ४०१. तहो ४, ३५६, ४२६, ताए ४. ३२२, तहे ४, ३५०. ३५४,३५६,३५९, ३८२, ४११, तहि ४, ४०४ तहिं ४, ३५७, ३८६, ४१९, ताउँ ४, ४०६, तामहिं ४, ४०६, ति ४, ३३०, ३४४, ३६३, ते ४, ३३६, ३५३,३७१, ३७६, ३८७,४०६, ४०९,४१२,४१४,तेहिं ४ ३७०, तहिं ४, ४२२. ताण ४, ३३३, ताहं ४, ३५०, ३६७, ४०९, ताहँ ४, ३००, तहं ४, ४२२
तइज्जो (तृतीया) ४, ३३९, ४११
तइसो (तादृशः) ४, ४०३
तसने (दर्शने) ४, ३१६
तक्केइ (तर्कयति) ४, ३७०
तक्खइ (तक्ष्णोति) ४, १९४
तच्छइ (तक्ष्णोति) ४, १९४
तडाकं (तडागम्) ४, ३२५
तड्डइ (तनोति) ४, १३७
तडत्ति (तडिदिति) ४,३५२,३५७
तडफडइ (स्पन्दते) ४, ३६६
तडि (तटे) ४, ४२२
तड्डइ (तनति) ४, १३७
तड्डवइ (तनति) ४, १३७
तणइ (तनति) ४, १३७
तणउ (तनयः) ४, ४४७
तणउं (सम्बन्धी) ४, ३६१, तणा ४, ३७९, ३८०, ४१७, ४२२, तणेण ४, ३६६, ४२५, ४३७
तणु (तन्व्याः) ४, ४०१
तणु (तनुः) ४, ४०१
तणु (तृण) ४, ३२९, ३३४, तणहं ४, ३३९, ४११
तत्तस्सु (तत्त्वस्य) ४, ४४०
तत्तु (तत्र) ४, ४०४
तत्थ (तत्र) ४, ३२२
तदो (ततः) ४, २६०
तधा (तथा) ४, २६०
तनु (तनु) ४, ३२६
तप्, तवइ (तपति) ४,३७७,४०१ (सम्-उपसर्गपूर्वकः तप्-धातुः) संतप्पइ ४, १४०
तप्पनेसुं (दर्पणेषु) ४, ३२६
तमाडइ (भ्रमति) ४ ३०
तर्, तरइ (शक्नोति) ४, ८६, २३४, तीरइ, तरिज्जइ, ४, २५०, (उद्-उपसर्गपूर्वकः तर्-धातुः) उत्तरइ ४, ३३९
तरु (तरु) ४,३७०,तरुहे ४,३४१, तरहं ४, ४११, तरुहुँ ४, ३४०, ३४१, ४११
तरुवरहं (तरुवराणाम्) ४, ४२२
तरुणहो ! (हे तरुणा !) ४, ३४६
तरुणिहो ! (हे तरुण्यः !) ४,३४६
तलअण्टइ (भ्रमति) ४, १६१
तलि, तले (तले) ४, ३३४
तवइ (तपति) ४, ३७७
तवस्सि ! (तपस्विन् !) ४, २६३
तवु (तपस्) ४, ४४१
तसइ (त्रस्यति) ४, १९८
तसासु (दशासु) ४, ३२६
तहां (तस्मात्) ४, ३५५
तहिं (तत्र) ४, ३५७
ता (तदा) ४, २७८, ३०२
ताउं (तावत्) ४, ४०६, ४२३
ताठा (दंष्ट्रा) ४, ३२५
ताडेइ (ताडयति) ४, २७
तादिसो (तादृशः) ४, ३१७

तापस-वेस (तापस-वेष) ४, ३२३
ताम (तावत्) ४, ४०६
तामहिं (तावत्) ४, ४०६
तामोदरो (दामोदरः) ४, ३०७, ३२५
तारिसे (तादृशः) ४, २८७
तालिअण्टइ (भ्रमति) ४, ३०
ताव (ताप) ४, ४२२
ताव (तावत्) ४, २६२, ३२१, ३२३
तावँ (तावत्) ४, ३९५
तिक्खा (तीक्ष्णाम्) ४, ३९५
तिक्खेइ (तीक्ष्णयति) ४, ३४४
तिट्ठो (दृष्टः) ४, ३१४, ३२१, ३२३
तिण (तृण) ४, ३५८, तिणु ४, ३२९
तिहिँ (त्रिभिः) ४, ३४७
तित्थं (तीर्थम्) ४, २६४, तित्थेसरेण ४, ४४१
तिदस (त्रिदश) ४, ४४२
तित्तुब्बाणु (तिमितोद्दालम्) ४, ४३१
तिमिर (तिमिर) ४, ३८२
तिम्मइ (आर्द्रीभवति) ४, ४१८
तिरिच्छि (तिर्यक्) ४, २९५, तिरिच्छी ४, ४१४, ४२०
तिरिश्चि (तिर्यक्) ४, २९५
तिल (तिल) ४, ४०६, तिलहं ४, ४०६, तिलवणि ४, ३५७, तिलताह ४, ३५६
तिलत्तणु (तिलत्वम्) ४, ४०६
तिवँ (तथा) ४, ३७६, ३९५, ३९७, ४२२; तिवँ तिवँ (तथा तथा) ४, ३४४, ३६७, ४०१,
तिसहे (तृषः) ४, ३९५
तिह (तथा) ४, ३७७
तीरइ (शक्नोति) ४, ८६
तुहुं (त्वम्) ४, ३३०, ३६८, ३७० ३७१, [illegible], ४२१, ४२५, ४३९, तइँ ४, ३७०, ४२२, तुम ४, ३८८, तै ४, ३३९ तुहं ४, ३६१, ३७०, ३८३, तुज्झ ४, ३६७, ३७०, ३७२, ३७७, तउ ४, ३६७, ३७२, ४२५, ४४१, तुध्र ४, ३७२ तुमातो, तुपातु ४, ३०७, ३२१, तुम्हे ४, ३६९, तुम्हइँ ४, ३६९ तुम्हेहिं ४, ३७१, ३७८, तुम्हहं ४, ३७३, तुम्हाहँ ४, ३०० तुम्हासु ४, ३७४
तुच्छ (तुच्छ) ४, ३५० तुच्छउं ४, ४, ३५०, ३५४, ४११, तुच्छयर ४, ३५०
तुट्टइ (त्रुट्यति) ४, ११६, ३२०, तुट्टउ ४, ३५५
तुडि (त्रुटि) ४, ३९०
तुडइ (त्रुट्यति) ४, ११६
तुम्बिणिहे (तुम्बिन्याः) ४, ४२७
तुलइ (तुलयति) ४, २५
तुलिअ (तुलित) ४, ३८२
तुहारेण (त्वदीयेन) ४, ४३४
तुराउ, तूरालो (दूरात्) ४, ३२१, ३२३
तूसइ (तुष्यति) ४, २३६
तूणु (तूणम्) ४, ३२९, तूणाइं ४ ४२२
तेअण (तेजनम्) ४, १०४
तेअवइ (प्रदीपयति) ४, १५२
तेत्तहे (तत्र) ४, ४३६
तेत्तिउ (तावान्) ४ ३९५, तेत्तुलो ४, ४०७
तेत्थु (तत्र) ४, ४०४, ४०५
तेम्व (तथा) ४, ४१८
तेवँ (तथा) ४, ३४३, ३९७, ४०१ तेवँइ ४, ४३९
तेवडु (तावान्) ४, ३९५, ४०७
तेवरो (देवरः) ४, ३२४
तेहअ (तादृशे) ४, ३५७
तेहु (तादृशः) ४, ४०२
तो (तदा, तस्मात्) ४, ३३६, ३४१, ३४३, ३६५, ३६७, ३७९, ३९१, ३९५, ३९८, ४०४, ४१७, ४१८, ४१९, ४२२, ४२३, ४३९, ४४५
तोडइ (तुडति) ४, ११६
तोसिअ (तोषित) ४, ३३१
त्ति (इति) ४, ३०२, ३५२, ३५७, ४२३
थं (तद्, तम्) ३६०
त्वर्, तुवरइ (त्वरयति) ४, १७० तूरइ ४, १७१, तुवरन्तो ४, १७०, तूरन्तो ४, १७१, तुरन्तो ४, १७२, तुरिओ ४, १७२

[थ]

थक्कइ (तिष्ठति) ४, १६, ८७
थक्कइ (फक्कति) ४, २५९
थक्केइ (नीचां गतिं करोति, तिष्ठति) ४, ३७०
थण (स्तन) ४, ३५०, ३६७, थणहुं ४, ३९०
थणहार (स्तनभारः) ४, ४१४
°थलं (°घरम्) ४, ३२६
थलि (स्थली) ४, ३३०, ३४४, ३६३

थाणं (स्थानम्) ४, १६
थामं (स्थाम) ४, २६७
थाहु (स्ताघ) ४, ४४४
थिप्पइ (तृप्यति) ४, १३८, १७५
थिरत्तणउं (स्थिरत्वम्) ४, ४२२
थुव्वइ (स्तूयते) ४, २४२
थूली (धूली) ४, ३२५
थेओ (स्तोकः) ४, २६७
थोवा (स्तोकाः) ४, ३७६

[द]

दइउ (दैवम्) ४, ४११, (दयिता) ४१४; दइएँ ४, ३३३, ३४२
दइवु (दैवम्) ४, ३४०
दइवेण (दैवेन) ४, ३८९, दइवें ४, ३३१
दंसणु (दर्शन) ४, ४०१
दडवड (अवस्कन्द) ४, ३३०, दडवडउ ४, ४२२
दड्ढु (दग्ध) ४, ४२२
द्रम्मु (द्रम्मम्) ४, ४२२
दस् (दृशिर्-धातुः) दिट्ठ (दृष्टा) ४, ४३२, ४३३, दिट्ठउ ४, ३५२, ३९६, ४२९, दिट्ठु ४, ४०१, दिट्ठी ४, ४३१, दिट्ठउं ४, ३७१, दिट्ठें ४, ४२३, दिट्ठइ ४, ३६५, दिट्ठे, ४, ३९६, दिट्ठा ४, ४२२, तिट्ठा ४, ३१४, ३२१, ३२३, अतिट्ठ ४, ३२३, दट्ठुं ४, २१३, दट्ठूण ४, २१३, तट्ठून ४, ३१३, ३२०, ३२३, तत्थून ४, ३१३, दट्ठव्वं ४, २१३, दरिसइ ४, ३२, दक्खवइ ४, ३२, दंसइ ४, ३२, दंसिज्जन्तु ४, ४१८, दावइ ४, ३२
दलइ (ददाति) ४, १७६
दह्, डज्झइ, डहिज्जइ, डज्झिहिइ, डहिहिइ (दह्यते) ४, २४६, दड्ढ ४, ३६५, दड्ढा ४, ३४३
दहमुहु (दशमुखः) ४, ३३१
दा, देइ (ददाति) ४, २३८, ४०६, ४२०, ४२२, ४२३, देवि ४, २७३, तेति ४, ३१८, देन्ति ४, ४१४, देहु ४, ३८४, देन्तहो ४, ३७९, देन्तिहि ४, ४१९, देप्पिणु ४, ४४०, देज्जहि ४, ३८३, देज्जहि ४, ४२८, दिव्यते ४, ३१५, दिज्जइ ४, ४३८, दिण्णी ४, ३३०, ४०१, दिण्णो ४, ३०२, दिण्णा ४, ३३३
दाणि (इदानीम्) ४, २७७, ३०२
दामोदरो (दामोदरः) ४, ३२७
दारन्तु (दारयन्) ४, ३४५, ४४५
दाहुं (दाह) ४, २८९
दाव (तावत्) ४, २६२, ३०२, ३२३
दावइ (दर्शयति) ४, ३२
दिअहडा (दिवसाः) ४, ३३३, ३८७
दिअहा (दिवसाः) ४, ३८८, ४१८
दिग्घो (दीर्घः) ४, ९१
दिट्ठा (दृष्टाः) ४, ४२२
दिट्ठि (दृष्टिम्) ४, ३३०
दिट्ठी (दृष्टिः) ४, ४३१, दिट्ठु ४, ४०१, दिट्ठें ४, ४२३, दिट्ठउ ४, ४२९
दिणयर (दिनकरः) ४, ३७७, ४०१
दिणु (दिन) ४, ४०१
दिवि दिवि (दिवसे दिवसे) ४, ३९९, ४१९, दिवेहिं ४, ४२२
दिव्वइं (दिव्यानि) ४, ४१८
दिव्वन्तरइं (दिव्यान्तराणि) ४, ४४२
दिसि (दिक्) ४, ३६८, **दिसिहि** (दिशोः) ४, ३४०
दीप् (प्र-उपसर्ग पूर्वकः दीप्धातुः) पलीवइ (प्रदीप्यते) ४, १५२
दीहर (दीर्घ) ४, ४१४, ४४४
दीहा (दीर्घम्) ४, ३३०
दुगुच्छइ (जुगुप्सति) ४, ४
दुउञ्छइ (जुगुप्सति) ४, ४
दुक्कर (दुष्करम्) ४, ४१४, ४४१
दुक्ख (दुःख) ४, ३५७
दुक्खसहे (दुःखसहः) ४, २८७
दुगुच्छइ (जुगुप्सति) ४, २४०
दुगुञ्छइ (जुगुप्सति) ४, ४
दुज्जण (दुर्जन) ४, ४१८
दुट्ठु (दुष्टम्) ४, ४०१
दुब्भिक्खें (दुर्भिक्षेण) ४, ३८६
दुमइ (धवलयति) ४, २४
दुय्यणे (दुर्जनः) ४, २९२
दुल्लहहो (दुर्लभस्य) ४, ३७५, ४१०
दुव्वशिदेण (दुर्व्यवसितेन) ४, ३०२
दुव्ववसिदेण (दुर्व्यवसितेन) ४, २८२
दुह्, दुहिज्जइ, दुब्भइ, दुहिहिइ, दुब्भिहिइ (दुह्यते) ४, २४५
दुहुं (दुःखम्) ४, ३४०
दूमवड (दूतकः) ४, ४१९
दूइ (दूति) ४, ३६७
दूमेइ (दुनोति) ४, २३, **दूमिज्जे** ४, २४
दूर (दूरम्) ४, ३५३, ४२२ दूरादो, दूराहु ४, २७६, दूरे ४, ३४९,

३६७

दूरुड्डाणें (दूरोड्डानेन) ४, ३३७

दूसइ (दुष्यति) ४, २३६

दूसासणु (दुःशासनः) ४, ३९१

देक्खइ (पश्यति) ४, १८१, ३४९, ३६७, ३७६, देक्खउं ४, ३५७, देक्खि ४, ४३४ देक्खु ४, ३४५, ३६१, देक्खिअवि ४, ३५४

देवं (देवम्) ४, ४४१

देस (देशाः) ४, ४२२, देसहिं ४, ३८६, देसडइ ४, ४१९, देसडा ४, ४१८, देसि ४, ४२५

देसन्तरिअ (देशान्तरिता) ४, ३६८

देसुच्चाडणु (देशोच्चाटनम्) ४, ४३८

दोण्णि (द्वे) ४, ३४०, ३५८

दोलेइ (दोलयति) ४, ४८

दोसडा (दोषौ) ४, ३७९

दोसु (दोषः) ४, ४३९

द्रम्मु (द्रम्मम्) ४, ४२२

द्रवक्कउ (भयम्) ४, ४२२

द्रहि (ह्रदे ४, ४२३

द्रेहि (दृष्टिः) ४, ४२२

[ध]

धंसाडइ (मुञ्चति) ४, ९१

धण (धन्या) ४, ३३०, ४३०, ४४४ धणि ४, ३८५, ४१८, धणहे ४, ३५०, ३५४, ४११, ४४५

धणञ्जए (धनञ्जयः) ४, २९३

धणु (धनम्) ४, ३५८, ३७३

धणुक्खण्डं (धनुष्खण्डम्) ४, २८९

धणं (धनम्) ४, ३०४

धम्मु (धर्मः) ४, ३४१, ३९६, धम्मि ४, ४१९

धर (धरा=आधारः) ४, ३७७

धर (धराम्=पृथ्वीम्) ४, ४४१

धरइ (धरति) ४, २३४ ३३४, ४३८, धरेइ ४, ३३६, धरहिं ४, ३८२, धरहिं ४, ४२१

धवल (धवलः=बलीवर्दः) ४, ४२१, धवलु ४, ३४०

धवलइ (धवलयति) ४, २४

धा, धाइ, धाअइ ४, २४० (नि-उपसर्ग-पूर्वकः धा-धातुः) निहिअउ ४, ३९५ (वि-उपसर्ग-पूर्वकः धा-धातुः) विहिदु ४, ४४६ (श्रद्पूर्वको धा-धातुः) सद्दहइ, सद्दह, सद्दहमाणो ४, ९

धाडइ (निःसरति) ४, ७९

धार (धाराम्) ४, ३८३

धारेध (धारयत) ४, ३०२

धाव्, धाइ (धावति) ४, २२८, ४३६, धावइ ४, २२८. २३८, धुवइ ४, २३८, धावन्ति ४, २२८, धाहिद, धाओ ४, २२८

धीवले (धीवरः) ४, ३०१, ३०२

धुट्ठुअइ (शब्दं करोति) ४, ३९५

धुरु (धुरम्) ४, ४२१

धू, धुणइ (धुनाति) ४, ५९, २४१, धुवइ ४, ५९, धुणिज्जइ, धुव्वइ ४, २४२

धूमु (धूमः) ४, ४१५, ४१६

धूलडिआ (धूलिका) ४, ४३२, ४३३

ध्रुं (यत्) ४, ३६० ४३८

ध्रुवु (ध्रुवम्) ४, ४१८

[न]

न (न) ४, ६३, २९९, ३३२, ३३५, ३४०, ३४१, ३४७, ३४९, ३५०, ३५८, ३६०, ३६५, ३६७, ३७०, ३७६, ३८३, ३८५, ३८६, ३९०, ३९६, ४०१, ४०६, ४१४, ४१६, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२६, ४३२, ४३३, ४३४, ४३६, ४४१, ४४४, ४४५

नइ (नदी) ४, ४२२

नउ (ननु) ४, ४२२, ४४४

नयरं (नगरम्) ४, ३२५, ४२४

नख (नख) ४, ३२६

नट् (धातुः) नट्टइ (नटति) ४, २३०, नडउ ४, ३८५, (वि-उपसर्ग-पूर्वकः नट्-धातुः) विनडिज्जइ ४, ३७०

नन्दउ (नन्दतु) ४, ४२२

नं (ननु) ४, ३८२, ३९६, ४४४

नम्, णवइ (भाराक्रान्तो नमति) ४, १५८, २२६, नवहिं ४, ३६७, नमहु ४, ४४६, नमथ ४, ३२६, नवन्ताहं ४, ३९९ (उद्-उपसर्ग-पूर्वकः नम्धातुः) उन्नामइ ४, ३६ (प्र-उपसर्ग-पूर्वकः नम्धातुः) पनमथ ४, ३२६

नमिर (नमनशील) ४, २८८

नमो (नमः) ४, २८३

नयण (नयन) ४, ४१४, ४४४, नयणा ४, ४२२, नयणेहिं ४, ४२३

नर (नर), ४, ४१२, ४४२, नर ४, ३६२,

नर्च्, नच्चइ (नृत्यति) ४, २२५, नच्चन्तस्स ४, ३२६, नच्चाविउ ४, ४२०

नलिन्दाणं (नरेन्द्राणाम्) ४, ३००

नले (नरः) ४, २८८

नव (नव) ४, ४०१, **नवइ** ४, ३९९

नवखी (नवा) ४, ४२०, ४२२

नवरि (केवलम्) ४, ४०१, ४२३

नवि (न+अपि) ४, ३३०, ३३९, ३५६, ३९५, ४०२, ४११, ४२२

नश्, नस्सइ (नश्यति) ४, १७८, नश्यून, नश्ूून ४, ३१३, नासइ ४, ३१, २३८, नासन्तअहो ४, ४३२, नासवइ ४, ३१, (प्र-उपसर्गपूर्वकः नश्धातुः) पणट्ठइ ४, ४०६, ४१८ (वि-उपसर्ग-पूर्वकः नश्धातुः) विणट्ठइ ४, ४२७, विन्नासिआ ४, ४१८

नहेण (नखेन) ४, ३३३, ३४८

नाइ (ननम्, उत्प्रेक्षार्थे) ४, ४४४

नाइं (नूनम्) ४, ४२६

नाए (नया) ४, ३२२

नाडयं (नाटकम्) ४, २७०

नावगु (नायकः) ४, ४२७

नारायणु (नारायणः) ४, ४०२

नालिउ (मूढः) ४, ४२२

नाव (नौः) ४, ४२३

नावइ (इव) ४, ४४४

नाहिं (न) ४, ४१९, ४२२

नाहु (नाथः) ४, ३६०, ३९०, ४२३

निअइ (पश्यति) ४, १८१, निअन्त ४, ४३१

निअय (निजक) ४, ३४४, ३५४, ४०१, ४४१

निग्घिण (निघृण) ४, ३८३

निच्चट्टु (गाढम्) ४, ४२२

निच्चल (निश्चल) ४, ४३६

निच्चिन्तइं (निश्चिन्तम्) ४, ४२२

निच्चिन्तो (निश्चिन्तः) ४, २६१

निच्छयं (निश्चयम्) ४, ४२२

निज्झरो (निर्झरः) ४, ३२५

निच्छूढं (क्षिप्तम्) ४, २५८

निज्जिअ (निर्जितः) ४, ३७१

निज्झाअइ (पश्यति) ४, १८१

निण्हवइ (निह्नुते) ४, २३३

निद्द (निद्रा) ४, ३३०, ४१८

निद्दए (निद्रया) ४, ३३०

निद्दडी (निद्रा) ४, ४१८

निद्दाइ (निद्राति) ४, १२

निन्नेहु (निःस्नेहा) ४, ३६७

निमिअं (स्थापितम्) ४, २५८

निम्मवइ (निर्मिमीते) ४, १९

निम्माणइ (निर्मिमीते) ४, १९

निय (निज) ४, २८२, ३०२

नियोञ्जितं (नियोजितम्) ४, ३२५

नियोजितं (नियोजितम्) ४, ३२७

निरक्खय (नीरक्षकात्) ४, ४१८

निरामइ (निरामये) ४, ४१४

निरुवम (निरुपम) ४, ४०१, ४४४

°निवट्टाहं (°निर्वृत्तानाम्) ४, ३३२

निवडण (निपतन) ४, ४४४

निव्वाणु (निर्वाणम्) ४, ४१९

निवारणु (निवारणम्) ४, ३९५, निवारणाय (निवारणाय) ४, ४४८

°निवासहे (°निवासायाः) ४, ३५०

निव्वलइ (निष्पद्यते) ४, १२८

निसङ्कु (निःशङ्कम्) ४, ३९६, ४०१

निसिआ (निशिताः) ४, ३३०

निलिज्जइ (निमृजति) ४, २२९

निसुढो (निपातितः) ४, २५८

निसेहइ (निषेधति) ४, १३४

निष्फलं (निष्फलम्) ४, २८९

निहुवइ (निह्नुते) ४, २३३

निहि (निधि) ४, ४२२

निहुअउं (निभृतकम्) ४, ४०१

नी, नेइ (नयति) ४, २३७, नेदि ४, २७३, २७४ नेति ४, ३१८, ३१९, नेन्ति ४, २३७, नेऊण, नीओ ४, २३७ (अनु-उपसर्ग-पूर्वकः नीधातुः) अणुणेइ ४, ४१४ (आङ्-उपसर्ग-पूर्वकः नीधातुः) आणहिं ४, ३४३, आणिअइ ४, ४१९

नीरञ्जइ (भनक्ति) ४, १०६

नीलइ (निस्सरति) ४, ७९

नीसरहि (निःसरसि) ४ ४३९

नीसावन्नु (निःसामान्यम्) ४, ३४१

नीसासु (निःश्वासः) ४, ४३०

नु (नु) ४, ३०२

नुमइ (छादयति) ४, २१

नेन (अनेन, तेन) ४, ३२२

नेह (स्नेह) ४, ३३२ ४०६, नेहु ४, ४२२, नेहहो ४, ४२६, नेहे ४, ४२२, नेहिं ४, ४०६, नेहडा ४, ३५६

[प]

पइं (त्वया) ४, ३५७, ३७०, ३७७, ४२१, ४२२

पइ (पदे) ४, ४१४, **पइ पइ** (पदे पदे) ४, ४०६

पइट्ठि (प्रतिष्ठिता) ४, ३३०

पउ (पदम्) ४, ४४२

पउलइ (पचति) ४, ९०

पओहर (पयोधर) ४, ३९५, पओहरहं ४, ४२०

पकुप्पित (प्रकुपित) ४, ३२६

पक्क (पक्व) ४, ३४०
पँक्खं (पक्ष्म) ४, ३०२
पक्खालसु (प्रक्षालयतु) ४, २८८
पक्खावडिअं (पक्षापतितम्) ४, ४०१
पङ्कइ (पङ्कजे) ४, ३५७
पग्गिम्व (प्रायः) ४, १४
पच्चुइ (गृह्णाति) ४, २०९
पच्चड्ढइ (क्षरति) ४, १७३
पच्चड्डइ (गच्छति) ४, १६२
पच्चलिओ (प्रत्युत) ४, ४२०
पच्चारइ (उपालभते) ४, १५६
पच्छइ (पश्चात्) ४, ३६२, ४२०
पच्छायावडा (पश्चात्तापः) ४, ४२४
पच्छिइ (पश्चात्) ४, ३८८
पच्छित्ताइं (प्रायश्चित्तानि) ४, ४, ४२८, पच्छित्तें ४, ४२८
पज्जरइ (कथयति) ४, २
पज्जलिओ (प्रज्वलितः) ४, २६५
पज्जाउलो (पर्याकुलः) ४, २६६
पज्झरइ (क्षरति) ४, १७३
पञ्चण्हं (पञ्चानाम्) ४, ४२२, पञ्चहिं ४, ४२२, ४२९, ४३१
पञ्जले (प्राञ्जलिः) ४, २९३
पञ्ञा (प्रज्ञा) ४, ३०३
पञ्ञाविशाले (प्रज्ञाविशालः) ४, २९३
पडिमा (प्रतिमा) ४, ३२५
पट्टइ (पिबति) ४, १०
पट्टण (पत्तन) ४, ४०७
पट्ठवइ, पट्ठावइ (प्रस्थापयति) ४, ३७
पट्ठि (पृष्ठम्) ४, ३२९
पढ्, पढिय्यते (पठ्यते) ४, ३१५, पढिय, पढिद्दूण, पढित्ता ४, २७१, पढिदून ४, ३१२
पडहु (पटहः) ४, ४४३
पडिअग्गइ (अनुव्रजति) ४, १०७
पडिबिम्बिअ (प्रतिबिम्बित) ४, ४३९
पडिवालेइ (प्रतिपालयति) ४, २५९
पडिसाइ (शाम्यति) ४, १६७
पडिसाइ (नश्यति) ४, १७८
पडिहाइ (प्रतिभाति) ४, ४४१
पढ (पठ) ४, ३१४
पणएण (प्रणयेन) ४, ४४६
पणामइ (अर्पयति) ४, ३९
पण्णइं (पर्णानि) ४, ४२७
पत्, पडइ (पतति) ४, २१९, ४२२, पडन्ति ४, ४२२, पडहिं ४, ३८८ पडिअ ४, ३३७, पडिउ ४, ३३७, पडिआइं ४, ३५८, पाडेइ, ४, २२, पाडिउ ४, ४२०, (नि-उपसर्ग-पूर्वकः पत्-धातुः) निवडइ, ४, ४०६, निपतन्ति ४, ३२६, (सम्-उपसर्गपूर्वकः पत्-धातुः) संवडिअ ४, ४२३
पताका (पताका) ४, ३०७
पतिबिम्बं (प्रतिबिम्बम्) ४, ३२६
पतेसो (प्रदेशः) ४, ३०७
पत्तत्तणं (पत्रत्वम्) ४, ३७०
पत्तेंहिं (पत्रैः) ४, ३७०, पत्ताणं ४, ३७०
पत्तलु (पत्रम्) ४, ३८७
पत्थरि (प्रस्तरे) ४, ३४४
पद्, (आङ्-उपसर्ग-पूर्वकः पद्-धातुः) **आवण्णे** (आपन्नः) ४, २९५ (निस्-उपसर्गपूर्वकः पद्-धातुः) निप्पज्जइ ४, १२८, (सम्-उपसर्ग-पूर्वकः पद्धातुः) संपज्जइ ४, २२४, संपाइअवं ४, २६५, संपन्ना ४, २८५, ३०२
पदअइ (गच्छति) ४, १६२
पधं (पदम्) ४, २७०
पनय (प्रणय) ४, ३२६
पन्थि (पथि) ४, ४२९
पन्धवो (बान्धवः) ४, ३२५
पन्थिअहिं (पथिकैः) ४, ४२९
पन्नाडइ (मृद्नाति) ४, १२६
पप्फुल्लिअउ (प्रफुल्लितः) ४, ३९६
पव्वालइ (छादयति) ४, २१
पव्वालइ (प्लावयति) ४, ४१
पमाणु (प्रमाणम्) ४, ३९९, ४१९, ४३८
पमाणीकलेशि (प्रमाणीकरोषि) ४, ३०२
पम्हुट्ठउ (प्रमृष्टः) ४, ३९६
पम्हुट्ठो (प्रमृष्टः) ४, २५८
पम्हुसइ (विस्मरति) ४, ७५
पम्हुसइ (प्रमृशति) ४, १८४
पम्हुहइ (स्मरति) ४, ७४
पय (पद) ४, ४२०, पयइं ४, ३९५
पयइ (पचति) ४, ९०
पयडा (प्रकटाम्) ४, ३३८
पयरइ (स्मरति) ४, ७४
पयरक्ख (पदरक्षान्) ४, ४१८
पयल्लइ (शैथिल्यं करोति, लम्बनं करोति) ४, ७०
पयल्लइ (प्रसरति) ४, ७७
पयारेंहिं (प्रकारैः) ४, ३६७
पयासइ (प्रकाशयति) ४, ३५७, पयासेइ ४, ४५
°**पयासु** (°प्रकाशः) ४, ३९६
पय्याकुलीकद (पर्याकुलीकृत) ४, २६६

पर्, पूरेइ (पूरयति) ४, १६९, पूरिअ ४,३८३, पूरिद ४, २६०
अपूरइ (अपूर्ण) ४, ४२२
पर्, पारेइ (शक्नोति) ४, ८६
पर् (व्याङ्-उपसर्ग-पूर्वकः पर्-धातुः) वावरेइ ४, ८१
पर (पर) ४, ३२५, ३४७, ३७९, ३९५, ३९६,३९७,४००, ४०६, ४१४, ४१८,४२०,४२२, ४३८, ४४१, पर ४, ४२२, परस्सु ४, ३३८, ३५४
परइ (भ्रमति) ४, १६१
परम (परम) ४, ४१४, ४४२
परमत्थु (परमार्थः) ४, ४२२
परवसो (परवशः) ४,२६६,३०७
पराई (परकीया) ४, ३५०, ३६७
पराया (परागताः) ४, ३७६
परावहिं (प्राप्नुवन्ति) ४, ४४२
परि (परम्) ४, ३६६, ४३७, ४३८
परिअट्टइ (परिवर्तते) ४, २२०
परिअत्ता (परागताः) ४, ३९५
परिअत्तइ (क्लिश्यति) ४, १९०
परिअलइ (गच्छति) ४, १६२
परिअल्लइ (गच्छति) ४, १६२
परिआलेइ (वेष्टयति) ४, ५१
परिखाअअ परिक्खायइ (परिव्राजकम्) ४, २६८
परिल्हसइ (परिस्रंसते) ४, १९७
परिवाडेइ (घटयति) ४, ५०
परिसामइ (शमयति) ४, १६७
परिहट्टइ (मृद्नाति) ४, १२६
परिहणु (परिधानम्) ४, ३४१
परिहासडी (परिहासः) ४, ४२५
परिहीण (परिहीण) ४, ६०
परीइ (भ्रमति) ४, १४३, १६१
परोक्खहो (परोक्षम्) ४, ४१८
पलस्स (परस्य) ४, ३०२
पलावइ (नाशयति) ४, ३१
पलिग्गहे (परिग्रहः) ४, ३०२
पलु (पलम्) ४, ३९५
पलुट्टा (पर्यस्ते) ४, ४२२
पलोट्टइ (प्रत्यागच्छति) ४, १६६
पलोट्टइ (पर्यस्यति) ४, २००
पलोट्टइ (प्रलुटति) ४, २३०
पलोट्टं (पर्यस्तम्) ४, २५८
पल्लट्टइ (पर्यस्यति) ४, २००
पल्लव (पल्लव) ४, ३३६, पल्लवेहिं ४, ४१८
पल्लवह (पल्लवयत) ४, ४२०
पल्हत्थइ (विरेचयति) ४, २६
पल्हत्थइ (पर्यस्यति) ४, २००
पल्हत्थं (पर्यस्तम्) ४, २५८
पवय (प्लवग) ४, २२०
पवासुअहं (प्रवासिनाम्) ४, ३९५
पविरञ्जइ (भनक्ति) ४, १०६
पव्वती (पार्वती) ४, ३०७
पव्वालइ (छादयति) ४, २१
पशादाय (प्रसादाय) ४, ३०२
पश्चादो (पश्चात्) ४, २९९
पसरो (प्रसरः) ४, १५७
पसाउ (प्रमादः) ४, ४३०
पहे (पटुः) ४, २२०
पह (पन्थाः) ४, ४२२
पहम्मइ (गच्छति) ४, १६२
पहल्लइ (घूर्णति) ४, ११७
पहाउ (प्रभावः) ४, ३४१
पहिअ (पथिकः) ४, ४१५, ४२९, ४४५
पहिअ (पथिकाः) ४, ३७६, पहिआ ४, ४३१
पहुच्चइ (प्रभवति) ४,३९०, ४१९
पहुप्पइ (प्रभवति) ४, ६३
पा, पिअइ (पिबति) ४, १०,४१९, पिअन्ति ४, ४१९, ४२०, पिअहु ४, ४२२ पिज्जइ ४, १०,४२३, पिअवि ४, ४०१, ४४४, पीउ ४, ४३९, पिएं ४, ४३४, पाइ, पाअइ ४, २४०
पाइ (पादे) ४, ४४५
पागसासणे (पाकशासनः) ४,२६५
पाणिउं (पानीयम्) ४, ३९६, पाणिएण ४, ४३४
पालग्ग (प्रत्यग्र) ४, ३२२
पाहुक्खेवेन (पादोत्क्षेपेण) ४,३२६
पावं (पापम्) ४, ३२४
पारइ (शक्नोति) ४, ८६
पारक्कडा (परकीयाः) ४, ३७९, ३९८, ४१७
पालको (बालकः) ४, ३२५
पालम्बु (प्रालम्बम्) ४, ४४६
पालेवि (पालयितुम्) ४, ४४१
पावेइ (प्लावयति) ४, ४१
पाअइ (पश्यति) ४, १८१
पि (अपि) ४, ३०२
पिअ (प्रिय) ४, ३३२,३५०,३८६, ३८७, ३९६,४१८,४२५, ४३४, ४३६, पिउ ४, ३४३, ३५२, ३८३, ३९६, ३९८,४०१,४१४, ४१८,४२०, ४२४,४३०, ४३२, ४३८, पिए ४, ४०१, ४२३, ४४४, पियस्सु ४,३५४, पिअहो ४, ४१८, प्रियहो ४, ४१९, पिए ४, ३६५, ३९६, ४२२
पिअवयस्सस्स (प्रियवयस्यस्य) ४,

२८५, ३०२
पिआस (पिपासा) ४, ४३४
पिच्छइ (प्रेक्षते) ४, २९५
पिट्ठि (पृष्ठम्) ४, ३२९
पिच्छिले (पिच्छिल:) ४, २९५
पिसुणइ (कथयति) ४, २
पीडन्तु (पीडयन्तु) ४, ३८५
पीसइ (नति) ४, १८५
पुंसइ (मार्ष्टि) ४, १०५
पुच्छइ (पृच्छति) ४, ९७, पुच्छह ४, ३६४, पुच्छहु ४, ४२२
पुञ्छइ (मार्ष्टि) ४, १०५
पुञ्जइ (पुञ्जयति) ४, १०२
पुञ्ञकम्मो (पुण्यकर्मा) ४, ३०५
पुञ्ञं (पुण्यम्) ४, २९३
पुञ्ञवन्ते (पुण्यवान्) ४, २९३
पुञ्ञाहं (पुण्याहम्) ४, २९३, ३०५
पुट्ठि (पृष्ठम्) ४, ३२९
पुढुमं (प्रथमम्) ४, २८३
पुणु (पुन:) ४, ३४३, ३४९, ३५८, ३७०, ३८३, ३९१, ४२२, ४२५, ४२६, ४२८, ४३८, ४३९, ४४५
पुत्ति ! (पुत्रि !) ४, ३३०
पुत्तें (पुत्रेण) ४, ३९५
पुधुम (प्रथम) ४, ३१६
पुप्फवईहिं (पुष्पवतीभि:) ४, ४३८
पुरओ (पुरत:) ४, २२८
पुरवं (पूर्वम्) ४, ३२३
पुरिसहो (पुरुषस्य) ४, ४००
पुलआअइ (उल्लसति) ४, २०२
पुलएइ (पश्यति) ४, १८१
पुलिशे (पुरुष:) ४, २८७, २८८
पुलोएइ (पश्यति) ४, १८१
पुस्थाव (पृच्छति) ४, २९५
पुसइ (मार्ष्टि) ४, १०५
पू. पुणइ (पुनाति) ४, २४१, पुणिज्जइ, पुव्वइ ४, २४२
पूजितो (पूजित:) ४, ३२२
पूसइ (पुष्यति) ४, २३६
पेक्ख, पेक्खवि (प्रेक्षते) ४, २९५, २९७, पिक्खिवदु ४, ३०२, पेक्खु ४, ४१९, पिक्खेवि ४, ३४०, पेक्खेविणु ४, ४४४, पेक्खिवि ४, ४३० (प्रति-उपसर्ग-पूर्वक: प्रेक्षधातु:) पडिपेक्खइ ४, ३४९
पेच्छ, पेच्छइ (प्रेक्षते) ४, १८१, ३६९, ४४७, पेच्छ ४, ३६३, पेच्छन्ताण ४, ३४८
पेण्ठवइ (प्रस्थापयति) ४, ३७
पेम्म (प्रेमन्) ४, ४२३, पेम्मु ४, ३९५
पेल्लइ (क्षिपति) ४, १४३
प.क्कइ (व्याहरति) ४, ७६
पोराणं (पुराणम्) ४, २८७
°प्पतानेन (°प्रदानेन) ४, ३२२
°प्फलइं (°फलानि) ४, ४४५
प्रङ्गणइ (प्राङ्गणे) ४, ४२०, प्रङ्गणि ४, ३६०
प्रमाणिअउ (प्रमाणित:) ४, ४२२
प्रयावदी (प्रजापति:) ४, ४०४
प्रस्सदि (पश्यति) ४, ३९३
प्राइव, प्राइम्व (प्राय:) ४, ४१४
प्राउ (प्राय:) ४, ४१४
प्रिअ (प्रिय) ४, ३७०, ३७७, ३८७, ४०१, प्रिएण ४, ३७९, ३९८, ४१७

[फ]

फंसइ (स्पृशति) ४, १२९, १८२
फक्कवती (भगवती) ४, ३२५
फन्दइ (स्पन्दते) ४, १२७
फरिसइ (स्पृशति) ४, १८२
फल (फल) ४, ३३५, फलु ४, ३४१, फलइं ४, ३३६, फलाइं ४, ३४०
फासइ (स्पृशति) ४, १८२
फिट्टइ (भ्रश्यते) ४, १७७, ३७०, फिट्ट ४, ४०६
फिडइ (भ्रश्यते) ४, १७७
फुक्किज्जन्त (फूत्क्रियमाणा:) ४, ४२२
फुडइ (भ्रश्यते) ४, १७७
फुडं (स्फुटम्) ४, २५८
फुमइ (भ्रमति) ४, १६१
फुल्लइ (फुल्लति) ४, ३८७
फुसइ (मार्ष्टि) ४, १६१
फुसइ (भ्रमति) ४, १६१
फोडइ (स्फोटयति) ४, ३५८

[ब]

बइट्ठु (उपविष्ट:) ४, ४४४
बइल्ल (बलीवर्द) ४, ४१२
बन्ध, बन्धिज्जइ, बन्धिहिइ, बज्झइ, बज्झिहिइ (बध्यते) ४, २४७, बद्ध ४, ३९९
बन्ध (बन्ध:) ४, ३८२
बप्पीकी (पैतृकी) ४, ३९५
बप्पीहा (चातक) ४, ३८३
बप्पुडा (बराका:) ४, ३८७
बम्भ (ब्रह्मन्) ४, ४१२
बम्भणस्स (ब्राह्मणस्य) ४, २८०
बम्हणो (ब्राह्मण:) ४, ३०२
बरिहिणु (बर्ही) ४, ४२२
बलइ (खादति, प्राणनं करोति वा) ४, २५९
बलि (बलि:) ४, ३८४, ४०२

बलि (बलि) ४, ३३८, ३८५, ३८९, ४११, ४४५
बलु (बलम्) ४, ३५४, ४४०
बलुल्लडउ (बलवद्) ४, ४३०
बहिणी (भगिनी) ४, ३५१, ४३४
बहिणुए (भगिनी) ४, ४२२
बहुअ (बहुक) ४, ३७१, ३७६
बहुलु (बहुलः) ४, ३८७
बालको (बालकः) ४, ३२७
बालहे (बालस्य) ४, ३५०, ३६७, बालि ४, ४२२
बाह (बाष्प) ४, ३९५, ४३९
बाहु (बाहुः) ४, ३२९, ४३०
बाहा (बाहुः) ४, ३२९
बाहु (बाहुः) ४, ३२९, ४३०
बिट्टीए ! (पुत्रि !) ४, ३३०
बिन्नि (द्वे) ४, ४१८
बिम्बाहरि ! (बिम्बाधरे !) ४, ४०१
बिहिं (द्वाभ्याम्) ४, ३६७
बिहुं (द्वयोः) ४, ३८३
बीहइ (बिभेति) ४, ५३, बीहिअं ४, ५३
बुक्कइ (गर्जति) ४, ९८
बुज्झइ (बुध्यते) ४, २१७
बुड्डइ (मज्जति) ४, १०१, बुड्डीसु ४, ४२३, बुड्डिअ ४, ४१५
बुद्धी (बुद्धिः) ४, ४२४
बुद्धी (बुद्धिः) ४, ४२२
बुहस्पई (बृहस्पतिः) ४, २८९
बुहुक्खइ (बुभुक्षति) ४, ५
बे (द्वे) ४, ३७९, ३९५, ४२९, ४३९ बेहिं ४ ३७०, ३७७
बेमि (ब्रवीमि) ४, २३८
बोज्जइ (त्रस्यते) ४, १९८
बोड्डिअ (कपर्दिकाम्) ४, ३३५
बोल्लइ (कथयति) ४, २, बोल्लिअइ ४, ३९०, बोल्लिअओ ४, ४२२, बोल्लिएण ४, ३८३
बोल्लणउ (कथयिता) ४, ४४३
बोहिं (बोधिम्) ४, २७७
ब्रू, ब्रुवह (ब्रूथ) ४, ३९१ ब्रोप्पि ४, ३९१ ब्रोप्पिणु ४, ३९१

[भ]

भएण (भयेन) ४, ४४४
भगदत्त (भगदत्त) ४, २९९
भगवती (भगवती) ४, ३०७ भगवतीए ४, ३२३
भगवं (भगवान्) ४, ४२३
भङ्गि (भङ्गी) ४, ३३९, ४११
भञ्ज, भञ्जइ (भनक्ति) ४, १०६ भञ्जिउ ४, ३९५, ४३९ भग्गा ३५१, ३७९, ३८०, ३९८, ४१७ ४२२, भग्गउं ४, ३५४, भग्गाइं ४, ३८६
भडु (भटः) ४, ४२० भड ४, ३५७
भण् (धातुः) भणइ (भणति) ४, २३९, ३९९, भणन्ति ४, ३७६, भण ४, ३६७, ३७०, ४०४, ४२५, भणु ४, ४०१, भणवि ४, ३८३, भणणए, भणिज्जइ ४, २४९, भणिय ४, ३३०, भणिअउ ४, ४०२
भण्डय (भण्ड.) ४, ४२२
भत्तं (भक्तम्) ४, ६०
भत्तउ (भक्ताः) ४, ४२२
भद्दवउ (भाद्रपदः) ४, ३५७
भन्तडी (भ्रान्तिः) ४, ४१४
भन्ति (भ्रान्तिः) ४, ३६५, ४१६
भन्ते ! (भदन्त !) ४, २८७
भमर ! (भ्रमर !) ४, ३६८, भमरु ४, ३९७
भमरउल (भ्रमरकुल) ४, ३८२
भमरा ! (भ्रमर !) ४, ३८७
भमिर (भ्रमणशीलः) ४, ४२२
भयंकरु (भयंकरः) ४, ३३१
भयव ! (भगवन् !) ४, २६४, भयवं ४, २६४, २६५, ३०२
भरइ (स्मरति) ४, ७४
भरिउ (भरितम्) ४, ४४४, भरिअइ ४, ३८३
भरु (भारम्) ४, ३४०, ४२१
भलइ (स्मरति) ४, ७४
भलि (निर्बन्धः) ४, ३५३
भल्ला (भद्रम्) ४, ३५१
भल्लि (भल्ली) ४, ३३०
भवं (भवान्) ४, २६५, २८३, २८४, ३०२
भवँरु (भ्रमरः) ४, ३९७
भसइ (भषति) ४, १८६
भसणउ (भषिता) ४, ४४३
भसलु (भ्रमरः) ४, ४४४
भस्टालिका (भट्टारिका) ४, २९०
भस्टिणी (भट्टिनी) ४, २९०
भाइ (बिभेति) ४, ५३, भाइअं ४, ५३
भाईरहि (भागीरथी) ४, ३४७
भागुलायणादो (भागुरायणात्) ४, ३०२
भारइ (भारते) ४, ३४७
भारह (भारत) ४, ३९९
भारिया (भार्या) ४, ३१४
भालके (भाले) ४, ४४७

भावइ (भावयति) ४, ४२०
भासइ (भासते) ४, २०३
भिच्चु (भृत्यः) ४, ३४१
भिन्दइ (भिनत्ति) ४, २१६
भिसइ (भासते) ४, २०३
भीओ (भीतः) ४, ५३
भीमसेणस्स (भीमसेनस्य) ४, २९९
भुअ (भुज) ४, ४१४
भुक्कइ (भषति) ४, १८६
भुज्, भुञ्जइ (भुनक्ति) ४, ११०, भुञ्जन्ति ४, ३३५, भुञ्जइ, भुञ्जिज्जइ ४, २४९, भुञ्जणहं भुञ्जणहिं ४, ४४१, भोत्ता ४, २७१, भोत्तूण, भोत्तुं, भोत्तव्वं ४, २१२, कम्मवइ ४, ५ (उप-उपसर्गपूर्वकः भुज्धातुः) उवहुञ्जइ ४, १११
भुमइ (भ्रमति) ४, १६१
भुल्लइ (भ्रश्यते) ४, १७७
भुवण (भुवन) ४, ३३१, भुवणे ४, ४४१
भुंहडी (भूमिः) ४, ३९५
भू, भोमि (भवामि) ४, २६०, होइ ४, ६०, ६१, ३३०, ३४३, ३६२, ३६७, ३७७, ३९५, ४०१, ४०२, ४२०, ४२२, ४२३, ४२४, ४३०, ४३८, होदि ४, २६९, २७३, भोदि ४, २७३, २७४, ३०२, भोति ४, ३१८, होति ४, ३१९, हवइ ४, ६०, २८७, हुवइ, भवइ ४, ६०, हवदि ४, २६९, भवदि, हुवदि, भुवदि ४, २६९, होन्ति ४, ६१, ४२२, हुन्ति ४, ६१, हवन्ति, हुवन्ति ४, ६०, होन्ति ४, ४०६, होउ ४, ४२०, होतु ४, ३०७, होध, होह ४, २६८, हुवेय्य ४, ३२०, ३२३, होज्ज ४, ३७०, होहिइ ४, ३८८, होसइ ४, ३८८, ४१८, होसहिं ४, ४१८, भविस्सदि ४, २७५, ३०२, हुत्तो ४, ६१, हूअं ४, ६४, हूआ ४, ३८४, हूआ ४, ३५१, भविअ, हविअ, भोदूण, होदूण, होत्ता ४, २७१, होऊण, होअऊण ४, २४०, होन्तओ, (अनु-उपसर्ग-पूर्वकः भूधातुः) अणुहूअं ४, ६४ (परि-उपसर्ग-पूर्वकः भूधातुः) परिभवइ ४, ६०, परिहविअ ४, ४०१ (प्र-उपसर्गपूर्वकः भूधातुः) पभवइ ४, ६०, पहुच्चइ ४, ३९०, पभवेइ ४, ६३, पहूअं ४, ६४, (सम्-उपसर्गपूर्वकः भूधातुः) संभवइ ४, ६०, संभावइ ४, ३५, असंभाविद ४, २६०
भो (भो) ४, २६३, २६४, २८५, ३०२
भोगं (भोगम्) ४, ३८९
भ्रंश्, भंसइ (भ्रश्यते) ४, १७७ (प्र-उपसर्गपूर्वकः भ्रंश्धातुः) पब्भट्ठ ४, ४३६
भ्रन्ति (भ्रान्तिः) ४, ३६०
भ्रम् भमइ (भ्रमति) ४, १६१, २३९, भवँइ ४, ४०१, भ्रमन्ति ४, ४५२, भमेज्ज ४, ४१८, भामेइ ४, ३०, भमावेइ ४, ३०, भमडइ ४, १६१, भमाडइ ४, १६१, भमाडेइ ४, ३०, भम्मडइ ४, १६१ (परि-उपसर्गपूर्वकः-भ्रम्धातुः) परिब्भमन्तो ४, ३२३

[म]

म (मा) ४, ३४६, ३६५, ३६८, ३७९, ३८४, ३८७, ४१८, ४२०, ४२२, ४४२
मं (माम्) ४, ३२३, मइँ ४, ३३०, ३४६, ३५६, ३७०, ३७७, ३९६, ४०१, ४०२, ४१४, ४१८, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४३८, ममातो, ममातु ४, ३०७, ३२१, मे ४, २८२, २८३, ३०२, मम ४, २८०, २८८, ३०२ महु ४, ३३३, ३७०, ३७९, ३८३, ३९१, ३९५, ४१६, ४१८, ४२२, ४२३, ४२९, ४३८, मज्झ ४, २३, मज्झु ४, ३६७, ३७९, ३९८, ४०१, ४१७
मउलिअहिं (मुकुलन्ति) ४, ३६५
मेशे (मेषः) ४, २८७
मकरकेतू (मकरकेतुः) ४, ३२४
मकरद्धओ (मकरध्वजः) ४, ३२३
मक्कडु (मर्कटः) ४, ४२३
मक्कनो (मार्गण) ४, ३२५, ३२८
मक्खइ (म्रक्षति) ४, १९१
मग्गइ (याचते) ४, २३०
मग्गणु (मार्गणाः) ४, ४०२
मग्गसिर (मार्गशीर्षः) ४, ३५७
मग्गहु (मार्गयत) ४, ३८४
मग्गु (मार्गः) ४, ३५७, ४३१, मग्गहिं ४, ३४७
मघवं (मघवान्) ४, २६५
मच्चइ (माद्यति) ४, २२५
मच्छर (मत्सर) ४, ४४४
मच्छु (मत्स्यः) ४, ३७०, मच्छें

४, ३७०
मज्ज्, (धातुः) मज्जइ (मज्जति) ४, १०१, मज्जन्ति ४, ३३९ (नि-उपसर्गपूर्वकः मज्ज्धातुः) णुमज्जइ ४, १२३
मज्जइ (मार्ष्टि) ४, १०५
मज्झहे (मध्यायाः) ४, ३५०, मज्झे ४, ४०६, मज्झि ४, ४४४
मञ्जिट्ठए (मञ्जिष्ठया) ४, ४३८
मढइ (मृद्नाति) ४, १२६
मडइ (मृद्नाति) ४, १२६
मणइ (मन्यते) ४, ७
मणसिला (मनःशिला) ४, २८६
मणसिस (मनस्विन्) ४, २९३
मणाउं (मनाक्) ४, ४१८, ४२६
मणि (मनसि) ४, ४२२
मणिअडा (मणयः) ४, ४१४, ४२३
मणु (मनः) ४, ३५०, ४०१, ४२१, ४२२, ४४१
मणोरहा (मनोरथाः) ४, २८५, ३०२
मणोरहु (मनोरथ) ४, ३६२, ३४४, ४०१; मणोरहइं ४, ४१४
मण्डलं (मण्डलम्) ४, ३२५
मतन (मदन) ४, ३०७, मतनो ४, ३२५, मतनं ४, ३२४
मत्तहं (मत्तानाम्) ४, ३८३, ४०६
मत्तो (मत्तः) ४, २६०
मधुरं (मधुरम्) ४, ३२५
मति (मतिः) ४, ३७२
मन्, माणिअइ (मान्यते) ४, ३८८ (सम्-उपसर्गपूर्वकः मन्धातुः) संमाणेइ ४, ३३४
मन्तिदो (मन्त्रितः) ४, २६०
मन्थइ (मथ्नाति) ४, १२१
मन्दार (मन्दार) ४, २८८
मभीसडी (मा भैषीः) ४, ४२२
मं (मा) ४, ३८५, ४१८
मयगलहं (मदकलानाम्) ४, ४०६
मयङ्कु (मृगाङ्कः) ४, ३९६
मयणु (मदनः) ४, ३९७
मयरद्धय (मकरध्वज) ४, ४२२
मयरहरु (मकरगृहम्) ४, ४२२
मय्यं (मद्यम्) ४, २९२
मर्, मरइ (म्रियते) ४, २३४, ४२०, मरहिं ४, ३६८, मराहुं ४, ४३९, मरिएव्वउं ४, ४३८, मारइ ४, ३३०, मारेइ ४, ३३७, मारि ४, ४३९, मारिअडेण ४, ३७९, ४१७, मारिआ ४, ३५१, मुइअ ४, ३६७, ४१९, मुअउ ४, ४४२, मुएण ४, ३९५, मुआ ४, ४४२, मालेध ४, ३०२
मरगय (मरकत) ४, ३४९
मरट्टु (गर्वः) ४, ४२२
मरणु (मरणम्) ४, ३७०, ४१८
मरिसइ (मर्षति) ४, २३५
मलइ (मृद्नाति) ४, १२६
मलयकेदू (मलयकेतुः) ४, ३०२
मल्लजुज्झु (मल्लयुद्धम्) ४, ३८२, ४४४
मस्कली (मस्करी) ४, २८९
महइ (मानयति) ४, १९२, महन्ति ४, ३५३
महद्दुम (महाद्रुम) ४, ४४५, महद्दुमु ४, ३३६
महन्तो (महान्) ४, २६१, महन्दे ४, ३०२
महमहइ (गन्धः प्रसरति) ४, ७८
महब्बल (महाबल) ४, ४४०
महाबहहो (महाह्रदस्य) ४, ४४४
महावणं (महावनम्) ४, ३२३
महारउ (मदीयः) ४, ३५८, महारा ४, ३५१, ४३४
महारिसि (महर्षिः) ४, ३९९
महावीरे (महावीरः) ४, २६५
महावीले (महावीरः) ४, ३०२
महिअल (महीतल) ४, ३५७
महिमण्डलि (महीमण्डले) ४, ३७२
महीहि (मह्यां) ४, ३५२
महुमहणु (मधुमथनः) ४, ३८४
मा (मा) ४, ३३०, ३५७, ४१८, ४२२
मा, माइ (मिमीते) ४, ३५०, ४२१ (उप-उपसर्ग-पूर्वकः माधातुः) उवमिअइ ४, ४१८ (विनिस्-उपसर्ग-पूर्वकः-माधातुः) विनिम्मविदु ४, ४४६
माणु (मानः) ४, ३३०, ३८७, ३९६, ४१०, ४१८ माणि ४, ४१८ माणेण ४, २७८
माणुस (मानुष) ४, ४४७
मामहे (मातुः) ४, ३९९
मारणउ (मारणशीलः) ४, ४४३
मारुदिणा (मारुतिना) ४, २६०
मालइ (मालती) ४, ३६८ मालई ४, ७८
माहु (माघः) ४, ३५७
मिअङ्कु (मृगाङ्कः) ४, ३७७, ४०१
मित्तडा (मित्राणि) ४, ४२२
मिल्, मिलइ (मिलति) ४, ३३२ मिलिज्जइ ४, ४३४ मिलिअ ४, ३८२, मिलिअउ ४, ३३२
मिलाइ (म्लायति) ४, १८, २४०

मिलाअइ ४, २४०
मिस्सइ (मिश्रयति) ४, २८
मील्, मीलइ (मीलति) ४, २३२
मेलवि ४, ४२९ (उद्-उपसर्ग-पूर्वकः मील्धातुः) उम्मिल्लइ ४, २३२, ३५४, उम्मीलइ ४, २३२
(नि-उपसर्गपूर्वकः मील्धातुः) निमिल्लइ, निमीलइ ४, २३२
(प्र-उपसर्ग-पूर्वकः मील्-धातुः) पमिल्लइ, पमीलइ ४, २३२
(सम्-उपसर्ग-पूर्वकः मील्धातुः) सम्मिल्लइ, संमीलइ ४, २३२
मुग्गा (मुद्गाः) ४, ४०९
मुच्, (धातुः) मुअइ (मुञ्चति) ४, ९१, मोत्तु ४, २१२, मोत्तूण ४, २१२, २३७, मुक्काहं ४, ३७०, मोत्तव्वं ४, २१२
मुज्झइ (मुह्यति) ४, २०७, २१७
मुञ्ज (मुञ्ज) ४, ४३९
मुण् (धातुः) मुणइ (जानाति) ४, ७, मुणिज्जइ ४, २५२, मुणिउ ४, ३४६
मुणालिअहे (मृणालिकायाः) ४, ४४४
मुणि (मुनि) ४, ३४१, ४१४
मुणीसिम (मनुष्यत्वम्) ४, ३३०
मुण्ड्, मुण्डइ (मुण्डयति) ४, ११५ मुण्डिअउं ४, ३८९
मुण्डमालिए (मुण्डमाला) ४, ४४६
मुद्द (मुद्रा) ४, ४०१, मुद्दं ४, ३०२
मुद्ध (मुग्ध) ४, ३४९, ४२२, मुद्धि ४, ३७६, ३९५, मुद्धएँ ४, ४२३, मुद्धहे ४, ३५७
मुद्धहे (मुग्धायाः) ४, ३५०
मुरइ (हासेन स्फुटति) ४, ११४
मुसइ (मुष्णाति) ४, २३९
मुसुमूरइ (भनक्ति) ४, १०६
मुह (मुख) ४, ३३२, ३४९, ३५७, ३८२, ३९५, ४०१, ४१४, मुहुं ४, ३६७, ४४४, मुहं ४, ३००, मुहहुं ४, ४२२
मूरइ (भनक्ति) ४, १०६
मूलि (मूले) ४, ४२७
मेखो (मेघः) ४, ३२५
मेलवइ (मिश्रयति) ४, २८
मेल्लइ (मुञ्चति) ४, ९१, ४३०, मेल्लि ४, ३८७, मेल्लवि ४, ३५३, मेल्लेप्पिणु ४, ३४१, मेल्लन्तिहे ४, ३७०, मेल्लन्तहो ४, ३७०, ३७७
[illegible] ४, २८७
मेहे (मेघाः) ४, ३६७, ४१८, ४१९, ४२०, मेहु ४, ३९५, ४२२
मोक्कलडेण (मुक्तेन) ४, ३६६
मोट्टायइ (रमते) ४, १६८
मोडन्ति (मोटयन्ति) ४, ४४५

[य]

य (च) ४, ३२६, ३९६
यणवदे (जनपदः) ४, २९२
यदि (यदि) ४, ३२३
यधि (यदि) ४, २९२
यधाशलूवं (यथास्वरूपम्) ४, २९२
यम् (धातु) यच्छइ (यच्छति) ४, २१५, (नि-उपसर्गपूर्वकः यम्-धातुः) नियमं ४, २८७ (प्र-उपसर्ग-पूर्वकः यम्धातुः) पयच्छसे ४, ३२३
°यम्बालं (°जम्बालम्) ४, २८८
यलहला (जलधराः) ४, २९६
यॅके (यक्षः) ४, २९६
या, याधि (याति) ४, २९२, जाइ ४, २४०, ३५०, ४४५, जाअइ ४, २४०, जन्ति ४, ३८८, ३९५, ४३९, जाहि ४, ४२२, ४३९, जाहुं ४, ३८६, जाइज्जइ ४, ४१९, जावेइ ४, ४०
याणदि (जानाति) ४, २९२
याणवत्तं (यानपात्रम्) ४, २९२
यादिसो (यादृशः) ४, ३१७
याव (यावत्) ४, ३०२
युगे (युगे) ४, २८८
युत्तं (युक्तम्) ४, ३०२
युम्हादिसो (युष्मादृशः) ४, ३१७
ये (ये) ४, ३०२
य्येव (एव) ४, २७६, २८०, २८३, ३०२, ३१६, ३२१, ३२३

[र]

रइ (रति) ४, ४२२
रक्ख्, रक्खइ (रक्षति) ४, ४३९, रक्खेज्जहु ४, ३५०, ३६७
रंखोलइ (दोलायते) ४, ४८
रच् (धातुः) रअइ (रचयति) ४, ९४ (सम्-पूर्वकः रच्-धातुः) समारयइ ४, ९५
रच्चसि (रज्यसे) ४, ४२२
रज्जेइ (रञ्जयति) ४, ४९
रञ्जा (राजा) ४, ३०४, ३२०, रञ्जो ४, ३०४
रटन्त (रटन्) ४, ४४५
रण (रण) ४, ३७०, ३७७, ३८६ रणि ४, ३६०
रण्णइ (अरण्ये) ४, ३६८
रत्ती (रात्रिः) ४, ३३०

रत्तिए (रत्या) ४, ४४६
रन्नु (अरण्यम्) ४, ३४१
रफसो (रभसः) ४, ३२५
रभ्, आरभइ (आरभते) ४, १५५
रम्, रमइ (रमते) ४, १६८, रमदि ४, ३१९, रमदे ४, २७४, रमते, ४, ३१९, रमतु ४, ३०७, रमिअ ४, २७१, रन्तूण ४, ३१२, रन्तूण, रन्ता ४, २७१, रमिय्यते ४, ३१५
रम्वइ (तक्ष्णोति) ४, १९४
रम्फइ (तक्ष्णोति) ४, १९४
रम्फा (रम्भा) ४, ३२५
रम्भइ (गच्छति) ४, १६२
रयण (रत्न) ४, ४०१, ४२२, रयणाइं ४, ३३४
रयणिअरे (रजनीचरान्) ४, ४४७
रयणी (रजनी) ४, ४०१
रवइ (रौति) ४, २३३
रवण्णा (रम्याः) ४, ४२२
रवि (रविं) ४, ४४४
रसु (रसः) ४, ४०१, ४४४
रहुवरि (रथोपरि) ४, ३३१
रहु (रघु) ४, ४४७
राचा (राजा) ४, ३२५, राचिञा, राचिञो ४, ३०४
राजपधो, राजपहो (राजपथः) ४, २६७
राञा (राजा) ४, ३०४, राजं ४, ३२३
रामहुं (रामायणम्) ४, ४०७
°राय (°राज) ४, ३५०
रायइ (राजते) ४, १००
राया (राजा) ४, ३०४, ३२०, ३२३, ३२५, राय ४, ४०२, रायं ४, २६४, राइणो ४, २६०
रावण (रावण) ४, ४०७
रावेइ (रञ्जयति) ४, ४९
राह (राधा) ४, ४२०
राही (राधा) ४, ४२२
राहु (राहु) ४, ३८२, ३९६, ४४४
रि (रे-संबोधने) ४, ३९०
रिअइ (प्रविशति) ४, १८३
रिउ (रिपुः) ४, ३७६, ३९५, ४१६
रिगइ (प्रविशति, गच्छति) ४, २५९
रिद्धिहि (ऋद्धौ) ४, ४१८
रीडइ (मण्डयति) ४, ११५
रीरइ (राजते) ४, १००
रुच्चइ (रोचते) ४, ३४१
रुञ्जइ (रौति) ४, ५७
रुणुझुणि (शब्दानुकरणे) ४, ३६८
रुण्टइ (रौति) ४, ५७
रुद्, रुअसि (रोदिषि) ४, ३८३, रुअहि ४, ३८३, रुवइ ४, २२६, २३८, रोवइ ४, २२६, २३८, रोइ ४, ३६८, रोत्तुं, रोत्तूण, रोत्तव्वं ४, २१२, रुव्वइ, रुविज्जइ ४, २४९
रुध्, रुन्धइ (रुणद्धि) ४, १३३, १२८, २३९, रुम्भइ, रुज्झइ ४, २१८, रुम्भइ, रुन्धिज्जइ ४, २४५, रुद्धो ४, ४२२, ४२९, ४३१, (अनु-उपसर्ग-पूर्वकः रुध्-धातुः) अणुरुज्झइ, अनुरुन्धिज्जइ ४, २४८ (उप-उपसर्ग-पूर्वकः रुध्धातुः) उवरुज्झइ, उवरुन्धिज्जइ ४, २४८ (सम्-उपसर्ग-पूर्वकः रुध्धातुः) संरुज्झइ, संरुज्झिहिइ, संरुन्धिज्जइ, संरुन्धिहिइ ४, २४८
रुवइ (रौति) ४, ५७
रुष्, रूसइ (रुष्यति) ४, २३६, ३५८, रूसेसु ४, ४१४, रूसिज्जइ ४, ४१८, रुट्ठी ४, ४१४
रुहिरें (रुधिरेण) ४, ४१६
रूअउ (रूपकः) ४, ४२२
रूअडउ (रूपकः) ४, ४१९
रूसणा (रोषयुक्ताः) ४, ४१८
रेअवइ (मुञ्चति) ४, ९१
रेसि, रेसिं (तादर्थ्ये निपातः) ४, ४२५
रेहइ (राजते) ४, १००
रोञ्चइ (पिनष्टि) ४, १८५
रोमन्थइ (रोमन्थयति) ४, ४४
°रोमावलिहे (°रोमावल्याः) ४, ३५०
रोस (रोषम्) ४, ४३९
रोसाणइ (मार्ष्टि) ४, १०५

[ल]

लउ (लयम्) ४, ४१४
लक्खु (लक्षम्) ४, ३३२
लक्खेहिं (लक्षैः) ४, ३३५
लग्, लग्गइ (लगति) ४, ३३०, ४२०, ४२२, लग्गिवि ४, ३३९, लग्ग ४, ३२६, लग्गा ४, ४४५ (वि-उपसर्गपूर्वकः लग्धातु) विलग्गी ४, ४४५
लच्छि (लक्ष्मीः) ४, ४३६
लज्ज्, लज्जइ (लज्जते) ४, १३०, लज्जिज्जइ ४, ४१९, लज्जिज्जन्तु ४, ३५१
लञ्जा (राज्ञा) ४, ३०२
लढइ (स्मरति) ४, ७४

लप् (धातुः) **लपति,लपते** (लपति) ४,२१९, लपितं ४, ३०४, ३२४ (वि-उपसर्गपूर्वकः लप्धातुः) विलवइ ४, १४८
लभ्, लहहि (लभसे) ४, ३८३, लहइ ४, ३३५, लहहुं ४, ३८६, ४११, लहिमु ४, ३८६, लहन्ति ४, ३४१, ४१४, लहहि ४, ३६७, ४४०, लहन्तु ४, ३९५, अलहन्तिअहे ४, ३५०, लब्भइ ४, २४९, ४१९, लहिज्जइ ४, ४१९
लहुश (रभस) ४, २८८
लहुई (लघ्वी) ४, ३४८
लंकशो (राक्षसः) ४,२९६, लंकशं ४, ३०२
लाइवि (लात्वा) ४, ३३१, ३७६
लायण्ण (लावण्य) ४, ४१४, लायण्णं ४, २२०
लायं, लायाणो (राजन्, राजा) ४, ३०२
लाचिद (राजित) ४, २८८
लालसउ (लालसकः) ४, ४०१
लाहु (लाभः) ४, ३९०
लिक्कइ (निलीयते) ४, ५५
लिब्भइ (लिह्यते) ४, २४५
लिम्पइ (लिम्पति) ४, १४९
लिम्बडइ (निम्बके) ४, ३८७
लिसइ (स्वपिति) ४, १४६
लिह (रेखा) ४, ३२९
लिहिआ (लिखितम्) ४, ३३५
लिहिज्जइ (लिख्यते) ४, २४५
लीला (लीला) ४, ३२६
लीह (रेखा) ४, ३२९
लुअं (लूनम्) ४, २५८
लुक्कइ (निलीयते) ४, ५५, ११६
लुक्कु (लीनः) ४, ४०१
लुग्गो (रुग्णः) ४, २२८
लुञ्छइ (मार्ष्टि) ४, १०५
लुद्धं (लुब्धम्) ४, ३२६
लुब्भइ (लुभ्यते) ४, १५३
लुहइ (मार्ष्टि) ४, १०५
लुहिलप्पिए (रुधिरप्रियः) ४,३०२
लू, लुणइ (लुनाति) ४, २४१, लुणिज्जइ, लुव्वइ ४, २४२
लूरइ (छिनत्ति) ४, १२४
लेइ (लाति) ४, २३८
लेक्खडउ (लेखः) ४, ४२२
लेप्पिणु (लात्वा) ४,३७०, ४०४, ४०५
लेवि (लात्वा) ४, ३९५, ४४०
लेविणु (लात्वा) ४, ४४१
लेह (रेखा) ४, ३२९
लेहिं (लान्ति) ४, ३८७
लोअ (लोक) ४, २६४, लोउ ४, ३६६, ४२०, ४२२,४४२, ४४३ लोइ ४, ४३८, लोअहो ४,३६५
लोअडी (लोमपुटी=कम्बलम्) ४, ४२३
लोअण (लोचन) ४, ४१४, लोअणइं ४,३६५, लोअणहं ४,३४४, ४०१, लोअणहिं ४,३५६, ३६५, लोअणेहिं ४, ४२२
लोक (लोकस्य) ४, ३२३
लोणु (लवणम्) ४, ४१८, ४४४
लोट्टइ (स्वपिति) ४, १४६
लोहें (लोहेन) ४, ४२२
ल्हसइ (स्रंसते) ४, १९७, ल्हसिउं ४, ४४५
ल्हिक्कइ (निलीयते) ४, ५५
ल्हिक्को (निलीनः) ४, २५८

[व]

व (इव) ४, ४३६
वक्कलु (वल्कलम्) ४,३४१, ४११
वग्घो (व्याघ्रः) ४, ३२५
वग्ग (वल्गाम्) ४, ३३०
वग्गोलइ (रोमन्थयति) ४, ४३
वङ्की (वक्राम्) ४, ३३०, वङ्का ४. ४१२, वङ्केहिं ४, ३५६
वङ्किम (वक्रिमाणम्) ४, ३४४, ४०१
वङ्कुडउ (वक्रः) ४, ४१८
वच्, वोत्तुं (वक्तुम्) ४, २११, वोत्तूण, वोत्तव्वं ४, २११
वचनं (वचनम्) ४, ३२४
वज्जइ (कांक्षति) ४, १९२
वच्चइ (व्रजति) ४, २२५ (अनु-उपसर्गपूर्वकः व्रज्धातुः) अणु-वच्चइ ४, १०७
°वच्छा (°वत्सा) ४, २८२
वच्छहे (वृक्षात्) ४,३३६, वच्छहु ४, ३३६
वज्जइ (पश्यति) ४, १८१
वज्जइ (त्रस्यति) ४, १९८
वज्जइ (वाद्यते) ४, ४०६
वज्जणउ (वादनशीलः) ४, ४४३
वज्जरइ (कथयति) ४, २, वज्जरिओ, वज्जरिऊण, वज्जरन्तो, वज्जरिअव्वं ४, २
वज्जरणु (कथनम्) ४, २
वज्जमा (वज्रमयी) ४, ३९५
वज्जेइ (वर्जयति) ४, ३३६
वज्झइ (वध्यति) ४, ९३
वञ्चयर (वञ्चकतराः) ४, ४१२
वञ्चिउ (गतम्) ४, ३९५

वञ्चदि (व्रजति) ४, २९४
वडवडइ (विलपति) ४, १४८
वडवाणल (वडवानल) ४, ४१९ वडवानलस्स ४, ३६५, वड्डुउं ४, ३७१
वड्डत्तणु (महत्त्वम्) ४, ३६७ वड्डत्तणउं ४, ४८४, वड्डत्तणहो ४, ३६६, ४२५, ४३७, वड्डप्पणु ४, ३६६, ४३७, वड्डा, वड्डाइं ४, ३६४
वढ (मूढ) ४, ३६२, ४०२, ४२२
वणि (वने) ४, ३४०, ४११ वणेहिं ४, ४२२,
वणवासु (वनवासः) ४, ३९६
वणु (व्रणः) ४, ४०१
वण्ठो (वण्ठः) ४, ४४७
वण्णिअइ (वर्ण्यते) ४, ३४५
वतनकं (वदनम्) ४, ३०७
वत्तडी (वार्ता) ४, ४३२
वद्दली (वार्दलम्) ४, ४०१
वन्दु, वन्देइ (वन्दते) ४, ४२३
वमालइ (पुञ्जयति) ४, १०२
वंफइ (दलति, वलति) ४, १७६, वम्फइ (कांक्षति) ४, १९२, वम्फइ (इच्छति खादति वा) ४, २५९
वम्मं (वर्म) ४, २६४
वम्मह (मन्मथ) ४, ३५०, वम्महु ४, ३४४, ४०१
वयंसिअहु (वयस्याभ्यः) ४, ३५१
वयण (वदन) ४, ३९६, वयणु ४, ३५०
वयणु (वचनम्) ४, ३६७, वयणाइं ४, ३४०
वय्यिदे (वर्जितः) ४, २९२
वर्, वरइ (वृणोति) ४, २३४ वारिआ ४, ३३०, ४३८ (नि-उपसर्ग-पूर्वको वर्-धातुः) निवारेइ ४, २२ (सम्-उपसर्गपूर्वको वर्-धातुः) संवरइ ४, ८२ संवरेवि ४, ४२२
वर (वर) ४, ३७० वरं ४, ३२३ °वरहो ४, ४४४ °वरेहिं ४, ४२२
वरहाडइ (निःसरति) ४, ७९
वरि (वरम्) ४, ३४०
वरिस (वर्ष) ४, ३३२, ४१८
वर्त् (नि-उपसर्ग-पूर्वकः वर्त्-धातुः) निअत्तइ ४, २९५ निवट्टाहं ४, ३३२ (प्र-उपसर्गपूर्वकः वर्त्-धातुः) पयट्टइ ४, ३४७ पवत्तेइ ४, २५४ (वि-उपसर्गपूर्वकः वर्त्-धातुः) निवट्टइ ४, ११८
वर्ध्, वड्ढइ (वर्धते) ४, २२० (परि-उपसर्गपूर्वकः वर्ध्-धातुः) परिअड्ढइ ४, २२०
वर्ष्, वरिसइ (वर्षति) ४, २३५
वलइ (वलति) ४, १७६ **वलाहु** (वलामः) ४, ३८६, ४२६ वलन्तेहिं ४, ४२२
वलइ (गृह्णाति) ४, २०९
वलइ (आरोपयति) ४, ४७
वलग्गइ (आरोहति) ४, २०६
°वलणं (°वरणम्) ४, २९३
वलणाइं (वलनानि) ४, ४२२
वलन्ति (ज्वलन्ति) ४, ४१६ वालिउ ४, ४१८
वलय (वलय) ४, ४४४ वलया ४, ३५२
वल्लहु (वल्लभ) ४, ४४४ वल्लहउं ४, ३५८, ४२६ वल्लहइ ४, ३८३
ववसाउ (व्यवसायः) ४, ३८५, ४२२
वश (वश) ४, २८८
वशाहे (वसायाः) ४, ४४७
वश्चले (वत्सलः) ४, २९५
°वश्चा (°वत्सा) ४, ३०२
वस्, वसन्ति (वसन्ति) ४, ३३९ (नि-उपसर्गपूर्वकः वस्धातुः) निवसन्तेहिं ४, ४२२ (प्र-उपसर्ग-पूर्वकः वस्धातुः) पवसइ ४, २५९ पवसन्तेण ४, ३३३, ३४२, ४१९, पवसन्ते ४, ४२२
वस (वश) ४, ४२२ वसिण ४, ३८७, ३९०, वसि ४, ४२७
वसुआइ (उद्वाति) ४, ११, वसुआति ४, ३१८, वसुआदि ४, २७४
वसुधा (वसुधा) ४, ३२६
वह्, वहइ (वहति) ४, ४०१ वहिज्जइ ४, २४५, वुब्भइ ४, २४५ वाहिउ ४, ३६५ (निस्-उपसर्ग-पूर्वको वह्-धातुः) निव्वहइ ४, ३६०
वहिल्लउ (शीघ्रम्) ४, ४२२
वहु (वधू) ४, ४०१
वा (वा) ४, ३०२
वाइ (म्लायति) ४, १८
वाएं (वातेन) ४, ३४३
वाणारसिहिं (वाराणसीम्) ४, ४४२
वायसु (वायसः) ४, ३५२
वार (वारम्) ४, ३८३, ४२२
वारि (द्वारे) ४, ४३६
वालइ (वालयति) ४, ३३०
वावम्फइ (श्रमं करोति) ४, ६८
वावरेइ (व्याप्रियते) ४, ८१
वावेइ (व्याप्नोति) ४, १४१
वाशले (वासरः) ४ २८९

वासारत्ति (वर्षारात्रि) ४, ३९५
वासु (वासम्) ४, ४३०
वासेण (व्यासेन) ४, ३९९
वाहरइ (व्याहरति) ४, ७६
वाहिप्पइ (व्याहरति) ४, २५३
वि (अपि) ४, ३३२, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ३४१, ३४३, ३४७, ३४९, ३५८, ३६५, ३६६, ३६७, ३७०, ३७६, ३७७, ३८३, ३८५, ३८७, ३८९, ३९५, ३९९, ४०१, ४०६, ४११, ४१४, ४१८, ४१९, ४२२, ४२३, ४३२, ४३३, ४४१, ४४५
विअट्टइ (विसंवदति) ४, १२९
विअम्भइ (विजृम्भति) ४, १५७
विअय-वम्म (विजयवर्मन्) ४, २६४
विअलिअ (वगलित) ४, २८८
विआलि (विकाले=संध्यायाम्) ४, ३७७, ४०१, ४२४
विइण्णु (वितीर्णः) ४, ४४४
विउअइ (नश्यति) ४, ३१
विओएं (वियोगेन) ४, ४१९, विओइ ४, ३६८
विकिणइ (विक्रीणाति) ४, ५२
विकोसइ (विकोशति) ४, ४२
विक्केइ (विक्रीणाति) ४, ५२, २४०, विक्केअइ ४, २४०
विग्गि (वत्मनि) ४, ३५०, ४२१
विच्छोलइ (कम्पयति) ४, ४६
विच्छोह-गरु (विक्षोभकरम्) ४, ३९६
विच्छोडवि (विच्छोट्य) ४, ४३९
विजयसेनेन (विजयसेनेन) ४, ३२४
विज्झाणं (विज्ञानम्) ४, ३०३
विट्टालु (अस्पृश्यसंसर्गः) ४, ४२२
विड्डिवइ (रचयति) ४, ९४
विढत्तं (अर्जितम्) ४, ४२२, विढत्त ४, २५८
विढप्पइ (अर्ज्यते) ४, २५१
विढवइ (अर्जयति) ४, १०८, विढविज्जइ ४, २५१
विणासह्यो (विनाशस्य) ४, ४२४
विणु (विना) ४, ३५७, ३८६, ४२१, ४२६, ४४०, ४४१
वित्थारु (विस्तारः) ४, ३९५
विद्दवइ (विद्रवति) ४, ४१९
विधिणे (विधेः) ४, २८२, ३०२
विन्नासिआ (विनाशिता) ४, ४१८
विप्पगालइ (नाशयति) ४, ३१
विप्पिय-गारअ (विप्रिय-कारकः) ४, ३४३
विप्पिय (विप्रिय) ४, ४२३
विमल (विमल) ४, ३८३
विम्हइ (विस्मये) ४, ४२०
विय्याहले (विद्याधरः) ४, २९२
विरइ (भनक्ति) ४, १०६, १५०
विरमालइ (गुप्यते) ४, १९३
विरल (वरल) ४, ३४१, विरला ४, ४१२
विरल्लइ (तनोति) ४, १३७
विरहु (विरह) ४, ४१५, ४२९, ४४४, विरहु ४, ४२३, विरहहो ४ ४३२
विरहिअहं (विरहितानाम्) ४, ३७७, ४०१
विराइ (विलीयते) ४, ५६
विरेअइ (विरेचयति) ४, २६
विरोलइ (मथ्नाति) ४, १२१
विलम्बु (विलम्बस्व) ४, ३८७
विलासिणीउ (विलासिनीः) ४, ३४८
विलिज्जइ (विलीयते) ४, ५६, ४१८
विलुम्पइ (विलुम्पति) ४, १९२
विलोट्टइ (विसंवदति) ४, १२९
विवइ (विपद्) ४, ४००
विवट्टइ (निवर्तते) ४, ११८
विवरीरी (विपरीता) ४, ४२४
विश् (परि-उपसर्गपूर्वकः विश्-धातुः) परिविट्ठा (परिविष्टाः) ४, ४०९ (प्र-उपसर्गपूर्वकः विश्धातुः) पविसामि ४, २७८, पविशामि, ४, ३०२, पविसइ ४, १८३, पविशदु ४, ३०२, पवीसइ ४, ४४४, पइसीसु ४, ३९६, पइट्ठ ४, ३४०, ४३२, ४३३, पइट्ठउ ४, ४४४, पइट्ठि ४, ३३०
विसंवयइ (विसंवदति) ४, १२९
विसगण्ठि (विषग्रन्थि) ४, ४२०, ४२२
विसट्टइ (दलति) ४, १७६
विसण्ठुल (विसंष्ठुला) ४, ४३६
विसम (विषम) ४, ३५०, ३६७ विसमो ४, ३०९ विसमी ४, ४०६ विसमा ४, ३९५
विसहारिणी (विषहारिणी, जल-हारिणी), ४, ४३९
विसाउ (विषादः) ४, ३८५, ४१८
विसाणो (विषाणः) ४, ३०९
विसाहिअं (विसाधितम्) ४, ३८६, ४११
विसूरइ (खिद्यति) ४, १३२, ३४०
विसूरहि ४, ४२२

विण्हु (विष्णुम्) ४, २८९
विस्मये (विस्मये) ४, २८९
विहलिअ (विह्वलित) ४, ३६४
°विहवो (विभवः) ४, ६० विहवे ४, ४२२ विहवि ४, ४१८
विहसन्ति (विकसन्ति) ४, ३६५
विहाणु (विभातम्) ४, ३३०, ३६२, ४२०
विहि (विधि) ४, ३८५, ३८७, ४१४
विहीरइ (प्रतीक्षते) ४, १९३
विहेइ (बिभेति) ४, २३८
विहोडइ (ताडयति) ४, २७
वीअइ (वीजयति) ४, ५
वीण (वीणा) ४, ३२९
वीलजिणे (वीरजिनः) ४, २८८
वीस (विंशतिः) ४, ४२३
वीसरइ (विस्मरति) ४,७५, ४२६
वीसालइ (मिश्रयति) ४, २८
वुअइ (व्रजति) वुप्पि, वुप्पिणु (व्रजित्वा) ४, ३९२
वुत्तउं (उक्तम्) ४, ४२१
वुन्नउं (विषण्ण) ४, ४२१
वेअडइ (खचयति) ४, ८९
वेउ (वेदः) ४, ४३८
वेग्गला (भिन्ना) ४, ३७०
वेढवइ (स्वयं करोति) ४, ४१९
वेढइ (वेष्टयति) ४, २२१ वेढेइ ४, ५१ वेढिज्जइ ४, २२१
वेण (वीणा) ४, ३२९
वेतसो (वेतसः) ४, ३०७
वेप्, वेवइ (वेपते) ४, १४७
वेमयइ (भनक्ति) ४, १०६
वेरिअ (वैरिणः) ४, ४३९
वेलवइ (वञ्चयति) ४, ९३
वेलवइ (उपालभते) ४, १५६
वेल्लइ (रमते) ४, १६८
वेस (वेषः) ४, ३८५
वेहवइ (वञ्चयति) ४, ९३
वोक्कइ (विज्ञापति) ४, ३८
वोज्जइ (वीजयति) ४, ५
वोलइ (गच्छति) ४, १६२
वोल्लिअओ (उक्तम्) ४, ४२२
वोलीणो (अतिक्रान्तः) ४, २५८
वोसट्टइ (विकसति) ४, १९५
वोसट्टो (विकसितः) ४, २५८
वोसिरइ (व्युत्सृजति) वोसिरामि (व्युत्सृजामि) ४, २२९
व्रतु (व्रतम्) ४, ३९४
व्रासु (व्यासः) ४, ३९९

[श]

शक्, सक्कइ (शक्नोति) ४, ८६, २३०, ४२२, ४४१ सिक्केइ ४, ३४४, सिक्कन्ति ४, ३७२, सिक्कु ४, ४०४, ४०५
शक्कावयालतित्थ (शक्रावतारतीर्थ) ४, ३०१, ३०२
शञ्चिदे (संचितः) ४, ४४७
शद (शत) ४, ४४७
शम्, समइ (शाम्यति) ४, १६७ (उप-उपसर्ग-पूर्वकः शम्धातुः) उवसमइ ४, २३९ उवशमदि ४, २९९
शमणे (श्रमणः) ४, ३०२
शयणाहं (स्वजनानाम्) ४, ३००
शयलं (सकलम्) ४, २८८
शलिशं (सकलम्) ४, ३०२
शव्वञ्ञे (सर्वज्ञः) ४, २९३
शस्तवाहे (सार्थवाहः) ४, २९१
शस्प (शष्प) ४, २८९
शहस्र (सहस्र) ४, ४४७
शामञ्ञगुणे (सामान्यगुणः) ४, २९३
शामी (स्वामी) ४, ३०२
शालशे (सारसः) ४, २८८
शिल (शरस्) ४, २८८
शिष् (धातुः) सेसइ (शिष्यते) ४, २३६, विसिट्ठु ४, ३५८
शुपलिगहिदे (सुपरिगृहीतः) ४, ३०२
शुभ्, सोभति (शोभते) ४, ३०९, सोहइ ४, ४४४
शुमिलाए (सूर्मिलायाम्) ४,३०२
शुल (सुर) ४, २८८
शुष्, सूसइ (शुष्यति) ४, २३६, सोसउ ४, ३६५
शुष्क (शुष्क) ४, २८९
शुस्थिदे (सुस्थितः) ४, २९१
शुस्टु (सुष्टु) ४, २९०
शे (सः) ४, ३०२
शोके (शोकः) ४, २९९
शोणिदश्श (शोणितस्य) ४, २९९
शोभणं (शोभनम्) ४, २८८, शोभणे ४, ३०२
श्रम् (परि-उपसर्ग-पूर्वकः श्रम्-धातुः) परिस्सन्ता (परिश्रान्ताः) ४, २८२, पलिश्शन्ता ४, ३०२, (वि-उपसर्ग-पूर्वकः श्रम्धातुः) विसमइ ४, १५९
श्रु (धातुः) सुणइ (शृणोति) ४, ५८, २४१, शुणादु ४, ३०२, सोहीअ ४, ४४७, सुव्वइ, सुणिज्जइ ४, २४२, शुणिअदे ४, ३०२, सुणिऊण ४,२४१,सोऊण ४, २३७, २४१, सुदं ४, २८८;

सुश्र ४, ४३२
श्लिष् (धातुः) **सिलेसइ** (श्लिष्यति) ४, १९०
श्वस् (धातुः) (निस्-उपसर्ग-पूर्वकः श्वस्-धातुः) **नीससइ** (निःश्वसिति) ४, २०१

[स]

स (सः) ४, ३७०, ४०६, ४१४, ४२९
सइ (स्वयम्) ४, ३९५, ४३०
सइं (स्वयम्) ४, ३३९, ४०२
सइला (शैलाः) ४, ३२६
सउणि (शकुनिः) ४, ३९१, सउणिहं ४, ३४०
सउणाहं (शकुनीनां) ४, ४४५
सउन्तले ! (शकुन्तले !) ४, २६०
सएण (शतेन) ४, ३३२, सएहिं ४, ३४५
संवलिअं (संवलितम्) ४, ४३९
संवेल्लइ (संवेष्टते) ४, २२२
संसइ (स्रंसते) ४, १९७
सकण्णी (सकर्णी) ४, ३३०
सक्कारं (सत्कारम्) ४, २६०
सक्को (शक्रः) ४, ३०९
सगरपुत्त (सगरपुत्र) ४, ३२४
संकडु (संकटम्) ४, ३९५
संकरु (शंकरः) ४, ३३१
संखुड्डइ (रमते) ४, १३८
संखो (शङ्खः) ४, ३०९ संखहं ४, ४२२
संगमि (संगमे) ४, ४१९
संगर (संगर) ४, ३४५
संगलइ (संघटते) ४, ११३
संगहो (संगाय) ४, ४३४
संघइ (कथयति) ४, २
सच्चवइ (पश्यति) ४, १८१
सज्जणु (सज्जनः) ४, ४२२ सज्जणहं ४, ४२२
सज्झु (सह्यः) ४, ३७०
संधि (संधिः) ४, ४२२
सञ्ञा (संज्ञा) ४, ३०३
सण्ठो (षण्ढः) ४, ३२५
सदनं (सदनम्) ४, ३०७
सत्थ (स्वस्थ) ४, ३९६, ४२२
सत्थरि (स्रस्तरे) ४, ३५७
सत्थहिं (शास्त्रैः) ४, ३५८
सद्द, सदइ (सीदति) ४, २१९
सदोसु (सदोषः) ४, ४०१
सद्दहणं, सद्दहाणं (श्रद्धानम्) ४, २३८
सन्ति (शान्तिम्) ४, ४४१
संदाणइ (निष्टम्भं करोति, अवष्टम्भं करोति) ४, ६७
संदिसइ (संदिशति) ४, १८०
संधुमइ (प्रदीपयति) ४, १५२
संदेसडा (संदेशान्) ४, ४१९
संदेसें (संदेशेन) ४, ४३४
संधिहिं (संधौ) ४, ४३०
संधुक्कइ (प्रदीपयति) ४, १५२
सन्नामेइ (आद्रियते) ४, ८३
सन्नुमइ (छादयति) ४, २१
सपधु (शपथम्) ४, ३९६
सफलउ (सफलम्) ४, ३९६, २९७
सम (समः) ४, ३५४
समणो (श्रमणः) ४, २९५
समर (समर) ४, ३७१
समरङ्गणइ (समराङ्गणके) ४, ३९५
समाउलेण (समाकुलेन) ४, ४४४
समाणइ (भुङ्क्ते) ४, ११०
समाण्वइ (समाप्नोति) ४, १४२
समाणु (समानम्) ४, ४१८, ४३८
समारइ (समारचयति) ४, ९५
समीपं (समीपम्) ४, ३२२
समुद्दा (समुद्राः) ४, ३२६
संपइ (संपद्) ४, ३७२, ३८५, ४००
संपय (संपद्) ४, ३३५, ३४७, ४००, ४१८
संभवहो (संभवस्य) ४, ३९५
संभावइ (लुभ्यति) ४, १५३
समाणं (संमानम्) ४, ३१६
संमुहं (संमुखी) ४, ३९५, ४१४
सय (शत) ४, ४२२, सएण ४, ३३२, सयाइं ४, ३५७, ४१८ सएहिं ४, ३४५
सयल (सकल) ४, २६४, ४४१
सयवार (शतवारम्) ४, ३५६
सर्, सरइ (सरति) ४, २३४ (अप-उपसर्ग-पूर्वकः सर्धातुः) ओसरइ ४, ३०२ (निस्-उपसर्गपूर्वकः सर्धातुः) नीसरइ ४, ७९ नीसरहिं ४, ४३९ (प्र-उपसर्गपूर्वकः सर्-धातुः) पसरइ ४, ७७, ७८, पसरिउं ४, ३५४
सर (सरस्) ४, ४२२ सरे, सरम्मि सरसि ४, ४४८
सर (शर) ४, ३४४, ४०१, ४१४ सरउ ४, ३५७ सरु, सरें ४, ३५७
सरइ (स्मरति) ४, ७४ सरइँ ४, ३९५
सरला (सरलान्) ४, ३८७
सरावि (शरावे) ४, ३९६
सरिआहँइ (सरिताम्) ४, ३००
सरिसं (सदृशम्) ४, २७९
सरिसिम (सदृशताम्) ४, ३९५

सरिहिं (सरिद्भिः) ४, ४२२
सरेहिं (सरोभिः) ४, ४२२
सप् (उव-उपसर्गपूर्वकः सप्-धातुः) उवसप्पइ (उपसर्पति) ४, १३९, उव-शप्पणीआ ४, ३०२
सलज्ज (सलज्जम्) ४, ४३०
सलहइ (श्लाघते) ४, ८८
सलिल (सलिल) ४,३९५, सलिलं ४, ३०८
सलिल-अज्झं (सलिलाद्र्ध्रम्) ४, १९७
सलोणी (सलावण्या) ४, ४२०
सलोणु ४, ४४४
सल्लइ (सल्लकी) ४, ३८७, सल्लइहिं ४, ४२२
सव्व (सर्व) ४, ४२२, सव्वु ४, ३६६, ४३८, सव्वस्स ४, ३१६, सव्वहिं ४, ४२९
सव्वङ्ग (सर्वाङ्ग) ४,२२४, ४१२, सव्वङ्गे ४,३९६, सव्वङ्गाओ ४, ३४८
सव्वञ्ञो (सर्वज्ञः) ४, ३०३
सव्वासण (सर्वाशन) ४, ३९५
ससणेहो (सस्नेहा) ४, ३६७
ससरीरो (सशरीरः) ४, ३२३
सहरू (शाखराः) ४, ४२२
ससि (शशी) ४, ३८२, ३९५, ४१८, ४४४, ससी ४, ३०९
ससिरेह (शशिलेखा) ४, ३५४
सह, सहेसइ (सहिष्यते) ४, ४२२, सहेव्वउं ४, ४३८
सह (सह) ४, ३२९
सहइ (राजते) ४, १००, सहहिं ४, ३८२
सहस त्ति (सहसा इति) ४, ३५२
सहाव (स्वभाव) ४, ४२२
सहि ! (सखि !) ४, ३३२, ३७९, ३९०, ३९८, ४०१, ४१४, ४१७, ४४४, सहिए ४, ३५८, ३६७
सहुं (सह) ४, ३५६, ४१९
सा (सा) ४, ३६८ ४३९
साअइइ (कर्षति) ४, १८७
सामग्गइ (श्लिष्यति) ४, १९०
सामण्णु (सामान्यः) ४, ४१८
सामयइ (प्रतीक्षते) ४, १९३
सामला (श्यामलः) ४, ३३०
सामलो (श्यामलः) ४, ३४४
सामि (स्वामी) ४, ३३४, ४३०, सामिउ ४, ४०९, सामिय ४, ४२२, सामिअहो ४, ३४०, सामिहुं ४, ३४१
सायर (सागर) ४, ३३४, सायरहो ४, ३९५, ४१९, सायरि ४, ३८३
सार (सार) ४, ४२२
सारइ (प्रहरति) ४, ८४
सारवइ (समारचयति) ४, ९५
सारस (सारस) ४, ३७०
साहिक्खु (सादृश्यम्) ४, ४०४
सारु (सारम्) ४, ३६५
साव (सर्व) ४, ४२०
सावणु (श्रावणः) ४,३५७, ३९६
सास (श्वासान्) ४, ३८७, ३९५
साहइ (कथयति) ४, २
साहट्टइ (संवृणोति) ४, ८२
साहरइ (संवृणोति) ४, ८२
साहु (सर्वः) ४, ३६६, ४२२
सिङ्गहं (शृङ्गयोः) ४, ३३७
सिच्, सिञ्चइ (सिञ्चति) ४, ९६, २३९, सेअइ ४, ९६ (सम्-उपसर्ग-पूर्वकः सिच्धातुः) संसिक्कउ ४, ३९५
सिज्जिरीए (स्वेदनशीलायाः) ४, २२४
सिद्धत्था (सिद्धार्था) ४, ४२३
सिध्, सिज्झइ (सिध्यति) ४, २१७ (नि-उपसर्ग-पूर्वकः सिध्-धातुः) निसेहइ ४, १३४
सिनातं (स्नातम्) ४, ३१४
सिप्पइ (सिञ्चति) ४, २५५
सिम्पइ (सिञ्चति) ४, ९६
सिम्भो (श्लेष्मा) ४, ४१२
सिर (शिरः) ४, ४४५, सिरेण ४, ३६७, सिरे, सिरम्म, सिरसि ४, ४४८. सिरि ४, ४२३, ४४५
सिरि (श्रीः) ४, ३७०, ४०१
सिल (शिला) ४, ३३७
सिलायलु (शिलातलम्) ४, ३४१
सिलेसइ (श्लिष्यति) ४, १९०
सिवतित्थ (शिवतीर्थम्) ४, ४४२
सिवु (शिवम्) ४, ४४०
सिव्वइ (सीव्यति) ४, २३०
सिसिर (शिशिर) ४, ४१५, सिसिर ४, ३५७
सिहइ (स्पृहयति) ४, ३४, १९२
सिहिकढणु (शिखिकथनम्) ४, ४३८
सीअल (शीतल) ४, ४१५ सीअलु ४, ३४३ सीअला ४, ३४३
सीमा (सीमा) ४, ४३०
सील (शील) ४, ४२८ सीलं ४, ३०८
सीसइ (कथयति) ४, २
सीसु (शीर्षम्) ४, ३८९ सीसि ४, ४४५

सीसो (शिष्यः) ४, २६५
सीह (सिंह) ४, ४०६, सीहु ४, ४१८ सीहहो ४, ४१८
सु (सः) ४, ३६७, ३८३, ४१४, ४१८, ४२२
सुअइ स्वपिति ४, १४६, सुअंहि ४, ३७६, ४२७
सुअणु (सुजनः) ४, ३३६, ४०६, सुअणस्सु ४, ३३८, ३८५, ३८९, ४११, सुअणोहिं ४, ४२२
सुअणन्तरि (स्वप्नान्तरे) ४, ४३४
सुकलत्तु (सुकलत्रम्) ४, ३२९
सुकम्म (सुकर्म) ४, २६४
सुकिउ (सुकृतम्) ४, ३२९
सुकिदु (सुकृतम्) ४, ३२९
सुकृदु (सुकृतम्) ४, ३२९
सुकंति (सुकान्ति) ४, ४२७
सुक्खु (सौख्यम्) ४, ३४०
सुघे (सुखेन) ४, ३९६, ४१०
सुज्जो (सूर्यः) ४, ३१४
सुट्ठु (सुष्ठु) ४, ४२२
सुणउ (शुनकः) ४, ४४३
सुत्तं (सूत्रम्) ४, २८७
सुनुसा (स्नुषा) ४, ३१४
सुन्दर (सुन्दर) ४, ३४८
सुपलिगहिदो (सुपरिगृहीतः) ४, २८४
सुपुरिस (सुपुरुष) ४, ३६७, ४२२
सुभिच्चु (सुभृत्यः) ४, ३३४
सुमरणु (स्मरणम्) ४, ४२६
सुम्मिलाए (सूर्मिलया) ४, २८४
सुय्यो (सूर्यः) ४, २६६
सुरउ (सुरतम्) ४, ३३२, ४२०
सुवंसहं (सुवंशानाम्) ४, ४१९
सुवण्णरेह (सुवर्णरेखा) ४, ३३०
सुहच्छी (सुखासिका) ४, ३५७, सुहच्छडी ४, ४२३, सुहच्छिअहिं ४, ३७६, ४२७
सुहय (सुभग) ४, ४१९
सुहासिउ (सुभाषितम्) ४, ३११
सुहिआ! (हे सुखिन्!) ४, २६३
सुहु (सुखम्) ४, ३३२, ४४१
सू, सवइ (सूते) ४, २३३ (प्र-उपसर्ग-पूर्वकः सूधातुः) पसवइ ४, २३०
सूरइ (भनक्ति) ४, १०६
सूर (सूर्य) ४, ४४८
सूरइ (भनक्ति) ४, १०६
से (तस्य) ४, २८७
सेल्लु (भल्लम्) ४, ३८७
सेवइ (सेवते) ४, ३९६
सेसहो (शेषस्य) ४, ४०१
सेहइ (नश्यति) ४, १७८
सेहरु (शेखरः) ४, ४४६
सो (सः) ४, २८०, ३२२, ३२३, ३३२, ३४०, ३६७, ३७०, ३८४, ३९०, ३९५, ४०१, ४२०, ४२२, ४२९, ४३८, ४४२, ४४५
सोइ (सोऽपि) ४, ४०१
सोक्खहं (सौख्यानाम्) ४, ३३२
सोभनं (शोभनम्) ४, ३०९
सोमग्गहणु (सोमग्रहणम्) ४, ३९६
सोल्लइ (पचति) ४, ९०
सोल्लइ (क्षिपति) ४, १४३
सोह (शोभाम्) ४, ३८२
सोहइ (शोभते) ४, ४४४
स्खल् (प्र-उपसर्ग-पूर्वकः स्खल्-धातुः) **पक्खलदि** (प्रस्खलति) ४, २८९
स्तु, थुणइ (स्तौति) ४, २४१ थुव्वइ, थुणिज्जइ ४, २४२
स्त्या (सम्-उपसर्ग-पूर्वकः स्त्या-धातुः) **संखाइ** (संस्त्यायति) ४, १५, संखाय ४, १५
स्था **चिट्ठइ** (तिष्ठति) ४, १६ चिट्ठदि ४, २६० चिष्ठदि ४, २९८, ४४७ ठाइ ४, १६ ४३६ ठन्ति ४, ३९५ ठिउ ४, ३९१, ४०१ ठिअउ ४, ४१५ ०ट्ठिउ ४, ४३१ ०ट्ठिय ४, ४४८ ठिअं ४, ३५४, ३८१ ०ट्ठिअहो ४, ४१६ ०ठियाहं ४, ४२२ ठिदो ४, ४०४ ठिअं ४, १६ चिट्ठिऊण, ठाऊण ४, १६ ठवइ ४, ३५७ (उद्-उपसर्ग-पूर्वकः स्थाधातुः) उट्ठइ ४, १७ उट्ठिओ, उत्थिओ ४, १६ उट्ठियउ ४, ४१५, ४१६ उट्ठाविओ ४, १६ (उप-उपसर्गपूर्वकः स्थाधातुः) उवस्थिदे ४, २९१ (प्र-उपसर्गपूर्वकः स्थाधातुः) पट्ठिओ, परिथओ ४, १६ पट्ठवइ, पट्ठावइ ४, ३७ पठाविअइ ४, ४२२ पट्ठाविओ ४, १६
स्फुट्, फुट्टइ (स्फुटति) ४, १७७, २३१, फुडइ (भ्रश्यते) ४, २३१ फोडन्ति ४, ४२२, ४३०, फोडेन्ति ४, ३५०, ३६७ फुट्टिसु ४, ४४२, फुट्ट ४, ३५२ फुट्टि ४, ३५७
स्मर्, सरइ, सुमरइ (स्मरति) ४, ७४ सुमरि ४, ३८७ सुमरहिं ४, ३८७ सुमरिज्जइ ४, ४२६ (वि-उपसर्ग-पूर्वकः स्मर्धातुः) विम्हरइ ४, ७४, ७५
स्वप् (धातुः) **सुअइ** (स्वपिति) ४, १४६, सुअंहि ४, ३७६, ४२७,

सोएवा ४, ४३८

[ह]

हउं (अहम्) ४,३३८,३४०,३७०, ३७५, ३७९, ३९१,४१०,४११, ४२०, ४२२,४२३,४२५,४३९
हंसो (हंसः) ४, २८८
हक्कइ (निषेधति) ४, १३४
हक्खुवइ (उत्क्षिपति) ४, १४४
हगे (अहम्) ४,२८२,२९९,३०१, ३०२
हञ्जे (चेट्याह्वाने) ४,२८१,३०२
हणइ (शृणोति) ४, ५८
हण, हणइ (हन्ति) ४, ४१८ हम्मइ, ४, २४४ हणिज्जइ, हणिहिइ, हम्मइ, हम्मिहिइ, हन्तव्वं, हन्तूण, हओ ४, २४४
हत्थउ (हस्तः) ४, ४४५, हत्थडा ४, ४३९, हत्थु ४, ४२२ हत्थें ४, ३९९ हत्थहि ४, ३५८
हत्थि (हस्ती) ४, ४४३
हन्ति (हन्ति) ४, ४०६
हम्मइ (गच्छति) ४, १६२
हयविहि (हतविधिः) ४, ३५७
हयास (हताश) ४, ३८३
हर, हरइ (हरति) ४, २०९,२३४, २३९, हरिज्जइ,हीरइ ४ २५० हराविआ ४,४०९(अनु-उपसर्ग-पूर्वकः हरधातुः) अणुहरइ ४, २५९, ४१८ अणुहरहिं ४,३६७ (आङ्-उपसर्ग-पूर्वकः हर्धातुः) आहरइ ४, २५९ (व्या-उपसर्ग-पूर्वक-हर्-धातुः) वाहरइ ४,७६, २५९,वाहरिज्जइ ४,२५३(उप-उपसर्ग-पूर्वको हर्धातुः)उवहरइ ४, २५९ (निस्-उपसर्ग- र्वकः हर्-धातुः) नीहरइ ४, २५९ (परि-उपसर्ग-पूर्वको हर्-धातुः) परिहरइ ४, २५९, ३३४, ३८९ (प्र-उपसर्गपूर्वकः हर्-धातुः)पहरइ ४, ८४,२५९ (प्रति-उपसर्ग-पूर्वको हर्-धातुः) पडिहरइ ४. २५९ (वि-उपसर्ग-पूर्वको हर्-धातुः) विहरइ ४, २५९ (सम्-उपसर्ग-पूर्वको हर्-धातुः) संहरइ ४, २५९
हरि (हरिः) ४,३९१,४२०, ४२२
हरिणाइं (हरिणाः) ४, ४२२
हरिसइ (हृष्यति) ४, २३५
हरं (हरम्) ४, ३२६
हला ! (सख्यामन्त्रणे) ४, २६०
हलि ! (सख्यामन्त्रणे) ४, ३३२, ३५८
हल्लोहलेण (विक्षोभेण) ४,३९६
हवइ (भवति) ४, २३८
हस, हसइ (हसति) ४, १९६, २३९, हसन्तु ४, ३८३, हसिऊण ४, ३१२, हस्सइ, हसिज्जइ ४, २४९, हसिउ ४, ३९६
हस्ती (हस्ती) ४, २८९
हारवइ (नाशयति) ४, ३१
हि (हि) ४, ४२२
हिअयं (हृदयम्) ४, २३, हिअय ४, ४३९, हिअउं ४, ३७०, हिअइ ४, ३३०, ३९५, ४२०, हिआ ४, ४२२
हिअडउं (हृदयम्) ४,३५०, ३६७, ४२२, ४३०, हिअडा ४, ३५७, ४२२, ४३९
हिडिम्बाए (हिडिम्बायाः) ४, २९९
हिण्डीअदि (हिण्ड्यते) ४, २९९
हितपकं, हितपके (हृदयम्) ४, ३१०
हिवएण (हृदयेन) ४, २६५
हिवइ (भवति) ४, २३८
हा (आश्चर्यादौ निपातः) ४,२८२, ३०२, ही ही ४, २८५, ३०२
हीसमणं (हृ.रेषितम्) ४, २५८
हु (खलु) ४, ३९०
हु, हुणइ (जुहोति) ४, २४१, हुणिज्जइ ४, २४२
हुंकारडएं (हुंकारेण) ४, ४२२
हुयवह (हुतवह) ४, २६४
हुवासणो (हुताशनः) ४, २६५
हुलइ (मार्ष्टि) ४,१०५
हुलइ (क्षिपति) ४, १४३
हुव्वइ (भूयते, हूयते) ४, २४२
हुहुरु (शब्दानुकरणे निपातः) ४, ४२३
हूअउ (भूतः) ४, ४२२
हेट्ठ (अधः) ४, ४४८
हेल्लि! (हे आलि!) ४,३७९,४२२
होन्तओ (अभविष्यत्, भवन्) ४, ३५५, ३७२, ३७३, होन्तउ ४, ३७९, ३८०, होसइ ४, ३८८, ४१८

※ समाप्तम् ※

दी गिरि प्रिंटर्स, रेलवे रोड, अम्बाला शहर।